जिन-सूत्र

नया हिन्दी साहित्य

एस धम्मो सनंतनो
भजगोविंदम्
मेरा मुझमें कुछ नहीं
भक्ति-सूत्र : पहला भाग
भक्ति-सूत्र : दूसरा भाग
साधना-सूत्र
पिव पिव लागी प्यास
एक ओंकार सतनाम
अकथ कहानी प्रेम की
बिन घन परत फुहार
सहज समाधि भली
गीता-दर्शन : अध्याय १८ वां

जिन-सूत्र

भगवान श्री रजनीश

भगवान महावीर के 'समण-सुत्तं' पर
भगवान श्री रजनीश द्वारा दिये गये
६२ प्रवचनों में से
१६ प्रवचनों का प्रथम संकलन
प्रश्नोत्तर सहित

दिनांक ११ मई से २६ मई,
१९७६

श्री रजनीश आश्रम,
पूना

संकलन

मां कृष्णप्रिया

संपादन

स्वामी चैतन्य कीर्ति

कला-सज्जा

स्वामी आनंद अर्हत

रजनीश फाउंडेशन प्रकाशन

अनुक्रमणिका

प्रवचन-क्रम		पृष्ठांक
१. जिन-शासन की आधारशिला : संकल्प	...	१
२. प्यास ही प्रार्थना है	...	३१
३ बोध – गहन बोध – मुक्ति है	...	६३
४. धर्म निजी और वैयक्तिक	...	६५
५. परम औषधि : साक्षी-भाव	...	१२६
६. तुम मिटो तो मिलन हो	...	१६७
७. जीवन एक सुअवसर है	...	२०३
८. सम्यक् ज्ञान मुक्ति है	...	२३५
९. अनुकरण नहीं – आत्म-अनुसंधान	...	२७१
१०. जिंदगी नाम है रवानी का	...	३०५
११. अध्यात्म प्रक्रिया है जागरण की	...	३४१
१२. संकल्प की अंतिम निष्पत्ति : समर्पण	...	३७६
१३. वासना ढपोरशंख है	...	४११
१४. प्रेम से मुझे प्रेम है	...	४४१
१५. मनुष्यो, सतत जाग्रत रहो	...	४८५
१६. उठो, जागो – सुबह करीब है	...	५१७
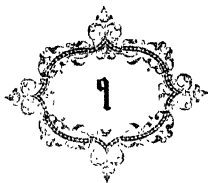
दिनांक ११ मई, १९७६; श्री रजनीश आश्रम, पूना

जं इच्छसि अप्पणतो, जं च न इच्छसि अप्पणतो।
तं इच्छ परस्स वि या, एत्तियगं जिणसासणं ॥ १ ॥

अधुवे असासयम्मि, संसारम्मि दुक्खपउराए।
किं नाम होज्ज तं कम्मयं, जेणाऽहं दुग्गइ न गच्छेजा ॥ २ ॥

खणमित्तसुक्खा बहुकालदुक्खा, पगामदुक्खा
अणिगामसुक्खा।
संसारमोक्खस्स विपक्खभूया, खाणी अणत्थाण उ
कामभोगा ॥ ३ ॥

सुट्ठुवि मग्गिज्जंतो, कत्थवि केलीइ नत्थि जह सारो।
इंदिअविसएसु तहा, नत्थि सुहं सुट्ठु वि गविट्ठं ॥ ४ ॥

जह कच्छुल्लो कच्छु, कंडुयमाणो दुहं मुणइ सुक्खं।
मोहाउरा मणुस्सा, तह कामदुहं सुहं बिंति ॥ ५ ॥

जिन-शासन की आधारशिला : संकल्प

वेद कहते हैं, परमात्मा अकेला था। एकाकीपन उसे खला, अकेलेपन से ऊबा। सोचा उसने, बहुत हो जाऊं। फिर उसने बहुत रूप धरे। ऐसे संसार निर्मित हुआ। सृष्टि की यह कथा है।

स एकाकी न रेमे, एकोऽहं बहुस्याम्!

अकेला वह ऊबने लगा। सोचा बहुत रूपों को सृजूं, बहुत रूपों में रमूं।

ब्राह्मण-संस्कृति इसी सूत्र का विस्तार है — परमात्मा का अवतरण, परमात्मा का फैलाव। ब्रह्म शब्द का यही अर्थ है : जो फैलता चला जाए, जो बहुत रूप धरे, जो बहुत लीला करे, जो अनेक-अनेक ढगों से अभिव्यक्त हो, सागर जैसे अनंत-अनंत लहरों में विभाजित हो जाए।

एक अनेक बनता है, एक अनेक में उत्सव मनाता है। एक अनेक में डूबता है, स्वप्न देखता है। माया सर्जित होती है।

संसार परमात्मा का स्वप्न है। ससार परमात्मा के गहन में उठी विचार की तरगें हैं।

ब्राह्मण-संस्कृति ने परमात्मा के इस फैलाव के अनूठे गीत गाए। उससे भक्ति-शास्त्र का जन्म हुआ। भक्ति-शास्त्र का अर्थ है : परमात्मा का यह फैलता हुआ रूप, अहोभाग्य है। परमात्मा का यह फैलता हुआ रूप परम आनंद है। इसलिए भक्ति में रस है, फैलाव है। एक शब्द में कहें तो महावीर का जो बचपन का नाम है, वह ब्राह्मण-संस्कृति का सूचक है। महावीर का बचपन का नाम था : वर्द्धमान — जो फैले, जो विकासमान हो। फिर महावीर को दूसरी ऊर्जा का, दूसरे अनुभव का, दूसरे साक्षात का सूत्रपात हुआ। वह ठीक वेद से उलटा है।

वेद कहते हैं, वह अकेला था, ऊबा, उसने बहुत को रचा। महावीर बहुत से ऊब गए, भीड़ से थक गए और उन्होंने चाहा, अकेला हो जाऊं। परमात्मा का उतरना संसार में, फैलना और महावीर का लौटना वापिस परमात्मा में! इसलिए श्रमण-संस्कृति के पास अवतार जैसा कोई शब्द नहीं है। तीर्थंकर! अवतार का अर्थ है : परमात्मा उतरे, अवतरित हो। तीर्थंकर का अर्थ है : उस पार जाए, इस पार को

छोड़े । अवतार का अर्थ है : उस पार से इस पार आए । तीर्थंकर का अर्थ है : घाट बनाए इस पार से उस पार जाने का । ससार कैसे तिरोहित हो जाए, स्वप्न कैसे बंद हो, भीड़ कैसे विदा हो; फिर हम अकेले कैसे हो जाएं – वही श्रमण-संस्कृति का आधार है । वर्द्धमान कैसे महावीर बने, फैलाव कैसे रुके; क्योंकि जो फैलता चला जा रहा है उसका कोई अंत नहीं है । वह पसारा बड़ा है । वह कहीं समाप्त न होगा । स्वप्न फैलने ही चले जाएंगे, फैलते ही चले जाएंगे – और हम उनमें खोते ही चले जाएंगे । जागना होगा !

भक्ति-शास्त्र ने परमात्मा के इस ससार के अनेक-अनेक रूपों के गीत गाए, महावीर ने इस फैलती हुई ऊर्जा से संघर्ष किया – इसलिए 'महावीर' नाम । लड़े, धारा के उलटे बहे ।

गंगा बहती है गंगोत्री से गगासागर तक – ऐसी ब्राह्मण-संस्कृति है । ब्राह्मण-सस्कृति का सूत्र है : समर्पण; छोड़ दो उसके हाथ में, जहां वह जा रहा है; चले चलो; भरोसा करो; शरणागति !

महावीर की सारी चेष्टा ऐसी है जैसे गंगा गंगोत्री की तरफ बहे, मूलस्रोत की तरफ, उत्स की तरफ । लड़ो ! दुस्साहस करो । सघर्ष । समर्पण नहीं । महान संघर्ष से गुजरना होगा, क्योकि धारा को उलटा ले जाना है, विपरीत ले जाना है ।

धारा का अर्थ है : जाए गंगोत्री से गंगा सागर की तरफ । धारा को उलटा करना है – राधा बनाना है । गंगा चले, बहे, उलटी, ऊपर की तरफ, पानी पहाड़ चढ़े । मूल उद्गम की खोज हो ।

ब्राह्मण-संस्कृति आधी है । श्रमण-संस्कृति भी आधी है । दोनों से मिल कर पूरा वर्तुल निर्मित होता है । और इसलिए इस देश मे ब्राह्मण और श्रमणों के बीच जो संघर्ष चला, उसने दोनो को पगु किया । तब ब्राह्मणो के पास फैलने के सूत्र रह गए, श्रमणों के पास सिकुड़ने के सूत्र रह गए – दोनो ही अधूरे हो गए; सत्य आधा-आधा कट गया । मेरे देखे, जहाँ ब्राह्मण और श्रमण राजी होते हैं, सहमत होते हैं, मिल जाते हैं, वही परिपूर्ण धर्म का आविर्भाव होता है ।

निश्चित ही परमात्मा थक गया अकेलेपन से, बहुत रूप उसने धरे; लेकिन फिर बहुत रूप से भी तो थकेगा, फिर विश्राम भी तो मांगेगा । इसलिए महावीर के वचन वेद-विरोधी मालूम होंगे; क्योंकि वेद बह रहा है गंगोत्री से गगासागर की तरफ । इसलिए हिन्दुओं ने समझा कि महावीर वेद-विरोधी हैं । प्रतीत होते हैं । परमात्मा अपने घर वापिस लौटने लगा । ऊब गया बाजार से, देख ली भीड़-भाड़, बहुत रूप धर लिये, थक गया उनसे भी । उसने फिर कहा, अब हो गया बहुत अनेक, अब एक होना चाहता हूं । इसलिए महावीर के पास एक शब्द है जो बड़ा बहुमूल्य है । महावीर ने कहा, मनुष्य बहुचितवान है; बहुत-बहुत खंडों में विभाजित है – उसे एक होना है । बहुत रूपों में बंटा है – उसे संग्रहीत होना है । इस संग्रहीत

चैतन्य का नाम ही महावीर की भाषा में परमात्मा है। वर्द्धमान को महावीर होना है। फैलते को वापिस लौटना है। क्योंकि सब फैलाव कामना का है। परमात्मा भी फैला संसार में कामना से। कामना ही फैलती है। तो जिसे मुक्त होना है, उसे सिकुड़ना होगा। उसे मूल स्वभाव में लौट आना होगा।

परमात्मा उतरा है, हिन्दू-विचार में। अवतरण हुआ। महावीर कहते हैं, ऊर्ध्व-गमन, वापिस लौटना है घर। देख लिया संसार !

इसलिए महावीर के सूत्र भक्ति-सूत्र से बिलकुल विपरीत मालूम होंगे। घबड़ाना मत। श्रमण और ब्राह्मण मिल कर ही पूर्ण संस्कृति का जन्म होता है। नही हो पाया ऐसा, होना चाहिए था। अब भी कुछ देर नहीं हुई, हो सकता है। जहां नारद और वर्द्धमान महावीर राजी हो जाते हैं, वहां पूर्ण वर्तुल पैदा होता है।

पर महावीर की भाषा संघर्ष की है। महावीर के पास शरणागति जैसा कोई शब्द ही नही है। महावीर कहते हैं, अशरणभावना। किसी की शरण मत जाना। अपनी ही शरण लौटना है। घर जाना है। किसी का सहारा मत पकड़ना। सहारे से तो दूसरा हो जाएगा। सहारे में तो दूसरा महत्त्वपूर्ण हो जाएगा। नहीं, दूसरे को तो त्यागना है, छोड़ना है, भूलना है। बस एक ही याद रह जाए, जो अपना स्वभाव है, जो अपना स्वरूप है। इसलिए कोई शरणागति नहीं।

महावीर गुरु नही हैं। महावीर कल्याणमित्र है। वे कहते हैं, मैं कुछ कहता हूं, उसे समझ लो; मेरे सहारे लेने की जरूरत नही है। मेरी शरण आने से तुम मुक्त न हो जाओगे। मेरी शरण आने से तो नया बंधन निर्मित होगा। क्योंकि दो बने रहेंगे। भक्त और भगवान बना रहेगा। शिष्य और गुरु बना रहेगा। नही, दो को तो मिटाना है।

इसलिए महावीर ने भगवान शब्द का उपयोग ही नहीं किया। कहा कि भक्त ही भगवान हो जाता है।

इसे समझना। विपरीत दिखाई पड़ते हुए भी ये बातें विपरीत नहीं हैं।

नारद कहते हैं, भक्त भगवान में लीन हो जाता है। भगवान ही बचता है, भक्त खो जाता है। महावीर कहते हैं, भक्त जाग जाता है अपनी परिपूर्णता में, भगवान खो जाता है, भक्त में लीन हो जाता है। भक्त ने पहचान लिया अपना स्वरूप – भगवान हो गया। स्वरूप को पहचान लेना भगवत्ता है। इसलिए महा-वीर के धर्म में भगवान नही है, शरणागति नही है। शरण जाने को ही कोई नहीं है, जिसकी शरण चले जाओ। कोई प्रार्थना नहीं। कोई पूजा नहीं। हो नही सकती; क्योंकि पूजा में तो दूसरा जरूरी होगा। 'पर' चाहिए पूजा को।

महावीर की भाषा ध्यान की है, पूजा की नही। और ध्यान और प्रार्थना में यही फर्क है। प्रार्थना में दूसरा चाहिए। ध्यान में दूसरे को मिटाना है, भुलाना है। इस तरह भुला देना है कि बस अकेले तुम ही बचो, शुद्ध चैतन्य बचे; दूसरे

की रेखा भी न रहे, छाया भी न पड़े। पर दोनों ही रास्तों से वहीं पहुंचना हो जाता है।

जो समर्पण से बहते हैं, जो धारा बनते हैं, आखिर सागर से बादलों पे चढ़ के गंगोत्री पहुंच ही जाते हैं। उन्होंने सुगम मार्ग चुना।

नारद की यात्रा बड़ी सरल है। महावीर की यात्रा बड़ी कठिन है। इसलिए तो 'महावीर'! वह योद्धा का मार्ग है, प्रेमी का नहीं; संघर्ष का। लेकिन कुछ हैं जिनके लिए वही स्वाभाविक है। इसलिए अपने भीतर देखना। इसकी फिक्र मत करना कि किस घर में पैदा हुए। वह तो सांयोगिक है। जैन घर में पैदा हुए कि हिन्दू घर में पैदा कि मुसलमान घर में कि ईसाई घर में, वह तो सांयोगिक है। अपने जीवन की अन्तर्दशा समझना। योद्धा बनने की रुझान है? योद्धा बनने की तरफ सहज प्रवाह है? योद्धा होने में लगता है स्वरूप खिलेगा? तो योद्धा बनना। तो फिर महावीर के पीछे चलना। और लगे कि लड़ना अपने से न होगा, वह अपनी भाषा नहीं है, लगे कि समर्पण ही उचित है, तो फिर नारद को चुन लेना।

नारद एक छोर है, महावीर दूसरे छोर हैं। और कहीं-न-कहीं नारद और महावीर के बीच सारे महापुरुष हैं। बुद्ध हों, कृष्ण हों, राम हों, मुहम्मद हों, जरथुस्त्र हों, जीसस हों – महावीर और नारद के बीच कहीं-न-कहीं। लेकिन महावीर और नारद परम छोर हैं। और इसलिए जैसा नारद ने भक्ति को उसकी परम प्रगाढ़ता में प्रगट किया है, शरणागति को आखिरी रूप दिया, आखिरी परिभाषा दे दी – उसके पार परिष्कार संभव नहीं है – वैसे महावीर ने संघर्ष को आखिरी रूप दिया है। अब उसको और ऊपर उठाने का कोई उपाय नहीं है। महावीर ने आखिरी बात कह दी है संघर्ष के रास्ते पर। चुनाव तुम्हें यह नहीं करना है कि कौन ठीक है। दोनो ठीक हैं। चुनाव तुम्हें यह करना है कि कौन हमें जंचता है।

फूल, गुल, शम्मोकमर सारे ही थे
पर हमें उनमें तुम्हीं भाए बहुत।

—इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, कितने फूल खिले!

फूल, गुल, शम्मोकमर सारे ही थे!

—चम्पा है, चमेली है, जूही है, केतकी है, गुलाब है, कमल हैं।

फूल, गुल, शम्मोकमर सारे ही थे
पर हमें उनमें तुम्ही भाए बहुत!

फिर तुम्हें जो भा जाए वही तुम्हारा फूल है। तुम्हें कमल भा जाए, तुम्हारे बेटे को गुलाब भा जाए, तो झगड़ा मत करना। जो तुम्हें भा जाए, वही तुम्हारे लिए मार्ग है।

लोग अक्सर उलटा करते हैं । लोग सोचते हैं, 'कौन ठीक ?' गलत प्रश्न उठा लिया । 'महावीर ठीक कि नारद ठीक ?'—तुमने प्रश्न ही गलत पूछ लिया । यही पूछो, कौन जंचता है । ठीक-गलत, तुम कैसे निर्णय करोगे ? उस परम की बातें, वे ही जानें जो परम को उपलब्ध हुए हैं । तुम तो इतना ही तय कर लो, कौन-सा तुमको जंचता है, कौन-सा तुम्हारे मन को भा जाता है ।

मैं, अगर मुझसे पूछो, तो कहूंगा, सभी ठीक । लेकिन सभी ठीक से तो हल न होगा । क्योंकि सभी रास्तों पर तो तुम चल न सकोगे । द्वार तो तुम्हें चुनना ही होगा । सभी द्वार उसी के मन्दिर के हैं । लेकिन फिर भी तुम एक ही द्वार से गुजर सकोगे, सभी द्वारों से न गुजर सकोगे । सभी द्वारों से गुजरने में तो तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे । एक पैर एक द्वार में डाल दोगे, एक हाथ दूसरे द्वार में डाल दोगे — तुम अटक जाओगे । एक से ज्यादा द्वार चुन लिये तो द्वार पहुंचाएंगे न, अटकाएंगे । तुम अपना द्वार चुन लेना । तुम अपना फूल चुन लेना । तुम अपनी रुझान को पहचानो । तुम्हें जो भा जाए वही सत्य है । जो तुम्हारे काम आ जाए वही सत्य है । जो द्वार तुम्हें पहुंचा दे वही गुरुद्वारा है । पहुंच के तो तुम भी पाओगे : अरे ! सभी द्वार यहीं आ गए । पहुंच के तो तुम मिलोगे उनसे जो दूसरे द्वारों से आते थे और दुश्मन मालूम पड़ते थे । क्योंकि मैंने तो उस मन्दिर में महावीर और नारद को आलिंगन करते देखा है । लेकिन तुम चुन लेना । तुम्हारा चुनाव यह न हो कि कौन ठीक है । वह तो बात ही अभद्र हो गई । तुम्हारा चुनाव तो बस इतना हो .

फूल, गुल, शम्मोकमर सारे ही थे
पर हमें उनमें तुम्हीं भाए बहुत !
जब देखिए कुछ और ही आलम है तुम्हारा
हर बार अजब रंग है, हर बार अजब रूप !

बहुत रूपों में सत्य प्रगट हुआ है । बहुत रंगों में, बहुत ढंगों में प्रगट हुआ है । और हर बार जब प्रगट हुआ है तो अजब ही ! तो बड़ा आश्चर्यचकित करने वाला है, अवाक कर जाने वाला है । नारद को समझोगे, अवाक रह जाओगे । महावीर को समझोगे, ठगे रह जाओगे ।

जब देखिए कुछ और ही आलम है तुम्हारा
हर बार अजब रंग है, हर बार अजब रूप !

मगर ये रूप सब एक के ही हैं । यह यात्रा एक ही है ।

ईसाइयत कहती है, अदम को परमात्मा ने स्वर्ग से बहिष्कृत किया । निकाला स्वर्ग के राज्य से, क्योंकि आज्ञा उसने न मानी थी, अनाज्ञाकारी था । फिर जीसस ने आज्ञा मानी । जीसस वापिस समारोहपूर्वक स्वर्ग में प्रविष्ट हुए । जिसे अदम में निकाला था, वही जीसस में लौटा । अदम पहला आदमी है, जीसस

आखिरी आदमी है। अदम संसार की तरफ यात्रा है – धारा। जीसस संसार से विपरीत यात्रा है – राधा।

यहूदियों की कथाएं थोड़ी कठोर हैं। पूरब में लोग ज्यादा कोमल भाषा बोलते हैं। यहूदी कहते हैं, परमात्मा ने बहिष्कृत किया अदम को। हम ऐसा नहीं कहते। हम कहते हैं, स एकाकी न रेमे। वह अकेला था। एकोऽहं बहुस्याम। उसने कहा, बहुत को रचूं। बहिष्कृत नहीं हुआ, अवतरित हुआ। आया, मर्जी से आया।

और इसे भी समझ लेना जरूरी है। तुम जहां हो, अपनी मर्जी से हो। संसार में हो तो अपनी मर्जी से हो। तुम्हारे भीतर के परमात्मा ने यही चुना। कुछ परेशान होने की बात नहीं। बेमर्जी से तुम नहीं हो। अपने ही कारण हो। अपनी ही आकांक्षा से हो। और यह बड़े सौभाग्य की बात है कि बेमर्जी से नहीं हो। क्योंकि जिस दिन चाहो, उसी दिन घर का द्वार खुला है, लौट आ सकते हो। जब तक चाहो, जा सकते हो दूर। जिस दिन निर्णय करोगे, उसी दिन लौटना शुरू हो जाएगा।

ब्राह्मण-संस्कृति परमात्मा के फैलाव की कथा है। श्रमण-संस्कृति परमात्मा के घर लौटने की कथा है। और निश्चित ही, जो अकेले में थक गया था, वह भीड़ में भी थक ही जाएगा।

तुमने अपने भीतर भी देखा! यही होता है। बाजार में थक जाते हो, मंदिर की आकांक्षा पैदा होती है। भीड़ में ऊब जाते हो, बस्ती से ऊब जाते हो, हिमालय जाने की आकांक्षा पैदा होती है। हिमालय पर जो बैठे हैं, एकांत में, उनके मन में बाजार आकर्षण निर्मित करता है।

मैं कुछ मित्रों को ले कर कश्मीर की यात्रा पर था। कश्मीर के पहाड़ों में, झरनों में, वे बड़ा आनंद अनुभव कर रहे थे। डल झील पर उनके साथ मैं ठहरा था। हमारा जो माझी था, जब हम लौटने लगे तो वह कहने लगा, 'ऐसा आशीर्वाद दें कि एक दफा बंबई देखनी है!'

'तू बंबई देख के क्या करेगा?'

उसने कहा, 'यहां मन नहीं लगता। और बंबई बिना देखे मर गए तो एक आस रह जाएगी।'

जो मेरे साथ आए थे, वे बंबई के मित्र थे। वे चौंके। वे आए थे कश्मीर। वे आए थे हिमालय की शरण में। और जो हिमालय की शरण में पैदा हुआ था, वह बंबई आना चाह रहा था।

तुम अगर अपने मन को भी पहचानोगे तो यही पाओगे। परमात्मा की कथा वस्तुतः तुम्हारी ही कथा है। कोई परमात्मा और तो नहीं। तुम कोई और तो नहीं। परमात्मा की कथा शुद्ध चेतना के स्वभाव की कथा है। ठीक ही कहते हैं वेद, 'ऊब गया, अकेला था। कहा, बहुत को रचूं। उसने बहुत रचे।'

महावीर कहते हैं, अब हम बहुत से ऊब गए; अब घर वापिस जाने की आकांक्षा पैदा होती है।

इसलिए महावीर के सूत्रों में लौटती यात्रा के सूत्र है। निश्चित ही वे भिन्न होंगे। रस की बात न होगी यहां। यहां विरसता की बात होगी। यहां कामना की, वासना की बात न होगी। यहां त्याग, वैराग्य की बात होगी। यहां राग नहीं, वीतरागता लक्ष्य होगा। मगर ध्यान रखना, राग ही वीतरागता बनता है। वही है ऊर्जा, जो सागर को तरफ जाती है। वही है ऊर्जा, जो गंगोत्री की तरफ जाती है। ऊर्जा वही है। पर महावीर का मार्ग थोड़ा कठिन है। क्योंकि धारा के विपरीत लड़ना होगा।

> किश्ती को भंवर में घिरने दे मौजो के थपेड़े सहने दे
> जिंदों में अगर जीना है तुझे तूफान की हलचल रहने दे
> धारे के मुआफ़िक बहना क्या तौहीने-दस्तो-बाजू है
> परवर्दए-तूफां किश्ती को धार के मुखालिफ बहने दे।
> किश्ती को भवर में घिरने दे!

महावीर कहते हैं, सघर्ष न हो तो सत्य आविर्भूत न होगा। जैसे सागर के मंथन से अमृत निकला, ऐसे जीवन के मंथन से सत्य निकलता है। सत्य कोई वस्तु थोड़े ही है कि कहीं रखी है, तुम गए और उठा ली कि खरीद ली, कि पूजा की, प्रार्थना की और माग ली! सत्य तो तुम्हारे जीवन का परिष्कार है। सत्य तो तुम्हारे ही होने का शुद्धतम ढंग है। सत्य कोई मंज्ञा नही है, क्रिया है। सत्य कोई वस्तु नही है, भाव है। तो तुम जितने संघर्ष में उतरोगे, जितने मये जाओगे, जितने जलोगे, जितने तूफानो की टक्कर लोगे, उतना ही तुम्हारे भीतर सत्य आविर्भूत होगा; उतनी ही तुम्हारी धूल झड़ेगी; गलत अलग होगा; निर्जरा होगी व्यर्थ से। झाड-झखाड़ उग गए है, घास-फूस उग आया है -- आग लगानी होगी, ताकि वही बचे, जिसके मिटने का कोई उपाय नही। अमृत ही बचे; मृत्यु को तो खाक कर देना होगा। यह बैठे-बैठे न होगा। इसके लिए बड़े प्रबल आवाहन की, बड़ी प्रगाढ़ चुनौती की जरूरत है।

> किश्ती को भंवर में घिरने दे मौजों के थपेड़े सहने दे!

भंवर दुश्मन नहीं है। महावीर के रास्ते पर भवर मित्र है। क्योंकि उसी से लड के तो तुम जगोगे; उसी से उलझ के तो तुम उठोगे। उसी की टक्कर को झेल कर, संघर्ष करके, विजय करके, तुम उसके पार हो सकोगे। इसलिए महावीर का मार्ग कहा जाता है, 'जिन का मार्ग; जिनों का मार्ग; उनने, जिन्होंने जीता। जिन शब्द का अर्थ है: जिसने जीता। जैन शब्द उसी जिन से बना। जिन का अर्थ है: जिसने जीता।

सभी शब्द बड़े अर्थपूर्ण होते हैं। बुद्ध का अर्थ है: जो जागा। जिन का अर्थ है: जो जीता।

जिंदों में अगर जीना है तुझे, तूफान की हलचल रहने दे।

– यह प्रार्थना मत कर कि तूफान को हटा लो! फिर तू क्या करेगा?

धारे के मुआफिक बहना क्या तौहीने-दस्तो-बाजू है।

– यह तो तेरे बाहुओं का अपमान हो जाएगा, अगर तू धारा के साथ बहा।

धारे के मुआफिक बहना क्या!

– फिर तेरे हाथों का क्या होगा? फिर तेरी बाजुओं का क्या होगा? फिर तेरे बल को चुनौती कहां मिलेगी? यह तो अपमान होगा तेरी ऊर्जा का! समर्पण – नहीं!

परवर्दए-तूफां किश्ती को धार के मुखालिफ बहने दे!

यह किश्ती तो तूफान से ही पैदा होती है। यह किश्ती तो तूफान में ही पलती है। यह किश्ती तो जन्मती ही तूफान में है।

परवर्दए-तूफां किश्ती को

– इस तूफान मे पैदा हुई जीवन की किश्ती को, धार के मुखालिफ बहने दे, उलटा चलने दे। चल गगोत्री की यात्रा पर!

महावीर का मार्ग योद्धा का मार्ग है। क्षत्रिय थे, स्वाभाविक है। जैनो के चौबीस ही तीर्थंकर क्षत्रिय थे। लड़ाको की बात है। लड़ना ही जानते थे। तूफान में ही किश्ती पली थी। तलवार ही उनकी भाषा थी। युद्ध ही उनका अनुभव था। यद्यपि सब युद्ध छोड़ दिया, अहिंसक हो गए; पर क्या होता है, इससे क्या फर्क पडता है? चीटी को भी नहीं मारते थे, लेकिन योद्धा होना तो जारी रहा। अपने स्वभाव से कोई भिन्न हो नही पाता। संसार भी छोड दिया, प्रतियोगिता के सारे स्थान भी छोड दिये, जहा-जहां संघर्ष, युद्ध की बात थी, हिंसा थी, सब छोड दिया – लेकिन फिर भी योद्धा तो नहीं मिट पाता।

जैनों को सारे तीर्थंकर क्षत्रिय थे। यह आकस्मिक नही है। एक भी ब्राह्मण तीर्थंकर न हुआ। ब्राह्मण की भाषा लड़ने की भाषा नहीं है; समर्पण की भाषा है; शरणागति की भाषा है।

बड़ी मधुर कहानी है। झूठ ही होगी, पर मधुर है। और माधुर्य इतना गहरा है उसमें कि झूठ की मै फिक्र नही करता; मेरे लिए मधुर ही सत्य है। इतनी सुन्दर है कि सत्य होनी ही चाहिए। वही कसौटी है सत्य की।

कहानी है कि महावीर का जन्म तो हुआ था एक ब्राह्मणी के गर्भ में; पैदा तो हुए थे ब्राह्मणी के गर्भ में – लेकिन देवताओ ने कहा, 'ऐसा कभी हुआ है कि जैन तीर्थंकर और ब्राह्मण के घर पैदा हो? ऐसा तो कभी सुना नही। और ब्राह्मण के घर पैदा होगा तो फिर जिन तीर्थंकर कैसे होगा? फिर तूफान में किश्ती पल ही

न पाएगी। फिर संघर्ष की भाषा ही न होगी। फिर उसके जीवन में तलवार की धार और चमक न होगी। देवता बड़ी बिगूचन में पड़े। और दुनिया का पहला आपरेशन हुआ। उन्होंने निकाल लिया ब्राह्मणी के गर्भ से महावीर को। तीन या चार महीने के थे, तब उन्होने गर्भ निकाल लिया। बदल दिया गर्भ एक क्षत्राणि के गर्भ से। वहां एक लड़की पैदा होने को थी, उसे निकाल कर ब्राह्मणी के गर्भ में रख दिया, महावीर को एक क्षत्रिय के गर्भ में रख दिया।

यह भी बड़ी सूचक है बात। स्त्री स्वभावत: समर्पण की भाषा जानती है। इस-लिए ठीक ही किया कि स्त्री को निकाल लिया क्षत्रिय के गर्भ से, ब्राह्मण के गर्भ में रख दिया। स्त्रैण भाषा समर्पण की है।

जिनके मन कोमल हैं, फूल जैसे कोमल है, उनके लिए नारद का ही मार्ग है। पर जिनके हृदय में तलवार की चमक और कौध है, उनके लिए महावीर का मार्ग है। कहानी सुन्दर है, अर्थपूर्ण है। इतना कहती है कहानी कि ' ब्राह्मण के घर कभी कोई योद्धा पैदा हुआ ? योद्धा पैदा होने के लिए रोए-रोए मे, खून-खून में, हड्डी-मास-मज्जा मे युद्ध का स्वर चाहिए ।

दूसरी मजे की बात है कि चौबीस ही जैनों के तीर्थंकर क्षत्रिय घर में पैदा हुए और चौबीस ही तीर्थंकर अहिंसक हो गए, उन्होने हिंसा छोड़ दी। तलवार ले के भी क्या लडना ! वह कमजोर के लडने का ढंग है; कमजोरी को तलवार से पूरा कर लेता है। इसलिए आदमी जितना कमजोर होता गया है, उतने ही उसके शस्त्र मजबूत होते चले गए है। अब आज तो लड़ने के लिए कमजोर और ताकत का कोई सवाल ही नही; एटम बम गिराना हो, बच्चा भी गिरा दे सकता है। एक बटन दबा देगा हवाई जहाज में से, एटमबम गिर जाएंगे। जिस आदमी ने एटम गिराया हिरोशिमा, नागासाकी पर, वह कोई बलशाली आदमी थोडी था; साधा-रण आदमी ! और एक लाख आदमी क्षण में मार डाले ! यह कमजोर की बात हो गई।

महावीर कहते हैं, जो जितना ही योद्धा होता जाएगा उतने ही शस्त्र छोड देगा; उसका खुद होना ही पर्याप्त है। फिर वह मारेगा भी नही, क्योंकि मारने की भाषा भी कमजोर की भाषा है। तुम दूसरे को मिटाना चाहते हो क्योकि तुम दूसरे से डरते हो – कही उसे जीवित छोड दिया, हानि न करे, कही तुम्हें न मार डाले ! तुम उसी को मारते हो जिससे तुम्हें डर है कि कही तुम्हारी मौत न आ जाए। महा-वीर ने कहा, वह भी कमजोर की भाषा है, हम किसी को मारेंगे नहीं। अगर कोई मारने भी आएगा तो हम मरने को राजी रहेंगे, भागेंगे नही, लड़ेंगे भी नही।

साधारणत. दो उपाय हैं: जब भी तुम पे कोई हमला करे तो या तो भागो या जूझो। दोनों ही कमजोर के हैं। जो बहुत कमजोर है, वह भाग जाता है; जो उतना कमजोर नहीं है, वह लड़ता है। लेकिन हैं दोनों ही कमजोर।

महावीर कहते हैं, जो सब में कमजोरी के पार हो गया, अभय हो गया, वह न तो भागता है न लड़ता है। वह कहता है, 'खड़े हैं! हम यहीं खड़े हैं। तुम्हें मारना है मार डालो।' वह मर जाता है, लेकिन उसके हृदय में हिंसा का भाव नही उठता। वह मर जाता है, लेकिन उसके हृदय में प्रतिहिंसा नहीं उठती। यहां एक बात और समझ लें, क्योंकि फिर सूत्रों को समझना आसान होता जाएगा।

जब परमात्मा ने सोचा कि अकेला हूं, थक गया हूं, बहुत हो जाऊं, तो जीवन पैदा हुआ। निश्चित ही महावीर मृत्यु का साधन करेंगे। उलटे लौटना है। तो जिस तरह परमात्मा ने जीवन के धागे फैलाए थे, उसी तरह उनको मृत्यु के धागे फैलाने है, या जीवन के धागे काटने हैं। वृक्ष खड़ा है, तो वासना की जड़ें फैलती हैं पृथ्वी में, तो ही खड़ा है। रस लेता है, आकाश में फैलाता है शाखाओं को, सूरज की किरणें पीता है। वृक्ष को मरना हो, वृक्ष को सिकुड़ना हो, बीज में डूबना हो, वापिस लौटना हो, तो फिर जड़ों को खींच लेगा, फिर शाखाओं को झुका लेगा। क्योंकि फिर सूर्य की ऊर्जा की कोई जरूरत न रही। फिर पृथ्वी के रस की कोई जरूरत न रही।

महावीर के सारे सूत्र एक गहन अर्थ में आत्मघात के सूत्र हैं। इसलिए तुम चकित होओगे कि महावीर अकेले जाग्रत पुरुष हैं जिन्होने अपने संन्यासी को आत्मघात की भी आज्ञा दी है। दुनिया में किसी ने नही दी। आत्मघात की भी आज्ञा! दुनिया का कोई कानून और दुनिया का कोई शास्त्र स्वीकार नहीं करता कि आदमी को हक है कि वह मरना चाहे तो मर जाए, महावीर स्वीकार करते है! करना ही पडेगा। यह तर्कयुक्त है, क्योकि वे सिकुडने की तरफ जा रहे हैं, लौट रहे हैं वापिस, तो जीवन के सब तरफ के संबंध तोड देने है। अगर कोई यह भी चाहे कि मुझे पूरे संबंध अभी छोड़ देने हैं, तो कौन दूसरा उसे रोकने का हकदार है! महावीर ने आखिरी स्वतंत्रता आदमी को दी है कि वह आत्मघात करना चाहे तो भी निर्णायक स्वयं है। अगर वह मरना चाहे तो भी हक है उसका! मृत्यु मनुष्य का जन्म-सिद्ध अधिकार है। लेकिन ये सब बातें संगत हैं उनके साथ। और उनके सारे सूत्र, कैसे जीवन से हमारे सम्बन्ध छिन्न-भिन्न हो जाएं, कैसे यह फैलाव बन्द हो जाए, कैसे हम वापिस घर की तरफ लौट पड़ें, इसके ही सूत्र है। यह सारा शास्त्र मृत्यु का शास्त्र है।

तबीबो से मैं क्या पूछूं इलाजे दर्दे-दिल
मरज जब जिन्दगी खुद हो तो फिर उसकी दवा क्या है।

महावीर के लिए जीवन ही रोग है। और रोग तो गौण हैं। और रोग तो मूल रोग की छायाएं हैं। जीवन ही रोग है। जीवन ही बंधन है। उसी से मुक्त हो जाना है।

तो महावीर का जो मोक्ष है, वह महामृत्यु है — जहां तुम बिलकुल ही मिट गए,

हो; जहां कुछ भी नहीं बचा; जहां परम शून्य अवतरित होता है।

अब हम सूत्रों को लें :

महावीर ने कहा है, 'जो तुम अपने लिए चाहते हो वही दूसरों के लिए भी चाहो। और जो तुम अपने लिए नही चाहते, वह दूसरों के लिए भी मत चाहो। यही जिन शासन है। तीर्थंकर का यही उपदेश है।'

समझें। साधारणत: तुम जो अपने लिए चाहते हो, वह तुम दूसरों के लिए नहीं चाहते; क्योंकि फिर तो अपने लिए चाहने का कोई अर्थ ही न रहा। तुम एक महल बनाना चाहते हो अपने लिए, तो बहुत गहरे में तुम पाओगे कि तुम चाहते हो कि दूसरा कोई ऐसा महल न बना ले, अन्यथा मजा ही गया। अगर सभी के पास महल हों तो तुम्हारे पास महल होने का अर्थ ही क्या रहा! तुम एक सुन्दर स्त्री चाहते हो कि सुन्दर पुरुष चाहते हो, तो तुम भीतर यह भी चाहते हो कि ऐसी सुन्दर स्त्री किसी और को न मिल जाए। अन्यथा कांटा चुभेगा। तुम ऐसी सुन्दर स्त्री चाहते हो जो बस तुम्हारी हो, और वैसी सुन्दर स्त्री किसी के पास न हो। सुन्दर स्त्री में भी तुम अपने अहंकार को ही भरना चाहते हो। अपने महल में भी अहंकार को भरना चाहते हो।

तुम जो अपने लिए चाहते हो, वह तुम दूसरे के लिए कभी नही चाहते। उससे विपरीत तुम दूसरे के लिए चाहते हो। अपने लिए सुख, दूसरे के लिए दुख। लाख तुम कुछ और कहो, लाख तुम ऊपर से कहो कि नहीं, ऐसा नहीं है, हम सब के लिए सुख चाहते हैं—लेकिन जरा गौर से खोजना! सब के लिए सुख तो तुम तभी चाह सकते हो जब तुमने जीवन से अपनी जड़ें तोडनी शुरू कर दीं, उसके पहले नहीं। क्योंकि जीवन प्रतिस्पर्धा है, प्रतियोगिता है, महत्त्वाकांक्षा है, पागलपन है, छीन-झपट है, गलाघोंट संघर्ष है।

बडी पुरानी कहानी है कि एक आदमी ने बडी प्रार्थना-पूजा की और किसी देवता को प्रसन्न कर लिया। वर्षों की साधना के बाद देवता बोला और देवता ने कहा, 'क्या चाहते हो?' उसने कहा, 'जो भी मैं मांगू वह मुझे मिल जाए।' देवता ने कहा, 'निश्चित मिलेगा। लेकिन एक शर्त है: तुमसे दुगना तुम्हारे पड़ोसियों को भी मिल जाएगा।' बस सब पूजा-प्रार्थना व्यर्थ हो गई। वह आदमी उदास हो गया। यह भी क्या आशीर्वाद हुआ! क्योंकि मजा ही इसमें था कि जो मेरे पास हो, मेरे पड़ोसियों के पास न हो। आशीर्वाद तो मिल गया। आशीर्वाद में कोई कमी न थी। देवता ने कहा, जो तू चाहेगा उसी क्षण पूरा होगा। इसमें कुछ रुका-वट न थी। लेकिन मन सुखी न हुआ, प्रसन्न न हुआ, फूल खिले नहीं। बड़ा उदास हो गया। बडे उदास मन से देखा कि देखें, वरदान काम भी करता है या नहीं। यह कोई वरदान हुआ! यह तो खाली, चली हुई कारतूस जैसा वरदान हुआ। इसमें कुछ रस ही न रहा।

फिर भी उसने कहा, देखें शायद...। कहा कि एक महल बन जाए। एक महल बन गया। लेकिन जब बाहर आ के देखा तो बड़ा मुश्किल में पड़ गया : दो, दो महल बन गए थे पड़ोसियों के। छाती पीट ली। यह कोई वरदान हुआ ! यह तो अभिशाप हो गया। इससे तो पहले ही भले थे। अपनी ही मेहनत से कर लेते। लेकिन उसने रास्ते खोज लिये। आदमी की हिंसा बड़ी गहन है ! उसने कहा, 'ठीक है, देवता धोखा दे गये, हम भी रास्ता खोज लेंगे !' मिला होगा वकीलों से, सलाह ली होगी। किसी वकील ने सुझा दिया कि इसमें कुछ घबड़ाने की बात नहीं है। जहां-जहां कानून हैं वहां-वहां निकलने का उपाय है। तू ऐसा कर, तू जा के मांग कि मेरे घर के सामने दो कुएं खुद जाएं। उसने कहा, 'इससे क्या होगा ?' उसने कहा, 'तू पहले कोशिश तो कर।' दो कुएं उसके घर के सामने खुद गए, पड़ोसियों के सामने चार-चार कुए खुद गए। वकील ने कहा, 'अब तू प्रार्थना कर कि मेरी एक आंख फूट जाए।' तब समझा वह राज। उसने कहा, अरे, मुझे खयाल में ही न आया ! एक आंख फोड़ने का वरदान मांग लिया, पड़ोसियों की दोनों आंखें फूट गईं। अब अंधे पड़ोसी और चार-चार कुएं घर के सामने : जो हुआ वह हम समझ सकते है।

लेकिन सुख हमारा दूसरे के दुख में है। और जीवन हमारा दूसरे की मौत में है। और हमारी सारी प्रसन्नता किसी की उदासी पे खड़ी है। हमारा सारा धन दूसरे की निर्धनता में है। लाख तुम दूसरे के दुख में सहानुभूति प्रगट करो, जब भी दूसरा दुखी होता है, कहीं गहरे में तुम सुखी होते हो। और तुम्हारी सहानुभूति में भी तुम्हारे सुख की भनक होती है।

तुमने कभी पकड़ा अपने को सहानुभूति प्रगट करते हुए ? किसी का दिवाला निकल गया, तुम सहानुभूति प्रकट करने जाते हो। कहते हो, बड़ा बुरा हुआ ! लेकिन कभी अपना चेहरा आईने में देखा, जब तुम कहते हो, बड़ा बुरा हुआ, तो कैसी रसधार बहती है ! तुम कभी गए जब किसी को लाटरी मिल गई हो, तब तुम कहने गए कि बहुत अच्छा हुआ ?

जब कोई सुखी होता है तब तुम अपना सुख प्रगट करने नहीं जाते; तब तो ईर्ष्या पकड़ती है, जलन पकड़ती है। अंगारे छाती में बैठ जाते हैं। फफोले उठ आते हैं भीतर, घाव महसूस होते हैं, पीडा होती है कि फिर कोई आगे निकल गया। तब तो तुम दूसरी बातें करते हो। तुम तो कहते हो, धोखेबाज है, बेईमान है। तब तो तुम परमात्मा से कहते हो, 'यह क्या हो रहा है तेरे जगत में ? अन्याय हो रहा है ! यहां पापी और व्यभिचारी जीत रहे हैं और पुण्यात्मा हार रहे हैं।' पुण्यात्मा यानी तुम ! पापी यानी वे सब जो जीत रहे हैं !

तुमने कभी खयाल किया, जब भी कोई जीत जाता है, तुम अपने को समझाते हो, सांत्वना देते हो कि जरूर किसी गलत ढंग से जीत गया होगा, कोई बेईमानी की

होगी, रिश्वत दी होगी, चालबाजी की होगी, कोई रिश्तेदारी खोज ली होगी कहीं।

एक महिला मेरे पास आई। उसका बच्चा फेल हो गया। वह कहने लगी कि बड़ा अन्याय हो रहा है। ये सब शिक्षक और यह सब शिक्षा की व्यवस्था सब धोखेबाज, बेईमान है। जिन्होंने शिक्षकों को रिश्वतें खिला दीं, वे तो सब उत्तीर्ण हो गए, मेरा लड़का फेल हो गया। मैंने कहा, इसके पहले भी तेरा लड़का पास होता आया था, तब तू कभी भी न आई कहने कि मेरा लड़का पास हो गया, जरूर किसी-न-किसी ने रिश्वत खिलाई होगी। जब तेरा लड़का पास होता है, तब अपनी मेहनत से पास होता है; जब दूसरों के लड़के पास होते हैं, तब रिश्वत से पास होते हैं!

तुमने कभी देखे ये दोहरे मापदंड? जब तुम सफल होते हो तो होना ही था। तुम प्रतिभाशाली हो। और जब दूसरा सफल होता है, बेईमान! कहीं कोई धोखे का रास्ता निकाल लिया। कोई चालबाजी कर गया। जब तुम हारते हो तो अपने पुण्यात्मा होने की वजह से हारते हो। और जब दूसरा, हारता है तो पापी है, अपने पापकर्मों की वजह से हारता है। तुमने कभी ये दोहरे मापदड देखे? पर यह मापदंड ठीक हैं फैलाव के रास्ते पर, क्योंकि फैलाव यानी प्रतिस्पर्धा। फैलाव यानी गलाघोट संघर्ष। फैलाव यानी लड़ना है दूसरे से। एक-एक इंच जमीन के लिए लड़ना है। एक-एक इंच पद के लिए लड़ना है। एक-एक इंच धन के लिए लड़ना है।

महावीर इस पहले सूत्र में ही तुम्हें मौत का पहला पाठ देते हैं। वे कहते हैं, जो तुम अपने लिए चाहते हो, वही दूसरे के लिए भी चाहो। चाह मरेगी ऐसे। फिर चाह जी न सकेगी। चाह की जड़ ही काट दी। जो तुम अपने लिए चाहते हो, वही दूसरों के लिए भी चाहो।

जरा सोचो। तुम चाहते थे कि एक महल बन जाए– दूसरों के लिए भी! उस चाह में ही तुम पाओगे कि तुम्हारे महल बनाने की चाह गिर गई। तुम चाहते थे, ऐसा हो वैसा हो, वही सबको भी हो जाए – अचानक तुम पाओगे : पैरों के नीचे से किसी ने जमीन खींच ली।

और जो तुम अपने लिए नहीं चाहते, वह दूसरों के लिए भी मत चाहो। लोगों ने अपने लिए तो स्वर्ग की कल्पनाएँ की है, और दूसरों के लिए नर्क का इंतजाम किया है। जब भी तुम सोचते हो अपने लिए तो स्वर्ग में सोचते हो, कल्पना करते हो। नहीं, अगर तुम अपने लिए नर्क नहीं चाहते तो दूसरे के लिए भी मत चाहो।

क्यों महावीर इस सूत्र को इतना मूल्य देते हैं? यह उनका आधार-सूत्र है। यह बड़ा सीधा और सरल दीखता है ऊपर, लेकिन इसका जाल बहुत गहरा है और सूत्र बड़ी गहराई में तुम्हारे अचेतन को रूपांतरित करने वाला है। अगर तुम एक सूत्र को भी पालन कर लो तो तुम्हें पूरा धर्म उपलब्ध हो जाएगा। अपने लिए वही चाहो जो तुम दूसरे के लिए भी चाहते हो और जो तुम अपने लिए नहीं चाहते वह

दूसरे के लिए भी मत चाहो – अचानक तुम पाओगे, तुम्हारे जीवन की आपाधापी खो गई। अचानक तुम पाओगे, प्रतिस्पर्धा मिट गई, महत्त्वाकांक्षा को जगह न रही, बीज सूखने लगे, जलने लगे।

यही जिनशासन है।

एतियगं जिणसासणं। यही तीर्थंकर का उपदेश है। जिन्होंने जीता है स्वय को, उनका यह उपदेश है।

'अध्रुव, अशाश्वत और दुखबहुल ससार में ऐसा कौन-सा कर्म है जिससे मैं दुर्गति में न जाऊं?'

महावीर पूछते है, अध्रुव, अशाश्वत...। सभी चीजें प्रतिक्षण बदली जाती हैं। यहां कुछ भी तो शाश्वत नही। पानी पर खीची लकीर जैसा है जीवन। यहा तुम खीच भी नहीं पाते लकीर कि मिट जाती है। यहां तुम बना भी नही पाते महल कि विदा होने का क्षण आ जाता है। साज-सामान जुटा पाते हो, गीत गा भी नही पाते कि विदाई उपस्थित हो जाती है। जीवन की तैयारी ही करने में जीवन बीत जाता है और मौत आ जाती है।

'अध्रुव, अशाश्वत, दुखबहुल ...।' और जहां दुख ज्यादा है और सुख तो केवल आशा है जहा; जहां सुख के केवल सपने हैं, सत्य तो जहा दुख है – यहा ऐसे इस जगत में कौन-सा ऐसा कर्म है, जिससे मैं दुर्गति मे न जाऊं? क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि व्यर्थ लकीरें खीचने में मै अपने लिए दुर्गति बना रहा होऊ। हम बना रहे हैं। व्यर्थ की आकांक्षा में हम अपने लिए ऐसा जाल बुन रहे हैं, जैसे कभी-कभी मकड़ा जाल बुनता है और खुद ही उसमें फंस जाता है। और जो हम बुन रहे हैं उससे कुछ मिलने का नही है। उससे कुछ खो जाता है।

धन पाने के लिए लोग कितना दौड़ते हैं! पा के भी क्या पाते हैं? क्या मिल पाता है? हाथ तो खाली के खाली रह जाते हैं। मरते वक्त निर्धन के निर्धन ही रहते हैं। मगर सारा जीवन गंवा देते हैं। वही जीवन ध्यान भी बन सकता था, जिसे तुमने धन बनाया। वही जीवन-ऊर्जा ध्यान भी बन सकती थी, जिसे तुमने धन में गंवाया। वही जीवन-ऊर्जा तुम्हारे जीवन का आत्यंतिक समाधान बन सकती थी, समाधि बन सकती थी, और तुम व्यर्थ सामान जुटाने में लगे रहे। और सामान भी ऐसा जुटाया जो मौत के क्षण में साथ न ले जा सकोगे, मौत जिसे छीन लेगी। और सामान भी ऐसा जुटाया कि न मालूम कितनों को दुख दिया, न मालूम कितनों की पीड़ा निर्मित की, न मालूम कितनो के लिए नर्क बनाया। इतना दुख दे के तुम सुखी हो कैसे सकोगे? इतना दुख तुम पर लौट-लौट आएगा, अनंत गुना हो कर बरसेगा। क्योंकि जगत तो एक प्रतिध्वनि है। तुम गीत गाओ, तुम्हारा ही गीत प्रतिध्वनित हो कर तुम पे बरस जाता है। तुम गालियां बको, तुम्हारी ही गालियां लौट कर तुम पे बरस जाती हैं, छिद जाती हैं।

यह जगत तो एक प्रतिध्वनि मात्र है।

तो महावीर कहते हैं, मौलिक सवाल यह है कि मैं कौन-सा कर्म करूं ! इस दुखबहुल संसार में, इस अशाश्वत संसार में, जहां सभी कुछ क्षण-क्षण में बदला जा रहा है, जहां न तो वस्तुओं का भरोसा है, न देह का भरोसा है, न मन का भरोसा है।

मुझे दिल की धड़कनों का नही एतिबार 'माहिर'
कभी हो गईं शिकवे, कभी बन गईं दुआएं।

यहां अपने ही दिल का भरोसा नही है। क्षण भर में प्रसन्न है, क्षण भर में रोता है। क्षण भर पहले दुआएं दे रहा था, क्षण भर बाद शिकायतो से भर गया। क्षण भर पहले ऐसा प्रकाशोज्ज्वल मालूम होता था और क्षण भर बाद गहन अंधकार से घिर गया। यहां अपने ही दिल का भरोसा नही, जो इतने करीब है ! दिल यानी तुमसे जो करीब से करीब है। उसका भी भरोसा नही है। यहां किस और चीज का भरोसा करें !

कलियों के जिगर अफसुर्दा हैं कांटो की जबानें सूखी हैं
हम बाग के धोखे में शायद जंगल के किनारे आ बैठे।

—कही कुछ धोखा हो गया है। सभी लोग सुख चाहते हैं, मिलता दुख है। सभी लोग फूल मागते हैं, मिलते कांटे हैं। सभी लोग आनंद के लिए आतुर और व्यथित, पाते संताप हैं।

कलियों के जिगर अफसुर्दा है कांटों की जबानें सूखी हैं
हम बाग के धोखे मे शायद जंगल के किनारे आ बैठे।

कही कुछ भूल हो गई है। कही कोई बुनियादी चूक हो गई है। हम शायद समझ नही पा रहे। हम शायद रेत से तेल निकालने की चेष्टा में संलग्न हैं, अन्यथा इतना दुख कैसे होता ? सभी सुख चाहते हों, इतना दुख कैसे होता ? सभी लोग अमृत चाहते हो और मौत ही घटती है, अमृत तो घटता दिखाई नही पड़ता। सभी लोग चाहते है कि नाचते, प्रसन्न होते; लेकिन रसधार रोज-रोज सूखती चली जाती है। न नाच है जीवन मे न उमंग है, न कोई उत्सव है।

'ऐसा कौन-सा कर्म करूं, जिससे इस दुर्गति से बचू !'

क्या करूं ? क्या करना मुझे इस उपद्रव के बाहर ले जाएगा ?

'ये काम-भोग क्षण भर सुख और चिरकाल तक दुख देने वाले हैं; बहुत दुख और थोड़ा सुख देने वाले हैं; ससार-मुक्ति के विरोधी, और अनर्थों की खान हैं।'

थोड़ा-सा सुख ! ऐसे ही जैसे कोई मछलियों को पकड़ने जाता है, कांटे पे आटा लगा देता है। मछलियां आटे के लिए आती हैं, काटे के लिए नहीं; मिलता कांटा है। ऐसा ही लगता है कि जैसे कोई मछुआ मजाक किए जा रहा है। सभी दौड़ते हैं सुख के लिए और अखीर में पाते हैं, कांटे छिद गए।

तुमने भी कितनी बार सुख नहीं चाहा ! पाया है ? महावीर कहते हैं, शायद थोड़ा-सा आभास मिला हो, प्रथम क्षण में, शायद उल्लास के क्षण में कि मिल गया, तुमने अपने को धोखा दे लिया हो; पर जल्दी ही झूठी परतें उघड़ जाती हैं। जल्दी ही पता चल जाता है ।

मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन अपने दफ्तर में अपने मालिक से बोला कि शादी की है, हनीमून के लिए पहाड़ जाना चाहता हू। दो सप्ताह, तीन सप्ताह की छुट्टी । मालिक ने कहा, हनीमून कितने दिन चलेगा ? एक सप्ताह, दो सप्ताह, तीन सप्ताह ! उतनी छुट्टी ले लो। मुल्ला ने कहा, आप ही बता दें। मालिक ने कहा, मैंने तुम्हारी पत्नी को अभी देखा ही नही, मै बताऊँ कैसे कितनी देर चलेगा ?

देर-अबेर हो सकती है, पर जल्दी ही घड़ी आ जाती है, जब प्रेम राख हो जाता है। कोई थोड़ी देर तक अपने को भुलाए रखता है, कोई थोड़ी जल्दी जाग जाता है। पर देर-अबेर सभी जाग जाते है। इस ससार मे जो भी प्रेम है, वह चाहे धन का हो, चाहे रूप का हो, चाहे पद का हो, वह देर-अबेर उखड़ ही जाता है। असलियत कब तक छिपाए छिपेगी ? असलियत दुख है। सुख तो ऊपर का रंग-रोगन है, जरा वर्षा पड़ी, बह गया रंग-रोगन। वह तो कागज के फूलों जैसा है, जरा वर्षा पड़ी, बिखर गये, गल गए ।

'ये काम-भोग क्षण भर सुख और चिरकाल तक दुख देने वाले है, बहुत दुख और थोड़ा सुख देने वाले है; संसार-मुक्ति के विरोधी, ...' संसार से मुक्त होने के विरोधी है, क्योकि इन्ही की आशा में तो लोग अटके रहते हैं, क्यू लगाए खड़े रहते है : अब मिला, अब मिला ! अब तक नही मिला, मिलता ही होगा ! लोग राह ही देखते रहते हैं, बिना यह सोचे कि जिस क्यू में खड़े है उसमें किसी को भी कभी मिला ? माना कि कुछ लोग क्यू में बिलकुल आगे पहुच गए है – कोई सिकन्दर– मगर सिकन्दर से भी तो पूछो, मिला ?

सिकन्दर मर रहा था तो उसने अपने चिकित्सकों से कहा कि मै अपनी मा को बिना देखे नही मरना चाहता हूं। लेकिन मा दूसरे गाव में थी। या तो वह आए या सिकन्दर वहां तक पहुंचे। चौबीस घंटे की कम से कम जरूरत थी। और सिकन्दर ने कहा कि मैं सब कुछ देने को तैयार हूं; जो भी तुम्हारी फीस हो, ले लो, लेकिन चौबीस घटे मुझे और जिला लो; जिससे मैं पैदा हुआ हू उससे विदा तो ले लेने दो; मां को देख कर जाना चाहता हूं। चिकित्सकों ने कहा, असंभव है। सिकन्दर ने कहा, अपना आधा साम्राज्य दे दूगा। उदास खड़े चिकित्सक ! उसने कहा, पूरा ले लो। काश, मुझे पहले पता होता कि पूरा साम्राज्य दे के भी एक सांस नही मिलती, तो अपने जीवन भर की सासें इस साम्राज्य के लिए क्यों खराब करता !

लेकिन इसी आपा-धापी में, इसी दौड़-धूप में सब गया।

एक-एक सास इतनी बहुमूल्य है, तुम्हें पता नहीं। इसलिए महावीर कहते हैं, सोच लो, कहां लगा रहे हो अपनी श्वासों को! जो मिलेगा, वह पाने योग्य भी है? कही ऐसा न हो कि गंवाने के बाद पता चले कि जो मूल्य दिया था, बहुत ज्यादा था, और जो पाया वह कुछ भी न था। असली हीरों के धोखे में नकली हीरे ले बैठे!

कम से कम मौत से ऐसी मुझे उम्मीद नही
जिन्दगी तूने तो धोखे पे दिया है धोखा!

जिन्दगी सिलसिला है : धोखे पे धोखा।

'बहुत खोजने पर भी जैसे केले के पेड़ में कोई सार दिखाई नही देता, वैसे ही इन्द्रिय-विषयो में भी कोई सुख दिखाई नहीं देता।'

लगता है – लगना है, मूर्च्छा के कारण।

कभी किसी कुत्ते को देखा, सूखी हड्डी को चबाते! चबाता है कितने रस से! तुम बैठे चकित भी होओगे कि सूखी हड्डी मे चबाता क्या होगा! सूखी हड्डी में कोई रस तो है नहीं। सूखी हड्डी में चबाता क्या होगा! लेकिन होता यह है कि जब सूखी हड्डी को कुत्ता चबाता है तो उसके ही जबड़ो, जीभ से, तालू से, सूखी हड्डी की टकराहट से लहू बहने लगता है। उसी लहू को वह चूसता है। सोचता है, हड्डी से रस आ रहा है। हड्डी से कही रस आया है! अपना ही खून पीता है। अपने ही मुंह में घाव बनाता है। भ्रांति यह रखता है कि हड्डी से रस आता है। हड्डी से खन आ रहा है। जिन्होंने भी जाग के देखा है, थोड़ा अपना मुह खोल के देखा है, उन्होंने यही पाया कि इन्द्रिय-सुख सूखी हड्डी जैसे हैं, उनसे कुछ आता नही। अगर कुछ आता भी मालूम पडता है तो वह हमारी ही जीवन की रसधार है। और वह घाव हम व्यर्थ ही पैदा कर रहे हैं। जो खून हमारा ही है, उसी को हम घाव पैदा कर-कर के वापिस ले रहे हैं।

काम-भोग में जो सुख मिलता है, वह सुख तुम्हारा ही है जो तुम उसमें डालते हो। वह तुम्हारे काम-विषय से नही आता। स्त्री को प्रेम करने में, पुरुष को प्रेम करने में तुम्हे जो सुख की झलक मिलती है, वह न तो स्त्री से आती है न पुरुष से आती है, तुम्ही डालते हो। वह तुम्हारा ही खून है, जो तुम व्यर्थ उछालते हो। पर भ्रांति होती है कि सुख मिल रहा है। कुत्ते को कोई कैसे समझाए! कुत्ता मानेगा भी नही। कुत्ते को इतना होश नही। लेकिन तुम तो आदमी हो! तुम तो थोड़े होश के मालिक हो सकते हो! तुम तो थोड़े जाग सकते हो!

'बहुत खोजने पर जैसे केले के पेड़ में कोई सार दिखाई नही देता, वैसे ही इन्द्रिय-विषयों में भी कोई सुख दिखाई नही देता।'

'खुजली का रोगी जैसे खुजलाने पर दुख को भी सुख मानता है, वैसे ही मोहातुर मनुष्य काम-जन्य दुख को सुख मानता है।'

खुजली हो जाती है, जानते हो, खुजलाने से और दुख होगा, लहू बहेगा, घाव हो जाएंगे, खुजली बिगड़ेगी और, सुधरेगी न। सब जानते हुए फिर भी खुजलाते हो। एक अदम्य वेग पकड़ लेता है खुजलाने का। जानते हुए, समझते हुए, अतीत के अनुभव से परिचित होते हुए, पहले भी ऐसा हुआ है, बहुत बार ऐसा हुआ है; फिर भी कोई तमस्, कोई मोह-निद्रा, कोई अंधेरी रात, कोई मूर्च्छा मन को पकड़ लेती है, फिर भी तुम खुजलाए चले जाते हो !

तुमने कभी खयाल किया, लोग जब खुजली को खुजलाते हैं तो बड़ी तेजी से खुजलाते हैं। क्योंकि वे डरते है। उन्हें भी पता है कि अगर धीरे-धीरे खुजलाया तो रुक जाएंगे। बड़े जल्दी खुजला लेते हैं, अपने को ही धोखा दे रहे हैं। मांस निकल आता है, लहू बह जाता है। पीड़ा होती है, जलन होती है। फिर वही अनुभव। लेकिन दुबारा फिर खुजली होगी तो तुम भरोसा कर सकते हो कि तुम न खुजलाओगे ?

कितनी बार तुमने क्रोध किया, कितनी बार क्रोध से तुम विषाद से भरे, कितनी बार तुम काम में गए, कितनी बार हताश वापिस आए, कितनी बार आकांक्षा की और हर बार आकाक्षा टूटी और बिखरी, कितनी बार स्वप्न संजोए--हाथ क्या लगा ? बस राख ही राख हाथ लगी। फिर भी, दुबारा जब आकांक्षा पकड़ेगी, दुबारा जब कोध आएगा, दुबारा जब काम का वेग उठेगा, तुम फिर भटकोगे।

मनुष्य अनुभव से सीखता ही नहीं। जो सीख लेता है, वही जाग जाता है। मनुष्य अनुभव से निचोड़ता ही नहीं कुछ। तुम्हारे अनुभव ऐसे हैं जैसे फूलों का ढेर लगा हो, तुमने उनकी माला नहीं बनाई, तुमने फूलो को किसी एक धागे में नहीं पिरोया कि तुम्हारे सभी अनुभव एक धागे में संग्रहीत हो जाते और तुम्हारे जीवन में एक जीवन-सूत्र उपलब्ध हो जाता, एक जीवन-दृष्टि आ जाती।

अनुभव तुम्हें भी वही हुए हैं जो महावीर को। अनुभव में कोई भेद नही। तुमने भी दुख पाया है, कुछ महावीर ने ही नही। तुमने भी सुख में धोखा पाया है, कुछ महावीर ने ही नही। फर्क कहां है ? अनुभव तो एक से हुए हैं। महावीर ने अनुभवों की माला बना ली। उन्होने एक अनुभव को दूसरे अनुभव से जोड़ लिया। उन्होंने सारे अनुभवो के सार को पकड़ लिया। उन्होंने उस सार का एक धागा बना लिया। उस सूत्र को हाथ में पकड़ के वे पार हो गए। तुमने अभी धागा नही पिरोया। अनुभव का ढेर लगा है, माला नहीं बनाई। माला बना लेना ही साधना है। उसी की तरफ ये इशारे हैं।

'खुजली का रोगी जैसे खुजलाने पर दुख को भी सुख मानता है वैसे ही मोहातुर मनुष्य काम-जन्य दुख को सुख मानता है।'

थोड़ा समझो। हमारी मान्यता से बड़ा फर्क पड़ता है। हमारी मान्यता से, हमारी व्याख्या से बहुत फर्क पड़ता है।

तुमने कभी खयाल किया ? एक स्त्री को तुम आलिंगन कर लेते हो, सोचते हो, सुख मिला। सोचने का ही सुख है। ऐसा ही तो सपने में भी तुम सोच लेते हो, तब भी सुख मिल जाता है। सपने में कोई स्त्री तो नहीं होती, तुम्हीं होते हो। सपने में कोई स्त्री तो नहीं होती, तुम्हारी ही धारणा होती है। हो सकता है, अपनी ही दुलाई को छाती से चिपटाए पड़े हो, सपना देख रहे हो। जाग के हंसते हो कि कैसा पागलपन है! लेकिन सपने में भी उतना ही सुख मिल जाता है; शायद थोड़ा ज्यादा ही मिल जाता है, जितना कि जागने की स्त्री से मिलता है। क्योंकि जागते हुए स्त्री की मौजूदगी कुछ बाधा भी पैदा करती है। सपने में तो कोई भी नहीं, तुम अकेले ही हो, तुम्हारा ही सारा भावनाओं का खेल है। सपने में तुम सुख ले लेते हो स्त्री को आलिंगन करने का, तो थोड़ा सोचो तो! सुख तुम्हारी ही धारणा का होगा। जागते मे भी इतना सुख नहीं मिलता, क्योकि जागते में एक जीवित स्त्री उस तरफ खड़ी है। जीवित स्त्री में पसीने की बदबू भी है। जीवित स्त्री में काटे भी हैं। जैसे तुममें हैं, ऐसे उसमें हैं। जीवित स्त्री की मौजूदगी थोड़ी बाधा भी डालती है। दूसरे व्यक्ति की मौजूदगी परतत्र भी करती है। परतंत्रता की पीड़ा भी होती है। स्त्री हो सकता है कि अभी राजी न हो कि आलिंगन करो, हाथ से हटा दे। लेकिन सपने में तो कोई तुम्हें हाथ से न हटा सकेगा।

एक आदमी एक मनोवैज्ञानिक के पास गया और उसने कहा कि मेरी बड़ी मुसीबत है, मेरी सहायता करें। मैं रात सपना देखता हूँ कि हजारों सुंदरियां नग्न मेरे चारो तरफ नाचती है। मनोवैज्ञानिक अपनी कुर्सी से टिका बैठा था, सम्हल के बैठ गया। उसने कहा, 'यह परेशानी है ? अरे पागल! और क्या चाहता है ? इसमें परेशानी कहां है ? तू अपना राज बता, कैसे तू यह सपना पैदा करता है ? क्या तेरी फीस है, बोल!'

उस आदमी ने कहा, 'परेशानी यह है कि सपने में मैं भी लड़की होता हूं। यही झंझट है। मुझे किसी तरह सपने में आदमी रहने दो। यही पूछने आया हूं।'

सपनों में सुख मिल जाता है। सपने में तुम कभी सम्राट हुए ? जरूर हुए होओगे। कोई कमी नही रह जाती।

चीन में एक बड़ा सम्राट हुआ। उसका एक ही लड़का था। वह मरणासन्न पड़ा था। वह उसके पास तीन दिन से बैठा था, तीन रात से बैठा था। सारी आशा वही था। सारी महत्त्वाकाक्षा वही था। फिर झपकी लग गई उसकी; तीन दिन का जागा हुआ सम्राट, बैठे-बैठे सो गया। उसने एक सपना देखा कि उसके बारह लड़के हैं। एक-से-एक सुन्दर, बलिष्ठ, प्रतिभाशाली, मेधावी। बड़ा उसका स्वर्ण से बना हुआ महल है। महल के रास्ते पर हीरे-जवाहरात जड़े हैं। बड़ा उसका साम्राज्य है। वह चक्रवर्ती है। तभी बाहर जो बेटा बिस्तर पे पड़ा था, वह मर गया। पत्नी चीख मार के चिल्लाई, सपना टूटा और सम्राट ने सामने मरे हुए

लड़के को पड़ा देखा। पत्नी को चीखते देखा। पत्नी जानती थी कि पति को बड़ा सदमा पहुंचेगा। घबड़ा गई, क्योंकि पति देखता ही रहा। न केवल रोया नहीं, हंसने लगा। पत्नी समझी कि पागल हो गया। उसने कहा, 'यह तुम्हें क्या हुआ? तुम हंस क्यों रहे हो?'

उसने कहा, 'मैं हस रहा हूँ इसलिए कि अब किसके लिए रोऊं! अभी बारह सपने में लड़के थे, बड़े सुन्दर थे, यह कुछ भी नही! बड़े स्वस्थ बलिष्ठ थे। जैसे उनकी मौत कभी आएगी ही न, ऐसे थे। अमृत-पुत्र थे। और बड़ा महल था, यह महल झोपड़ा है! सोने का बना था। राह पर हीरे-जवाहरात लगे थे। तेरी चीख ने सब गड़बड़ कर दिया। न तेरा मुझे पता था, न इस बेटे का मुझे पता था; सपने में तुम ऐसे ही खो गए थे, जैसे अब सपना खो गया। अब मैं सोचता हूँ, किसके लिए रोना! उन बारह के लिए रोऊं पहले कि इस एक के लिए रोऊं? इसलिए हंसी आती है। हंसी आती है कि रोना व्यर्थ है। हंसी आती है कि वह भी एक सपना था, यह भी एक सपना है। वह आंख-बंद का सपना था; यह आंख-खुली का सपना है।'

तुम जिसे सुख मान लेते हो, वह सुख मालूम पड़ता है। कई दफा दुख को भी तुम सुख मान लेते हो, सुख मालूम पड़ता है। पहली दफा जब कोई सिगरेट पीता है तो सुख नही मिलता, दुख ही मिलता है, खांसी आ जाती है, धुआ सिर में चढ़ जाता है, चक्कर मालूम होता है, घबड़ाहट लगती है। आखिर धुआं ही है—गंदा धुआं है। उसको भीतर ले जाने से सुख कैसे हो सकता है? लेकिन फिर धीरे-धीरे अभ्यास करने से...

रसरी आवत जात है, सिल पर पड़त निशान। फिर घिसते-घिसते रस्सी के अभ्यास करते-करते...करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान। पहले जड़मति थे, अकल न थी, इसलिए धुआ पिया और मजा न आया। फिर बुद्धि आ जाती है अभ्यास से। फिर मजे से पीने लगते हैं। फिर बिना पिए कष्ट मिलने लगता है। शराब पहली दफे पी के देखी, बेस्वाद है, तिक्त है। फिर धीरे-धीरे वही मधुर होने लगती है। शराब जैसी तिक्त वस्तु मधु जैसी मधुर मालूम होने लगती है। अभ्यास..!

तुम अगर अपने जीवन के सुख-दुख की ठीक से छान-बीन करोगे तो तुम पाओगे: जो तुमने सुख मान लिया, सुख; जो तुमने दुख मान लिया, वह दुख।

पूरब, सुदूर पूर्व में कुछ छोटे-छोटे कबीले हैं। वे चुम्बन नहीं करते। उन्हें पता ही न था जब तक वे सभ्यता के सम्पर्क में न आए कि लोग चुम्बन भी करते हैं। और जब उन्होंने देखा कि स्त्री-पुरुष चुम्बन करते हैं तो वे बहुत घबड़ाए, बड़ा वीभत्स उन्हें मालूम हुआ। यह भी कोई बात हुई! ओंठ, झूठे ओंठ, गंदे ओंठ, लार और थूक से सने ओंठ, एक-दूसरे पे रगड़ रहे हैं और कहते हैं, मजा आ रहा है!

उन्होंने कभी सदियों में चुम्बन नहीं लिया। उन्हें पता ही न था। वे जो करते हैं, अगर तुम करोगे तो बहुत हैरान होओगे। वे एक-दूसरे से नाक रगड़ते हैं। तुमने कभी रगड़ी नाक? रगड़ोगे तो पागल मालूम पड़ेगा, यह क्या कर रहे हो! कोई देख न ले! अपनी प्रेयसी से भी नाक न रगड़ोगे, क्योंकि वह भी सोचेगी कि तुम्हारा दिमाग खराब है, नाक रगड़ते हो! लेकिन वह कबीला सदियों से नाक रगड़ता रहा है। वही उनका चुम्बन है। ज्यादा हाईजिनिक! अगर चिकित्साशास्त्रियों से पूछो तो तुमसे बेहतर है। कम से कम नाक ही रगड़ते हैं, कोई कीडों का और कीटाणुओं का आदान-प्रदान तो नही करते। अब चुम्बन में तो कोई लाखों कीटाणुओं का आदान-प्रदान हो जाता है।

मैंने सुना, एक आदमी अपने डाक्टर के पास गया। बड़ा घबड़ाया हुआ था। और उसने कहा कि यह चेचक की बीमारी बड़े जोर से फैल रही है। और मेरे लड़के को भी लग गई है।

डाक्टर ने कहा, 'घबड़ाने की कोई बात नही। फैली है। महाकोप उसका है। सावधान रहो, संक्रामक है, पर घबड़ाने की कोई बात नही। लड़का भी ठीक हो जाएगा।' उसने कहा, ठीक हो जाएगा जब, बात अलग। लड़का मेरी नौकरानी को चूमता है, इससे मुझे घबड़ाहट हो गई है।'

'हम समझे नही।'

उसने कहा कि अब समझाने का क्या है, मैं भी उसको चूम लिया हूँ। और इतना ही नही है...।

फिर भी डाक्टर ने कहा, 'घबड़ाओ मत, ठीक हो जाएगा।'

पर उसने कहा, 'इतना ही मामला नही है, मैंने अपनी पत्नी को भी चूम लिया है।'

डाक्टर घबराया। उसने कहा, 'रुको जी, बकवास बंद करो! पत्नी को भी चूमा है? पहले मैं अपनी जाच करवाऊं, क्योंकि तुम्हारी पत्नी को मैं भी चूम बैठा हूँ!'

अब तक शांत था। बीमारियाँ ... लेन-देन हो रहा है! लोग कह रहे हैं, बड़ा सुख मिल रहा है। चुम्बन जैसा सुख ...! पर कभी तुमने सोचा, कभी जाग के देखा? सुख क्या हो सकता है? तुम भी चौंकोगे, क्योंकि तुमने कभी जाग के सोचा नही, ध्यान नही किया। तुमने जिन-जिन बातो में सुख माना है, उन में फिर से तो विचार करो! फिर से एक बार पुनर्विचार करो। तटस्थ भाव से, वैज्ञानिक दृष्टि से निरीक्षण करो। तुम बहुत हैरान हो जाओगे, तुम्हारे सुख तुम्हारी मान्यताओं के सुख हैं। जो मान लिया, जो पकड़ लिया अचेतन में, वही सुख मालूम हो रहा है। जैसे ही जगोगे, वैसे ही तुम्हारे सुख विदा हो जाएंगे। तुम इस जीवन में दुख ही दुख पाओगे।

महावीर का सारा साधना-शास्त्र इस अनुभूति पर निर्भर है कि तुम्हें जीवन में परम दुख का अनुभव हो जाए।

खुदा की देन है जिसको नसीब हो जाए
हर एक दिल को गमे-जाविदा नहीं मिलता।

—यह जो परम दुख है, यह परमात्मा की अनुकंपा से मिलता है। यह परम दुख, यह स्थायी दुख का बोध कि यहां सब दुख है —' गमे-जविदा '— यह स्थायी गम...

खुदा की देन है जिसको नसीब हो जाए
हर एक दिल को गमे-जाविदा नहीं मिलता।

महावीर को मिला। तुम्हें भी मिल सकता है। है तो, मिला तो है। तुम देखते ही नहीं। तुम छिटकते हो। तुम देखने से बचना चाहते हो।

लोग अपने जीवन के सत्य को देखने से बचना चाहते हैं, क्योंकि डरते हैं। और डर उनका स्वाभाविक है। डरते है कि कहीं जीवन का सत्य देखा तो कहीं दुख ही दुख हाथ में न रह जाए। इसलिए पीठ किए रहते हैं। इसलिए आंख बचाए चले जाते है। इसलिए आंख बंद कर लेते हैं। मगर ऐसे तुम किसे धोखा दे रहे हो ? यह धोखा स्वयं को ही दिया गया धोखा है।

एक कहानी मैंने सुनी है। एक शहर में एक नई दुकान खुली। जहा कोई भी युवक जा कर अपने लिए एक योग्य पत्नी ढूंढ़ सकता था। एक युवक उस दुकान पर पहुंचा। दुकान के अन्दर उसे दो दरवाजे मिले। एक पर लिखा था, युवा पत्नी, और दूसरे पर लिखा था, अधिक उम्र वाली पत्नी ! युवक ने पहले द्वार पर धक्का लगाया और अंदर पहुंचा। फिर उसे दो दरवाजे मिले। पत्नी वगैरह कुछ भी न मिली। फिर दो दरवाजे। पहले पे लिखा था, सुदर; दूसरे पर लिखा था, साधारण। युवक ने पुन: पहले द्वार में प्रवेश किया। न कोई सुदर था न कोई साधारण, वहा कोई था ही नहीं। सामने फिर दो दरवाजे मिले, जिन पे लिखा था : अच्छा खाना बनाने वाली और खाना न बनाने वाली। युवक ने फिर पहला दरवाजा चुना। स्वाभाविक, तुम भी यही करते। उसके समक्ष फिर दो दरवाजे आए, जिन पर लिखा था : अच्छा गाने वाली और गाना न गाने वाली। युवक ने पुन पहले द्वार का सहारा लिया और अब की बार उसके सामने दो दरवाजों पर लिखा था · दहेज लाने वाली और न दहेज लाने वाली। युवक ने फिर पहला दरवाजा चुना। ठीक हिसाब से चला। गणित से चला। समझदारी से चला। परंतु इस बार उसके सामने एक दर्पण लगा था, और उस पे लिखा था, ' आप बहुत अधिक गुणों के इच्छुक है। समय आ गया है कि आप एक बार अपना चेहरा भी देख लें।'

ऐसी ही जिन्दगी है : चाह, चाह, चाह ! दरवाजों की टटोल। भूल ही गए, अपना चेहरा देखना ही भूल गए ! जिसने अपना चेहरा देखा, उसकी चाह गिरी। जो चाह में चला, वह धीरे-धीरे अपने चेहरे को ही भूल गया। जिसने चाह का सहारा पकड लिया, एक चाह दूसरे में ले गई, हर दरवाजे दो दरवाजों पे ले गए,

कोई मिलता नहीं। जिन्दगी बस खाली है। यहां कभी कोई किसी को नहीं मिला। हां, हर दरवाजे पर आशा लगी है कि और दरवाजे हैं। हर दरवाजे पे तख्ती मिली कि जरा और चेष्टा करो। आशा बंधाई। आशा बंधी। फिर सपना देखा। लेकिन खाली ही रहे। अब समय आ गया, आप भी दर्पण के सामने खड़े हो कर देखो। अपने को पहचानो!

जिसने अपने को पहचाना वह संसार से फिर कुछ भी नहीं मांगता, क्योंकि यहां कुछ मांगने जैसा है ही नहीं। जिसने अपने को पहचाना, उसे वह सब मिल जाता है जो मांगा था, नहीं मांगा था। और जो मांगता ही चलता है, उसे कुछ भी नहीं मिलता है।

इस जिन्दगी में तुम न केवल अपने को धोखा दे रहे हो; तुम्हारे, जिनको तुम अपने कहते हो, उनको भी धोखा दे रहे हो। घर में एक बच्चा पैदा होता है। तुम तो धोखे में जिए ही, तुम यही धोखा उसको भी सिखाते हो। तुम तो दुख में जिए ही, तुम इसी दुख का शिक्षण उसे भी देते हो। ऐसे पागलपन हटता नहीं संसार से, बढता है। हम अपनी बीमारियां दूसरों को दिये चले जाते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने लड़के पर रौब गांठने के लिए एक दिन शिकार पर उसे साथ ले गया। वहां एक पक्षी पर निशाना साधते हुए लड़के से बोला, 'देख बेटे! मेरा निशाना कितना अचूक होता है!' यह कह कर उसने गोली दागी। हमेशा की तरह, निशाना चूक गया। यह देख कर कि लड़का बहुत ध्यान से उड़ते पक्षी की ओर देख रहा है, मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, 'देख बेटे, देख! आश्चर्य देख! मर कर भी पक्षी उड़ान भर रहा है!'

मगर कोई मानने को राजी नही है कि निशाना अपना चूक गया है बाप का निशाना चूक गया है, लेकिन बेटे से कह रहा है, 'देख, बेटे देख! निशाना तो लग गया, चमत्कार देख! फिर कभी मौका मिले न मिले। पक्षी मर के भी उड़ रहा है!

अगर तुम्हारा निशाना चूक गया हो तो किसी को भूल के भी यह आभास मत देना कि लग गया है। अपनी हार को स्वीकार कर लेना। इससे तुम्हें भी लाभ होगा, औरों को भी लाभ होगा। अपनी पराजय को मान लेना, क्योंकि तुम्हारी पराजय ही तुम्हारी विजय-यात्रा का पहला कदम बनेगी। धोखा मत दिये चले जाना। यह अकड़ व्यर्थ है। इस अकड़ का कोई सार नहीं है।

महावीर इस अकड़ तोड़ने के लिए ही ये सूत्र कह रहे है। हम वही-वही मांगे चले जाते हैं। हर बार हारते है, फिर वही मांगते हैं। कभी-कभी तो हमारी मांगें ऐसी असंगत और मूढ़तापूर्ण होती हैं, लेकिन चूंकि हमारी मांगें है, हम न तो उनकी मूढ़ता देखते न असंगति देखते है।

एक भिखारी ने लॉटरी का टिकट खरीदा और भगवान से प्रार्थना की कि हे

प्रभु, मुझे लॉटरी का पहला इनाम दे दो, जिससे मैं कार खरीद सकूं। पैदल भीख मांगते-मांगते तो मेरी टांगें टूटी जाती हैं।

कार में भी भीख ही मांगेगा! जैसे हमें कोई होश ही नहीं है। तुम क्या मांग रहे हो? तुम जो मांगते हो, उसमें फिर तुम वही मांग रहे हो, वही पुराना ढांचा जिसमें तुम जन्मों-जन्मों से जी रहे हो; और जिसमें सिवाय दुख, सिवाय पीड़ा और संताप के कुछ भी नहीं पाया है।

एक छोटे शहर के चौधरी घूमने के खयाल से दिल्ली पहुंचे। तो एक मामूली से परिचित सज्जन के घर जा धमके और बातें करने लगे। बहुत देर तक, जब उसने वहां से जाने का नाम न लिया तो घर वाले सज्जन ने अपने नौकर को आवाज दे कर बुलाया और कहा, 'भाई सामान बांधो और चलने की तैयारी करो।'

चौधरी और नौकर दोनों आश्चर्य में पड़ गए कि एकाएक कहां जाने की तैयारी है। आखिर में चौधरी से पूछने पर कि इस वक्त कहां जा रहे हैं, सज्जन ने कहा, 'भाई, मकान पर तो आपने अधिकार कर ही लिया है। कहीं सामान भी हाथ से न जाता रहे, इसलिए यहां से भागना अच्छा है।'

इससे उलटी हालत तुम्हारी है। मकान पे तो अधिकार हो ही गया है संसार का, सामान पे भी अधिकार हो गया है। तुम ही बचे हो, और तो मत खो दिया है। अब अपने को ही खो रहे हो। भागो! महावीर की साधना-विधि जीवन में आग लगी है, ऐसा देख कर तुम्हें जगाने की और इस घर को छोड़ देने के लिए है। बाहर आओ! लोग तुमसे कहेंगे, 'पलायनवादी हो रहे हो?' महावीर कहते हैं, घर में जब आग लगी हो तो पलायन ही समझदारी है। जहां दुख हो, वहां से भाग जाना ही समझदारी है।

और ध्यान रखना, अगर तुम दुख से बच सको तो सुख की संभावना का द्वार खुलता है। लेकिन सुख कहीं बाहर नहीं है। सुख तुम्हारा स्वभाव है। संसार बाहर है। सुख तुम्हारा स्वभाव है। जितने तुम बाहर जाओगे उतने सुख से दूर होते चले जाओगे। जितने तुम बाहर न जाओगे उतनी ही सुख की धुन बजने लगेगी। सुख का सितार बजने को तैयार रखा है, सिर्फ तुम घर आओ।

मुल्ला नसरुद्दीन एक धनपति के घर नौकरी करता था। एक दिन उसने कहा, 'सेठ जी, मैं आपके यहां से नौकरी छोड़ देना चाहता हूं। क्योंकि यहां मुझे काम करते हुए कई साल हो गए, पर अभी तक मुझ पर आप को भरोसा नहीं है।' सेठ ने कहा, 'अरे पागल! कैसी बात करता है! नसरुद्दीन होश में आ! तिजोरी की सभी चाबियाँ तो तुझे सौंप रखी हैं। और क्या चाहता है? और कैसा भरोसा?'

नसरुद्दीन ने कहा, 'बुरा मत मानना, हुजूर! लेकिन उसमें से एक भी ताली तिजोरी में लगती कहां है!'

जिस संसार में तुम अपने को मालिक समझ रहे हो, तालियों का गुच्छा लटकाए

फिरते हो, बजाते फिरते हो, कभी उसमें से ताली कोई एकाध लगी ? कोई ताला खुला, कि बस तालियों का गुच्छा लटकाए हो ? और उसकी आवाज का ही मजा ले रहे हो। कई स्त्रियां लेती हैं, बड़ा गुच्छा लटकाए रहती हैं। इतने ताले भी मुझे उनके घर में नहीं दिखाई पड़ते जितनी तालियां लटकाई हैं। मगर आवाज, खनक सुख देती है।

जरा गौर से देखो, तुम्हारी सब तालियां व्यर्थ गई हैं। क्रोध करके देखा, लोभ करके देखा, मोह करके देखा, काम में डूबे, धन कमाया, पद पाया, शास्त्र पढ़े, पूजा की, प्रार्थना की – कोई ताली लगती है ?

महावीर कहते हैं, संसार की कोई ताली लगती नहीं। और जब तुम सब तालियां फेंक देते हो, उसी क्षण द्वार खुल जाते हैं। संसार से सब तरह से वीतराग हो जाने में ही ताली है, चाबी है।

आज इतना ही।

दिनांक १२ मई, १९७६; श्री रजनीश आश्रम, पूना

प्रश्न-सार

क्या यह आरोप सही है कि महावीर और बुद्ध यह कह कर कि जीवन दुख-ही-दुख है, भारत और एशिया के जीवन को विपण्ण बना गये?

प्रतिक्रमण इतना असहज-सा क्यों लगता है?

प्रसाद संकल्प से मिला या समर्पण से, मालूम नहीं... अयाचित और असमय उसकी वर्षा हो रही है!...?

श्रवण और पठन-पाठन में क्या भेद है?

प्यास ही प्रार्थना है

पहला प्रश्न : क्या यह आरोप सही है कि महावीर और बुद्ध, यह कह कर कि जीवन दुख-ही-दुख है, भारत और एशिया के जीवन को सदियों-सदियों के लिए विपन्न और दुखी बना गए ? और क्या यह जीवन-अस्वीकार की दृष्टि स्वस्थ अध्यात्म कही जा सकती है ?

पहली बात, न तो कोई तुम्हें आनंदित कर सकता है, न कोई तुम्हे विपन्न कर सकता है । जो भी तुम होते हो, तुम्हारा ही निर्णय है । बहानें तुम कोई भी खोज लो ।

महावीर ने कहा, जीवन व्यर्थ है । कहा, ताकि तुम महाजीवन में जाग सको । तुमने अगर गलत पकड़ा और तुमने इस जीवन को भी छोड़ दिया – और नीचे गिर गए, महाजीवन में न उठे । एक जगह तुम खड़े थे सीढ़ी पर और महावीर ने कहा, छोडो इसे, आगे बढ़ो । छोड़ा तो तुमने जरूर, लेकिन पीछे हट गए । कसूर तुम्हारी समझ का है ।

जीवन में सदा ही उत्तरदायित्व हमारा है । दूसरों पर टालने की आदत छोड़ो । महावीर ने कहा था, ताकि तुम महाजीवन की तरफ उठो । जीवन की निंदा की थी, किसी परम जीवन की प्रशंसा के लिए ।

इस जीवन को जिसे तुम जीवन कहते हो, जीवन कहने जैसा क्या है ? इसमे सम्पन्न हो कर भी क्या मिलेगा ? यह मिल भी जाए तो कुछ मिलता नहीं; खो भी जाए तो कुछ खोता नही । स्वप्नवत् है । स्वप्न से जागने को कहा था । तुम स्वप्न से जागे तो नहीं, और महातंद्रा में खो गए । तुम्हारे दृष्टिकोण में, तुम्हारी व्याख्या में कहीं भूल हो गई । तुम्हारा भाष्य भ्रात है ।

महावीर को तो देखो, विपन्न दिखाई पड़ते हैं ? और सम्पन्नता क्या होगी ? महावीर से ज्यादा सुन्दर महिमामंडित परमात्मा की कोई और छवि देखी है ? महावीर से ज्यादा आलोकित, विभामय और कोई विभूति देखी ? कही और देखा है ऐसा ऐश्वर्य, जैसा महावीर में प्रगट हुआ ? जैसी मस्ती और जैसा आनंद, और

जैसा संगीत इस आदमी के पास बजा, कहीं और सुना है ? कृष्ण को तो बांसुरी लेनी पड़ती है तब बजता है संगीत; महावीर के पास बिना बांसुरी के बजा है। मीरा को तो नाचना पड़ता है, तब बजता है संगीत; महावीर के पास बिना नाचे नचा है। कोई सहारा न लिया – वीणा का भी नहीं, नृत्य का भी नहीं, बांसुरी का भी नहीं। कृष्ण तो सुन्दर लगते हैं – मोर-मुकुट बांधे है। महावीर के पास तो सौन्दर्य के लिए कोई भी सहारा नहीं। बेसहारे, निरालंब ! लेकिन कहीं और देखा है परमात्मा का ऐसा आविष्कार ? जीवन की ऐसी प्रगढ़ता ! ऐसा घना आनंद ! तो महावीर जीवन के विपरीत तो नहीं हो सकते। नहीं तो सूख जाते, जैसे जैन मुनि सूखे है। जीवन के विपरीत तो नहीं हो सकते; नहीं तो कुरूप हो जाते, जैसे जैन मुनि हो गए हैं। सिकुड़ जाते। जीवन को छोड़ा है, लेकिन सिकुड़े नहीं हैं। मृत्यु को वरण किया है, महामृत्यु को वरण किया है – लेकिन मरे नहीं हैं। मृत्यु उन्हें और निखार दे गई। मृत्यु को स्वीकार करके उनका जीवन और भी सम्पन्न हुआ है, और भी गहन धन की वर्षा हुई है।

तुम मृत्यु से डरे-डरे जीते हो। महावीर को वह डर भी न रहा उनका जीवन अभय हुआ है। तुम घबड़ाए हो, धन छिन न जाए ! धन भी हो, धन से ज्यादा तो घबड़ाहट आ जाती है कि छिन न जाए ! महावीर ने धन छोड़ा, इतना ही मत देखो; साथ ही घबड़ाहट भी तिरोहित हो गई है। जब धन ही न रहा तो छिनने की बात ही कहां उठती है ! महावीर ने वह सब छोड़ दिया जिसके साथ भय आता हो; वह सब छोड़ दिया जिसके साथ चिंता आती हो।

लेकिन ध्यान रखना, छोड़ने पर जोर नहीं है। पाया ! चिंतामुक्त जीवन-दशा पायी। अपूर्व शांति पायी। अभय पाया। सत्य प्रगट हुआ महावीर से। ऐसा बहुत कम हुआ है।

महावीर को अगर गौर से समझो तो पहली बात तो यह समझनी चाहिए कि महावीर के पास कोई भी कारण नहीं है। जीसस का सम्मान है – सूली कारण है। जीसस अगर सूली पे न चढ़े होते, न चढ़ाए गए होते, ईसाइयत पैदा न होती। इसलिए क्रॉस प्रतीक बन गया। जीसस के दुख ने करोड़ो लोगों की सहानुभूति को आकर्षित कर लिया। दुख सदा सहानुभूति आकर्षित करता है।

कृष्ण की बासुरी के स्वर है। पशु भी नाच उठे, पक्षी भी आनंदित हुए, दौड़ पड़े स्त्री-पुरुष ! महावीर के पास क्या है ? न बांसुरी है, न सूली है। महावीर निपट खड़े हैं नग्न, वस्त्र भी नहीं। कुछ भी नहीं है, जिस कारण लोग महावीर के पास जाएं। फिर भी लोग गए। फिर भी उन चरणों में लोग झुके हैं।

कृष्ण ने तो कहा : 'सर्वधर्मान परित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज। सब छोड़, मेरी शरण आ ! ' तो भी अर्जुन झिझका-झिझका शरण आया। उसकी झिझक से ही तो गीता पैदा हुई। संदेह करता ही चला गया।

महावीर ने कहा : 'किसी की शरण जाने की कोई भी जरूरत नहीं है। मेरी शरण मत आओ, अपनी शरण जाओ!' फिर भी लोग महावीर के चरणों में आए, जरूर कुछ महिमापूर्ण घटित हुआ है! कुछ अनूठा लोगों को दिखा है!

जैन धर्म से खो गई वह अनूठी बात – वह दूसरी बात है। उससे महावीर को मत जोड़ो। जैन धर्म तुम्हारा है। जैन धर्म तुम्हारी व्याख्या है महावीर के सम्बन्ध में। जैन धर्म वह नही है जो महावीर ने दिया है। जैन धर्म वह है जो तुमने लिया है। महावीर ने जो कहा है, वह तो कुछ और है। तुमने जो पकड़ा है, समझा है, वह कुछ और है। तुम्हारी समझ के संग्रह का नाम तुम्हारा शास्त्र, तुम्हारा धर्म, तुम्हारी सभ्यता, संस्कृति है।

निश्चित ही, कल ही मैं आपसे कहता था कि चौवीसो तीर्थंकर जैनों के क्षत्रिय हैं। युद्ध के मैदान से आए। युद्ध की पीड़ा और युद्ध की हिंसा और युद्ध की व्यर्थता देख कर आए। उनकी अहिंसा भय की अहिंसा नहीं है, कायर की अहिंसा नहीं है– महावीरों की अहिंसा है। देख के कि हिंसा में तो कायरता ही है, उन्होंने हिंसा का त्याग किया। लेकिन फिर क्या हुआ? जैन धर्म बना तो वणिकों से, वैश्यों से। जैनियों में तुम्हें क्षत्रिय न मिलेगा। सब दुकानदार है। कैसी दुर्घटना घटी : जिनके सब तीर्थंकर क्षत्रिय है, उनके सब अनुयायी दुकानदार हैं! नहीं, जिन्होंने पकड़ा है उन्होंने कुछ और अर्थ से पकड़ा है। उन्होंने कहा, न किसी को मारेंगे, न कोई हमें मारेगा; न झगड़ा-झांसा करेंगे, न पिटेंगे। उन्होंने 'अहिंसा परमोधर्मः' का उद्घोष किया। उन्होंने कहा, यह बात बड़ी अच्छी है। यह तो ढाल की तरह है कि हम मरने-मारने में विश्वास ही नहीं रखते।

मगर जरा जैनियो की तरफ देखो, इनकी अहिंसा में अभय है? भय ही भय को तिलमिलाता पाओगे। ये भय के कारण अहिंसक हैं। ये डरे है कि कोई मारे न, कोई लूटे न, कोई खसोटे न, कोई झंझट न करे, तो स्वाभाविक है कि अहिंसा की चर्चा करो।

महावीर की अहिंसा मृत्यु के पार जो अनुभव है उससे आती है। जैनों की जो अहिंसा है, जीवन का ही अनुभव नहीं, मृत्यु के अनुभव की तो बात दूर।

एक जैन ने प्रश्न पूछा है कि 'आप कहते हे कि वह परम अवस्था तो शून्य की है, तो ऐसे शून्य को पा कर क्या करेंगे? इससे तो यही जीवन ठीक है। कम से कम सुख-दुख का अनुभव तो होता है!'

शून्य का डर! इससे वे स्वर्ग-नर्क, सुख-दुख, कुछ भी हो झेलने को तैयार हैं; मिटने को तैयार नहीं हैं। शून्य यानी मिटना। न तुम यहां मिटने को तैयार हो, न तुम वहां मिटने को तैयार हो। बचना चाहते हो। बचाव भय की अभिव्यक्ति है। अब जिन मित्र ने पूछा है, दुख को भी पकड़ने को तैयार है, कम-से-कम रहेंगे तो! बचेंगे तो! दुख ही सही, नर्क ही सही – मगर मिटने को तैयार नहीं हैं।

और जीवन का परम सत्य यही है कि जब तक तुम अपने को पकड़े हो तब तक मिटते रहोगे। और जिस दिन तुम अपने को छोड़ दोगे और जिस दिन तुम शून्य होने को तैयार हो जाओगे, उसी क्षण पूर्ण घटित होता है—तत्क्षण घटित होता है। उस क्रांति में फिर एक क्षण भी प्रतीक्षा नहीं करनी होती। तुम इधर शून्य होने को तैयार हुए कि तुम पूर्ण हुए। फिर कोई बाधा न रही। कोई भय न रहा तो बाधा कैसी? तुम जब मिटने तक को तत्पर हो गए तो तुम्हारी कोई पकड़ न रही। जो शून्य होने को राजी है वह धन को थोड़ी पकड़ेगा! जिसने अपने को ही न पकड़ा वह धन को क्या पकड़ेगा! सारी पकड़ के भीतर पहली पकड़ तो अपनी पकड़ है। तुम धन को किसलिए पकड़ते हो? धन के लिए ही थोड़ी कोई धन को पकड़ता है — अपने को पकड़ता है, इसलिए धन को पकड़ता है। क्योंकि धन सुरक्षा देता है, भविष्य में व्यवस्था देता है। कल घबड़ाहट न होगी, तिजोरी है, बैंक में बैलेंस है। बीमारी आए, बुढ़ापा आए, कुछ भी हो, तो धन सुरक्षा का आश्वासन देता है।

तुम अपने को पकड़ते हो, इसलिए धन को पकड़ते हो। तुम अपने को पकड़ते हो, इसलिए पत्नी को, बच्चे को पकड़ते हो।

उपनिषद कहते हैं, कोई पत्नी को थोड़े ही प्रेम करता है; लोग अपने को प्रेम करते हैं, इसलिए पत्नी को प्रेम करते हैं। पत्नी तो बहाना है।

तुम कहते हो कि तुमसे मुझे प्रेम है। लेकिन तुम्हारे प्रेम का अर्थ कितना है? क्या है अर्थ? इतना ही अर्थ है कि तुम्हारे होने के कारण मैं प्रफुल्लित होता हूं, तुम हो तो मैं सुख पाता हूं—लेकिन तुम साधन हो, साध्य तो मैं ही हूं। तुम अपने बच्चों को प्रेम करते हो, उनको पकड़ते हो—किसलिए? बुढ़ापे के सहारे है। तुम्हारी महत्वाकांक्षाओं के लिए कंधा देंगे। भविष्य में तुम्हारी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करेंगे। तुम तो पूरा न कर पाओगे, यह तुम्हें पता है। महत्वाकांक्षाएं अनंत है। वासनाएं दुष्पूर हैं। बहुत हैं। जीवन बड़ा छोटा है : गया-गया, हाथ से बहा-बहा है! तुम तो पूरा न कर पाओगे, तुम्हारे बच्चे तुम्हारी याद पूरी करेंगे; परंपरा को जारी रखेंगे; बाप का नाम बचाएंगे। तुम तो जा चुके होओगे, लेकिन बच्चों के सहारे किसी तरह तुम अपनी शाश्वतता खोजते हो। तुम सोचते हो, चलो और तरह का अमरत्व तो संभव नहीं है, इसी बहाने बच्चों में जीते रहेंगे; मेरा ही तो खून है; मेरे ही तो जीवाणु हैं! चलो यह देह न रहेगी, बच्चो में जिएंगे।

बाप बेटे में जीता है। मा बेटे में जीती है। ऐसी परंपरा बनती है। 'हम न रहेंगे, हमारा तो कोई रहेगा!' इसलिए तुम 'हमारे' को पकड़ते हो। पर सारी पकड़ भीतर 'मैं' की है। जिसने समझने की कोशिश की, वह धन को नहीं छोड़ेगा। धन छोड़ने से क्या लेना-देना है! क्योंकि धन तो गौण है; असली बात तो 'मैं' की पकड़ छोड़ने की है। तुम्हें राजी होना है, ऐसी घड़ी के लिए कि जहां

मै भी न रहू जाऊं, तो भी क्या हर्ज है ! क्या हर्ज है ? क्या मिटेगा ? क्या खो जाएगा ? तुम्हारे हाथ में क्या है ? तुम मुट्ठी खोलने से डरते हो, क्योंकि मैं कहता हूं मुट्ठी खाली है। तुम कहते हो, इससे तो मुट्ठी बंधी ही रहे, चाहे तकलीफ होती है बांधे रखने में, होती रहे--कम से कम बंधी तो है ! लोग कहते हैं, बंधी लाख की ! खाली है, मगर कहते हैं, बंधी लाख की ! क्योंकि जो दिखाई ही नहीं पड़ता तो मान लो लाख हैं, करोड़ हैं, जो भी मानना है मान लो । खोलो, लाख गए ! मुट्ठी खाली है ! लेकिन तुम बांधो कि खोलो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, मुट्ठी खाली है !

तुम कहते हो, इससे तो दुख ही बेहतर; सुख का आभास ही बेहतर--कम से कम हैं तो ! यह अनुयायी की आवाज है। जिसने पूछा है वह जैन है । यह महावीर की आवाज नही है। महावीर तो कहते ही यही हैं कि छोड़ो परिग्रह, छोड़ो संसार, छोड़ो वासना; ताकि इस सब छोड़ने में, जो इन सब के पीछे छिपा है और अपने को बचा रहा है, वह तुम्हें प्रगट हो जाए--कि मूल में तो तुम अहंकार को बचा रहे हो, अपने को बचा रहे हो । सब बहाने छोड़ो तो साफ दिखाई पड़ जाएगा कि अपने को बचाने में लगे हो ! लेकिन बचाने में सार क्या है ? और बचा-बचा के तुम बचाओगे कैसे ? या तो तुम बचोगे ही, अगर वह तुम्हारा स्वभाव है; और अगर स्वभाव में ही अमरत्व नही है तो तुम लाख बचाओ, बच न सकोगे !

इसलिए महावीर कहते हैं : छोड़ो यह आपा-धापी ! छोड़ो यह बचने की आकांक्षा ! यह जीवेष्णा छोड़ो । जीवेष्णा सभी पापों का आधार है । मै जीना चाहता हू, चाहे फिर दूसरों को मार के भी जीना पड़े, तो भी जिऊंगा ! मैं जीना चाहता हू, मुझे क्या फिक्र है कि कौन मरता है ! तो महावीर की सारी अहिंसा का सूत्र यही है, कि तुम्हारे जैसे ही सभी जीना चाहते हैं । तुम वही करो उनके साथ जो अपने साथ करना चाहते हो । तो तुम किसी को मारो मत ! लेकिन जो किसी को न मारेगा, वह मरना शुरू हो जाएगा ।

यह जीवन तो बड़ा संघर्ष है । यहां तो तुम दूसरे की गर्दन न दबाओ तो कोई तुम्हारी गर्दन दबाएगा । यहा तो सुरक्षा का सबसे श्रेष्ठ उपाय आक्रमण है। मैक्यावली से पूछो ! महावीर से अहिंसा समझ लो, मैक्यावली से हिंसा समझ लो । मैक्यावली कहता है कि इसके पहले कि कोई हमला करे, हमला करो; इसके पहले कि कोई तुम पे हमला करे, हमला कर दो। मौका मत दो पहल का, अन्यथा तुम पिछड़ ही गए संघर्ष में। मार डालो, इसके पहले कि कोई तुम्हें मारे। यही सूत्र है -- जीवन में संघर्ष का, अपने को बचाने का । बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है। तुम शक्तिशाली बनो और दूसरों को पीते चले जाओ। उसी में तुम्हारा जीवन है ।

महावीर कहते हैं, ऐसे जीवन को क्या करोगे ? इस जीवन का सार भी क्या है,

अर्थ भी क्या है ? बच भी जाएगा तो क्या बचेगा, हाथ क्या लगेगा ? हाथ-लाई क्या होगी ?

महावीर कहते है, सब देखा ! सारा जीवन झूठा है, भ्रांत है । यह दूसरे को मारने योग्य तो है ही नही । अगर दूसरे को बचाने में अपने को मिटा भी देना पड़े तो मिटा दो – इसमें कुछ हर्जा नहीं है, कुछ जा नही रहा है । और महावीर इतने आश्वस्त हो के यह कहते है, क्योंकि वे जानते है : जो तुम्हारे भीतर अन्तर-तम में छिपा है, उसकी कोई मृत्यु नही है । जिसे तुम बचा रहे हो, वह तुम्हारी झूठी प्रतिमा है; वह तुम्हारा स्वयं के प्रति झूठा भाव है । जिसे तुम बचा रहे हो, अहं-कार, वह तो मरेगा । वह तो समाज का दिया हुआ है; मौत के साथ समाप्त हो जाएगा । तुम जैसे आए थे, कोरे, कुंआरे, जन्म के साथ, ऐसे ही कुंआरे-कुंआरे तुम मृत्यु के साथ जाओगे । तुम्हारा नाम-धाम, पता-ठिकाना, सब यही छूट जाएगा । और वह जो मृत्यु के पीछे भी चला जाता है तुम्हारे साथ और जन्म के पहले भी तुम्हारे पास था, उसकी कोई मृत्यु नही है । तुम दौड़ छोड़ो बचने की, तो तुम्हें उसका पता चलेगा जो सदा ही बचा हुआ है । तुम अपनी सुरक्षा न करो, तो तुम्हें उसका पता चल जाएगा जो सदा सुरक्षित है ।

जब मै कहता हू शून्य होने की बात, तो उसका कुल इतना ही अर्थ है कि पूर्ण तुम हो । इधर तुम शून्य होने को राजी हुए तो तुम्हारी दौड़-धूप मिटी । दौड़-धूप मिटी तो सारी चेतना मुक्त हुई दौड़-धूप से, चेतना घर लौटी । बाहर नही जाओगे तो कहां जाओगे ? घर आओगे ! घर आने का कोई रास्ता थोड़ी है – बस बाहर जाना छोड़ देना है कि घर आ गए । घर तो तुम हो ही, तुम्हारी वासना ही भट-कती है दूर-दूर ।

यहां तुम बैठे मुझे सुन रहे हो : हो सकता है, तुम यहां बैठे हो शरीर की भांति, तुम्हारी वासना कहीं और भटकती है – कलकत्ते में होओ, दिल्ली में होओ, बंबई में होओ । तो जितना तुम्हारा मन बंबई में चला गया मुझे सुनते वक्त, उतने तुम यहां नहीं हो । अगर तुम्हारा पूरा मन ही बम्बई में चला गया, तो तुम यहां बिलकुल नहीं हो । यहां तुम्हारा होना न होना बराबर है । तुम होते-न-होते कोई फर्क नहीं पड़ता । सिर्फ एक प्रतिमा बैठी है, जिसमें कोई प्राण नही है । क्योंकि प्राण तो वासना में भटक गए । तुम कहीं जाते थोड़े ही हो बाहर; वासना में मन उलझा कि तुम बाहर गए ! वासना बहिर्गमन का मार्ग है । वासना बाहर जाना है । क्षण भर को भी अगर तुम बाहर न जाओ तो तुम जाओगे कहां फिर ? जब बाहर जाने के सब सेतु टूट गए, सब द्वार-दरवाजे बन्द हो गए, सब मार्ग व्यर्थ हो गए, न तुम धन में गए, न तुम पद में गए, न तुम प्रेम में गए, तुम कही बाहर गए ही नही, तो तुम अचानक अपने को घर में बैठा हुआ पाओगे – जहां तुम सदा से बैठे हुए हो; जहां से तुम क्षण भर को भी हटे नहीं, तिल भर को भी हटे नहीं; जहां से

हटने का कोई उपाय नही । उसी को महावीर स्वभाव कहते हैं । उसी को महावीर धर्म कहते हैं, जिससे हटा न जा सके, जिसे खो कर भी खोया न जा सके, जिसे मिटा कर भी मिटाया न जा सके । जिसे तुम लाखों जन्मों में चेष्टा कर-कर के, भटक-भटक के भी नहीं अपने से छुड़ा पाए हो, वही तुम्हारा स्वभाव है । जो छूट जाए, वह पर-भाव है ।

तुम्हारे वस्त्र छीने जा सकते हैं; वह तुम्हारा स्वभाव नही । तुम्हारा शरीर छिन जाता है; वह तुम्हारा स्वभाव नहीं । तुम्हारा मन भी छिन जाता है, वह भी तुम्हारा स्वभाव नही । देह और मन के पार कुछ है – अनिर्वचनीय, जिसे न कभी छीना जा सका है, न छीना जा सकता है ।

बादल घिरते हैं आकाश में, इससे कुछ आकाश नष्ट नहीं हो जाता । क्षण भर को दिखाई नहीं पड़ता । खो जाता है । ओझल हो जाता है । पर मिटता थोड़ी है ! फिर बादल चले जाते है, वर्षा समाप्त हुई, बादल विदा हो गए – आकाश अपनी जगह खड़ा है ! ऐसी ही वासनाएं आती हैं तुम्हारे अंतर-आकाश में, क्षण भर को घिरती हैं, शोरगुल मचता है, गड़गड़ाहट होती है, बिजलियां चमकती हैं– क्रोध है, लोभ है, मोह है, माया है – हजार तरह के बादल घिरते हैं, गड़गड़ाहट होती है, वासना बरसती है । फिर जिस दिन भी बोध सम्हलेगा – गए बादल ! इससे तुम खराब थोड़ी हो गए । तुम्हारा कुआरापन कुछ ऐसा है कि खराब हो ही नही सकता । बादल सदा आएगा-जाएगा, आकाश तो कुंआरा बना रहता है । आकाश व्यभिचारित थोड़ी होता है ! रेखा भी तो नहीं छूट जाती बादल की । छाया भी तो नही छूट जाती बादल की । पद-चिह्न खोज कर भी तो न खोज पाओगे । कोई हस्ताक्षर तो बादल कर नही जाता कि यहा मैं आया था । कोई नाम ठिकाना भी नहीं छूट जाता । ऐसे ही तो तुम्हारी देह खो जाती है ।

कितनी देहें इस पृथ्वी पर रही है तुमसे पहले ! तुम कुछ नए हो ? वैज्ञानिक कहते हैं, जहाँ तुम बैठे हो वहाँ कम-से-कम दस लाशें गड़ी हैं । जितनी जगह तुम बैठने के लिए लेते हो, वहाँ कम से कम दस आदमी मर चुके, गड़ चुके, खो चुके । वही तुम भी खो जाओगे । यह तो आदमियों की बात हुई । अब जानवरों का हिसाब करो, कीड़े-मकोड़ों का हिसाब करो, मक्खी-मच्छरों का हिसाब करो, वृक्ष-पौधों का हिसाब करो, तो तुम जहाँ बैठे हो वहाँ अनंत जीवन हुए और खो गए । वही तुम भी खो जाओगे । खोते ही चले जा रहे हो । प्रतिक्षण खिसकते जा रहे हो गड्ढे में । मौत पास आती चली जाती है । एक-एक क्षण जीवन रिक्त होता चला जाता है । बूंद-बूंद कर के घड़ा खाली हो जाएगा । लेकिन फिर भी तुम हो – जो कभी खाली नही होगा ।

जो संसार से मिला है, संसार वापिस ले लेता है । लेकिन कुछ तुम्हारे पास है जो तुम्हें किसी से भी नहीं मिला – जो बस तुम्हारा है ! वही तुम्हारी सम्पदा है ।

वही तुम्हारी आत्मा है। जब कहते है, शून्य हो जाओ तो उसका कुल इतना ही अर्थ है : बादलों से शून्य हो जाओ, ताकि आकाश से पूर्ण हो जाओ। उसका इतना ही अर्थ है : व्यर्थ से शून्य हो जाओ, ताकि सार्थक का आविर्भाव होने लगे। बाहर से शून्य हो जाओ, ताकि भीतर की धुन बजने लगे। बाजार में खड़े हो। भीतर तो धुन बजती ही रहती है, सुनाई नहीं पड़ती; बाजार का शोरगुल भारी है। भीतर आओ! थोड़े आँख-कान बंद करो! छोड़ो बाजार को! भूलो बाजार को! तो भीतर की धुन सुनाई पड़ने लगे, अनाहत का नाद सुनाई पड़ने लगे।

अहर्निश बज रही है वह वीणा। क्षण भर को भी उस कलकल-नाद में बाधा नहीं पडती। पर बड़ा सूक्ष्म है नाद! जब तुम सुनने में सजग होओगे, जब तुम्हारा श्रवण सधेगा, जब तुम्हारे कान भीतर की तरफ मुड़ेंगे और जब तुम धीरे-धीरे बारीक को, बारीकतम को, पकड़ने में कुशल हो जाओगे – तब, तब तुम्हें उस वीणा का नाद सुनाई पड़ेगा, जिसको योगी अनाहत कहते है।

और सब नाद तो आहत है, दो चीजों की टक्कर से पैदा होते है। मै ताली बजाऊ तो दो हाथ टकराते है। एक हाथ से तो ताली बजती नही। लेकिन एक नाद है तुम्हारे भीतर, जो अहर्निश चल रहा है। वह आहत-नाद नहीं है। वह दो हाथ की ताली नहीं है, एक हाथ की ताली है। वह किन्ही दो चीजों की टकराहट से पैदा नही हुआ, अन्यथा किसी न किसी दिन बंद हो जाएगा। जब दो चीजें न टकराएंगी तो बंद हो जाएगा। वह तुम्हारा स्वभाव है। ओंकार! प्रणव! वह तुम्हारा स्वभाव है।

यह तुमने कभी सोचा? हिन्दू है, जैन है, बौद्ध है, भारत में ये तीन महाधर्म पैदा हुए। तीनों के विचारों में बड़ा भेद है, जमीन-आसमान का भेद है। तीनों की सैद्धांतिक धारणाएं भिन्न है। तीनों के ढांचे अलग है, मार्ग अलग है, पथ अलग हैं। कोई समर्पण का मार्ग है, कोई संकल्प का। कोई संघर्ष का मार्ग है, कोई शरणागति का। कोई पूजा-प्रार्थना, भक्ति का, कोई ध्यान-समाधि का। लेकिन एक बात इन तीनों धर्मों ने स्वीकार की है – वह है ओंकार। वह है ओऽम् का नाद। उसे इनकार करने का उपाय नही। क्योंकि जब भी कोई भीतर गया है, तो उस नाद को सुना है। जब भी कोई भीतर गया है तो ऐसा कभी हुआ ही नही, कोई अपवाद नहीं कि वह नाद न सुना हो। वह जीवन-नाद है, ब्रह्मनाद है।

तो जब हम कहते है, शून्य हो जाओ, तो अर्थ इतना ही है कि बाहर के शोरगुल से शून्य हो जाओ। और अभी तो तुम जो भी जानते हो, सब बाहर का शोरगुल है। इसलिए कहते है, तुम जो हो उससे बिलकुल शून्य हो जाओ! अभी तो तुमने व्यर्थ को ही जोड़-जोड़ के अपनी प्रतिमा बनायी है। अभी तो तुमने कागज-पत्तर को जोड़-जोड के अपनी प्रतिमा बनायी है। अभी तो शाश्वत का तुम्हारी प्रतिमा से कोई भी सम्बन्ध नही है। अभी तो तुम कहते हो, यह मेरा नाम

है, यह मेरी जाति है, यह मेरा धर्म है, यह मेरा घर है; यह मेरा कुल है, यह मेरा देश है, यह मैं हिन्दू हूं कि जैन हूं, कि मुसलमान हूं कि इसाई हूं, कि मैं गरीब हूं कि अमीर हूं, कि शिक्षित कि अशिक्षित, कि गोरा कि काला, कि सम्मानित कि अपमानित, कि साधु कि असाधु – अभी तो तुमने जो भी जोड़ा है, बाहर से जोड़ा है। यह तो दूसरों ने जो कहा है, उसको ही तुमने इकट्ठा कर लिया है।

इसलिए कहते हैं, तुम अपने से खाली हो जाओ। यह सब कूड़ा-कर्कट हटाओ। और घबड़ाने की कोई जरूरत नही। तुम बेफिक्र कूड़ा-कर्कट हटाओ, क्योंकि जो कूड़ा-कर्कट नही है, उसे तुम हटाओ भी, तो भी हटा न सकोगे। इसलिए भय की कोई जरूरत नही है। इसलिए डर-डर के हटाने की जरूरत नही कि कहीं ऐसा न हो कि हीरे खो जाए। वे हीरे कुछ ऐसे है कि खो ही नहीं सकते। इसलिए तुम आग भी लगा दो इस मकान में, तो भी कुछ बिगड़ेगा नहीं। तुम खालिस, साबित निकल आओगे; क्योंकि तुम्हारा स्वभाव जलता नही।

नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैन दहति पावक.!

– न आग उसे जलाती, न शस्त्र उसे छेदते है। अमरत्व तुम्हारा स्वभाव है।

लेकिन अनुयायी की भाषा है, वह घबड़ाता है। वह कहता है, इससे तो संसार में बने ही रहे, चलो झूठे ही सही, कुछ तो है सुख! मान्यता ही सही, मिलते नही, आशा ही बंधाते है, कुछ तो है! दुख है, चलो कोई हर्जा नही, हम तो है! काटे भी चुभते है, चलो, सह लेगे, जूते पहन लेंगे, दवा खोज लेंगे, मलहम कर लेंगे, ऐसे रास्तों पे न जाएंगे जहां काटे है – लेकिन कम से कम हम तो है! लेकिन इस 'हम' को करोगे क्या? इस अहं को करोगे क्या?

मुश्किल नहीं है मौत, आजमाओ तो सही
मर जाने से पहले क्यों मरे जाते हो?

महावीर का सारा शिक्षण मृत्यु का शिक्षण है – शून्य होने की कला है। पर शून्य होने की कला ही पूर्ण होने की कला है। चाहे दोनों में से कुछ भी शब्द चुन लो, लेकिन मै कहूँगा, तुम शून्य ही चुनना। पूर्ण को चुना कि तुम चूके। क्योंकि पूर्ण के साथ लोभ आया। तुमने कहा, 'अरे तो हम पूर्ण हो जाएँगे! गजब!' पकड़ा अहंकार ने रस! वही अहंकार जिसको छुड़ाना है, छूटना है जिससे, पूर्ण होने की आकाक्षा से भर गया! फिर तुम्हारे गुब्बारे में और हवा भरने लगेगी। फिर अहकार और बड़ा होने लगेगा। पूर्ण होने का नशा छा गया! इसलिए ज्ञानियों ने शून्य की भाषा कही है – जानते हुए कि अंतिमतः पूर्ण घटता है। लेकिन तुमसे कहना उचित नहीं। तुमसे कहना खतरनाक है।

महावीर ने जो कहा, उसको तुमने वैसा ही नही सुना है जैसा उन्होंने कहा था। अन्यथा ये दुर्दिन, यह दुर्दशा, यह दारिद्रय, यह दीनता न घटती। इसलिए जो लोग ऐसा लांछन लगाते है, ऐसा विवाद खड़ा करते हैं, उनके विवाद में तथ्य तो

है; लेकिन तथ्य का इशारा तुम्हारी तरफ है, उन्हीं की तरफ है। तथ्य का इशारा महावीर की तरफ नहीं है। काश! तुम महावीर को समझते, तो इस देश में जैसा धन्यभाग फलता, इस देश में जैसे महिमावान फूलों का जमघट जुड़ जाता, वैसा कहीं भी नहीं हो पाता। अगर महावीर को समझे होते तो तुम्हारे भीतर जो अपरिसीम है, वह प्रगट होता। तुम्हारे चारों तरफ प्रकाश-मंडल निर्मित होता। न भी कुछ तुम्हारे पास होता तो भी तुम समृद्ध होते। और अभी तो हालत ऐसी है कि सब कुछ भी तुम्हारे पास हो, तो भी दरिद्रता कहां मिटती है?

तुमने धनी आदमियों की दरिद्रता नहीं देखी, तो फिर तुमने कुछ भी नहीं देखा! तुमने शक्तिशालियों की शक्तिहीनता नहीं देखी! तुमने पद-धारियों की नपुंसकता नहीं देखी! अकड़ के झंडों के पीछे कमजोरी के सिवा और क्या है? जितने बड़े झंडे हाथ में हैं, जितने ऊंचे डंडे हाथ में है, उतनी ही हीनता भीतर छिपी है। हीनता न हो तो कौन डंडे और झंडे ले कर यात्राएं करता है! क्या जरूरत है? किसको दिखाना है? जिसको अपना स्वरूप दिख गया, उसको दिखाने को अब कुछ भी न बचा।

फिर तुम जिसे जिन्दगी कहते हो, और कहते हो जीवन का स्वीकार, उसमें जिन्दगी जैसा क्या है?

> था ख्वाब में खयाल को तुझसे मुआमला
> जब आंख खुल गई न जियां था न सूद था।

—मेरा-तेरा संयोग सपने की कल्पना थी, क्योंकि जब आंख खुल गई तो—बकौल तुलसीदास 'हानि-लाभ न कछु!' बड़ा हिसाब था! बड़ा धंधा किया था सपने में! सुबह उठ के पाते हैं, 'हानि-लाभ न कछु!'

जिसे तुम जीवन कहते हो वह स्वप्न है। अच्छा हो, तुम उसे सपना कहो। जीवन को अभी तुमने जाना नहीं। और जिसे तुमने जाना है वह जीवन नहीं है।

> कोई मुझको दौरे-जमां-ओ-मकां से निकलने की सूरत बता दो
> कोई यह सुझा दो कि हासिल है क्या हस्ती-ए-रायगां से!

—इस फिजूल की जिन्दगी से मिलता क्या है! कोई मुझे सुझा दो कि इसमें क्या अर्थपूर्ण है! कोई मुझे राह बता दो कि कैसे इस व्यर्थ के कारागृह से मैं बाहर हो जाऊं!

> कोई मुझे दौरे-जमां-ओ-मकां से निकलने की सूरत बता दो
> कोई यह सुझा दो कि हासिल है क्या हस्ती-ए-रायगां से!

—इस व्यर्थ की दौड़-धूप से क्या हासिल है?

> कोई पुकारो कि उम्र होने आई है
> फलक को काफिला-ए-रोज-ओ शाम ठहराए।

—कोई पुकारो, कहो आकाश को कि रोक, अब यह काफिला सुबह और शाम का, समय के पार होने की यात्रा होने दे! समय में बहुत जी लिये!

सुबह होती शाम होती : उम्र तमाम होती !

फिर वही सुबह, फिर वही सांझ, फिर वही दोहरावा – कोल्हू के बैल की तरह घूमते हैं हम ! आंख पे पट्टियां, अंधे की तरह ! लगता है, यात्रा हो रही है, पहुंचते कहीं भी नहीं । अगर यात्रा होती होती तो कहीं तो पहुंचते । कभी यह तो सोचो, पहुंचे कहां ? चलते बहुत हैं, थक गए हैं बहुत, पहुंचते कभी भी नहीं, खड़े वहीं के वहीं हैं ! कैसी पागल यह दौड़ है, जहां रत्ती भर यात्रा नहीं होती और जीवन पर जीवन चुकते चले जाते हैं !

कोई पुकारो कि उम्र होने आई है

फलक को काफिला-ए-रोज-ओ शाम ठहराए ।

मगर यह सुबह और शाम का काफिला आकाश नहीं ठहराता – तुम्हीं को ठहराना पड़ेगा ! यह किसी के पुकारने की बात नहीं । कोई दूसरा तुम्हारे सुबह-शाम के काफिले को नहीं ठहरा सकता । यह तो सुबह-शाम की धारा चलती ही रहेगी, तुम ही धारा के बाहर हो जाओ। यह संसार तो चलता ही रहेगा, चलता ही रहा है। तुम्हीं छलांग लगा लो । तुम्हीं किनारे खड़े हो जाओ । बस इतना ही हो सकता है कि तुम अलग हो जाओ इस उपद्रव से, तुम सपने से जाग जाओ ।

जिंदगी किसे कहते हो तुम ? जन्म और मृत्यु के बीच जो है, उसे तुम जिंदगी कहते हो ? महावीर कहते हैं उसे जिंदगी, जो जन्म और मृत्यु के पार है । जन्म और मृत्यु के बीच जो है, वह जिंदगी नहीं, एक लंबा सपना है । जन्म के समय तुम सो जाते हो, मृत्यु के समय जागते हो – तब पता चलता है कि यह जिंदगी एक सपना थी ।

खत्म न होगा जिन्दगी का सफर

मौत बस रास्ता बदलती है ।

– मौत रास्ता बदलती जाती है । मौत बस रास्ता बदलती है । एक जिंदगी खत्म हुई, दूसरी जिंदगी शुरू, दूसरी जिंदगी खत्म हुई, तीसरी जिंदगी शुरू । मौत सिर्फ रास्ता बदलती है । जब तक कि तुम जाग के अलग न हो जाओ इस धारा से, इस मूर्च्छा और तंद्रा से ... ।

नहीं, महावीर ने इस देश को न तो दीनता दी है न दरिद्रता दी है । हां, यह हो सकता है कि महावीर को सुन के तुमने जो समझा, उससे तुमने दीनता-दरिद्रता में अपने को आरोपित कर लिया हो । महावीर ने तो तुम्हें महाजीवन का सूत्र दिया था । महावीर का जो जीवन-अस्वीकार है, उसे इतना ही कहना चाहिए की वह भ्रामक जीवन का अस्वीकार है । और भ्रामक जीवन का अस्वीकार वास्तविक जीवन की बुनियाद है । भ्रामक जीवन का अस्वीकार, अध्यात्म की शुरुआत है । और सत्य-जीवन की उपलब्धि अध्यात्म की पूर्णता है ।

दूसरा प्रश्न : प्रतिक्रमण, घर वापिस लौटना, हम असहज, कठिन और असंभव-सा क्यों लगता है ?

स्वाभाविक है, क्योंकि अब तक घर से दूर आने को ही जीवन समझा। उसी की आदत बनी। उसी में रंगे, पगे, बड़े हुए। वही हमारे मन का शिक्षण है। वही हमारा संस्कार है। वही हमारे कर्मों की थाती है। वही हमारे सारे जीवनों का निचोड़ है। ... बाहर जाने को ही जाना है। कभी भीतर तो गए ही नही, एक कदम न उठाया।

तो जहां कदम कभी न डाले हों, जिस तरफ कभी आंख न उठाई हो, उस तरफ जाने में मन अगर डरे, भयभीत हो—अपरिचित, अनजान रास्ता, पता नही कैसा हो कैसा न हो— स्वाभाविक है। इसलिए तो अध्यात्म की लोग बाते करते हैं, लेकिन जाते नहीं; चर्चा करके समझा लेते हैं, उतरते नही।

चर्चा में कुछ हर्जा नही है; मन-बहलाव है; मनोरंजन है। सुन लेते, समझ लेते, पढ़ लेते, शास्त्र को पकड़ लेते, मन्दिर हो आते, मस्जिद हो आते – भीतर नही जाते। इसीलिए तो लोगो ने बाहर मन्दिर और मस्जिद बनाए है कि अगर मन्दिर-मस्जिद जाने की भी धुन पकड़ जाए तो बाहर ही जाए, कही ऐसा न हो कि किसी धुन में भीतर की तरफ कदम उठा लें और मुश्किल मे पड जाएं।

रास्ता अपरिचित है, बीहड़ है। फिर, बाहर के रास्ते पर भीड़ है। तुम अकेले नही, और सब साथ हैं। भीतर के रास्ते पे तुम अकेले हो जाओगे, वह भी डर है। वहा कोई साथ न जा सकेगा – न मित्र, न संगी न साथी, न पति न पत्नी, न बेटे, न मां न पिता – कोई साथ न जा सकेगा वहा। वहां तो तुम्हे निपट अकेले जाना होगा। जैसे मौत में तुम अकेले जाओगे, वैसे ही स्वयं मे भी अकेले जाना होगा। न कोई दूसरा तुम्हारे लिए मर सकता और न कोई दूसरा तुम्हारे लिए भीतर जा सकता। तो जैसे लोग मौत से डरते हैं, वैसे ही लोग ध्यान से डरते हैं। हा, ध्यान की चर्चा वगैरह करनी हो, कर लेते हैं। इस देश में से जिससे पूछ लो, जिससे-तिससे पूछ लो, ध्यान क्या है –जवाब दे देगा; प्रार्थना क्या है, पूजा क्या है– प्रवचन दे देगा। ऐसी कोई बात ही नही जिसको इस देश में लोग न जानते हो। ब्रह्म की बात उठाओ, हर कोई, राह चलता ब्रह्मज्ञान बघार देगा। आसान है, उसमें कुछ हर्जा नही है। लेकिन भीतर जाने की बात मत करो। पांव डगमगाते हैं! घबड़ाहट होती है!

पहली तो घबड़ाहाट यह कि रास्ता नया! दूसरी और गहरी घबड़ाहट यह कि अकेले हैं! अकेले तो कभी कही गए नही, जब भी गए किसी के साथ गए कोई यात्रा अकेले न की, तो अकेले की आदत ही छूट गई है। इसीलिए तो संन्यासी अकेलेपन के अभ्यास के लिए एकात में चला जाता है। वह सिर्फ बाहर से अकेलेपन

का अभ्यास कर रहा है, ताकि धीरे-धीरे भीतर भी अकेले होने की हिम्मत आ जाए, कुशलता आ जाए। बाहर एकांत के अभ्यास का इतना ही प्रयोजन है कि थोड़ा अकेले होने की हिम्मत आ जाए। बैठता है अंधेरी गुफा में, कोई नहीं, अकेला, अंधकार घिरता है, रात आ जाती है, जंगली जानवर सब तरफ, अकेला! धीरे-धीरे रमता है। धीरे-धीरे भूलने लगता है कि दूसरे की जरूरत है। धीरे-धीरे साहस आता, आत्मविश्वास बढ़ता है कि नहीं, अकेला भी हो सकता हूं। ऐसे बाहर का एकांत फिर भीतर ले जाने में सीढ़ी बन जाता है।

बाहर का एकांत अंत नहीं है – साधन है। इसलिए जिसने यह समझ लिया कि गुफा में बैठना आ गया तो अन्तरज्ञान हो गया, वह भटक गया। गुफा में बैठे रहो लाखों वर्षों तक, कुछ भी न होगा। गुफा में बैठना तो सिर्फ एक कदम था। ऐसे ही जैसे कोई तैरना सीखना चाहता है, तो एकदम से गहरे में नहीं जाता; किनारे पर, जहा गहराई नहीं है, गले-गले पानी है, कमर-कमर पानी है, वही तड़फड़ाता है, वहीं सीखता है। सीख ले एक दफा तो फिर गहरे में जाता है। पर सीख के भी वही तड़फडाता रहे किनारे पर ही, तो तैरना सीखा-न-सीखा बराबर। उस किनारे पे तो बिना ही सीखे खड़े हो जाते; गले-गले पानी था, सुरक्षित थे।

तो जो लोग गुफाओं में बैठ कर बंद हो गए हैं और सोचते है, पा लिया है, वे भी भ्राति में है।

कुछ संसार में खोए है, कुछ संन्यास में खो गए हैं।

संन्यास तो केवल साधन है, ताकि तुम्हें थोड़ा भीड़ से बाहर निकाल ले; थोड़ी झलक दे, और इस बात का भरोसा दे कि अकेले में भी मजा है, कि अकेले में और ज्यादा मजा है, कि अकेले की भी धुन है, कि अकेले का भी नशा है, कि मस्ती है, कि ऐसी मस्ती तो कभी न पायी थी जो अकेले में मिली! थोड़ा गुफा में बैठ कर, बाजार से दूर, भीड़ से दूर, अपनों से दूर, संसार की चिंताओ और फिक्रों से दूर, एक बार स्वाद आ जाए कि अरे, बाहर के अकेलेपन में इतना स्वाद है तो कितना न होगा भीनर के अकेलेपन में! फिर तो भीतर की भी पुकार उठने लगती है। निश्चित ही कोई गुफा इतनी अकेली नही है जितनी अकेली भीतर की गुफा है। क्योंकि गुफा में भी वृक्ष हिलते हैं बाहर, आवाज होती है, हवा गुजरती है, कोयल गीत गाती है, सिंह दहाड़ता है। कोई है! आकाश में चांद-तारे हैं! हिमालय की गुफा में भी बैठे हो तो हवाई जहाज निकल जाता है। कोई है! कोई इतने अकेले नहीं हो, कहीं भी इतने अकेले नही हो। संसार किसी न किसी रूप में अपनी खबर भेजता ही रहता है। एक चीटी काट जाती है, एक बिच्छू आ जाता है – उचक के खड़े हो जाते हो! कोई है! एकदम अकेले नही हो!

भीतर की गुफा में कोई भी नहीं है। न कोई हवाई जहाज गुजरता, न कोई चीटी चढ़ती, न कोई बिच्छू आता, न कोई सिंह दहाड़ता, न वृक्षो में हवा की सर-

सराहट होती, न पानी का कलकल-नाद है – कोई भी नहीं है, कोई भी नहीं है ! वहां बस विराट, निस्तब्ध, निबिड़ तुम हो ! बड़ा गहन, परम गहन शून्य है वहां ! वहां ऐसी शांति है जैसी तब थी जब परमात्मा ने सोचा भी न था, 'अकेला हूं, संसार को बनाऊं,' वैसी शांति ।

उस घड़ी में तुम फिर पहुंच जाते हो जहां परमात्मा रहा होगा, संसार को बनाने के पहले । तुम प्रथम को छू लेते हो । तुम उस सूर्योदय के क्षण में पहुंच जाते हो, जहां संसार शुरू न हुआ था; जहां अभी संसार प्रगट न हुआ था, बीज में छिपा था; जहां ब्रह्मांड अभी अंड में खोया था; जहां अभी सपना परमात्मा का फैलना शुरू न हुआ था । तुम सृष्टि के प्रथम चरण में पहुंच जाते हो । वैसी गहन शांति है । अनंत शांति है । शाश्वत शांति है ।

स्वाभाविक, घबड़ाहट होती है । वह शांति वैसी ही है, जैसी मृत्यु में है । सब खो जाता है । तो डर लगता है । इसलिए भीतर जाने की लोग बातें सुनते हैं, विचार भी करते हैं कि कभी जाएंगे ।

दो व्यक्ति बात कर रहे थे । एक-दूसरे के ऊपर अपने-अपने जीवन की छाप डालने की चेष्टा कर रहे थे । बड़ी हांक रहे थे । एक ने कहा कि मैं रोज सुबह पांच बजे उठता हूं । दूसरे ने कहा, यह कुछ भी नहीं, मैं तीन बजे उठता हूं । ऋषि-मुनि सदा तीन बजे ही उठते रहे । पांच बजे भी कोई उठना है ! आलसी हो ! मैं तीन बजे उठता हूं–स्नान, ध्यान, पूजा-पाठ, फिर घूमने जाता हूं सूर्योदय के समय, फिर आ के शास्त्र-अध्ययन, मनन; फिर दफ्तर जाता हूं; फिर दफ्तर से लौटता हूं; फिर खेलने जाता हूं; फिर सांझ घर आता हूं–बच्चों के पास बैठना, चर्चा, संगीत; फिर ठीक समय पर, नौ बजे सो जाता हूं ।

दूसरा सुन के बड़ा चकित हुआ । उसने कहा, 'कब से ऐसा कर रहे हो ?' वह व्यक्ति बोला, 'यह मत पूछो । कल से शुरू करने का इरादा है ।'

बस लोग इरादे बांधते हैं । ध्यान–करेंगे ! जिसने कहा, करेंगे, चूका । करो ! इस क्षण है क्षण । उतरो, योजना मत बनाओ । योजना मन का धोखा है । मन बड़ा चालाक है । वह कहता है, कल करेंगे !

लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, संन्यास में उतरना है । मैं कहता हूं 'उतर जाओ, उतरना है तो ! कौन रोक रहा है ? मैं तो नहीं रोक रहा !' वे कहते हैं, 'नहीं, उतरेंगे ।' फिर तुम्हारी मर्जी । कल पे तुम्हारा भरोसा है ? कल होगा ? ऐसा आश्वस्त हो ? बीच में मौत आ जाएगी तो क्या करोगे ? कहोगे कि संन्यास लेना है, जरा ठहर ?

संन्यासिनी है हमारी : गीता । उसके पिता संन्यास लेना चाहते थे । कोई साल भर से मुझसे कहते थे । सुनते हैं मुझे कोई दस वर्षों से । अभी कोई दो महीने पहले आए थे । महीने भर यहां रहे । दो तीन बार मिलने आए । मैंने उनसे कहा,

'अब किसलिए देर कर रहे हो ?' वे कहते हैं, 'कुछ देर नहीं है बस ... ! अब आप तो समझते हैं। लेना है, और ले के रहूंगा !' आखिरी बार मुझे मिलने आए थे, मैंने उनसे कहा था कि 'पक्का है, कल होगा ?' उन्होंने कहा, 'अभी तो कोई बूढ़ा नहीं हो गया हूं।' लेकिन गए। वह आखिरी मिलना हुआ। उस दिन यहां से उठ के गए, अस्पताल में ही गए सीधे। रात हार्ट-अटैक हो गया। फिर बचे नहीं।

कल पर टालते हैं! कल पर कर लेंगे। जिसने कल पे टाला, वह असल में करना नही चाहता। अच्छा हो कि कहो, करना नही है। तो भी कम-से-कम ईमानदारी तो होगी, सत्य तो होगा, प्रामाणिकता तो होगी। लेकिन बेईमानी बड़ी है, तुम कहते हो, करेंगे ! इससे तुम छिपाते हो। करना भी नही चाहते और यह भी अपने को आश्वासन दिला लेते हो कि कोई बुरा आदमी थोड़ी हूं, धार्मिक आदमी हूं, करना तो है ही।

लोग बहाने खोजते हैं – न मालूम कितने-कितने ! पति कहता है कि पत्नी रोकती है। कौन किसको रोक सका है : कौन किसको रोक सका है, कब रोक सका है ! मौत जब आएगी तो पत्नी रोकेगी ? और किसी चीज में पत्नी नहीं रोक पाती। पत्नी जिन्दगी भर मे रोक रही है कि दूसरी औरतो को मत देखो, नही रोक पायी। तुम कहते हो, क्या करें, मजबूरी है ! मगर जब कहती है, ध्यान मत करो – तत्क्षण राजी हो जाते हो, बिलकुल ठीक है। पत्नी रोकती है, क्या करें !

तुम जिसमें रुकना चाहते हो, किसी का भी बहाना खोज लेते हो। जिसमें तुम रुकना नही चाहते, तुम कोई बहाना मानने को राजी नही होते। तुम कहते हो, विवशता है। वासना पकड़ लेती है, क्या करे ? चिकित्सक रोक रहा है कि ज्यादा खाना मत खाओ। पत्नी रोक रही है, बच्चे समझा रहे हैं, पडोसी मित्र समझाते हैं।

एक मेरे मित्र है, खाए चले जाते है। बहुत भारी हो गई देह, सम्हाले नही सम्हलती। चिकित्सक समझा-समझा के परेशान हो गया है। अभी आखिरी बार चिकित्सक के पास गए थे तो कहने लगे कि बड़ी अजीब-सी बात है ! रात सोता हूं तो आंख खुली की खुली रह जाती है। चिकित्सक ने कहा कि रहेगी, चमडी इतनी तन गई है कि जब मुंह बंद करते हो तो आंख खुल जाती है. जब मुंह खोले रहते हो तो थोड़ी चमडी शिथिल रहती है, तो आंख बंद रहती है। होगा ! सारी दुनिया रोक रही है। खुद भी कहते हैं, रोकना चाहते है, मगर क्या करें, विवशता है !

ऐसी विवशता कभी ध्यान के लिए पकड़ती है ? ऐसी विवशता कभी संन्यास के लिए पकड़ती है ? ऐसी विवशता कभी आत्मखोज के लिए पकड़ती है ? नही, तब तुम बहाने खोज लेते हो। तुम कोई न कोई रास्ता खोज लेते हो – बच्चे छोटे है, विवाह करना है, जैसे कि बच्चे तुम्हें उठा-उठा के बड़े करने है। वे अपने

से बड़े हो जाएंगे। तुम न भी हुए तो भी बड़े हो जाएंगे। तुम न भी हुए तो भी विवाह कर लेंगे। तुम उनको जरा विवाह से रोक के तो देखना! तब तुम्हें पता चल जाएगा कि तुम्हारे रोके नहीं रुकते, करने का तो सवाल ही दूर है। तुम्हें कौन रोक सका? तुम बच्चों को कैसे रोक सकोगे?

कोई किसी को रोकता नहीं, लेकिन आदमी बेईमान है। आदमी रास्ते खोज लेता है। जो तुम नहीं करना चाहते उसके लिए तुम दूसरों पे बहाना डाल देते हो। जो तुम करना चाहते हो, तुम करते ही हो। इसे ईमानदारी से समझना उचित है।

लोग ध्यान की बात करते हैं। लोग आत्मा की बात करते हैं, परमात्मा की बात करते हैं। वे कहते हैं, किसी दिन यात्रा करनी है, तैयारी कर लें! यात्रा कभी होती दिखाई नहीं पड़ती। वे टाइमटेबल ही पढ़ते रहते हैं।। कुछ लोग हैं जो टाइमटेबल पढ़ते है।

जाओ भी! कभी यात्रा पर भी निकलो! डर स्वाभाविक है। डर के रहते भी जाना होगा। डर के रहते ही जाना होगा। अगर तुमने सोचा कि जब डर मिट जाएगा तब जाएंगे, तो तुम कभी जाओगे न।

कुछ न देखा फिर वजुज एक शोला-ए-पुर पेचोनाब
शमा तक तो हमने भी देखा कि परवाना गया।

—बस परवाना शमा तक जाता हुआ दिखाई पड़ता है, फिर थोड़े ही दिखाई पड़ता है। फिर तो एक झपट और एक लपट – और गया!

कुछ न देखा फिर वजुज एक शोला-ए-पुर पेचोताब
शमा तक तो हमने भी देखा कि परवाना गया।

बस परवाने को लोग शमा तक ही देख पाते है। जब शमा छू गई, एक लपट – और समाप्त!

लोगो ने ध्यान के पास जाते लोगो को देखा है। बस, फिर खो जाते देखा है। इसलिए घबडाहट है। लोगों ने देखा वर्द्धमान को जाते हुए ध्यान की तरफ; फिर एक लपट – वर्द्धमान खो गया! जो आदमी लौटा, वह कोई और ही था। महावीर कुछ और ही है। वर्द्धमान से क्या लेना-देना! वर्द्धमान तो राख हो गया, जल गया ध्यान में! सिद्धार्थ को जाते देखा; जो लौटा—बुद्ध। वह कोई और ही।

इसलिए घबड़ाहट होती है कि तुम कही मिट गए! मिटोगे निश्चित! लेकिन यह भी तो देखो कि मिट के जो लौटता है, वह कैसा शुभ है, कैसा सुन्दर है!

परवाने को जाते देखा है तुमने, लपट के सौन्दर्य को भी तो देखो! परवाना जब खो जाता है प्रकाश में, उस प्रकाश को भी तो देखो! तो घबड़ाहट कम होगी।' इसलिए सद्गुरु का अर्थ है। किसी ऐसे व्यक्ति के पास होना, जो खो गया; ताकि तुम्हें भी थोडी हिम्मत बढे, खो जाने में थोड़ा रस आए। तुम कहो कि चलो, देखें; चलो, एक कदम हम भी उठाएं।

मिटना तो होता है, लेकिन मिटने के पार कोई जागरण भी है। सूली तो लगती है, लेकिन सूली के पीछे कोई पुनरुज्जीवन भी है। शास्त्र ही पढ़ोगे तो अड़चन होगी। शास्त्र में कहानी ही वहां तक है, जहां तक परवाना शमा तक जाता है। उसके आगे की कहानी शास्त्र में हो नहीं सकती। कोई महावीर खोजो! कोई बुद्ध खोजो! किसी ऐसे आदमी को खोजो, जो वहां तक गया हो; परवाना मिट भी गया हो और फिर भी उस मिटे से उठती हो धूप, उठती हो गंध, उठती हो सुवास; कोई जो 'न' हो गया हो और फिर भी जिसमें होने की परम वर्षा हो रही हो! कोई ऐसा व्यक्ति खोजो!

सद्गुरु न मिले तो शास्त्र। जब तक सद्गुरु मिले, तब तक सद्गुरु। शास्त्र तो मजबूरी है। वह तो दुर्भाग्य है। वह तो अंधेरे में टटोलना है। शास्त्र पढ़-पढ के घबड़ाहट होगी। और घबड़ाहट को आश्वासन शास्त्र से न मिलेगा; लाख शास्त्र कहे, मगर किताब का क्या भरोसा! जीवन्त कोई चाहिए!

इसलिए जगत मे जब भी धर्म की लपट आती है, वह किसी जीवन्त व्यक्ति के कारण आती है। महावीर जब हुए, लाखो लोग संन्यस्त हुए! एक आग लग गई सारे जगल मे! वृक्ष-वृक्षो पर आग के फल खिले! जिनने कभी सपने में भी न सोचा होगा, वे भी संन्यस्त हुए!

तुमने कभी जगल देखा है, पलाश-वन देखा है? जब पलाश के फूल खिलते हैं तो पूरा जंगल गैरिक हो उठता है, लपटों से भर जाता है! ऐसा जब महावीर चले इस जमीन पर थोड़े दिन, वे दिन परम सौभाग्य के थे। वैसे चरण इस पृथ्वी पर बहुत कम पड़ते हैं। तो जिनको भी उनकी गंध लग गई, जिनको भी थोड़ी-सी उनकी हवा लग गई, उन्ही को पर लग गए! वही परवाने हो गए! फिर उन्होने फिक्र न की। इस आदमी को देख के भरोसा आ गया। उन्होने कहा कि ठीक है, तो हम भी छलांग लेते है! एक श्रद्धा जन्मी। श्रद्धा शास्त्र से कभी पैदा नही होती, शास्त्र से ज्यादा से ज्यादा विश्वास पैदा होता है। श्रद्धा के लिए कोई जीवन्त चाहिए, कोई प्रमाण चाहिए, कोई प्रत्यक्ष चाहिए – जिसमे वेद खडे हो! कोई शास्ता चाहिए, जिसमें शास्त्र जीवंत हो! फिर जब महावीर खो जाते हैं तो लोग शास्त्रों में उनकी वाणी इकट्ठी कर लेते हैं, फिर पूजा चलती है, पाठ चलता है, पंडित इकट्ठे होते है, सब मुर्दा हो जाता है, फिर सब मरघट है। महावीर जीवित थे तब जिन-धर्म जीवित था, फिर तो सब मरघट है।

और ध्यान रखना, हताश मत होना, ऐसा कभी भी नही होता कि पृथ्वी पर कोई चरण न हो जिनकी वजह से पृथ्वी धन्यभागी न हो। ऐसा कभी नही होता। इसलिए यह मत सोचना कि क्या करें, अभागे हैं हम, महावीर के समय मे न हुए! महावीर के समय में भी तुम्हारे जैसे बहुत अभागे थे, जो महावीर को न देख पाए। महावीर उनके गांव से गुजरे और उन्होंने न देखा। उन्होंने महावीर में कुछ और

देखा। किसी ने देखा : 'यह आदमी नंगा खड़ा है, अनैतिक है। अश्लीलता है यह तो। परम साधु हो चुके हैं; मगर नग्न खड़ा होना, यह तो समाज के विपरीत व्यवहार है।' खदेड़ा महावीर को गांव के बाहर, पत्थर मारे। जिसके चरणों में मिट जाना था, उसका विरोध किया। और यह मत सोचना कि वे ना-समझ लोग थे – वे तुम्हीं हो। वे तुम जैसे ही लोग थे। इसमें कुछ फर्क नही है, जरा भी फर्क नहीं है। और जब उन्होंने ऐसे तर्क खोजे थे तो उनका भी कारण था, कि यह आदमी वेद-विरोधी है – और वेद तो परम ज्ञान है! अब शासता सदा ही शास्त्र-विरोधी होगा। उसका कारण है, विरोधी होने का; क्योंकि जब जीवन्त घटना घट रही हो धर्म की तो तुम बासी बातें मत उठाओ। बासी बातों से क्या लेना-देना? जब ताजा भोजन तैयार हो तो ताजा भोजन बासी भोजन के विपरीत होगा ही, क्योंकि तुम बासे को फेंक दोगे। तुम कहोगे, जब ताजा मिल रहा है तो बासे को कौन खाए! बासे को तो तभी तक खाते हो जब ताजा नही मिलता; मजबूरी में खाते हो।

जब शासता पैदा होता है तो शास्त्रों को लोग हटा देते हैं। वे कहते हैं, 'रखो भी, फिर पीछे देख लेंगे! यह घड़ी पता नहीं कब विदा हो जाए! अभी तो जो सामने मौजूद हुआ है, अभी तो जो प्रगट हुआ है, अवतरित हुआ है, अभी तो जो लपट जीवंत खड़ी है – इसके साथ थोड़ा रास रचा लें, थोड़ा खेल खेल लें, इसके साथ तो थोड़े पास हो लें। यह तो थोड़ा सत्संग का अवसर मिला है, शास्त्र तो फिर देख लेंगे। कोई जल्दी नही है, जन्म पड़े हैं, जीवन पड़े हैं।'

तो जब भी कोई शासता पैदा होता है, पुराने शास्त्रो को मानने वाले लोग उसके विपरीत हो जाते हैं, क्योंकि उस आदमी कारण के शास्त्रों को लोग हटाने लगते हैं। शास्त्रो को हटाते हैं तो पंडितों को हटाते हैं, तो सारा व्यवसाय हटाते हैं। कठिन हो जाता है। पडित दुश्मन हो जाते हैं। फिर जब यह शासता मर जाता है, वही पंडित जो इसके दुश्मन थे, मरघट पे इकट्ठे हो जाते हैं – श्रद्धाजलि चढाने को। फिर वे ही फिर शास्त्र बना लेते हैं। उनकी दुश्मनी जीवंत से थी, शास्त्र से थोड़ी थी। फिर वे ही शास्त्र बना लेते हैं।

यह बडे मजे की बात है। महावीर तो क्षत्रिय लेकिन महावीर के जितने गणधर थे, सब ब्राह्मण! तो बड़ी हैरानी की बात है। क्या, मामला क्या है? महावीर के मरते ही ब्राह्मण झपटे, उन्होंने कहा, यह तो अच्छा अवसर मिला, फिर शास्त्र बना लो। उन्होंने तत्क्षण शास्त्र खड़े कर दिए। जैन धर्म निर्मित हो गया। अब अगर कोई पुन. जीवंत धर्म को लाए, तो फिर शास्त्री, पंडित, शास्त्र का पूजक, फिर कठिनाई में पड जाता है, फिर मुश्किल में पड़ जाता है। वह कहता है, यह फिर गडबड़ हुई। फिर उसके व्यवसाय में व्याघात हुआ।

ध्यान रखना, भीतर अगर तुम जाना चाहते हो तो कोई-न-कोई द्वार कहीं-न-

कहीं पृथ्वी पर सदा खुला है। तुम जरा आंखें खुली रखना, शास्त्रों से भरी मत रखना; तुम जरा मन ताजा रखना, शब्दों से बोझिल मत रखना; सिद्धांतों से दबे मत रहना, जरा सिद्धान्तों के पत्तों को हटा कर तुम जीवन्त धारा को देखने की क्षमता बनाए रखना। तो कहीं-न-कहीं तुम्हें कोई सद्गुरु मिल जाएगा। उसके पास ही तुम्हारा भय मिटेगा भीतर जाने का। अभी तो तुम शास्त्र पढ़ते रहो, मन्दिर में घंटियां बजाते रहो, पूजा करते रहो, अर्चना के थाल सजाते रहो—सब धोखा है।

दिल को महवे-गमे-दिलदार किए बैठे हैं
रिंद बनते हैं मगर जहर पिए बैठे हैं।

लोग बनते हैं कि मद्यप हैं, कि शराब पिए हैं, कि मस्ती में है।

रिंद बनते हैं मगर जहर पिए बैठे हैं! खयाल ही देते है कि बड़ी मस्ती में हैं; लेकिन गौर से भीतर देखो तो हृदय में सिवाय घावों के और कुछ भी नहीं, जहर पिए बैठे है।

मन्दिरो में, मस्जिदों में, गिरजाघरो में, जो तुम्हें लोग पूजा और प्रार्थना में डोलते हुए मालूम पड़ते हैं, धोखे में मत पड़ जाना, जरा उनके भीतर देखना : कुछ भी नही डोल रहा है! वे नाहक का व्यायाम कर रहे हैं। जब भीतर कोई डोलता है तो फिर क्या मन्दिर और क्या मस्जिद! फिर पूजा के थाल क्या सजाना! फिर तो जहा भी वे होते है, वही डोलते है। कबीर ने कहा है: 'जहां-जहां डोलू सो-सो परिक्रमा, खाऊं-पिऊं सो सेवा।' परमात्मा की सेवा हो गई, खा पी लिया, मजे से खा-पी लिया, चढ़ गया भोग। और कहां जाना है?

जिस दिन तुम्हारे जीवन मे मधु का अवतरण होता है, जिस दिन तुम्हारे जीवन में अंतरात्मा की झलक भी मिलने लगती है, उस दिन तुम जहा हो वहीं मन्दिर है। अनर्यात्रा! तुम्हारी ही देह मन्दिर बन जाती है।

'प्रतिक्रमण, घर वापिस लौटना, हमें असहज, कठिन, असंभव-सा क्यों लगता है?'

स्वाभाविक है। कभी गए नही उस द्वार, कभी चखा नही उसे, कोई संबंध न बना, अजनबी हो – इसलिए। थोड़ा – थोड़ा अभ्यास करो। बैठो उन लोगों के पास जो पहले से पिये हो। थोड़ी उनकी मस्ती को संक्रामक होने दो। थोड़े उनके साथ डोलो, उठो, बैठो, परिक्रमा करो, सेवा करो। थोड़ा झुको उनके पास, जो लबालब है और ऊपर से बहे जा रहे हैं। थोड़े न बहुत छींटे तुम तक भी पहुंच ही जाएंगे।

बस इतनी ही चेष्टा है यहां कि थोड़े छींटे तुम तक पहुंच जाएं। एक बार भी तुम्हें भीतर की धुन का जरा-सा नशा आ जाए, फिर तुम न रुकोगे, फिर तुम्हें कोई भी न रोक पाएगा। फिर कोई कभी किसी को रोक ही नहीं पाया।

तीसरा प्रश्न : मुझे मालूम नहीं, प्रसाद संकल्प से मिला या समर्पण से, पर मिला – और मिल रहा है – और अकारण, और अयाचित, और असमय, और भरपूर – वर्षा की भांति।...?

अब इससे प्रश्न मत उठाओ। डूबो! अब चिंता मत करो : कहां से मिल रहा है, क्यों मिल रहा है! परमात्मा जब मिलता है तो ऐसे ही बेबूझ मिलता है। तुम्हारे हिसाब-किताब से थोड़े ही मिलता है! तुमने कुछ किया, इसलिए थोड़ी मिलता है। तुमने चाहा ...!

अलग बैठे थे फिर भी आंख साकी की पड़ी हम पर
अगर है तश्नगी कामिल तो पैमाने भी आएंगे।

– बस प्यास पूरी हो, तो प्याले भर जाएंगे।

अलग बैठे थे फिर भी आंख साकी की पड़ी हम पर! प्यास हो तो परमात्मा तुम्हें खोजता है। फिर गिड़गिड़ाना थोड़ी पड़ता है! फिर भिखारी की तरह रोना थोड़ी पड़ता है, झोली थोड़ी फैलानी पड़ती है!

अलग बैठे थे फिर भी आख साकी की पड़ी हम पर! कहीं भी बैठे होओ, अलग कि भीड़ में, क्या फर्क पड़ता है! जहां प्यास है, वहां साकी की नजर पहुंच ही जाती है। प्यास ही उसके लिए निमंत्रण है। प्यास ही प्रार्थना है। जो प्यास नहीं जानते, वे और शब्द दोहराते हैं। जिनको प्यास की समझ आ गई, वे सिर्फ प्यास ही प्यास में डूबे जाते हैं। वे इतने प्यासे हो जाते हैं कि भीतर कोई प्यासा भी नहीं होता, बस प्यास ही प्यास होती है – उस पार से उस पार, रोएं-रोएं में, धड़कन-धड़कन में, श्वास-श्वास में!

अलग बैठे थे फिर भी आंख साकी की पड़ी हम पर
अगर है तश्नगी कामिल तो पैमाने भी आएंगे।

– अगर प्यास पूरी है तो तुमने प्याला तो तैयार कर दिया। अब, अब तुम फिक्र छोड़ो! अब शराब भी आ जाएगी। अब कोई भर भी देगा प्याले को, तुम प्याला तो बनाओ!

सदा ही परमात्मा अकारण घटित होता है। इससे तुम गलत मत समझ लेना मुझे। तुम यह मत समझ लेना कि फिर क्या करना। जब मैं कहता हूं कि अकारण घटित होता है, तो मैं यह कह रहा हूं कि तुम जो भी करते हो, वह तो ना-कुछ है। जब परमात्मा घटित होगा तो तुम जानोगे : अरे, मैंने कुछ भी तो नहीं किया था! यद्यपि तुमने बहुत किया था, लेकिन अब तुम जानोगे कि कुछ भी तो न किया था। जो मिला है, वह इतना ज्यादा है कि जो किया था अब उसकी बात भी करनी फिजूल है। मिला है खजाना अकूत, जो तुमने किया था वह कौड़ी कौड़ी था। अब उसकी बात भी उठाने में शर्म लगेगी। अब तब तुम यह थोड़ी कहोगे

परमात्मा से कि 'सुनो जी ! कितने उपवास किए, याद है ? कि कितने ध्यान में बैठता था, भूल तो नहीं गए ? कितना दान-पुण्य था !'

सुना है मैंने, एक कंजूस मरा। स्वर्ग के द्वार पर पहुंचा। द्वारपाल ने पूछा कि 'कुछ पुण्य वगैरह किए है ?' ध्यान रखना, ठीक से कहानी सुन लेना, पूछेगा, तुम भी जब जाओगे ! और वही गलती मत कर देना जो इस आदमी ने की। उसने कहा, 'हां किये हैं।' बस यही तो पापी का लक्षण है। अगर वह कह देता 'कहा, क्या पुण्य ! सामर्थ्य कहा ! करने को मेरे पास क्या था !' द्वार खुल जाते, लेकिन चूक गया। उसने कहा, 'किए है।' तो द्वारपाल ने कहा, 'फिर ठहरो। फिर खाते-बही देखने पड़ेंगे। हिसाबी किताबी आदमी हो।' खाते-बही देखते तो पता चला, एक भिखारी को चार पैसे उसने दान दिए थे।

तुम कहोगे 'बस इतना ?' लेकिन 'बस इतना' ही सिद्ध होता है जो तुमने किया है। क्या किया है ? कभी एक पैसा किसी भिखारी को दे दिया है। और उसी की जेब काटी थी पहले; नही तो भिखारी ही कैसे होता, यह भी तो सोचो। फिर उसी को समझाने लिए एक पैसा भी दे दिया है कि उपद्रव न कर, हड़ताल वगैरह पे मत जा, शात रह। क्या किया है तुमने ? चार पैसे भिखारी को दिए थे !

द्वारपाल चिंतित हो गया। उसने अपने सहयोगी से पूछा, बोल भाई, क्या करे ? उसने कहा, 'करना क्या है ! चार पैसे वापस दो और कहो कि नर्क जा, नर्क जा, खतम कर मामला, हिसाब साफ कर !'

तुम्हारा किया कितना हो सकेगा ? चम्मच-चम्मच से सागर के किनारे हम बैठे हैं। चम्मचें भर रहे है, इससे कहीं सागर उलिचता है ! इससे कही कुछ होता नही। लेकिन इससे तुम यह मत समझ लेना कि मै यह कह रहा हूँ कि चलो, झंझट मिटी, चार पैसे भी अब देने की कोई जरूरत नही। यह मैं नही कह रहा हूँ। मै तुमसे कहता हूं, देना ! दिल खोल के देना ! लेकिन अखीर में याद रखना कि वे चार पैसे ही दिये। कितना ही दिया हो, सब दे दिया हो, सब लुटा दिया हो, तो भी चार पैसे ही तुम्हारे पास थे, ज्यादा तो तुम्हारे पास ही न था, ज्यादा तुम देते भी कैसे !

इसलिए जिन्होने पाया है, उनको हमेशा लगा . कुछ भी तो नही किया, प्रसाद-स्वरूप है। यही भूल पैदा होती है। सुनने वाला समझ लेना है, चलो तो अब यह भी झंझट नहीं। अब कुछ करना ही नही, जब मिलना है प्रसादरूप तो जब मिलेगा, मिलेगा। लेकिन प्रसाद उन्हीं को मिलता है जो अपनी समग्र चेष्टा करते हैं। मिलता प्रसादरूप है लेकिन प्रसाद उन्ही को मिलता है जो समग्र चेष्टा करते हैं।

इसलिए चिंता मत करो। संकल्प से मिला या समर्पण से, यह भी छोड़ो। कैसे मिला, इसकी क्या फिक्र ! मिला ! अब तो थोड़ा नाचो ! अब विचार छोड़ो, अब तो थोड़ा समारोह करो ! अब तो कुछ उत्सव करो !

जमीं पे जाम को रख दे, जरा ठहर साकी
मैं इस पे हो लूं तसद्दुक तो फिर उठा के पिऊं।

अब तो जरा बलिहारी हो जाओ। कहो कि जरा रख जमीन पर, पहले मैं नाच लू, थोड़ा बलिहारी हो जाऊं इस पे, फिर उठा के पिऊं। अब तो थोड़ा नाचो!

ध्यान रखना, प्रसाद जब क्षण भर को भी मिलता हो, कण भर को भी मिलता हो--तुम नाचना! तुम्हारे नाचने से प्रसाद बढ़ेगा। उत्सव में ही बढ़ता है। तुम्हारी प्रसन्नता में ही बढता है। तुम्हारे अनुग्रह के भाव में बढ़ता है। सिकुड़ मत जाना। सोचने मत लगना कि कैसे मिला, कहां से मिला, क्यों मिला, मैंने क्या किया था, अब मैं क्या करूं कि और ज्यादा मिले! इसमें तो खो जाएगा; जो मिला है वह भी खो जाएगा; जो द्वार खुला था क्षण भर को वह भी बंद हो जाएगा--तुम्हारे सोच-विचार में! सोच-विचार से तो पर्दे पड़ जाते हैं। नाचना! गाना! गुनगुनाना! जो मिला है, उस पे बलिहारी जाना। कहना-- जमी पे जाम को रख दे, जरा ठहर साकी! परमात्मा से भी कहना, 'जल्दी मत कर, रख! जरा मैं नाच तो लू! मैं इस पे हो लू तसद्दुक तो फिर उठा के पिऊं। पहले बलिहारी जाऊ, पहले नाचू, पहले थोड़ा उत्सव मना लूं, तेरा स्वागत कर लूं! अकारण मिला है! बिना मेरे कुछ किए मिला है। तो ऐसे ही उठा के पी लेना तो अशोभन होगा। शोभा न होगी। ऐसे ही उठा के पी लेना असंस्कृत होगा। थोड़ा नाच के, गुनगुना के, थोड़ी गहन कृतज्ञता में डूब कर!

'मुझे मालूम नहीं, प्रसाद संकल्प से मिला या समर्पण से!'

भाड़ में जाने दो! मालूम करने की फिक्र ही मत करो। मिल गया! कैसे मिलती है कोई चीज, यह तो तब सोचना चाहिए जब न मिली हो। तब आदमी साधन खोजता है। तब कहता है, कहां से जाऊं! चलो मंजिल ही तुम्हें खोजती आ गई, अब तुम फिक्र छोड़ो; कहीं ऐसा न हो कि तुम उधेड़-बुन में पड़ जाओ, और मंजिल हट जाए! क्योंकि जो आ गई है अपने से तुम्हारे पास, अपने से हट भी जा सकती है।

...'पर मिला और मिल रहा है--और अकारण!'

सदा ही अकारण मिलता है। अकारण का बोध बनाए रखना! क्योंकि मन की वृत्ति है कि वह सोचने लगता है जल्दी कि जो मिल रहा है वह कारण से मिल रहा है।

अमरीका का एक बहुत बड़ा करोड़पति हुआ. मार्गन। वह एक भिखारी को हर महीने सौ डालर देता था। भिखारी पर प्रसन्न था। कुछ भिखारी की आवाज में बड़ी जान थी। जब भिखारी गीत गाता तो...। तो उसने कहा कि अब तुझे बार-बार आने की जरूरत नहीं, एक तारीख को सौ डालर तू ले ही जाया कर। तो वह नियम से सौ डालर एक तारीख को ले आता था। ऐसा वर्षों चला। एक

दिन एक तारीख को... वह एक तारीख को एक दिन भी नहीं चूकता था... वह आ के एक तारीख को खड़ा हुआ दफ्तर में और मैनेजर ने कहा कि भई सुनो, अब से पचास डालर ! उसने कहा, 'क्या ? पचास डालर ? क्या मतलब ? ' उसने कहा कि ऐसा है कि मालिक की लड़की की शादी हो रही है, पैसे की उन्हें खुद ही तंगी है। धंधा भी घाटे में जा रहा है। थोड़ी मुसीबत में हैं। इसलिए पचास। उसने कहा, 'हद हो गई ! मेरे रुपयों पे लड़की की शादी की जा रही है ? और घाटा तुम्हें लगे, भोगूं मैं ? समझा क्या है ? बुलाओ मालिक को !'

मन की वृत्ति है कि अगर तुम्हें मिलता चला जाए तो तुम सोचते हो, तुम्हारी पात्रता है। जो तुम्हें मुफ्त मिलता है, तुम धीरे-धीरे सोचने लगते हो, यह भी मेरी पात्रता है। तुम न केवल यह सोचने लगते हो बल्कि तुम प्रतीक्षा करते हो कि मिलना ही चाहिए। अगर न मिले तो शिकायत शुरू हो जाती है।

सोचो ! कहां धन्यवाद और कहां शिकायत ! कहां आभार और कहां शिकवे! लेकिन मन की यह आदत है। और इस आदत के कारण बहुत-से लोग परमात्मा के द्वार से लौट जाते हैं। सत्य आ ही रहा था, करीब आ ही रहा था कि उनकी अकड़ आने लगी। अकड़ आई कि अरे, जब आ रहा है तो निश्चित ही हमने अर्जित किया होगा ! जब आ रहा है तो कोई कारण होगा ! कुछ हममें होगी खूबी, तभी आ रहा है !

सदा याद रखना, तुम जब भी पात्रता के बोध से भर जाओगे, तभी अपात्र हो जाओगे। जब तक अपात्र होने का तुम्हें स्मरण रहेगा, तुम्हारी पात्रता बढ़ती रहेगी। इस विरोधाभास को महामंत्र की तरह स्मरण रखना।

और, जिन्होंने भी उसको पिया है, उनमें से कोई भी नहीं बता सका कि क्यों और क्या ! पीने के पहले की सब बातें हैं। पीने के पहले के लिए सब रास्ते और साधन है। पी लेने के बाद तो फिर राज है, फिर तो रहस्य है।

क्या हमने छलकते हुए पैमाने में देखा
ये राज है मैखाने का इफ्शां न करेंगे।

क्या देखा है लोगों ने परमात्मा में छलकते हु ? उसे कहा नहीं जा सकता !

ये राज है मैखाने का इफ्शां न करेंगे।
क्या हमने छलकते हुए पैमाने में देखा।

वहां जा के लोग चुप हो गए हैं।

वाणी की एक सीमा है। बुद्धि की एक सीमा है। जहां तक साधन है वहां तक बुद्धि की सीमा है। जहा साध्य आया, बुद्धि की सीमा गई। क्योंकि बुद्धि स्वयं साधन है। बुद्धि खोज का उपाय है। जब पहुंच गए, तो बुद्धि की कोई जरूरत न रही।

तो इस सौभाग्य को बढ़ाना ! और बढ़ाने की कला यह है कि उसे अकारण

ही रहने देना। कोई कारण मत खोजना, समझ में न आए, नासमझी में रस लेना। समझने की जरूरत कहां है! समझ कहीं खराब न कर दे, कहीं विश्लेषण खंडित न कर दे! उसे राज ही रहने देना। और तब धीरे-धीरे तुम पाओगे कि जो तुम्हें मिला है, वह मिला ही नहीं, वह तुम्हारे भीतर आवास कर लिया है। वह तुम्हारी आंखों में समा गया। वह तुम्हारी आंखों का नूर हो गया! वह तुम्हारे हृदय की धड़कन बन गया। और ऐसा ही नहीं कि तुम्हें मिला है; अगर तुमने उसे ठीक से पिया तो तुम्हारे द्वारा दूसरों पर भी छलकने लगेगा।

हम लिए फिरते हैं आंखों में चमन ऐ बागबां
जिस तरफ उठी निगाहे-शौक गुलशन हो गया।

और जहां आंख उठ जाती है ऐसे आदमी की, वहीं बगीचे हो जाते हैं, वहीं बगीचे खिल जाते हैं। जिस तरफ देख लोगे, वहीं परमात्मा का फैलाव हो जाएगा। जिस पे तुम्हारी नजर पड़ जाएगी, वह भी चौंक जाएगा। जिसके हृदय में तुम गौर से देख लोगे, वहां भी कोई बीज तड़फ के टूट पड़ेगा और अंकुर हो जाएगा।

पर सम्हालना, मन की आदतें बड़ी पुरानी हैं! मन कर्ता बनना चाहता है। वह कहता है, मैंने किया; मेरे कर्मों का फल है, देखो! बस वहीं चूक हो जाएगी। जल्दी ही तुम पाओगे, आई थी जो झलक, खो गई; दिखा था जो प्रकाश, अब दिखाई नहीं पड़ता; खुला था जो द्वार, बंद हो गया! ऐसा न हो पाए, अपने को अपात्र, और भी अपात्र, अपने को ना-कुछ, कर्ता नहीं, सिर्फ भोक्ता जानना—परमात्मा का भोक्ता! प्यासा जानना, अधिकारी नहीं। और, और-और वर्षा होगी, और-और घने मेघ घिरेंगे, और-और तुम तृप्त होओगे, महातृप्त होओगे।

आखिरी प्रश्न : जब आपको सुनता हूं तो आपका प्रत्येक शब्द दिल की गहराई तक उतर जाता है और हलचल पैदा करता है। लेकिन जब आपको पढ़ता हूं तो वह दिमागी खेल बन के रह जाता है। कृपया बताएं कि ऐसा क्यों होता है!

साफ-साफ है। गणित बिलकुल सीधा है। जब तुम पढ़ते हो तब तुम्हीं होते हो, तब मैं नहीं होता। जो तुम पढ़ते हो, वह तुम ही तुम हो। दिमागी खेल बन के रह जाता है। जब तुम मुझे सुनते हो तो कभी-कभी तुम्हारे जाने-अनजाने मैं भी तुम में प्रवेश कर जाता हूं। कम ही तुम ऐसा मौका देते हो। लेकिन कभी-कभी चूक तुमसे हो जाती है। कभी-कभी बे-भान, तुम जरा दरवाजा खुला छोड़ देते हो, मैं भीतर आ जाता हूं।

इसलिए तुम जब मुझे सुन रहे हो तो बात और है। इसलिए सत्य सदा कहा गया है, लिखा नहीं गया। लिखा जा नहीं सकता। कहना भी बहुत मुश्किल है, लेकिन फिर भी कहा जा सकता है, थोड़ा-सा कहा जा सकता है। ऐसी थोड़ी-सी

खबर दी जा सकती है। क्योंकि कहने में कई बातें सम्मिलित हैं, जो लिखने में खो जाती हैं।

जब तुम किताब पढ़ोगे तो किताब तो मुर्दा होगी। किताब तुम्हारे पास कोई वातावरण तो पैदा न कर सकेगी। किताब का कोई माहौल तो नहीं होता। किताब तुम्हारे पास कोई जीवन्त वातावरण निर्मित नहीं कर सकती। वातावरण तुम्हारा होगा; उसमें ही किताब प्रवेश करेगी।

जब तुम मेरे पास हो, जब तुम मुझे सुन रहे हो, यदि सच में सुन रहे हो, तो तुम्हारा वातावरण यहां नहीं है, वातावरण मेरा है, हवा यहां मेरी है। तुम मेहमान की तरह उसमें हो। और जो समझदार हैं वे अपने को वहीं रख आते हैं जहां जूते उतारते हैं; ताकि तुम यहां गड़बड़ ही न कर सको; ताकि तुम पूरे मुझ में डूब जाओ; ताकि निर्वस्त्र, नग्न; ताकि पूरे के पूरे, बिना किसी आवरण के, अनावृत हो कर तुम मुझे में डूब जाओ; यह थोड़ी-सी देर को जो लहरें मैं तुम्हारे आसपास पैदा करता हूं, ये तुम्हें छू लें! बोलना तो बहाना है। बोलना तो बहाना है, ताकि तुम उलझे रहो सुनने में। यह तो ऐसा है, जैसे छोटा बच्चा उपद्रव करता है, खिलौना दे दिया कि खेल, उलझ गया। बिना बोले, तुम मुश्किल में पड़ोगे। मैं न बोलूं तो तुम्हारा मन हजार-हजार जगह जाएगा। बोलता हूं, बोलने में तुम्हारा मन उलझ गया, सुनने में लग गया; पर यह तो ऊपर-ऊपर की बात है, भीतर कुछ और हो रहा है। इधर तुम उलझे कि उधर मैंने तुम्हारे हृदय को टटोला। एक हाथ से तुम्हें खिलौना देता हूं, दूसरे हाथ से तुम्हारे हृदय को टटोल रहा हूं। कभी-कभी··· तुम्हारी आदतें पुरानी हैं, मजबूत हैं। आदतें ऐसी हो गई हैं जड़ कि तुम खिलौने में उलझे भी रहते हो और फिर भी हृदय को बांधे रहते हो, बंद रखते हो। कभी-कभी खुल जाता है। उस घड़ी मैं, तुम्हारे भीतर पहुंच जाता हूं। उस घड़ी, मेरा और तुम्हारा होना मिट जाता है। उस घड़ी हम एक ही वातावरण के हिस्से हो जाते हैं। एक सागर की तरंगें! इसलिए स्वाभाविक है कि उस क्षण कुछ हो जाए, जो किताब से न हो सकेगा।

फिर, जब तुम मेरे पास हो तो बोलना तो मेरे पास होने का एक अंश मात्र है। पास होना बडी घटना है! सान्निध्य बड़ी घटना है। निकट होना···तो मेरी तरंगें और तुम्हारी तरंगें एक रासलीला में लीन होती हैं। तुम मेरे आसपास नाचते हो, मैं तुम्हारे आसपास नाचता हूं। कुछ घटता है, जो खाली आंखों से नहीं देखा जा सकता! कुछ घटता है, चर्म-चक्षु उसे नहीं देख पाते! कुछ अदृश्य में घटता है!

तुम दृश्य ही तो नहीं हो। मैं जो तुम्हें दिखाई पड़ रहा हूं, उसी पर तो सीमित नहीं हूं। तुम्हें अपने अदृश्य का पता नहीं है, मुझे मेरे अदृश्य का पता है। इसलिए मैं तुम्हारे अदृश्य को भी पुकारता हूं। तुम्हारा अदृश्य भी बाहर आ जाता है।

एक नृत्य शुरू होता है। उस नृत्य में ही तुम्हारे हृदय में कुछ फूल खिलते हैं, कमल खिलते हैं।

यह सवाल बोलने का ही नहीं है। और यह जो मैं बोल रहा हूं, ये कोरे शब्द नहीं हैं; ये किसी गहन अनुभव में डूब कर आए हैं; ये किसी गहन अनुभव से सिक्त हैं, किसी गहन अनुभव में पगे है। यह कोई शब्दों का काव्य नही है, जीवन का काव्य है। कवि कहते हैं:

दिल में घर करने के अंदाज कहां से लाऊं
हो असर जिसमें वह आवाज़ कहां से लाऊं!

ऋषि यह कहते नहीं। आवाज सहज आती है, जो दिल में घर कर जाती है

दिल में घर करने के अन्दाज़ कहां से लाऊं! जब तुम्हारे पास कुछ संपदा होती है अनुभव की, तो आवाज़ अपने-आप उस अंदाज को पा लेती हे जो दिल में घर कर जाता है। नहीं कि इसका कोई अभ्यास है; नही कि इसकी कोई वक्तृत्वशैली है; नही कि इसका कोई विधि-विधान है – नहीं, कुछ भी नहीं है। जब तुम पाते हो सत्य को, तो सत्य का पाना ही इतना विराट है कि तुम्हारे हर शब्द में उसकी धुन, हर शब्द में उसका रस, हर शब्द में उसका संगीत और सुवास फैलने लगती है।

दिलमें में घर करने के अन्दाज कहां से लाऊं
हो असर जिसमें वह आवाज कहां से लाऊं!

– आ जाती है। पहले उसे ले आओ जिसे प्रगट करना है; फिर प्रगट करने की आवाज अपने से आ जाती है। यही तो कवि और ऋषि में फर्क है। कवि आवाज की फिक्र करता है। कवि फिक्र करता है वाहन की। ऋषि फिक्र करता है वाहक की। ऋषि फिक्र करता है विषय-वस्तु की। जब बोलने को कुछ हो तो बोलना आ जाता है। ऐसे बोलना आ जाए तो ज़रूरी नही है कि बोलने को कुछ हो। बोलना तो सभी को आता है। बोलने मात्र से पता नही चलता कि कुछ बोलने को तुम्हारे पास है। बोलते तो तुम चौबीस घंटे हो – बिना कुछ हुए। कुछ भी नहीं देने को, फिर भी बोले जाते हो। उसी को तो हम बड़बड़ कहते है, बकबक कहते है। बड़बड़ का इतना ही अर्थ है कि कुछ है नहीं बोलने को, लेकिन बोले चले जाते हो; क्या करें, चुप होने की आदत नही है! क्या करें, चुप होना भारी पड़ता है, बोले चले जाते हैं!

लेकिन फिर एक और बोलना भी है, जब तुम्हारे पास कुछ देने को होता है। वाणी वाहन बनती है। वाणी घोड़ा बनती है। तो जो शब्द में तुम्हारे पास पहुंचा रहा हूं, वे तो घोड़ों की भाँति है; उन पे बैठा सवार भी कभी-कभी तुम्हें दिखायी पड़ जाता है। वही तुम्हारे हृदय को पकड़ लेता है। वही तुम्हें मंथन में डुबा देता है।

किताब से यह न हो सकेगा; लेकिन किताब से भी हो सकता है, अगर तुम धीरे-धीरे मुझे सुनने में समर्थ हो जाओ। इसलिए मैंने कहा है लोगों को कि मैं जैसा बोलता हूं वैसी ही किताबें रहें, उन में जरा भी फिर्क न किया जाए। उनको बदला

न जाए; क्योंकि लिखने का ढंग और होता है, बोलने का ढंग और होता है। बोला हुआ शब्द अलग बात है, लिखा हुआ शब्द अलग बात है। तो मैंने कहा है कि जैसा मैं बोलता हूं, वैसा ही लिखे में हो; ताकि अगर एक बार तुम्हारा मुझसे तारतम्य बंध जाए तो किताब को पढ़ते-पढ़ते भी तुम मुझे सुनने लगोगे। तो जिन्होंने मुझे ठीक से सुना है, वे किताब को पढ़ते वक्त भी किताब को नहीं पढ़ेंगे, मुझे सुनेंगे। किताब उनसे बोलने लगेगी। एक बार तुमने मुझे अपने हृदय में जगह दे दी, तो फिर किताब से भी मैं तुम्हारे पास आ सकूंगा। बिना किताब के भी आ सकूंगा। तुमने जरा मेरी याद की तो भी पास आ जाऊंगा। तुम पर निर्भर है।

और जब मैं कहता हूं 'अगर ठीक से सुना', तो मेरा अर्थ है: 'अगर प्रेम से सुना, सहानुभूति से सुना, सहयोग किया मुझसे, श्रद्धा से सुना, सन्देह को हटा के सुना, अपने मन को हटा के सुना; कहा अपने मन को कि हट, थोड़ी जगह दे। तो, तो मेरा प्रेम तुम्हें बेहोश भी बनाएगा और मेरा प्रेम तुम्हें होश में भी लाएगा। यह बेहोशी कुछ ऐसी है कि इसमें होश बढ़ता चला जाता है। यह होश कुछ ऐसा है कि इसमें बेहोशी बढती चली जाती है।

हमें भी देख जो इस दर्द से कुछ होश में आए हैं
अरे दीवाना हो जाना मुहब्बत में तो आसां है।

—प्रेम में पागल हो जाना तो बहुत आसान है। हमें भी देख जो इस दर्द से कुछ होश में आए हैं!

मैं तुम्हे जो प्रेम दे रहा हू, वह एक दर्द है, वह एक पीड़ा है। उस पीडा से तुम निखरो! वह एक आग है जो तुम्हे जलाएगी। तुम घबडा मत जाना! तुम मेरे साथ चलना, सहयोग करना।

हमें भी देख जो इस दर्द से कुछ होश में आए हैं
अरे दीवाना हो जाना मुहब्बत में तो आसां है।

—बहुत आसान है पागल हो जाना प्रेम में, लेकिन जागना बडा कठिन है! यह प्रेम तुम्हे जगाए तो ही सार्थक हुआ। यह प्रेम तुम्हें उठाए तो ही सार्थक हुआ। यह प्रेम तुम्हें तुम तक पहुचा दे तो ही सार्थक हुआ। हो सकता है। मेरा हाथ बढ़ा है, तुम भी अपना हाथ बढाओ और उसे पकड़ लो!

आज इतना ही।

दिनांक १३ मई, १९७६; श्री रजनीश आश्रम, पूना

जाणिज्जइ चिन्तिज्जइ, जम्मजरामरणसंभवं दुक्खं।
न य विसएसु, विरज्जइ, अहो सुबद्धो कवडगंठी ॥ ६ ॥
जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं, रोगा य मरणाणि य।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसंति जंतवो ॥ ७ ॥
हा जह मोहियमइणा, सुग्गइमग्गं अजाणमाणेणं।
भीमे भवकंतारे, सुचिरं भमियं भयकरम्मि ॥ ८ ॥
मिच्छत्तं वेदन्तो जीवो, विवरीयदंसणो होइ।
न य धम्म रोचेदु हु, महुरं पि रसं जहा जरिदो ॥ ९ ॥
मिच्छत्तपरिणदप्पा तिव्वकसाएण सुट्ठु आविट्ठो।
जीवं देहं एक्कं, मण्णतो होदि बहिरप्पा॥ १० ॥

बोध — गहन बोध — मुक्ति है

पहला सूत्र :

'जाणिज्जइ चिन्तिज्जइ, जन्मजरामरणंसंभवं दुक्खं ।
न य विसएमु विरज्जई, अहो सुबद्धो कवडगंठी ।।'

'जीव, जरा, जन्म और मरण से होने वाले दुख को जानता है, उसका विचार भी करता है; किन्तु विषयों से विरक्त नहीं हो पाता है । अहो, माया की गांठ कितनी सुदृढ है ! '

जीवन में गुजरते तो हम सभी एक ही राह से हैं । उसी राह से महावीर भी गुजरते है । राह में कोई भेद नही है । जीवन का ताना-बाना एक जैसा है । विस्तार में थोडे फर्क होंगे । कोई इस गाव में पैदा होता कोई उस गाव में, कोई इस देह में कोई उस देह में, कोई स्त्री की तरह कोई पुरुष की तरह, कोई गरीब कोई अमीर– ये विस्तार के भेद है, लेकिन जीवन का ताना-बाना एक ही है ।

जन्म, जीवन, मृत्यु–और सब में अनुस्यूत दुख की धारा है । कहां जन्मे, इससे फर्क नही पड़ता । कहां मरे, इससे फर्क नहीं पड़ता । जन्म और मृत्यु का स्वाद तो एक ही है ।

सभी एक ही रास्ते से गुज़रते है । फिर भी उसी रास्ते से सभी अलग-अलग अनुभव और निष्कर्ष लेते हैं । घटनाएं तो एक-सी घटती हैं, लेकिन जीवन के निष्कर्ष बड़े अलग हो जाते है । और जब तक कोई घटना अनुभव न बने, तब तक घटी न घटी बराबर ।

दुख आता है । सभी को आता है । दुख भोगा जाता है । लेकिन दुख भोगना दो ढंग से हो सकता है : कोई जाग कर भोगता है, कोई सोए-सोए भोगता है । जो सोए-सोए भोगता है वह फिर-फिर भोगेगा, क्योंकि जो पाठ लेना था लिया नहीं, जो सीखना था सीखा नही । उसे पुनः पुनः उसी विद्यालय में वापिस लौट आना पड़ेगा ।

दुख को कोई जाग कर भोगता है, तो अनुभव हाथ आता है । अनुभव हाथ आता है कि दुख को मैंने ही पैदा किया था, कैसे पैदा किया था, अब दुबारा वैसा

न करूंगा। इसकी कोई कसम नहीं लेनी पड़ती, न कोई व्रत लेना पड़ता है; क्योंकि व्रत और कसमें तो सब नासमझी के हिस्से हैं, वे तो सोने वाले आदमी की तरकीबें है। जिसने एक बार देख लिया कि आग में हाथ डालने से हाथ जल जाता है, वह किसी मंदिर में, किसी साधु के सत्संग में, प्रतिज्ञा नहीं लेता कि अब आग में हाथ दुबारा न डालूंगा। समझ आ गयी।

समझ काफी है। प्रतिज्ञा से समझ का कोई संबंध नहीं है। नासमझ प्रतिज्ञा लेते हैं। नासमझ व्रत लेते हैं। समझदार तो समझ से जीना शुरू कर देता है। वही उसका व्रत है, वही उसकी प्रतिज्ञा है। एक बार देखा कि हाथ जल गया, अब दुबारा जलना मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि हाथ मैं ही डालूं तभी जलता है।

आग का स्वभाव जलाना है। लेकिन आग तुम्हारे पीछे नहीं दौड़ती; तुम ही आग में हाथ डालो तो ही जलते हो। तो अपनी ही बात है, अपना ही निर्णय है, अपना ही दायित्व है। डालें तो जलेंगे, न डालें तो नहीं जलेंगे। यद्यपि जीवन इतना सरल नहीं है। आज हाथ डालते हो, हो सकता है कल पता चले, जला। खबर आते-आते देर लग जाए। बीज की तरह जो आज घटा है, वृक्ष बनते-बनते समय लग जाए। यह हो सकता है कि तुम्हारे कृत्य में और तुम्हारे फल में थोड़ा समय का फासला हो। तो शायद तुम जोड़ भी न पाओ कि किस कारण से दुख मिला।

जो समझ नही पाते, जाग नहीं पाते, दुख को जाग कर भोगते नही, वे चितन तो बहुत करते हैं, मनन तो बहुत करते हैं कि दुख न हो। ऐसा कौन होगा मनुष्य जो चाहता है दुख हो! दुख न हो, ऐसा तो सभी चाहते है। लेकिन चाह से थोड़े ही दुख रुकता है! जो समझे हैं, उन्होंने तो पाया है कि चाह से ही दुख पैदा होता है। दुख न हो, इस चाह से भी दुख पैदा होता है। चाह मात्र दुख के बीज बोती है। फिर फसल काटनी होती है। चाह मात्र जहर है।

चिंतन, विचार तो बहुत लोग करते हैं।

महावीर कहते है . जाणिज्जइ, चिन्तिज्जइ! लोग जानते भी है। ऐसा भी नही कि नहीं जानते। लोग जानते हैं, कहां-कहा दुख होता है, लेकिन फिर भी सो-सो जाते हैं। शायद जहां-जहां दुख होता है, वहां-वहा मोह का बड़ा आवरण है। ऐसे ऊपर से लगता है कि आग में हाथ डालने से हाथ जलता है, लेकिन भीतर कोई प्रबल वासना है जो बार-बार आग के पास ले आती है; जो कहती है आग में हाथ डालो, बड़ा सुख होगा। तो यह जानकारी ऊपर-ऊपर रह जाती है। तो जब भीतर की वासना प्रबल नहीं होती, तब तो तुम बड़े समझदार होते हो। वासना के अभाव में कौन समझदार नहीं होता!

जब तुम पर क्रोध का तूफान नहीं है, तब तुम भी समझदार होते हो; तुम भी समझा सकते हो, सलाह दे सकते हो कि क्रोध व्यर्थ है, जहर है, अपने लिए दुख का

निमंत्रण है। लेकिन जब क्रोध का आवेश उठता है, जब तुम आविष्ठ होते हो, जब तुम तूफान में घिर जाते हो और क्रोध का बवंडर तुम्हारे चारों तरफ होता है, तब सब समझ खो जाती है। तो ऐसा लगता है, तुम्हारी समझ तो ऊपर-ऊपर है और क्रोध का उत्पात बहुत गहरा है; वहां तक तुम्हारा जानना नहीं है।

सोचते हो, विचारते हो, पर सब सतह पर है, लहरों-लहरों में है। सागर की गहराई में तुम्हारा उतरना नहीं हुआ। वह जागने से ही संभव होता है। क्योंकि तुम चैतन्य हो। जितने जागोगे, जितने चेतन बनोगे, उतने ही भीतर जाओगे। चैतन्य तुम्हारा स्वभाव है। चैतन्य तुम्हारी गहराई, तुम्हारी ऊंचाई है। तो जितने चेतोगे उतने ही गहरे उतरोगे। जिस दिन तुम्हारी चेतना उतनी ही गहरी हो जाएगी जितनी तुम्हारी वासना, उसी क्षण मुक्ति हो जाएगी। जिस क्षण, आग में हाथ डालने से हाथ जलता है, यह सत्य उतना ही गहरा उतर जाएगा जितना आग में हाथ डालने की प्रबल वासना गहरी है, उसी दिन वासना कट जाएगी।

वृक्ष की शाखाओं को मत काटते रहो। उससे कुछ भी न होगा। जड़ें काटनी होंगी। जमीन में गहरे उतरना होगा। अपनी ही चेतना के अंधकार में दीये ले जाने होंगे।

तो महावीर कहते हैं, सोचते हैं लोग, जानते-से भी लगते हैं, किन्तु विषयों से विरक्त नहीं हो पाते हैं। अहो, माया की गाठ कितनी सुदृढ़ होती है!

बड़े आश्चर्यचकित हो महावीर कहते हैं: अहो! कैसी आश्चर्यचकित करने वाली है यह माया की गाठ! जानते, सोचते, सूझते हुए लोग भी अंधे हो जाते है। आंख वाले अंधे हो जाते हैं! समझ वाले भ्रांत हो जाते हैं! शांति के क्षणों मे जो सलाह तुम दूसरे को दे सकते हो, अशांति के क्षणों में खुद के ही काम नहीं आती। अपना ही दीया बुझा लेते हो। अपनी ही सलाह के विपरीत चले जाते हो। अपनी ही समझ को फिर-फिर खंडित कर देते हो। आश्चर्यचकित करने वाली बात है।

महावीर का वचन, 'अहो! माया की गाठ कितनी सुदृढ़ है' बड़ा सोचने जैसा है, बड़ा ध्यान करने जैसा है। महावीर दुखित होते है तुम्हारे लिए, करुणा से भरे हैं। पर हंसते भी हैं कि मूढ़ता बड़ी गहरी है!

तुमने कभी किसी व्यक्ति को सम्मोहित दशा में देखा? किसी को सम्मोहित कर दिया जाता है, मूच्छित कर दिया जाता है। कठिन नहीं, बड़ा सरल है। कोई भी होने को राजी हो तो तुम भी कर सकते हो। कभी छोटा प्रयोग करके देखना। तुम्हारा छोटा बच्चा भी तुम्हे सम्मोहित कर सकता है, तुम बस राजी हो जाना। वह तुमसे दोहराए जाए कि तुम गहरी तंद्रा में जा रहे हो, मूर्च्छा में जा रहे हो, बेहोश होते जा रहे हो — तुम स्वीकार करते जाना। तुम इनकार मत करना कि नहीं। तुम यह मत कहना कि अरे, छोड़! तेरे कहने से कि हम सोये जा रहे

हैं, कहीं हम सो जाएंगे ? तुम प्रतिरोध मत करना । तुम सहयोग करना । तुम उसके सुझाव के साथ बहे जाना । यह जो कहे, माने चले जाना । थोड़ी देर में तुम पाओगे कि खो गये किसी बड़ी गहरी तन्द्रा में । तब तुम्हारा छोटा-सा बच्चा भी अगर कहे कि यह लो, यह आम है मीठा, और प्याज दे दे हाथ में, तो तुम चखोगे; होगी प्याज, लेकिन तुम कहोगे, बड़ा स्वादिष्ट आम है ! तुम्हारा सब स्वाद, प्याज की दुर्गंध, कुछ भी काम न आएगी। क्योंकि तन्द्रा कि गहराई में सुझाव उससे ज्यादा गहरे पहुंच गया जहां तक प्याज की गंध पहुंचती। तुम शांत भाव से स्वीकार कर लिये ।

तो तुमने अगर सम्मोहन करने वाले को बाजार में मदारी को देखा हो तो तुम चकित हो जाओगे; वह जो कह देता है लोग वैसा ही व्यवहार करने लगते हैं ! खासा तगडा जवान है, चौड़ी छाती है, बलिष्ठ भुजाएं हैं, चलता है तो मंच हिलता है – उसको वह बेहोश कर देता है और कहता है, 'तुम एक कोमल तन्वंगी, एक सुंदर युवती हो गये । इस किनारे से मंच के उस किनारे तक चलो ।' तुम चकित हो जाओगे, वह ऐसे चलने लगता है जैसे स्त्री चलती हो, जो कि अति कठिन है पुरुष को चलना । पुरुष के पास वैसे कूल्हे नहीं हैं । स्त्री के पेट में गर्भ के लिए जगह है । उस जगह के कारण उसकी अस्थियों का ढांचा अलग है । इसलिए उसकी चाल अलग है । लेकिन वह पुरुष चलने लगता है स्त्री की चाल से, जो कभी चला न होगा । उसे कुर्सी के सामने बिठा देता है और कहता है, यह गाय खड़ी है, दूध लगाओ । वह कुर्सी के पास उकड़ू बैठ कर–उसी आसन में जिसमें महावीर ज्ञान को उपलब्ध हुए थे, गो-दुग्ध-आसन में महावीर ज्ञान को उपलब्ध हुए थे, पता नहीं क्या करते थे, बैठे थे उकड़ू–दूध खींचने लगता है । वह बिलकुल वैसे ही कृत्य करेगा जैसे गाय सामने खड़ी हो । तुम सब हंसोगे कि कैसा पागल बन रहा है यह । लेकिन सम्मोहन ने इतने गहरे डाल दिया है विचार कि इतने गहरे आंख का विचार भी नही जाता । आख से तो उसको भी कुर्सी दिखायी पड़ती है । लेकिन जहां तक कुर्सी दिखायी पड़ती है उससे भी गहरा सम्मोहन का विचार पहुंच गया । तो अब कुर्सी के ऊपर गाय आरोपित हो जाती है ।

सम्मोहन के सत्य को समझना जरूरी है, क्योंकि मनुष्य का जीवन करीब-करीब सम्मोहित जीवन है । जन्मों-जन्मो में तुमने अपने को ही आत्मसम्मोहित किया है। जन्मों-जन्मों में तुमने कहा है, स्त्री सुंदर है—स्त्री सुंदर हो गयी है । जन्मों-जन्मों में तुमने दोहराया है, 'स्त्री सुदर है'—स्त्री सुंदर हो गयी है । यह तुम्हारा सम्मोहन है । बहुत बार तुम स्त्री की कुरूपता के करीब भी आ जाते हो । बहुत बार पुरुष की कुरूपता के करीब आ जाते हो । बहुत बार जीवन में सिवाय व्यर्थता के कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता है । लेकिन जन्मों-जन्मों का सम्मोहन है । तुमने ही अपने को समझाया है, जीवन बड़ा बहुमूल्य है । तुमने ही अपने को समझाया है

कि जीने का बड़ा मूल्य है। किसी भी कीमत पर जीना है, जिये चले जाना है। जीवेषणा! नर्क में भी पड़े हो तो भी जिये चले जाना है; जीवन का जैसे अपने-आप में ही मूल्य है। कुछ भी न घटता हो, हाथ-पैर गल गये हों कोढ़ में, सड़क पर घिसटते होओ, तो भी कोई आशा, कोई बड़ी गहन आकांक्षा पकड़े रहती है कि जिये चले जाओ, जिये चले जाओ।

यह जो जीने की आकांक्षा है, इस पर पुनर्विचार, इस पर पुनर्ध्यान तुम्हें जगायेगा और तुम्हें बतायेगा कि यह तुमने ही अपने मन में धारणा बना ली; धारणा बना ली तो मजबूत हो गयी। अलग-अलग जातियों में, अलग-अलग समयों में, अलग-अलग धारणाएं महत्त्वपूर्ण हो गयी हैं। जो धारणा महत्त्वपूर्ण हो जाती है वही तुम्हारे जीवन का सत्य हो जाती है। जैसे अफ्रीका में, मध्य अफ्रीका में, सदियों से स्त्रियां बाल घोट लेती रही हैं। अब तुमने सिर-घुटी स्त्री में सौंदर्य कभी न देखा होगा। कोई स्त्री राजी न होगी सिर घोटने को। हमने मान रखा है, बाल सुंदर हैं। अफ्रीका में उन्होंने मान रखा है कि घुटा हुआ सिर सुंदर है। करोगे क्या? वहां जिस स्त्री के बाल हों, उसको पति मिलना मुश्किल हो जाएगा; जैसे यहां घुटे-सिर स्त्री को पति मिलना मुश्किल हो जाएगा; लोग दूर से ही छिड़केंगे। घुटा हुआ सिर तो हमें मुर्दे की याद दिलाता है। इसलिए तो संन्यासी सिर घोंटते रहे। वे यह कहते है कि हम मर गये ससार से, अब तुम हमें मुर्दा समझो। न केवल उतने से भी अफ्रीका में सौंदर्य का बोध पूरा नहीं होता, तो आड़ी-तिरछी लकीरें, आग की सलाखो से शरीर पर, मुँह पर, आँख पर, सिर पर लोग सजा लेते हैं। तुम तो पाओगे, ये तो घाव बना लिये। लेकिन वह सौंदर्य है। उन्होने सदियों तक इसी को सौंदर्य माना है, यही उनका सम्मोहन हो गया है।

जो तुम मान लो वही सत्य हो जाता है। इस जीवन के माने हुए सत्य हैं। दस रुपये का नोट कागज का टुकड़ा है, लेकिन मान्यता है कि दस का नोट है; सम्हाल के रख लेते हो। छोटे बच्चे को दस रुपये का नोट और एक पैसा, दोनों बताओ, वह पैसा चुन लेगा। अभी पैसे तक ही उसकी मान्यता है, दस रुपये का नोट वह जानता ही नहीं।

मैंने सुना है, अमरीका के एक समुद्र तट पर एक आदमी था, बूढ़ा हो गया था और लोग उसके सामने रुपये लाते, पैसे लाते, लेकिन वह हमेशा पैसे चुन लेता। कभी-कभी सौ-सौ डॉलर का नोट उसके सामने रखते, कहते, चुन लो जो भी चुन लो दो हाथों में से। वह पैसे चुन लेता। ऐसा वर्षों से हो रहा था। और जो भी आते समुद्र-तट पर, यह प्रयोग करते, हंसते हुए जाते। एक दिन एक आदमी ने उससे पूछा कि कोई बीस साल से मैं तुम्हें देख रहा हूँ, तुम्हें अब तक अक्ल नहीं आई? जब लोग तुम्हारे सामने सौ डालर का नोट करते हैं और पैसे करते हैं, तुम पैसे चुन लेते हो। उसने कहा, अक्ल तो मुझे भी है। लेकिन जिस दिन भी मैंने

नोट चुना, खेल बंद हुआ! यह खेल चल रहा है। पैसे चुन-चुन के मैंने हजारों डॉलर चुन लिये धीरे-धीरे। कोई मै मूर्ख, कोई पागल नहीं हूं। लेकिन उनको मजा आता है समझ के कि मै पागल हूँ, इसी बहाने वे पैसे मेरे सामने लाते हैं।

छोटा बच्चा पैसा चुन लेगा। पैसे का उसके लिए मूल्य है। यह आदमी भी पैसा चुन रहा है, क्योंकि जानता है, जिस दिन इसने नोट चुना उसी दिन खेल बंद हुआ, फिर कोई नहीं लाएगा। चुन तो यह भी नोट ही रहा है, लेकिन तुमसे ज्यादा चालाक है। तुम समझे कि यह नासमझ, बुद्धू है। तुम मजा ले रहे हो इसके बुद्धूपन में, यह तुम्हारे बुद्धूपन में मजा ले रहा है।

मान्यताएं हैं। जो हम मान लेते है सुदर, वह सुंदर हो जाता है। जो हम मान लेते हैं कुरूप, वह कुरूप हो जाता है। जो हम मान लेते हैं मूल्यवान, वह मूल्यवान हो जाता है।

अफ्रीका में हड्डियो का आभूषण बनाते हैं, तो मूल्यवान है।

एक युवक संन्यासी हिमालय से वापस लौटा और एक माला ले आया, किसी तिब्बतन लामा ने उसे दे दी। उसने मेरे हाथ में रखी, मैंने कहा, 'पागल! तू यह कहा से उठा लाया?' वह तो किसी जानवर के दातों की बनी माला थी, बड़ी गदी और बेहूदी थी। पर उसने कहा, एक तिब्बती लामा ने मुझे दी है और उसने कहा कि यह बड़ी बहुमूल्य है। तिब्बत में माना जाता है कि बड़ी बहुमूल्य है। हड्डी की माला, हड्डी के गुरिये बना लेते है, उनकी माला। तुम्हें कोई हाथ में देगा तो तुम हाथ धोओगे, तिब्बती उसे सम्हाल के रखते है।

तुम्हारी भी मान्यताएं ऐसी ही हैं। लेकिन सदियों तक जो हम मानने है वह संस्कार हो जाता है। इसलिए महावीर कहते हैं, लोग जानते भी मालूम पडते है, फिर भी अनजाने की तरह व्यवहार करते हैं, क्योंकि जानना ऊपर-ऊपर है। गहरे में वासना पडी है, विषय-भोग की आकांक्षा पड़ी है, जीवेषणा पड़ी है।

विचार करता है, चिन्तन करता है, जानता मालूम होना है, फिर भी विरक्त नहीं होता। ऐसे विचार का क्या अर्थ जो विराग न ले आए! विचार की यह कसौटी है महावीर के लिए कि जिससे वैराग्य पैदा हो, वही विचार। यह उनका मापदंड है। इसी पर वे कसते है। वे कहते है, जिससे वैराग्य आ जाए, वही विचार। जिससे वैराग्य न आए, उसे क्या वैराग्य कहना! वही तो अविचार है। पतजंलि भी यही कहते हैं, विवेक वही जिसमे वैराग्य आ जाए। विचार वही जिससे वैराग्य आ जाए। फल से ही तो वृक्ष जाना जाता है। आम लगे तो आम। नीम के कडवे फल लग जाएं तो नीम। वृक्ष मे थोड़ी वृक्ष जाना जाता है, फल से जाना जाता है! वैराग्य फल है विचार का।

तो तुम विचारवान हो या नहीं, तुम्हारे जीवन के वैराग्य से पता चलेगा। तुम लाख बैठ के ऊहापोह करते हो। तुम्हारे सिर में बड़ी दौड़-धूप मचती है विचारों

की। तुम बड़े शास्त्र लिख सकते हो। इससे कुछ हल न होगा। असली प्रमाण यह होगा कि तुम्हारे जीवन में वैराग्य फला, वैराग्य के फल लगे, वैराग्य के मीठे फल आए? तुमने वैराग्य की फसल काटी? चीजों की व्यर्थता तुम्हें दिखायी पड़ी? ज्ञान वासना से गहरा गया? इतना गहरा गया कि वासना उठनी असम्भव हो गयी? नहीं कि तुम्हें नियंत्रण करना पड़ा। नियंत्रण तो सब धोथे हैं। अनुशासन तो सब ऊपरी है। बोध, इतना गहरा बोध कि बोध ही मुक्ति बन जाए, तो वैराग्य!

तो अब तुम सोचना कि विचार करने का अर्थ, तार्किक विचार करना नहीं है। विचार करने का अर्थ सम्यक् विचारणा है। विचार करने का अर्थ है: सत्य जैसा है वैसा ही जानने की क्षमता।

वासना और विचार के फर्क को समझो। वासना प्रक्षेपण है। तुम जो चाहते हो वही तुम प्रक्षेपण कर लेते हो। तुम वह नहीं देखते, जो है — कृष्णमूर्ति जिसे कहते हैं, दैट विच इज़। जो है, उसे तुम नहीं देखते। तुम वही देख लेते हो, जो तुम देखना चाहते हो। तुम्हारी आंख केवल ग्राहक नही होती, प्रक्षेपक होती है।

एक रुपया पड़ा है रास्ते पर या कि एक हीरा पड़ा है रास्ते पर। हीरा एक पत्थर है, जैसे और पत्थर है। अगर आदमी न हो जमीन पर तो हीरे और दूसरे पत्थरों में कोई फर्क मूल्य का न होगा। हीरे भी वहीं पड़े रहेंगे, साधारण कंकड़ भी वहीं पडे रहेंगे। हीरा यह न कह सकेगा कि 'हटो कंकड़ो, मैं कोहिनूर हूं! रास्ता दो! सिंहासन बनाओ!' कोहिनूर भी साधारण पत्थर है, आदमी न हो तो। आदमी आया कि झंझट आयी। आदमी आया कि वह कहता है, हटो कंकड़ो! तुम तो शूद्र रहे, यह सम्राट है। यह है कोहिनूर! इसे सिंहासन पर बिठाओ!

आदमी मूल्य लाता है। कोहिनूर में कोई मूल्य नही है — हो नही सकता। सदियों तक पड़ा था जमीन में। न कंकड़-पत्थरों ने उसकी फिक्र की, न कीड़े-मकोड़ों ने फिक्र की, न सांप-बिच्छुओं ने कोई आदर दिया, न पशु-पक्षियो ने कोई चिंता ली — किसी ने कोई फिक्र न की। फिर आदमी के हाथ पड़ गया। जिस आदमी के हाथ पड़ा, वह भी सीधा-सादा आदमी था। वह उसे ले आया और उसने अपने बच्चों को खेलने को दे दिया। करता भी क्या, पत्थर ही था।

बड़ी प्यारी कहानी है कि उस घर में एक संन्यासी मेहमान हुआ। और उस गरीब किसान को देख के उसे बड़ी दया आ गयी और उसने कहा कि 'तू यहां कब तक इस गोलकुंडा की सूखी जमीन पर अपना श्रम गंवाता रहेगा? मैंने ऐसी जगहें देखी हैं कि जहां तू जरा-सी मेहनत कर कि तू हीरे-जवाहरात इकट्ठे कर ले। इतनी खोदा-खादी, इतनी मुश्किल — क्या पैदा कर पाता है? पेट भी तो नहीं भरता। बच्चे तेरे सूख रहे हैं।'

संन्यासी तो दूसरे दिन सुबह चला गया अपनी यात्रा पर, लेकिन किसान के मन

में वासना पकड़ गयी। सम्मोहित हो गया किसान। उसने अपना खेत-वेत सब बेच दिया। छोटी-सी नदी के किनारे उसका खेत था। वह उसने बेच दिया, मकान बेच दिया। निकल पड़ा हीरों की खोज में। कहते हैं, वर्षों भटकता रहा, कहीं कोई हीरे न मिले, घर आ गया। लेकिन इस बरसों के भटकाव में, हीरे क्या होते हैं, यह समझ आ गयी, यह सम्मोहन आ गया। कई जौहरियों को मिला। हीरे जिनके पास थे उनको मिला। हीरे देखे। जो था उसके पास पैसा, उसने इसी में गंवा दिया। घर लौट के आया तो चकित हो गया, बच्चा उस हीरे से खेल रहा था जिसकी वह खोज में था। कोहिनूर! और तब रोया, छाती पीटी, क्योंकि खेत उसने बेच दिया। वही खेत बाद में गोलकुंडा की सबसे बड़ी खदान बना। हैदराबाद के निजाम के महलों में जो हीरे हैं, वे सब उसी गरीब आदमी के खेत से निकले हैं। वह बेच दिया उसने।

लेकिन तब तक सम्मोहन था, मन पे कोई परत न थी – सीधा-सादा आदमी था, प्राकृतिक आदमी था, सभ्य न हुआ था, जौहरी पैदा न हुआ था।

हीरा भी कंकड़-पत्थर है। आदमी न हो तो हीरे का कोई विशेष सम्मान न होगा। जब तुम हीरे को विशेष सम्मान देते हो, राह पर पड़ा हीरा तुम्हें मिलता है, झपट के उठा लेते हो, कंकड़ को तो नहीं उठाते – तब तुमने वह नहीं देखा जो था; तुमने वह देख लिया जो तुम देखना चाहते थे। तुमने अपनी वासना को आरोपित किया। तुम्हारी आंखें शुद्ध ग्राहक न रहीं। तुम्हारी आंखों ने हीरे के परदे पर कुछ फेंका, कोई वासना फेंकी। साधारण कंकड़-पत्थर भी वासना से अभिभूत हो जाए, महिमावान हो जाता है। जहां तुमने वासना रख दी, वहीं महिमा आ गयी।

यह संसार इतना महत्त्वपूर्ण मालूम पड़ता है, क्योंकि तुमने जगह-जगह वासना को नियोजित कर दिया है। किसी ने धन में रख दी है वासना, तो धन बहुमूल्य हो गया है। तब वह अपने जीवन को गंवाये चला जाता है, लेकिन धन कमाये चला जाता है। वह मरेगा। तिजोड़ी यहीं रहेगी, भर के छोड़ जाएगा। ठीक से भोजन भी न करेगा, कपड़े भी न पहनेगा। धन इकट्ठा करना है! वासना रख दी धन में तो जीवन से बहुमूल्य हो गया धन। तुमने अगर पद में वासना रख दी, पद बहुमूल्य हो गया।

तुम्हें कभी-कभी हैरानी नहीं होती देख के! राजनीति के दीवाने हैं, पदों के पागल हैं, भीख मांगते फिरते हैं: सहारा दो, वोट दो, मत दो, साथ दो! हाथ जोड़ते फिरते हैं। कभी तुम चकित नहीं हुए, तुम सोचे नहीं कि क्या पागलपन चढ़ा है! और जो पद पर पहुंच जाते हैं उन्हें कुछ मिलता दिखायी नहीं पड़ता। गालियां मिलती हैं, निंदाएं मिलती हैं। सम्मान भी मिलता है, लेकिन सम्मान सब झूठा है; पद से उतरते ही खो जाता है। फिर कोई नहीं पूछता। फिर कोई विचार

नहीं करता। फिर कोई नमस्कार भी करने नहीं आता। लेकिन इतना क्या पागल-पन है ? पद में वासना रख दी ! तुमने नहीं रखी तो तुम्हें हंसी आएगी कि यह भी क्या पागलपन है !

देखा तुमने ! कोई फुटबाल के पागल हैं, कोई क्रिकेट के पागल हैं। एक सज्जन को मै जानता हूं, जब क्रिकेट चल रही हो तो वे रेडियो पर सारी दुनिया का सब काम छोड के बैठ जाते हैं। एक बार उनकी जो टीम जीतनी चाहिए थी, हार गयी, तो उन्होंने रेडियो उठा के पटक दिया। नाराजगी में ! इतना क्रोध आ गया। दंगे हो जाते है। तुम्हारी टीम हार गयी, दंगे हो जाते हैं। लूट-पाट हो जाती है। मारे जाते हैं लोग। जो नहीं है उस जगत में, वे हंसेंगे कि मामला क्या है ! आखिर यह हो क्या रहा है ? फुटबाल है क्या ? कुछ लोग गेंद को उधर ले जा रहे हैं, कुछ लोग इधर ला रहे हैं, कुछ लोग उधर ले जा रहे हैं – मगर है क्या ? मामला क्या है ? ऐसा इतना ... और लाखो लोग देखने क्या चले आये हैं ? क्या देख रहे हैं। और बड़े उत्तेजित हैं ! पागल हुए जा रहे है।

हा, जो वासना के बाहर है उसे हंसी आएगी। जो वासना के भीतर है, वह मूर्च्छित है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक रात घर लौटा। नशे में धुत्। बड़ी उसने चेष्टा की। चाबी तो हाथ में है, ताला न मिले। पत्नी ऊपर से देख रही है। उसने कहा, 'बहुत हो चुका। अगर चाबी खो गयी हो तो बोलो, दूसरी चाबी फेंक दूं।' उसने कहा, 'चाबी तो है, ताला खो गया है, दूसरा ताला फेंक दे।'

लेकिन कभी तुम अगर बेहोश रहे हो, तो तुम्हें पता चलेगा कि हंसने की बात नहीं है। ऐसी ही दशा हो जाती है। वह जो बेहोश है, वह किसी और ही दुनिया में है – अविचार की दुनिया में। जो तुम्हारी वासना नही है, वहां तुम विचारवान मालूम पड़ोगे। बूढ़े विचारवान हो जाते है, जवानों को समझाने लगते है कि यह सब पागलपन है, यह जवानी दो दिन का नशा है। यही उनके बूढ़ों ने भी उनसे कहा था, तब उन्होंने नही सुना था। कोई किसी की सुनता ही नहीं।

जब तक नशा है तब तक विचार पैदा नही होता; या विचार पैदा हो जाए तो नशा टूटने लगता है। समझने की बात यह है कि वासना में तुम वही देखते हो जो तुम देखना चाहते हो।

तुमने कभी देखा, शतरंज के खिलाड़ी बैठे हैं ! कुछ भी नहीं है, लकड़ी के, हड्डियों के या प्लास्टिक के हाथी-घोडे, राजा-रानी हैं – और तलवारें चल गयी हैं, लोग कट गये हैं। जो नहीं है खेल में, वह हंसता है, वह हंसता हुआ निकल जाएगा कि पागल हो गये हो, कहां हाथी-घोड़े, कुछ भी नहीं है ! जिसकी समझ गहरी है उसे तो असली हाथी-घोड़े में भी हाथी-घोड़े नहीं दिखायी पड़ते; असली राजा-रानी में भी राजा-रानी नहीं दिखायी पड़ते। मगर जहां वासना हो ...।

मैंने सुना है, एक बिल्ली इंग्लैंड गयी। सांस्कृतिक मिशन पर गयी। तो इंग्लैंड की रानी ने मिलने के लिए बुलाया। फिर वह लौटी, तो दिल्ली में बिल्लियों ने बडी सभा की। उन्होंने पूछा कि 'अरे, कहो क्या-क्या हुआ? रानी को मिलने गयी थी कि नहीं?'

उसने कहा, 'गयी थी।'

'क्या देखा?'

उसने कहा कि बड़ा गजब देखा! कुर्सी के नीचे चूहा बैठा था।

रानी से क्या लेना-देना बिल्ली को! जो दिखा वह चूहा था। जहां वासना है, वहीं दर्शन है। तुम्हें रानी दिखायी पडती, चूहा दिखायी न पड़ता, क्योंकि तुम्हारी वासना बिल्ली की वासना नहीं है। रानी भी तुम्हें तभी दिखायी पड़ती जब तुम्हारी पद की वासना हो, राज्य की वासना हो; नहीं तो रानी में देखने जैसा क्या है! साधारण स्त्री है। चाहे कितना ही मोर-मुकुट बांधो, इससे क्या होता है! कितने ही बड़े सिंहासन पे बैठ जाओ, इससे क्या होता है! अगर महावीर जैसा व्यक्ति जाए तो न तो चूहा दिखायी पड़े न रानी दिखायी पड़े। तुमको रानी दिखायी पडती, बिल्ली को चूहा दिखायी पडा। जो-जो वासना थी, वह दिखायी पड़ा। अगर कोई हीरों का पारखी हो, तो उसको रानी न दिखायी पड़ेगी, उसके मुकुट में लगे हीरे दिखायी पड़ेंगे। अगर कोई चमार चला जाए तो रानी के जूते दिखायी पड़ेंगे, और कुछ दिखायी न पड़ेगा। चमार को जूते ही दिखायी पड़ते हैं; वह जूते ही देखता रहा जिंदगी भर। वहीं उसकी वासना लिप्त है। राह पर देखता रहता है लोगों के जूते। जूते को ही देख के वह अदमियों की परख करता है। जूते की कहानी पढ़ लेता है तो आदमी की कथा प्रगट हो जाती है। जूते में उसे सारी आदमी की आत्मकथा लिखी मालूम पडती है। जूते पे चमक है तो वह जानता है, जेब गर्म है। जूता मुर्झाया, पिटा-पिटाया है तो वह जानता है कि आगे बढ़ो, यहां लाने की जरूरत नहीं है।

वासना का अर्थ है: हम अपने सम्मोहन के अनुसार जगत को देखते हैं। विचार का अर्थ है: सम्मोहन को हटा के देखते हैं, जो है उसे वैसा ही देखते हैं जैसा है। आम को आम देखते है, नीम को नीम देखते हैं। जहर को जहर देखते हैं, अमृत को अमृत देखते हैं; अपनी वासना डाल के, कुछ और नहीं देखते।

तो महावीर कहते है, लगते है लोग सोच रहे, विचार रहे, फिर भी विरक्त नहीं हो पाते। कहीं कुछ धोखा है। क्योंकि अगर कोई जीवन को ठीक से देख ले तो विरक्त होगा ही। यहां कुछ भी तो नहीं है। यहां उलझाने योग्य कुछ भी तो नही है। जो तुम्हें अटका ले, ऐसा कुछ भी तो नही है।

दोरंगियां यह जमाने की जीते जी हैं सब
कि मुर्दों को न बदलते हुए कफन देखा।

ये सब रंगरेलियां, ये बदलाहटें, ये फैशनें... ।
दोरंगियां यह जमाने की जीते जी हैं सब
कि मुर्दों को न बदलते हुए कफन देखा ।

जो जीवन को बहुत गौर से देखेगा, दोरंगियों को हटा के गहराई में देखेगा, वह पायेगा : यहां सब मरा ही हुआ है, समय की बात है।

ऋषियों ने कहा है, क्षरति इति शरीरम्। जो क्षीण होता जाता उसी का नाम शरीर। क्षरति इति शरीरम्। जो प्रतिपल क्षीण होता जाता, जीर्ण होता जाता, वही शरीर है। यह घर नहीं है। जो खंडहर होता जाता है, वही शरीर है। इसीलिए शरीर नाम दिया उसे। क्योंकि वह क्षीण होता है, जीर्ण होता है, सड़ता है; मरा ही है, समय की बात है; क्यू में खड़ा ही है, जब नंबर आ जाएगा गिर जाएगा।

अगर शरीर को कोई गौर से देखे तो क्या पाएगा! मृत्यु को रूप धरते देखेगा वहां। मृत्यु को गर्भ में पाएगा वहां। रोएं-रोएं में शरीर के मृत्यु को छिपा पाएगा। प्रगट होने की प्रतीक्षा चल रही है। आज नहीं कल प्रगट हो जाएगी। जो शरीर को गौर से देखेगा, वह मृत्यु को देख लेगा। फिर तुम शरीर से बंधोगे कैसे, आसक्त कैसे होओगे? मुर्दे से तो कोई बंधता नहीं। मुर्दे से तो कोई संबंध नहीं रखता।

मैंने सुना है, एक मुसलमान फकीर के पास एक युवक आता था। वह युवक कहता था कि मुझे भी सन्यास की यात्रा करनी है। मुझे भी सूफियों के रंग-ढंग मन को भाते हैं। लेकिन क्या करूं, पत्नी है और उसका बड़ा प्रेम है! क्या करूं बच्चे हैं, और उनका मुझसे बड़ा लगाव है। मेरे बिना वे न जी सकेंगे। मैं सच कहता हूं, वे मर जाएंगे। मैं पत्नी से संन्यास की बात भी करता हूं तो वह कहती है, फांसी लगा लूंगी।

उस फकीर ने कहा, 'तू ऐसा कर... । कल सुबह मैं आता हूं। तू रात भर, एक छोटा-सा तुझे प्रयोग देता हूं, इसका अभ्यास कर ले और सुबह उठ के एकदम गिर पड़ना।' प्रयोग उसने दिया सांस को साधने का कि इसका रात भर अभ्यास कर ले, सुबह तू सांस साध के पड़ जाना। लोग समझेंगे, मर गया। फिर बाकी मैं समझ लूंगा।

उसने कहा, 'चलो, क्या हर्ज है देख लें करके। क्या होगा इससे?'

उसने कहा कि तुझे दिखायी पड़ जाएगा, कौन-कौन तेरे साथ मरता है। पत्नी मरती है, बच्चे मरते, पिता मरते, मां मरती, भाई मरते, मित्र मरते—कौन-कौन मरता है, पता चल जाएगा। एक दस मिनट तक सांस साध के पड़े रहना है, बस। सब जाहिर हो जाएगा। तू मौजूद रहेगा, तू देख लेगा, फिर दिल खोल के सांस ले लेना, फिर तुझे जो करना हो कर लेना।

वह मर गया सुबह। सांस साध ली। पत्नी छाती पीटने लगी, बच्चे रोने लगे, मां-बाप चिल्लाने-चीखने लगे, पड़ोसी इकट्ठे हो गये। वह फकीर भी आ गया

इसी भीड़ में भीतर। फकीर को देख के परिवार के लोगों ने कहा कि आपकी बड़ी कृपा, इस मौके पे आ गये। परमात्मा से प्रार्थना करो। हम तो सब मर जाएंगे! बचा लो किसी तरह! यही हम सबके सहारे थे।

फकीर ने कहा, घबड़ाओ मत! यह बच सकता है। लेकिन मौत जब आ गयी तो किसी को जाना पड़ेगा। तो तुम में से जो भी जाने को राजी हो, वह हाथ उठा दे। वह चला जाएगा, यह बच जाएगा। इसमें देर नहीं है, जल्दी करो।

एक-एक से पूछा। पिता से पूछा। पिता ने कहा, अभी तो बहुत मुश्किल है। मेरे और भी बच्चे हैं। कोई यह एक ही मेरा बेटा नहीं है। उनमें कई अभी अविवाहित हैं। कोई अभी स्कूल में पढ़ रहा है। मेरा होना तो बहुत जरूरी है, कैसे जा सकता हूं!

मा ने भी कुछ बहाना बताया। बेटों ने भी कहा कि हमने तो अभी जीवन देखा ही नहीं। पत्नी से पूछा, पत्नी के आंसू एकदम रुक गये। उसने कहा, अब ये तो मर ही गये, और हम किसी तरह चला लेंगे। आप झंझट न करो और।

फकीर ने कहा, अब उठ! तो वह आदमी आंख खोल के उठ आया। उसने कहा, 'अब तेरा क्या इरादा है?' उसने कहा, अब क्या इरादा है, आपके साथ चलता हूं। ये तो मर ही गये। अब ये लोग चला लेंगे! देख लिया राज। समझ गये, सब बातों की बात थी। कहने की बातें थीं।

कौन किसके बिना रुकता है! कौन कब रुका है! कौन किसको रोक सका है!

दृष्टि आ जाए तो वैराग्य उत्पन्न होता है। उस घड़ी उस युवक ने देखा। इसके पहले सोचा था बहुत। उस घड़ी दर्शन हुआ। इसके पहले विचार बहुत किया था, लेकिन वे विचार विचार न थे, विवेक न था, क्योंकि उनमें वैराग्य न फलित होता था, उलटा राग फलित होता था।

तो कसौटी है: जिसमें राग लगे, वह विचार नहीं वह भीड़-भाड़ है विचारों की। थोथा है सब। असार है। राख है। उसमें अंगार नहीं है। जिसमें वैराग्य की लपट उठे— अंगार है, जीवन है, विचार है, विवेक है।

जिंदगी एक हादिसा है और कैसा हादिसा
मौत से भी खत्म जिसका सिलसिला नहीं।

यह जिसे हम जिंदगी कहते हैं, यह हमारी जीवेषणा है। जिसे हम जिंदगी कहते हैं, यह हमारे जन्मों-जन्मों का संकलित सम्मोहन है।

जिंदगी एक हादिसा है और कैसा हादिसा
मौत से भी खत्म जिसका सिलसिला होता नहीं।

मौत आती है, जाती है, लेकिन सम्मोहन चलता रहता है। जीवेषणा को मौत नहीं मार पाती। शरीर छूट जाता है, हम नया शरीर ग्रहण कर लेते हैं। तुम शरीर में इसलिए नहीं हो कि शरीर ने तुम्हें चुना है; तुम शरीर में इसलिए हो कि

तुमने शरीर को चुना है। तुम दुख में इसलिए नहीं हो कि दुख तुम पर आया है; तुम दुख में इसलिए हो कि तुमने दुख को बुलाया है ।

महावीर का मौलिक सूत्र है कि तुम्हारा उत्तरदायित्व आत्यन्तिक है । न कोई भाग्य, न कोई भगवान – तुम ही जिम्मेवार हो । सार-सूत्र महावीर का यह है कि तुम अपनी बागडोर अपने हाथ में ले लो। दुख है तो तुम कारण हो। अंधेरा है तो तुमने ही दीया छिपा के रखा है। अगर कांटों में चल रहे हो तो तुमने ही कांटे बोए हैं ।

महावीर ने मनुष्य को सीधा मनुष्य के ऊपर फेक दिया; कोई सहारा न दिया, कोई सान्त्वना न दी; नहीं कहा कि भगवान है, खेल खेल रहा है, उसका खेल है, घबड़ाओ मत, प्रार्थना करो, उसका सहारा मिलेगा । कोई सांत्वना न दी ।

महावीर का धर्म सात्वना-रहित है। अति कठोर मालूम पड़ता है। लेकिन उतनी कठोरता हो तो ही कोई घर वापिस लौटता है ।

> कैदे-हस्ती की भी तारीक बदल दू तो सही
> खेल समझे हो मेरा दाखिले-जिंदा होना ।

– कारागृह में आ गया हूं तो अगर कारागृह का ढंग ही न बदल दू तो मेरे आने का अर्थ ही नहीं है ।

कैदे-हस्ती की भी तारीक बदल दू तो सही ! यह जो जिंदगी और जिंदगी का जाल और जिंदगी के बन्धन हैं, इनका भी इतिहास बदल दू तो सही । खेल समझे हो मेरा दाखिले-जिंदा होना। एक बार कारागृह में आ गया, तो अब कारागृह को भी स्वतत्रता बना के छोड़ूगा ।

ऐसा महावीर का भाव है। और महावीर ने ऐसा किया । कोई सहारा न लिया, कोई भीख न मागी । महावीर जैसा अकेला कोई भी जीवन के पथ पर नही चला है । कोई-न-कोई सहारा आदमी खोज लेता है । सहारे के सहारे संसार आ जाता है । सहारे के सहारे फिर सब उतर आता है । एक के बाद एक सिलसिला लग जाता है ।

> फक्र को मेरे वैर है जज्बए-इंकसार से
> जिसे-जुनू भी हो तो मै भीख न लूं बहार से ।

– स्वाभिमान के विपरीत है । अगर प्रेमियो का पागलपन भी बहार से मिलता हो, अगर भक्तों का भी पागलपन बहार से मिलता हो, तो भी मैं भीख न लूं । स्वाभिमान के विपरीत है ।

महावीर कहते हैं, भीख मत लेना । क्योंकि भीख में जो मिलेगा वह भीख ही होगी, स्वामित्व न मिलेगा ।

इसलिए महावीर के विचार में प्रार्थना की कोई जगह नही है । विचार काफी है। विचार का ही सम्यक् रूप ध्यान बन जाता है। ध्यान का सम्यक् रूप समाधि

बन जाता है। समाधि यानी समाधान। तुम जीवन को ठीक से देख लो, वहीं मुक्ति है।

'अहो! माया की गांठ कितनी सुदृढ़ होती है!' सब लोग जानते हुए मालूम पड़ते है। सब लोग सोचते हुए मालूम पड़ते हैं। यहां बुद्धिहीन खोजना तो बहुत मुश्किल है, सभी बुद्धिमान है। फिर भी जब माया पकड़ती है तो सभी उसकी पकड़ में आ जाते है, गांठ बड़ी सुदृढ़ मालूम होती है। और गांठ कहीं इतने गहरे है! तुम जहां हो अभी वहां से कहीं गहरी तुम्हारी गाठ है। जब तुम गांठ से ज्यादा गहरे हो जाओगे तभी गांठ खुल जाएगी। इसलिए असली सवाल भीतर का है। अपनी गहराई खोजनी है। तुम जिस चीज में ज्यादा गहरे उतर गये, उससे ही मुक्त हो गये।

'जन्म दुख है, बुढ़ापा दुख है, रोग दुख है, मृत्यु दुख है। अहो! संसार दुख ही है, इसमें जीव क्लेश पा रहे हैं।'

'जन्मं दुक्खं जरा दुक्खं, रोगा या मरणाणि य।
अहो दुक्खो हु ससारो, जत्थ की संति जंतवो।।'

आश्चर्य है, महावीर कहते है, सब दुख है, फिर भी लोग पकड़े हैं! दुख ही दुख है, फिर भी लोग छोड़ते नहीं। मूर्च्छा बड़ी गहरी होगी। इसलिए कहते है, आश्चर्य है। लोग अपने ही पैरों से कारागृह में चले आ रहे है, आश्चर्य! लोग अपने ही हाथों से अपनी जंजीरें ढाल रहे है, आश्चर्य! और लोग रोते भी हे, चिल्लाते भी हैं कि मुक्त होना है, कि आनंदित होना है। और जो करते है, वह बिलकुल विपरीत है। जो करते हैं उससे बन्धन निर्मित होता है।

तो लोग जो कहते है, उस पे मत ध्यान देना; लोग जो करते है, उस पे ध्यान देना। लोग क्या कहते हैं, यह तो छोड़ ही देना। अक्सर तो ऐसा है, लोग उलटा ही कहते है। उसका भी कारण समझ लेना चाहिए। लोग उलटा कहते है, क्योंकि उस तरह से वे अपने को संतोष बंधाए रखते है। अपने हाथो से तो वे बनाते जाते है कारागृह और अपनी वाणी से गीत गाते रहते हैं स्वतत्रता का। यह स्वतंत्रता कारागृह के मिटाने के काम नहीं आती। यह स्वतंत्रता की बातचीत कारागृह को वनाने में सुविधापूर्ण है। कारागृह भी बन जाता है, स्वतंत्रता की बात भी चलती चली जाती है।

तुम देखते हो, दुनिया मे सब तरफ ऐसा होता है! राजनीतिज्ञ शांति की बात करते है, युद्ध की तैयारी करते है। सारे राजनीतिज्ञ कबूतर उड़ाते हैं शांति के — शांति-कपोत! और हर राज्य अपनी संपत्ति का साठ, सत्तर, अस्सी प्रतिशत युद्ध की तैयारी पे खर्च करता है। कबूतर भी उड़ाये चले जाते है, अणु-बम भी बनाये चले जाते है। किसको सच मानें? यह जो शांति की चर्चा है, यह युद्ध को करने में सहायता देती है। यह विपरीत नहीं है। अगर यह विपरीत होती और ये

कबूतर सच्चे होते, तो कोई कारण न था, लोग क्यो युद्ध के लिए तैयारियां करें।

शांति की तुमने कहीं कोई तैयारी होते देखी ? कोई शांति की कहीं कोई तैयारी नहीं होती। शांति की सिर्फ लोग बात करते हैं, शांति चाहिए ! युद्ध की तैयारी करते हैं। ध्यान रखना, जिसकी तैयारी करते हैं वही चाहते हैं। अगर शांति चाहते होते तो कुछ शांति पर भी खर्च करते, शांति की सेनाएं खड़ी करते, लोगों को शांति का प्रशिक्षण देते। लेकिन वैसा तो कहीं कुछ होते नहीं देखा। सब प्रशिक्षण युद्ध का है। सब प्रशिक्षण लड़ने, मरने, मारने का है। और कौन कितना कुशल है मारने में, उसकी दौड़ है। अमरीका है, रूस है, चीन है—नीचे तो अणु-बम के ढेर लगाये चले जाते हैं, ऊपर से शांति-कान्फ्रेंस करते चले जाते हैं। वह जो शांति-कान्फ्रेंस है, वह उस ढेर को छुपाने की तरकीब है; वह तम्बू है शांति का, जिसके अंदर बम छिप जाएंगे और पता भी न चलेगा। आदमी ऐसा धोखेबाज है ! और ऐसा राज्यों के संबंध में ही नही है, सभी के सम्बंध में यही है।

तुमने कभी खयाल किया, तुम जो कहते हो उससे तुम्हारा जीवन बिलकुल विपरीत है ! और अगर ऐसा ही चलते जाना है तो कृपा करो, कहना बन्द करो। क्योंकि कहने में क्या सार है ? क्यों उतना शक्ति व्यय करते हो ? व्यर्थ कबूतर मत उड़ाओ। उतना पैसा और बम बनाने में लगा दो ! कम से कम सफाई तो हो, सच्चाई तो हो, सीधा-सीधी बात तो हो।

अब तक जितने युद्ध हुए दुनिया में, थोड़े नही हुए, कोई तीन हजार साल में पाच हजार युद्ध हुए हैं। जितने युद्ध हुए वे सभी युद्ध इसीलिए हुए कि दुनिया में शांति होनी चाहिए। इससे तो बेहतर है, शांति की बकवास बन्द करो। अगर शांति के लिए पाच हजार युद्ध करने पड़े तीन हजार सालों में तो छोड़ो यह शांति काम की नही है, यह तो बड़ी खतरनाक है, बड़ी महंगी है। सारी दुनिया के राज्य अपने युद्ध के इन्तजाम का नाम देखा, 'सुरक्षा-मंत्रालय', 'डिफेंस' कहते है ! सब अटैक करते है और सब डिफेंस कहते है। सब आक्रामक है, लेकिन किसी राज्य का...... हिटलर का भी जो युद्ध-मन्त्रालय था वह सुरक्षा...। कहते हैं, हम अपनी रक्षा के लिए तैयारिया कर रहे है। बड़े मजे की बात है, अगर सभी रक्षा के लिए तैयारियां कर रहे हे तो हमला कौन कर रहा है ? डर किसका है फिर ? सभी सुरक्षा चाहते है तो फिर तो भय का तो कोई कारण नहीं है।

लेकिन झूठी हैं ये बातें। सुरक्षा ऊपर-ऊपर है, बातचीत है, दिखावा है। और इसलिए आज तक यह भी तय नहीं हो पाया कि किसने कब आक्रमण किया। किसने किया ? हिटलर कहता है, हमने नही किया; दूसरो ने किया। दूसरे कहते है, हिटलर ने किया। जो जीत जाता है अन्ततः वह इतिहास लिखता है। इसलिए वह इतिहास में लिख देता है कि दूसरे ने किया। जो हार जाता है, वह तो हार गया, इतिहास लिख नही सकता। इसलिए बड़ा मजा चलता है। पक्का नहीं है कि जो

हार गया है, हो सकता है सुरक्षा ही कर रहा हो, जो जीत गया वही आक्रामक हो। आक्रामक बड़े कुशल हैं, आक्रमण करने के पहले वे ऐसा इन्तज़ाम करते हैं कि ऐसा प्रतीत हो कि वे सुरक्षा कर रहे हैं।

और ऐसा समाज, राष्ट्र और व्यक्ति, सभी के संबंध में सही है। तुम अपनी तरफ सोचना। तुम जरा अपने दांव-पेंच पहचानना। तुम जरा अपनी स्ट्रेटेजि, वह जो तुम्हारी कूटनीति है भीतर, उसको देखना।

तुम अपने बेटे को मारते हो, तुम कहते हो, 'तेरे ही लिए, तेरे ही हित के लिए ...।' यही तो राजनीति है।

क्रोध आया था, बेटे ने घड़ी तोड़ दी; या तुमने चाहा था बेटा चुप बैठे और वह चुप नहीं बैठा था; या तुमने चाहा था वह सिनेमा न जाए और चला गया — चोट तुम्हारे अहंकार को लगती है। लेकिन तुम कहते हो, तेरे सुधार के लिए। अब यह बड़े मजे की बात है, हर बाप सुधार रहा, लेकिन कोई बेटा सुधरता मालूम नहीं होता। तो जरूर कहीं सुधार में कुछ भूल है, नहीं तो कुछ तो सुधरते। इतना बड़ा आयोजन चलता है!

नहीं, कोई किसी को सुधारने में उत्सुक नहीं है; लोग अपनी चलाने में उत्सुक हैं। अपना अहंकार! बाप का भी अहंकार है। उसकी आज्ञा तुमने तोड़ी, यह बरदाश्त के बाहर है। सिनेमा गये, यह बड़ा सवाल नहीं है; यह तो बहाना है, सिनेमा तो वे खुद भी जाते हैं।

एक सज्जन को मैं जानता हूं। अपने बेटे को मना किए थे, क्योंकि कोई गंदी फिल्म आयी थी, कोई अमरीकन। बेटे को मना किए थे, लेकिन बेटे को मना किया तो बेटा भी उत्सुक हुआ। बेटा पहुंच गया। घर लौट के बहुत नाराज हुए, क्योंकि वे भी खुद वहां थे। बड़ा कष्ट जो हुआ वह यह हुआ कि बेटे ने उनको भी वहां पा लिया। उनके बेटे से मैंने पूछा, फिर कहा क्या उन्होंने? बेटा हंसने लगा। कहने लगा, 'कहते क्या! कहने लगे, मैं यही देखने आया था कि तुम आये तो नहीं हो!' इसके लिए तीन घंटे फिल्म में बैठे रहे!

पर ऐसा ही चलता है। तुम अपने को देखना शुरू करो। जागना शुरू करो। लम्बी और कठिन यात्रा है। सहारे और सांत्वनाओं से काम न चलेगा। पूजा-प्रार्थनाओं से काम न चलेगा। एक-एक इंच अपने जीवन का रूपान्तरण करना होगा। एक प्रामाणिकता चाहिए।

'जन्म दुख है, बुढ़ापा दुख है, रोग दुख है, मृत्यु दुख है!' और है क्या जीवन में? यहां विफलता मिले तो दुख है, यहां सफलता मिलती है तो भी दुख लाती है। यहां गरीब रह जाओ तो दुख है, यहां अमीर हो जाओ तो भी सुख नहीं आता। यहां हार जाओ तो तो दुख है ही, यहां जीत जाओ तो भी हाथ में कुछ लगता नहीं। यहां हारे और जीते सब बराबर हैं; सफल और असफल सब बराबर हैं।

'अहो । संसार दुख है, जिसमें जीव क्लेश पा रहा है । अहो दुक्खो हु संसारो ।' महावीर कहते हैं, आश्चर्य । चकित हो कर कहते हैं, आश्चर्य है । इतना दुख है, फिर भी लोग उसमें डुबकी लगाये चले जा रहे हैं । इस दुख की धारा को गंगा समझा है ! डुबकी लगा रहे हैं ।

यहां दरख्तों के साये में धूप लगती है
चलो यहां से चले और उम्र भर के लिए ।

यहां तो दरख्तो का जो साया है उसके पास भी धूप ही खड़ी है । यहां तो साये में भी धूप लगती है । यहा तो सुख के साथ भी दुख ही खड़ा है । यहां शांति के आसपास भी अशांति ने ही घेरा बांधा है ।

यह दरख्तों के साये में धूप लगती है
चलो यहां से चलें और उम्र भर के लिए ।

जो जीवन को देखेंगे, जो जरा आंख खोल कर जीवन को देखेंगे, जो विचार करके जीवन को देखेंगे, जो विवेक से जीवन को देखेंगे, वे कहेंगे, 'चलो । चलो यहां से चलें और उम्र भर के लिए, सदा के लिए ।'

यही वैराग्य है ।

मुझे जिंदगी की दुआ देने वाले
हंसी आ रही है तेरी सादगी पर ।

लोग जिंदगी की दुआ देते हैं कि खूब जियो, जुग-जुग जियो ! जरा पूछो भी तो किसलिए दुआ दे रहे हो ? क्या पाया तुमने जुग-जुग जी कर ? जुग-जुग जियो यानी जुग-जुग दुख भोगो । सीधी कहो न बात । काहे छिपाते हो ?

मैं विश्वविद्यालय से घर लौटा, तो मेरी मां, मेरे पिता, परिवार के लोग बड़े चिंतित थे : शादी ! शादी ! शादी ! डरते भी थे मुझसे पूछने में, क्योंकि वे जानते रहे सदा से कि मैं 'हां' कह दूं तो 'हां' और 'ना' कह दूं तो 'ना'–फिर 'हां' करना मुश्किल है । तो पूछते नहीं थे सीधा; यहां-वहां से खबर भेजते – कोई रिश्तेदार, कोई मित्र । तो मेरे पिता के एक मित्र थे, वकील थे । उन्होंने सोचा कि वकील आदमी है, यही ठीक रहेगा । उनको कहा कि तुम ही कुछ समझाओ । वकील ने कहा, 'समझा लेंगे । बड़े मुकदमे जीते हैं, यह भी कोई बात है ।' वकील तैयार हो के आए । वे मुझसे विवाद करने लगे कि शादी के क्या-क्या लाभ हैं । मैंने सब सुना । मैंने कहा, 'सुनो । अगर तुमने सिद्ध कर दिया कि शादी में लाभ हैं तो मैं शादी कर लूंगा; अगर तुम सिद्ध न कर पाए तो तुम्हारी तरफ से दांव पे क्या है ? तुम छोड़ोगे पत्नी-बच्चे, अगर सिद्ध हो गया कि शादी ठीक नहीं...? एकतरफा तो मत करो ।'

वे थोड़े चौंके । आदमी ईमानदार थे । उन्होंने कहा, यह मैंने सोचा न था कि मेरा भी कुछ दाव पे लगेगा । तो फिर मुझे सोचने दो । मैंने कहा कि तुम सोच कर

ही आना। अगर मैं हार गया तो उसी वक्त तैयार हो जाऊंगा, फिर यह भी फिक्र न करूंगा, किससे शादी करते हो। कर देना किसी से भी। लेकिन अगर नहीं हरा पाए तो फिर घर लौट के नहीं जाने दूंगा। छुट्टी ले के ही आना।

वे कभी आए ही नहीं। रास्ते पे मुझे मिलते थे, इधर-उधर बच के निकलते थे। दो-चार बार मैं उनके घर भी गया तो वे कहने लगे 'क्यों मेरे पीछे पड़े हो?' मैंने कहा, मैं क्यों पीछे पड़ा हूं। तुम ही मेरे पीछे पड़े थे!'

एक बार गया तो पत्नी को बाहर भेज दिया। पत्नी ने कहा कि 'आप किसलिए आते हो बार-बार?' मैंने कहा, तुमको भी पता होना चाहिए, तभी तुम नाराज मालूम होती हो। वह एक दाव की बात है।

कहने लगी कि हमारे छोटे बच्चे हैं, क्यों फिजूल के...? क्योंकि जब से तुमसे मिलना उनका हुआ है, वे बड़े चिंतित रहते हैं और उदास रहने लगे हैं।

मेरी मां ने मुझे कहा, तो मैंने कहा, 'तू ऐसा कर, पन्द्रह दिन तू भी सोच ले। अगर तुझे तेरे जीवन में और तेरी शादी से और तेरे बच्चों से कोई सुख मिला हो – ऐसा सुख जो तू चाहे कि तेरे बेटे को भी मिलना चाहिए, अगर ऐसा कुछ तूने पाया हो, जो कि तेरे मन में दुख रहेगा कि तेरे बेटे को न मिला – तो पन्द्रह दिन बाद मुझे कह देना, मैं शादी कर लूंगा। और अगर ऐसा कुछ भी न पाया हो, दुख ही पाया हो तो इतनी तो कृपा कर कि मुझे चेता दे, मुझे बता दे कि दुख ही पाया है, तो किसी भूल-चूक से मैं न उलझ जाऊं।'

मेरी मां, सीधी-सादी! उसने पन्द्रह दिन बाद कहा कि यह झंझट की बात है। तुम्हें करना हो करो, न करना हो न करो। और हमें सोचने को मत कहो, क्योंकि सोचने मे और घबड़ाहट होती है, सच मे पाया तो कुछ भी नहीं। मैं तुमसे न कह सकूंगी कि तुम शादी करो, क्योंकि ऐसा कुछ भी मुझे नहीं मिला है।

जीवन में हम अगर गौर से देखें तो हम बहुत चकित होंगे। दुख में लोग जी रहे हैं, हम दुख मे और लोगों को भी धकेले चले जाते हैं।

मुझे जिंदगी की दुआ देने वाले
हंसी आ रही है तेरी सादगी पर!

जिंदगी की लम्बाई का कोई मूल्य नहीं है। जिंदगी के विस्तार का कोई मूल्य नहीं है। जिंदगी की गहराई का कुछ मूल्य है। वासना से जिंदगी लम्बी होती है, विचार से जिंदगी गहरी होती है। लम्बे होने से संसार मिलता है, गहरे होने से स्वयं की सत्ता मिलती है, भगवत्ता मिलती है।

'हा! खेद है कि सुगति का मार्ग न जानने के कारण मैं मूढ़मति भयानक तथा घोर भव-वन में चिरकाल तक भ्रमण करता रहा।'

जब भी कोई जागा है, जब भी कोई महावीर जैसी जिनावस्था में पहुंचा है, तो उसे यह लगा ही है कि हा! खेद! अब तक क्यों न जागा! इतना समय

कैसे सोया रहा ! कैसे-कैसे दुखस्वप्नों में दबा रहा, फिर भी आंख न खोली !

'हा ! खेद कि सुगति का मार्ग न जानने के कारण मैं मूढ़मति भयानक तथा घोर भव-वन में चिरकाल तक भ्रमण करता रहा ।'

यही श्रमण और ब्राह्मण-संस्कृति के बुनियादी भेद साफ होते हैं। ब्राह्मण-संस्कृति कहती है, राम अवतरित हुए, कृष्ण अवतरित हुए । वे भगवान के अवतार हैं। ऊपर से नीचे आये है । वे मनुष्य नहीं हैं, वे भगवान हैं । महावीर ऊपर से नीचे नही आए. नीचे से ऊपर आए । वे उसी जगह से गुजरे जहां से तुम गुजर रहे हो। उन्होंने वही दुख भोगे जो तुमने भोगे । उन्होने वही पीड़ाएं जानीं जो तुमने जानी हैं । तुम उनके लिए अपरिचित नही हो । तुम्हारा जो वर्तमान है वह उनका अतीत था । और उनका जो वर्तमान है, वह तुम्हारा भविष्य है । उनकी कड़ी तुमसे जुड़ी है ।

इसलिए अगर जैन तीर्थंकरों की भाषा मनुष्य के हृदय के बहुत करीब है और जैन तीर्थंकरो और मनुष्यों के बीच कोई खाई-खंदक नहीं है, तो कारण साफ है । जैन तीर्थंकर उसी जगह से आए जहा से तुम गुजर रहे हो । तुम्हारे दुख उन्होंने जाने हैं । तुम्हारे कष्ट उन्होंने जाने है । तुम्हारा अनुभव उनका अनुभव भी है । इसलिए कृष्ण जब कुछ कहते है तो अर्जुन और कृष्ण की बातचीत में बड़ा अंतराल है । ऐसा लगता है, कृष्ण किसी और ही जगत की कह रहे है, अर्जुन किसी और ही जगत की कह रहा है – जैसे संवाद हो ही नही पाता । राम का महिमापूर्ण चरित्र ! लेकिन उसमें महिमा कुछ भी नही है, क्योंकि वह ईश्वर का चरित्र है । लेकिन महावीर का चरित्र महिमापूर्ण है, क्योंकि वह मनुष्य का चरित्र है । राम भगवान से मनुष्य हो रहे है । उन्हें मनुष्यो का क्या पता, कुछ भी पता नहीं है। महावीर मनुष्य से भगवान हुए हैं; उन्हें मनुष्यों का रत्ती-रत्ती पता है; उसका दुख, उसकी पीड़ा उसका, सकट, उनकी मूढ़ता, अज्ञान, भ्रांतिया, माया-मोह, उसका भटकना उन्हें पूरी तरह पता है । इसलिए महावीर के वचनों की एक वैज्ञानिकता है । कृष्ण के वचनों में एक दार्शनिकता है । बड़ी ऊंची हवा की बात है, आकाश की बात है । लेकिन महावीर के पैर जमीन में अड़े हैं; उनका सिर आकाश में उठा है, लेकिन पैर उनके जमीन पर है । बड़ा यथार्थ, बड़ा अनुभव-पूरित अनुभवगम्य मार्ग है । इसलिए महावीर के वचनों में रहस्यवाद नही है । वे कोई मिस्टिक नही हैं । वे किसी धुधले लोक की, किसी आकाश की बात नहीं कर रहे है । वे तुम्हारी बात कर रहे हैं । और जब वे तुमसे बात कर रहे हैं, तो उनके मन में ऐसा भाव नहीं है कि तुम क्षुद्र... । वे जानते हैं कि वे भी यही थे । वे चकित होते हैं तुम पर, लेकिन तुम पर क्रोधित नहीं है । यह समझने जैसी बात है । उनके मन में तुम्हारी निंदा नहीं है करुणा है, गहन करुणा है । आश्चर्य से भरे हैं, लेकिन उस आश्चर्य में तुम पर ही आश्चर्य नहीं है. स्वयं पर भी आश्चर्य है । इसलिए तत्क्षण जैसे ही उन्होंने कहा कि

अहो ! संसार में दुख ही दुख है, फिर भी जीव कलेश पा रहे हैं – उसके बाद ही वे कहते हैं, 'हा ! खेद है कि सुगति का मार्ग न जानने के कारण मैं मूढ़मति भयानक तथा घोर भव-वन में चिरकाल तक भ्रमण करता रहा ।' वे यह नहीं कह रहे हैं कि तुमसे मैं कुछ ऊपर हूं, पवित्र हूं, श्रेष्ठ हूं – मैं तुम में से हूं । मैं तुम्हारी ही भीड़ से आया हूं, मैं अपरिचित, अनजान नहीं । मैं कोई परदेशी नहीं । मैं तुम्हारे ही देश का वासी हूं । और जो तुम भोग रहे हो, मैंने भी भोगा है । तुम्हारी मूढ़ता मेरी भी मूढ़ता है । तुम्हारा अज्ञान मेरा भी अज्ञान है ।

'सुगति का मार्ग न जानने के कारण ... ।'

सुगति का मार्ग है : ध्यान, विवेक, विचार, जागरूकता, अमूर्च्छा, अप्रमाद । न जानने के कारण –

रोती है शबनम कली दिलतंग है गुल सीनाचाक
क्या इसी मजमूआ-ए-गम का गुलिस्तां नाम है ।

रोती है शबनम – आंसू हैं शबनम में । आंसू ही शबनम है । कली दिलतंग है – कली सिकुड़ी है अपने में, खुल नहीं पाती । कली दिलतंग है गुल सीनाचाक । फूल का हृदय टूट गया है । पंखुड़िया बिखरी जा रही है । क्या इसी मजमूआ-ए-गम का गुलिस्तां नाम है । क्या इसी को गुलिस्तां कहें । जहां जन्म भी दुख है, जहां जीवन भी दुख है, जहां मृत्यु भी दुख है, जहां एक दुख के बाद दूसरे दुख की शृंखला है – इसको जीवन कहें, गुलिस्तां कहें । नहीं, इसमें जीवन जैसा कुछ भी नहीं है । एक गहन स्वप्न है । स्वप्न भी मधुर नहीं । स्वप्न भी दुख-स्वप्न है, नाइटमेयर ।

लेकिन महावीर कहते हैं, क्या करो ? अनंत जन्म ऐसे गये, क्योंकि सुगति का कोई मार्ग पता न था ।

थोड़ा सोचो ! सुगति का मार्ग पता न था, क्या ऐसे लोग न थे जो सुगति का मार्ग बता रहे थे ? महावीर के पहले जैनों के भी तेईस तीर्थंकर हो गये । महिमावान पुरुष हुए । सुगति का मार्ग तो था, बताने वाले थे – सुना नहीं महावीर ने । उसी लिए आज रोते हैं । सुगति का मार्ग तो था, लेकिन उस पर चले नहीं । क्योंकि यह मार्ग कुछ ऐसा है कि चलने से ही बनता है । यह कोई बना-बनाया मार्ग नहीं है । कोई पी. डब्ल्यू. डी. नहीं है कहीं आकाश में कि रास्ते बनाती है कि तुम बस तैयार रास्ते हैं, चल पड़ो । जब मौज आ जाए, निकाल लो गैरेज से अपनी गाड़ी और चल पड़ो । नहीं, बने-बनाये रास्ते नहीं हैं । रास्ता चल-चल के बनता है । पगडंडियों जैसा है, राजपथ नहीं । चलते हो, उतना ही बनता है ।

सुनो उनकी जिन्होंने पाया हो । गुनो उनकी जिन्होंने पाया हो । पियो उनको जिन्होंने पाया हो । और फिर थोड़ा-सा जो तुम्हारे गले में घूंट उतर जाए, उसको सिर्फ ज्ञान बना के मत रह जाना । उसको पचाओ । पचाने का अर्थ है : चलो । जो तुमने सुना और समझा; थोड़ा उसका जीवन में प्रयोग करो । उतना रास्ता बनता

है। और एक कदम उठता है तो दूसरे कदम के लिए सुविधा बनती है। दूसरा कदम उठता है तो तीसरे कदम की सुविधा बनती है। और एक-एक कदम से आदमी हजारों मील की यात्रा कर जाता है।

'हा, खेद कि सुगति का मार्ग न जानने के कारण मैं मूढमति भयानक तथा घोर भव-वन में चिरकाल तक भ्रमण करता रहा।'

'जो जीव मिथ्यात्व से ग्रस्त हो गया है, उसकी दृष्टि विपरीत हो जाती है। उसे धर्म भी रुचिकर नहीं लगता; जैसे ज्वरग्रस्त मनुष्य को मीठा रस भी अच्छा नहीं लगता।'

महावीर कहते हैं, नहीं कि मैंने नहीं सुना था; नहीं कि सद्गुरु नहीं थे। लेकिन बुद्धि विपरीत थी। सुनता था कुछ, गुनता था कुछ। जो कहा जाता था उससे विपरीत सुन लेता था। जो बताया जाता था, उससे उलटा चल पड़ता था।

एक वकील के दफ्तर में ऐसा घटा। एक बहुत बड़े वकील अपने दफ्तर में कार्य करने वाले लड़के को सुधारने की कोशिश कर रहे थे। एक दिन लड़का अपनी टोपी उछालते हुए कमरे में आया और बोला, मिश्रा जी, 'आज एक बहुत अच्छा नाटक हो रहा है और मैं वहां जाना चाहता हूं।' मिश्रा जी भी चाहते थे कि लड़का नाटक देख ले, पर उसे कुछ तमीज सिखाने के खयाल से उन्होंने कहा, 'छोटे! पूछने का यह कोई तरीका है? टोपी उछालते हुए चले आ रहे हो दफ्तर में। यह कोई ढंग है? तुम मेरी कुर्सी पे बैठो, मैं तुम्हें सही तरीका सिखाता हूं।'

लड़का कुर्सी पे बैठ गया और वकील साहब कमरे के बाहर चले गये। फिर उन्होंने अंदर आने के लिए धीरे से दरवाजा खोला और कहा, 'साहब! आज दोपहर को एक बहुत अच्छा नाटक हो रहा है, यदि आप मुझे छुट्टी दे दें तो मैं उसे देख आऊं!'

'क्यों नहीं', कुर्सी पे बैठे लड़के ने कहा, 'और छोटे! यह लो टिकट के पांच रुपये।'

बड़ा मुश्किल है सिखाना! क्योंकि जिसे तुम सिखाने चले हो, वह पहले से ही सीखा बैठा हुआ है। इस संसार में शिष्य खोजना बड़ा मुश्किल है, क्योंकि शिष्य पहले से ही गुरु बना बैठा है। लोग जानते ही हैं। उसी जानकारी के कारण अगर कोई जानने वाला भी मिल जाए तो उससे चूक जाते हैं।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हमारे शास्त्र में तो ऐसा लिखा है और आपने ऐसा कहा। तो मैं उनसे कहता हूं, तुम्हें शास्त्र ठीक लगता हो तो उस पे चलो! चलो! तुम्हें मैं ठीक लगता हूं, मुझ पे चलो। कृपा करके इस झंझट में तो न पड़ो कि शास्त्र ठीक कि मैं ठीक। क्योंकि ठीक का पता सोच-विचार से न चलेगा, चलने से चलेगा। मैंने तुमसे कहा, पूर्व से जाओ तो नदी पहुंच जाओगे। कोई तुमसे कहता है, पश्चिम से जाओ तो नदी पहुंच जाओगे। तो मैं कहता हूं, कैसे तय

करोगे यहीं खड़े-खड़े, कौन ठीक कहता है? चलो, जिस पे तुम्हें भरोसा हो। शास्त्र पे भरोसा हो, चलो। अगर नदी न मिले तो हिम्मत रखना स्वीकार करने की कि शास्त्र गलत। अगर मेरी बात मान के चलो और नदी न मिले, तो हिम्मत रखना यह बात स्वीकार करने की कि जिसको गुरु समझा था वह गलत था। फिर ऐसा मत करना कि जब एक दफा मान लिया किसी की बात को कि पूरब में नदी है, तो अब चाहे पूरब में नदी मिले या न मिले, चाहे जन्म-जन्म भटक जाएं लेकिन हम पूरब में ही खोजेंगे, क्योंकि मान लिया सो मान लिया। ऐसी हठग्राहिता से कुछ अर्थ नहीं है। लोग माने बैठे हैं, चले भी नहीं, कभी प्रयोग करके भी नहीं देखा। सैद्धान्तिक बकवास लोगों के मन में गूंजती रहती है। इसके कारण अगर कोई जताने वाला भी मिल जाए, कोई जगाने वाला भी मिल जाए, कोई तुम्हारी ज्योति को थोड़ा सहारा भी देने वाला मिल जाए, तो तुम उसे सहारा नहीं देने देते। तुम कहते हो, 'ठहरो! हमारी मान्यता के विपरीत तो नहीं है?' तुम मान्यताओं को क्या सम्पत्ति समझे हुए हो? तो फिर तुम न सीख पाओगे।

तो महावीर कहते हैं, जो जीव मिथ्यात्व से ग्रस्त होता है उसकी दृष्टि विपरीत हो जाती है। नहीं कि सद्पुरुष न थे। नहीं कि ज्योतिर्मय पुरुष न थे। लेकिन कहते है, 'मै मूढ़मति! जो उन्होंने कहा, उससे उलटा समझा। जो उन्होंने बताया वह तो सुना ही न, कुछ और सुन लिया। जो उन्होंने कहा, वह तो कभी किया न, उसे सैद्धान्तिक बोझ बना लिया।

'उसे धर्म भी रुचिकर नही लगता।' और धर्म की बात रुचिकर नही लगती। क्योंकि धर्म की बात को अगर रुचि से सुनो भी, तो तुम्हारे जीवन में क्रांति सुनिश्चित है। लेकिन क्रांति से घबड़ाहट होती है। तुमने बहुत-से न्यस्त स्वार्थ बना रखे है। तुम एक बड़ा मकान बना रहे हो, कोई कहता है कि ये सब खंडहर हो जाएगे। तो तुम कहते हो, यह बातचीत सुनो ही मत, अब यह बना तो लेने दो। अभी अगर यह बीच मे बात सुन ली तो यह बनाने का जो उपक्रम चल रहा है, बंद हो जाएगा।

मेरे एक मित्र के साथ, इन्दौर के पास माडू मे मै मेहमान था। माडू की संख्या कभी नौ लाख थी। ज्यादा दिन नही, सात सौ साल पहले। और आज नौ सौ भी नहीं है। बडी विराट नगरी थी माडू। माडवगढ़ उसका नाम था। जब बस्ती सिकुड़ गयी तो माडवगढ़ 'मांडू' हो गया। हो ही जाना चाहिए, माडवगढ अब कहने का कोई मतलब नहीं है! इतनी-इतनी बड़ी मस्जिदें हैं, उनके खंडहर हैं, जहां दस-दस हजार लोग इकट्ठे नमाज पढ़ सकते थे। इतनी बड़ी धर्मशालाएं हैं कि वहां दस-दस हज़ार लोग इकट्ठे उतर सकते थे। माडव बड़ी नगरी थी। उन जमानों की बम्बई थी। क्योंकि ऊंटों का सारा आवागमन था और मांडू मध्य में था। सारा मुल्क माडू से गुजरता था। मुल्क के बाहर के यात्री भी, चाहे अफगानिस्तान से आते हों, चाहे

काबुल से आते हों, चाहे ईरान से आते हों, मांडू से ही गुजरते थे। तो हजारों यात्री बने रहते थे। सैकड़ों मस्जिदें थीं, सैकड़ों मंदिर थे, सैकड़ों धर्मशालाएं थीं। ऊंटों के ठहरने के लिए इतने-इतने बड़े स्थान थे कि हजारों ऊंट इकट्ठे ठहर सकें। फिर अचानक सब खो गया। आज मांडू में नौ सौ आदमी हैं। खंडहर पड़े हैं। विशाल खंडहर है। बडे महल हैं। मीलो तक विस्तार है।

जिन मित्र के साथ मैं ठहरा था, वे इंदौर में एक बड़ा मकान बना रहे थे। वे इतनी धुन से भरे थे अपने बडे मकान की कि सुबह उठें तो उसकी बात करें। नये-नये विचार, नयी-नयी तरंगें कि ऐसा कर लेंगे। तो स्विमिंगपूल कैसा बनाना...। कौन-सा पत्थर लगाना। रात सोते-सोते भी वे वही बात करते, सुबह उठ के भी। दो-तीन के बाद मैंने उनसे कहा कि तुम जरा मांडू भी तो देखो! कहने लगे, क्या देखना माडू में? मैंने कहा, जरा चारों तरफ नजर भी तो फैलाओ, कितने बडे महल थे, सब खंडहर हो गये! उन्होंने कहा, रहने दो बाबा! पहले मुझे मकान तो बना लेने दो। जब होगा खंडहर जब होगा! अभी मत छेड़ो बीच में यह बात।

वे मुझसे उस दिन बोले कि कभी-कभी तुम्हारे साथ हो के डर लगता है। हो तो जाने दो पहले मकान पूरा, तुम अभी से खंडहर की बात करने लगे! अपशगुन तो मत करो! कोई शुभ कार्य में से ऐसी बात तो नही कहनी चाहिए!

वे घबडा गये। स्वभावतः कोई महल बना रहा हो, उसको तुम खंडहर की बात बताओ, नाराज होगा। समझ में भी आ जाए... समझ में क्यो न आएगा? समझने की क्या अड़चन है इसमें? इतना फैलाव पड़ा है, इतने खंडहर हो गये मकान—तुम्हारा मकान भी खंडहर हो ही जाएगा! तुम बना-बना के मर जाओगे, मिट जाओगे। तुम अपने को गंवा दोगे ईंटें रखने में। फिर पछताओगे।

लेकिन आदमी के न्यस्त स्वार्थ हैं।

इसलिए महावीर कहते हैं: मिच्छत्तं वेदन्तो जीवो विवरीयदंसणो होइ। न य धम्म रोचेदु हु, महुरं पि रसं जह जरिदो।। 'जैसे ज्वरग्रस्त आदमी को मीठा रस भी मीठा नहीं मालूम पड़ता, ऐसे वासना के ज्वर से भरे व्यक्ति को धर्म की बात भी सुनायी नही पड़ती, उलटी सुनायी पड़ती है।

एक छोटा बच्चा एक बगीचे में आम तोड़ता हुआ पकड़ा गया। माली ने उसे पकड़ा, पुलिस-थाने ले गया। लड़का भोला-भाला था। भोला-भालापन देख कर दरोगा ने कहा, 'बेटे, तुम्हें बुरे लोगों से बचना चाहिए।' उस लड़के ने कहा, 'अजी, मैंने तो माली से बचने की बहुत की, पर उसने मुझे पकड़ ही लिया।'

दरोगा कह रहा है, बुरे के संग से बचो, ताकि चोरी न सीखो: लड़का सुन रहा है कि यह माली बुरा आदमी है; मैं तो भागने की कोशिश कर ही रहा था; इससे बचने की कोशिश कर ही रहा था, तभी इसने पकड़ लिया।

तुम अपनी वासना के आधार से सुनते हो। इसलिए अपने सुने हुए पर बहुत भरोसा मत करना। बहुत गौर से सुनना। सुन भी लो तो भी पुनः पुनः विचार करना, यही कहा गया था, तुमने कहीं कुछ मिश्रित तो नहीं कर लिया है, तुमने कहीं कुछ जोड तो नहीं लिया, तुमने कहीं कुछ घटा तो नही दिया है! एक शब्द भी घटा देने से बडा फर्क पड जाता है। एक शब्द भी जोड़ लेने से बडा फर्क पड़ जाता है। जरा-सा जोर एक शब्द पर ज्यादा दें तो बड़ा फर्क पड़ जाता है।

और मिथ्यात्व से भरा हुआ व्यक्ति, उसकी दृष्टि विपरीत हो जाती है।

'मिथ्यात्व' महावीर का विशेष शब्द है। जैसे 'माया' शंकर का, ऐसे 'मिथ्यात्व' महावीर का। मिथ्यात्व बड़ा बहुमूल्य शब्द है। इसका अर्थ समझना चाहिए। मिथ्यात्व का अर्थ है: जैसा है, उसको वैसा न देखना। जैसा है, उसको वसा देख लेना – सम्यक्त्व। जैसा है, उसको वैसा न देखना – मिथ्यात्व। कुछ को कुछ देख लेना...।

अंधेरे में चल रहे हो, दूर से दिखता है कि कोई चोर खडा है, पास आते हो तो पाते हो कि बिजली का खम्भा है। तो वह जो चोर दिखायी पड गया था– 'मिथ्यात्व'। नहीं कि चोर वहां था, तुम्हे दिखायी गया था।

रस्सी पड़ी है। अंधेरे में गुजर रहे हो, घबड़ा के छलांग लगा जाते हो, लगता है साप है। रोशनी लाते हो, देखते हो: कोई सांप नही, रस्सी पडी है। रस्सी सांप जैसी दिखायी कैसे पड गयी? तुम्हारे भीतर के भय ने लगता है साप निर्मित कर लिया। रस्सी मिलती-जुलती है सांप से थोड़ी; साप जैसी लहरें लिये पडी है। उस मिलते-जुलतेपन के कारण तुम्हारे भीतर भय का तूफान उठ गया, आंधी उठ गयी। और तुम्हारे भय ने साप देख लिया। इतना ही समझो कि तुम्हारे भीतर साप का भय पड़ा हुआ है। रस्सी में सांप दिख गया, क्योंकि तुम्हारे भीतर साप का भय पड़ा हुआ है।

तुम थोडा सोचो, ऐसा कोई आदमी जिसने साप कभी देखा ही न हो, या सुना ही न हो, क्या वह आदमी भी इस रस्सी में सांप देख सकेगा? कैसे देखेगा? असम्भव।

एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग कर रहा था। वह अपने विद्यार्थियों को ले गया काशी के मदिर में, विश्वनाथ के मंदिर में। शंकर जी की पिंडी के पास वह अपना हैट रख आया और दरवाजे पे उसने खड़े हो के शिष्यों को पूछा कि क्या है, शंकर जी की पिंडी के पास क्या रखा है? उन सब ने गौर से देखा और सब ने कहा कि शंकर जी का घंटा। क्योंकि हैट और शंकर जी का संबंध ही नहीं जुड़ता। तो वह जो हैट था, घंटे जैसा दिखायी पड़ने लगा।

तुमने कभी देखा, आकाश में बादल बनते हैं! तुम जो देखना चाहते हो, देख लेते हो। कभी-कभी वर्षा की बूंदें दीवालों पर चित्र अंकित कर जाती हैं, तुम जो

देखना चाहते हो देख लेते हो। वहां कुछ भी नहीं हैं। कभी-कभी चेहरा दिखायी पड़ता है। दीवाल पर पानी की रेखाएं बह गयी हैं। वहां कुछ भी नहीं है। लेकिन तुम आरोपित कर लेते हो।

मिथ्यात्व का अर्थ है : जो नहीं है वह तुमने देख लिया; और जो था उससे तुम चूक गये। जब तुम उसे देख लोगे जो नहीं है तो उससे तुम चूक ही जाओगे जो है।

दृष्टि को साधना है। दृष्टि को निर्मल करना है। और धीरे-धीरे दृष्टि के साथ जल्दी निष्कर्ष नहीं लेने हैं। निष्कर्ष करने में थोड़ा धैर्य करो। सुनो, देखो, जल्दी निष्कर्ष मत लो।

मेरे पास तुम आए हो, सुनते हो। इधर तुम सुन रहे हो, साथ-साथ तुम निष्कर्ष भी लेते जाते हो। तुम में से कई हैं जो सिर हिलाते हैं, वे कहते हैं, बिलकुल ठीक। उनके भीतर मेल खा रही है बात। वे जो मानते रहे हैं उससे मेल खा रही है। कोई सिर हिलाता है कि नहीं। वह उसे पता भी नहीं कि वह सिर हिला रहा है; मुझे दिखाई पड़ता है कि वह कह रहा है कि नहीं, यह बात जंचती नहीं। इतनी जल्दी मत करो, पहले मुझे सिर्फ सुन लो। सिर्फ शुद्ध सुनना काफी है। फिर सुनने के बाद, समझने के बाद फिर तालमेल बिठा लेना। अभी तुमने अगर साथ ही साथ दो प्रक्रियाएं जारी रखीं कि तुम अपने भीतर विचार भी चलाते रहे, तर्क भी करते रहे, विवाद भी करते रहे, तालमेल भी बिठाते रहे, तो तुम मुझे न सुन पाओगे। तुम्हारा शोरगुल इतना ज्यादा होगा, तुम कैसे मुझे सुन पाओगे? फिर तुम जो निष्कर्ष लोगे वह मिथ्यात्व होगा।

'मिथ्या-दृष्टि जीव तीव्र कषाय से पूरी तरह आविष्ठ हो कर जीव और शरीर को एक मानता है। वह बहिरात्मा है।'

महावीर कहते हैं, आत्मा की तीन अवस्थाएं हैं : बहिरात्मा—जब तुम वासना से बाहर बहे जाते हो, अंतरात्मा—जब तुम ध्यान से भीतर चले आते हो, और परमात्मा—जब बाहर-भीतर दोनों खो गये।

हो तो तुम वही। हो तो तुम परमात्मा ही। लेकिन जब परमात्मा बाहर की तरफ बह रहा है तो बहिरात्मा। जब पदार्थ में रुचि है, वस्तु में रुचि है, दूसरे में रुचि है, विषय-वस्तु में रुचि है; जब तुम अपने को इतना भूल गये हो कि बस पदार्थ ही सब कुछ हो गया, धन के दीवाने हो, पद के दीवाने हो – तब तुम बहि-रात्मा। बहिरात्मा यानी आत्मा बाहर की तरफ बहती हुई। फिर विचार शुरू हुआ, बहुत जले, इतने जले कि दूध का जला छांछ भी फूंक-फूंक के पीने लगा! विचार का जन्म हुआ, विवेक उठा, तब तुम भीतर लौटने लगे, अन्तर्यात्रा शुरू हुई – तब अंतरात्मा। हो तो तुम वही – दिशा बदली, आयाम बदला, तुम्हारा गुणधर्म बदला; अभी तुम घर के बाहर जाते थे, अब तुम घर की तरफ आने लगे;

अभी संसार की तरफ मुह था, अब पीठ हो गयी; अभी सन्मुख संसार था, अब तुम आत्मसन्मुख हुए; फिर पहुंच गये घर; फिर तुम अपने में लीन हो गये; फिर स्वभाव उपलब्ध हो गया – तब परमात्मा। अब न कुछ बाहर है, अब न कुछ भीतर है। द्वन्द गया। दुई मिटी। द्वन्दात्मकता खोयी। निर्द्वद्व हुए। निर्ग्रंथ हुए। इसको महावीर कहते है मोक्ष-अवस्था।

बहिरात्मा को अन्तरात्मा बनाना है, अन्तरात्मा को परमात्मा बनाना है। परमात्मा तुम हो ही, सिर्फ यात्रा के रुख बदलने है, दिशा बदलनी है। जो तुम हो, वही हो सकते हो। जो तुम हो ही वही होओगे। लेकिन अगर विपरीत चले जाओ, मिथ्यात्व में खो जाओ, तो तुम रहोगे भी परमात्मा, लेकिन अपने को कीड़ा-मकोड़ा समझने लगोगे; आदमी, स्त्री, हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्मण, शूद्र समझने लगोगे। रहोगे परमात्मा और किसी छोटी-सी चीज़ से अपना संबंध बना लोगे; कहोगे — यही मैं हूं, यही मैं हूं, यही मैं हू!

लौटो भीतर की तरफ! ध्यानस्थ होओ! धीरे-धीरे तुम्हारी दृष्टि क्षुद्र से छूटेगी। जैसे अपनी तरफ लौटोगे, अचानक पाओगे : न तो मैं शरीर हूं न मैं मन हू, न मै हिन्दू न मैं मुसलमान, न मैं ब्राह्मण न शूद्र, न जैन न ईसाई, न स्त्री न पुरुष, न गरीब न अमीर, न सुखी न दुखी। जैसे-जैसे भीतर आने लगोगे, द्वन्द छूटने लगे – दूर खोने लगे, आकाश में गए! रह गए स्वप्नवत्। स्मृति रह गयी। फिर एक दिन अचानक घर में प्रवेश हो जाएगा। तुम अपने स्वरूप मे थिर हो जाओगे।

स्वरूप मे थिर हो जाना स्वस्थ हो जाना है। स्वस्थ यानी स्वयं में स्थित। परमात्मा हुए। परमात्मा प्रगट हुआ।

महावीर की विचार-सरणी में परमात्मा प्रकृति के प्रारम्भ में नही है। परमात्मा, जब प्रकृति का परिपूर्ण उन्मेष और विकास हो जाता है, तब है। और परमात्मा एक नही है; उतने ही परमात्मा हैं, जितने जीवन-बिन्दु हैं। हर बिन्दु सागर हो जाता है। उतने ही सागर हैं जितने बिन्दु है।

इसलिए परमात्मा, महावीर की दृष्टि में, कोई तानाशाही की धारणा नही है; बड़ी लोकतांत्रिक धारणा है। प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा है। प्रत्येक व्यक्ति की नियति परमात्मा है, स्वभाव परमात्मा है। महावीर ने तुम्हारे भीतर के परमात्मा को पुकारा है – किसी परमात्मा की पूजा के लिए नही; किसी परमात्मा की अर्चना के लिए नही – अपने परमात्मा को पाने के लिए।

और जब तक कोई परमात्मा की अवस्था को उपलब्ध न हो जाए ... ध्यान रखना, परमात्मा अवस्था है, व्यक्ति नही ... तब तक जीवन दुख से भरा रहता है; तब तक अंधेरी रात नहीं टूटती।

उठो! चलें! उस सूरज की खोज करें जो तुम्हारे भीतर छिपा है! जागो!

थोड़ा हलन-चलन करो ! थोड़ी गति करो ! उसकी खोज करो जो तुम्हारे भीतर पड़ा ही है; जिसे तुम सदा ही अपने भीतर छिपाये रहे हो, लेकिन नजर नहीं दी, उस तरफ आंख नही फेरी । जैसे ही तुम भीतर की तरफ नजर को फेरते हो, मिथ्यात्व सरकने लगता, खोने लगता । जैसे दीये के जलने पे अंधेरा विसर्जित होता — सम्यक्त्व का जन्म होता । और जब तुम पहुंच गये, तो वहां न मिथ्यात्व है न सम्यक्त्व, दोनो द्वन्द गये ! फिर वहां तो केवल-ज्ञान, केवलत्व, कैवल्य है ।

आज इतना ही ।

दिनांक १४ मई, १९७६. श्री रजनीश आश्रम, पूना

प्रश्न-सार

सुना-पढ़ा सब भूल जाता है; रोना-ही-रोना बचा है।

तेरी यारी में बिहारी सुख न पायो री ! .... ?

शास्त्रीय परंपरा में संन्यासी काम-भोग से विमुख और प्रभु-प्राप्ति के लिए उन्मुख होता है, लेकिन आपके संन्यास में विरक्ति पर जोर क्यों नहीं ?....

क्या भक्ति-मार्ग में बुरे कर्मों का फल भोगना पड़ता है ?

यदि इस पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है तो वह यही है, यहीं है, यहीं है। ऐसा क्यों हुआ, कृपया समझाएं !

धर्म : निजी और वैयक्तिक

पहला प्रश्न : कोई आठ वर्षों से आपको सुनती हूं, पढ़ती हूं; लेकिन सब भूल जाता है, सिर्फ आप ही सामने होते हैं। और अब तो रोना-ही-रोना रहता है। घर पर आपके चित्र के सामने रोती हूं, यहां प्रवचन में रोती हूं। यह क्या है?

तेरी यारी में बिहारी सुख न पायो री!

प्रेम जलाता है। और प्रेम में जो जलने को राजी है वही प्रार्थना को उपलब्ध भी होता है। प्रेम दुख देता है, क्योंकि प्रेम काटता है। जैसे मूर्तिकार पत्थर को तोड़ता है, छैनी-हथौड़ी से; लेकिन तभी प्रतिमा का आविर्भाव होता है। जो प्रेम के दुख से डर गया, वह अप्रेम के नर्क में जियेगा सदा। जिसने प्रेम की पीड़ा को स्वीकार कर लिया, तो दुख जल्दी ही सुख में रूपान्तरित होगा—और ऐसे सुख में जिसका कोई अंत नहीं।

आंसुओं से भरा है रास्ता सत्य की खोज का, लेकिन एक-एक आंसू के बदले में करोड़-करोड़ फूल खिलते हैं। ये आंसू साधारण आंसू नहीं हैं। जिसने पूछा है उसे मैं जानता हूं। ये आंसू साधारण आंसू नहीं हैं। और इन आंसुओं का दुख साधारण दुख भी नहीं है। इन आंसुओं में एक रस है। इनको आंसू ही मत समझना, अन्यथा चूक हो जायेगी। दूसरे समझें तो समझने देना। खुद इन आंसुओं को अगर आंसू ही समझ लिया तो बड़ी चूक हो जायेगी। यह तो अनिवार्य चरण है।

परमात्मा की खोज में दो ही उपाय हैं। या तो आंसू बिलकुल सूख जायें, आंख जरा भी गीली न रहे, गीलापन ही न रहे, लकड़ी सूखी हो जाये कि आग लगाओ तो धुआं न उठे, लपट ही लपट हो। वैसा महावीर का मार्ग है। वहां आंसू सुखाने हैं। वहां आंसुओं को बिलकुल वाष्पीभूत कर देना है। वहां प्रेम को बचाना नहीं; वहां प्रेम की सारी संभावनाओं को समाप्त कर देना है—ताकि तुम ही बचो, निपट अकेले; बाहर जाने का कोई द्वार भी न बचे। क्योंकि प्रेम बाहर ले जाता है। संसार में भी ले जाता है, परमात्मा में भी ले जा सकता है; लेकिन साधारणतः तो संसार

में ही ले जाता है, निन्यानवे मौके पर तो संसार में ही ले जाता है।

महावीर का मार्ग कहता है, इन आंसुओं को सुखा डालो । न कोई भक्ति न कोई भाव, न कोई पूजा न कोई प्रार्थना--बुझा दो ये सब दीप अर्चना के ! निपट अपने अकेलेपन में राजी हो जाओ। तो भी परमात्मा प्रगट होता है। इस अति पर भी परमात्मा प्रगट होता है।

फिर दूसरा मार्ग है नारद का, चैतन्य का, मीरा का। जिसने पूछा है उसका नाम भी मीरा है। वहां आंसू ही आंसू हो जाओ। वहां तुम न बचो। पिघलो और बह जाओ, कि पीछे कोई रोने वाला न बचे, रुदन ही रह जाये। इस तरह गलो कि जरा-सी भी गांठ न रह जाये भीतर। सब आंखों के बहाने बह जाये। सब आंसुओं में ढल जाये। तो भी परमात्मा तक पहुंचना हो जाता है। क्योंकि जब सब बह जाता है, तुम बचते ही नहीं, तो परमात्मा ही बचता है।

या तो तुम्हीं बचो और कुछ न बचे, तो परमात्मा मिलता है, या और सब बचे, तुम न बचो, तो परमात्मा मिलता है। या तो तुम्हारा आत्म-भाव इतना विराट हो जाये कि सब उसमें समा जाये; या तुम्हारा आत्म-भाव इतना शून्य हो जाये कि सबमें समा जाये।

महावीर का मार्ग आत्मा को सुदृढ़ करने का मार्ग है। नारद का मार्ग आत्मा को विसर्जित कर देने का मार्ग है। इसलिए घबड़ाओ मत। हंस के रोओ, रो के नाचो, नाच के रोओ। नृत्य को उत्सव समझो।

हम पे मुश्तरका है अहसान गमे-उल्फत के
इतने अहसान कि गिनवाऊं तो गिनवा न सकूं
हमने इस इश्क में क्या खोया है, क्या पाया है
जुज़तिरे और को समझाऊं तो समझा न सकूं।

हम पे मुश्तरका हैं अहसान गमे-उल्फत के ! प्रेम की पीड़ा के इतने अहसान हैं, प्रेम के दुख ने इतना दिया है--गमे-उल्फत।

हम पे मुश्तरका है अहसान गमे-उल्फत के
इतने अहसान कि गिनवाऊँ तो गिनवा न सकूं।

अनन्त है उनका उपकार। एक-एक आंसू ने भक्त को निखारा है, स्वच्छ किया है, ताजगी दी है, निर्दोष बनाया है। एक-एक आंसू जहर को ले के बाहर हो गया है, पीछे अमृत ही छूट गया है।

हम पे मुश्तरका हैं अहसान गमे-उल्फत के
इतने अहसान कि गिनवाऊं तो गिनवा न सकूं
हमने इस इश्क में क्या खोया है, क्या पाया है
जुज़तिरे और को समझाऊं तो समझा न सकूं।

और कोई समझ भी न सकेगा।

बहुत कुछ खोया भी जाता है प्रेम में । बहुत कुछ पाया भी जाता है प्रेम में । खोना मार्ग है पाने का । खोने से डरे तो पाने से वंचित रह जाओगे । पहले तो खोया ही जाता है; पाना तो बाद में घटता है । पहले तो खोना खोना ही है । सौदा पहले तो घाटे का है । जब सब खो जाता है, तब मिलन के क्षण आते हैं,तब वर्षा होती है । जैसे गर्मी में सब सूख जाता है, धरती तपती है, वृक्ष रूखे हो जाते, पत्ते गिर जाते, वृक्ष नग्न हो जाते, धरती प्यासी और रोती–तब मेघ-मल्हार, तब मेघ घिरते हैं, तब आषाढ़ के दिवस आते और वर्षा होती है ।

पहले तो खोना ही खोना है । खोना पाने की पात्रता है । पहले तो खाली होना है, इसलिए खोना पड़ेगा । पात्र जब पूरा खाली होगा तो बरसेगा परमात्मा ।

हमने इस इश्क में क्या खोया है, क्या पाया है
जुजतिरे और को समझाऊं तो समझा न सकूं ।

उस परम प्यारे के अतिरिक्त किसी और को समझा भी न सकोगे । कोई समझेगा भी नहीं, क्योंकि यह सौदा बड़े पागलपन का है । भक्त का रास्ता दीवाने का रास्ता है ।

महावीर का रास्ता अत्यंत विचार का रास्ता है, अत्यंत विवेक का, गणित का । वहां चीजें साफ-सुथरी है । इसलिए जैन-शास्त्रों में रस नहीं है । पढ़े जाओ, सुने जाओ, मरुस्थल ही मरुस्थल है । जैन-शास्त्रों मे रस नहीं है । हो नहीं सकता । वह मार्ग वैराग्य का है, विरसता का है । रस है तो भक्ति के शास्त्रों में । वहां तुम्हें कोई सूखी जमीन न मिलेगी । वहां सब कमलों से ढका है । लेकिन वे कमल मुफ्त नहीं मिलते । वे कमल यूंही नहीं खिलते, सब कोई जब गंवाता है, तब खिलते है । तो घबड़ाना मत । अब रोने को ही साधना समझना । कंजूसी मे मत रोना । रोए और कंजूसी से रोए तो व्यर्थ रोए । दिल भर के रोना । समग्रता से रोना । और रोने को प्रार्थना समझना, अहोभाव समझना । ये आंसू कम ही सौभाग्यशालियों की आंखों मे आते है । बहुतों की आंखे तो पथरा गई हैं, नकली हो गई हैं ।

मैंने सुना है, एक करोड़पति कंजूस की एक आंख नकली थी, पत्थर की थी । एक आदमी भीख मांगने आया था । कंजूस ने कभी किसी को भीख न दी थी । लेकिन उस दिन कुछ शुभ मुहूर्त में आ गया था भिखारी । कंजूस कुछ प्रसन्न था । कोई बड़ी संपदा हाथ लग गई थी । अभी-अभी खबर मिली थी तो बड़ा प्रफुल्लित था । तो रोज से उस दिन सदय था । कभी किसी भिखारी को कुछ न दिया था । उसी दिन भिखारी से कहा, ' अच्छा दूंगा कुछ, लेकिन पहले एक शर्त है । क्या तू बता सकता है कि मेरी कौन-सी आंख असली है, कौन-सी नकली है ?' उस भिखारी ने देखा और उसने कहा कि बाईं असली होनी चाहिए, दाईं नकली । चकित हुआ धनपति । उसने कहा, ' कैसे तूने जाना ?' तो उसने कहा, ' नकली आंख में

थोड़ी-सी करुणा मालूम पड़ती है, थोड़ी दया का भाव मालूम पड़ता है, इससे पहचाना। असली तो बिलकुल पथरा गई है।'

बहुत हैं जिनकी आंखें पथरा गई हैं, जिनके हृदय सूख गये हैं, रसधार नहीं बहती। गगा खो गई है, रूखे-सूखे रेत के पहाड़ खड़े रह गये हैं। कहीं कोई अंकुर नहीं फूटता, कोई पक्षी गीत नहीं गाता। सौभाग्यशाली हैं वे जिनकी आंखें अब भी तर हो सकती हैं, भींग सकती हैं। उनकी आत्मा के भीगने का अभी उपाय है।

तो अगर रोना आता हो तो आने देना, सहयोग करना, साथ देना, संगी बनना। लड़-लड़ के मत रोना। झिझक-झिझक के मत रोना। सकुचाना मत। शर्माना मत। नहीं तो चूक हो जायेगी।

अगर आंसुओं से तुम पूरे बह जाओ तो कुछ कहने को नहीं बचता। फिर कोई प्रार्थना करने की जरूरत नहीं है। फिर कोई शास्त्र आवश्यक नहीं है। फिर तुम्हारे आंसू सब कह देंगे -- जो नहीं कहा जा सकता वह भी; जो कहा जा सकता है वह तो निश्चित ही। फिर तो तुम्हारे आसू सब गा देंगे -- जो गेय है, अगेय है, सभी गा देंगे; जो नही गाया जा सकता है, अगेय है, वह भी गा देंगे। फिर तो तुम्हारे आंसुओं की धुन में सब प्रगट हो जायेगा। तुमसे ज्यादा ढंग से कह देंगे वे, परमात्मा से क्या कहना है।

वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान
उमड़ कर आंखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान

सारा काव्य आसुओं का है। हंसी से कोई काव्य निर्मित होता है? सारा काव्य आंसुओं का है, क्योंकि हंसी बड़ी उथली है, ऊपर-ऊपर है, खोखली है। कोई हंसना आंसुओं की गहराई नही छू पाता। हंसना ऊपर-ऊपर लहर की तरह आता है, चला जाता है। आंसू कहीं गहरे में सघन हो जाते हैं। तो आंसू तो गहराई में उतरने की सुविधा है, सौभाग्य है।

और धीरे-धीरे, पहले तो आंसू अपने लिए बहते हैं, फिर आंसू औरों के लिए भी बहने लगते हैं। पहले-पहले तो कारण से बहते हैं, फिर आकारण बहने लगते हैं। जब अकारण बहने लगते हैं, तब उनका मजा ही और है।

अश्रु अपनी ही व्यथा का निर्वसन तन
गीत जग भर के दुखों की आत्मा है।

पहले तो अपनी ही पीड़ा से बहते है, लेकिन जल्दी ही तुम पाओगे कि तुम्हारी पीड़ा सारी मनुष्यता की पीड़ा है। जल्दी ही तुम पाओगे : तुम्हारी पीड़ा सारे अस्तित्व की पीड़ा है। यह तुम ही नही रोए हो, यह परमात्मा से बिछुड़ापन रोया है।

वियोगी होगा पहला कवि !
– यह वियोग रोया है ।
आह से उपजा होगा गान !
– और जल्दी ही तुम्हारे आंसुओं से गीत उतरने लगेंगे ।

मीरा खूब रोयी । इसीलिए तो मीरा के गीतों में जो है, वह महाकवियों के गीतों में भी नहीं । मीरा के गीत भाषा और व्याकरण की दृष्टि से तुकबंदियां हैं । हृदय की दृष्टि से वैसे गीत कभी-कभार पृथ्वी पे उतरे हैं, किसी दूसरे लोक से आये हैं । बहुतों ने गीत लिखे हैं, लेकिन जैसे मीरा के गीत हृदय-हृदय में उतरे हैं, वैसे किसी के गीत कभी नहीं उतरे । न तो भाषा, न छंद-शास्त्र, न काव्य की मात्राओं का कुछ हिसाब है, न संगीत का कोई गणित है – पर कुछ और है जो इन सब के पार है । यह व्यथा मीरा की अपनी नहीं है अब ! जैसे मीरा के कंठ से सारी मनुष्यता, सारा अस्तित्व अपनी पीड़ा को प्रगट किया है ।

जब आंसू तुम से मुक्त हो जाते हैं, और सब के हो जाते हैं । तो तुम समाप्त हुए, अब तुम कोई छोटी-मोटी धारा न रहे जो सूख जाती है वर्षा, गर्मी में, भर जाती है वर्षा में, वर्षा में बडी बाढ़ आ जाती है, गर्मी में पता भी नहीं चलता कहां खो गई । जब तुम्हारी व्यथा सबकी व्यथा से जुड़ जाती है, तो तुम सागर हो गए । तब तुम्हारे भीतर सिर्फ व्यथा ही नहीं रहती, व्यथा के गीत उठते है, विरह के गीत उठते हैं ।

सारा भक्ति-शास्त्र विरह है, वियोग है । और भक्त ने विरह को दुर्भाग्य नहीं माना है, सौभाग्य जाना है । भक्त ने अपनी पीडा को भी स्वर्णिम माना है । है भी स्वर्णिम, क्योंकि जब सब खो जायेगा, जब कुछ भी न बचेगा, केवल एक प्यास बचेगी, एक उत्तप्त हृदय बचेगा – तभी उसी क्षण में, उसी परम सौभाग्य के क्षण में, उसी धन्यता की घड़ी में, परमात्मा का अवतरण होता है ।

'कोई आठ वर्षों से आपको सुनती हूं, पढती हूं; लेकिन सब भूल जाता है, सिर्फ आप ही सामने होते हैं ।'

शुभ हो रहा है । मैं क्या कहता हूं, उसका हिसाब वे रखें जो मुझे नहीं समझ पाते । उनके हाथ कूड़ा-कर्कट पड़ेगा । वे उच्छिष्ट को इकट्ठा कर लेंगे । जैसे भोजन की टेबल के आसपास थोड़े टुकड़े गिर जाते हैं, ऐसे ही शब्द हैं । टुकड़े भोजन से गिर गये – रोटी के, साग-सब्जी के, मिष्ठान्न के – ऐसे ही शब्द हैं । क्योंकि जो मैं हूं वह शब्दों में प्रगट नहीं हो सकता । शब्द बड़े छोटे हैं । तो शुभ है कि शब्द भूल जायें और मैं याद रहूं । अशुभ होगा कि शब्द याद रहें और मैं भूल जाऊं । बहुतों को यही होता है : शब्द याद रह जाते हैं, मैं भूल जाता हूं । कुछ मिला उन्हें, लेकिन जहां बहुत मिल सकता था, वहां अपने ही हाथ वे क्षुद्र को इकट्ठा करके आ गये । जहां हीरे मिल सकते थे वहां से कंकड़-पत्थर बीन लाये ।

अच्छा है । भूल ही जाओ । जो सुना है उसे याद रखने की जरूरत नहीं है ।

अगर मुझसे मिलन हुआ है, अगर क्षण भर को भी मुझे देखा है, मुझमें झांका है, तो क्या मैं कहता हूं, इसकी क्या फिक्र !

चाहें तो तुमको चाहें, देखें तो तुमको देखें
ख्वाहिश दिलों की तुम हो, आखों की आरजू तुम ।

जिसे दर्शन हुआ, जिसे दिखाई पड़ने लगा, वह कानों की फिक्र छोड़ देता है। जब आंखें भरने लगी तो कानों की फिक्र कौन करता है !

सुनने पर तो हम तब भरोसा करते हैं जब हम अंधे होते हैं और देखने का उपाय नही होता । सुनने को तो हम तब पकड़ते हैं, मजबूरी में, क्योंकि देख नही पाते, अंधेरे में टटोलते हैं । कान से ही जीना पड़ता है अंधे को । पर जिसके पास आंख है वह आंख से जीता है । फिर कौन फिक्र करता है कान की !

आंख से ही जियो ! तो तुम डूबोगे । कान से जो जीते हैं, वे डूब नही पाते । ज्यादा से ज्यादा इतना हो सकता है कि मुझे सुनते समय तुम पर थोड़ी-सी बूंदें बरस जायें, पर वे तुम्हें डुबा न पायेंगी; घर जाते-जाते धूप मे उड़ जायेंगी । लेकिन तुम अगर मुझ में डूबो, मुझे अगर देख पाओ... । इसलिए हमने इस देश में तत्त्व-चिंतन की धारा को दर्शन कहा है । श्रवण नही, दर्शन कहा है । कुछ बात देखने की है । कुछ आख से जुड़ने की बात है । मेरी बात सुन के तुम मुझ तक आ जाओ, काफी है इतना, फिर मुझे देखो, फिर सुनने में ही मत उलझे रह जाओ ।

डूबा जो कोई आह, किनारे पै आ गया
तुगयाने बहरे इश्क है साहिल के आसपास ।

– जो कोई डूबा वह किनारा पा गया । क्योंकि कुछ ऐसा मामला है कि इश्क का जो तूफान है, प्रेम का जो तूफान है, वह ठीक किनारे के पास है । साधारण तूफान तो किनारे मे दूर होते हैं – बहुत दूर होते है । जितना बड़ा तूफान हो उतना ही किनारे से दूर होता है । किनारे के पास कही तूफान होते है ! लेकिन प्रेम के नियम उलटे है । इस संसार के जो नियम हैं, प्रेम के नियम उनसे बिलकुल उलटे हैं । यहा अगर नदी पार करनी हो तो डूबना मत । प्रेम की दुनिया में अगर नदी पार करनी हो तो डूबने का अवसर आ जाये तो चूकना मत ।

डूबा जो कोई आह, किनारे पै आ गया !

डूबते ही किनारा मिल जाता है। डूबना ही किनारा है; और कोई किनारा नही । डूबना ही मंजिल है, और कोई मंजिल नही । क्योंकि डूबे कि तुम मिटे । तुम मिटे कि वही रह गया जो है, जो सदा से है । तुम जरा ऊपर-ऊपर की धूल-धवांस हो, उस पे छा गया जो सनातन है, शाश्वत है । डूबे कि धूल-धवांस बह गई; बचा वही जो सदा था – तुम्हारे होने के पहले था, तुम्हारे होने के बाद होगा । बचा वही जो शाश्वत है, कालातीत है ।

डूबा जो कोई आह, किनारे पै आ गया !

तुगयाने बहरे इश्क है साहिल के आस-पास ।

ये जो तूफान हैं, प्रेम की आंधियां है, ये किनारे के बहुत आसपास हैं, इनसे घबड़ाना मत । और जब आंधी तुम्हारे द्वार पे दस्तक दे तो निकल आना, डबने को राजी हो जाना, आंधी से लड़ना मत ।

'सब भूल जाता है, सिर्फ आप ही सामने होते हैं।'

तो वही हो रहा है जो होना चाहिए ।

'और अब तो रोना ही रोना रहता है । घर आपके चित्र के सामने रोती हूं, यहां प्रवचन में रोती हूं । यह क्या है ?'

प्रश्न मत उठाओ, रोओ । प्रश्न उठाया कि रोना बंद हुआ । क्योंकि प्रश्न जहां से आता है वहा से रोना नहीं आता । प्रश्न आता है बुद्धि से, रोना आता है हृदय से । प्रश्न उठाया कि बुद्धि ने हृदय के बीच में बाधा दी । प्रश्न उठाया कि बुद्धि ने कहा, यह क्या हो रहा है ? प्रश्न उठाया कि बुद्धि ने अडचन शुरू की, कि बुद्धि ने पहरा बाधा, कि बुद्धि ने कहा, 'बद करो यह पागलपन, यह दीवानगी ! सम्हलो, होशियार बनो ।'

अब यही तुम्हे खयाल रखना है । अगर महावीर के मार्ग पर चलते हो तो सम्हलो, होशियार बनो । वहा होश आखिरी गुण है । अगर नारद के मार्ग पर चलते हो, मीरा के और चैतन्य के, तो वहा बेहोशी ही मार्ग है । वहा होशियार मत बनना । वहा होशियार बने कि गवाया । और अपनी-अपनी चुन लेना राह । न महावीर से कुछ लेना है, न नारद से कुछ लेना है – देखना है कि अपनी मौज कहां, हम कहां बहे जाते हैं सरलता से, जहां कोई उपाय नही करना पडता, जहां हम छोड देते हैं और धारा ले चलती है । अगर संकल्प तुम्हारी वृत्ति हो तो रोकना, तो हृदय को तोडना और बुद्धि को जगाना, तो हृदय को पोंछ देना बिलकुल कि राग का शेष भी न रहे, न आसू हो, न हसी हो ।

तुमने देखा महावीर की प्रतिमा पर ? थिर है । मध्य म है । न हंसती है न रोती है । मूर्तिवत् । मूर्ति ही मूर्तिवत् नही है, महावीर भी मूर्तिवत् थे । वे ठीक बीच में खड़े थे होश को सम्हाल के । वह भी मार्ग है । जिनको संकल्प में रस हो, उस मार्ग पर जायें । उससे भी लोग पहुंचे है ।

लेकिन अगर तुम्हें सकल्प में अड़चन पड़ती हो तो घबड़ाना मत, सकल्प ने कोई ठेका नही लिया । तुम जिस ढंग से हो, परमात्मा तुम्हें उस ढंग से भी स्वीकार करता है । इसलिए तो हिंदू कहते है, उसके हाथ अनेक है । सहस्त्रबाहु । एक ही हाथ होता तो बड़ी मुश्किल हो जाती; किसी एक को उठा लेता, बाकियों का क्या होता । दो हाथ होते, दो को उठा लेता । उसके उतने ही हाथ हैं जितने तुम हो । एक-एक के लिए एक-एक हाथ है । उसने तुम्हारे लिए जगह रखी है । उसका हाथ तुम्हारे लिए मौजूद है । तुम जरा अपने को पहचानो । और इस भूल में कभी मत

पड़ना कि तुम दूसरे के मार्ग से पहुंच सकोगे। अगर तुमने विपरीत मार्ग चुन लिया जो तुम्हारी सहज वृत्ति के अनुकूल न आता था, तो तुम उलझन में पड़ोगे, तुम झंझट में उलझोगे। तुम अपने ऊपर व्यर्थ के अवसाद और संताप इकट्ठे कर लोगे। तुम अपने को व्यर्थ की प्रवंचनाओं में, धोखों में, आत्म-वंचनाओं में उलझा लोगे। तुम पाखंड में पड़ जाओगे। विमुक्ति तो बहुत दूर रही, तुम विक्षिप्त होने लगोगे। जो अपने से अनुकूल न गया, वह विक्षिप्त होने लगता है। स्वयं के अनुकूल होना साधक की पहली समझ है।

तो जो तुम्हे लगता हो, अनुकूल है; जो तुम्हें भाता हो, रुचता हो; जो तुम्हारी रुझान में बैठ जाता हो – बस वही। न महावीर से कुछ लेना है न नारद से कुछ लेना है – असली सवाल तो तुम्हें अपने घर लौटना है। अपनी राह पहचानना। और अपनी राह पहचानने का उत्तमतम उपाय है: अपने थोड़े झुकाव को समझना।

जिसने पूछा है, मैं जानता हूं, रोना उसके लिए मार्ग है। भूल जाओ महावीर को। गुण गाओ प्रभु के! नाचो मस्ती में! बेहोशी में डूबो! और कुछ भी बचा न रखो। जरा भी कृपणता मत करना, क्योंकि परमात्मा तुम्हें पूरा का पूरा चाहता है। वहां त्याग है तो सर्वस्व का है। वहां कुछ-कुछ देने से, अंश-अंश देने से, काम न चलेगा। वहां कुछ और देने से काम न चलेगा, जब तक तुम स्वयं को ही न दे डालो – अशेष भाव से, बिना पीछे कुछ बचाये।

रोओ! रोना शुभ है। अगर सरलता से आता है तो बड़ा शुभ है। अगर न आता हो तो नाहक कोशिश मत करना। मिर्ची इत्यादि पीस के आखों में मत आंजना।

वैसे भी लोग है कोई जबर्दस्ती संकल्प की चेष्टा करने लगता है, कोई जबर्दस्ती समर्पण की चेष्टा करने लगता है। जहां भी तुम्हे लगे जबर्दस्ती करनी पड़ रही है, वहीं सचेत हो जाना कि अपना मार्ग न रहा। जहां तुम्हें लगे . अरे, खिलने लगे, सरलता से पखुड़िया खिलने लगी, मस्ती आने लगी, चित्त प्रसन्न और प्रफुल्लित होने लगा – तब तुम जानना कि ठीक-ठीक रास्ते पर हो। तुम्हारा अन्तर-यंत्र प्रतिपल तुम्हे बता रहा है, कसौटी दे रहा है। जो भोजन तुम्हें रास आता है, उसे खा के प्रसन्नता होती है। जो भोजन तुम्हें रास नही आता, उसे खाने के बाद अप्रसन्नता होती है। जो बात तुम्हें रास आ जाये वही तुम्हारा धर्म है।

धर्म की परिभाषा महावीर ने की है: वत्थु सहाओ धम्म। वस्तु का स्वभाव धर्म है। बड़ी प्यारी परिभाषा है। स्वभाव धर्म है। तुम धर्म की फिक्र छोड़ो, स्वभाव की फिक्र कर लो। धर्म पीछे-पीछे चला आयेगा। बहुत नासमझ धर्म की फिक्र करते हैं और स्वभाव को पीछे घसीटते हैं। महावीर ने यह नहीं कहा कि धर्म स्वभाव है, महावीर ने कहा, स्वभाव धर्म है। बड़ा फर्क है दोनो में। स्वभाव – जो अनुकूल आ जाये, जो प्रीतिकर लगे, जो प्रेयस है, जिसके पास आते ही तुम

नाचने लगते हो, जिसके पास होते ही गंध तुम्हें घेर लेती है – तुम्हारी ही सुगंध !

और पहले से ही ऐसे चलोगे, अपने स्वभाव के अनुकूल तो तुम्हें प्रयास न करना पड़ेगा।

झेन फकीर कहते हैं, अप्रयास से जो सध जाये वही सत्य है; प्रयास से जो सधे, चेष्टा से जो सधे, उसमें कहीं कुछ गड़बड़ है। कली को फूल बनने में कोई अड़चन आती है ? कली को खींच-खींच के फूल बनाना पड़ता है ? पौधों को जमीन से खींच-खींच के बाहर निकालना पड़ता है ? अपने से बढ़े चले आते हैं। कलियां लग जाती हैं। कलियां खिल जाती है, फूल बन जाते हैं। फूल बन जाते हैं, सुगंध बिखर जाती है, हवाओं में, आकाश की यात्रा निकल जाती है। सब चुपचाप होता चला जाता है। ऐसा ही आदमी भी है। पर आदमी की अड़चन यह है कि आदमी के पास सोच-विचार का यंत्र है, उससे अड़चन खड़ी होती है। जरा किसी गुलाब के पौधे को सोच-विचार का यंत्र दे दो, बस मुश्किल हो जायेगी। फिर गुलाब मुश्किल में पड़ा। फिर हजार अड़चनें खड़ी हो जायेगी। क्योंकि वह सोचेगा, कितना बड़ा फूल चाहिए। पड़ोसी गुलाब से ईर्ष्या भी जगेगी। ईर्ष्या के साथ राजनीति पैदा होगी, महत्वाकांक्षा जगेगी कि मैं सबसे बड़ा गुलाब हो जाऊं। अब अगर वह बटन गुलाब है तो बटन गुलाब है, सबसे बड़ा गुलाब हो नहीं सकता; लेकिन सबसे बड़े गुलाब होने की जद्दोजहद मे बड़ी चिन्ता खड़ी होगी, रात तनाव रहेगा, नीद न आयेगी, दिन भर उदास रहेगा, गणित बिठायेगा : कैसे बड़ा हो जाऊं ! और डर यह है कि इस सब चिन्ता मे जो ऊर्जा नष्ट होगी उससे वह वह भी न हो पायेगा जो हो सकता था।

मनुष्य की तकलीफ यही है। होनी नहीं चाहिए थी। बुद्धि का अगर सदुपयोग हो तो तुम्हें सहयोग देगी, लेकिन दुरुपयोग हो रहा है। तुम जैन-घर में पैदा हो गये, अब तुम्हारी बुद्धि कहती है, तुम जैन हो। और तुम्हारी आखें अगर आसुओं से भरी हैं तो बड़ी कठिनाई होगी। महावीर के मंदिर में आंसुओ के लिए जगह नही है। उस मंदिर में आंसू पाप हैं, वर्जित है। तब तुम्हें कृष्ण का कोई मंदिर खोजना पड़े, जहा रोने की छुट्टी है; छुट्टी ही नहीं, जहां रोना साधन है।

अब अगर तुम किसी भक्ति-मार्गी के घर में पैदा हो गये, कृष्ण-मार्गी के घर में पैदा हो गये और तुम्हारी आखों में आंसू नहीं है – नहीं है, तो तुम क्या करोगे ? परमात्मा ने तुम्हें वैसा नहीं चाहा। सभी रोने वाले नहीं चाहिए, कुछ हंसने वाले भी चाहिए। सभी समर्पण वाले नहीं चाहिए, कुछ संकल्प वाले भी चाहिए। जीवन में विरोधों का संतुलन है। जितने यहां समर्पण वाले लोग हैं उतने ही यहां संकल्प वाले लोग हैं। जीवन संतुलन से चलता है। रात और दिन, अंधेरा और प्रकाश, जीवन और मृत्यु, ग्रीष्म और – शीत यहां सब चीजें संतुलित हैं। दो पैर हैं, दो पंख हैं, ताकि संतुलन बना रहे।

तो अगर तुम किसी भक्ति-मार्गी के घर में पैदा हो गये और बचपन से ही तुमने नारद के सूत्र सुने कि भक्त भाव-विह्वल हो जाता है, रोमांचित हो जाता है, आखें आंसुओ से भर जाती हैं, रोता है, उसके गीत गाता है, नाचता है, मदमस्त होता है, मतवाला हो जाता है – अगर तुमने ये सुने और तुम्हारी आंखों से आंसू नही आते. तुम क्या करोगे ? तुम जबर्दस्ती करोगे । तुमने बुद्धि का सदुपयोग न किया ।

अपने को देखो ! तुम्ही महत्त्वपूर्ण हो, न नारद न महावीर, न मैं न कोई और। तुम्ही महत्त्वपूर्ण हो, क्योंकि तुम्ही तुम्हारे गंतव्य हो । उपयोग कर लो जिसका उपयोग करना हो; लेकिन सदा ध्यान रखना, तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल उपयोग हो, तो तुम पहुचोगे, नही तो भटक जाओगे ।

'तेरी यारी में बिहारी सुख न पायो री !'

बिहारी ने बडे सुख में कहा है यह । तेरी यारी में 'बिहारी' सुख न पायो री ! बडे प्रेम मे कहा है । यह उलाहना नही है, शिकायत नही है । यह प्रेमियों का खेल है, यह प्रेमियों की क्रीड़ा है । भक्त भगवान से कहता है कि तेरे प्रेम में कुछ सुख न मिला । भगवान ही भक्त के साथ थोड़ी खेलता है, भक्त भी खेलता है ! भगवान ही थोडी मजाक करता है भक्त के साथ, भक्त भी करता है । जहां अपनापा है वहा मजाक भी चलती है ।

बिहारी कोई शिकायत नही कर रहे हैं । एक पहेली दे रहे है परमात्मा को कि सुनो जी ! खूब उलझाया ! मगर तुम्हारे प्रेम में कुछ सुख न पाया ! लेकिन यह कोई दुख मे निकली आवाज नही है । इस शब्द मे परो प्रेम को देखते हो ! तेरी यारी मे बिहारी सुख न पायो री ! बडे सुख मे पगे शब्द हैं ।

नहीं, उसकी याद में मिला दुख भी सुख है । उसकी राह पे मिले काटे भी फूल हैं । उसके मार्ग पे मर भी जाना पडे तो जीवन है । और उसके बिना जीवन भी मिले तो निरर्थक । उसके बिना फूल ही फूल मिलें और कांटे भी न हो तो उनसे मरणशय्या ही बनेगी । वे तुम्हारी कब्र पर चढाये गये फूल सिद्ध होंगे । उसके मार्ग पर जो मिल जाये वही सुख है–दुख भी मिलें तो भी । उसके मार्ग पर जा रहे है !

तुमने कभी किसी प्रेमी को अपनी प्रेयसी की तरफ जाते देखा ! रास्ते में गड़े कांटो की शिकायत करता है ? पता भी नही चलता । गिर पडे चोट खा जाये, लहू-लुहान हो जाये, तो भी पता नही चलता ।

तुलसीदास, कथा कहती है, अपनी पत्नी के प्रेम मे साप को पकड के चढ़ गये; समझे कि रस्सी है । मुर्दे की लाश का सहारा ले के नदी पार उतर गये, समझे कि कोई बहती हुई लकड़ी है ।

उसकी दीवानगी में जो डूबे है, उन्हे कुछ दुख, दुख मालूम नही होता । दुख भी सुख है उसके मार्ग पर । संसार के मार्ग पर सुख भी दुख हो जाते हैं । प्रभु के

मार्ग पर दुख भी सुख हो जाते हैं। यह आध्यात्मिक जीवन की कीमिया है, रसायन है।

दूसरा प्रश्न . शास्त्रीय परम्परा से संन्यासी माया और काम-भोग से विमुख हो कर प्रभु-प्राप्ति के लिए उन्मुख होता है; योग और भोग परस्पर विरोधी जानें जाते हैं। लेकिन आपके सन्यास मे भोग से विरक्ति पर जोर नही है। अतः कृपा कर अपने संन्यास की धारणा को स्पष्ट करें।

धर्म का परम्परा से कोई संबंध नही है। परम्परा यानी वह जो मर चुका। परम्परा यानी पिटी-पिटाई लकीर। परम्परा यानी अतीत के चरण-चिह्न। अतीत जा चुका, चरण-चिह्न रह गये है राहो पर बने।

धर्म परम्परा नही है। धर्म तो नितनूतन है—यद्यपि चिर पुरातन भी। मगर धर्म पुराना नही है, परम्परा नही है। इसलिए तो धर्म का शिक्षण नही हो सकता; परम्परा होती तो शिक्षण हो सकता था। गणित की परम्परा है। विज्ञान की परम्परा है। इसलिए विज्ञान का शिक्षण हो सकता है।

आइन्स्टीन ने एक खोज कर ली, सापेक्षता के सिद्धांत की, तो अब कोई हर आदमी को खोजने की जरूरत नही है; अब परम्परा बन गई। अब तो सिद्धात एक दफा खोज लिया गया। अब ऐसा थोडी है कि हर विद्यार्थी जो पढ़ने जायेगा विश्व-विद्यालय में उसको आइन्स्टीन के सिद्धान्त को फिर-फिर खोजना होगा। बात खत्म हो गई। खोज पूरी हो गई। एक आदमी ने खोज दिया, फिर परम्परा बन गई। अब दूसरा तो सिर्फ पढ लेगा। आइंस्टीन को जो खोजने में वर्षों लगे होंगे, वह अब किसी विद्यार्थी को पढने में घंटे भी न लगेंगे।

तो विज्ञान की परम्परा बनती है, ट्रेडीशन होती है। धर्म की कोई परम्परा नहीं होती। महावीर को ज्ञान उपलब्ध हुआ, इससे तुम सोचते हो, तुम्हें खोजना न पड़ेगा? बुद्ध को ज्ञान उपलब्ध हुआ, इससे क्या तुम सोचते हो, बात खत्म हो गई, अब तुम पढ लोगे धम्मपद? जैसे आइंस्टीन की किताब को पढ़ के कोई सापेक्षता का सिद्धांत समझ लेगा, क्या वैसे ही तुम कृष्ण की गीता पढ़ के कृष्ण के सिद्धांत को समझ लोगे, या महावीर के वचन पढ़ के महावीर को समझ लोगे? नही, तुम्हें फिर-फिर खोजना होगा।

इसे जरा समझना। फिर-फिर खोजना होगा। जो चीज परम्परा बन जाती है उसको दुबारा नहीं खोजना होता, खोज ली गई, बात खत्म हो गई।

धर्म परम्परा बनता ही नहीं। उसका प्रत्येक व्यक्ति को पुनः पुनः आविष्कार करना होता है। जो बुद्ध ने खोजा वह बुद्ध का अनुभव है। इतनी ही हमें मिल सकती है उनसे खबर कि खोजने वाले खोज लेते हैं। बस इतना आश्वासन। सत्य नहीं मिलता,

सत्य का आश्वासन मिलता है। सत्य नहीं मिलता; सत्य भी संभव है, इसकी संभावना पे भरोसा मिलता है। महावीर ने खोजा, कृष्ण ने खोजा, क्राइस्ट ने खोजा, इससे हमें केवल इतनी खबर मिलती है कि हम यू ही व्यर्थ खोज में नही लगे हैं, मिल सकता है। बस, इतनी श्रद्धा मिलती है। सत्य नहीं मिलता, इतना आत्म-भरोसा मिलता है कि हम यू ही अंधेरे में व्यर्थ नहीं टटोल रहे है, द्वार है; क्योंकि कुछ लोग निकल गये। कुछ जो भीतर थे बाहर हो गये है, तो हम भी हो सकेंगे। लेकिन इससे यह मत सोचना कि उनकी किताब पढ ली और चल पड़े द्वार खोज के और निकल पड़े बाहर। द्वार तुम्हें अपना पुन. खोजना पड़ेगा।

इसलिए धर्म की कोई परम्परा नही बनती। और धर्म का कोई शिक्षण नही हो सकता। धर्म क्रांति है, परम्परा नही। रेवोल्यूशन! और जिस पे घटती है, बस उस पे ही घटती है।

जैसे समझो, तुम्हें अगर प्रेम नहीं हुआ किसी से, तो तुम क्या खाक जानोगे कि प्रेम क्या है! प्रेम-शास्त्र लिखे पडे है, पुस्तकालय अटे पड़े है। तुम जा के पढ़ लो, मजनू को क्या-क्या हुआ, लैला को क्या-क्या हुआ, शीरी-फरिहाद और हीर-रांझा – लेकिन इससे कुछ होगा न। पढी-लिखी बात कही भी जायेगी न, हृदय में छिदेगी न, तीर लगेगा न। तुम वैसे-के-वैसे खाली लौट आओगे, पांडित्य से भर के। हां, प्रेम पर अगर कोई कहेगा, तो तुम प्रवचन दे सकोगे। हां, प्रेम पर कोई कहेगा, तुम पी. एच. डी. कर सकोगे। लेकिन प्रेम तुम्हारे जीवन में कहीं भी न होगा। प्रेम तो तुम करोगे तो होगा। प्रेम की कोई परम्परा नही होती। प्रेम को हर व्यक्ति को अपना ही खोजना होता है – निजी, वैयक्तिक। और अच्छा है कि प्रेम की परम्परा नही होती, नहीं तो सोचो, कैसा दुर्भाग्य होता, कैसे दुर्दिन आते! लोग प्रेम की किताब पढ लेते और समाप्त हो जाते! सोचो थोड़ा, परमात्मा ऐसे उधार मिलता होता, किसी को मिल गया था पच्चीस सौ साल पहले, महावीर को, बस खत्म! उन्होंने तुम्हारा सारा अभियान छीन लिया। तब तो महावीर ने तुम्हारे जीवन का सारा रस छीन लिया। तब तो वे मित्र न हुए, दुश्मन हो गये। तब तो तुम्हें उन्होंने मौका ही न छोड़ा कुछ खोजने का, तुम्हें यात्रा पे जाने की जगह ही न छोड़ी।

नही, परमात्मा कुछ ऐसा है, सत्य कुछ ऐसा है, प्रेम कुछ ऐसा है कि जो खोजता है बस उसी को दर्शन होते है। हां, अपने दर्शन की बात दूसरे से कह सकता है। लेकिन उस बात से किसी को दर्शन नही होता। उस बात से किसी की सोयी प्यास जग सकती है। उस बात मे किसी के भीतर उन्मेष हो सकता है कि चलू, मैं भी खोजू, किसी के भीतर चुनौती आ सकती है कि चलूं; मैं क्या कर रहा हूं बैठा-बैठा, उठू! यह कहा गंवा रहा हूं जीवन बाजार में और दुकान में, उठूं, उसे खोजूं!

इसलिए पहली बात, धर्म परम्परा नही है। धर्म चिरपुरातन, नितनूतन है। यह विरोधाभास है। सदा से है, लेकिन फिर भी हर बार नया-नया खोजना पड़ता है।

जब धर्म का सूर्योदय होता है तो वह निजी है, वैयक्तिक है, वह सामूहिक नहीं है। वह समाज की संपत्ति और थाती नहीं बनता। अगर तुम भरोसा न करो बुद्ध पर तो बुद्ध के पास कोई उपाय नहीं है तुम्हें भरोसा दिलाने का। कभी तुमने इस पे सोचा ? अगर तुम कहो कि हमें शक है कि तुम झूठ बोल रहे हो, कि तुम्हें हुआ है परमात्मा का अनुभव, हम कैसे मानें ? तो बुद्ध भी कंधे बिचका के रह जायेंगे; वे कहेंगे, अब क्या उपाय है ! जो हुआ है वह निजी और वैयक्तिक है। उसे तुम्हारे सामने टेबल पे फैला के रख देने की कोई सुविधा नहीं है। जो हुआ है वह आंतरिक है; उसे बाहर ला के प्रगट करने का कोई उपाय नहीं है। जो हुआ है वह इतने गहन मे हुआ है कि उसकी प्रदर्शनी नही सजाई जा सकती, कि जो भी आयें देख लें।

इसीलिए तो दुनिया में इतने परम बुद्धपुरुष हुए, लेकिन फिर भी नास्तिकता नही मिटती। मिट नहीं सकती, क्योंकि नास्तिक यह कह रहा है कि हमें दिखला दो। नास्तिक यह कह रहा है, धर्म को परम्परा बना दो। अब यह बड़े मजे की बात है : जिनको तुम धार्मिक कहते हो वे कहते हैं, धर्म परम्परा है। मैं उनको नास्तिक कहता हू। नास्तिक भी तो यही कह रहा है कि धर्म को परम्परा बना दो, जैसे विज्ञान परम्परा है, हम जायें प्रयोगशाला में और देख लें; टेस्ट-ट्यूब में पकड़ दो परमात्मा को; बिछा दो टेबल पर सर्जन की तुम्हारी समाधि को, ताकि ठीक-ठीक विश्लेषण हो सके और हम काट-पीट करके जान लें कि मामला क्या है; ले आओ, तुम्हारा अनुभव प्रकाश का, सत्य का, बाजार में, जहा हम सब देख लें। क्योंकि जो निज में घटा है, क्या पता सपना हो। क्योंकि साधारण अनुभव में सपने ही निजी होते हैं, बाकी सब चीज तो निजी नही है। सिर्फ सपने निजी होते हैं, बाकी तुम जो सपना रात देखते हो, तुम अपनी पत्नी को भी तो उसमें नही बुला सकते कि आओ, आज निमंत्रण है। तुम अपनी पत्नी को भी तो नही कह सकते कि आज, चलो दोनों साथ-साथ एक ही सपना देखें।

दो आदमी एक मनोवैज्ञानिक के पास इलाज करवा रहे थे। दोनों ने एक दिन सोचा, दफ्तर से बाहर निकलते हुए, एक मजाक करने की बात सोची। एक अप्रैल आ रही थी, तो सोचा कि अप्रैल के दिन एक मजाक करें ... मैं भी आऊंगा और एक सपना कहूंगा। और दोनों ने सपना तय कर लिया मनोवैज्ञानिक को सुनाने के लिए। फिर शाम को तुम आना और तुम भी वही सपना कहना। देखें, इस पे क्या गुजरती है ! क्योंकि दो आदमी एक ही सपना तो देख ही नहीं सकते। तो उन्होंने सपना तय कर लिया विस्तार से, एक-एक बात कि क्या-क्या हुआ सपने में, लिख लिया, कंठस्थ कर लिया। सुबह एक आया और उसने कहा कि रात एक सपना देखा, इसका अर्थ करें। मनोवैज्ञानिक ने उसका सपना सुना। दोपहर दूसरा आया। उसने भी वही सपना दोहराया। उसने कहा कि रात एक सपना देखा। और विस्तार में इंच-इंच वही। और वह देखता रहा बार-बार कि मनोवैज्ञानिक पे क्या

असर हो रहा है । लेकिन वह बडा हैरान हुआ कि कुछ खास असर नहीं हो रहा है । पूरा सपना सुनाने के बाद उसने पूछा, 'आप क्या सोचते हैं इस सपने के बाबत ?' मनोवैज्ञानिक ने कहा कि मै बड़ा परेशान हू, क्योंकि तीन आदमी तो यह सपना मुझे दिन में सुना ही चुके हैं । तीन आदमी ! वे दोनों बड़े हैरान हुए कि यह तीसरा कौन है ! क्योंकि तीसरे को तो उन्होंने बताया नही था । सोचते थे, मजाक मनोवैज्ञानिक से कर रहे है, लेकिन मनोवैज्ञानिक ने मजाक उनके साथ कर दी । वे बडी मुश्किल मे पड गये कि अब यह तीसरे का कैसे पता चले ! और हद हो गई, यह तो सपना हम दोनो ने भी देखा नही, सिर्फ तय किया था, तीसरा कौन है ! दोनों दूसरे दिन आये । उन्होंने कहा, 'माफ करे ! हम मजाक कर रहे थे । लेकिन तीसरा कौन है ?' उन्होने कहा, 'हम रात भर सो नही सके ।' मनोवैज्ञानिक ने कहा, 'तीसरा कोई नही, वह मै मजाक कर रहा था, क्योंकि दो आदमी तो देख ही नही सकते । वह तो मै जान ही गया कि जब दो ने एक सपना देखा तो दोनो तय करके आये हैं एक अप्रैल की वजह से । इसलिए मैंने कहा कि तीन तो कह ही चुके । हद हो गई !'

दो आदमी एक सपना देख ही नही सकते । सपना निजी है । इसीलिए तो नास्तिक कहता है, भगवान सपना है । क्योंकि तुम कहते हो, हमने देखा, लेकिन दिखाओ । सपने में और तुम्हारे भगवान के अनुभव में फर्क क्या हुआ ? सिर्फ सपना ही ऐसी चीज है जो दूसरे को नही दिखाया जा सकता । इसलिए भगवान तुम्हारा सपना है । यह कुंडलिनी-जागरण और प्रकाश के अनुभव – ये सब तुम्हारे सपने हैं । नास्तिक कहता है, इसमें और सपने में फर्क कहां ? फर्क तो एक ही होता है सपने में और सच्चाई में कि सच्चाई सब की होती है, सामूहिक होती है, सार्वजनिक होती है । और सपना निजी होता है । इसलिए इतने बुद्धपुरुष हुए और एक नास्तिक को सारे बुद्धपुरुष मिल के भी राजी नही कर सकते, क्योंकि जब तक तुम संदेह किये चले जाओ, कोई उपाय नही है, कोई प्रमाण नहीं है ।

परमात्मा अनुभव है और उसका कोई प्रमाण नही छूटता । जिसको होता है, बस उसको होता है । और जिसको होता है, वह अकेला पड जाता है । और जिनको नही हुआ है, वे अरबों-खरबो हैं । इसलिए तो बुद्ध हों, महावीर हों, कृष्ण हों, क्राइस्ट हों – वे सभी कहते है, श्रद्धा से सुनोगे तो शायद कुछ हो सके; संदेह से सुनोगे तो द्वार तो पहले ही बन्द हो गया । श्रद्धा पर इतना जोर क्यों है ? इसीलिए कि धर्म की परपरा नही बन सकती । जिसको हुआ है, अगर तुम्हारे मन में उसके प्रति थोड़ी सहानुभूति हो, लगाव हो, थोड़ी चाहत का रंग हो, तुम दोनों में कुछ तालमेल हो, तुम उस आदमी को इतना प्रेम करते हो कि तुम जानते हो कि झूठ वह बोल न सकेगा – तभी । अगर तुम्हारे मन में जरा-सा भी संदेह है कि हो सकता है, यह आदमी झूठ बोल रहा हो; या यह भी हो सकता है कि झूठ न

बोल रहा हो, खुद ही धोखा खा गया हो; चाहे के झूठ न बोल रहा हो, लेकिन खुद ही ने सपना इतना गहरा देख लिया हो कि इसे भरोसा आ गया हो; या तो यह धोखा दे रहा है या खुद धोखा खा रहा है – इतना-सा संदेह काफी है, कि सत्य तुम्हारे लिए बन्द हो गया।

बुद्धपुरुष तुम्हारे भीतर केवल प्यास को जगा सकते हैं; वह भी तुम्हारी श्रद्धा का सहारा हो तो।

तो पहली तो बात, धर्म कोई परंपरा नहीं है। संन्यास भी कोई परंपरा नहीं है। संन्यास एक-एक व्यक्ति का निजी उद्घोषण है; एक-एक व्यक्ति की परमात्मा के द्वारा स्वीकार की गई चुनौती है। अलग-अलग है। इसलिए हर व्यक्ति में जब संन्यास घटित होगा तो भिन्न घटित होगा। संन्यास बड़ी निजी बात है। बड़ी संभावना है।

क्राइस्ट हैं, सन्यस्त पुरुष हैं; पर इनका संन्यास महावीर जैसा नहीं है। क्राइस्ट को कोई अड़चन न थी, कोई मित्र बुलाये और शराब पीने को दे दे तो पी लेते थे। महावीर तो पानी भी न पियेंगे ऐसा, शराब तो दूर की बात। महावीर तो कहते हैं, किसी के बुलाये वे जायेंगे ही नहीं; क्योंकि किसी के बुलाये गये तो सम्बन्ध निर्मित होता है। शराब की तो छोड़ो, पानी पीने भी तुमने महावीर को कहा कि आज मेरे घर आ जाना, भरी दुपहरी है, धूप है, तेज है, थोड़ा छाया में बैठ जाना, पानी पी लेना – तो वे न आयेंगे। क्योंकि वे कहते हैं कि जिसका निमंत्रण तुमने स्वीकार किया उससे संबंध बना लिया।

तो महावीर भीख भी मांगते है तो बड़े अनूठे ढंग से मांगते थे। उनकी भीख मांगने का ढंग भी अनूठा है; ऐसा दुनिया में कभी किसी ने भीख नहीं मांगी है। इसलिए कहता हूं, संन्यास बड़ा अनूठा है और प्रत्येक के लिए अलग-अलग घटता है। महावीर सुबह उठ के ध्यान में निर्णय करते कि आज अगर किसी घर के सामने ऐसी घटना घटी हुई मिलेगी तो वहां मैं हाथ पसार दूंगा। घटना – कि घर के सामने गाय खड़ी हो और उसके सींग में गुड़ लगा हो। कोई ऐसा रोज नहीं घटता ऐसा। एक दफा यह बात उन्होंने तय कर ली, क्योंकि वे कहते थे, अगर अस्तित्व को मुझे भोजन देना है तो वह मेरी शर्त पूरी करेगा, नहीं तो नहीं देगा। इसका मतलब है कि मुझे भूखा रखना चाहता है तो मैं भूखा रहूंगा। अगर मेरे बचने की कोई भी जरूरत है अस्तित्व को, तो मेरी शर्त पूरी करेगा; नहीं तो मैं समझ लूंगा कि ठीक है, बात खत्म हो गई, अस्तित्व नहीं चाहता कि मैं बचूं। तो मैं अपनी कोई चेष्टा न करूंगा। अगर अस्तित्व ही चेष्टा करेगा तो ठीक है।

तो एक बार ऐसा हुआ कि तीन महीने तक उन्होंने यह ले लिया व्रत और वे यह किसी को कहते नहीं थे। अब तो जैन मुनि, दिगंबर, जो इसको अब भी मानते हैं, के कह के चलते हैं। उन्होंने सब बता रखा है। और उनके सब बंधे हुए प्रतीक

हैं, वे सबको मालूम हैं उनके भक्तों को, कि घर के सामने दो केले लटके हों। तो जितने घरों में दिगम्बर जैन मुनि जाता है, वह सब केले लटकाये रखता है। अब उनके बंधे हुए प्रतीक हैं – दो केले लटके हों ... इस तरह के कुछ। चार-छह चीज एक मुनि रखता है, वे उन्हीं-उन्हीं को ...। तो वे सब कर देते हैं इंतजाम। एक ही घर में सभी चीजें लटका देते हैं। तो स्वीकार हो गया। यह बेईमानी है।

महावीर ने कहा कि गाय खड़ी हो, गुड़ सींग पे लगा हो। तीन महीने तक भोजन न मिला। पर एक दिन मिला। बैलगाड़ी जाती थी गुड़ से भरी और पीछे से एक गाय ने आ के गुड़ खाने की चेष्टा की और उसके सींग में गुड़ लग गया। बस जिस घर के सामने वह गाय खड़ी थी, वहां महावीर ने अपने हाथ फैला दिये भोजन के लिए। तीन महीने बाद अस्तित्व ने चाहा तो ठीक।

तो महावीर तो निमंत्रण भी स्वीकार न करेंगे। और जीसस हैं, कि न केवल निमंत्रण स्वीकार कर लेते हैं, अगर कोई शराब भी पिलाये तो वह भी पी लेते हैं। वे कहते हैं, क्या अस्वीकार? किस बात का अस्वीकार? क्योंकि सब अस्वीकार अहंकार-केंद्रित है। चलो, मित्रों ने चाहा है, पी लो, तो पी लेते हैं। अस्वीकार में उन्हें हिंसा मालूम होती है। वे कहते हैं, 'नहीं' कहना किसी को दुख पहुंचाना है।

अब बड़ी मुश्किल की बात है।

महावीर नग्न खड़े हैं, कृष्ण सुंदर वस्त्रों से सजे हैं। क्योंकि कृष्ण कहते हैं, जब परमात्मा अवतरित होता है तो उसकी विभूति अवतरित होती है, उसका सौंदर्य अवतरित होता है, उसके हजार-हजार रंग और रूप अवतरित होते हैं। परमात्मा एक इंद्रधनुष है। उसका बड़ा ऐश्वर्य है। उसकी बड़ी महिमा है। इसलिए तो हम उसे ईश्वर कहते हैं। ईश्वर यानी जिसका ऐश्वर्य है। तो जब कृष्ण में परमात्मा उतरा है, तो वे उसका स्वागत करते हैं, सब तरह से; जैसे तुम्हारे घर कोई मेहमान आ जाये तो तुम घर को सजाते हो। तो कृष्ण कहते हैं, जब परमात्मा उतरा हो तो देह को सजाना होगा। यह घर है। इसमें वह उतरा। उसने अनुकंपा की। तो वे बांसुरी बजाते हैं। वे मोर-मुकुट लगाते हैं।

महावीर नग्न खड़े हैं। सजाने की तो बात दूर, बाल बढ़ जाते हैं तो हाथ से उखाड़ते हैं। नाई के पास नहीं जाते, क्योंकि यह तो नाई के पास जाना समाज में प्रवेश होगा। इसका अर्थ हुआ कि तुम्हें नाई की जरूरत है। समाज का क्या अर्थ होता है? मुझे दूसरे की जरूरत है – यानी समाज। मैं अकेला नहीं रह सकता, नाई की जरूरत पड़ती है – तो भी इतना तो समाज हो ही गया मेरा। कभी नाई की जरूरत पड़ती है, कभी चमार की जरूरत पड़ती है, कभी दर्जी की जरूरत पड़ती है। तो यही तो समाज है। समाज का अर्थ क्या है?

इसलिए मैं कहता हूं, जैनियों का अब तक कोई समाज नहीं है। क्योंकि कोई जैन न तो चमार है, न कोई जैन दर्जी है, न कोई जैन भंगी है। तो जैनियों का

कोई समाज नहीं है। जैनी तो हिंदुओं की छाती पर जीते हैं, उनका कोई समाज नहीं है । क्योंकि कोई जैन चमार होने को राजी नहीं है । तो समाज तुम्हारा कैसा ? जैनियों से मैं कहता हूं, तुम एक बस्ती तो बसा के बता दो, सिर्फ जैनियों की । तब हम कहेंगे कि तुम्हारा कोई समाज है । कोई जैनी राजी न होगा भंगी बनने को । तो तुम समाज कैसे ? तो तुम्हें हिंदुओं की जरूरत है, मुसलमानों की जरूरत है, ईसाइयों की जरूरत है । तो तुम परोपजीवी हो, तुम्हारा अपना कोई समाज नहीं है ।

जैन अब तक केवल संस्कृति है, समाज नहीं । वह केवल वायवीय बातें हैं । इसलिए मैंने पीछे कहा भी कि ये पच्चीस सौ वर्ष महावीर के पूरे हुए, तुम कुछ भी न करो, एक जैनियों की बस्ती तो बना दो – सिर्फ जैनियों की, जो पूरी तरह जैन हो, उससे-कम-से कम एक नमूना तो मिलेगा कि जैनियों का समाज कैसा होगा । वहां बड़ी कलह मच जायेगी, क्योंकि भंगी कौन बने, जूता कौन सीये, खेती कौन करे ! क्योकि जैन को खेती करनी नही चाहिए, हिंसा होती है । सर्जन कौन हो, चीरा-फाड़ी कौन करे ! बड़ी कठिनाई खड़ी हो जायेगी । बड़ी मुश्किल हो जायेगी ।

समाज का अर्थ होता है : संबंध, जरूरत । महावीर अकेले जिये – इतने अकेले जिये कि अपने पीछे समाज का कोई सूत्र नही छोड़ गये । उन्होंने तुम अकेले जी लिया, लेकिन जो उनके पीछे चले, वे बड़ी मुश्किल में पड़े । क्योंकि यह बिलकुल निजी, एकांत, अकेले होने का आग्रह है महावीर का । उन्होंने कोई समाज बनाया नही; लेकिन जो पीछे चलेंगे अनुयायी, वे तो समाज के बिना नहीं जी सकते । उनको तो कपड़े भी चाहिए होंगे, तो कपड़ा कोई बुनेगा, कपास कोई उगायेगा । उन्हे तो भोजन भी चाहिए होगा, तो खेती कोई करेगा, वृक्षों को कोई काटेगा । उन्हें तो दवा भी चाहिए होगी, ऐलोपैथी की दवा भी चाहिए होगी, जो पशुओं को मार के बनाई जायेगी, किसी के खून से बनेगी, किसी की हड्डी से बनेगी – वह भी कोई करेगा । उन्हें जूते भी पहनने होंगे, तो चमार भी होगा, मरे हुए जानवरों की चमड़ी भी उधेड़ी जायेगी; मरे हुए काफी न होंगे तो जिंदा भी मारे जायेंगे । यह सब चलेगा । तो इसमें तो महावीर खड़े हो जाते बाहर, क्योंकि न उनको जूते की जरूरत, न उनको कपड़े की जरूरत ।

जरा सोचो तो, उनको समाज की जरूरत नहीं । वे यह कह रहे हैं कि यह हम खड़े हैं हमको कोई समाज की जरूरत नहीं । वे नाई के पास भी नहीं जाते । वे एक साथ में उस्तरा तो रख सकते थे । उस्तरा भी नहीं रखते । वे कहते है, उस्तरा रखा तो लोहार ... । वे हाथ से उखाड़ते हैं बाल ।

इससे ज्यादा स्वतंत्र व्यक्ति पृथ्वी पे दूसरा नहीं हुआ । समाज-मुक्त ! समाज-शून्य ! निपट समाज-शून्य !

तुम कहोगे कि भीख तो मांगते हैं । मगर महावीर की शर्त देखी ! महावीर

वहां भी धन्यवाद नही देते, अगर तुम उनको भीख देते हो। वे कहते हैं कि अस्तित्व ने चाहा। अगर तुम न भी होओगे तो महावीर कहेंगे कि वृक्ष के नीचे खड़ा हो जाऊंगा, अगर फल टपक जाये अपने से तो ठीक, पांच मिनट राह देख लूंगा, हट जाऊंगा। वे महीनो भूखे रहे। बारह वर्ष की तपश्चर्या के काल में, कहते हैं केवल तीन सौ साठ दिन उन्होने भोजन लिया। बारह वर्ष के लंबे काल में, केवल एक वर्ष भोजन लिया, ग्यारह वर्ष भूखे रहे। कभी महीना भर भूखे, फिर एक दिन भोजन, कभी पंद्रह दिन भूखे, फिर एक दिन भोजन; कभी आठ दिन भूखे, फिर एक दिन भोजन—ऐसा मिला-जुला के बारह साल में एक साल भोजन और ग्यारह साल भूखे। औसत ग्यारह दिन के बाद उन्होनें भोजन लिया, बारहवें दिन। मगर यह भोजन के लिए वे धन्यवाद नही देते किसी को। वे कहते हैं, तुम्हारा कोई धन्यवाद नहीं है, तुम्हारा कोई अनुग्रह नहीं है। मैंने तुम्हारा निमंत्रण स्वीकार नही किया। मैं तो अपने हिसाब से चल रहा हूं। अस्तित्व देना चाहता है, ले लेता हूं; अस्तित्व नही देता तो मांग भी नही करता हूं। वे द्वार पे आ के खड़े हो जाते है, वे मांग भी नही करते। वे यह भी नही कहते कि दो; क्योंकि देने का मतलब तो होगा, कर्म की शुरुआत हो गई, लेना-देना शुरू हो गया।

इधर कृष्ण हैं। परमात्मा के लिए जगह बनाते हैं तो शरीर को सजाते हैं। उस बात में भी अर्थ मालूम पड़ता है कि जब प्रभु घर आये हों तो ऐसा क्या रूखा-सूखा स्वागत करना ! बंदनवार बनाओ ! स्वागतद्वार बनाओ ! जो भी हो फूल-पत्ती, लटकाओ ! लेकिन कुछ तो करो। साज-संगीत बजाओ। सुगंध फैलाओ। धूप-दीप जलाओ। कुछ तो करो। प्रभु द्वार पर आये हैं !

कृष्ण को बिलकुल न जंचेगा कि नंगे खड़े हो जाओ, प्रभु द्वार पर आये हैं। महावीर को जंचा; क्योंकि महावीर कहते हैं कि प्रभु को किसी ऐश्वर्य की कोई जरूरत नही है, क्योंकि वह स्वयं ऐश्वर्यवान है और हम जो भी करेंगे वह छोटा ही होगा, वह काफी न होगा।

दोनों के तर्क सही हैं। मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि अगर तुमने एक का तर्क पकड़ लिया तो तुम अंधे हो जाओगे, दूसरे का तर्क न देख पाओगे। और इस जगत में जितने लोग सन्यास को उपलब्ध हुए, उन सब का अपने संन्यस्त होने का ढग है।

इसलिए संन्यास की कोई परम्परा नहीं है। संन्यास व्यक्तिगत क्रांति है। अब 'संन्यासी माया और काम-भोग से विमुख हो कर प्रभु-प्राप्ति की लिए उन्मुख होता है', यह बात भी सच नहीं है। जिसने पूछा है, उनको ठीक-ठीक पता नही है; उन्हें भक्तिमार्ग का पता नहीं है। क्योंकि भक्तिमार्ग का संन्यासी भोग से विमुख नहीं होता, परमात्मा का ही भोग शुरू करता है। जिन मित्र ने पूछा है, उन्हें हिंदू, शंकराचार्य, जैन, महावीर, गौतम सिद्धार्थ, बुद्ध—इनकी परम्परा के संन्यासियों का

बोध है। और ऐसा हुआ है कि इनकी परम्परा इतनी प्रभावी हो गई कि धीरे-धीरे ऐसे लगने लगा कि दूसरी कोई परम्परा नहीं है। रामानुज का भी संन्यासी है। निम्बार्क का भी संन्यासी है। चैतन्य महाप्रभु का भी संन्यासी है। मगर वे ओझल हो गये। बुद्ध, महावीर और शंकराचार्य इतने प्रभावी हो गये – और प्रभावी हो जाने का कारण है, क्योंकि तुम सब भोगी हो। इसे तुम्हें जरा अड़चन होगी समझने में। चूंकि तुम सब भोगी हो, त्यागी की भाषा तुम्हें समझ में आती है। क्योंकि त्यागी की भाषा तुमसे विपरीत है। जो तुम्हारे पास नहीं है, उसमें आकर्षण पैदा होता है। गरीब अमीर होना चाहता है। तुम भोगी हो, तुम त्यागी होना चाहते हो। तुम कहते हो, भोग में तो दुख-ही-दुख पाया; इसलिए महावीर, शंकर और बुद्ध ठीक ही कहते होंगे कि त्याग में सुख है, क्योंकि एक तो हमें अनुभव हो गया कि भोग में दुख है।

रामानुज, निम्बार्क, बल्लभ, चैतन्य – इनकी भाषा तुमने नहीं समझी; क्योंकि वे कहते हैं कि तुम्हारे भोग में दुख नहीं है, तुम्हारा भोग गलत चीजों का हो रहा है, इसलिए दुख है। भोग भगवान का करो! तुमने अभी स्त्री को भोगा है; लेकिन कभी स्त्री में भगवान को देख के भोगो, फिर दुख समाप्त हुआ! तुमने अभी भोजन को भोगा है, दुख है; लेकिन भोजन में भगवान को देख के भोगो, दुख समाप्त हुआ।

उनकी बात में भी सार है। अब इधर मैं हूं। मैं कहता हूं कि दोनों का संगीत पैदा हो जाये तो संन्यास है। मैं कहता हूं, तुम्हारा त्याग ऐसा हो कि भोगी के भोग से ज्यादा गहरा और तुम्हारा भोग ऐसा हो कि त्यागी के त्याग से ज्यादा गहरा। तो मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि एक परम समन्वय हो। तुम भोगो – त्यागते हुए; तुम त्यागो – भोगते हुए।

उपनिषद कहते हैं, तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। उन्होंने ही भोगा, जिन्होंने त्यागा। या उसका ऐसा भी अर्थ कर सकते हैं कि उन्होंने ही त्यागा जिन्होंने भोगा। वह वचन बड़ा अपूर्व है। ऐसा भोगो, ऐसा गहरा भोगो कि भोग में ही त्याग घटित हो जाये।

अब इसे थोड़ा समझो। जब तुम अधूरा-अधूरा भोगते हो तो भोग सरकता है। जो भी जीवन में अधूरा अनुभव है, वह पीछा करता है। जब भी अनुभव पूरा हो जाता है, छुटकारा हो जाता है। अगर तुमने स्त्री को ठीक से न भोगा, तो तुम्हारे मन में स्त्री की कामना छाया डालती रहेगी। अगर तुमने ठीक से भोग लिया, एक स्त्री को भी, एक संभोग में भी ठीक से अनुभव कर लिया और जान लिया, क्या है, तुम मुक्त हो गये! उसी क्षण तुम भोग के बाहर हो गये।

गहरा भोग त्याग ले आता है। और गहरे त्यागी के भोग की चर्चा करनी मुश्किल है, क्योंकि वही भोगना जानता है।

तुम जरा सोचो! जब कृष्ण भोजन करते होंगे या महावीर भी जब भोजन

करते होंगे, तो तुमने ऐसा भोजन कभी भी नहीं किया जैसा महावीर करते होंगे। चाहे उन्हें रूखी-सूखी रोटी ही मिली हो, उस रूखी-सूखी में से भी ब्रह्म को निचोड़ लेते होंगे। उस रूखी-सूखी रोटी में से सिर्फ खून और मांस-मज्जा ही नहीं आती थी उनको, ब्रह्म भी आता था। इसलिए तो उपनिषद कहते हैं : अन्नं ब्रह्म ! अन्न ब्रह्म है। जिन्होंने लिखा है, उन्होंने खूब भोग के लिखा होगा, खूब अन्न को परख के लिखा होगा।

एक संन्यासी बीमार था। थोड़ा-थोड़ा भोजन लेता था। चिकित्सकों ने उसे कहा कि इतने थोड़े भोजन से काम न चलेगा, थोड़ा और भोजन लो। तो उस संन्यासी ने कहा, इतना काफी है, क्योंकि इसमें से मैं वही नहीं ले रहा हूं जो दिखाई पड़ता है, वह भी ले रहा हूं जो दिखाई नहीं पड़ता। और जब मैं श्वास लेता हूं, तब भी मैं भोजन कर रहा हूं – क्योंकि प्राण ... । और जब मैं आकाश को देखता हूं, तब भी भोजन कर रहा हूं – क्योंकि आकाश ... । जब सूरज की किरणें मुझ पे पड़ती हैं, तब भी भोजन कर रहा हूं – क्योंकि किरणें प्रवेश करती हैं। भोजन तो चौबीस घंटे चल रहा है। ब्रह्म चौबीस घंटे हजार-हजार मार्गों से तुम में उतर रहा है और नाच रहा है।

जिसने ठीक से भोगा वह हर भोग में ब्रह्म को खोज लेगा। और जिसने ठीक से त्यागा, उसकी आंख इतनी शुद्ध और निर्मल हो जाती है कि उसे सिवाय ब्रह्म के फिर कुछ दिखाई पड़ता नहीं।

अब तक ब्राह्मण और श्रमण संस्कृतिया विपरीत खड़ी रही हैं। श्रमण-सस्कृति त्याग की संस्कृति है। ब्राह्मण-संस्कृति भोग की संस्कृति है। ब्राह्मण-संस्कृति परमात्मा के एश्वर्य की सस्कृति है, परमात्मा के विस्तार की। श्रमण-संस्कृति त्याग की संस्कृति है, वीतराग की, परमात्मा के संकोच की, वापसी यात्रा है। इसलिए रामानुज, वल्लभ और निम्बार्क शंकर को हिंदू नहीं मानते। वे कहते हैं, प्रच्छन्न बौद्ध, छिपा हुआ बौद्ध है यह आदमी। निम्बार्क, शंकर के बीच; वल्लभ, शंकर के बीच, रामानुज, शंकर के बीच बड़ा विवाद है। और मैं भी मानता हूं, शंकर हिंदू नहीं हैं। हो नहीं सकते। शकर ने बड़े छिपे रास्ते से श्रमण-संस्कृति को ब्राह्मण-संस्कृति की छाती पे हावी कर दिया। इसलिए शंकर के संन्यासी को तुम जानते हो, वही संन्यासी हो गया खास। वह सन्यासी बिलकुल हिंदू है ही नहीं।

तुमने उपनिषद के ऋषि-मुनियों को देखा है, सुनी उनकी बात, उनकी खबर, उनकी कहानी सुनी? उपनिषद के ऋषि-मुनि गृहस्थ थे, पत्नी थी उनकी, बच्चे थे उनके, घर-द्वार था उनका, बाग-उपवन थे उनके, गउएं थीं उनकी, धन-धान्य था, त्यागी नहीं थे। बुद्ध और जैन अर्थों में त्यागी नहीं थे। भोग कर ही भगवान को उन्होंने जाना था। शंकर ने श्रमण-संस्कृति की बात का प्रभाव देख के ... क्योंकि जब श्रमण साधु खडे हुए तो स्वभावतः हिन्दू ब्राह्मण, ऋषि-मुनि फीके पड़ने लगे।

क्योंकि ये तेजस्वी मालूम पड़े। सब छोड़ दिया! ये चमत्कारी मालूम पड़े, क्योंकि बड़े उलटे मालूम पड़े। स्वभावतः रास्ते पे सब लोग चलते हैं, कोई जरा शीर्षासन लगा के खड़ा हो जाये, तो भीड़ इकट्ठी हो जायेगी। वही आदमी पैर के बल खड़ा रहे, कोई न आयेगा; सिर के बल खड़ा हो जाये, सब आ जायेंगे। वे कहेंगे, क्या मामला हो गया! कोई फूल चढ़ाने लगेगा, कोई हाथ जोड़ने लगेगा कि कोई चमत्कार कर रहा है, यह आदमी बड़ा त्यागी है! उलटा आकर्षित करता है।

तो जैन और बौद्ध संन्यासियों ने बड़ा आकर्षण पैदा किया। शंकर ने बड़े छिपे द्वार से उनकी ही बात को हिंदू-छाती पे सवार करवा दिया। अगर कोई गौर से देखे तो हिंदू-संस्कृति को बचाने वाले शंकर नहीं हैं, नष्ट करने वाले हैं। हालांकि लोग सोचते हैं, शंकर ने बचा लिया। बचाया नहीं। यह बचाना क्या बचाना हुआ? यह तो नाम का ही फर्क हुआ।

हिन्दू-संस्कृति भोग का परम स्वीकार है। और भोग में ही परमात्मा का आविष्कार है। श्रमण-संस्कृति त्याग का, संन्यास का, छोड़ने का, विरक्ति का, वैराग्य का मार्ग है। और उसी से परमात्मा को पाना है।

मेरे देखे, त्याग और भोग दो पंखों की तरह है। श्रमण-संस्कृति भी अधूरी है, ब्राह्मण-सस्कृति भी अधूरी है। मैं उसी आदमी को पूरा कहता हूं, उसी को मैं परमहंस कहता हू, जिसके दोनों पंख सुदृढ़ हैं; जो न भोग की तरफ झुका है; न त्याग की तरफ झुका है; जिसका कोई चुनाव ही नहीं है; जो सहज शांत जो भी घट रहा है, उसे स्वीकार किया है, घर में है तो घर में स्वीकार है, मंदिर में है तो मंदिर में; पत्नी है तो ठीक, पत्नी मर गई तो ठीक; पत्नी होनी ही चाहिए, ऐसा भी नहीं है; पत्नी नहीं ही होनी चाहिए, ऐसा भी नहीं है—जिसका कोई आग्रह नहीं है, निराग्रही!

संन्यास का मैं अर्थ करता हूं : सम्यक् न्यास। जिसने अपने जीवन को संतुलित कर लिया है, जिसने अपने जीवन को ऐसी बुनियाद दी है जो अपंग नहीं है, जो अधूरी नहीं है, जो परिपूर्ण है। भोग और त्याग दोनों जिसमें समाविष्ट हैं, वही मेरे लिए संन्यासी है।

और मजा ही क्या, छोड़ के भाग गये तब छूटा तो मजा क्या! यहां रहे और छोड़ा, बाजार में खड़े रहे और भीतर हिमालय प्रगट हुआ...

> यह हमीं हैं कि तेरा दर्द छुपा कर दिल में
> काम दुनियां के बदस्तूर किए जाते हैं।

छोड़ देना आसान है, पकड़ रखना भी आसान है; पकड़े हुए छोड़ देना अति कठिन है। बड़ी कुशलता चाहिए कृष्ण ने जिसको कहा है : योगः कर्मसु कौशलम्। बड़ी कुशलता चाहिए! योग की कुशलता चाहिए! जैसे कि कोई नट खिंची हुई रस्सी पर चलता है, दो खाइयों के बीच खिंची हुई रस्सी पे चलता है, तो देखा, कैसा सम्हालता है, संतुलित करता है; कभी बायें झुकता, कभी दायें झुकता; जब दिखता

है, बायें झुकना ज्यादा हो गया, अब गिरूंगा, तो दायें झुकता है, ताकि बायें की तरफ जो असंतुलन हो गया था, वह संतुलित हो जाये। फिर देखता है, अब दायें तरफ ज्यादा झुकने लगा, तो बायें तरफ झुकता है। बायें को दायें से सम्हालता है, दायें को बाये से सम्हालता है। ऐसे बीच पे तनी रस्सी पर चलता है।

और धर्म तो खड्ग की धार है। वह तो बड़ा बारीक रास्ता है, संकीर्ण रास्ता है– ठीक खिंची हुई रस्सी की तरह दो खाइयों के बीच में। इधर संसार है, उधर परमात्मा है, बीच में खिंची हुई रस्सी है – उस पे चलने वाले को बड़ा कुशल होना चाहिए।

तो अगर तुम्हारे जीवन में प्रेम बुझ जाये और फिर वैराग्य हो, तो कुछ खास न हुआ। प्रेम जलता रहे और वैराग्य हो तो कुछ हुआ।

बुझी इश्क की राख अंधेर है
मुसलमां नहीं राख का ढेर है
शराबे-कुहन फिर पिला साकिया
वही जाम गर्दिश में ला साकिया
मुझे इश्क के पर लगा कर उड़ा
मेरी खाक जुगनू बना कर उड़ा
जिगर में वही तीर फिर पार कर
तमन्ना को सीने में बेदार कर।
बुझी इश्क की राख अंधेर है।

प्रेम का अंगारा बुझ जाये तो फिर जिसे तुम वैराग्य कहते हो, वह राख ही राख है। प्रेम का अंगारा भी जलता रहे और जलाये न, तो कुछ कुशलता हुई, तो कुछ तुमने साधा, तो तुमने कुछ पाया

बुझी इश्क की राख अंधेर है
मुसलमां नहीं राख का ढेर है।

– फिर वह आदमी धार्मिक नहीं, मुसलमान नहीं – राख का ढेर है।

तो एक तरफ जलते हुए, उभरते हुए अंगारे ज्वालामुखी है, और एक तरफ राख के ढेर है – बुझ गये, ठंडे पड़ गये, प्राण ही खो गये, निष्प्राण हो गये। तो एक तरफ पागल लोग हैं, और एक तरफ मरे हुए लोग है। कहीं बीच में...! पागलपन इतना न मिट जाये कि मौत हो जाये, और पागलपन इतना भी न हो कि होश खो जाये। पागलपन जिन्दा रहे और फिर भी मौत घट जाये। अहंकार मरे, तुम न मरो। संसार का भोग मरे, परमात्मा का भोग न मरे। त्याग हो, लेकिन जीवंत हो, रसधार न सूख जाये।

शराबे-कुहन फिर पिला साकिया !

बड़ी प्यारी पंक्तियां हैं। पंक्तियां यह कह रही हैं, अगर राख का ढेर हो गये

हम, तो क्या सार ! हे परमात्मा, फिर थोड़ी शराब बरसा !

शराबे-कुहन फिर पिला साकिया
वही जाम गर्दिश में ला साकिया ।

– फिर वही जाम गर्दिश में ला । अभी संसार को प्रेम किया था, अब तुझे प्रेम करेंगे; लेकिन फिर वही जाम दोहरा । प्रेम तो बचे; जो व्यर्थ के लिए था वह सार्थक के लिए हो जाये । दौड़ तो बचे; अभी वस्तुओं के लिए दौड़े थे, अब परमात्मा के लिए दौड़ हो जाये ।

शराबे-कुहन फिर पिला साकिया
वही जाम गर्दिश में ला साकिया
मुझे इश्क के पर लगा कर उड़ा !

– अभी इश्क के पर तो थे, लेकिन खिसकते रहे जमीन पर, रगड़ते रहे नाक जमीन पर । मुझे इश्क के पर लगा कर उड़ा ! उड़ें परमात्मा की तरफ, लेकिन पर तो इश्क के हों, प्रेम के हों ।

मेरी खाक जुगनू बना कर उड़ा
जिगर से वही तीर फिर पार कर ।

– वह जो संसार में घटा था, वह जो किसी युवती के लिए घटा था, किसी युवक के लिए घटा था, वह जो धन के लिए घटा था, पद के लिए घटा था–वही तीर !

जिगर से वही तीर फिर पार कर
तमन्ना को सीने में बेदार कर !

– वह जो वासना थी, आकांक्षा थी, अभीप्सा थी – वस्तुओं के लिए, ससार के लिए – उसे फिर जगा, लेकिन अब तेरे लिए !

बहुत लोग हैं, अधिक लोग ऐसे ही हैं – जीते हैं, भोगते है, लेकिन भोग करना उन्हे आया नही । वासना की है, चाहत में अपने को डुबाया, लेकिन चाहत की कला न आयी ।

न आया हमें इश्क करना न आया
मरे उम्र भर और मरना न आया ।

जीवन एक कला है और धर्म सबसे बड़ी कीमिया है । इसलिए मेरे लिए संन्यासी का जो अर्थ है, वह है · संतुलन, सम्यक् सतुलन, सम्यक् न्यास, कुछ छोड़ना नहीं और सब छूट जाये; कहीं भागना नहीं और सबसे मुक्ति हो जाये; पैर पड़ते रहे जलधारों पर लेकिन गीले न हो; आग से गुजरना हो जाये, लेकिन कोई घाव न पडे । और ऐसा संभव है । और ऐसा जिस दिन बहुत बड़ी मात्रा में संभव होगा, उस दिन जीवन की दो धाराएं, श्रमण और ब्राह्मण, मिलेंगी; भक्त और ज्ञानी आलिंगन करेगा । और उस दिन जगत में पहली दफा धर्म की परिपूर्णता प्रगट होगी । अभी तक धर्म अधूरा-अधूरा प्रगट हुआ है, खंड-खंड में प्रगट हुआ है ।

तीसरा प्रश्न : एक मार्ग भगवान महावीर का है– संघर्ष का, समर्पण का; दूसरा मार्ग शरणागति का, समर्पण का। और दोनों मुक्ति के लिए हैं। कृपया बतायें कि भक्ति करने से आदमी को अपने बुरे कर्मों का फल भोगना पड़ेगा अथवा नहीं ?

कर्म की भाषा भक्त की भाषा नहीं है। यह तो ऐसे ही है, जैसे तुम पूछो कि बगीचे से गुजरने पर मरुस्थल बीच में पड़ेगा या नहीं; या मरुस्थल से गुजरने पर फूल कमल के खिले हुए मिलेंगे या नहीं। तुम अलग-अलग धाराओं की बात कर रहे हो।

कर्म की भाषा समर्पण के मार्ग की भाषा नहीं है; संकल्प के मार्ग की भाषा है। संकल्प कहता है : तुमने जो किया है वही तुम पाओगे। इसलिए महावीर का तो पूरा शास्त्र कर्म के सिद्धांत पर खड़ा है। भगवान तो हटा ही दिया है महावीर ने; कर्म ही भगवान हो गया है–तुम जो करते हो वही; कार्य-कारण; सीधा विज्ञान है।

भक्त को कर्म की भाषा ही नहीं आती। भक्त कहता है, हमने कभी कुछ किया ही नहीं, वही करवा रहा है। भक्त कहता है, हम कर्ता ही नहीं हैं, कर्ता वही है; और उसने जो करवाया हमने किया; गुनहगार हो तो वही हो। भक्त के सामने भगवान को मुश्किल पड़ेगी; क्योंकि भक्त कहेगा, 'तूने करवाया, हमने किया, हमको फंसाता है ?' इसलिए भक्त कर्म की भाषा नहीं बोलता। भक्त कहता है, सब तुझ पे छोड़ा, कर्म भी छोड़े। अपने को ही छोड़ा तो अब कर्म का खाता कहां अलग रखें ? जब सब छोड़ा तो बैंक-बैलेंस भी तुझे ही दिया। ऐसा थोड़ी है कि अपना बैंक-बैलेंस बचा लिया और कहा कि बाकी सब दिया।

तुम्हें तो जुहद-ओ-रिया पर बहुत है अपने गरूर
खुदा है शेख जी ! हमसे भी गुनहगारों का।

–भक्त कहता है, 'शेख जी ! तुम्हें तो बड़ा गरूर है अपने कर्मों का, शुभ कर्मों का, उपासना, पूजा, प्रार्थना का, साधना, तपश्चर्या का !'

तुम्हें तो जुहद-ओ-रिया पर बहुत है अपने गरूर !

–लेकिन भक्त यह भी कहता है कि यह सब जो तुमने किया है, थोथा है, क्योंकि करने का भाव तो भीतर मौजूद ही है। इसलिए यह सब वंचना है। और हम तुम से कहते हैं : खुदा है शेख जी ! हमसे भी गुनहगारों का। वह हमारी भी खबर लेगा। वह सिर्फ धार्मिकों का ही नहीं है, गुनहगारों का भी है।

फरिश्ते हश्र में पूछेंगे पाकबाजों से
गुनह क्यों न किए, क्या खुदा गफूर न था ?

–वे जो पुण्यात्मा हैं, भक्त कहता है, उनसे जरूर फरिश्ते पूछेंगे स्वर्ग में।

फरिश्ते हश्र में पूछेंगे पाकबाजों से।

–पवित्र लोगों से, धर्मात्माओं से, पुण्यात्माओं से।

गुनह क्यों न किए, क्या खुदा गफूर न था ?
—क्या तुम्हें भरोसा न था कि उसकी करुणा अपरम्पार है ? तुम्हें कुछ संदेह था ? कर लेते गुनाह ? ऐसे क्या डरे-डरे जिये ?

नहीं, भक्त की भाषा अलग है ।

ध्यान रखो, अगर कर्मों का हिसाब रखना हो तो भक्ति का रास्ता तुम्हारे लिए नहीं है । गणित और काव्य की भाषा अलग-अलग है । गणित में दो और दो चार ही होते हैं; काव्य में कभी-कभी दो और दो पांच भी हो जाते हैं, कभी तीन भी रह जाते हैं । काव्य तो रहस्य है ।

तो अगर तुम्हें गणित की भाषा समझ में आती हो तो तुम भक्ति की भाषा ही छोड़ो, तो फिर कर्मों का हिसाब रखो । जो-जो बुरा किया है, उसके ठीक-ठीक तुलना में गणित की तरह भला करो । एक-एक काटो । कठिन होगा मार्ग, लेकिन किसी की करुणा पे तुम्हें निर्भर न रहना पडेगा । जटिल होगा, बड़ा दुर्धर्ष संघर्ष होगा । क्योंकि अनन्त-अनन्त जन्मो के पाप है, उन्हें काटना आसान नही है । इसलिए तो महावीर जन्मो-जन्मो यात्रा करते है । काटते, काटते, काटते, काटते, पच्चीस सौ वर्ष पहले वह घड़ी आई, जब वे काट पाये । इसलिए महावीर और बुद्ध दोनों ने, श्रमण-संस्कृति के दोनो आधार हैं, अपने पिछले जन्मों की कथा कही है ।

किसी भक्त ने फिक्र नही की : क्या करना, हिसाब क्या रखना उसका ! महा-वीर-बुद्ध ने कही है । दोनों ने जाति-स्मरण, पिछले जन्मो के स्मरण को एक खास विधि माना, खास विधि बनाया कि पीछे जन्मों में जाओ; क्योंकि हिसाब पूरा देखना पड़ेगा, कहां-कहा भूल-चूक की है, वहां-वहां सुधार करना है, जहां-जहा गलत किया, उसके मुकाबले ठीक करना है, जहां-जहां पाप हुआ वहां-वहां पुण्य रखना है । धीरे-धीरे-धीरे तराजू को बराबर करना है, दोनो पलड़े जब बराबर हो जायेंगे और काटा जब बीच में सम्यक्त्व पे खड़ा हो जायेगा तब तुम मुक्त हो सकोगे । बड़ा हिसाबी-किताबी मामला है । मगर कुछ है जिनको इन में रस है । जरूर वे वैसा करें ।

लेकिन भक्तों ने कभी पिछले जन्मों का हिसाब नही किया । उन्होंने कहा, 'हिसाब कौन रखे ! तू ही रख ' तू ही सम्हाल ! तूने भेजा, हम आये । तूने चलाया, हम चले ! तूने जैसा रखा, हम राजी रहे ! '

भक्त की तो पूरी बात ही इतनी है कि मैं नही हूं, तू ही है ! इसलिए भक्त को कोई सवाल नही है ।

दोनों मार्ग पहुंचा देते है । भक्त छलाग से पहुंचता है, ज्ञानी इंच-इंच काट के पहुंचता है । भक्त एकबारगी पहुंच जाता है । एक साथ छोड़ देता है अपने ' मैं ' को । वह पूरा का पूरा उसके चरणों में अपने सिर को रख देता है — एक साथ ! ज्ञानी काटता है, पाप को छोड़ता है, पुण्य को पकड़ता है — फिर एक ऐसी घड़ी

आती है, तब पुण्य को भी छोड़ता है। नहीं तो पुण्य ही अहंकार बन जाता है।

इसलिए महावीर के मार्ग पर जो चलते हैं, पहले पाप को काटो पुण्य से, फिर एक घड़ी आयेगी तब पुण्य को भी काटो, क्योंकि वह सोने की जंजीर है। पहले पाप को मिटाओ पुण्य से, एक कांटे को दूसरे से निकालो; फिर दोनों कांटों को फेंक दो, फिर पाप भी पुण्य भी दोनों चले जायें। जब सारे कर्म शून्य हो जायेंगे तो कर्ता मिट जाता है। जब कर्म ही न बचे तो कर्ता कौन! यह महावीर का मार्ग है।

भक्त का मार्ग यह है, यह कहता है : हम कर्ता को ही रखे आते हैं उसके चरणों कर्म से शुरू नहीं करता भक्त। भक्त कर्ता का समर्पण करता है। वह कहता है, 'यह रहे! बुरे-भले जैसे भी है, तू स्वीकार कर! पत्र-पुष्पम्। यह जो कुछ हमार पास है, पत्ते, फूल, फूल की पंखुड़ी सही, यह तू सम्हाल! ज्यादा कुछ है नहीं!'

वह अपने अहंकार को सीधा रखता है।

ज्ञानी के मार्ग पर, संकल्प के मार्ग पर कर्म को काट-काट के कर्ता मिटाया जाता है। भक्ति के मार्ग पर कर्ता को छोड़ कर ही सारे कर्म मिट जाते हैं।

आखिरी सवाल : सुनता था कि इस जहां से आगे जहां और भी है, इस मकां से आगे मकां और भी है; लेकिन अब आप से मिलने पर ऐसा प्रतीत होता है —

गर बर रूए जमी बहिश्त अस्त
हमी अस्त हमी अस्त हमी अस्त।

— यदि इस पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है तो वह यही है, यही है, यही है। ऐसा क्यो हुआ, कृपापूर्वक समझायें!

छोड़ो भी समझ को! समझ के पीछे क्यों इतना लट्ठ ले के पड़े हो? समझ से ऐसा क्या लेना-देना है? समझ को खाओगे कि पियोगे कि ओढ़ोगे? जो हुआ है उसके बीच में समझ को मत लाओ। समझ बाधा डालेगी। समझ ने सदा ही बाधा डाली है। विश्लेषण तोड़ देता है उन चीजों को, फोड़ देता है उन चीजों को — जो विश्लेषण के पार है।

जैसे मैं एक सुंदर फूल तुम्हें दूं, भोगो इसे! सूंघो इसे! पियो इसके रस को आंखों से। नाच लो थोड़ी देर इसके साथ! जल्दी ही यह फूल कुम्हला जायेगा। जल्दी ही यह फूल फिर जैसे अदृश्य से आया, अदृश्य में लीन हो जायेगा। विश्लेषण मत करो, अन्यथा तुम भागोगे, काटोगे-पीटोगे फूल को, सोचोगे कहां सौंदर्य है, कहां छिपा है! उस काट-पीट में फूल भी खो जायेगा, सौंदर्य भी खो जायेगा।

विश्लेषण में सौंदर्य का पता नहीं चलता, न सत्य का पता चलता है; क्योंकि जो है, वह अखंड में है। इसलिए मैं कहता हूं, छोड़ो समझ को! समझ खंडित

करती है चीजों को। वह कहती है, काटो-पीटो, जांचो, तोड़ो ! सारा विज्ञान तोड़-फोड़ से चलता है। तुम दे दो वैज्ञानिक को फूल, वह फौरन भागेगा प्रयोगशाला में। फूल को देखेगा भी नहीं। फूल को थोड़ा मौका भी न देगा कि फूल थोड़ा गुनगुना ले। भागेगा प्रयोगशाला में जल्दी ही तुम पाओगे, पंखुड़ियां बिखर गईं। विच्छेद कर डाला उसने फूल का। जल्दी ही तुम पाओगे, लेबिल लगा दिये गये, अलग-अलग बोतलों में उसने फूल से निकाल के रस संजो दिये। बता देगा, कितना लवण है, कितनी मिट्टी है, कितनी शक्कर है, कितना क्या है। सब बता देगा, लेकिन कोई भी ऐसी बोतल न होगी जिसमें सौंदर्य होगा, और सब चीजें पकड़ में आ जायेंगी। पार्थिव पकड़ में आ जायेगा, अपार्थिव छूट जायेगा। तुम पूछोगे, 'सौंदर्य' कहां है ? हमने फूल दिया था, एक सुंदर फूल दिया था – यह फूल का विश्लेषण हुआ, सौंदर्य कहा है ?' वह कहेगा, 'सौंदर्य था ही नहीं। मैंने बड़े गौर से काटा-पीटा, कोई भी चीज बाहर नही जाने दी है। जितना वजन फूल का था उतना ही इन चीजों का है, तुम तौल ले सकते हो। सौंदर्य कहीं गया नही। था ही नहीं। होगा ही नही। तुम किसी भ्रांति में पड़े होओगे। तुमने कोई सपना देखा होगा।'

समझ खंड-खंड करती है। समझ यानी विश्लेषण। और सत्य उपलब्ध होता है संश्लेषण से, जोड से, अखंड से। तो मैं तुमसे कहता हूं, अगर लगता है, कहीं यही स्वर्ग है, तो अब समझने की फिक्र छोड़ो ! स्वर्ग में तो समझ मत लाओ ! समझ से संसार चलता है। समझ से संसार बनता है। स्वर्ग में तो समझ मत लाओ ! अगर काव्य उठा है, अगर हृदय अभिभूत हुआ है, तो नाचो ! अब स्वर्ग आ गया, तुम पूछते हो कि ऐसा क्यो हुआ ! जो हुआ, हुआ।

'क्यों' में जाने का अर्थ है : अतीत में जाओ। 'क्यों' में जाने का अर्थ है : कारण में जाओ। 'क्यों' में जाने का अर्थ है : विज्ञान में जाओ। विज्ञान पूछता है, 'क्यो ?'

नहीं, धर्म स्वीकार करता है। धर्म पूछता ही नही। धर्म कोई प्रश्न नहीं है। धर्म एक आश्चर्य-भाव है। धर्म कहता है, अहा ! यही स्वर्ग है, तो नाच लें, तो गीत गा लें। सुनो इस कोयल को !

स्वर्ग अगर आ गया है तो आखिरी दरवाजा आ गया !

> तेरी उम्मीद छूट नहीं सकती
> तेरे दर के सिवाय दर ही नहीं।
> और क्या देखने को बाकी है
> आप से दिल लगा के देख लिया।

अगर परमात्मा से थोड़ा दिल लग गया तो वही स्वर्ग है।

> और क्या देखने को बाकी है
> आपसे दिल लगा के देख लिया।

पर अब बुद्धि को मत दौड़ाओ। अब बुद्धि के जाल मत बुनो। छोड़ो भी। बुद्धि विरस कर देगी। बुद्धिमान स्वर्ग भी चला जाये, नर्क को निर्मित कर लेगा; क्योंकि वह स्वीकार नहीं कर सकता है; घटना घट भी जाये तो भी पूछता है, 'क्यो'! 'क्यों' का कोई उत्तर नहीं है। ऐसा है। जब भी तुम्हारा दिल खुला होता है और प्यारे को तुम उपलब्ध होते हो, घट जाता है।

तुमने किसी को भी प्रेम किया, वही से परमात्मा की किरणें उतरनी शुरू हो जाती हैं, वही खिड़की हो जाती है, वही वातायन हो जाता है। तुमने अगर मुझे प्रेम किया तो यहां स्वर्ग बन जायेगा। जिन का मुझ से प्रेम नहीं है, वे तुम्हें पागल समझेंगे। उन्हें सोचने दो कि क्या हुआ, क्यों हुआ, कैसे हुआ! यह काम उन पे छोड़ दो, जिनको नही हुआ है। कुछ काम उनके लिए भी तो छोड़ो।

और क्या देखने को बाकी है
आप से दिल लगा के देख लिया!

आज इतना ही।

दिनांक १५ मई, १९७६; श्री रजनीश आश्रम, पूना

रागो य दोसो वि य कम्मबीयं, कम्मं च मोहप्पभवं वयंति।
कम्मं च जाईमरणस्य मूलं, दुक्खं च जाईमरणं वयंति ॥ ११ ॥

न य संसारम्मि सुहं, जाइजरामरणदुक्खगहियस्स।
जीवस्स अत्थि जम्हा, तम्हा मुक्खो उपादेओ ॥ १२ ॥
तं जइ इच्छसि गंतुं, तीरं भवसायरस्स घोरस्स।
तो तव संजमभंडं, सुविहिय गिण्हाहि तूरंतो ॥ १३ ॥
जेण विरागो जायइ, तं तं सव्वायरेण करणिज्जं।
मुच्चइ हु ससंवेगी, अणंतवो होइ असंवेगी ॥ १४ ॥
एवं ससंकप्पविकप्पणासुं, संजायई समयमुवट्ठियस्स।
अत्थे य संकप्पयओ तओ से, पहीयए कामगुणेसु तण्हा ॥ १५ ॥

भावे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खो परंपरेण।
न लिप्पई भवमज्झे वि संतो, जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥ १६ ॥

परम औषधि : साक्षी-भाव

घर में आग लगी हो तो बाहर जाने के दो ही उपाय हैं : या तो बाहर आग नहीं है, ऐसा दिखाई पड़े; या घर की आग जीवन-घाती है, ऐसा दिखाई पड़े। या तो बाहर सुख है, आनंद है, जीवन है, ऐसी प्रतीति हो, तो व्यक्ति घर के बाहर भागे; और या घर की पीड़ा, घर के भीतर लगी आग जलाने लगे, अनुभव में आये, जगाये, तो व्यक्ति बाहर भागे।

दुनिया में दो ही तरह के धर्म हैं। एक – जो परमात्मा के आनंद का वर्णन करते हैं, उस परम दशा के सुख की महिमा गाते हैं; समाधि का सौरभ, उस सौरभ के गीत गुनगुनाते है। और दूसरे धर्म हैं – जो तुम्हारी जीवन-दशा की अग्नि, दुख, पीड़ा, छाती में चुभे कांटो का विचार करते है।

महावीर का धर्म दूसरे प्रकार का धर्म है; इसलिए दुख की बार-बार चर्चा होगी। पतंजलि का धर्म पहले प्रकार का धर्म है; इसलिए परमात्मा के प्रसाद, समाधि के आनंद, ध्यान के हर्षोन्माद की बार-बार चर्चा होगी। लेकिन दोनों का लक्ष्य एक है कि तुम घर के बाहर आ जाओ। और यदि गौर से देखो तो महावीर की पकड़ ज्यादा वैज्ञानिक, ज्यादा तर्कयुक्त, ज्यादा व्यवहारिक है। क्योंकि जिस परमात्मा की हम चर्चा कर रहे हैं, उसे देखा नहीं। चर्चा में बहुत बल हो नहीं सकता। तुम कभी घर के बाहर आये नही।

मैं तुमसे कहता हूं, 'घर के बाहर बड़ा प्रकाश है, क्यों अंधेरे में पड़े हो?' लेकिन तुमने अंधेरे के सिवा कभी कुछ जाना नही। प्रकाश की तुम कल्पना भी नही कर सकते हो। प्रकाश का सपना भी नही देख सकते हो। प्रकाश से तुम्हारी कोई पहचान नही हुई। तो तुम सुनोगे, सुन लोगे – लेकिन इससे तुम्हारे जीवन में रूपान्तरण न होगा। तुम कहोगे, 'क्या भरोसा, प्रकाश होता भी है?'

तुमसे मैं फूलों की बात करूं, फूलों की कथा कहूं, लेकिन फूल तुमने देखे ही न हों और तुम्हारे नासापुटों में कभी गंध ने आवास न किया हो, तो क्या उपाय है? तुम कैसे आकर्षित होओगे? तुम सुन लोगे बात, लेकिन तुम्हारे हृदय को छू न पायेगी; तुम्हारे प्राणों में इससे क्रांति का जन्म न होगा। शायद तुम पंडित हो जाओ, लेकिन

प्रज्ञावान न हो सकोगे। शायद तुम भी सुन-सुन के यही बात औरों से करने लगो। शायद शब्द तुम्हें कंठस्थ हो जायें, शास्त्र तुम्हारी स्मृति में प्रविष्ट हो जायें; लेकिन तुम दौड़ोगे नहीं घर के बाहर। तुम कहोगे, हाथ की आधी को भी छोड़ के सपने की पूरी के लिए दौडना ठीक नहीं है; ये बातें सपनीली हैं, अव्यवहारिक हैं, कल्पना-जाल हैं। भीतर तो तुम यही जानते रहोगे। तुम्हारा शब्द-ज्ञान बढ़ता जायेगा, अज्ञान मिटेगा नहीं। तुम धर्म के काव्य में डूब जाओगे; लेकिन धर्म तुम्हारे जीवन का तथ्य न बनेगा। तब तुम एक दुविधा में भी पड़ोगे। क्योंकि जो सुख तुम्हारे शब्दों में छा जायेगा और प्राणों को आंदोलित न करेगा, वह तुम्हें दो हिस्सों में तोड़ देगा: जीवन में तो दुख होगा, जिह्वा पर सुख की बातें होंगी; प्राणों में तो कांटे छिदे होंगे, स्मृति में कल्पना के फूल तैरेंगे। तुम दो हिस्सों में खंडित हो जाओगे।

सारी मनुष्य-जाति खंडित हो गई है; क्योंकि एक तरफ परमात्मा खींचता है... और उसकी खींच में बहुत बल नहीं हो सकता। क्योंकि जिसे जाना नहीं, चखा नहीं, जिया नहीं, उसकी पुकार सुनोगे कैसे? वह बहुत दूर की धुंधली-सी आवाज, बस एक गूंज रह जाती है, प्रतिध्वनि-मात्र, छाया-मात्र। और जीवन की वासनाएं हैं, वे प्रगाढ़ हैं; वे तुम्हें खींचेंगी। तो तुम बंधे तो रहोगे जीवन के ही पहिये से, घसिटते तो रहोगे जीवन के रथ के साथ ही, धूल-ध्वास तो जीवन की ही खाते रहोगे। हां, सपने तुम मोक्ष के, बैकुण्ठ के देखने लगोगे। इससे तुम शांत न होओगे। इससे तुम्हारी अशांति शायद थोड़ी और बढ़ जायेगी। इससे तुम परमात्मा को पा सकोगे, ऐसा तो कम दिखायी पड़ता है; इससे तुम जीवन में उदास और खिन्न और विषादयुक्त हो जाओगे।

इसलिए महावीर ने दूसरा मार्ग चुना। वे परमात्मा की बात ही नहीं करते। उसे अलग ही कर दिया, बाद ही दे दी; हाशिये पर भी नहीं रखा है, शास्त्र की तो बात छोड़ो। उसे हटा ही दिया। समाधि के प्रसाद-गुण की बात नहीं करते, न आनंद की बात करते—वे तो तुम्हारे जीवन की, जहां तुम हो, उसकी ही बात करते हैं, और कहते हैं, यहां दुख है। वे तुम्हें जीवन के दुख की प्रगाढ़ता से परिचित करा देना चाहते हैं। वे तुम्हारे हृदय में चुभ हुए शूलों से तुम्हारी पहचान करा देना चाहते हैं। उनका सारा आधार तुम्हारी वस्तुस्थिति से तुम्हें परिचित करा देना है। तुम्हें पता चल जाए कि घर में आग लग गई है। तुम जल रहे हो, लपटों से घिरे हो। तो महावीर मानते हैं कि तुम दौड़ के बाहर निकल जाओगे। निकलोगे बाहर तो बाहर को जानोगे।

फूल भी खिले हैं। नहीं कि फूल नहीं खिले हैं। परमात्मा भी है। नहीं कि परमात्मा नहीं है। समाधि के भी मेघ बरस रहे हैं, अमृत की धार बह रही है। सब है। लेकिन महावीर उसकी बात नहीं करते। वे तो सिर्फ तुम्हारे जीवन के दुख की

बार-बार पुनरुक्ति करते हैं। तुम्हें जीवन का दुख दिखाई पड़ जाये तो तुम जीवन को छोड़ने लगोगे। उसी छोड़ने में मोक्ष उतरता है।

इसलिए महावीर का मार्ग निषेध का है, नकार का है। महावीर का मार्ग चिकित्सक का है। तुम चिकित्सक के पास जाते हो तो वह स्वास्थ्य की चर्चा नहीं करता। नहीं कि स्वास्थ्य नहीं है, लेकिन बीमार से स्वास्थ्य की क्या चर्चा करनी ! वह तुम्हारी बीमारी का निदान करता है; बीमारियों को उघाड़ के रखता है; एक-एक बीमारी की पकड़ करता है, जांच-परीक्षण करता है, डायगनोसिस करता है। बीमारी पकड़ में आ जाती है, बीमारी समझ में आ जाती है–औषधि बता देता है। स्वास्थ्य की कहीं कोई चिकित्सक बात करता है ! बीमारी पकड़ में आ गई, चिकित्सा का पता चल गया–अब तुम्हारे ऊपर है। अगर तुम्हें बीमारी दिखाई पड़ती है, बीमारी की पीड़ा दिखाई पड़ती है, तो औषधि तुम वरण करोगे; चाहे औषधि कड़वी भी क्यों न हो। बीमारी से साक्षात्कार हुआ तो औषधि तुम अंगीकार कर लोगे। औषधि बीमारी को काट देगी। जो शेष रह जायेगा बीमारी के कट जाने के बाद, वह अनिर्वचनीय है; उसकी बात ही नही की जा सकती; वह अभिव्यक्ति के योग्य नहीं है; उसकी कोई अभिव्यंजना कभी नही कर पाया। कहो 'ईश्वर', तो भी कुछ पता नहीं चलता। कहो 'समाधि', तो भी शब्द ही हाथ में आता है। कहो 'कैवल्य', कुछ शब्द की गूज होती है; हृदय में कोई अनुभूति का तालमेल नहीं बैठता। लेकिन जब तुम्हारी सारी बीमारी हट जाती है, तब अचानक जो घटता है–जीवंत, अस्तित्वगत–वही स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य बताया नहीं जा सकता, अनुभव किया जा सकता है।

तो इसलिए महावीर के वचनो में तुम्हें बार-बार दुख की चर्चा मिलेगी। इससे तुम्हें थोड़ी बेचैनी भी होगी। क्योंकि तुम सुख की चर्चा सुनना चाहते हो। तुम कहते हो, यह क्या दुख का राग है !

इसलिए पश्चिम में जब महावीर के वचन पहली दफा पहुंचने शुरू हुए तो लोगों ने समझा, दुखवादी हैं। महावीर दुखवादी नहीं है। इनसे परम सुखवादी कभी पैदा नही हुआ। क्या चिकित्सक तुम्हारी बीमारी की चर्चा करे, औषधि का निदान करे, तो तुम यह कहोगे कि यह बीमारी का पक्षपाती है? वह चर्चा ही बीमारी की इसलिए कर रहा है कि तुम उससे छूट जाओ। वह स्वास्थ्य की चर्चा नही कर रहा है, क्योंकि चर्चा करने से कभी कोई स्वस्थ हुआ ! इसलिए महावीर दुख का ही विश्लेषण करते चले जाते है। हजार तरफ से एक ही इशारा है उनका : दुख। तुम्हें यह दिखाई पड़ने लगे कि तुम्हारा सारा जीवन दुख है–सुबह से सांझ तक, जन्म से मृत्यु तक–दुख का ही अंबार है, राशि है।

ऐसी तुम्हारी पहचान जिस दिन हो जायेगी... और यही हो सकता है, क्योंकि इसमें तुम खड़े हो। परमात्मा तो दूर की बातचीत है; हो न हो, दुख है। तो महा-

वीर इसकी भी चिंता नही करते, सृष्टि कब बनी; इसकी भी चिंता नही करते, किसने बनायी। इन दूर की बातों में जाने से फायदा क्या है ? ऐसा तो नहीं है कही कि तुम दूर की बातें कर के पास की असलियत को भुलाना चाहते हो ? ऐसा तो नहीं है कि सृष्टि किसने बनायी, कौन है बनाने वाला, क्यों बनायी—इस तरह के बड़े-बड़े सवाल उठा कर जिंदगी के असली सवालो को तुम छिपा और ढांक लेना चाहते हो ? कहीं ऐसा तो नही है कि ये सब सांत्वना के उपाय है, ताकि दुख दिखाई न पड़े; ताकि दुख चुभे न छिदे न, ताकि दुख की पीड़ा न हो। कहीं तुम्हारे मंदिर-मस्जिद, पूजा-गृह तुम्हारी सांत्वनाओं का जाल तो नहीं हैं ?

महावीर ऐसा ही जानते हैं। यह सब तुम्हारी सांत्वना का जाल है। इसलिए महावीर मित्र भी मालूम नहीं होते। इसलिए तो महावीर बहुत अनुयायी इकट्ठे न कर पाये। सुख की चर्चा की होती, दुखी लोग आ गये होते। उन्होंने दुख की चर्चा की, दुखियों ने सोचा, 'हम वैसे ही दुखी हैं, बख्शो!' दुखियो ने कहा, 'हम वैसे ही दुखी हैं, तुम्हारे पास आ के और दुख की ही चर्चा, और दुख की ही चर्चा ...! ऐसे ही क्या दुख कम है, जो अब तुम और चर्चा करके जोड़े जा रहे हो ? हमें थोड़ी सांत्वना दो, भरोसा दो, आश्वासन दो, आशा दो। कहो हमें कि आज सब गलत है, कल सब ठीक हो जायेगा। कहो कि यह संसार तो माया है।'

महावीर ने नही कहा कि यह संसार माया है; क्योंकि महावीर ने कहा कि कहीं ऐसा तो नही है कि तुम दुख को माया कह के भुलाना चाहते हो! जिस चीज को भी माया कह दो, उसे भुलाने में सुविधा हो जाती है। संसार माया है, तो दुख भी माया है, तो बीमारी भी माया है, तो झेल लो, भोग लो, कुछ असलियत तो इसमें है नहीं, असली चीज तो परमात्मा है।

महावीर ने संसार को बड़ा सत्य माना है; परमात्मा की बात ही नहीं की। जो सत्यो का सत्य है, उसकी तो बात नही की; और इस भ्रामक संसार को बड़ा सत्य माना है। क्योंकि महावीर कहते है कि तुम्हारे मन को मैं पहचानता हूं। तुम्हारे परमात्मा, तुम्हारे मोक्ष, सब मलहम-पट्टियां है; उनसे तुम घाव को छिपाते हो। और यह घाव कुछ ऐसा है, इसकी शल्य-चिकित्सा होनी चाहिए, सर्जरी होनी चाहिए। तो तुम सर्जन के पास जाओगे तो वह दबायेगा भी तुम्हारा घाव, तो तुम चीखोगे भी, मवाद भी निकालेगा — तो तुम यह थोड़ी कहोगे कि दुश्मन हो, कि हम वैसे ही तो दुख में भरे थे, तुमने और मवाद निकाल दी; हम वैसे ही तो तड़फ रहे थे, तुमने यह और क्या किया; ऐसे ही क्या दुख कम था कि तुम छुरी-कांटे ले के खड़े हो गये हो! नही, तुम जानते हो, सर्जन मित्र है। वह उस गलत अंग को काट के अलग कर देगा, जहा से विष तुम्हारे पूरे जीवन-संस्थान में फैला जा रहा है।

महावीर एक सर्जन है; दार्शनिक कम, तत्त्वचिंतक कम, चिकित्सक ज्यादा हैं। इस शब्द को खयाल में रखो — चिकित्सक। नानक ने अपने को वैद्य कहा है। बुद्ध

ने भी अपने को वैद्य कहा है। महावीर भी वैद्य हैं। ये तुम्हें लोरियां सुनाने में उत्सुक नहीं हैं, कि तुम्हें थोड़ी झपकी लग जाये; तुम रात भर जागे हो, जन्म-जन्म जागे हो, थोड़ा सो लो। नहीं, इनकी उत्सुकता तुम्हें सुलाने में नहीं है, क्योंकि सोने कारण ही तो तुम्हारे जीवन की सारी पीड़ा और जाल और प्रवंचना का फैलाव है। इसलिए महावीर तुम्हारी दुख से भरी रग को छुएंगे, घबड़ाना मत। दुखवादी नहीं हैं वे। लेकिन तुम दुख में हो। और तुम धीरे-धीरे अपने को इस तरह की भ्रांतियों में डाल लिये हो कि तुम दुख को दुख नहीं मानते; तुम उसे सुख मानने लगे हो – तो तुम्हें बार-बार जगाना पड़ेगा कि दुख दुख है, सुख नहीं।

जिस दिन तुम्हारा सारा जीवन लपटों से भर जायेगा – भरा तो है ही, दिखाई पड जायेगा जिस दिन; जिस दिन तुम देखोगे कि यहां कुछ भी तो नहीं है, कीड़े-मकोड़े हैं, घाव, मवाद, पीड़ा-ही-पीडा – उसी दिन छलांग लगा के इस घर के बाहर हो जाओगे। हां, बाहर खुला आकाश है; सूरज का प्रकाश है; खिले फूल हैं, पक्षियों के गीत हैं; बाहर बड़ी वातास है, बडी मधुरिमा है, बड़ा सौंदर्य है! लेकिन वह तो तुम बाहर आओगे, तो ही सुनाई पड़ेगा। वह तो तुम बाहर आओगे, तो ही दिखाई पडेगा। इसलिए बाहर की कोई बात नहीं। जहां तुम हो, उसकी बात है। बडी व्यवहारिक बात है।

बुद्ध के जीवन में एक उल्लेख है ...। और बुद्ध और महावीर इस संबंध में एक ही दृष्टिकोण के हैं। दोनों श्रमण-संस्कृति के आधार है। .. कहते हैं बुद्ध को जब परमज्ञान हुआ, तो शैतान प्रगट हुआ। यह कथा बहुत धर्मों में आती है : जब परम ज्ञान प्रगट होता है तो शैतान भी प्रगट होता है। इस कथा में जरूर कोई सार होगा। यह कथा केवल प्रतीक नहीं हो सकती, क्योंकि यही जीसस के जीवन में भी उल्लेख है, कि जीसस जब ज्ञान के करीब पहुंचे तो शैतान प्रगट हुआ और शैतान ने उन्हें उत्तेजित किया, उकसाया। और शैतान ने बडी वासनाओं के प्रलोभन दिये। और शैतान ने कहा कि सारे जगत का तुझे सम्राट बना दूं, सारी धनराशि तेरी हो, सुन्दरतम स्त्रियां तेरी हों, लम्बा तेरा जीवन हो। क्या चाहिए?

वही बुद्ध से भी शैतान ने कहा। बुद्ध हंसते रहे। बुद्ध ने कहा, 'मुझे कुछ चाहिए नहीं। मैं बचा नहीं। चाहने वाला जा चुका – चाह भी जा चुकी। चाहा तो मैंने भी था, बड़े साम्राज्य बनाऊं; चाहा तो मैंने भी था, चक्रवर्ती बनूं। उसी चाह के कारण भिखारी रहा। उसी चाह के कारण भटका जन्मों-जन्मों तक। चाह छोड़ी, तब शांति मिली। चाह जब पूरी गई, तो अब मैं परम आनंद से भरा हूं। अब तू गलत वक्त पे आया है; पहले आता तो शायद तेरे चक्कर में भी पड़ जाता।'

तो शैतान ने कहा कि तुम सोचते हो तुम्हें परमज्ञान हो गया है, तुम्हारा गवाह कौन है? तुम्हारे कहने से ही मान लूगा? तुम्हारी गवाही कौन दे सकता है?

तो बड़ी अनूठी बात है – तुमने शायद बुद्ध का चित्र या प्रतिमा भी देखी होगी,

जिसमें वे एक अंगुली जमीन पे रखे हुए दिखाये गये है – बुद्ध ने जमीन पर अंगुली लगाई और कहा, यह पृथ्वी मेरा प्रमाण है, यह मेरी गवाही है। बड़ी हैरानी की बात है : पृथ्वी को गवाही बता रहे हैं ! आकाश में परमात्मा को बताया होता कि परमात्मा मेरा गवाह है तो समझ में आता । लेकिन बुद्ध और महावीर दोनों ही परमात्मा की बात नहीं करते । वे जीवन के यथार्थ की बात कहते हैं । वे कहते हैं, 'इस पृथ्वी से पूछ लो । इसी से मैं बना हूं । यही पृथ्वी मेरी देह है । इसी पृथ्वी ने मेरे भीतर हजार-हजार वासनायें उठायी थीं । इसी पृथ्वी से पूछ लो । बहुत दुख मैंने झेले हैं, और अब मैं दुखों के बाहर हो गया हूं । और कौन गवाह हो सकता है ?'

पृथ्वी से गवाही दिलवाते हैं बुद्ध । यह बड़ा प्रतीकात्मक है । महावीर के लिए यह संसार बड़ा वास्तविक है । वे इसको माया नहीं कहते । वे कहते हैं, यह सत्य है । माया कह के तुम बचो मत । बच के कुछ सार न पाओगे । इस सत्य से जूझना ही पड़ेगा । और यह सत्य बड़ा कष्टपूर्ण है । इसलिए मन करता है, मान लो यह है ही नहीं ।

तुम भी जानते हो तुम्हारे मन की प्रक्रिया को । जो चीज बहुत कष्ट देने लगती है, तुम मानने लगते हो यह है ही नहीं ।

मेरे एक परिचित थे । उन्हें टी. बी. की बीमारी थी । उनकी पत्नी उन्हें मेरे पास लायी और कहा, 'आप किसी तरह इनको समझायें कि डाक्टर से चल के ठीक से निदान करवा लें ।' पति भड़क उठे । कहा कि 'क्या कहती है ? जब मैं बीमार ही नही हूं तो मै जाऊं क्यो ? परीक्षण के लिए क्यो जाऊं ? परीक्षण के लिए वह जाये जो बीमार है । जब मै बीमार ही नहीं हूं तो जाने की बात ही क्या उठाती है ?'

लेकिन उनकी मैंने घबड़ाहट देखी, उनका तमतमाया चेहरा देखा, उनके कंपते हाथ देखे । मैंने उनसे कहा कि आप बिलकुल ठीक कहते हैं । आप बीमार ही नहीं हैं । चिकित्सक के पास जाने की कोई जरूरत ही नही है ।

वे बड़े प्रसन्न हुए । कहा कि जिसके पास ले जाती हैं यह मेरी पत्नी, वही कहता है कि जाइये, जब यह कहती है तो परीक्षा करवा लीजिये । मैंने कहा कि नही आप बिलकुल ठीक कहते है । कोई बीमारी नही है, इसलिए चिकित्सक के पास जाने की कोई जरूरत नही है । लेकिन यह पत्नी पागल हुई जा रही है, जरा इस पे दया करो ! यह मर जायेगी इसी घुटन मे; तुम इस पे कृपा करके चिकित्सक के पास चले जाओ ! बीमारी तो है ही नही तो चिकित्सक भी कहेगा, बीमारी नहीं है । तुम घबड़ाते क्यों हो ? मगर इसकी शंका इसका शल्य दूर हो जायेगा ।

वे बड़े उदास हो गये । कहने लगे, यह तो उलझा दिया आपने । सच यह है, उनकी आंख में आंसू आ गये कि मैं डरता हूं । मुझे भी डर है कि शायद बीमारी है । मैं किसी तरह अपने को समझा रहा हूं कि नहीं है । चिकित्सक के पास तो कैसे

छिपा पाऊंगा कि नहीं है। पत्नी को समझाने की कोशिश कर रहा हूं, बच्चों को समझाने की कोशिश कर रहा हूं। मैं मौत से डरता हूं। 'टी. बी.' शब्द ही मुझे घबड़ाता है। अगर चिकित्सक ने कहा कि टी. बी. है तो मैं मर ही जाऊंगा। टी. बी. से मरूंगा या नहीं, यह सवाल नहीं है; बस यह जान के कि टी. बी. है, मैं मर जाऊंगा।

मैंने उनसे कहा, तुम पागल हुए हो। टी. बी. से आज कहीं कोई मरता है! तुम पुराने जमाने की बात कर रहे हो।

घबड़ाहट! डॉक्टर के पास जाने से लोग डरते हैं। जब बीमारी बहुत ही पकड़ लेती है, कोई उपाय ही नहीं रह जाता, तब डाक्टर के पास जाते हैं। डाक्टर के पास जाने के पहले और तरह के लोगों के पास जाते हैं – कोई ओझा, कोई मंत्र पढ़ने वाला, कोई फकीर, कोई ताबीज बांध देने वाला – और जगह जाते हैं, जहां सांत्वना है; लेकिन डाक्टर के पास सीधा-सीधा नहीं जाते। क्योंकि डाक्टर तो सीधा कहेगा कि फलां-फलां बीमारी है, इलाज की बात उठेगी। तो पहले मंत्र पढ़ते हैं, ताबीज बांधते हैं, भभूति ले आते हैं। पहले साईंबाबा; फिर जब सब साईंबाबा हार जायें, तब मजबूरी में चिकित्सक के पास जाते हैं।

ठीक वैसा ही धर्म के जगत में भी है। पहले तुम उनकी बात सुनोगे जो कहते हैं, ससार माया है। महावीर के पास जाने में डरोगे, पैर कंपेंगे, क्योकि महावीर तुम्हारी किसी भ्रात आकांक्षाओं को सहारा देने में उत्सुक नही हैं। महावीर तो ठीक तुम्हारे उस रग पे हाथ रख देंगे, जहां पीड़ा है, जहां दुख है।

ये सूत्र निदान-सूत्र हैं। ये चिकित्सक के वचन हैं। इन्हें तुम गौर से सुनना। चाहे ये कितना ही कष्ट देते मालूम पड़ें, इनसे ही मुक्ति का मार्ग है। महावीर के पास जा के अगर तुम कह सको–

फिर मैं आया हूं तेरे पास ऐ अमीरे-कारवां।

– हे पथ-प्रदर्शक! मैं फिर तेरे पास आया हूं।

छोड़ आया था जिसे तू, वो मेरी मंजिल न थी।

– जहा तू मुझे छोड़ जाया था, या जहां मैंने तुझे छोड़ दिया था, वह मेरी मंजिल न थी। मै गलत पथ-प्रदर्शको के साथ भटका।

दुनिया में जहां एक ठीक पथ-प्रदर्शक होता है, वहां निन्यानवे गलत भी होते हैं। होंगे ही, क्योकि जिंदगी में इतना दुख है, और दुख से बचने की इतनी आकांक्षा है, कि भ्रांत और धोखा देने वाले लोग भी पैदा होंगे ही। जहां इतने लोग बीमारी से बचना चाहते हैं– बीमारी की चिकित्सा तो बहुत कम लोग करना चाहते है; पहली तो कोशिश यही होती है कि कोई समझा दे कि बीमारी है ही नही– वहां ऐसे लोग भी जरूर पैदा हो जायेंगे जो समझा देंगे कि बीमारी है ही नही; यह ताबीज बांध लेना, सब ठीक हो जायेगा; यह राम-राम जप लेना, सब ठीक हो जायेगा; यह

मंत्र की माला फेर लेना रोज, सब ठीक हो जायेगा। काश, इतना आसान होता!

थोड़ा सोचो भी, कैसी बचकानी आकांक्षाएं हैं! क्या तुम सोचते हो जीवन इतना आसान है कि राम-राम जपने से ठीक हो जायेगा? जरा जीवन की जटिलता तो देखो, उलझन तो देखो! इतना आसान है कि एक माला के गुरिए सरका देने से ठीक हो जायेगा? तुम किन मंदिरो के सामने हाथ जोड़े खड़े हो? प्रतिमाएं परमात्मा की तो नही हैं– तुम्हारी ही आकाक्षाओ की हैं; तुमने ही बनायी है; तुमने ही प्रतिष्ठा दी है; तुमने ही पूजा दी है! पहले तुम भगवान बनाते हो, फिर अपने ही बनाये भगवान के सामने हाथ जोड़ के खडे हो जाते हो। थोड़ा जाल तो देखो! थोड़ी अपनी चालाकी तो देखो! पहले तुम्ही भगवान बनाते हो! तुम्हारी मान्यता से ही कोई मूर्ति भगवान हो जाती है। कल तक बाजार में खड़ी थी, बिकती थी, तब भगवान न थी – फिर तुम ले आते हो, मंत्रोच्चार करते हो, पूजा-प्रार्थना करते हो, पंडित-पुरोहित इकट्ठे होते है, क्रियाकाड होता है। फिर वही पत्थर जो बाजार में बिकता था, तुम्ही खरीद लाये, तुम्हारे ही जैसे लोगो ने बनाया, उसी मूर्ति के सामने तुम हाथ जोड़ के खड़े हो जाते हो! तुम प्रार्थना करने लगते हो! तुम भी जानते हो गहरे में, प्रार्थना काम न आयेगी। क्योंकि परमात्मा ही तुम्हारा बनाया हुआ है। परमात्मा बनाने के हमने ग्रामोद्योग खोले हुए है। बिना परमात्मा के रहना मुश्किल है; क्योकि भय है, और जीवन है, और कष्ट है और काटे-ही-काटे हैं। तो पृथ्वी से आंख चुराते है। आकाश की तरफ देखते है। इसलिए सभी का परमात्मा आकाश में है।

बुद्ध ने ठीक किया कि पृथ्वी की तरफ हाथ लगा के कहा कि यह मेरी गवाह है। किसी और से पूछा होता तो वह आकाश की तरफ इशारा करता कि वहा मेरा परमात्मा है, वह मेरा गवाह है। आकाश की तरफ तुम आख उठाते हो क्योंकि पृथ्वी से आख चुराना चाहते हो। लेकिन तुम जानते हो, कितना ही झुठलाओ, क्या फर्क पड़ेगा?

मैंने सुना है :

एक ऐसे गांव में जहा बारिश नहीं हो रही थी, एक पुजारी ने घोषणा की कि वह सब गांव वालों के सामने भगवान से प्रार्थना करेगा कि वर्षा हो। ठीक समय पर सब गांव वाले उपस्थित हो गये, तो पुजारी ने कहा, 'भाइयो और बहनो! इससे पूर्व कि मैं भगवान से प्रार्थना करूं, आपसे एक प्रश्न पूछता हू कि आप लोगो के छाते कहा है?' भगवान से प्रार्थना करने इकट्ठे हुए हैं कि वर्षा हो – होगी वर्षा – छाते कहा है? लेकिन जो लोग चले आये है प्रार्थना करने, वे भी जानते है कि कहीं ऐसे वर्षा होती है! फिर भी चले आये हैं! छाते नहीं लाये हैं! छाता लाये होते तो पता चलता कि श्रद्धा है।

तुम मंदिर तो चले जाते हो – छाता ले जाते हो? मस्जिद तो चले जाते हो –

छाता ले जाते हो ? तुम्हें पहले से पता है कि कहीं कुछ होना है ! लेकिन कर लो, हर्ज भी क्या है, शायद हो ही जाये !

मुल्ला नसरुद्दीन के साथ मैं एक मकान में ठहरा हुआ था। किसी ने बता दिया उसको कि इस मकान में भूत-प्रेत का वास है। तो वह आया भागा हुआ, उसने जल्दी से सामान बांधा। उसने कहा, 'आप रुकना हो रुको, मैं चला ! मैं होटल ठहर जाऊंगा, धर्मशाला, कहीं भी, स्टेशन पे सो जाऊंगा।'

मैंने कहा, 'मामला क्या है ?' उसने कहा किसी ने कहा कि इस मकान में भूत-प्रेत का वास है। लेकिन मैंने कहा, 'नसरुद्दीन ! तुम तो सदा से कहते रहे कि तुम भूत-प्रेत में भरोसा नही करते !' उसने कहा कि निश्चित, मैं भूत-प्रेत में कभी भरोसा नही करता। तो फिर मैंने कहा, फिर क्यों डरे जा रहे हो ? उसने कहा, 'पर क्या पता, मेरा भरोसा गलत हो ! मैं गलत भी तो हो सकता हूं ! झंझट कौन ले ! रात हम स्टेशन पे सो लेंगे।'

एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक जर्मनी में – अभी-अभी उसकी मृत्यु हुई – वह अपनी टेबल के पीछे घोड़े के पैर में लगाए जाने वाला नाल लटकाये हुए था। जर्मनी में ऐसा खयाल है कि अगर घोड़े के पैर का नाल लटका दो तो परमात्मा से जो भी आशीर्वाद बरसते है, वे नाल मे अटक जाते है, तुम उनके मालिक हो जाते हो। कोई चीज रोकने को चाहिए न ! तो नाल जो है, प्याली का काम करता है। एक अमरीकन उस वैज्ञानिक को मिलने गया था। वह बड़ा हैरान हुआ। उसने कहा कि तुम जैसा महावैज्ञानिक, नोबेलप्राइज, पुरस्कार-विजेता और तुम यह घोड़े का नाल लगाये हुए हो ! तुम्हें शर्म नही आती ? यह तो मैं भरोसा ही नही कर सकता कि तुम जैसा बुद्धिमान आदमी और ऐसे अंध-विश्वास में भरोसा करता होगा !

उसने कहा, यह तो साफ ही है कि मै और अंध-विश्वास मे भरोसा ! कभी नही। मेरा कोई भरोसा नही है। मै यह नही मानता कि इस नाल से कुछ होने वाला है।

'फिर क्यो लटकाये हो ?'

उसने कहा कि लेकिन जिसने मुझे यह दिया है, उसने कहा कि चाहे तुम भरोसा करो या न करो, फायदा तो होता ही है। उसने कहा कि भरोसे-न-भरोसे का सवाल ही नहीं है।

आदमी बड़ा बेईमान है ! प्रार्थना भी कर लेता है, भीतर-भीतर जानता भी रहता है कि कहीं कुछ होना है ! यह स्वाभाविक है; क्योंकि जिसकी तुम प्रार्थना कर रहे हो, उससे परिचय ही नही है; प्रेम की बातें कर रहे हो, मुलाकात हुई ही नही। किसी अजानी स्त्री से कैसे प्रेम करोगे ? अपरिचित पुरुष को कैसे प्रेम करोगे ? जिसका नाम नही सुना, गांव का पता नहीं, जिसकी कभी छवि नहीं देखी,

जिसका कभी कोई पत्र भी नहीं मिला, जिसका तुम्हें पता ही नहीं है कि जो है भी या नहीं – उसे तुम प्रेम कैसे करोगे ?

तो महावीर प्रार्थना की बात नहीं करते। वे कहते हैं, कोई ऐसे रास्ते मत खोजो। जीवन सीधा-साफ है। और सफाई यह है कि जिंदगी में दुख है। इस दुख से ही जूझना है, भागना नहीं, पलायन नहीं। इस दुख की चुनौती स्वीकार करनी है।

'राग और द्वेष के बीज मूल कारण हैं। कर्म मोह से उत्पन्न होता है। वह जन्म-मरण का मूल है। और जन्म-मरण को दुख का मूल कहा गया है।'

एक-एक शब्द को समझने की कोशिश करें। यह पहला सूत्र : 'राग और द्वेष कर्म के बीज हैं। कर्म मोह से उत्पन्न होता है। और मोह जन्म-मरण का मूल है। और जन्म-मरण को दुख का मूल कहा गया है।'

यह निदान है। यह चिकित्सक की भाषा है। यहां कोशिश चल रही है कि मूल कारण को पकड़ लें। राग और द्वेष : कोई मेरा है, कोई मेरा नहीं है! राग और द्वेष : चाहता हूं कोई बचे, और चाहता हूं कोई नष्ट हो जाये; कहता हूं यह अच्छा है, और कहता हूं यह बुरा है, चुनाव – जो अच्छा है वह हो, जो बुरा है वह न हो।

महावीर कहते हैं, जब तक चुनाव है, जब तक तुम कहते हो, यह होना चाहिए और वह नहीं होना चाहिए; स्वास्थ्य होना चाहिए, बीमारी नहीं होनी चाहिए; जवानी मिलनी चाहिए, बुढ़ापा नहीं मिलना चाहिए; मित्र घर आये, शत्रु नष्ट हो जाये...। इसलिए तो महावीर वेदों को धर्म न कह सके; क्योंकि वेद की प्रार्थनाओं में भी राग-द्वेष भरा हुआ मालूम पड़ता है। ऐसी प्रार्थनाएं हैं वेद में कि कोई प्रार्थना करता है इन्द्र से कि हे इन्द्र! मेरे दुश्मनों को नष्ट कर दे! कोई प्रार्थना करता है वेद में कि हे भगवान! मेरी गउओं के थनों में दूध बढ़ जाये और दुश्मनों की गउओं के थनों से दूध सूख जाये! भोले-भाले किसानों की प्रार्थनायें मालूम पड़ती हैं, धर्म कुछ नहीं मालूम पड़ता। यही तो हमारी आकांक्षायें हैं कि मुझे मिल जाये, दूसरे को न मिले; मेरा सुख – दूसरे का दुख भी हो तो उस कीमत पर भी!

महावीर कहते हैं, राग और द्वेष कर्म के बीज हैं। और जहां तुमने चुना, कर्म शुरू हुआ। तुमने कहा, यह मिलना चाहिए, कि तुम उसे पाने की यात्रा पर निकले। तुमने कहा कि यह नहीं होना चाहिए, कि तुम उसे मिटाने के लिए चले। तुम्हारे मन में यह विचार भी उठा कि दुश्मन मर जाये तो, महावीर कहते हैं, हिंसा हो गयी, कर्म शुरू हो गया।

विचार कर्म का पहला चरण है। फिर धीरे-धीरे विचार घना होगा, सघन होगा, कृत्य बनेगा, और आज जो तुम्हारे मन में सिर्फ एक भाव की तरह आया था, वह कल-परसों घटना बन जाएगा।

दोस्तोवस्की का बड़ा प्रसिद्ध उपन्यास है : क्राइम एंड पनिशमेंट, अपराध और

दंड। उसमें रासकलोनिकोव नाम का एक पात्र है। वह एक युवक है विश्वविद्यालय का। और उसके सामने ही एक बूढ़ी महिला रहती है — बड़ी धनपति और महा कंजूस! और उसका कुल धंधा गरीबों को चूसना है। ब्याज का काम करती है, और जितना ब्याज ले सकती है उतना लेती है। जो एक बार उसके जाल में फंस जाता है, वह फिर कभी निकल नहीं पाता। ब्याज ही नहीं चुका पाता, मूल के वापिस का तो सवाल ही नहीं है। ब्याज ही बढ़ता चला जाता है। इतनी ज्यादा मात्रा में ब्याज लेती है कि यह जो रासकलोनिकोव है, यह बैठा-बैठा अपनी किताब पढ़ता रहता है, खिड़की से देखता रहता है उस बुढ़िया को। बुढ़िया अस्सी साल की हो गयी। मरने के करीब है। कोई उसके आगे-पीछे नहीं है, लेकिन उसका शोषण जारी है। इसके मन में ऐसे ही विचार उठता है कि यह बुढ़िया मर ही जाये तो क्या हर्ज होने वाला है! इसका न तो कोई आगा, न कोई पीछा; न इसके मरने से कोई रोने वाला है, सारा गाव खुश होगा उलटे, प्रसन्न होंगे लोग, उत्सव मनाया जायेगा। इसको भगवान उठा क्यों नही लेता! और यह किसलिए जी रही है? न इसके जीवन में कोई सुख है, कमर झुक गयी है, आखो से दिखाई नही पड़ता, लकड़ी टेक के चलती है। इसे उठा ही ले भगवान!

अब इसमे कुछ बुरा नही हुआ है. लेकिन यह विचार का बीज उसके मन में पड़ गया, पड गया, पड गया। यह बार-बार दोहरने लगा। जब भी बुढ़िया को देखे, उसे यह भाव कि यह उठ ही जाये ..। धीरे-धीरे पहले तो सोचता था, परमात्मा उठा ले, फिर सोचने लगा कि यह गांव भी कैसा है, कोई इसको मार ही क्यों नहीं डालता? सारा गाव चूसे जा रही है! फिर धीरे-धीरे उसे यह भी खयाल उठने लगा कि मैं यहां बैठा-बैठा क्या कर रहा हूं! एक झटके में यह खत्म हो जायेगी। तब वह बडा चौंका भी, कि यह भी कैसा मेरा विचार उठता है! लेकिन ये विचार डोलते रहे, ये तरंगें घूमती रहीं, ये भाव उसके मन में सरकते रहे, सरकते रहे, सघनीभूत होते गये। परीक्षा उसकी करीब आती है और उसे फीस जमा करनी है और पैसे नही है, तो वह अपनी घड़ी बुढ़िया के पास रेहन रखने जाता है। सोचा भी नहीं है कुछ उसने, कोई हत्या का आयोजन भी नही किया है — बस वह घड़ी रेहन रखने गया है। साझ का वक्त है, धुधला होता जा रहा है, धुधलका उतर रहा है; अभी लोगों के दीये भी नहीं जले। वह बुढ़िया के हाथ में घड़ी देता है, बुढ़िया उसे खिड़की के पास ले जा के रोशनी मे देखने की कोशिश करती है, कितने दाम की होगी। वह पीछे खड़ा है। अचानक वह पाता है कि जैसे आविष्ठ हो गया। एक झटके में वह कूदा और उसने बुढ़िया की गर्दन पकड़ के दबा दी। वह तो मरने के करीब थी ही। उसने चीख-पुकार भी न की और मर गई। वह धड़ाम से नीचे गिर पड़ी। तब इसे होश आया कि यह मैने क्या कर दिया! तब यह घबड़ाया। तब यह भागा। लेकिन किसी को पता भी नहीं चला है। और कोई यह सोच भी नहीं सकता

कि यह युवक जो चुपचाप अपनी किताबों में उलझा रहता है, इसकी हत्या करेगा ।

पुलिस खोज-बीन करती है, मगर कोई पता नहीं चलता । किसी ने देखा नहीं, कोई गवाह नहीं। लेकिन अब इसके मन के भीतर एक भय समा गया है कि यह मैंने क्या किया, यह मैने क्या किया! अब वह दिन-रात न सो सकता है, न कुछ और कर सकता है। वह खिड़कियां बद किये बैठा रहता है। वह सोचता है : अब पुलिस आई; अब यह जूते की आवाज आने लगी; अब यह गाडी आ रही है, पुलिस की ही होगी! कोई दरवाजे पे दस्तक देता है, वह घबड़ा जाता है, पसीने-पसीने हो जाता है। अब एक दूसरा विचार उसको पकड़ रहा है कि मैं पकडा जाऊंगा। जैसे पहला विचार एक दिन सघनीभूत हो कर कृत्य बन गया, बिना सोचे हत्या हो गई, ऐसा ही अब दूसरा विचार घनीभूत होता चला जाता है। अब वह पत्तों से भी चौंकने लगता है, कोई पत्ता खड़कता है और वह घबडा जाता है। आसपास के लोग भी चिन्तित हो गये है कि यह इतना घबड़ाया-घबड़ाया क्यों है, रास्ते पे चलता है तो बच-बच के चलता है, देख के चलता है : कौन आ रहा है, कौन जा रहा है! पुलिस दिखाई पडती है, गली में निकल जाता है, भाग खड़ा होता है। आखिर सारे गांव में खबर हो जाती है कि मामला क्या है! लोग उससे पूछने लगते है कि मामला क्या है। वह इनकार करता है कि 'मामला क्या है, कोई मामला नही है। तुमने पूछा क्यो? तुम हो कौन पूछने वाले? तुमने सदेह कैसे किया?'

लोग बड़े हैरान होते हैं कि जरूर कोई बात है। अब घनी होने लगती है बात। आखिर वह इतनी पीड़ा में पड जाता है कि सो भी नही सकता; रात-दिन एक ही सपना कि पुलिस पकड लेगी! एक दिन वह पुलिस थाने पहुंच जाता है। वह जा के वहा कहता है : पकड ही लो, यह बकवास बद करो! रात-दिन, सुबह शाम न मै सो सकता सोचता, न मै भोजन कर सकता। हा, मैने ही हत्या की है। पुलिस इंस्पेक्टर भला आदमी है। वह कहता है, 'तू पागल हो गया है? तू और हत्या क्यो करेगा? तुझ से बुढ़िया का लेना-देना क्या है?'

पुलिस उसे समझाती है कि तेरा दिमाग तो खराब नही हो गया है! वह कहता है, 'नहीं, दिमाग खराब नहीं हो गया है, मैने हत्या की है।' अदालत में वह यही बयान देता है कि मैंने हत्या की है, लेकिन पुलिस कोई गवाह नही जुटा पाती।

एक छोटे-से विचार की तरंग आज नही कल घटना मे रूपान्तरित हो जाती है। तुम जो सोचते हो, वही हो जाते हो। तुम जो सोचते हो, वही तुम्हारा कृत्य बन जायेगा।

इसलिए महावीर कहते है, कृत्य को बदलने के पहले विचार पर जागना होगा। अगर विचार चल पडा तो ज्यादा देर नही है कृत्य के पूरे हो जाने में।

महावीर कहते थे सोचा, कि आधा हो गया। महावीर के बड़े प्रख्यात सिद्धांतों में, बडे उलझन-भरे सिद्धातों में एक यह है कि सोचा कि आधा हो गया। इसको

तर्क-रूप से सिद्ध करना बड़ा मुश्किल है। महावीर के दामाद ने इसी बात को ले के महावीर के खिलाफ बगावत खड़ी कर दी थी और पांच सौ महावीर के मुनियों को ले के अलग भी हो गया था। क्योंकि उसने कहा, यह बात तो गलत है; महावीर कहते हैं, सोचा और आधा हो गया, यह तो बात गलत है। क्योंकि मैं सोचता हूं कि यह मकान गिर जाये, आधा तो नहीं गिरता। सोचना सोचना है; होना होना है। सोचने से कैसे आधा हो जायेगा? हर आदमी सोचता है, मैं धनी हो जाऊं, हो तो नही पाता! आधा भी नही हो पाता!

एक मालिक ने अपने नौकर को समझाया : देखो, यदि किसी काम की योजना ठीक तरह से बन जाये तो समझना चाहिए कि आधा काम हो गया। तत्पश्चात नौकर को कमरो की सफाई का आदेश दे कर वे कही चले गये। दो घंटे बाद जब वापिस आये तो उन्होंने पूछा, 'कहो, काम हो गया?'

'जी, आधा हो गया,' नौकर ने तपाक से कहा।

'अच्छा, कौन-कौन से कमरे साफ कर दिये?' मालिक ने पूछा।

'जी, सफाई तो अभी शुरू नही की परन्तु योजना बना ली है कि किस कमरे की किस क्रम से सफाई करनी है,' नौकर ने उत्तर दिया।

महावीर के विरोध में जो लोग खड़े हो गये थे, उनकी बात तर्कयुक्त मालूम पड़ती है, क्योंकि सोच लेने से तो नही हो जायेगा कुछ। लेकिन महावीर बड़ी गहरी बात कह रहे हैं। वे यह कह रहे हैं, जब पहली तरंग उठ गई, जब बीज भूमि में पड़ गया तो अभी किसी को भी दिखाई नहीं पड़ता कि वृक्ष हो गया। लेकिन बीज भूमि में पड़ गया—आधी बात हो गई, असली बात हो गई। अब तो समय की ही बात है। अब तो थोड़े समय की ही बात है और थोड़े ऋतु की बात है, वर्षा के बादल आयेंगे, वर्षा होगी, बीज फूटेगा, अंकुर बनेगा। अब यह सब समय की बात है, लेकिन बीज जमीन में पड़ गया—आधी बात हो गई। असली बात तो हो गई। क्योंकि बिना बीज के पड़े वृक्ष कभी पैदा नही हो सकता। और बीज पड़ गया है, तो वृक्ष भी पैदा हो जायेगा।

महावीर कहते हैं, अगर वृक्ष को पैदा होने से रोकना हो तो बीज को ही भूमि में पड़ने से रोक लेना। इसलिए वे कहते हैं, राग और द्वेष कर्म के बीज, मूल कारण हैं।

लोग कर्म से बचना चाहते है। लोग कहते हैं, कर्मों से कैसे छुटकारा होगा? लोग कहते है, कर्मजाल से कैसे मुक्त हों? महावीर कहते हैं, कर्मजाल से मुक्त होना है तो बीज को पकड़ो; शुरू से ही शुरू करो; प्रारभ से ही प्रारंभ करो। मध्य से कुछ भी नहीं हो सकता।

राग का अर्थ है : किसी चीज से लगाव। द्वेष का अर्थ है : किसी चीज से विरोध। राग का अर्थ है : मैत्री बनाना। द्वेष का अर्थ है : शत्रुता बनानी। तो न

तुम्हारा कोई मित्र हो न कोई शत्रु । न तुम कुछ चाहो और न तुम किसी चीज से विकर्षित होओ। जो हो रहा है, तुम उसे चुपचाप बिना किसी चुनाव के स्वीकार करते चले जाओ। यह महावीर के ध्यान का सूत्र है। जो हो रहा है – सुबह आये सुबह, सांझ आये सांझ, सुख आये सुख, दुख आये दुख, न तो तुम सुख को कहो कि और-और आना, न तुम दुख को कहो कि अब दुबारा मत आना, न तो तुम सुख के गले में फूलमालायें पहनाओ और न तुम दुख का अपमान करो–जो आ जाये द्वार पर, द्वार खुला हो ! दुख आये दुख को बसा लेना, सुख आये सुख को बसा लेना; जाता हो जाने देना, क्षण भर को भी रोकना मत ! न तो किसी को धकाना, न किसी को बुलाना। जिसको कृष्णमूर्ति च्वायसलेस अवेयरनेस कहते हैं, महावीर उसी को निर्विकल्प ध्यान कहते है।

तुम चुनाव मत करना, क्योंकि चुनाव से ही जकड़ शुरू होती है । चुनाव से ही तुम बध जाते हो । और एक दफा चुनाव की तरंग उठ गई कि जल्दी ही समय पा कर कृत्य भी हो जायेगा ।

तो कहां जागना है ? जागना है जहा से बीज शुरू होता है ।

'कर्म मोह से उत्पन्न होता है ।' मोह का अर्थ होता है: तन्द्रा । मोह का अर्थ होता है मूर्च्छा, प्रमाद । हम सोए-सोए लोग है; जैसे हमने नशा किया हुआ है । नशे हमारे अलग-अलग है, शराबें हमारी अलग-अलग है, लेकिन हम सबने नशा किया हुआ है। कोई आदमी धन के नशे में है, सबको दिखाई पड़ता है कि यह आदमी पागल है, किसलिए धन इकट्ठा कर रहा है ! लेकिन जो नशे में है, उसे भर दिखाई नही पड़ता । कोई आदमी पद के नशे में है; सबको दिखाई पड़ता है कि क्यो पागल हुए जा रहे हो! बड़ी-से-बड़ी कुर्सी पर बैठ के भी क्या हो जायेगा? जो बैठ गये हैं, जरा उनको तो देखो कि क्या हुआ ! बहुत धन के जिन्होंने अम्बार लगा लिये है, उन्होने क्या पाया ?

एड्रू कारनेगी, अमेरीका का करोड़पति, मर रहा था, तो उसने अपने सेक्रेटरी से पूछा कि एक बात पूछनी है। कई बार सोची, फिर मैं संकोच कर के रह गया; अब तो मरने का दिन भी आ गया, अब पूछ ही लूं तुझसे । तू मेरे पास कोई तीस साल से काम करता है। करीब-करीब जिंदगी भर का साथ है। एक बात ईमान से बता दे, अगर परमात्मा ने तुझ से पूछा होता पैदा होने के पहले कि तू एंड्रू कारनेगी बनना चाहता है या एंडरू कारनेगी का सेक्रेटरी बनना चाहता है, तो तूने क्या मांगा होता ?

उसने कहा, 'मै सेक्रेटरी ही बनना मांगता ।' एंड्रू कारनेगी उठ के बैठ गया । उसने कहा, 'तेरा मतलब ?' उसने कहा कि मै आपको तीस साल से देख रहा हूं, आपने कुछ भी नहीं पाया । दौड़े बहुत, पहुंचे कहीं भी नहीं । इकट्ठा बहुत कर लिया, लेकिन जितनी चिंता और संताप आपको है, उसे देख-देख के मैं रोज भग-

बात को जब रात को प्रार्थना करता हूं तो मैं कहता हूं, हे भगवान ! तेरी बड़ी कृपा ! एंड्रू कारनेगी तूने मुझे न बनाया । अच्छा किया । फंसा देता तो मुश्किल हो जाती ।

एंड्रू कारनेगी ने अपने सेक्रेटरी को कहा कि मैं तो मर रहा हूं, लेकिन इस बात को तू सारी दुनिया में प्रचारित कर देना । मैं तुझ से राजी हूं । मैं व्यर्थ ही दौड़ा-धूपा ।

इतना धन ! दस अरब नगद रुपये एंड्रू कारनेगी छोड़ के मरा और अरबों का और फैलाव ! कहते हैं, उससे बड़ा धनी आदमी सिवाय निजाम हैदराबाद को छोड़ के और कोई न था । पर पाया क्या ? न तो सो सकता था ठीक से । अपने बच्चों को भी ठीक से मिल नहीं सकता था । पत्नी भी अपनी अपरिचित जैसी हो गई थी; क्योंकि काम से फुरसत कहां थी ! कहते हैं कि चपरासी भी दफ्तर में नौ बजे पहुचता, एंड्रू कारनेगी आठ बजे पहुंच जाता । चपरासी नौ बजे आता, क्लर्क दस बजे आते, मैनेजर ग्यारह बजे आते, डायरैक्टरस एक बजे आते; डायरैक्टर तीन बजे गये, मैनेजर चार बजे गया, क्लर्क भी पाच बजे गये, चपरासी भी साढ़े पांच बजे चला गया – एंड्रू कारनेगी सुबह आठ से ले के नौ और दस और ग्यारह बजे रात तक दफ्तर में बैठा है । यह तो चपरासी से भी गई-बीती हालत हो गई । फिर रात सो न सके क्योंकि चिंताओं का भार, सारी दुनिया में फैला हुआ धन का साम्राज्य ! और मरते वक्त भी जब किसी ने उससे पूछा कि 'तुम तृप्त मर रहे हो,' उसने कहा, तृप्ति कैसी ! केवल दस अरब रुपये छोड़ के मर रहा हूं, सौ अरब की आकांक्षा थी । पूरा न हो पाया, यात्रा अधूरी रह गई ।

पर जो धन की दौड में है उसे नहीं दिखाई पड़ता; उसे एक नशा है । अगर तुम इतना ही करो कि तुम अपने चारों तरफ दौड़ते हुए लोगों को गौर से देख लो, तो तुम्हारी दौड़ धीमी हो जाये । जो पहुंच गये हैं, जरा उनको तुम देख लो । जिन्होंने पा लिया है, जरा उनको तुम देख लो, तो तुम्हारे सब सपने गिर जायें । उनकी ऊपरी और झूठी शक्लों को मत देखना; उनकी भीतरी, उनकी आंतरिक दशा को देखना । राष्ट्रपति है कोई, कोई प्रधानमंत्री है–उनकी भीतरी दशा को देखना, अखबारों में छपती तस्वीर को मत देखना । वे तस्वीरें सब झूठी हैं । वे तस्वीरें आयोजित है ।

स्टेलिन और हिटलर कोई भी तस्वीर को ऐसे ही न छपने देते थे । स्टेलिन और हिटलर की तस्वीरें पहले एक खूफिया विभाग से गुजरती थीं, जहां उनकी जाच की जाती । वही तस्वीर छप पाती थी अखबार में, जो प्रसन्नता प्रगट करती हो, आनंद प्रगट करती हो, खुशी प्रगट करती हो । स्टेलिन के चेहरे पर चेचक के दाग थे; किसी फोटो में कभी नहीं छपे । वे चेचक के दाग कभी स्वीकार नहीं किये गये कि छपें ।

राजनेता बीमार पड़ जाते हैं, महीनों तक खबर नहीं दी जाती। राजनेता और बीमार कही पड़ता है! उससे प्रतिमा खंडित होती है। हाथ-पैर डगमगाने लगते हैं, तो भी इसकी खबर नही दी जाती।

तस्वीर बनाई हुई है। भीतर से देखो उन्हें, तो बड़े चकित हो जाओगे। उनसे ज्यादा नर्क में कोई भी जीता नही। लेकिन कठिनाई उनकी तुम समझ सकते हो। इतनी मुश्किल से नर्क पाया है, अब यह स्वीकार भी कैसे करें कि यह नर्क है! इतनी जद्दोजहद से पाया है, इतने संघर्ष से पाया है; अब यह कैसे स्वीकार करें कि यह नर्क है!

एक गांव में एक लफंगे आदमी की लोगों ने नाक काट दी। उससे बहुत परेशान थे। हर किसी से छेड़-खान ... । गाव की बहू-बेटियों का जीना दूभर हो गया था। नाक कट गई तो वह बड़ा परेशान हुआ, अब क्या करना! वह साधु हो गया और दूसरे गांव चला गया। दूसरे गाव में एक वृक्ष के नीचे बैठ गया, धूनी रमा के। गाव के लोग...कुतूहल जगा, कौन है भाई! और कुछ विचित्र भी है, नाक भी नही है, और बड़ी आंखे बंद किये हुए, ध्यानमग्न बैठा है! लोग आये। गांव के लोग इकट्ठे हो गये। किसी ने पूछा, 'महाराज! आप यहां क्या कर रहे हैं?' उसने कहा कि परमात्मा का स्वाद ले रहे हैं, भोग कर रहे हैं प्रभु का। अहा! कैसा आनंद बरस रहा है!

लोगो ने भी आकाश की तरफ देखा। कहा कि हमें दिखाई नही पड़ता। उसने कहा, 'तुम्हें कैसे दिखाई पड़ेगा ... ! उसके लिए नाक कटवानी जरूरी है। और यह तो हिम्मतवरो का काम है। यह तो कभी कोई ... । तो धर्म तो खड्ग की धार है। खानानिधार!'

एकाध हिम्मतवर खडा हो गया, क्योंकि यह तो चुनौती हो गई। उसने कहा, 'क्या समझा है तुमने? कोई नामर्दों का गांव है! मै तैयार हूं।' उसने कहा, 'तैयार हो तो बस ठीक।' वह उसे पास दूसरे खेत में ले गया, झाड की छाया के किनारे जा के उसने उसकी नाक काट दी। चीख पड़ा वह आदमी। उसने कहा कि दिखाई तो कुछ पड़ता नहीं। उसने कहा, 'पागल! किसी से कहना मत! क्या हमको दिखाई पड़ता है? मगर जब कट गई तो अपनी इज्जत तो बचानी है, अब तुम्हारी भी कट गई। अब अगर तुमने लोगो से जा के कहा कि कुछ दिखाई नही पड़ता तो लोग हसेंगे, तुम बुद्धू समझे जाओगे। तुम्हारी मर्जी! अब तो तुम हमारे साथ ही हो जाओ। अब तो तुम जा के, नाचते हुए जाओ और कहना, अहा! जैसे हजारो सूरज एक साथ निकले हो, करोड़ो कमल खिले हों! हे प्रभु! कैसा आनद दिखला रहा है, कभी भी दिखाई न पड़ा था! अब तो तुम यही कहो।'

'वैसे तुम्हारी मर्जी', उसने कहा, 'कोई तुम्हें मै कहता नहीं कि यही कहो। तुम्हें सचाई कहनी हो सचाई कह दो।'

उसने कहा, 'अब क्या खाक सचाई कहूंगे ! अब नाक तो कट ही गई है, अब और कटवानी है क्या, सचाई कह के ?'

उसने जा के गांव में शोरगुल मचा दिया। वह नाचता हुआ गया। गांव में कई लोग तैयार हो गये नाक कटवाने को। कहते हैं, धीरे-धीरे उस पूरे गांव की नाक कट गई। खबर राजा तक पहुंची। राजा भी आया देखने, गांव में लोग नाच रहे हैं, चीख रहे हैं, बड़े प्रसन्न है। राजा ने कहा, 'हद हो गई ! ईश्वर को पाने की इतनी सरल तरकीब ! न सुनी, न शास्त्रों में पढ़ी।'

मगर जब इतने लोगों को हो गया है तो राजा तक तैयार हो गया। उसके वजीर ने कहा, 'ठहरो महाराज ! इतनी जल्दी मत करो, क्योंकि इस आदमी को मैं ... इसकी शक्ल मुझे पहचानी मालूम पड़ती है। यह तो दूसरे गांव का आदमी है और वहां के लोगों ने इसकी नाक काटी थी। तुम जरा रुको। नाक मत कटवा लेना। तुम्हारे कटवाने पे तो बड़ा उपद्रव हो जायेगा। फिर तो यह पूरा राज्य कटवा लेगा।'

जिसकी कट जाती है, वह फिर उसकी बचाने की भी चेष्टा करता है। मैंने अब तक कोई धनपति नही देखा जिसकी नाक कट न गई हो; न कोई राजनेता देखा जिसकी नाक कट न गई हो। लेकिन अब किससे कहें ! अब यह दुख अपना किससे कहें, किससे रोयें ! अब जो हो गया, हो गया। और अपनी इज्जत यही है इसी में है कि कहे चले जाओ कि बड़े आनंदित हैं, बड़े प्रसन्न हैं।

तुम, जिन्होंने पा लिया है, उनकी तरफ जरा गौर से देखना। जिन्होंने बड़े महल बना लिये है, उनकी तरफ जरा गौर से देखना। जिनके पास तिजोड़ियां भर गई हैं, उनको जरा गौर से देखना। कुछ मिला है ? उनको गौर से देख के तुम्हारा राग-द्वेष क्षीण होगा। और तुमने भी राग-द्वेष करके बहुत देख लिया है – थोड़ा-ज्यादा, मात्रा में भेद होगा – लेकिन तुमने पाया क्या ?

राग से भी दुख मिलता है, द्वेष से भी दुख मिलता है। जो अपने हैं वे भी दुख ही दे जाते है; जो पराये है वे तो दे ही जाते है। दुश्मन तो दुख देता ही है, मित्रों से तुम्हें कुछ सुख मिला ?

'राग और द्वेष कर्म के बीज हैं। कर्म मोह से उत्पन्न होता है। वह जन्म-मरण का मूल है।'

और फिर जब इस जीवन में तुम अधूरे मरते हो, अतृप्त, तो आकांक्षा रहती है मरते वक्त और नया जीवन पाने की। क्योंकि कुछ पूरा न हुआ; खाली के खाली, रिक्त के रिक्त आ गये; हाथ भिक्षा के पात्र ही बने रहे, कभी कुछ भरा नहीं। तो वह जो याचना है, वह जो अधूरी वासना है, वह जो मांगने की और होने की अतृप्त कामना है, वह फिर नया जन्म देगी। तुम जन्मते हो, क्योंकि तुम्हारा जीवन अतृप्त है। और तुमने यह नहीं देखा कि जीवन का अतृप्त होना

स्वभाव है। बहुत बार हम जन्मते है – कोई हमें जन्माता नहीं।

महावीर परम वैज्ञानिक है। वे यह नही कहते कि परमात्मा जन्माता है, कि वह लीला कर रहा है। क्योंकि यह 'लीला' जरा बेहूदी मालूम पड़ती है। यह लीला तो बताती है कि परमात्मा कोई मेसोचिस्ट होगा, कोई परपीड़नकारी। और पाप की परिभाषा यही है : पापं परपीड़नम् !

पाप की परिभाषा यही है कि दूसरे को सताना पाप है। तो परमात्मा से बड़ा तो पापी कोई नही हो सकता, क्योंकि इतने लोगों को पैदा कर रहा है, और सता रहा है। तो महावीर कहते है, ऐसे परमात्मा की बात ही मत उठाओ; ऐसा कोई परमात्मा नही है। परमात्मा हो तो यह पीड़ा हो नही सकती, क्योंकि परमात्मा परपीड़न में थोड़ी रस लेगा!

दूसरे को दुख देने में क्या लीला हो सकती है? लोग सड़ रहे हैं, गल रहे हैं, रो रहे है, संताप से भरे हैं – और परमात्मा मजा ले रहा है! नहीं, यह बात सच नही हो सकती। यह मजा जरा रुग्ण है, परवर्टिड। यह मजा विक्षिप्त का है। पागल होगा परमात्मा, अगर यह उसकी लीला है। बच्चा पैदा नहीं हुआ और मर जाता है, मां रो रही है, चीख रही है, बेटे रो रहे हैं, बेटियां रो रही है, पति रो रहा है, पत्नी रो रही है, सब तरफ रोना मचा है, हाहाकार है, युद्ध हैं, लाखों लोग मर रहे है, गल रहे हैं, सड़ रहे है, सब तरफ संघर्ष है, सब तरफ खून-पात है, सब तरफ छीना-झपटी है – और फिर भी पाता कोई कुछ नही, हाथ खाली के खाली! यह लीला कैसी है? यह तो दुख-स्वप्न है।

महावीर कहते है, नहो, परमात्मा को बीच में मत लाओ। चीजें सीधी देखो। परमात्मा को बीच में लाने से अड़चन हो जाती है। परमात्मा को बीच में लाने से ऐसा ही हो जाता है जैसे प्रिज्म में से सूरज की किरण निकले, सात टुकड़ों में टूट जाती है, खंड-खंड हो जाती है। हटाओ प्रिज्म को बीच से; सूरज की किरण को सीधा ही देखें; उसके स्वभाव को सीधा ही पहचानें।

महावीर कहते हैं, तुम ही अपने जीवन के कारण हो। महावीर तुम्हारा उत्तर-दायित्व तुम्हे परिपूर्णता से देते हैं। महावीर कहते हैं, कोई और नही है तुम्हारे ऊपर जो तुम्हे भटका रहा है; तुमने भटकना चाहा है, इसलिए भटक रहे हो। उत्तरदायित्व गहन है, गभीर है; लेकिन साथ ही इसी उत्तरदायित्व में छिपी हुई सूरज की किरण भी है, सुबह भी है। इसी उत्तरदायित्व में स्वतंत्रता का बीज भी है। क्योंकि अगर मैं ही अपने दुखो का कारण हूं तो बात खत्म हो गई। तो जिस दिन मै निर्णय करूंगा, उसी दिन दुख समाप्त हो जायेंगे। जिस दिन मैं पैदा न करूगा और, उसी दिन विलुप्त हो जायेंगे। अगर मैंने ही इस जीवन-जन्म के फैलाव को स्वीकार किया है, अपने ही हाथो से निर्मित किया है, तो जिस दिन मेरा सहारा छूट जायेगा उसी दिन यह धारा खंडित हो जायेगी।

' मोह जन्म-मरण का मूल है, और जन्म-मरण को दुख का मल कहा है । '

सब कुछ अदीब ! इश्क ने जी से भुला दिया
जाना कहां है और आये थे कहां से हम !

— मोह की तंद्रा में सब भूल जाता है : कहां से आये, कहां जा रहे हैं, कौन हैं !

हैं कुछ खराबियां मेरी तामीर में जरूर
सौ मर्तबा बना के मिटाया गया हूं मैं ।

भक्ति-मार्ग के लोग कहेंगे, परमात्मा तुम्हें बनाता है, मिटाता है, क्योंकि कुछ खराबियां हैं तुम्हारी तामीर में । जैसे कोई चित्रकार चित्र को बनाता है, फिर-फिर बनाता है; कोई मूर्तिकार मूर्ति बनाता है, फिर-फिर बनाता है, क्योंकि मूर्ति बन नहीं पाती, पूरी नहीं बन पाती ।

हैं कुछ खराबियां मेरी तामीर में जरूर !

— मेरे होने में ही कुछ खराबी है ।

सौ मर्तबा बना के मिटाया गया हूं मैं ।

— और इसीलिए तो इतने जन्म, इतनी मृत्युएं, इतनी बार बनना, इतनी बार मिटना ... ।

लेकिन महावीर कहते है, कोई बना और मिटा नहीं रहा है । क्योंकि अगर परमात्मा तुम्हें बना रहा है और फिर भी तुम में खराबी रह जाती है, तो खराबी परमात्मा में है, तुम में नहीं । एक मूर्तिकार मूर्ति बनाता है और मूर्ति नहीं बन पाती, तो खराबी मूर्ति मे थोडी है, मूर्तिकार में है । फिर बनाता है, फिर भी कमी रह जाती है, तो फिर भी खराबी मूर्तिकार में है । अगर परमात्मा है तो सारी जुम्मेवारी परमात्मा की है और फिर मनुष्य परतंत्र है । मनुष्य की स्वतंत्रता की परिपूर्ण घोषणा महावीर ने की है । इससे बड़ी घोषणा मनुष्य की स्वतंत्रता की न पहले कभी हुई, न बाद में कभी हुई । कहा कि मनुष्य सब के ऊपर है । कहा, मनुष्य से ऊपर कोई भी नहीं । बड़ी स्वतंत्रता, बड़ा दायित्व ! एक-एक कदम सम्हाल के रखने की बात है फिर ! क्योंकि अगर परमात्मा है तो हम चले जा सकते हैं, उसकी प्रार्थना करते हुए, वह हाथ पकड़े रहेगा; उसकी जुम्मेवारी है !

महावीर ने मनुष्य को एक अर्थ में अनाथ कर दिया, क्योंकि कोई नाथ न रहा ऊपर । जैसे किसी बच्चे के मां-बाप छीन लिए । लेकिन तुमने देखा ! जैसे ही तुम्हारे ऊपर से कल्पना के जाल हट जायें, कोई नहीं ऊपर, तुम अकेले हो — वैसे ही तुम सम्हल के चलने लगते हो । तुमने कभी बच्चे को मां के साथ चलते और अकेले चलते देखा ?

मैं एक घर में मेहमान था । एक छोटा बच्चा चल रहा था, वह गिर पड़ा । उसने चारों तरफ उठ के देखा । मां उसकी पास न थी, वह बाजार गई थी । उसने मेरी तरफ भी देखा, फिर सोचा कि पता नहीं ... । मैंने उसकी तरफ देखा ही

नही; जैसे वह गिरा, फिर मैंने कहा, अब देखना ठीक नहीं। मै दूसरी तरफ ही, देखता रहा। वह उठ आया। वह अपने खेल में फिर लग गया। आधा घंटे बाद जब उसकी मां आई, दरवाजे पे देख के एकदम चीख के रोने लगा। मैंने उससे पूछा कि देख, बेईमानी कर रहा है तू! आधा घटा पहले गिरा था। उसने कहा, उससे क्या होता है? कोई यहां था ही नहीं, तो रोने से फायदा क्या! और आप दूसरी तरफ देख रहे थे; आप देख ही नहीं रहे थे इस तरफ। फायदा क्या!

पीडा के कारण नहीं रो रहा है; मा आ गई है इसलिए रो रहा है!

महावीर ने ऊपर से सारा छत्र हटा लिया। कहा, कोई परमात्मा नहीं है। आदमी को अकेला छोड दिया। अब तो तुम्हें अपने पैर अपने ही हाथ सम्हालने है। इससे बड़े होश की संभावना पैदा हुई। इससे बड़ी जागरूकता की संभावना पैदा हुई। जैसे कि तुम कभी पहाड़ के कगार पर चलते हो, तो कितने सम्हल के चलते हो! अंधेरी रात में चलते हो अकेले, कितने सम्हल के चलते हो! कितने चौकन्ने! कितने सावधान! कितने सावचेत!

महावीर ने परमात्मा को हटा लिया ताकि तुम सावधान हो सको। कोई सहारा न होगा तो तुम सावधान होओगे ही, क्योंकि फिर सावधानी ही सहारा है। और कोई दूसरा तुम्हे जन्म नही दे रहा है; तुम ही अपने राग-द्वेष से...।

'इस संसार में जन्म, जरा और मरण के दुख से ग्रस्त जीव को कोई सुख नही है। अत. मोक्ष ही उपादेय है।'

रत्ती भर भी सुख नही है। इस सबध में महावीर अत्यत अतिवादी है। वे कहते है। रत्ती भर भी सुख नहीं है। और तुम्हें अगर कभी-कभी सुख मालूम होता है तो तुम्हारी धारणा है, तुम्हारी मान्यता है। इसलिए जल्दी ही तुम्हारी मान्यता टूट जायेगी। तुम पाओगे : सुख गया।

दुनिया में कोई गम के अलावा खुशी नही
वोह हमें नसीब कभी है, कभी नही।

– दुख इतना गहन है कि दुख भी सदा नसीब नही होता। कभी-कभी तुम ऐसी हालत में होते हो कि दुख भी नही होता – इतने खाली, इतने रिक्त! इसलिए तो लोग दुख को पकड़े रखते हैं: सुख न सही, दुख तो है, कुछ तो है! कभी-कभी ऐसी घड़िया भी आती हैं: सुख तो है ही नहीं, दुख भी नही है। तब महादुख की घड़ी आती है। तब तुम एकदम राख हो जाते हो। जीने में कुछ भी सार नहीं रह जाता –इतना भी सार नही रह जाता कि दुख है, कम से कम इससे लड़ना है, इसे मिटाना है। दुख भी नही है। एक बड़ी गहन ऊब, एक गहन बोरडम, राख-राख सब हो जाता है! हृदय में कोई धड़कन नही। श्वासो में कोई कंपन नहीं। जीवन का कोई प्रवाह नही, कोई ऊर्जा नही। उठ आते हो, एक धक्के में! उठना पड़ता है, सुबह हो गई। रात सो जाते हो, क्योकि रात हो गई। जिंदा रहते हो, क्योंकि रहना

ही पड़ेगा जब तक मौत न आये। करोगे क्या ? ऐसे धक्के में चलते चले जाते हो।

महावीर कहते है, यहां कोई भी सुख नहीं है। क्योंकि रत्ती भर भी तुम्हें आशा रहे कि थोड़ा भी है, एक प्रतिशत भी है, तो भी तुम जकड़े रहोगे। वह एक प्रतिशत भी काफी रहेगा तुम्हें रोकने को।

ऐसा समझो कि तुम कारागृह में बंद हो। अगर तुम मानते हो कि कारागृह में थोडी-सी जमीन है, जो कारागृह नहीं है, तो फिर तुम कारागृह के बाहर न जा सकोगे; कम-से-कम उसी जमीन में अटके रहोगे। कारागृह या तो पूरा कारागृह है और या फिर पूरा घर है। इससे कम में काम न चलेगा। अगर तुमने कहा कि माना, पूरा कारागृह तो कारागृह है, लेकिन यह दीवाल कारागृह नही है, इसके पास बैठ के बड़ी शांति मिलती है। मगर यह दीवाल भी कारागृह के भीतर है। तुमने कहा, 'और सब तो बुरा है, लेकिन यह पहरेदार बड़ा भला है, मुस्कुराता है कभी-कभी, कभी दो बात भी कर लेता है।' और सब तो बुरा है, लेकिन यह पहरेदार भी तो इसी कारागृह का हिस्सा है !

तो जिंदगी में कभी-कभी मुस्कुराहटें भी होंगी। खयाल रखना, ये भी कारागृह के ही हिस्से हैं। और कभी-कभी प्रसन्नतायें भी होंगी, लेकिन ये भी कारागृह के ही हिस्से है। कभी-कभी दीये जले हुए मालूम भी पडेंगे, क्योंकि अगर दीये बिलकुल न जलें तो तुम सभी अंधेरे को छोड़ के बाहर भाग जाओगे। थोड़ी आशा का दीप जलना रहना चाहिए। तुम्ही जलाये रहते हो – अपनी ही वासना का तेल डाल-डाल के, इंधन डाल-डाल कर। तुम्ही सोचते रहते हो।

तुमने कारागृह में देखा ! मैं कभी-कभी कारागृह जाया करता था – कैदियों से मिलने। एक प्रान्त के गवर्नर मेरे मित्र थे, तो उन्होंने मुझे पास दिया हुआ था, उस प्रांत के सारे कारागृहों में मैं जा सकता था। वहां मैं बड़ा चकित होता ! लोग कारागृह में अपनी कोठरी को भी सजा लेते हैं। कुछ न मिले, अखबार से फिल्म ऐक्टर और ऐक्ट्रेस की फोटो निकाल के चिपका लेते है। सोचो थोड़ा ! उसको भी घर बना लेते हैं। साफ-सुथरा रखते हैं अपनी कोठरी को। कोई अपनी रामायण ले आता है अपने साथ, कोई अपनी बाईबिल रख लेता है – मगर यह सब कारागृह का हिस्सा है।

यह पूरा कारागृह ही छोड़ने योग्य है। पूरा छोड़ने योग्य है, तो ही छोड़ने योग्य क्षमता पैदा होगी तुममें, अन्यथा नही पैदा होगी।

इसलिए महावीर कहते हैं, 'इस संसार में जन्म, जरा और मरण के दुख से ग्रस्त जीव को कोई सुख नही है। अतः मोक्ष ही उपादेय है।'

मोक्ष का अर्थ है : कारागृह से मुक्ति; राग-द्वेष के बंधन से मुक्ति; मूर्च्छा, मोह से मुक्ति।

'यदि तू घोर भवसागर के पार जाना चाहता है तो हे सुविहित! शीघ्र ही तप-संयम-रूपी नौका को ग्रहण कर।'

इस सूत्र में कुछ बातें समझने जैसी हैं।

'यदि तू भवसागर के पार जाना चाहता है...।'

इस संसार को हमने भवसागर कहा है। भवसागर का अर्थ होता है: जहां होने की तरंगें उठती रहती हैं। भव यानी होना। जहां हम मिट-मिट के होते रहते हैं। जहां लहर मिटती नहीं कि फिर उठ आती है। जहां एक वृक्ष गिरा नहीं कि हजार बीज छोड़ जाता है। जहां तुम जाने के पहले ही अपने आने का इंतजाम बना जाते हो। जहां मरते-मरते तुम जीवन के बीज बो देते हो। जहां एक असफलता मिलती है, वहां तुम दस सफलताओं के सपने देखने लगते हो। जहां एक द्वार बंद होता है, तुम दूसरा खोलने लगते हो।

भवसागर का अर्थ है: जहां होने की तरंगें उठती रहती है, उठती रहती है—अन्तहीन!

'यदि तू इस घोर भवसागर के पार जाना चाहता है'...; यदि तुझे दिखाई पड़ने लगा है कि जीवन दुख है, पीडा है, संताप है; अगर तूने इससे मुक्त होना चाहा है तो हे सुविहित! शीघ्र ही तप-संयमरूपी नौका को ग्रहण कर। शीघ्र ही...।

त जइ इच्छसि गंतुं, तीरं भवसायरसस घोरस्स।
तो तव संजमभंडं, सुविहिय गिण्हाहि तूरंतो।।

तुरंत! शीघ्र! एक क्षण भी खोये बिना! क्योंकि जितनी देर भी तू क्षण खोता है निर्णय करने में, उतनी ही देर में भवसागर नयी तरंगें उठाये जाता है। जितना तू स्थगित करता है उतनी देर खाली नहीं जाता संसार; नयी इच्छायें, नयी वासनायें, तेरे घर में घोसला बना लेती हैं, तेरे वृक्ष पर डेरा बना लेती हैं। शीघ्र ही! तत्क्षण! जिस क्षण यह समझ में आ जाये कि जीवन दुख है, उसी क्षण तप-संयमरूपी नौका को ग्रहण कर।

तप का अर्थ महावीर की भाषा में क्या है? दुख को स्वीकार कर लेना तप है। दुख को अस्वीकार करना भोगी की मनोदशा है। भोगी कहता है, दुख को मैं स्वीकार न कर सकूंगा, मुझे सुख चाहिए! तपस्वी कहता है, दुख है तो दुख को स्वीकार करूंगा, मुझे अन्यथा नहीं चाहिए, जो है, वह मुझे स्वीकार है।

इसे थोड़ा समझना, क्योंकि महावीर की परंपरा, महावीर के अनुयायी इसे बड़ा गलत समझे। महावीर के अनुयायी समझे कि जैसे दुख पैदा करना है। दुख पैदा करने की जरूरत नहीं है—दुख काफी है, काफी से ज्यादा है। होना ही दुख है, अब और दुख की थोड़ी जरूरत है कि तुम दुख का आयोजन करो कि तुम भूखे खड़े रहो, कि धूप में खड़े रहो, कि शरीर को गलाओ कि सड़ाओ, इस सब की कोई

जरूरत नहीं है। यह तो फिर तुमने एक नया राग-द्वेष बो दिया। पहले तुम सुख मांगते थे, अब तुम दुख मांगने लगे--मगर मांग जारी रही। पहले तुम कहते थे, महल चाहिए; अब अगर तुम्हें महल में ठहरना पड़े तो तुम रुक नहीं सकते महल में, तुम कहते हो, अब तो सड़क चाहिए — मगर चाहिए कुछ जरूर! पहले तुम कहते थे, सुस्वादु भोजन चाहिए; अब अगर सुस्वादु भोजन मिल जाये तो तुम लेने को तैयार नहीं हो। तुम कहते हो, अब तो कंकड़-पत्थर, मिट्टी उस में मिला ही होना चाहिए, तो ही हमें सुपाच्य होगा।

दुख को चुनना नहीं है। आये दुख को स्वीकार कर लेना तप है। आये दुख को ऐसे स्वीकार कर लेना कि दुख भी मालूम न पड़े, तप है। अगर तुमने मांगा तो माग तो जारी रही। कल तुम सुख मांगते थे, अब दुख मांगने लगे; कल तुम कहते थे धन मिले, अब तुम कहते हो कि त्याग; कल तुम कहते थे संसार, अब तुम कहते हो, नहीं, संसार नहीं; हिमालय भाग रहे हो--लेकिन कहीं जाना रहा, कोई दिशा रही!

महावीर के तप का अर्थ है: जो अपने से होता हो उसे तुम स्वीकार कर लेना। दुख तो हो ही रहा है--दुख ही हो रहा है, और कुछ भी नहीं हो रहा है। तुम स्वीकार भर कर लेना। उसी स्वीकार में तुम्हारा याचकरूप तिरोहित हो जायेगा, तुम्हारा भिखमंगापन मिट जायेगा, तुम सम्राट हो जाओगे।

जिसने दुख स्वीकार कर लिया, उसके भीतर एक महाक्रांति घटित होती है। उसकी सुख की माग तो रही नहीं; नहीं तो दुख स्वीकार न कर सकता था। और जिसने दुख स्वीकार कर लिया, उसे दुख दुख न रहा।

इसे तुम थोड़ा प्रयोग करना। सिर में दर्द हो तो तुम उसे स्वीकार करके किसी दिन देखना। बैठ जाना शांत, लेट जाना, स्वीकार कर लेना कि सिर में दर्द है, उस से भीतर कोई संघर्ष मत करना, भीतर यह भी मत कहना कि न हो। है तो है। जो है वह है। उसे स्वीकार कर लेना। उसे साक्षी-भाव से देखते रहना। तुम चकित होओगे: कभी-कभी साक्षी-भाव सधेगा, उसी क्षण में तुम पाओगे, सिरदर्द खो गया! जब साक्षी-भाव छूट गया, तुम पाओगे, फिर सिरदर्द आ गया! एक बड़ा क्रांतिकारी अनुभव होगा कि जब तुम बिलकुल स्वीकार कर लेते हो सिरदर्द को, तभी वह खो जाता है। और जैसे ही फिर इच्छा उठती है कि नहीं, यह सिरदर्द नहीं होना चाहिए, कितनी तकलीफ हो रही है--वैसे ही सिरदर्द फिर घना हो जाता है।

इसे तुम छोटे-छोटे प्रयोग करके देखो। कोई भी दुख आए — और दुख तो रोज आ रहे हैं और सभी को आ रहे हैं। यह तो भवसागर है, यहां तो दुख पैदा हो ही रहे हैं, तरंगें उठ ही रही हैं। और नयी तरंगें पैदा करने की जरूरत नहीं है, जो अपने से आ रहा है, जो तुम्हारे अतीत में किये कर्मों से आ रहा है--उसके ही तुम

साक्षी हो जाओ। तो तुमने तप-संयमरूपी नौका को ग्रहण कर लिया। और इस तप-संयमरूपी नौका में चारो तरफ भवसागर के तूफान उठेंगे और हर तूफान तुम्हें सुदृढ़ कर जायेगा, और हर तूफान तुम्हें भीतर एकजुट, इकट्ठा कर जायेगा। और हर तूफान, और हर तूफान की चुनौती तुम्हारे भीतर आत्मा को जन्म देने वाली बनेगी।

तूफां से खेलना अगर इंसान सीख ले
मौजों से आप उभरें किनारे नये-नये।

एक बार तूफान से जूझना, एक बार तूफान से खेलना, एक बार तूफान के साक्षी बन जाना – फिर लहरों में ही नये-नये किनारे उठने लगते हैं। सुख खोज के किसी ने कभी कुछ नहीं पाया; लेकिन जिसने दुख का साक्षी बनना सीख लिया, उसने महासुख पाया है।

'जिससे विराग उत्पन्न होता है, उसका आदरपूर्वक आचरण करना चाहिए। विरक्त व्यक्ति संसार-बंधन से छूट जाता है और आसक्त व्यक्ति का संसार अनन्त होता चला जाता है।'

'जिससे विराग उत्पन्न हो उसका आदरपूर्वक आचरण करना चाहिए!' महत्व है 'आदरपूर्वक' पर। तुम जबर्दस्ती भी विराग कर सकते हो। तुम बे-मन से भी विराग कर सकते हो। तुम दिखावे के लिए भी विराग कर सकते हो। जैसे समझो, उपवास कर लेते हो तुम – पर्यूषण आए, आठ या दस दिन के उपवास कर लिये। अब कैसी चीजें विकृत हो जाती हैं! तुम उपवास करते हो, फिर तुम्हारा आदर किया जाता है, शोभा-यात्रा निकलती है, बैंड-बाजे बजते हैं, लोग प्रशंसा करने आते हैं कि बड़ा काम किया, समाज में बड़ा सम्मान मिलता है। यह तो बड़ी चूक हो गई।

महावीर ने यह नहीं कहा था कि तुम विराग करो – और दूसरे आदर करें। महावीर कहते हैं, तुम आदरपूर्वक विराग करना। जब तुम उपवास करो तो परम आदर से करना। यह बड़ी घड़ी है। यह बड़ी महिमा की घड़ी है, क्योंकि साधारणतः मनुष्य की जीवन-आकांक्षा भोजन की है, तुम उपवास कर रहे हो। तुम बड़ी पवित्र भूमि पर यात्रा कर रहे हो। यह तीर्थयात्रा है। उन दस दिनों में तुम जितने सम्मानपूर्वक, जितने अहोभाव से, जितने कृतज्ञता-भाव से उपवास कर सको, उतनी ही उपवास की महिमा होगी। दूसरों को तो पता भी मत चलने देना; क्योंकि दूसरों से आदर पाने की आकांक्षा उपवास का अनादर है। यह तो तुमने उपवास को भी बाजार में बेच दिया। यह तो तुमने उपवास से भी कुछ और खरीद लिया – समाज का सम्मान, रिस्पेक्टेबिलिटी। यह तो तुमने उपवास को भी बाजार की चीज बना दिया, इसको भी बेच दिया, इसको तो कम-से-कम चुपचाप करते।

मुहम्मद ने कहा है: जब तुम प्रार्थना करो तो तुम्हारी पत्नी को भी पता न चले। जीसस ने कहा है: एक हाथ से दान दो, दूसरे हाथ को खबर न हो। तो सम्मान है।

सम्मान का अर्थ है : तुम जो कर रहे हो, वही साध्य है; उसका तुम साधन की तरह उपयोग न करोगे। अगर तुमने उपवास और तप का भी साधन की तरह उपयोग कर लिया कि अखबार में फोटो छपेगी, चलो किसी तरह दस दिन गुजार दो—तो तुम उपवास से वंचित रह गये। तुमने अनशन किया, उपवास नहीं। तुम भूखे मरे, लेकिन तुम उपवास के आनंद से वंचित रह गये। यह तो किसी को कानोंकान खबर न हो।

तुम्हारी तपश्चर्या साध्य बने, साधन नही। तुम्हारी, पूजा प्रार्थना, अर्चना, तुम्हारा ध्यान, सामायिक, साध्य बने। रात के अंधेरे में जब सारा जगत सोया हो, चुपचाप उठ के कर लेना अपनी सामायिक। लेकिन तुमने देखा, लोग मंदिर में जा के करेंगे ! लोगों को तुमने सामायिक और ध्यान करते देखा ! करते भी जायेंगे, माला भी फेरते जायेंगे — चारों तरफ देखते जायेंगे, कोई देख रहा है कि नही ! अगर कोई न देख रहा हो तो जल्दी माला फिर जाती है, दो-दो गुरिए एक साथ चले जाते है। कोई अगर देख रहा हो तो आहिस्ता-आहिस्ता चलती है। यह बगुला-भगति है। बगुले को देखा, खड़ा एक पैर पे, कैसा भगत, शुभ्र-वेश में, हिलता भी नही, लेकिन नजर मछली पे लगी है !

तुम्हारी नजर अगर अभी आदर और सम्मान दूसरों से पाने पे लगी है, तो यह तो अहकार की ही पूजा हुई, इसमे धर्म का कोई संबंध नहीं है।

महावीर कहते हैं, आदरपूर्वक...' जिससे विराग उत्पन्न होता है उसका आदर-पूर्वक आचरण करना चाहिए। एक-एक कृत्य विराग का इतने सम्मान और अहो-भाव से करना कि उसके करने में ही तुम्हारे भीतर फूल बरस जायें, तुम्हारे भीतर सुगंध फैल जाये। साधन की तरह नहीं, साध्य की तरह। वही अपने-आप मे गतव्य है। उसमें कुछ और नही पाना है।

उपवास करके स्वर्ग नहीं पाना है। उपवास स्वर्ग है — यह आदर हुआ। ध्यान करके पुण्य नही पाना है। ध्यान पुण्य है — यह आदर हुआ। तो जो भी तुम आदरपूर्वक करोगे, वही तुम्हे धर्म की दिशा में गतिमान करेगा।

'विरक्त व्यक्ति संसार-बंधन से छूट जाता है।'

विरक्त का अर्थ है : जिसने विराग को आदर दिया। विरक्ति ओढ़ी, ऐसा नही — विराग को आदर दिया। विरक्ति ओढ़नी बड़ी आसान है। तुम नग्न खड़े हो जाओ, छोड़ दो वस्त्र, एक दफा भोजन करने लगो—लेकिन अगर तुम्हारी आंखों में प्रसाद न आये, तुम्हारी वाणी में माधुर्य न आये, तुम्हारे उठने-बैठने में प्रतिपल धन्यता न बरसे — तो तुम कर लो यह सब, इससे कुछ हल न होगा, कुछ लाभ न होगा।

एक मुनि के संबंध में मैंने सुना है। क्रोधी थे वे, जब मुनि नही थे। महाक्रोधी थे। इतने क्रोधी थे कि अपने बेटे को क्रोध में आ के कुएं में फेंक दिया था। उसकी

मौत हो गई थी। उसी से पश्चाताप हुआ। गांव में कोई मुनि ठहरे थे, वे गये। मुनि ने कहा कि अब पश्चाताप अगर सच में हुआ है तो छोड़ दो संसार। क्रोधी आदमी थे, छोड़ दिया। लेकिन ध्यान रखना, छोड़ा भी क्रोध में। जिद्द पकड़ गई। 'अरे, तुमने कहा और हम न छोड़ें! तुमने समझा क्या है?' और लोगों ने समझाया कि कभी तुमने त्याग साधा नहीं है, कभी ध्यान किया नहीं है, एक दम से छलांग मत लो, आहिस्ता चलो। जिद्द पकड़ गई। हठी थे। वही हठ पुराना। जिस आदमी ने कुएं में धक्का दे दिया था बेटे को और हत्या कर दी थी, उसी ने अपने को भी धक्का दे दिया वैराग्य में। वे मुनि हो गये।

दिगम्बर जैनों में पांच सीढ़ियां है, वे एक साथ छलांग लगा गये। एक-एक कदम महावीर ने बड़े आहिस्ता बढ़ने को कहा है। क्योंकि महावीर कहते है, जीवन एक क्रम है। जैसे वृक्ष धीरे-धीरे बढ़ता है, ऐसे ही धीरे-धीरे बढ़ने की जरूरत है। क्योंकि धीरे-धीरे शाखायें ऊपर उठती हैं, उसी आधार से धीरे-धीरे जड़ें भी नीचे गहरी जाती है। वृक्ष अगर एकदम ऊपर चला जाये और जड़ें गहरी भीतर न जा पायें, तो गिरेगा, मरेगा। यह बढ़ना न हुआ, यह तो मौत हो जायेगी। पांच सीढियां बनाई हैं। एक-एक कदम बढ़ना है। मुनि होने की सीढ़ी पांचवी सीढी है, जब वस्त्र भी छूट जायेंगे, सब छूट जायेगा।

वह एकदम से मुनि हो गया। उसने जा के मंदिर में वस्त्र फेंक दिये। क्रोधी आदमी था जिद्दी आदमी था। जिन मुनि ने दीक्षा दी, वे बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने कहा, 'व्याख्यान देते-देते जन्म हो गया मेरा, अनेक लोग मिले, मगर लोग कहते हैं, सोचेंगे। तू एक करने वाला है। तू बड़ा धार्मिक है।' लेकिन वह आदमी धार्मिक नहीं था। उनको नाम मिला . शांतिनाथ। वह आदमी क्रोधी था।

राजधानी उनका आगमन हुआ, तो पुराने बचपन का एक मित्र भी राजधानी आया था, तो उनसे मिलने गया। देखा कि वह महाक्रोधी, क्रोधनाथ शांतिनाथ हो गये हैं। देखें! जा के देखा तो कुछ कहीं शांति तो दिखाई न पड़ी, वही तमतमाया चेहरा था, वही जलती हुई आंखें थी, वही क्रोध और अहंकार था। उसने परीक्षा लेनी चाही। वह पास गया। उसने कहा कि महाराज... ! मुनि पहचान तो गये क्योंकि बचपन से वे परिचित थे उससे, लेकिन जब कोई आदमी पद पे पहुंच जाता है—मुनि पद—तो फिर पहचान कैसी! ऐरे-गैरे नत्थू-खैरों से पहचान कैसी! पहचान तो गये और वह आदमी भी पहचान गया कि पहचान गये हैं। आंखे सब कह देती है। मगर ऊपर से ऐसे ही रूप रखा कि नहीं पहचानें हैं। उसने पूछा, 'महाराज! क्या आपका नाम पूछ सकता हूं?' उसने कहा, 'हां-हां! अखबार नहीं पढ़ते? रोज तो अखबार में छपता है। कौन ऐसा है जो मुझे नहीं जानता? और तू मुझ से नाम पूछता है? मुनि शांतिनाथ मेरा नाम है।'

उस आदमी ने कहा कि यह कुछ बदला नहीं है। वह थोड़ी देर चुप रहा।

उसने फिर पूछा कि 'महाराज ! मैं भूल गया । आपका नाम क्या है ?' उन्होंने डंडा उठा लिया । कहा, 'तू होश में है ? कह दिया एक दफे कि मेरा नाम 'शांतिनाथ' है ।' वह आदमी थोड़ी देर फिर चुप रहा । उसने कहा, 'महाराज !' वह महाराज ही कह पाया था कि वह उन्होंने डंडा उस के सिर पे लगा दिया था ! उन्होंने कहा कि कह तो चुका इतनी बार ! बुद्धि है कि मूढ़ है बिलकुल ? 'शांतिनाथ' मेरा नाम है ।

उसने कहा कि महाराज ! लेकिन शांति कहीं पता नहीं चलती । मैं तो वही रूप देख रहा हूं, जिससे बचपन से परिचित हूं, कहीं कोई फर्क नहीं दिखाई पड़ता । ऊपर के आवरण बदल गये, भीतर की अंतरात्मा वही है ।

विरक्ति ओढ़ना मत ! विरक्ति कोई वस्त्र नहीं है, आवरण नहीं है कि तुम ओढ़ लो; भीतर तुम वही रहो और ऊपर से वस्त्र बदल लो । विरक्ति तो भीतर की भाव-दशा है । धीरे-धीरे सम्मान करना । एक-एक उस घड़ी का जिससे विराग आता हो, उसका सम्मान करना । एक-एक इंच विराग की भूमि पर अपने को जमाना, चलाना । धीरे-धीरे संसार का बंधन छूट जाता है । क्योंकि बंधन राग के कारण है । जब विरक्ति आती है, छूट जाता है । गांठ जैसे बंधी है, जब उससे उलटा करने लगते हो, गाठ खुल जाती है ।

'और आसक्त व्यक्ति का संसार अनन्त होता चला जाता है ।' आसक्त व्यक्ति का संसार अनन्त होता चला जाता है, क्योंकि एक वासना दस वासनाओं को जन्म देती है । वासना संतति-नियमन में भरोसा नही रखती । वासना की बड़ी संतान होती है । एक वासना दस को जन्मा देती है, दस वासनायें सौ को जन्मा देती है— ऐसा ही गणित फैलता चला जाता है ।

तुमने कभी एक कंकड़ फेंक के देखा पानी में ! एक कंकड़ फेंकते हो जरा-सा, कितनी लहरें उठती है ! एक लहर उठती है, एक दूसरी को उठाती है, दूसरी तीसरी को उठती है । दूर कूल-किनारों तक सारा लहरों से भर जाता है सरोवर । एक जरा-सा कंकड़ फेंका था । एक जरा-सा कंकड़ वासना का और तुम्हारा सारा जीवन लहरों से विक्षुब्ध हो जाता है ।

तो महावीर कहते हैं, आसक्त व्यक्ति का संसार अनन्त होता चला जाता है । अनासक्त व्यक्ति का संसार इसी क्षण टूटने लगता है, बिखरने लगता है; जैसे किसी ने भूमि ही खींच ली, बुनियाद अलग कर ली ।

'अपने राग-द्वेषात्मक संकल्प ही सब दोषों के मूल हैं, जो इस प्रकार के चिन्तन में उद्यत होता है तथा इन्द्रिय-विषय दोषों के मूल नहीं हैं, इस प्रकार का संकल्प करता है — उसके मन में समता उत्पन्न होती है । और उससे उसकी काम-गुणों में होने वाली तृष्णा प्रक्षीण हो जाती है ।'

एक और महत्त्वपूर्ण बात इस सूत्र में महावीर कहते हैं । वे कहते हैं, काम-

बासना के विषय कारण नहीं हैं। धन कारण नहीं है धनासक्ति का। धन पड़ा रहे तुम्हारे चारों तरफ, आसक्ति न हो तो धन मिट्टी है। मिट्टी में भी आसक्ति लग जाये, तो मिट्टी धन है। धन तुम्हारी आसक्ति से निर्मित होता है। तुम महल में रहो, इस से कोई फर्क नहीं पड़ता। महल किसी को नहीं बांधता है। तुम झोंपड़े में रहो और तुम्हारी आसक्ति गहन हो झोंपड़े में, तो झोंपड़ा ही बांध लेगा। एक छोटी-सी लंगोटी बांध ले सकती है, और एक बड़ा साम्राज्य भी न बांधे।

सूत्र है: 'अपने राग-द्वेषात्मक संकल्प ही सब दोषों के मूल हैं।' तुम्हारे भीतर ही हैं सारे मूल। विषय भोगों के मूल नहीं हैं। इन्द्रिय-विषय-भोग दोषों के मूल नहीं हैं। जो इस प्रकार का संकल्प करता है, उसके मन में समता उत्पन्न होती है।'

जैसे-जैसे तुम जानोगे और इस धारणा में गहरे जमोगे, जड़ें फैलाओगे कि वस्तुएं नहीं है, बाहर कुछ भी नहीं है जो मुझे बांधता है—मैंने ही बंधना चाहा है; मेरे बंधने की चाह ही मुझे बाधती है, मेरे भीतर ही मूल है। फिर बाहर के संसार को छोड़ के भाग जाने का बड़ा सवाल नहीं है। अगर कोई भाग भी जाये तो वह केवल प्रशिक्षण है।

महावीर चले गये छोड़ कर राज-पाट। लेकिन बड़ी मीठी कथा है। महावीर छोड़ना चाहते थे, मा ने कहा, 'अभी मैं न छोडने दूगी। जब तक मै जिंदा हू, मत छोड़ो!' महावीर ने फिर बात ही न उठाई। यह बड़ी हैरानी की बात है। बुद्ध तो भाग गये एक रात, बिना किसी को कहे, पत्नी को भी न कहा कि मै जा रहा हू। बारह वर्ष बाद जब आये थे तो पत्नी ने यही शिकायत की थी कि तुम्हें जाना ही था, तो मै कैसे रोक पाती? जाने वाले को कौन रोक पाया है! तुम जाना ही चाहते थे तो तुम गये ही होते, लेकिन कम-से-कम मुझे कहा तो होता! तुमने मुझे इस योग्य भी न समझा! इसी बात का मुझे दुख रहा है।

यशोधरा ने बारह वर्ष बाद कहा कि तुमने मुझ पे इतना भी भरोसा न किया! इतना तो सम्मान दिया होता मुझे भी! मुझ से पूछ तो लिया होता! मै रोकती, फिर भी तुम्हे जाना होता तो तुम गये होते! लेकिन तुमने यह कैसे मान लिया कि मै रोकती ही? क्या जरूरी था कि रोकती ही? मेरे मन में यह घाव की तरह रहा है कि तुमने मुझसे पूछा भी नहीं, रात तुम चोर की तरह भाग गये! जिसके साथ संबंध जोड़ा था, जिसके साथ प्रेम के नाते बनाये थे, उससे कम-से-कम पूछ तो लेते, विदा तो ले लेते!

महावीर ने ऐसा न किया। महावीर जाना चाहते थे और मा से पूछा। स्वाभाविक, जिसने जीवन दिया, अब जीवन को छोड़ते है, कम-से-कम उससे तो पूछ लें! और मां ने कहा कि नहीं, मेरे सामने यह बात ही मत उठाना। मैं मर जाऊंगी दुख से। उस का पाप तुम्हीं को लगेगा। फिर तुम्हारी अहिंसा कहां रहेगी?

तो महावीर, कहते हैं, चुप हो गये। यह बड़ी अनूठी घटना है मनुष्य के इतिहास

की, कि महावीर ने फिर विवाद भी न किया, तर्क भी न किया, दुबारा आग्रह भी न किया। जब मां मर गई, मरघट से लौटते वक्त अपने बड़े भाई को कहा कि अब क्या खयाल है ? अब तो जा सकता हूं ?

घर भी न आ पाये थे। बड़े भाई ने कहा कि तुम थोड़ा सोचो तो ! मा को दफना के लौट रहे है, अभी घर भी नही पहुचे हैं, छाती पे पत्थर पड़ा है, तुम्हे त्याग की पड़ी है ! यह कोई मौका है ?

महावीर ने कहा, 'इससे और अच्छा मौका कहा होगा ?' इसको वे कहते हैं, वैराग्य की जहा भी सभावना हो उसको सम्मान देना। मृत्यु से बड़ी वैराग्य की सभावना क्या होगी ! मां मर गई, इससे बड़ी और क्या जगाने वाली घटना हो सकती है ? जब मा मर गई, मुझे जन्म देने वाली मर गई, तो मै भी मरूगा। मुझे जन्म देने वाली न बच सकी तो मेरे बचने का क्या उपाय है ? उसी शृंखला की कड़ी हूं। जाने दो मुझे !

भाई ने कहा कि नही, तुम न जा सकोगे। जब तक मै तुम्हें आज्ञा न दू, न जा सकोगे। बड़े भाई की आज्ञा का खयाल रखना।

कहते हैं, महावीर फिर चुप हो गये। दो-चार वर्ष बीत गये, लेकिन वे ऐसे रहने लगे उस महल में जैसे न हो। चलते जैसे छाया चलती हो, धूल भी न हिलती। उठने-बैठते, लेकिन किसी के बीच मे न आते। घर के, परिवार के, लोगो को पता ही न चलता कि वे है या नही है ! ऐसे चुप हो गये। ऐसे गुम-सुम हो गये। ऐसे 'ना' हो गये। शून्यवत घूमने लगे उस घर में। आखिर घर के लोगो ने भाई से कहा, बडे भाई से, कि अब व्यर्थ है रोकना। यह तो जा ही चुका। रोक के भी हम क्या रोकें ? हम सोचते है कि यह है, मगर है नही। महीनों बीत जाते हैं, किसी को पता ही नहीं चलता, न किसी बात में भाग लेता, न किसी चर्चा में भाग लेता, न अपना कोई मंतव्य देता, न किसी को बाधा डालता। तो अब 'न होने' का और क्या अर्थ होता है ? होने से सार क्या है ? हम इसे व्यर्थ रोक रहे हैं और हम व्यर्थ ही पाप के भागी हो रहे है।

तो भाई और परिवार के लोग इकट्ठे हुए। उन्होंने महावीर से कहा, तुम जा ही चुके हो, अब हम तुम्हें न रोकेंगे। ऐसे उन्होंने घर छोड़ा। घर छोड़ने के बहुत पहले महावीर ने घर छोड़ दिया था। घर से निकलने के बहुत पहले, घर से निकल गये थे। और मैं जानता हूं कि अगर भाई ने न कहा होता तो वे सदा घर में रहे आते। क्या फर्क पड़ता था ? इसलिए महावीर का वैराग्य बड़ा गहन है। वह भगोड़ापन नहीं है। वह क्रांति है, रूपान्तरण है। फिर जंगल भी चले गये। बारह वर्ष एक गहरा प्रशिक्षण था। जंगल में बहुत साधा। बहुत निखारा अपने को। सब तरह से शून्य किया। शब्द गंवाये। मौन में उतरे। शब्द छोड़ ही दिये। वाणी खो ही गई। तब फिर वापिस लौटे। क्योंकि जंगल में पाया जा सकता है, लेकिन

बांटना तो बस्ती में ही होगा । वृक्षों, पशुओं के पास पाया जा सकता है, देना तो मनुष्य को ही होगा । और जब मिलता है तो देना होगा । महावीर ने धन ही नहीं छोड़ा; जब उन्होंने परम धन पाया, उसको भी लुटाया । एक बार छोड़ने का मजा आ जाये तो परम धन पा के भी आदमी लुटाता है ।

'अपने राग-द्वेषात्मक संकल्प ही सब दोषों के मूल हैं, जो इस प्रकार के चिन्तन में उद्यत होता है तथा इन्द्रिय-विषय दोषों के मूल नहीं हैं, इस प्रकार का संकल्प करता है, उसके मन में समता उत्पन्न होती है ।'

तत्क्षण भी समता का स्वाद आ जायेगा । तुम जरा घर में बैठे-बैठे ऐसे सोचो कि घर के बाहर हो । तुम पत्नी के पास बैठे-बैठे जरा ऐसे सोचो, कौन किसका है ! तुम बाजार में बैठे-बैठे जरा ऐसा सोचो, सब सन्नाटा है ! बाजार में भी समता आ जाती है । घर में भी समता आ जाती है । सब काम-धाम करते हुए भी भीतर तुम थिर होने लगते हो । भीतर बुद्धि स्थिर होने लगती है । भीतर की ज्योति डगमगाना छोड़ने लगती है ।

समता का अर्थ है : अकंप चैतन्य का हो जाना ।

'और उससे उसकी काम-गुणों में होने वाली तृष्णा प्रक्षीण हो जाती है ।'

हस्ती के मत फरेब में आ जाइयो 'असद'
आलम तमाम हल्कए-दामे खयाल है ।

चीजों के चक्कर में बहुत मत पड़ जाना । लेकिन चीजें उलझाती नही हैं, कल्पना ही उलझाती है ।

आलम तमाम हल्कए-दामे खयाल है । यह जो सारा चारो तरफ फैलाव दिखाई पड़ रहा है, यह तुम्हें नही फासता — तुम्हारी कल्पना का जाल फांस लेता है ।

'भाव से विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त हो जाता है । जैसे कमलिनी का पत्र जल में लिप्त नहीं होता, वैसे ही वह संसार में रह कर भी अनेक दुखो की परम्परा से लिप्त नहीं होता है ।'

महावीर संसार छोड़ने को नहीं कह रहे हैं । यह सूत्र प्रमाण है । कहते है, कमलिनी के पत्र जैसे हो जाओ !

भावे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएणदुक्खोहपरंपरेण ।
न लिप्पई भवमज्झे वि संतो, जलेण वा पोक्खरणिपलासं ।।

जैसे पोखर में, तालाब में, खिला हुआ कमलिनी का फूल ! उसके पत्ते जल में ही होते है, जल की बूंदें भी उन पे पड़ी होती है, लेकिन जल स्पर्श भी नही कर पाता — ऐसी ही चैतन्य की एक दशा है, विराग की एक दशा है । ठीक संसार मे खड़े हुए भी, ठीक गृहस्थी में रुके हुए भी, कुछ छू नही पाता ।

महावीर ने चार तीर्थ कहे है : श्रावक-श्राविका, साधु-साध्वी । किसी अनजानी

दुर्घटना के कारण साधु-साध्वी महत्त्वपूर्ण हो गये। लेकिन महावीर का पहला जोर श्रावक-श्राविका पर है।

श्रावक का अर्थ है : ऐसी सम्यक् स्थिति का व्यक्ति जो सुन के ही सत्य को उपलब्ध हो जाता है; सुनने मात्र से ही जो जाग जाता है। साधु का अर्थ है : सुनना मात्र जिसे काफी नहीं; सुनने के बाद जो साधना भी करेगा, प्रयत्न की भी जरूरत रहेगी—तब मुक्त हो पाता है। श्रावक की गरिमा बड़ी महिमापूर्ण है।

श्रावक का अर्थ है : जिसने सत्य को सुना, सुनते ही जाग गया।

बुद्ध कहते थे, घोड़े कई तरह के होते हैं। एक घोड़ा होता है कि जब तक उसको मारो-पीटो न, तब तक चले न। एक घोड़ा होता है कि मारने-पीटने की धमकी दो, गाली-गलौज दो, उत्ते से ही चल जाता है, मारने पीटने की जरूरत नहीं पड़ती। एक घोड़ा होता है, गाली-गलौज की भी जरूरत नहीं पड़ती; हाथ में कोड़ा हो, इतना घोड़ा देख लेता है, बस काफी है। और बुद्ध कहते हैं, एक ऐसा भी घोड़ा होता है कि कोड़े की छाया भी काफी होती है। श्रावक का अर्थ है : जिसे कोड़े की छाया भी काफी है।

तुम यहां मुझे सुन रहे हो। सुनने से तुम्हारे लिए पहला तीर्थ खुलता है। अगर तुम ठीक से सुन लो, हृदयपूर्वक सुन लो, निमज्जित हो जाओ सुनने में, तो करने को कुछ बचता नहीं, सुनने में ही गांठें खुल जाती हैं; सुन के ही बात साफ हो जाती है, गांठ खुल जाती है। कुछ अंधेरा था, छंट जाता है। कुछ उलझन थी, गिर जाती है। द्वार खुल गया, नाव तैयार है : तुम इसी तीर्थ से पार हो सकते हो!

कुछ हैं जो सुनने से ही पार न हो सकेंगे; उन्हें कोड़े की छाया काफी न होगी, उनके लिए कोड़े काफी होंगे, कोड़े मारने पड़ेंगे।

साधु का अर्थ है : जो सुनने से न पार हो सका, सत्य की समझ काफी न हुई, सत्य के लिए प्रयास भी करना पड़ा।

वस्तुतः, श्रावक की महिमा साधु से ज्यादा है। लेकिन साधुओं को यह बरदाश्त न हुआ। साधुओं के अहंकार को यह भला न लगा। तो कोई जैन साधु जैन श्रावक को नमस्कार नहीं करता। साधु और श्रावक को कैसे नमस्कार कर सकता है! साधु ऊपर है, श्रावक नीचे है! साधु को, श्रावक को नमस्कार करनी चाहिए!

हां, यह बात जरूर है कि श्रावक कहां हैं? पर दूसरी बात भी तो है, साधु कहां है? सुन के पहुंचने वाले बहुत मुश्किल हैं, कोड़े की छाया से चलने वाले बहुत मुश्किल हैं। कोड़ों से भी अपने को मार-पीट करके कहां कौन चल पाता है! उनकी भी आदत हो जाती है।

'भाव से विरक्त मनुष्य शोक-मुक्त बन जाता है। जैसे कमलिनी का पत्र जल में लिप्त नहीं होता, वैसे ही वह संसार में रह कर भी अनेक दुखों की परम्परा से लिप्त नहीं होता है।'

भाव से मुक्त होते ही—राग और द्वेष के भाव से मुक्त होते ही; चुनाव से मुक्त होते ही; संकल्प-विकल्प से मुक्त होते ही – यह सत्य पहचान कर कि सारा खेल मेरे भीतर है, अपने को सिकोड लेता है; जैसे कछुआ अपने को सिकोड़ लेता है !

दूर जा पहुंचा गुबारे कारवां
मेरी मुश्ते-खाक तनहा रह गयी
सब तमन्नाएं हमारी मर चुकी
एक मरने की तमन्ना रह गयी ।

—अपने को सिकोड़ता जाता है । जीवन-जीवेषणा से अपने को हटा लेता है । अब जीने की कोई आकांक्षा नहीं रह जाती । जीता है, क्योंकि जब तक पुराने कर्मों का जाल है, हिसाब-किताब है, चुकतारा है, निपटाता है । नया जाल खडा नही करता; पुराना लेन-देन तो चुकाना ही पड़ेगा । जीता है, लेकिन अब जीने पे जोर नही है । अब उसने एक राज सीखा है – और वह यह : परम मृत्यु ! कैसे पूरी तरह मर जाये, ताकि दुबारा पैदा न होना पडे ! और जिसके भीतर ऐसी भाव-दशा आ जाती है, उसकी सुबह ज्यादा दूर नही है ।

हो चली सुबह फसाना है करीबे-तकमील
घुल चली शमा बस अब है उसे ठंडा होना ।

जिसके भीतर जीवेष्णा ठडी हो गई, वह खोने लगा ।

हो चली सुबह फसाना है करीबे-तकमील

– कहानी पूरी होने के करीब आ गई, सुबह होने लगी । घुल चली शमा – दीया बुझने लगा; बस अब है उसे ठंडा होना । वह ठंडक, वह शीतलता जो जीवेष्णा के बुखार के बुझ जाने पे पायी जाती है, उसी का नाम मोक्ष है ।

दुख पर ध्यान करना ! दुख को सब तरफ से पहचानना, निदान करना । दुख दिख जाये तो औषधि पानी बडी कठिन नही है । दुख दिख जाये तो छूटने की परम आकाक्षा पैदा होती है, अभीप्सा पैदा होती है ।

साक्षी-भाव औषधि है । दुख है निदान—साक्षी-भाव औषधि है – मोक्ष स्वास्थ्य है ।

आज इतना ही

दिनांक १६ मई, १९७६; श्री रजनीश आश्रम, पूना

प्रश्न-सार

श्याम-श्याम रटते जीवन की सांझ हो गयी है, अभी तक मेरा श्याम नहीं आया। मुझे उसके दर्शन कराना!

नककटे साधु की कहानी....क्या आपके संन्यासियों की यही स्थिति नहीं है?

भीतर विचारों की भीड़ है और अहंकार से विक्षुब्ध हूं....?

बेमुरौअत बेवफा बेगाना ए दिल आप हैं।....?

बहुत शुक्रिया बहुत मेहेरबानी

मेरी जिंदगी में हुजूर आप आए

... ... ?

तुम मिटो तो मिलन हो

पहला प्रश्न : शाम शाम कूकदी नूं जिंदगी दी शाम होई।
आया नहीं शाम मेरा, ओसनूं मिलायो जी ।।

– 'श्याम श्याम रटते जीवन की सांझ हो गयी है, अभी तक मेरा श्याम नहीं आया। मुझे उसके दर्शन कराना।'

आपकी शरण आयी हूं, स्वीकार करो! कही चूक न जाऊं!

परमात्मा को पाना मात्र रटन की बात नहीं है। रटने से ही होता होता तो बड़ा आसान होता। रट तो तोते भी लेते हैं। बोध चाहिए! अकेली रटन काम न देगी। रटन ठीक है, उपयोगी है, बहुमूल्य है – लेकिन बोध से संयुक्त हो तभी; अन्यथा रटन यांत्रिक हो जाती है। कोई रटता रहता है श्याम-श्याम-श्याम, लेकिन इस रटन के पीछे और हजार विचार चलते रहते हैं। यह रटन धीरे-धीरे अभ्यास हो जाती है। इसे करने के लिए, रटने के लिए, किसी बोध की जरूरत ही नहीं रह जाती; यंत्रवत् सरकती रहती है। तुम न भी चाहो तो होती रहती है। और भीतर गहरे तलों पर हजार-हजार विचार चलते रहते हैं, हजार वासनाएं चलती रहती हैं। जब तक वे भीतर के तल पर विचार और वासनाएं खो न जायें, जब तक रटन अकेली न रह जाये, श्याम के लिए पुकार उठे तो बस पुकार हो, भीतर कुछ और न हो – तब तो पुकारने की भी जरूरत न पड़ेगी, बिन-पुकारे परमात्मा पास आ जाता है।

परमात्मा कभी दूर गया नहीं। जो दूर चला जाये वह परमात्मा नहीं। सदा तुम्हारे पास है। सब तरफ से उसने ही तुम्हें घेरा है। बाहर भी वही, भीतर भी वही। जिसे तुम रट रहे हो, वह तो परमात्मा है ही; जो रट रहा है, वह भी परमात्मा है। तो रटन में ज्यादा मत उलझ जाना। पुनरुक्ति कहीं मन को बहुत ज्यादा ग्रसित न कर ले! रटन पर बहुत ज्यादा भरोसा मत कर लेना। उपयोगी है, लेकिन कुछ और भी चाहिए। वह है बोध। वह है ध्यान।

'श्याम-श्याम रटते ही जीवन की सांझ हो गई। अभी तक मेरा श्याम नहीं आया।'

नहीं, पहचान तुम्हारे पास नहीं, श्याम तो बहुत बार आया। श्याम तो आता ही रहा। श्याम तो आता ही रहता है। उसके सिवाय और कोई है ही नहीं जो आये। जो भी आया है उसमें श्याम ही आया है। कोई और तो आयेगा कैसे? सभी उसके रूप हैं। सभी उसके ढंग हैं। सभी उसके रंग हैं। फूल में भी वही। पत्तों में भी वही। पहाड़ों-पत्थरों में भी वही। पशु-पक्षियों में वही। स्त्री-पुरुषों में वही! जहाँ 'कुछ' है, वही है; और जहाँ कुछ भी नहीं है, वहाँ भी वही है। इसलिए आने-जाने की भाषा तो हमारे मन की भाषा है।

परमात्मा है: न आता न जाता। जो 'है' उसका ही नाम परमात्मा है—जो सदा है, जिसमें कोई गति नहीं है, जिसमें कोई प्रक्रिया-क्रिया नहीं है, जो 'मात्र होना' है। इस क्षण भी तुम्हें उसी ने घेरा है। तुम राह किसकी देखते हो? कहीं राह देखने में ही तो नहीं चूक रहे हो? क्योंकि जब आँखें किसी की राह देखती है, तो और सब चूक जाता है। तुम अगर अपनी प्रेयसी की राह देख रहे हो द्वार पर बैठ कर, तो फिर और कोई नहीं दिखायी पड़ता। राह चलती रहती है। लोग गुजरते रहते हैं। तुम और सबके प्रति अंधे हो जाते हो, क्योंकि तुम्हारा मन एकाग्र है—किसी वासना में, किसी कामना में, किसी आकांक्षा में, अभीप्सा में, तुम एकजूट एकाग्र हो। तुम राह देखते हो किसी चेहरे की।

तो श्याम तो तुमने पुकारा होगा, लेकिन तुम किसी चेहरे की राह देख रहे हो—बांसुरी धरे हुए आयेगा, मोर-मुकुट लगा के आयेगा। तो तुम चूके! तुम्हारी इस आकांक्षा में ही, तुम्हारी इस धारणा में ही परदा है। तुम्हारी कोई निश्चित मनोदशा है, जिसमें तुम माँग कर रहे हो, ऐसा होना चाहिए।

कहते है, तुलसीदास को कृष्ण के मंदिर में ले गये, तो वे झुके नहीं। तुलसीदास जैसा समझदार आदमी भी नासमझी कर गया। झुके नहीं, क्योंकि वे राम के भक्त थे, कृष्ण की मूर्ति के सामने झुके कैसे! खड़े रहे, अड़े रहे। वे तो एक को ही पहचानते थे—धनुर्धारी राम को। यह मुरली-मुरारि को, यह मुरलीधारी को, वे पहचानते न थे, मानते भी न थे। कैसे झुकें!

कहानी बड़ी मधुर है। कहानी यह है कि उन्होंने कहा कि तुम जब धनुष-बाण हाथ लोगे, तभी मैं झुकूंगा, नहीं तो मैं न झुकूंगा। मैं तो एक का ही भक्त हूं।

कहानी कहती है कि तुलसीदास के लिए कृष्ण ने हाथ में धनुष-बाण लिया, मूर्ति बदली। मुरली खो गई, मोर-मुकुट खो गया, धनुर्धारी राम प्रगट हुए—तब, तब तुलसीदास झुके। मैं नहीं मानता हूं कि मूर्ति बदली होगी। तुलसीदास ने ही कोई सपना देखा होगा।

कहीं परमात्मा तुम्हारे पक्षपातों के अनुसार ढलता है? तुम परमात्मा को आज्ञा दे रहे हो? तुम परमात्मा को कह रहे हो कि अगर मेरी स्तुति चाहिए हो तो इस ढंग से आ जाओ! ऐसे पीत वस्त्र पहन के, पीताम्बर हो के खड़े होना; ऐसा नील

वर्ण हो तुम्हारा, ऐसी तुम्हारी आँखें हों, इस तरह से खड़े होना। तुम मुद्रा, ढंग, रूप-रंग, सब तय किये बैठे हो, इसलिए परमात्मा से चूक रहे हो। लोग धार्मिक होने के कारण धर्म से चूक रहे हैं। क्योंकि धार्मिक होने में वे साम्प्रदायिक हो गये हैं और उन्होंने एक रुख पकड़ लिया है।

मेरी सारी चेष्टा यहाँ यही है कि तुम्हारे सारे पक्षपात विसर्जित हो जायें। तुम माँग न करो। तुम कहो, तू जिस रूप में आयेगा, हम पहचानेंगे। तू हमें धोखा न दे पायेगा! तू धनुष-बाण ले के आयेगा, कोई हर्ज नहीं, तो भी पहचानेंगे। तू मुरली हाथ में ले के आयेगा तो भी पहचानेंगे। तू महावीर की तरह नग्न खड़ा हो जायेगा, न धनुष-बाण होंगे न मुरली होगी, तो भी हम पहचानेंगे। तू जीसस की तरह सूली पे लटक जायेगा, तो भी हमें धोखा न दे पायेगा!

धार्मिक व्यक्ति मैं उसको कहता हूँ, जिसने परमात्मा को चुनौती दे दी कि अब तू हमें धोखा न दे पायेगा, हम पहचान ही लेंगे! तू जिस रूप में आये, आ जाना; क्योंकि हमने अब एक बात समझ ली है कि सभी रूप तेरे हैं।

फिर तुम कैसे चूकोगे? फिर जिंदगी की शाम कभी न होगी। फिर जिंदगी सदा सुबह ही बनी रहेगी।

शंकराचार्य के जीवन में एक उल्लेख है। कल ही मैं सांझ उनकी कहानी कह रहा था। शिष्यों को समझा रहे हैं। कुछ ऐसा उलझा हुआ प्रश्न खड़ा हो गया है। तो उन्होंने दीवाल पर कलम उठा के एक चित्र बनाया – समझाने के लिए। चित्र में बनाया एक वृक्ष – बोधिवृक्ष। उसके नीचे बैठाया एक युवा संन्यासी को – गुरु की तरह। और फिर उस चित्र के आसपास, युवा संन्यासी के आसपास, बिठाये बड़े बूढ़े शिष्य, जीर्ण-जर्जर, बड़े प्राचीन! एक शिष्य ने खड़े हो के कहा, 'यह आप क्या कर रहे हैं? शायद आप चूक गये। इस युवक संन्यासी को गुरु और इन बूढ़े वृद्ध ऋषि-मुनियों को शिष्य! आपसे कुछ गलती हो गई है।'

शंकर ने कहा, गलती नहीं हुई, जान के बना रहा हूं। क्योंकि शिष्य सदा बूढ़ा है। क्योंकि शिष्य का अर्थ है: मन। मन बड़ा प्राचीन है। मन बड़ा पुराना है। मन यानी पुराना। मन यानी अतीत। मन यानी जो हो चुका, उसकी धूल-धवास; जो जा चुका उसके रेखा-चिह्न; जो बीत चुका उसके पद-चिह्न। मन का अर्थ ही है: जो बीत चुका, उसकी लकीरें। बड़ा पुराना है मन!

शिष्य के पास मन है। गुरु का मन खो गया है, तो अतीत खो गया। तो शंकर ने कहा, 'गुरु तो सदा नितनवीन है, युवा है, किशोर है।' इसलिए तुमने देखा! राम की तुमने कोई बूढ़ी प्रतिमा देखी? बूढ़े कभी तो हुए होंगे! कोई जगत नियम तो नहीं बदलता – किसी के लिए नहीं बदलता। कृष्ण की तुमने बूढ़ी प्रतिमा देखी? निश्चित बूढ़े हुए थे, अस्सी वर्ष के हो गये थे, तब तीर लगा और मरे। बुद्ध की तुमने बूढ़ी प्रतिमा देखी? महावीर की तुमने बूढ़ी प्रतिमा देखी? नहीं,

हमने कोई बूढ़ी उनकी प्रतिमा नहीं बनायी। इसलिए नहीं कि वे बूढ़े नहीं हुए थे; बूढ़े तो हुए थे, लेकिन हम पहचान गये कि उनके भीतर जो घटा था वह नितनवीन था। सद्यःस्नात! अभी-अभी नहाया हुआ! इसी क्षण जन्मा!

मन तो पुराना है। मन की धारणाएं पुरानी हैं। परमात्मा प्रतिपल नया है – नयी फूटती कोंपल की भांति! नयी खिलती कली की भांति!

छोड़ो धारणाएं मन की, तो तुम उसे सब तरफ से आते पाओगे। हर पगध्वनि में उसी की पगध्वनि सुनायी पड़ेगी। कोयल के मधुर कंठ में ही नहीं, कौवे की कांव-कांव में भी वही है। और जब तक तुम कौवे में न पहचान पाओगे, तब तक तुम जानना, पहचान पक्की न हुई। राम में ही नहीं, रावण में भी वही है। और जब तक तुमने कहा कि रावण में नहीं है, तब तक तुम राम में भी न पहचान पाओगे।

तुलसीदास ने तो हद कर दी नासमझी की! कृष्ण में भी न पहचान पाये राम को, तो रावण में तो कैसे पहचान पायेंगे! महाकवि रहे होंगे, जाग्रत पुरुष नहीं। काव्य की महिमा है उनकी। बड़े सुंदर उनके वचन हैं। लेकिन कहीं कुछ चूका-चूका है, कहीं कुछ खोया हुआ है – अनुभव खोया हुआ है।

फिर जीवन की कभी शाम न होगी, अगर परमात्मा से पहचान हो गयी। जीवन की सांझ होती है, सुबह होती है, परिवर्तन होता है, जन्म और मौत होती है; क्योंकि उससे हमारी पहचान नहीं हो पाती, जो सनातन है, शाश्वत है।

'शाम शाम कूकदी नूं जिंदगी दी शाम होई।
आया नहीं शाम मेरा, ओस नू मिलायो जी॥'

श्याम-श्याम रटते जीवन की सांझ हो गयी, अब तो जागो! रटन से कुछ भी न होगा। देखो! दर्शन चाहिए! आँख चाहिए! तुम्हारी रटन के कारण ही श्याम बहुत बार आया और लौट गया। उसने कहा, अरे! यह तो अभी भी रट रही है! अभी भी खाली नहीं है! अभी भी मन इसका मुक्त नहीं है, शांत नहीं है! अभी भी किसी श्याम-श्याम को रट रही है!

तुम्हारी रटन के कारण ही तो परदा खड़ा हो गया है। तुम अपनी रटन में इतने लीन हो कि तुम्हें फुरसत कहां कि तुम जरा आँख खोलो और देखो कि कौन आया है! रटन जब वस्तुतः हार्दिक होती है तो रटन होती ही नहीं। आवाज कहां उठती है! बोल कहां उठते हैं! सब खो जाता है, सन्नाटा हो जाता है।

परमात्मा की खोज में निकले खोजी, परमात्मा को पाने के पहले खुद खो जाते हैं। वे ही उसे पाते हैं जो अपने को खो देते हैं।

रटन का हिसाब छोड़ो। माला कितनी जपी, यह फिक्र छोड़ो। कितने बार उसका नाम लिया, यह फिक्र छोड़ो।

मैं एक घर में मेहमान था। तो पूरा घर शास्त्रों से भरा पड़ा था। तो मैंने कहा, 'बड़े शास्त्र हैं, क्या मामला है? कौन-कौन-से शास्त्र हैं।' उन्होंने कहा, 'कुछ

नहीं, सब शास्त्रों में राम-राम लिखा है। ' वे जिनके घर मैं ठहरा था, वे राम-भक्त हैं। तो उनका काम ही यह है चौबीस घंटे, वे और कोई काम नहीं करते, वे किताब लिये बैठे रहते हैं : राम-राम-राम-राम...। हजारों किताबें उन्होंने खराब कर दी हैं। मैंने उनसे कहा, बच्चों को दे देते, पढ़ने के काम आ जाती, स्कूल में बांट देते—ये तुमने खराब क्यों कर दीं? अपना भी समय खराब किया। और मैंने उनसे कहा, देखो तुम ऐसे लिखते रहते हो चश्मा चढ़ाये, क्योंकि आंखें धुंधली हो गई हैं, बूढ़े हो गये – राम कई दफे आता है, लौट जाता है। तुम्हें कभी फुरसत में नहीं पाता। तुम्हें राम-राम लिखने से फुरसत मिले, तब न! राम हटे तो राम मिले! श्याम हटे तो श्याम मिले! तुम मिटो तो मिलन हो!

थक थक के हर मुकाम पै दो-चार रह गये
तेरा पता न पाएं तो नाचार क्या करें!

–यह तसव्वुफ की भाषा है, प्रेम की, सूफियों की!

थक थक के हर मुकाम पै दो-चार रह गये।

–परमात्मा की खोज में जो निकलता है, एक घड़ी आती है थक जाता है, खो जाता है।

थक थक के हर मुकाम पै दो-चार रह गये
तेरा पता न पाएं तो नाचार क्या करें।

–हम असहाय करें भी क्या, तेरा पता तो मिलता नहीं। खोजते-खोजते खुद ही खो जाते हैं, अपना ही पता खो जाता है!

लेकिन जिस क्षण, अपना पता खो जाता है, उसी क्षण, सब दिशाओ से उसकी मंगल वर्षा होने लगती है। मंगल वर्षा तो पहले भी हो रही थी, लेकिन हम भरे थे, हम किन्हीं खयालों से दबे थे।

ईश्वर की सभी धारणाएं छोड़ दो अगर ईश्वर को चाहते हो। अगर सत्य को पहचानना है तो शास्त्र को हटाओ। अगर उसे देखना है जो अभी खड़ा है तुम्हारे सामने; जो हवा के झोंके में तुम्हें सहला गया है; जो पक्षियों के कलरव में तुम्हें बुला रहा है; सूरज की किरण में जिसने अपना हाथ फैलाया है और तुम्हारा स्पर्श किया है – अगर उसे देखना है, उस सहस्रबाहु को, उस अनन्त को, तो तुम सारी धारणाओं को हटाओ। तुम नग्न हो जाओ, निर्वस्त्र – धारणाओ से बिलकुल निर्वस्त्र। यही तो महावीर होने का अर्थ है – निर्ग्रन्थ, नग्न, दिगम्बर!

जैनों ने बड़ी उलटी बात पकड़ ली। वे समझे कि बस वस्त्र छोड़ के नग्न खड़े हो जाने पे महावीर नग्नता की पूरी हो जाती है। महावीर की नग्नता तब पूरी होती है जब चित्त के सारे वस्त्र उतर जाते हैं।

तुमने कृष्ण की कहानी पढ़ी है? गोपियां स्नान कर रही हैं, वे उनके वस्त्र चुरा के वृक्ष पे बैठ गये हैं। अश्लील मालूम होती है। आज करें तो पुलिस पकड़ेगी।

चल गई उन दिनों, अब न चलेगी। और स्त्रियां ही मुश्किल में डाल देंगी। लेकिन कहानी का अर्थ बड़ा गहरा है। कृष्ण यह कह रहे हैं, जो मेरे प्रेम में पड़ेगा उसके मैं वस्त्र छीन लूंगा। गोपी यानी जो उनके प्रेम में है। कृष्ण कह रहे हैं कि तुम्हारे वस्त्र छीन लूंगा, तुम्हें निर्वस्त्र करूंगा। कृष्ण कह रहे हैं कि जब तक तुम्हारे पास कुछ भी है तुम्हारा, जिसमें तुम अपने को छिपा लो तब तक मुझसे मिलन न हो सकेगा।

वस्त्र का अर्थ होता है : जिसमें तुम अपने को छिपा लो, ढांक लो। निर्वस्त्र होने का अर्थ है : छिपाने को कुछ भी न रहा, ढांकने को कुछ भी न रहा; हमने खोला अपना हृदय; सारे शब्द, सारे सिद्धांत हटा डाले। तुम जब कहते हो, मैं हिन्दू हूं, तो तुम मन पर कुछ वस्त्र पहने हुए हो। तुम्हारा मन नग्न नहीं। तुम्हारी चेतना का कुछ आवरण है। जब तुम कहते हो, मैं जैन हूँ, तब तुम सत्य के लिए खुले नहीं। तुम कहते हो, सत्य के प्रति मेरी कुछ धारणा है; जब सत्य उस धारणा को पूरा करेगा तो ही मैं मानूंगा कि सत्य है। तुम भटकोगे फिर। एक सांझ नहीं, हजारों सांझ होंगी रटते-रटते, पहुंचना न होगा।

खोने की तैयारी करो! मिटने की तैयारी करो! एक-एक इंच अपने को गलाओ। खोजने वाला खो जाये, यही शर्त है उसे पाने की।

और फिर से तुम्हें दोहरा दूं, परमात्मा आता-जाता नहीं। आने-जाने की क्रिया संसार है। सदा होने की स्थिति परमात्मा है। जो आता है जाता है, उसी को तो हम मन कहते हैं। जो न आता न जाता, जो सदा है, वही तो चैतन्य है। बादल आते हैं, घिरते हैं, घुमडते हैं, नाचते हैं, बिजलियाँ चमकती हैं, फिर विदा हो जाते हैं! अब आषाढ़ आता है जल्दी; घिरेंगे बादल, घुमड़ेंगे, घड़ी भर को बड़ा रौरव मचायेंगे, बड़ा शोरगुल करेंगे--फिर जा चुके होंगे। जो बचा रहता है वही आकाश है। कितनी बार बादल घिरे और कितनी बार गये, आगे और गये--वही संसार है। जो बचा रहा है पीछे, अछूत, अस्पर्शित, पोखर के कमल के पत्तों जैसा, जिस पे कोई बादल की छाया भी न छूटी और जिसे बादल मलिन भी न कर पाये, जिस पे बादलों की स्मृति भी नहीं है... !

आज आकाश को देखो, तो क्या तुम सोचोगे इस पर अरबों-खरबों वर्षों से बादल घिरते रहे है? निष्कलुष! निर्मल! कुंआरा! कुंआरा-का-कुंआरा! इसका कुंआरापन कभी भी खंडित नहीं हुआ। बादल आये और गये, इसके पास उनकी कोई स्मृति भी नहीं है।

ऐसा ही है परमात्मा। हम आते हैं जाते हैं -- परमात्मा है। हम बहुत बार आये हैं, बहुत बार गये हैं--आषाढ़ के बादल -- कभी बहुत शोरगुल मचाया -- नेपोलियन, चंगेज, तैमूर! कभी चुपचाप भी आ के चले गये -- कपसीले बादल -- कोई शोरगुल भी न मचाया, वर्षा भी न की, साधारण; कभी बिजलियां कौंधीं, बड़ा रौरव किया,

बड़ा रौद्र रूप दिखाया; कभी चुपचाप सपनों जैसे तैर गये, न कोई रौरव नाद किया, न कोई शोरगुल मचाया, किसी को पता भी न चला! कभी इतिहास बनाया उपद्रव का, कभी चुपचाप गुजर गये, कानोंकान किसी को खबर भी न मिली आने-जाने की। पर हर हालत में हम आये और गये। उसे जानना है, जो न आया और न गया।

झेन फकीर हुआ : तोझान ओसो! बड़ा बहुमूल्य फकीर था! कहते हैं जब तोझान ओसो समाधि को उपलब्ध हुआ, परमज्ञान को उपलब्ध हुआ, निर्वाण पा लिया उसने, खो गया सब भांति से, बचा वही जो सदा है – तो कहते हैं, देवलोक में देवता आतुर हुए तोझान को देखने को। होना ही चाहिए। क्योंकि देवता कितने ही सुंदर हों, अभी बादल ही हैं; कितने ही स्वर्णमंडित हों, अभी बादल ही हैं; कितने ही सुखमय हो, अभी सपने में ही है। उत्सुक हुए तोझान का चेहरा देखने को। जब भी कोई बुद्धत्व को उपलब्ध होता है तो देवता उत्सुक होते हैं। उनको भी आकांक्षा जगती है। क्योंकि यह परम घटना घटी। तो देवता आये। तोझान के आश्रम में, उन्होंने सब तरफ से चेष्टा की तोझान को देखने की, पहचानने की; लेकिन कोई चेहरा दिखायी न पड़े। आकाश का कहीं कोई चेहरा है! बादल हो तो रूप-रंग, रेखा, आकृति . । आकाश तो निराकार है। तोझान तो आकाश हो गया। उन्होंने सब तरफ से... उसके भीतर गये, बाहर गये, सब तरफ से खोजा, कुछ भी न पाया। सन्नाटा है, अनन्त सन्नाटा है, शून्य है! वे बड़े चिन्तित हुए कि क्या हमे दर्शन न होंगे! उसी में से गुजरते थे और उसके दर्शन न हो रहे थे। उसी के आसपास परिक्रमा कर रहे थे और उससे पहचान न हो रही थी! भीतर बाहर आ-जा रहे थे, लेकिन सब सूना सन्नाटा था। मंदिर ही बचा था, प्रतिमा तो खो गई थी–दर्शन किसके हों! राम बचा था, धनुष-बाण खो गये थे, प्रतिमा खो गई थी। कृष्ण बचा था, बांसुरी न बची थी, गीता न बची थी। गीता पे रखी बांसुरी खो गई थी।

आखिर देवताओं में जो सब से ज्यादा कुशल था, उसने कहा, 'ठहरो! कुछ उपाय करना पड़ेगा। ऐसे तो दर्शन न होंगे।'

तोझान घूमने निकला था। सुबह की बेला। नया-नया उगा सूरज! पक्षियों के गीत! तोझान लौट रहा था आश्रम की तरफ। उस चालाक देवता ने आश्रम के चौके से कुछ चावल मुट्ठियों में भर लिये, कुछ गेहूं मुट्ठी में भर लिये और आ के तोझान के रास्ते पे उन्हें फेंक दिया।

अब ... झेन आश्रम में बड़ी सावधानी बरती जाती है। क्योंकि प्रत्येक चीज का अपरिसीम सम्मान है। अन्न तो ब्रह्म है। इसलिए कोई झेन साधु, कोई झेन साधक ऐसे चावल और गेहूं को फेंक नहीं सकता रास्ते पर। इसमें कोई अर्थशास्त्र का सवाल नही है। यह कोई गांधीवादी बचायत और किफायत नही है। यह सवाल

नहीं है। सवाल यह है कि प्रत्येक चीज का समादर है। यह कोई कंजूसी नहीं है। अर्थशास्त्र से इसका कोई लेना-देना नहीं है। इसका संबंध तो बड़े अध्यात्म से है। प्रत्येक चीज का सम्मान! तो भोजन करते वक्त भोजन को भी नमस्कार कर के ही भोजन शुरू करना है। भोजन करते वक्त पहले परमात्मा को भोग लगा देना है, तब भोजन शुरू करना है। आज फिर उसने अवसर दिया! आज फिर घड़ी आयी भोजन की! एक दिन और मिला! उसकी अनुकम्पा अपार है! ऐसे भाव से।

तो किसने फेंके ये चावल के दाने? आश्रम में ऐसा कभी भी न हुआ था। तो तोझान के मन में विचार उठा देख कर, किसने फेंके ये चावल के दाने, किसने फेंके ये गेहूं। कहते हैं, उसी वक्त देवताओ ने उसके दर्शन कर लिये। क्योंकि जब विचार उठा तो बादल घिरा। जब बादल घिरा तो आकृति आ गई। उस वक्त पकड़ लिया देवताओं ने तोझान को। एक क्षण को ही उठी लहर, पर उठ गई। एक क्षण को कुछ सघन हो गया, भीतर एक तनाव आ गया: 'किसने, क्यो फेंके ये? यह कैसी गैर-सावधानी है? यह कौन है जो असावधानी से जी रहा है?' एक प्रश्न उठ गया। एक समस्या आ गई। एक चिंता आ गई। बादल घिरे। क्षण भर को सब अधेरा हो गया। उस क्षण में देवताओं ने दर्शन कर लिये। फिर खुल गये बादल।

तोझान हंसा। उसने कहा, 'तो अच्छा, यह शरारत है!' उसने देवताओ से कहा, 'अच्छा तो यह शरारत है!' क्योकि जब तोझान का चेहरा आया और देवताओ ने तोझान को देखा, तो तोझान ने भी देवताओ को देख लिया। उसने कहा, 'अच्छा, तो यह तुम्हारी शरारत है!'

जरा-सा विचार, और तनाव पैदा हो जाता है। निर्विचार, कि आकाश पैदा हो जाता है।

तो श्याम-श्याम रटने से कुछ भी न होगा। रटन ही तनाव बनेगी, बादल बनेगी। राम चदरिया ओढ लेने से कुछ भी न होगा। सब चादर उतार देनी है। जिस क्षण तुम्हें पता भी न रहेगा कि परमात्मा की प्रतिमा कैसी, नाम भी याद न रहेगा कि उसका नाम क्या है, उसका धाम क्या है, पता-ठिकाना क्या है; जिस क्षण तुम अवाक, आश्चर्यचकित, अवाक, मौन, निराकार में खडे हो जाओगे—फिर कोई सांझ न होगी; फिर सुबह-ही-सुबह है।

परमात्मा के जगत में सुबह-ही-सुबह है, आदमी के जगत में सांझ-ही-सांझ है। आदमी के जगत में सुबह होती है सिर्फ सांझ को लाने के लिए। आदमी के जगत में जन्म होता है केवल मृत्यु की तरफ जाने के लिए। यहां जन्म भी मौत की तरफ एक कदम है। यहा सुख भी केवल दुख को पाने की व्यवस्था है। परमात्मा के जगत में फिर कोई सांझ नहीं है। वह तो सदा ही मौजूद है।

उलटा उधर नकाब तो परदे इधर पड़े
आंखों को बंद जलवए दीदार ने किया।

तुम किसकी प्रतीक्षा कर रहे हो ? उसका ही जलवा है । उसके ही दर्शन की रोशनी है सब तरफ । तुम किसे खोजते हो ? कहीं उसकी रोशनी के कारण तुम आंखें बंद किये तो नहीं बैठे ?

उलटा उधर नकाब तो परदे इधर पड़े ।

परमात्मा जैसे ही अपना घूंघट उठाता है, तुम्हारी आंखें बंद हो जाती हैं ।

उलटा उधर नकाब तो परदे इधर पड़े

आंखों को बंद जलवए दीदार ने किया ।

उसकी रोशनी तुम झेल नही पाते, आंख बंद कर लेते हो । जिस दिन तुम उसकी रोशनी झेल पाओगे, कंकड़-पत्थर में भी उसे छिपा पाओगे । कंकड़-पत्थर मान के तुमने अपनी आंखें बंद कर ली हैं । फिर से खोलो । आंख खोलो ! दर्शन को उपलब्ध होओ !

जिन्होंने उसे पाया है, वे कहते हैं . दो दुख हैं जीवन में । एक, उसे पाने के पहले; एक, उसे पाने के बाद । पाने के पहले का दुख नकारात्मक है । पाने के बाद का दुख बड़ा विधायक है । पाने के बाद के दुख में बड़ा रस है । उस पीड़ा में बड़ी मधुरता है, मधुरिमा है । इसलिए तो नारद कहते है, भक्त भगवान से प्रार्थना करता है : ' मेरे विरह को मत मिटा देना । ' यह पाने के बाद की पीडा है । तब एक खेल शुरू होता है । वह खो-खो के फिर-फिर पाता है; आंख बंद-बंद करके फिर खोलता है ।

तुमने कभी खयाल किया ! कोई बहुत चमत्कारी अनुभव होता हो, बड़ी गहन सुबह हुई हो, सूरज निकला हो, बड़ा प्रीतिकर हो वातावरण--तुम देखते हो, फिर तुम आंख बंद करके, फिर खोल के देखते हो । एक क्षण को आंख बंद कर लेते हो ताकि खो जाये, ताकि आख ताजी हो जाये । फिर देखते हो ।

परमात्मा को जिन्होने पाया है, वे कहते हैं : दो दुख हैं । एक तो उसे पाने के पहले का दुख । वह कुछ भी नही है । वह तो सिर्फ उजाड़ रेगिस्तान जैसा था । एक उसे पाने के बाद का दुख । क्योंकि पाने के बाद, और पाने की अदम्य लालसा जगती है । यह कोई ऐसी बात थोड़ी है कि पूरी हो जाती है कभी । परमात्मा कुछ ऐसा थोड़ी है कि पा लिया, पा लिया । इधर तो पाया कि और भी पाने की आकांक्षा जगती है । यह तो सागर अन्तहीन है । इसका कोई कूल-किनारा नही है ।

ज़ाहिरा दुनिया जिसे महसूस कर सकती नहीं

हो गई है मुझमें इक ऐसी कमी तेरे बगैर ।

मगर यह तो जानने के बाद की बात है । जानने के पहले तो हमें पता ही नहीं कि हम क्या खो रहे हैं । जानने के पहले तो हमें पता ही नहीं है कि हम सम्राट हैं और भिखारी की तरह भटक रहे हैं । जानने के बाद--

ज़ाहिरा दुनिया जिसे महसूस कर सकती नहीं

हो गई है मुझमें इक ऐसी कमी तेरे बगैर

तुझसे छूट कर कितना फीका पड़ गया है रंगेगुल
हो गईं बेले की कलियां सांवली तेरे बगैर
कल जहां जर्रा--जर्रा तूरदर आगोश था
आज इस घर में नहीं है रोशनी तेरे बगैर
दिल नहीं झुकता है पहले की तरह सजदों के साथ
नामुकम्मिल है मजाकेबंदगी तेरे बगैर ।

और तो और, प्रार्थना में भी मन नहीं लगता अब । जिसने परमात्मा की एक झलक पा ली, फिर प्रार्थना में भी मन नही लगता; क्योंकि प्रार्थना में भी उसकी कमी ही खलती है।

दिल नही झुकता है पहले की तरह सजदों के साथ
नामुकम्मिल है मजाकेबंदगी तेरे बगैर ।

किसी को दिखाई भी न पड़ेगा बाहर से। परमात्मा को पाना, संसार में कुछ पा लेने जैसी बात नही है । एक मकान बना लिया, बना लिया--बात खत्म हो गई । एक पत्नी से विवाह करना था, रचा लिया--बात खत्म हो गई। परमात्मा से तो सिर्फ बात शुरू होती है, खत्म कभी नही होती । इसलिए तो कहता हूं : सुबह-ही-सुबह है, सांझ नहीं आती । यात्रा का प्रारंभ तो है, फिर अंत नही है। सागर में उतरते तो हैं, लेकिन फिर किनारा नही मिलता । लेकिन तब एक तरफ तो पीड़ा भी सालती है कि और मिल जाये, गहन अतृप्ति जगती है, एक दिव्य असंतोष पैदा होता है, और दूसरी तरफ हर तरफ से उसकी झलक भी आने लगती है। रह-रह के उसके झोंके आ जाते है हवा के। रह-रह के उसकी गंध तैर जाती है।

बहार जब भी चमन मे दिये जलाती है
हुजूमे-गुल से मुझे तेरी आंच आती है ।

बहार जब भी चमन में दिये जलाती है--और जब वसंत आ जाता है और बगीचों में दीये जलते है, फूलो के दीये जलते हैं...हुजूमे-गुल से मुझे तेरी आंच आती है। तब फूलो के गुच्छो से मुझे तेरी आंच आती है। हर तरफ जीवन उसी की आंच देने लगता है। हर श्वास उसी की श्वास है। हृदय में दौड़ते हुए रक्त-कण उसी के है। तो एक तरफ तो सब तरफ से उसकी खबर मिलने लगती है, और दूसरी तरफ, और चाहिए, और चाहिए, और चाहिए, क्योंकि दूसरा किनारा नही मिलता ।

भक्त भगवान को पा के और भी विरह में पड जाता है। यह भक्ति का विरोधाभास है। जिन्होने नही पाया है, वे तो कभी-कभी रोते है उसके लिए, कभी-कभी श्याम-श्याम की रटन करते है; जिन्होंने पाया है, उनके रोने का तुम्हें कुछ पता ही नही। वे रोते ही रहते है। कभी रोते है, कभी नही रोते-- ऐसा नही, रोते ही रहते हैं। रटन करते है, ऐसा भी नही है; लेकिन फिर भी रटन होती रहती है। दूर गहन गहरे हृदय में पुकार चलती ही रहती है ।

परमात्मा एक अनन्त यात्रा है; ऐसा तीर्थ है जिसकी तरफ हम चलते तो हैं, लेकिन कभी पहुंच नहीं पाते। परमात्मा गंतव्य नहीं है। हम उसकी तरफ गति करते हैं, लेकिन ऐसा कभी नहीं होता कि हम कह दें, बस आगे और नहीं। अगर ऐसा होता तो परमात्मा को अनन्त कहने का कोई भी अर्थ न था। अगर आगे और नहीं तो परमात्मा भी सांत है, पूरा हो गया। नही, सदा शेष है। यही दुविधा भी है, यही सौभाग्य भी। नहीं तो सोचो, जिसने पा लिया वह क्या करता ? ऊब के थक के, बैठ जाता : 'अब क्या करूं ? अब कहां जाऊं ? अब क्या बनूं ? अब क्या हो जाऊं ? अब किसको खोजूं ?'

अनन्त है। रोज-रोज नये-नये शिखर उसके पुकारते हैं। रोज नयी चुनौती आ जाती है। वह बुलाता ही चला जाता है। तुम पास भी आते चले जाते हो और फिर भी उसे छू नही पाते।

'आपकी शरण आयी हूं, स्वीकार करो! कहीं चूक न जाऊं!'

चूकने का उपाय नही है। हां, तुम मानना चाहो तो माने रह सकते हो कि चूके हो। चूकना तुम्हारी भ्रांति है। जिस दिन जानोगे उस दिन हंसोगे–हंसोगे इस मूढ़ता पर कि अब तक कैसे मैंने माने रखा कि चूक गये थे, परमात्मा को चूक गये थे, भूल गये थे! यह कैसे संभव हुआ था कि अब तक मैं समझ न पाया था कि वह हमेशा मौजूद है, सब तरफ मौजूद है!

कबीर कहते हैं कि मुझे देख-देख के बड़ी हंसी आती है कि मछली सागर में प्यासी है। मछली सागर में प्यासी है! और सागर को मछली खोज रही है, कहां है।

ईश्वर की सारी खोज ऐसे ही है जैसे मछली सागर को खोजती हो, कहां है। इतने निकट है कि खोजने का अवकाश भी कहां है! मछली सागर से ही बनती है, सागर में ही पैदा होती है। सागर ही मछली के भीतर भी लहरें लेता है, बाहर भी लहरें लेता है। फिर सागर में ही लीन हो जाती है एक दिन, खो जाती है। सागर की ही एक लहर है मछली। थोड़ी ज्यादा ठोस, थोड़ी देर ज्यादा टिक जाने वाली, थोड़े ज्यादा दिन उछल-कूद कर लेती है और लहरों की बजाय – लेकिन लहर सागर की है।

इसलिए घबड़ाओ मत। चूकने का उपाय नहीं है। मैं तुम्हें जो समझा रहा हूं, वह पाने का उपाय नही बता रहा हूं; तुम्हें सिर्फ यह समझा रहा हूं कि तुमने चूकने के लिए जो उपाय बना रखे हैं, वे छोड़ दो। साधारणतः लोग कहते हैं कि हमें विधि बताओ कि कैसे हम परमात्मा को पा लें। मैं तुमसे कहता हूं, मैं तुम्हें जो विधि बतला रहा हूं, वह परमात्मा को पाने की नहीं है; क्योंकि उसको तो कभी खोया नहीं, वह तो बात ही छोड़ दो, वह बकवास तो मेरे सामने उठाओ ही मत। कोई मछली मुझसे पूछे सागर कहां है, मैं जवाब देने वाला नही हूं; क्योंकि मैं क्यों फिजूल

पंचायत में पड़ूं। वह तो नासमझ है ही और मुझको भी नासमझ बनाने की तैयारी है। तो मैं तो यही समझने की कोशिश करूंगा कि यह मछली कैसे भूल गई है, यह मछली कैसे अपरिचित रह गई है! इसके अपरिचय को तोड़ देना है।

परमात्मा से परिचय थोड़ी बनाना है; अपने अपरिचय के जो ढंग हैं, वे तोड़ देने हैं। परदे उठा लेने हैं, जो हमने डाले हैं–परमात्मा तो सामने ही है। उसके चेहरे पे कोई घूंघट नही है, हमारी ही आखों पर परदा है। फिर परदा डाले तुम कहीं भी घूमते रहो, काशी कि काबा, कोई फर्क न पड़ेगा। तुम्हारी आंख पे परदा है, तुम जहां जाओगे–तुम्हारी आंख का परदा, तुम्हारी आंख का परदा–जन्मों-जन्मों तक तुम्हें घेरे रहेगा।

इसलिए यह तो पूछो ही मत कि कही चूक न जाऊं। कोई उपाय नही चूकने का। अब तक कोई चूक ही नही पाया है। हां, लेकिन तुम अगर मानना चाहो कि चूक गये हैं तो क्या करे, सागर भी क्या करे? मछली को कैसे समझाये कि मैं यहां हूं? मछली की अगर यही मौज है कि चूकना चाहती है, चूकती रहे।

और कहा है, आपकी शरण आयी हूं, स्वीकार करो। अस्वीकार कर सकता होता तो स्वीकार करता। मुझसे लोग पूछते हैं कि आप हर किसी को संन्यास दे देते हैं! करूं क्या? अस्वीकार करने का उपाय नही है। किसको अस्वीकार करूं? मैं तो उनको भी देना चाहता हूं, जो लेने नही आये हैं, मगर क्या करूं! जो आ जाता है उसको इनकार करने का तो सवाल कैसे उठे? तुम्हारे आने के पहले भी तुम्हें स्वीकार किया हुआ है। ऐसा नहीं है कि तुम्हारे बाबत सोचता था कि तुम्हें स्वीकार करना है। स्वीकार मेरी भाव-दशा है। ऐसे एक-एक आदमी के बाबत तो सोचूंगा भी कैसे कि किस-किसको स्वीकार करूं? स्वीकार मेरी भाव-दशा है। अस्वीकार करने का मेरे पास उपाय नही है। निर्णय तुम्हारा है, इकतरफा है। मुझे स्वीकार कर लो या मुझे अस्वीकार कर दो, यह तुम्हारी बात है। मेरी तरफ से तुम स्वीकृत हो, स्वीकार करो तो, अस्वीकार करो तो।

और घबड़ाओ मत। प्यास आ गयी है तो पानी भी आयेगा। जानने वाले तो कहते हैं, पानी पहले आ गया होगा, तभी प्यास आयी है। क्योंकि जानने वाले कहते है, परमात्मा बच्चे को पैदा करता है, उसके पहले मा के स्तन में दूध भर देता है। देखा है चमत्कार! रोज घटता है, लेकिन देखते नही! इधर मां गर्भवती हुई, उधर बच्चा बढ़ने लगा। अभी बच्चा आया भी नही है बाहर, अभी दूध पीने वाला तैयार ही हो रहा है, अभी रास्ते पर है–लेकिन दूध तैयार हो गया! मां के स्तन दूध से भर जाते है। बच्चा जब आयेगा तब आयेगा, लेकिन परमात्मा तैयारी पहले से कर लेना है।

ऐसा ही सारे जीवन में है। तुम नाहक ही दौड़-धूप करते हो, यह बात अलग है। तुम नाहक शोरगुल मचाते हो। वह तो बच्चे को भी थोड़ी बुद्धि हो तो वह भी

बड़ी चिंता करेगा गर्भ में पड़ा-पड़ा कि पता नहीं, अब जन्म के बाद क्या होता है, देखें ! न तो कोई बैंक-बैलेंस है, न कोई जान-पहचान है, अपरिचित दुनिया में जाते हैं, भाषा भी पता नहीं कि क्या भाषा बोलनी पड़ेगी ! किस तरह के लोगों से मिलना होगा, कुछ पता नहीं है। तो बच्चा भी अगर समझदार हो जाये, जैसा कि कुछ लोग समझदार हैं, तो रुक जाये वहीं कि जाना नहीं। यहां सब मजे से चल रही है, ठीक से चल रही है, कहां की झंझट उठानी ! भूख लगेगी तो कौन दूध देगा ! प्यास लगेगी तो कौन पानी देगा !

मां के पेट में तो श्वास भी मा ही लेती है, उसी से बच्चे को ऑक्सीजन मिलती है। श्वास भी वह खुद नहीं लेता। मां के ही भोजन पर पलता है। लेकिन उसे पता नही कि जिसने उसे बनाया है, उसने इन्तजाम कर रखा है। वह आये, उसके पहले दूध तैयार है।

मनोवैज्ञानिक कहते है कि पुरुषों को इतनी ज्यादा रस की, आकर्षण की बात स्त्री में स्तन क्यो हैं ? पुरुष के मन में स्त्री के स्तन का बड़ा आकर्षण है ! काव्य-शास्त्र भरे पड़े है। कविताएं उरोजों के, स्तनों के आसपास घूमती है। कहानियां ...! क्या कारण है ? वह भी परमात्मा की व्यवस्था है। क्योंकि जो पिता बनने जा रहा है, इसके पहले कि पिता बने, वह अपने बेटे के लिए ठीक उरोज, भरे उरोजों का इन्तजाम कर ले रहा है। वह भी परमात्मा का आयोजन है। पुरुष के मन में स्त्री के स्तन का इतना आकर्षण है – वह आकर्षण इसीलिए है। वह प्रकृति की व्यवस्था है, क्योंकि अगर स्त्री के स्तन ठीक न हों, सुडौल न हों, भरे-पूरे न हों, तो बच्चा भूखा मरेगा। तो पुरुष उस स्त्री को खोजेगा, जिसके स्तन भरे-पूरे हैं। वह उसे सुंदर मालूम होगी। सुंदर वगैरह मालूम होना तो ठीक है, मगर पीछे प्रकृति बड़ा आयोजन कर रही है; वह यह कह रही है कि यह स्त्री है जो तेरे बच्चे की मां बन सकेगी। यह बच्चे को बचाने का आयोजन चल रहा है, तुम धोखे में पड़ रहे हो – तुम समझ रहे हो, तुम सौंदर्य का इन्तजाम कर रहे हो।

इसलिए जिन स्त्रियों के स्तन ठीक नहीं हैं, वे धीरे-धीरे खो जायेंगीं, उनको पति न मिलेंगे, उनकी संतान न होगी। वे धीरे-धीरे खो जायेंगी।

जीवन के रहस्य को अगर तुम समझो तो यहां प्यास के पहले पानी तैयार है; श्वास के पहले हवा तैयार है। और इसकी समझ जिसको आ गई, उसी के जीवन में श्रद्धा का आविर्भाव होता है।

हो नही सकता कि शीशा आए और सहबा न आए
मय भी आएगी 'अदम' जब आबगीना आ गया।

–जब प्यालियां आ गईं, जब मधुपात्र आ गये, तो शराब भी आती ही होगी।

हो नहीं सकता कि शीशा आए और सहबा न आए
मय भी आएगी 'अदम' जब आबगीना आ गया।

—जब प्यालियों की खनक आने लगी, तो शराब भी आती ही होगी। तो जिसके जीवन में परमात्मा को खोजने की आकांक्षा आ गई, प्यास आ गई — अब घबड़ाओ मत, राह पर हो। ठीक दिशा में उन्मुख हो गये हो। अब डरो मत, अब प्यास को पकड़ने दो कि तुम्हे पकड़ ले झंझावात की तरह, आंधी-अंधड़ की तरह। अब उड़ाने दो प्यास को कि बन जाये तुम्हारे पंख। अब मथने दो प्यास को कि बन जाये आग और जला दे तुम्हारे अहकार को।

हो नहीं सकता कि शीशा आए और सहबा न आए
मय भी आएगी 'अदम' जब आबगीना आ गया।

दूसरा प्रश्न : कल के प्रवचन में आपने नकक्टे साधु की कहानी सुनायी, जिसके चक्कर मे पड़ के पूरा गाव नाक गंवा बैठा था। क्या करीब-करीब यही स्थिति आपके संन्यासियो की नही है।

देखो, मेरी नाक तुम्हें साबित दिखाई पड़ती है या नही! क्योंकि कहानी के होने के लिए पहले तो मै नकक्टा होना चाहिए। न तो गेरुआ वस्त्र पहने हूं, न माला लटकाई है। अपनी ही नाक नहीं कटी, तुम्हारी क्यो काटूंगा? इसलिए कहानी यहां लागू हो नही सकती।

हां, जिन मित्र ने पूछा है, उनको जरा अपनी नाक टटोल के देख लेनी चाहिए। कही ऐसा तो नही है कि है ही नही अब कटाने को! कही पहले कटा तो नही बैठे! क्योंकि मैं मुश्किल से ऐसे आदमी के करीब आता हूं जो नकक्टा न हो। अगर तुम हिंदू हो तो नाक कटा चुके — हिंदुओ के हाथ कटा ली। अगर मुसलमान हो तो कटा चुके — तो मस्जिद में कटायी, मंदिर में न कटायी। अगर जैन हो तो कटा बैठे।

यह प्रश्न किसी नकक्टे का होना चाहिए, जो कही कटा बैठा है और जिसे बड़ी बेचैनी हो रही है। और या फिर किसी ऐसे आदमी का होना चाहिए, जिसका अहंकार उसकी नाक पे बैठा है।

अहंकारी की नाक देखी! अहंकारी नाक की भाषा में बोलता है। उसका सारा अहंकार नाक पे होता है। अगर नाक पे अहंकार बैठा हो, इससे बेचैनी मालूम हो रही है, तो कटा ही लो। न रहेगी बांस, न बजेगी बांसुरी! नाक ही न रहेगी तो अहकार को बैठने की जगह न रह जाएगी। कटा ही लो प्यारे!

कही कोई गहरी अड़चन होगी प्रश्नकर्ता को। मैं जानता हूं, अड़चन होती है। यहा इतने लोग गैरिक वस्त्रों मे हैं। यहाँ इतने लोग संन्यासी के वेश में हैं। तुम जब गैर-सन्यासी की तरह आते हो, तुम हीन-भाव अनुभव करते हो। लक्ष्मी कल ही मुझे कहती थी कि दफ्तर में लोग उससे आ के कहते हैं कि सफेद कपड़ों में हम यहां ऐसे मालूम पड़ते है जैसे अजनबी हैं, पराये हैं, बाहर-बाहर हैं। स्वाभा-

विक है। यह एक परिवार है। यह मेरा परिवार है। वस्त्रों का ही थोड़ी सवाल है; वस्त्र तो केवल इंगित हैं, इशारे हैं। जिन्होंने गैरिक वस्त्र स्वीकार किये हैं, उन्होंने केवल इतना कहा है कि इस इशारे से हम कहते हैं कि अब हम तुमसे राजी हैं। यह तो सिर्फ एक भाव-भंगिमा है। उन्होंने यह कहा है कि अब हम हमारा तर्क छोड़ते, विवाद छोड़ते – अब तुम जहां ले चलोगे, चलेंगे; चलो, गड्ढे में ले चलोगे तो गड्ढे में चलेंगे; भटकाओगे तो भटकेंगे, लेकिन तुम्हारे साथ भटकेंगे। जिन्होंने मुझे चुना है उन्होंने यह मान के चुना है – इसलिए नहीं कि मैं उन्हें ठीक जगह ही पहुंचा दूंगा। इसका तो पता कैसे होगा जब तक पहुंचोगे न ? इसका तो कोई उपाय नहीं है, पहले से जान लेने का। जिन्होंने मुझे चुना है उन्होंने यह मान के चुना है कि चलो, अब ठीक जगह भी पहुंचना अगर इस आदमी के बिना होता हो तो भी इस आदमी के बिना नहीं चलना है। अगर यह गड्ढे में ले जायेगा तो इसके साथ गड्ढे में सही। उन्होने अपने विचार करने की, अपना निजी विचार करने की, जो अस्मिता थी, वह छोडी है। कपड़े तो गौण हैं। कपड़ों में क्या रखा था ? कपड़ों से कहीं कोई संन्यासी हुआ है ! लेकिन वह तो इंगित है और इंगित समझने चाहिए।

ऐसा हुआ कि रामकृष्ण की एक रात बैठक चलती थी। कुछ बैठे थे लोग। कोई इसी तरह के सज्जन, जिन्होंने यह प्रश्न पूछा है, वहां पहुंच गये। सभी जगह पहुंच जाते हैं। इस तरह के लोग क्यों भटकते रहते हैं, यह भी बड़े आश्चर्य की बात है ! अपने घर ही रहें ! अपनी नाक बचानी है, अपने घर ही रहो; यहां-वहां जाने में कहीं कट ही जाये ! कोई रौ आ जाये, कोई सनक चढ़ जाये, किसी भावावेश में कटवा बैठो, फिर पछताओगे !

रामकृष्ण की बैठक में कोई पहुंच गये ज्ञानी। पंडित थे, जानकार थे शास्त्रों के। रामकृष्ण कह रहे थे कि ओंकार के नाद से बड़ी उपलब्धि होती है। ज्ञानी को अड़चन पड़ी। उसने कहा, ठहरें। क्योंकि ज्ञानी जानता है कि रामकृष्ण गैर-पढ़े-लिखे हैं, शास्त्र का तो कुछ पता नहीं है, हाक रहे हैं; संस्कृत तो आती नहीं, कुछ भी कहे चले जा रहे हैं। वह अपना ज्ञान दिखाना चाहता था। उसने कहा कि शब्दों में क्या रखा है ! ओंकार तो केवल एक शब्द है, इसमें रखा क्या है ? इससे कैसे आत्मज्ञान हो जायेगा ?

बात तो पते की ही कह रहा था, लेकिन खुद आदमी पते का नहीं था। रामकृष्ण ने उसकी तरफ देखा, चुप बैठे रहे। वह और जोर-जोर से शास्त्रों के उल्लेख करने लगा और उद्धरण देने लगा। कोई आधा घंटा बीत गया, तब रामकृष्ण एकदम से चिल्लाये : 'चुप, उल्लू के पट्ठे ! बिलकुल चुप ! अगर एक शब्द बोला आगे तो ठीक नहीं होगा।'

'उल्लू के पट्ठे' तो मैं कह रहा हूं, रामकृष्ण ने ज्यादा वजनी गाली दी। तो

रामकृष्ण कोई छोटी-मोटी बकवास नहीं मानते थे; वे जब गाली देते थे तो बिलकुल नगद! वह आदमी घबड़ा गया, तमतमा गया एकदम! क्रोध भर गया आंख में! जोश आ गया। सांझ थी ठंडी, शीत के दिन थे, पसीना-पसीना हो गया। पर हिम्मत भी न पड़ी, क्योंकि अब रामकृष्ण ने इतने जोर से कहा है और अगर कुछ गड़बड़ की तो मारपीट हो जायेगी; वहां सब रामकृष्ण के भक्त थे। फिर, रामकृष्ण फिर अपना समझाने लगे कि ओंकार...। कोई पांच-सात मिनट बाद उस आदमी की तरफ देखा और कहा, 'महानुभाव! माफ करना। वह तो मैंने सिर्फ इसलिए कहा था कि देखें शब्द का असर होता है कि नहीं! तुम तो बिलकुल तमतमा...। 'उल्लू के पट्ठे' का इतना असर, तो जरा सोचो तो ओंकार का! पसीना-पसीना हुए जा रहे हो, मरने-मारने पर उतारू हो। वह तो यह कहो कि लोग मौजूद हैं, नहीं तो तुम मेरी गर्दन पे सवार हो जाते। हाथ-पैर तुम्हारे कंप रहे हैं। जरा-सा शब्द 'उल्लू के पट्ठे' मंत्र का काम कर गया। जरा सोचो तो! शास्त्र काम न आये। इत्ता तो याद रखते कि शब्दों में क्या रखा है!'

वस्त्रों में क्या रखा है, पूछते हो? माला में क्या रखा है, पूछते हो? उल्लू के पट्ठे! थोड़ा सोचना, थोड़ा विचार करना!

आदमी जैसा है, छोटी-छोटी बातों से जीता है। क्षुद्र-क्षुद्र बातों से बन के, मिल के तुम्हारा व्यक्तित्व बना है। वह जिसने गैरिक वस्त्र स्वीकार किये हैं, वह भी जानता है, तुमसे ज्यादा भलीभांति जानता है कि वस्त्रों से कुछ भी होने वाला नहीं है; लेकिन उसने एक कदम उठाया है; होने की दिशा में थोड़ी हिम्मत की है; पागल होने की हिम्मत की है। मेरे साथ चलने की हिम्मत पागल होने की हिम्मत है। क्योंकि मेरे साथ चलने का मतलब है समाज में अड़चन होगी, परिवार में अड़चन होगी। अगर पति हो तो पत्नी झंझट देगी। अगर पत्नी हो तो पति झंझट देगा। अगर बाप हो तो बच्चे झंझट देंगे।

सन्यासी मेरे पास आ के कहते हैं कि बेटे कहते हैं, पिताजी आप घर में ही पहनो ये वस्त्र तो ठीक है, क्योंकि स्कूल में दूसरे बच्चे हम पे हसते है कि तुम्हारे पिताजी को क्या हो गया! भले-चंगे थे, यह क्या इनको धुन सवार हुई! पत्नियां मेरे पास आती हैं। कहती हैं कि जरा समाज में जीना है, कम-से-कम इतना तो कर दो कि विवाह इत्यादि के अवसर पे पतिदेव गेरुआ पहन के न पहुंचें; नहीं तो दूल्हा तो एक तरफ रह जाता है, ये दूल्हा मालूम पड़ते हैं। और स्त्रियां देख के हंसती हैं कि इनको क्या हो गया!

कोई मेरे साथ खड़े हो के तुम्हें कुछ राहत थोड़ी मिल जायेगी! अड़चन में डालूंगा। यह तो अड़चन में डालने की शुरुआत है। जैसे-जैसे पाऊंगा कि तुम्हारी अंगुली हाथ में आ गई, पहुंचा पकड़ूंगा। यह तो शुरुआत है। आगे-आगे देखिए होता है क्या!

तीसरा प्रश्न : भीतर विचारों की ऐसी भीड़ है कि भगवान का भी भगवान जैसा गुरु पा कर भी इस जन्म में पहुंचने की आशा नहीं बंधती। बिना कारण आंसू बहाता हूं, रोता हूं, चीखता-चिल्लाता हूं, फिर भी मौका आने पर न अहंकार से बच पाता हूं और न भीतर की बड़बड़ाहट से। प्रभु श्री, यदि इस जन्म में भी नहीं पहुंच पाया, तो फिर क्या अगला पथ वैसा ही कोरा रह जायेगा ? आप भी सहायता न कर पायेंगे क्या ?

नहीं, चिंता का कोई भी कारण नहीं है। विचारो की भीड़ है। छुटकारा आसान भी नहीं। लेकिन छुटकारा आसान नहीं है, इससे यह मत समझना कि विचारों की भीड़ बड़ी बलशाली है। नहीं। छुटकारा इसीलिए कठिन मालूम पड़ रहा है कि तुमने विचारों की भीड़ से लड़ना शुरू कर दिया है, वहां भूल हो रही है। ताकत विचारों की नहीं है – तुम्हारे गलत आयोजन की है। जैसे अंधेरा कमरे में भरा हो और तुम धक्के दे के उसे बाहर निकालना चाहो और अंधेरा तो नहीं निकलेगा ऐसे, तो तुम्हारे मन में लगेगा, अंधेरा बड़ा प्रबल है, बड़ा बलशाली है। जन्म-जन्म भी धक्के मारो अंधेरे को तो न निकलेगा, यह सच है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि अंधेरा बलशाली है। इससे केवल इतना ही पता चलता है कि धक्का मारना सम्यक् उपाय नहीं है। जितनी ताकत धक्का मारने में लगा रहे हो उतनी ताकत दीये को जलाने में लगाओ। दीया खोजो। जरा-सा छोटा-सा दीया, जरा-सी दीये की बाती– और अंधेरा बाहर हो जायेगा। धक्के मारने से अंधेरा बाहर नहीं होता, क्योंकि अंधेरा है ही नही, धक्का मारोगे कैसे उसे ? जो नहीं है उसे धकाया नहीं जा सकता। उसकी ताकत नहीं है कुछ भी। उसका बल इसी में है कि वह नहीं है। कुर्सी होती, फर्नीचर होता, निकाल बाहर कर देते। पति-पत्नी होते, उन्हें भी धक्का दे के बाहर कर देते। अंधेरे को कैसे करोगे ? दीया जलाओ ! सम्यक् आयोजन करो ! ठीक साधन खोजो !

विचार अंधेरे की भांति है। तुम उन्हें धक्के दे के बाहर न कर पाओगे। जितना धक्का दोगे उतना ही पाओगे कि वे बलशाली होते जा रहे हैं। उतने ही तुम कमजोर मालूम पड़ोगे। हर बार हारोगे। हर बार हारोगे। आत्मविश्वास खो जायेगा। फिर रोओगे, चीखोगे, चिल्लाओगे। उससे भी क्या होगा ? कुछ भी न होगा। क्योंकि न तो अंधेरा सुनेगा रोने को, न चीखने को, न चिल्लाने को। अंधेरा तो मानता है एक ही भाषा – वह है प्रकाश की भाषा। और विचार भी मानते हैं एक ही भाषा – वह है साक्षी-भाव की भाषा।

साक्षी बनो ! जितनी बार कहा जाये उतना ही थोड़ा है : साक्षी बनो ! इसमें अतिश्योक्ति नहीं हो सकती। साक्षी एकमात्र सूत्र है। विचारों से लड़ो मत – देखो। चलने दो, क्या बिगाड़ते हैं ? चलने दो जैसे राह चलती है, कारें गुजरती हैं, बसें गुजरती हैं, बैलगाड़ियां गुजरती हैं, अच्छे-बुरे-भले लोग गुजरते हैं, शैतान-

साधु गुजरते हैं – राह चलती है, तुम राह के किनारे बैठे रहो, देखते रहो चलती राह को। जैसे राह बाहर चल रही है ऐसे ही विचारों का कारवां भी भीतर चल रहा है – लेकिन वह भी तुमसे बाहर है। शरीर के भीतर है – तुमसे बाहर है। तुम तो वह चैतन्य हो जो देखता है कि ये विचार चल रहे हैं।

तादात्म्य छोड़ो। दूर खड़े हो के देखते रहो, देखते रहो, देखते रहो – इतना भी रस मत लो कि इन्हें अलग करना है। इतना भी रस लिया कि अड़चन शुरू हुई, संबंध बने।

मित्र से ही संबंध नहीं बनते, शत्रु से भी बन जाते हैं। जिसके तुम पक्ष में हो उससे भी संबध बनता है। जिसके तुम विपक्ष में हो उससे भी संबंध बनता है – विपक्ष का सही। संबंध मत बनाओ। साक्षी का इतना ही अर्थ है : असंबंध, असंग। दूर खड़े देखते रहो। जैसे तुम किसी पहाड़ की चोटी पे बैठे हो और नीचे घाटियों में काफिले गुजर रहे हैं लोगों के, गुजरने दो, तुम्हारा क्या लेना-देना है! बाहर कोयल बोल रही है, कभी कोई कुत्ता भौंकेगा, कभी कोई कौवा कांव-कांव करेगा – इससे तुम अड़चन में नहीं पड़ते। तुम सिर नहीं धुन लेते कि अब क्या करें, यह कुत्ता भौंक रहा है! तुम सिर नहीं धुन लेते कि यह कौवा कांव-कांव कर रहा है! यह तुम्हारा मन भी कांव-कांव कर रहा है, भौंक रहा है – भौंकने दो! तुम इससे भी थोड़े दूर हट जाओ। तुम इससे भी थोड़े पीछे हट जाओ। और हटने में अड़चन नहीं है, क्योंकि तुम्हारा स्वभाव मन के पार है।

तो इसी क्षण पहुंचना हो सकता है, पूरे जन्म की बातें क्या करनी, आगे जन्म की चिंता क्या करनी! और ध्यान रखो, मेरी सहायता तुम्हे पूरी उपलब्ध है, उसमे रंचमात्र कमी नहीं है। लेकिन अकेली मेरी सहायता से क्या होगा? मै इशारा कर सकता हू, चलना तो तुम्हें ही पड़ेगा। मै औषधि बता सकता हूं, लेकिन पीना तो तुम्हें ही पड़ेगा। मै निदान कर सकता हूं, लेकिन मेरे निदान से हीतो कुछ न होगा। औषधि भी दे सकता हूं, उससे भी तो कुछ न होगा। औषधि का तुम्हें उपयोग करना पडेगा, तो ही बीमारी कटेगी। साक्षी की बात कर रहा हू; वह औषधि है। उसका उपयोग करो।

और ध्यान रखना –

हर प्रदीप की पृष्ठभूमि में
अंधकार अनिवार्य है
बिना सघनता क्षुद्र विरलता
कर सकती विस्तार नहीं
मिले बिना परिवेश शून्य का
सज पाता आकार नहीं।
हर प्रदीप की पृष्ठभूमि में

अंधकार अनिवार्य है।

अंधकार तुम्हारा दुश्मन भी नहीं है। जरा प्रदीप जला लो, फिर तो अंधकार भी सुख देगा। अंधकार की मखमली चादर प्रकाश को और हजार गुना प्रज्ज्वलित कर देती है। इसलिए तो दिन में तारे नहीं दिखाई पड़ते – हैं तो अपनी ही जगह; कहीं चले नहीं गये हैं; दिन में कुछ खो नहीं गये हैं, कहीं खो नही गये हैं, अपनी जगह हैं। पूरा आकाश तारों से भरा है, वैसा ही जैसा रात में; लेकिन तारे दिखाई नहीं पड़ते, उनको पृष्ठभूमि चाहिए अंधकार की। जब अंधकार घेर लेता है, तब तारे चमक आते हैं। अमावस की रात जैसे चमकते हैं वैसे कभी नहीं चमकते।

तो जीवन को सृजनात्मक दृष्टि से देखो। यहाँ कुछ बुरा है, ऐसा कह के लड़ो मत। जो बुरा है उसे पृष्ठभूमि बना लो; और जो शुभ है उसका दीया जलाओ – और तब तुम पाओगे, अशुभ ने भी शुभ को साथ दिया, अंधेरे ने भी दीये को ज्योतिर्मय किया। तब विचार भी ध्यान की पृष्ठभूमि बन जाते हैं। तब पाप भी पुण्य की पृष्ठभूमि बन जाते हैं। और तब संसार भी परमात्मा की खोज का उपाय हो जाता है। तब शरीर भी आत्मा का मंदिर हो जाता है।

मेरा पूरा दृष्टिकोण अनिंदा का है। किसी भी चीज की निंदा का एक ही अर्थ होता है कि तुम उसका उपयोग करना न जान पाये; तुम समझ न पाये कि इसका क्या करें। तुमने जिसे मार्ग का पत्थर समझा, वह प्रतिमा भी बन सकती थी। तुमने जिसे मार्ग का पत्थर समझा, वह मार्ग की सीढ़ी भी बन सकती थी। तुम पत्थर मान के बैठ गये और रोने लगे। मैं कहता हूं, सीढ़ी समझो, चढ़ो! मैं कहता हूं, अनगढ़ पत्थर देख के नाराज मत होओ, जरा छैनी उठाओ, गढ़ो!

जीवन में कुछ भी ऐसा नही है जिसका उपयोग न हो। पाप का भी उपयोग है, क्योंकि उसी से पुण्य की सुवास उठती है। विचार का भी उपयोग है, अन्यथा निर्विचार कैसे हो पाओगे? संसार की जरूरत है, अन्यथा सत्य को कैसे खोजोगे? भटकना भी जरूरी है, अन्यथा पहुंचोगे कैसे? एक बार तुम्हारे जीवन में सृजनात्मक भाव आ जाये और हर चीज का सृजनात्मक मूल्य आ जाये, तो तुम पाओगे, सब चीज का तुमने उपयोग करना शुरू कर दिया।

कूड़ा-करकट भी फेंकने जैसा नहीं है; उसका भी उपयोग हो सकता है। लेकिन तुम्हें सदियों से इस तरह की बातें सिखायी गई हैं – यह गलत, यह गलत, यह गलत; गलत और सही को विपरीत, दुश्मन की तरह खड़ा किया गया है; राम और रावण को लड़ाया गया है; भगवान और शैतान को खंडित करके अलग कर दिया गया है; पाप और पुण्य, दिन और रात – दुश्मन! इस दुश्मनी के भाव से तुम्हारी परेशानी हो रही है।

मैं तुमसे कहता हूं, दिन और रात दुश्मन नहीं हैं, एक ही खेल के हिस्से हैं। राम और रावण दुश्मन नहीं हैं; अन्यथा राम-कथा न बनेगी।

तुमने रामलीला में देखा ! परदे पर धनुष-बाण लिये खड़े हैं, लड़ रहे हैं, और परदे के पीछे राम और रावण बैठ कर गपशप कर रहे हैं, चाय पी रहे हैं। जिंदगी के परदे के पीछे भी मैंने ऐसा ही देखा है। वहां जो सामने नाटक करते दिखायी पड़ रहे थे दुश्मनी का, पीछे गले लग के बैठे हैं। होना भी ऐसे ही चाहिए; नहीं तो जीवन खंड-खंड हो के छितर जाता।

किसने सम्हाला है ? ये जिंदगी की सारी ईंटें किस सीमेंट से जुड़ी है ? ये शुभ और अशुभ साथ-साथ कैसे खड़े हैं ? साधु और असाधु कैसे साथ-साथ जुड़े हैं ? संयुक्त हैं। और एक बार तुम्हें यह समझ में आ जाये तो तनाव कम हो जायेगा। तब तुम पाओगे कि अगर कुछ अड़चन हो रही है, तो मेरी समझ-बूझ में कुछ कमी है।

मैंने सुना है, एक महिला को सितार सीखने की धुन सवार हुई। तो पहले ही दिन चाहती थी कि मेघ-मल्हार हो जाये। पहले दिन चाहती थी कि पशु-पक्षी आ जायें। बार-बार जा के खिड़की पे देख आती थी, अभी तक नहीं आये ! न कोई भीड़ जुड़ी। उलटे पति जो घर में बैठा था वह निकल के बाहर चला गया। बच्चे जो ऊधम कर रहे थे घर में, वह भी सन्नाटा हो गया, वे भी कहीं निकल गये। पास-पड़ोसियों ने द्वार-दरवाजे बंद कर लिये। तो उसने समझा कि निश्चित ही सितार में कुछ भूल है। जिस दुकान से सितार खरीद लाई थी, फोन किया कि आदमी भेजो, सितार में कुछ गड़बड़ है। आदमी आया, ठोक पीट के सब उसने कहा, बिलकुल ठीक है। आदमी वापस पहुंचा भी नहीं था कि फिर फोन। उसने कहा, 'भई इतनी जल्दी कैसे बिगड़ गया ?' उसने कहा कि न बजाओ तो सब ठीक रहता है, लेकिन बजाओ कि सब गड़बड़। तब उस आदमी को समझ में आया। उसने कहा कि 'देवी ! बजाना भी आता है ?'

सितार की भूल नहीं है – बजाना आता है कि नहीं !

कहते हैं, परम संगीतज्ञ, जिनको बजाने की कला आ जाती है, अगर बर्तनों को भी बजा दे तो सितार बज उठते हैं; कंकड़-पत्थरों को टकरा दें तो स्वरों का आरोह-अवरोह हो जाता है। सितार की भूल नहीं है। जीवन की कहीं कोई भूल नहीं है। बजाना न आया। थोड़ा बजाने की फिक्र करो। और बजाने का पहला सूत्र है : स्वीकृति। सब, जो परमात्मा ने दिया है, उसका कुछ-न-कुछ उपयोग है, निरुपयोगी तो हो ही नहीं सकता अस्तित्व में। होगा ही क्यों ? फिर तो अस्तित्व न होगा, अराजकता होगी। सब उपयोगी है। और जल्दी मत करना काटने-पीटने को कि यह गलत है, इसे अलग कर दो; यह गलत है, इसे अलग कर दो।

जैसे क्रोध है. अगर तुम क्रोध को काट डालो...अब वैज्ञानिकों के पास उपाय हैं कि शरीर की कुछ ग्रंथियां काट डाली जायें तो आदमी का क्रोध समाप्त हो जाता है। कुछ ग्रंथियां काट डाली जायें तो कामवासना समाप्त हो जाती है। तुम देखते

ही हो, सांड कैसे बैल हो जाता है ! ग्रंथि काट दी तो बड़ी सरल बात है यह तो। फिर ब्रह्मचर्य के लिए इतना उपद्रव क्यों मचाना। यह इतना सीधा हो जाता है कि सांड देखते-देखते बैल हो जाता है, तो जरा-सी ग्रंथियां काट डालो। क्रोध की भी ग्रंथियां हैं, उसके भी हारमोन हैं – काट डालो। आज नहीं कल, खतरा है कि दुनिया की सरकारें आदमी से क्रोध की, बगावत की, ग्रंथियों को काट देंगी। तो फिर कोई शोरगुल न होगा। फिर कोई हड़ताल न होगी। फिर कोई बगावत, विद्रोह न होगा, कोई क्रांति न होगी।

लेकिन तुम जरा सोचो, जिस आदमी के जीवन से क्रोध की ग्रंथि कट जाती है, उसके जीवन में करुणा पैदा नहीं होती, सिर्फ क्रोध का अभाव हो जाता है। उस आदमी का जीवन पहले से बदतर हो जाता है। अब क्रोध भी न रहा। रूखा-रूखा, सूखा-सूखा। अब कोई चीज उसे उद्वेलित नहीं करती, लेकिन करुणा का जन्म नहीं होता। क्योंकि करुणा तो तब पैदा होती है जब तुम क्रोध की वीणा को बजाना सीख जाते हो। वीणा तोड़ दी तुमने क्रोध की, तो क्रोध तो न होगा। जैसे कि अगर तुम वीणा फेंक आये बाहर, तो विसंगीत पैदा न होगा; लेकिन संगीत भी पैदा न होगा। क्रोध अगर तोड़ दो तो क्रोध तो पैदा न होगा, लेकिन करुणा भी पैदा न होगी, क्योंकि करुणा उसी वीणा का संगीत है। सजे हुए हाथ, सधे हुए हाथ उसी वीणा पर करुणा को बजाते हैं–बुद्ध, महावीर – जिस वीणा पर तुम क्रोध बजाते हो। सधे हुए हाथ उसी जीवन-ऊर्जा से निर्विचार बजाते हैं, जिसमें तुम केवल विचारों की उलझन में पड़ जाते हो। सधे हुए हाथ इसी शरीर में अशरीरी को खोज लेते है, जिसमें तुम केवल हड्डी-मांस-मज्जा पाते हो। भूल वीणा की नहीं है, इतना स्मरण रखना।

चूकने का कोई कारण नहीं है – जरा साज को सम्हालना है।

'बेदार' वह तो हरदम सौ-सौ करे है जलवे
इस पर भी गर न देखे तो है कसूर तेरा।

परमात्मा तो कितने-कितने ढंग से नाचता है तुम्हारे चारों तरफ !

'बेदार' वह तो हरदम सौ-सौ करे है जलवे
इस पर भी गर न देखे तो है कसूर तेरा।

और जैसा मैं देखता हूं, यह किसी एक ही व्यक्ति का प्रश्न नहीं है – 'ईश्वर बाबू' ने पूछा है – सबका है। जैसा मै देखता हूं, हर आदमी मंजिल के सामने ही बैठा रो रहा है कि मंजिल कहा, कि किस मार्ग से जायें !

हसरत पै उस मुसाफिरे बेकसके रोइये
जो थक के बैठ जाता हो मंजिल के सामने।

तुम्हें देख के हंसी भी आती है, रोना भी आता है। रोना आता है कि तुम बड़े परेशान हो रहे हो। हंसी आती है कि व्यर्थ परेशान हो रहे हो। सामने ही द्वार

है। मंजिल के सामने ही थक के बैठे हो। कहीं चल के जाना नही है। कहीं उठ के भी नहीं जाना है। क्योंकि मंजिल तुम्हारे बाहर नहीं है, तुम्हारे भीतर है, तुम्हारा स्वभाव है, तुम्हारा स्वरूप है। थोड़े साक्षी को साधो ! वीणा सुमधुर होने लगेगी। तार तालमेल में आने लगेंगे। थोड़े साक्षी को साधो—संगीत उठेगा ! जैसे-जैसे सधते जाओगे वैसे-वैसे संगीत मधुर, सूक्ष्म होता जायेगा। और ऐसी भी घड़ी आती है—तब शून्य का भी संगीत उठता है। आ जायेगी घड़ी, क्योंकि मैं देखता हूं मंजिल के सामने ही तुम बैठे हो।

चौथा प्रश्न : बेमुरौअत वेवफा बेगाना ए दिल आप हैं;
आप मानें या न मानें मेरे कातिल आप है,
सास लेती हूं तो यह महसूस होता है मुझे,
जानती हू दिल में रखने के ही काबिल आप हैं।
गम नही है लाख तूफानो से टकराना पड़े
मैं हूं वह किश्ती कि जिस किश्ती के साहिल आप हैं।

तरु ने पूछा है। बिलकुल ठीक है : बेमुरौअत, बेवफा !

मुरौअत की नही जा सकती। कह तो तुम्हें रास्ते पे न ला सकूगा। कई बार सख्त होना पड़ता है। कई बार तुम्हें गहरी चोट भी करनी पड़ती है।

झेन फकीर डडा लिये रहते है। वे अपने शिष्यो के सिर पे डडे मारते हैं।

डंडा मेरे पास भी है—सूक्ष्म है, उतना स्थूल नही है। जब लगता है, जरूरत है कि तुम नीद में खोये जा रहे हो, तो डडा भी मारना पड़ता है। तो बेमुरौअत बिलकुल ठीक है। क्योंकि प्रेम है तुमसे, इसलिए बेमुरौअत होना ही पडेगा। क्योंकि प्रेम है, इसलिए तुम्हे जगाना ही पड़ेगा। और माना कि कई बार जब तुम्हें जगा रहा हूं, तब तुम कोई मीठा सपना देख रहे हो, तो तुम नाराज भी होते हो।

'बेवफ़ा बेगाना ए दिल' ठीक है। तुम जितने मेरे करीब आओगे, उतना मैं पीछे दूर हटता जाऊंगा, क्योंकि तुम्हें और आगे ले जाना है। इसलिए बहुत बार बेवफा मालूम पड़ूंगा। बुलाऊंगा पास और खुद दूर हट जाऊंगा। पुकारूगा और जब तुम चल पडोगे तो तुम पाओगे कि मै वहा नही खड़ा हू जहां से पुकारा था।

इसलिए बहुत-से मित्र मेरे साथ परेशानी मे रहते है। वे कहते है कि हम जब तक राजी हो पाते है एक बात को, तब तक आप जा चुके, आप कुछ और कहने लगे !

मुझे रोज ही ऐसा करना पड़ेगा। क्योंकि तुम्हें वहा ले जाना है—उस ला-मंजिल—उस जगह जिसके आगे फिर कोई और मंजिल नही है। और अंत समय में भी तुम्हारे बीच से मुझे हट जाना पडेगा, क्योंकि मैं तुम्हारा द्वार हू, दरवाजा हूं; तुम्हारी मंजिल नहीं।

गुरु यानी गुरुद्वारा। गुरु का केवल इतना ही अर्थ है कि वह तुम्हें इशारा कर

दे परमात्मा की तरफ और हट जाए। आखिरी घड़ी में भी मैं हट जाऊंगा। जब तुम पहुंचने-पहुंचने के करीब होओगे, तब मुझे हट ही जाना पड़ेगा। अन्यथा मैं तुम्हारे लिए दीवाल हो जाऊंगा, दरवाजा नहीं। फिर मैं तुम्हें रोकूंगा परमात्मा से। तो मुझे बेवफा होना ही पड़ेगा।

'आप मानें या न मानें मेरे कातिल आप हैं'–मानता हूं। यह धंधा ही कातिल होने का धंधा है।

ठहरा गया है ला के जो मंज़िल में इश्क की,
क्या जाने रहनुमा था कि रहज़न था, कौन था!

प्रेम की मंजिल पे जो तुम्हें ले आता है, तय करना मुश्किल होता है कि वह पथ-प्रदर्शक था कि लुटेरा था।

ठहरा गया है ला के जो मंज़िल में इश्क की
क्या जाने कि रहनुमा था कि रहज़न था, कौन था।

तय करना बहुत मुश्किल है। क्योंकि प्रेम की मंजिल पे वही ला सकता है जो तुम्हें लूटना भी हो। वहां मार्गदर्शक और लुटेरे एक ही हैं, रहनुमा और रहजन एक ही है।

पूरा प्रयास यही तो है कि तुम्हें मिटा दू, ताकि तुम 'हो' सको! तुम्हारे अहंकार को तोड़ दू, ताकि तुम्हारा निरहंकार मुक्त हो सके, उठ सके! तुम्हारे अहंकार की जंजीर टूटे, तो ही तुम्हारे निरहंकार की स्वतंत्रता का आविर्भाव हो। लेकिन अगर तुम जन्मों-जन्मों तक जंजीरों में रहे हो, तो जंजीरों को तुमने आभूषण मान लिया है। तो जब मैं तुम्हारे आभूषण तोड़ूंगा – मैं समझता हूं जंजीरें, तुम समझते हो आभूषण – तो तुम्हें लगेगा कि यह तो ... आए थे गुरु के पास, यह आदमी कातिल सिद्ध हुआ। हम खोजते थे, कोई जो सात्वना देगा, इसने और सारी सान्त्वनाएं छीन लीं। हम खोजते थे कोई जो हमारे शृंगार को और थोड़ा बढावा देगा, जो हमारे आभूषणों को और थोड़ी सजावट देगा। लेकिन तुम जिसे आभूषण कहते हो, वह आभूषण नहीं। और तुमने जिसे अभी समझा है तुम हो, वह तुम नहीं – उसकी तो हत्या ही करनी पड़ेगी – बेमुरौअत! उस पे कोई दया नहीं की जा सकती! उसे तो मिटाना होगा। वही तो तुम्हारे पावों को जकड़े है।

'सांस लेती हूं तो यह महसूस होता है मुझे,
जानती हूं दिल में रखने के ही काबिल आप हैं।
गम नहीं है लाख तूफानों से टकराना पड़े
मैं हूं वह किश्ती कि जिस किश्ती के साहिल आप हैं।'

तूफान से टकराने में गम कैसा? क्योंकि तूफान से टकरा के ही कोई किनारे के उपलब्ध होता है। किनारे के आसपास ही तूफान है, तूफ़ानों के आसपास ही किनारा है। और अगर ठीक से कहें तो तूफान में ही छिपा किनारा है।

मेरे डूब जाने का बाइस तो पूछो
किनारे से टकरा गया था सफ़ीना ।
......नाव किनारे से टकरा के डूब गई, यह कारण है डूब जाने का !
मेरे डूब जाने का बाइस तो पूछो !
किनारे से टकरा गया था सफ़ीना !

वह किनारा ही क्या जो तुम्हारी नाव को न तोड़ दे ! वह किनारा ही क्या जो तुम्हें तुम्हारी नाव से मुक्त न कर दे ! नाव नदी के लिए है। किनारा तो तुम्हें नाव से छुड़ा ही देगा, नाव को तोड़ ही देगा। वह मंजिल ही क्या जिसको पा के रास्ता खो न जाए, मिट न जाए ! जिससे चल चुके वह मिट जाना चाहिए, अन्यथा उस पे लौट जाने की संभावना बनी रहती है ।

तो जितना-जितना तुम बढ़ते जाओगे उतना-उतना मैं तुम्हारी नाव को तोड़ता जाऊंगा। जब देखूंगा कि किनारा करीब है तो नाव बिलकुल तोड़ देनी चाहिए। नहीं तो डर है कि तुम फिर वासनाओं की नाव में सवार हो जाओ ।

और ध्यान रखना, जो नाव उस किनारे से इस किनारे तक ले आयी है, वही नाव इस किनारे से उस किनारे ले जा सकती है। नाव तो वही होगी, सिर्फ दिशा बदलनी है। जो सीढ़ी तुम्हें ऊपर ले जाती है, वही सीढ़ी तुम्हें नीचे भी ले जा सकती है। इसलिए समझदार ऊपर पहुंच के सीढ़ी तोड देते है ।

'सांस लेती हूं तो यह महसूस होता है मुझे
जानती हूं दिल में रखने के ही काबिल आप हैं ! '

कब तक जानती रहोगी 'तरु' ? रखो !

जानने-जानने में कब तक समय गवाओगी ? कहीं ऐसा न हो कि जानने की बात जानने की ही रह जाए ! होने की बनाओ ! जब कोई बात ऐसी लगती हो कि दिल में रख लेने की है, तो सोचो मत। सोचने में क्षण न खोओ, रख ही लो !

एक बारी धक से हो कर दिल की फिर निकली न साँस
किस शिकारन्दाज का यह तीरे बेआवाज है !

फिर जब कोई चीज हृदय में जाती हो, तो जाने दो तीर की तरह। सोचो मत ! सोचने में ही तीर इधर-उधर हो जाएगा । और हर बात के पकने का क्षण होता है, ऋतु होती है। जो अभी हो सकता है, अभी हो सकता है; कल न हो पाए । और जो अभी न हो सका, ताजा-ताजा न हो सका, वह कल कैसे हो पाएगा ? बासा हो जाएगा । तो जो दिल में रख लेने जैसा लगे उसे रखो ! अगर जगह न हो तो दिल को बाहर करो ! जगह बनाओ !

मेरे पास होने का एक ही अर्थ है, कि तुम मिटने की कला सीखो। नहीं कि तुम्हारे दिल में रहने का मेरा कोई इरादा है; यह तो केवल बीच का उपाय है। यह तो केवल बहाना है। यह तो मैं तुम्हें फुसला रहा हूं। यह तो मैं यह कह रहा

हूं कि चलो इस बहाने से सही, इस निमित्त सही, तुम अपना दिल तो छोड़ो, अपना दिल तो तोड़ो ! मेरे लिए ही सही, जगह तो बनाओ ! जगह बनते ही मैं वहां नहीं बैठूंगा । जगह हो जाए तो उसी जगह में तो परमात्मा विराजमान होता है ।

कबीर ने कहा है :

गुरु गोविंद दोइ खड़े, काके लागूं पांव ।

—किसके पैर पकड़ूं ! दोनों साथ ही खड़े हैं, किसके पहले चरण छुऊं । कहीं कोई अपमान न हो जाए, कोई अनादर न हो जाए । कहीं शिष्टाचार का कोई भंग न हो जाए ।

गुरु गोविंद दोइ खड़े, काके लागू पांव ।

बड़ी मुश्किल में पड़ गए होंगे । ऐसा होता नहीं । जब गुरु होता है तो गोविंद नही होता; जब गोविन्द होता है तो गुरु नही होता । कभी ऐसा भी होता है जब दोनों साथ खड़े होते हैं । एक बार होता है ऐसा । पहले गुरु को जगह देते हैं । धीरे-धीरे गुरु हृदय में बैठता जाता है, बैठता जाता है, फिर एक दिन गुरु हट जाता है । उस दिन गोविन्द । इधर गुरु जाने को होता है, उधर गोविन्द आने को होता है । एक घड़ी में ऐसी बात होती है जब गुरु जा रहा होता है, गोविन्द आ रहा होता है—तब दोनों साथ खड़े होते हैं ।

गुरु गोविंद दोइ खड़े, काके लागू पांव ।

फिर कबीर कहते हैं, गुरु के ही पैर लगे ।

' बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताए ।'

इसके दो अर्थ हो सकते है, दोनो महत्त्वपूर्ण हैं । एक अर्थ तो यह हो सकता है कि जब कबीर बिगूचन में पड़ गए तो गुरु ने गोविंद की तरफ इशारा कर दिया कि गोविंद के ही पैर लगो ।

...बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताय ... वह मुक्त कर दिया चिन्ता से । कहा कि फिक्र न कर मेरी, गोविन्द के पैर लग ।

एक अर्थ तो यह हो सकता है, जो कि सीधा-साधा है । इससे भी महत्त्वपूर्ण अर्थ है दूसरा, वह यह कि... बलिहारी गुरु आपकी गोविन्द दियो बताय...कबीर कहते हैं, पैर तुम्हारे ही लगूंगा, क्योंकि तुम्हारी ही बलिहारी है कि तुमने गोविन्द को बताया । फिर गोविन्द के तो पैर अब लगते ही रहेंगे, लगते ही रहेंगे, अब तो पैरों में ही पड़े रहेंगे; लेकिन तुम्हारे पैर अब दोबारा न मिलेंगे ।

गुरु जा रहा है, गोविन्द आ रहा है । गुरु विदा हो रहा है ।

सद्‌गुरु वही है जो तुम्हें मिटाए, तुम्हारे हृदय के सिंहासन पर बैठ जाए—बस उस क्षण तक जब तक तुम तैयार नहीं हो, सिंहासन तैयार नहीं है, फिर हट जाए । असद्‌गुरु वही है जो तुम्हें हटाए, तुम्हारे सिंहासन पे बैठ जाए और फिर हटे न । फिर कहे, छोड़ो भी अब परमात्मा-अरमात्मा की बातचीत ! तो यह तो एक झंझट

से छूटे, दूसरी में पड़ गए। यह तो अपनी झंझट से छूटे, दूसरे के झंझट में पड़ गए। इससे तो पहली ही झंझट ठीक थी, कम-से-कम अपनी तो थी।

'गम नहीं है लाख तूफानों से टकराना पड़े
मैं हूं वह किश्ती कि जिस किश्ती के साहिल आप हैं।'

एक ही तूफान है – और वह तूफान है मूर्च्छा का! एक ही अंधड़ है, आंधी है – और वह अंधड़, आंधी है मूर्च्छा का, प्रमाद का, सोए-सोए होने का। उससे ठीक से टकराओ! निद्रा से टकरा के ही जागरण पैदा होता है। निद्रा से टकरा के ही – उसी टकराहट में, उसी घर्षण में – जागरण पैदा होता है। वही जागरण किनारा है।

आखिरी प्रश्न: आप कहते हैं कि तुम्हारे पास जो है उसे बांटो। मगर ऐसा हो रहा है कि संगीत, नृत्य, मस्ती सब अस्तित्व में लीन हो रहा है और एक गहन चुप्पी घेरती जा रही है। बस अब तो एक कोने में बैठ कर अस्तित्व की लीला निहारती रहूं और वक्त आए तो उसमें लीन हो जाऊं। पास में क्या बचा है!

बहुत शुक्रिया, बड़ी मेहरबानी
मेरी जिंदगी में हुजूर आप आए
कदम चूम लूं या आंखें बिछा दूं
करूं क्या, यह मेरी समझ में न आए।

मैं कहता हूं, जो हो बांटो। नाच हो तो नाच। गीत हो तो गीत। मस्ती हो तो मस्ती। अगर चुप्पी घनी हो रही है तो चुप्पी। बांटो! मौन भी बांटो।

बड़ी संपदा है मौन की। मस्ती से भी बड़ी मस्ती है मौन की! नाच से भी गहन नाच है मौन का। गीत से भी गीत, गीत से भी गहन गीत, है गीत मौन का। बांटो उसे।

चुप्पी का अर्थ यह थोड़ी है कि उसे सम्हाल के बैठो। तो चुप्पी की कंजूसी हो गई।

ध्यान रखना, जीवन में शुभ भी हम इस ढंग से कर सकते हैं कि अशुभ हो जाये, और अशुभ भी इस ढंग से कर सकते हैं कि शुभ हो जाये – सारी कला यह है। इसी कला को जिसने जान लिया उसने धर्म को जान लिया। अब एक तो मौन है जो कंजूसी का मौन है। एक तो मौन है कि जो अपने-आप को बंद कर लेने का मौन है कि हट जाओ दूर सबसे – सबसे तोड़ लेने वाला मौन है। अपने में बंद हो जाओ। मोनोड बन जाओ लीबनेस के। सब द्वार-दरवाजे बंद कर दो, खिड़कियां बंद कर दो। कोई हवा न आये, कोई रोशनी न आये। न अपनी आवाज किसी तक जाये, न किसी की आवाज अपने तक आये। तो यह मौन तो मरघट का मौन होगा। इसका गुण अलग होगा। यह गुण शुभ नहीं है। यह मौन तो मौत जैसा मौन होगा। इससे सड़ी लाश की बदबू आयेगी।

इसलिए तुम बहुत-से त्यागी, तपस्वी, मौनियों के पास जा के, मुनियों के पास

सिर्फ लाश की सड़न पाओगे। मौन वहां खिल न पाया, फूल न बना। मौन वहां केवल अभाव रहा। मौन का अर्थ वहां इतना ही रहा कि बोलते नहीं हैं। यह भी कोई मौन हुआ जो बोल न सके! मौन तो बोलता है – मौन से भी बोलता है।

तो ध्यान रखना, मौन सिर्फ न बोलना भर न हो; नहीं तो वही होगा: क्रोध काट डाला, काम की ग्रंथि काट डाली। काम की ग्रंथि गई तो ब्रह्मचर्य के होने का उपाय भी गया। क्रोध की ग्रंथि गई तो करुणा भी न आई। ऐसा मौन मत कर लेना कि सिर्फ न बोलने पर आग्रह हो कि बोलते नहीं हैं। तो फिर तुम्हारे भीतर जिंदगी सड़ने लगेगी, प्रवाह बंद हो जायेगा। तुम एक पोखर हो जाओगे, सरिता न रहोगे। जल्दी ही कीचड़ मच जायगी। जल्दी ही तुम अपनी कुंठा में सड़ोगे। क्योंकि जीवन संबंधों में है।

कोई फिक्र नहीं, हजार ढंग है बोलने के। बोलना ही थोड़ी सब कुछ है! किसी का हाथ ही हाथ में ले लो तो क्या तुम बोले नही? किसी की तरफ भरी हुई आंखों से देखा तो क्या तुम बोले नही? किसी के पास चुपचाप बैठे रहे, लेकिन बंद नहीं, खुले, बहते, तो क्या तुम बोले नही? सच तो यह है कि जीवन में जो भी महत्त्वपूर्ण है, ऐसे ही बोला जाता है। जब दो प्रेमी गहन प्रेम में होते हैं तो चुप बैठ जाते हैं। जब प्रेमी बातचीत करने लगें तो समझना कि पति-पत्नी हो गये। पति-पत्नी चुप नहीं बैठ सकते, क्योंकि चुप बैठें तो दोनों बंद हो जाते हैं; दोनों बंद हो जाते हैं तो बोझिल हो जाते है। तो पत्नी कहने लगती है, 'चुप क्यों बैठे हो? क्या मतलब?' तो कुछ भी बोलो! बोल जारी रखो, ताकि कहीं ऐसा न हो कि एक-दूसरे की मुर्दानगी और एक-दूसरे की ऊब प्रगट हो जाये। तो बोलते हैं, चेष्टा करके बोलते हैं। नही बोलना हो, बोलते हैं। कुछ भी बात ले आते हैं—खबर, समाचार – उसकी चर्चा चलाने लगते हैं। न पत्नी को उस में रस है, न पति को रस है; न पत्नी सुन रही है, न पति बोल रहा है – लेकिन वाणी चल रही है। दोनों आसपास शब्दों का जाल बुनते है, ताकि कहीं धोखा न टूट जाये, कहीं भ्रम न मिट जाये, कहीं ऐसा न हो जाये कि पता चले कि हम टूट गये, अलग-अलग हो गये!

मेरे एक मित्र हैं। हिमालय की यात्रा को जाते थे। तो मुझसे कहा, आप चलें। मैने कहा कि हिमालय की यात्रा पे जाते हो, अच्छा है। तुम पति-पत्नी जा रहे हो, मुझे क्यों और बीच में लेते हो? मेरे होने से बाधा पड़ेगी। उन्होंने कहा, आप भी क्या बात करते है! तीस साल हो गये शादी हुए, अब क्या बाधा खाक पड़ेगी? अब तो हालत ऐसी है कि अगर तीसरा आदमी मौजूद न हो तो हमारी समझ में नहीं आता, क्या करें! इसलिए तो आपसे प्रार्थना कर रहे हैं कि आप चलो, तो थोड़ा रस रहेगा। किसी न किसी को तो ले जाना ही पड़ेगा।

पति-पत्नी सदा किसी एक को और साथ ले लेते हैं। दोनों के बीच जरा बातचीत चलाने को सेतु बन जाता है। यह बोलना कोई बोलना है? लेकिन दो प्रेमी चुपचाप

बैठ जाते है। देखते हैं चांद को आकाश में। या सुनते हैं हवा की सरसराहट! या देखते हैं चुपचाप तारों को। कुछ बोलते नही। लेकिन खुले हैं। बहते हैं एक-दूसरे में, ऊर्जा मिलती है। मिलन होता है। एक गहन तल पर गहन संभोग होता है। पर चुप!

शब्द बाधा डालते है। जब कोई प्रेमी किसी प्रेयसी से बहुत कहने लगे, बार-बार कहने लगे कि मै तुझे प्रेम करता हूं, तब समझना कि प्रेम जा चुका, अब बातचीत है। अब प्रेम नहीं है, इसलिए बातचीत से परिपूर्ति करनी पड़ती है। नहीं तो प्रेम काफी है, कहने की जरूरत नहीं है।

तो मै तमसे कहता हूं, मौन तो आये, लेकिन जीवन्त आये, बहता हुआ आये। तुम्हारा प्रवाह न मिटे। तुम बद न होओ। तुम खुलो। तो फिर मौन भी बंटे।

यह मै तुमसे जो बोल रहा हूं, क्या तुम सोचते हो, बोल रहा हूं? अपना मौन बांट रहा हूं। क्योंकि तुम मेरे मौन को सीधा न समझ सकोगे, शब्दों की सवारी से बाट रहा हूं। शब्दों के ऊपर सवार हो कर जो आ रहा है, वह मौन है। घुड़सवार को देखना, घोड़े को ही मत देखते रहना। शब्दों पर जो सवारी करके आ रहा है, जरा उसे देखो! तुम्हें जो मै देना चाहता हूं, वह शब्द नही है। तुम्हें जो देना चाहता हू, वह मेरा मौन है।

तो मौन ही बाटो। कही छुपता है कुछ! अगर जीवंत मौन हो तो मौन ही दिखाई पड़ने लगता है, सघन हो जाता है। जहां से गुजरोगे, दूसरा आदमी चौंक के सुनने लगेगा मौन को जरा पास से!

'बेदार'! छुपाए से छुपते हैं कही तेरे
चेहरे से नुमाया हैं आसार मुहब्बत के।

कही प्रेम छुपा! कितना छिपाओ, आख की झलक, चेहरे का रग-ढंग, ओठो की मुस्कराहट; कितना छिपाओ, चाल की गति, उठने-बैठने का प्रसाद, सब तरफ जैसे प्रेमी के आसपास कुछ सूक्ष्म घुंघरू बजते है!

'बेदार'! छुपाए से छुपते है कही तेरे
चेहरे से नुमायां है आसार मुहब्बत के।

मौन भी नही छुपता। परमात्मा भी नही छुपता। तुम चुप भी बैठे रहो तो भी प्रगट होता चला जाता है।

हम तो चुप थे मगर अब मौजे सबा के हाथों
फैली जाती है तेरे हुस्न की खुशबू हर सू।

जब कोई प्रभु को उपलब्ध होता है, उस परम शांति को, परम निर्विकार को, तो चुप भी बैठा रहे तो भी क्या फर्क पड़ता है!

हम तो चुप थे मगर अब मौजे सबा के हाथो
—हम तो चुप ही बैठे थे, लेकिन सुबह की ठण्डी हवायें आ गईं, हम क्या करें!
फैली जाती है तेरे हुस्न की खुशबू हर सू।

—और तेरे सौंदर्य की खुशबू ये हवायें ले चलीं और ये फैलने लगीं ।

बुद्ध को परम अनुभव हुआ । कहते हैं, सात दिन वे चुप बैठे रहे । पर देवता भागे चले आये स्वर्ग से। पहुंच गई भनक : कुछ घटा है पृथ्वी पर ! अस्तित्व ने कोई नया रंग लिया है ! अस्तित्व ने कोई नया नाच नाचा है ! कोई शिखर बना है अस्तित्व का ! कोई गौरीशंकर उठा है ! भागे देवता। वे चुप ही बैठे रहे । देवताओं ने नमस्कार किया, चरणों में सिर रखा, और कहा, कुछ बोलें ! बुद्ध ने कहा, 'लेकिन तुम्हें पता कैसे चला ? मै तो बिलकुल चुप हूँ । सात दिन से तो मैं बोला ही नहीं। और मैंने तो यही तय किया है कि बोलूंगा ही नहीं । क्या सार बोलने से ? जिनको समझना है, बिना बोले समझ लेंगे । और जिनको नही समझना है, वे कहीं बोल के भी समझ पायेंगे ! मगर यह तो बताओ, तुम्हें खबर कैसे मिली ?

तो देवताओं ने कहा, आप भी कैसी बात करते हैं ! यह घटना कुछ ऐसी है, जब घटती है तब खबर मिल ही जाती है। तुम बैठे रहो चुप, जल्दी ही तुम पाओगे कि रास्ते वनने लगे, तुम्हारी तरफ लोग आने लगे । वे तुम्हें बुलवा के रहेंगे। तुम्हें बोलना ही पड़ेगा । तुम्हारी करुणा को बोलना ही पड़ेगा । तुम इतने कठोर कैसे हो सकोगे ? हम ही आ गये, कितनी दूर से – स्वर्ग से ! कोई चुप हो गया है ! कुछ घटा है !

तुमने कभी चुप्पी को अनुभव किया है ? चुप्पी भी एक घना अस्तित्व है । रेलगाड़ी शोरगुल करती हुई निकल जाती है। उसके बाद तुमने देखा है, चुप्पी कैसी घनी हो जाती है ! तूफान आता है, बड़ा शोर मचता है, फिर तूफान जा चुका, फिर शांति कैसी घनी हो जाती है ! जब बुद्ध जैसा व्यक्ति शांत होगा, सदियो-सदियो का एक तूफान, जन्मों-जन्मों एक तूफान, एक अंधड़ जो चलता ही रहा और चलता ही रहा, अचानक आज बन्द हो गया – देवताओं को खबर न मिलेगी ! चुप होने से ही खबर मिल गई ।

जो है वही बांटो । अगर चुप्पी बन रही है, शुभ है । बन्द मत होना, चुप्पी को भी सम्बन्ध बनाये रखना । मित्रों को कभी निमंत्रित कर देना कि आओ, चुपचाप बैठेंगे ! जिसको चुपचाप बैठना होगा, आ जायेगा । हाथ में हाथ ले लेना । साथ-साथ रो लेना, या हंस लेना । बोलना मत । और तब तुम पाओगे कि एक नया द्वार खुला सम्बंधों का। तुमने किसी और ढंग से दूसरे मनुष्य की चेतना को छुआ और तुमने मौका दिया, दूसरे को भी कि एक नये ढंग से, शब्दों के अलावा सम्बंध निर्मित करे ।

'गहन चुप्पी घेरती जाती है। एक कोने में बैठ कर अस्तित्व की लीला निहारती हूं ।'

निहारने को बांटो । जिस ढंग से तुम निहारती हो, उसी ढंग से किसी और को निमन्त्रित करो कि आओ, मेरी दृष्टि में सहभागी बनो । इसलिए तो मैंने तुम्हें यहां बुला भेजा है । बुलाये चला जाता हूं; दूर-दूर देशों से, पृथ्वी का कोई कोना

नहीं जहां से लोग चले नहीं आते ! अपनी दृष्टि में तुम्हें सहभागी बनाना चाहता हूं। चाहता हूं कि तुम भी जरा मेरी आँख से झांक के देखो। जो मैंने देखा है, थोड़ा-सा तुम भी देखो। फिर तुम अपनी आँख खोज लेना। एक दफा स्वाद तो आ जाये।

'और वक्त आये तो उसी में लीन हो जाऊ।'

आ ही जायेगा वक्त। आ ही गया है। बाटो ! बाटना भी लीन होने की प्रक्रिया है।

'पास में क्या बचा है ?' जब कुछ नहीं बचता, तभी जो बचा है वही सम्पदा है।

एक झेन फकीर एक रास्ते से गुजर रहा था। वह बड़ा बलिष्ठ आदमी था। बड़ा बलशाली था। दो डाकुओं ने उस पे हमला कर दिया। दुबले-पतले दीन-हीन डाकू थे; नहीं तो डाकू ही क्यों होते – दीन-हीन ही डाकू बनते हैं। उसने दोनो की गर्दन पकड़ के उनको उठा लिया और दोनो का सिर टकराने जा रहा था, कि उसे खयाल आया : अरे बेचारे ! इनके पास कुछ भी तो नहीं है। दोनों को छोड़ दिया। वे तो बड़े चौके-से चौकन्ने-से खड़े रह गये कि अब क्या करना। और जो कुछ उसके पास था उसने दे दिया। वे दोनों भागे ले के। और वह फकीर जोर-जोर से हंसने लगा, तो वे लौट के आये। उन्होंने कहा कि महाराज, आप हंस क्यों रहे हैं ? आप अजीब आदमी है ! हम तो समझे कि मरे ! आपने जब दोनो के सिर पास लाये, तो हम समझे कि गये ! फिर क्या हुआ, आपने दोनों को छोड भी दिया ? हमने मांगा भी नही, हम तो भागने की तैयारी कर रहे थे कि आपके पास जो था आपने दे दिया। अब आप हंस किसलिए रहे है ?

तो उस फकीर ने कहा कि आज मुझे पहली दफे पता चला उसका जो मेरे पास है, और जिसे कोई भी ले नही सकता। जो लेने योग्य था, देने योग्य था वह मैंने तुम्हें दे दिया – आज मैं नग्न खड़ा हूं। आज मेरे पास बस वही बचा है, जिसको न कोई ले सकता है, न कोई दे सकता है। आज शुद्ध अस्तित्व बचा है।

उसी शुद्ध अस्तित्व का नाम महावीर ने आत्मा दिया है।

खोओ ! जो खो ही जायेगा उसे अपने हाथ से ही खो दो। जो मौत छीन लेगी तुम उसे स्वयं ही दे दो, ताकि मौत जब आये तो छीनने को उसके पास कुछ भी न हो। तुम्हारे पास कुछ भी न हो जिसे वह छीन सके। मौत के पहले जो छीना जा सकता है, उसे बांट दो।

पकड़ो मत ! पकड़ छोड़ो ! और तब तुम पाओगे : मौत आयेगी, लेकिन तुम्हें मार न पायेगी। क्योंकि मौत घटती है इसीलिए कि तुम उसे पकड़े हो जो छीना जा सकता है। जब मौत छीनती है, तुम समझे कि मरे। जिसने उसे पहले ही छोड़ दिया – मौत आती है, खाली हाथ चली जाती है। कुछ है ही नही छीनने को। वही बचा है जिसे छीना नही जा सकता – स्वभाव, धर्म, तुम्हारे भीतर का परमात्मा !

आज इतना ही।

सच्चम्मि वसदि तवो, सच्चम्मि संजमो तह
वसे तेसा वि गुणा ।
सच्चं णिबंधणं हि य, गुणाणमुदधीव मच्छाणं ॥ १७ ॥
सुवण्णरूप्पस्स उ पव्वया भवे, सिया हु केलाससमा
असंखया ।
नरस्स लुद्धस्स न तेहि किंचि, इच्छा हु आगाससमा
अणन्तिया ॥ १८ ॥
जहा पोम्मं जले जायं, नोवलिप्पइ वारिणा ।
एवं अलित्तं कामेहिं, तं वयं बूम माहणं ॥ १९ ॥
जीवो बंभ जीवम्मि, चेव चरिया हविज्ज जा जदिणो ।
तं जाण बंभचेरं, विमुक्क परदेहतित्तिस्स ॥ २० ॥
तेल्लो काडविडहनो, कामग्गी विसयरूक्खपज्जलिओ ।
जोव्वणतणिल्लचारी, जं ण डहइ सो हवइ धण्णो ॥
जा जा वज्जई रयणी, ण सा पडिनियत्तई ।
अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जन्ति राइओ ॥ २१ ॥

जीवन एक सुअवसर है

पहला सूत्र : 'सच्चम्मि वसदि तवो' – सत्य में तप का वास है। 'सच्चम्मि संजमो तह् वसे सेसा वि गुणा।' 'सत्य में संयम और समस्त शेष गुणों का भी वास है। जैसे समुद्र मछलियों का आश्रय है, वैसे ही समस्त गुणों का सत्य आश्रय है।

सत्य का अर्थ समझ लेना अत्यंत अनिवार्य है।

साधारणतः हम सोचते हैं, सत्य कोई वस्तु है, जिसे खोजना है; जैसे सत्य कहीं रखा है, तैयार है; किसी दूर के मन्दिर में सुरक्षित है प्रतिमा की भांति – हमें यात्रा करनी है, मन्दिर के द्वार खोलने हैं, और सत्य को उपलब्ध कर लेना है। ऐसा सोचा तो भूल हो गई शुरू से ही।

सत्य कोई वस्तु नहीं है। सत्य तो एक प्रतीति है, अनुभूति है। कहीं तैयार रखा नहीं है। जियोगे तो तैयार होगा। कहीं मौजूद नहीं है कि उघाड़ लेना है। ऐसा नहीं है कि चाबी मिल जाएगी, ताला खोल लोगे, तिजोड़ी तक पहुंच जाओगे – और धन तो तिजोड़ी में रखा ही था; जब चाबी न मिली थी तब भी रखा था; जब ताला न खोला था तब भी रखा था; न खोलते सदा के लिए तो भी रखा रहता – ऐसा नहीं है। सत्य तो जीवंत अनुभूति है। संज्ञा नहीं, क्रिया है।

सत्य का अर्थ है : ऐसे जीना, जिस जीवन में कोई वंचना न हो; ऐसे जीना कि बाहर और भीतर का तालमेल हो। सत्य एक संगीत है – बाहर और भीतर का तालमेल है। तो कदम-कदम सम्हालना होगा, क्योंकि सत्य आचरण है।

इसलिए महावीर कहते हैं : 'सत्य में तप है, संयम है, समस्त गुणों का वास है।' क्योंकि सत्य आचरण है। जिसने सत्य को साध लिया, सब सध जाएगा। फिर अलग से कुछ साधने को बचता नहीं। क्योंकि जिसने बाहर और भीतर का एक ही जीवन शुरू कर दिया, उसके जीवन में हिंसा नहीं हो सकती; उसके जीवन में झूठ नहीं हो सकता; उसके जीवन में क्रोध नहीं हो सकता; उसके जीवन में प्रतिस्पर्धा नहीं हो सकती। असंभव है। सत्य आया तो जैसे प्रकाश आया; अब अंधेरा नहीं हो सकता।

लेकिन सत्य न तो कोई वस्तु है – वस्तु होती तो उधार भी मिल जाती। सत्य उधार नहीं मिलता। मेरे पास हो तो भी तुम्हें देने का कोई उपाय नहीं। सत्य कोई

सिद्धांत भी नही है; नही तो एक बार कोई खोज लेता, सबके लिए, सदा के लिए मिल जाता। सत्य कोई तर्क की निष्पत्ति भी नहीं है, कि केवल विचार करने से मिल जाएगा, कि ठीक से सोचा तो मिल जाएगा। नहीं, जो ठीक से जिएगा, उसे मिलेगा। सोचना काफी नही है – जीना पड़ेगा।

दो ढंग से जीने के उपाय है। एक, जिसे हम असत्य का जीवन कहें। तुम कुछ हो, कुछ होना चाहते हो – बस असत्य शुरू हो गया। तुम कुछ हो, कुछ और दिखाना चाहते हो – असत्य हो गया। तुम कुछ हो, और तुमने कुछ मुखौटे ओढ़ लिए; होना तो कुछ था, प्रदर्शन कुछ और हो गया – असत्य हो गया।

इसे समझोगे तो पाओगे कि तुम्हारे तथाकथित धर्मों ने तुम्हें सत्य की तरफ ले जाने में सहायता नहीं दी, बाधा डाल दी। क्योंकि उन सबने तुम्हें पाखंड सिखाया। उन सबने कहा, कुछ हो जाओ।

महावीर कहते हैं, तुम जो हो उसमें ही रह जाओ; कुछ और होने की कोशिश मत करना, अन्यथा असत्य शुरू हो जाएगा। कमल कमल हो, गुलाब गुलाब हो, कमल गुलाब होने को कोशिश न करे, अन्यथा असत्य शुरू हो जाएगा। तुम तुम हो। तुम महावीर होने की कोशिश भी करोगे तो असत्य हो जाएगा। तुम बुद्ध होने की कोशिश करोगे तो असत्य हो जाएगा। कभी कोई दूसरा महावीर हो पाया? कितने लोगो ने तो कोशिश की है! कितने लोगों ने कोशिश नही की है! पच्चीस सौ वर्षों मे हजारों लोग महावीर होने की चेष्टा में रत रहे है – कोई दूसरा महावीर हो पाया?

इतिहास के ज्वलत तथ्यों को भी हम देखते नही, आखें चुराते हैं। कोई दूसरा कभी बुद्ध हो पाया? कभी कोई दूसरा राम मिला इस जीवन के पथ पर? कभी फिर कृष्ण की बासुरी दुबारा सुनी गई? पुनरुक्ति यहा होती नहीं। अनुकरण यहां सभव नही। यहा प्रत्येक बस स्वयं होने को पैदा हुआ है। और जिसने भी दूसरा होने की कोशिश की वह पाखडी हो जाना है।

आदर्शों ने तुम्हे असत्य कर दिया। यह बात बडी कठिन मालूम होगी, क्योंकि तुम तो सोचते हो, आदर्शवादी जीवन बड़ा महान जीवन है। आदर्शवादी जीवन असत्य का जीवन है। आदर्शवादी का अर्थ है कि मै कुछ हूं, कुछ होने में लगा हू। सत्यवादी के जीवन का अर्थ है: जो है, मैंने उसे स्वीकार किया; अब मैं उसको सरलता से जी रहा हू; जो है – बुरा-भला, शुभ-अशुभ, जैसा हूं, जैसा इस अनंत ने मुझे चाहा है, जैसा इस अनंत ने मुझे सरजा है, जैसा इस अनंत ने मुझे गढा है – मैं उससे राजी हूं।

सत्य है परम स्वीकार स्वयं का, और तब शेष गुण अपने-आप चले आते हैं, छाया की तरह चले आते हैं। शेष गुणों को खोजना भी नही पड़ता। आदर्शवादी खोजता है; सत्यवादी के पास अपने से चले आते हैं। आदर्शवादी खोजता रहता है और कभी

नहीं पाता। सत्यवादी खोजता नहीं, और पा लेता है।

लेकिन सत्य, समझ में आ जाए तो पहला तो सत्य का अर्थ है : तुम जैसे हो, निंदा मत करना। तुम जैसे हो, दूसरे से तुलना मत करना। क्योंकि तुलना में ही स्पर्धा शुरू हो गई। तुम जैसे हो, वैसे को परिपूर्णता से स्वीकार कर लेना। रत्ती भर भी ना-नुच न करना, यहां-वहां न डोलना। तुम जो हो सकते हो, तुम हो। तुम्हें जैसा अस्तित्व ने चाहा है, वैसे तुम हो। इसमें कुछ सुधार की जरूरत नहीं है। दौड़-धूप बंद करनी है। और इस होने में थिर हो जाना है। नहीं तो तुम डोलते रहोगे—कभी राम होना चाहोगे, धनुष उठा लोगे, कभी कृष्ण होना चाहोगे, बांसुरी बजाने लगोगे, न बांसुरी बजेगी न धनुष उठेगा। कभी महावीर होना चाहोगे, नग्न खड़े हो जाओगे—प्रदर्शन हो जाएगा। नग्न खड़े हो जाओगे, लेकिन महावीर का निर्दोष भाव कहां से लाओगे ? तुम्हारी नग्नता तो आरोपित होगी। जो भी आरोपित है, वह निर्दोष नहीं होता। तुम्हारी नग्नता तो चेष्टित होगी, प्रयास से होगी। जो भी प्रयास से होता है, वह निर्दोष नहीं होता। जो भी चेष्टा से होता है, वह तो जबर्दस्ती होता है।

महावीर नग्न कभी हुए नहीं—उन्होंने पाया। नग्न होने का कोई अभ्यास नहीं किया, जैसा जैन मुनि करते हैं। नग्न होने के लिए कोई आयोजन, व्यवस्था नहीं जुटाई—अचानक पाया कि नग्न हो गए हैं।

कथा है, महावीर घर से निकले तो एक चादर ले के निकले थे। सोचा, जितना कम होगा परिग्रह, उतनी कम असुविधा होगी। सोचा था, जितना कम होगा पास में, उतनी चिंता कम होगी। एक चादर ले के निकले थे। वही ओढनी थी, वही बिछौना था। वही दिन में वस्त्र का काम दे देगी। वर्षा होगी तो सिर पे ढांक के छाता बना लेंगे। राह पर चल रहे थे कि एक नंगे भिखारी ने, भिखमंगे ने कहा, कुछ दे जाएं। सब लुटा चुके थे। यह एक चादर बची थी, तो आधी फाड के उसे दे दी। सोचा एक से चलता है, आधे से भी चल जाएगा।

जिनको समझ आ जाए तो कम-से-कम में भी चल जाता है और जिनको समझ न हो तो ज्यादा-से-ज्यादा में भी नहीं चलता। सवाल वस्तुओं का नहीं है, सवाल समझ का है।

महावीर ने कहा, इतनी लंबी की जरूरत भी क्या है, थोड़े पैर सिकोड़ के सो जाएंगे। तन पूरा न ढंकेगा, थोड़ा कम ढंकेगा, हर्ज क्या है ! हवा आती-जाती रहेगी, थोडी सूरज की किरणें शरीर को मिलेंगी। लेकिन आगे बढ़े, भागे जा रहे हैं जंगल की तरफ, एक गुलाब की झाड़ी से आधी चादर उलझ गई कांटों में। हंसने लगे। तो कहा, मर्जी नहीं है अस्तित्व की, कि चादर को ले जाऊं। राह में कोई मिल गया, आधा बोझ उसने ले लिया। अब यह झाड़ी मिल गई; अब यह मांगती है, आधी मुझे दे दो। तो आधी चादर झाड़ी को दे दी। सोचा कि आधी से चल जाएगा, बिना भी चल जाएगा। आखिर सारे पशु-पक्षी बिना चादर के चल रहे हैं। तो मैं आदमी हूं; जो

पशु-पक्षी कर लेते हैं वह मुझसे न हो सकेगा ? और अब झाड़ी से छुड़ाना शोभा नहीं देता।

जिसने देना ही जाना हो, छुड़ाने का उसका मन नहीं करता। जिसने देने का ही रस पाया हो, वह झाड़ी से भी न छीनना चाहेगा। वह चादर झाड़ी को भेंट कर दी, वे नग्न हो गए। ऐसे महावीर नग्न हुए।

यह कोई चेष्टा न थी – यह घटना थी। इसके पीछे कोई आयोजन न था; न कोई शास्त्र थे, न कोई सिद्धांत था। नग्न होने के लिए कोई विचार न था। यह कोई अनुशासन नहीं था, जो उन्होंने थोपा अपने ऊपर। ऐसा जीवन के सहज प्रवाह में पाया कि जो ले के आए थे वह भी जा चुका। फिर वे नग्न हो गए। फिर नग्न होने में जो मस्ती पायी तो फिर उन्होंने दुबारा चादर पाने का कोई आग्रह न रखा।

क्योंकि जो नग्न हो के मिला...क्या मिला नग्न होकर ? – अपने जीवन का सत्य।

हम नग्न होने से डरते क्यों हैं ? शरीर को भी हम छिपा-छिपा के दिखाते हैं। उतना ही दिखाते हैं जितना हमें लगता है दिखाने योग्य है। उतना ही दिखाते हैं जितना लगता है कि दूसरो को भी रुचेगा, भाएगा। उसको छिपाते हैं जो हमें लगता है कहीं दूसरों को न रुचे, न भाए। कपड़े तुम अपने लिए थोड़ी पहनते हो, दूसरों के लिए पहनते हो। इसलिए तो जिस दिन घर में बैठे हो, छुट्टी के दिन बैठे हो तो कैसे ही कपड़े पहने बैठे रहते हो। बाजार चले कि सजे, कि तैयार हुए। विवाह में जा रहे हैं, महोत्सव में जा रहे हैं, तो और सजे, और भी तैयार हुए।

दूसरे के लिए कपड़े पहनते हैं हम। शरीर के उन हिस्सों को छिपाते है जो हम चाहते हैं कोई दूसरा जान न ले। ये कपड़े हम कोई धूप, सर्दी, वर्षा से बचाने को थोड़े ही पहने हुए हैं; इनके पीछे बड़ा मन जुड़ा है, बड़ा आयोजन जुड़ा है।

जिस दिन किसी स्त्री को तुम चाहते हो लुभाना, उ ा दिन तुम ज्यादा देर एक जाते हो दर्पण के सामने। उस दिन ज्यादा ढग से दाढ़ी बनाते हो, कपड़े सजाते हो, इत्र छिड़क लेते हो। दूसरे के लिए है यह आयोजन।

हम दिखाते हैं केवल अपने हाथ, अपना चेहरा; शेष शरीर को हम ढाके हैं। ढांकने के दो अर्थ है। एक तो हम सोचते हैं, दिखाने योग्य नही। दूसरा : ढांकने से जो ढका है उसमें आकर्षण बढ़ता है। दूसरे उसे उघाड़ना चाहते हैं। स्त्रिया अगर नग्न हों तो कोई गौर से देखे भी न। आदि समाजों में, आदिवासियो मे स्त्रियां नग्न हैं, कोई चिता नही करता।

स्त्री खूब ढांक के शरीर को चलती है। जो-जो ढका है, उसे-उसे उघाड़ने का सहज मन होता है।

तो एक तो हम छिपाते भी हैं; हम आकर्षित भी करते हैं, लुभाते भी हैं। इसके पीछे आयोजन है। हमारे वस्त्रों के पीछे भी आयोजन है। किसी दिन हम थक जाते हैं इन वस्त्रों से, इस प्रदर्शन से, इस दिखावे से, इस नाटक से, तो फिर हम दूसरा

आयोजन करते हैं – नग्न कैसे हो जाएं ! लेकिन वह भी आयोजन है । सरलता से तुम कुछ भी न होने दोगे ? सहजता से तुम कुछ भी न होने दोगे ? तुम्हारे जीवन में क्या कोई भी निर्दोष ज्योति न जगेगी ? सभी प्रयोजन से होगा ? सोच-सोच के होगा ? हिसाब लगा के होगा ?

अब जैन मुनि हैं, नग्न खड़े हैं । मगर नग्न खड़ा होना उनका वैसे ही है, जैसे तुमने दांव लगाया हो जूए पर । वे कहते हैं, नग्न हुए बिना मोक्ष न मिलेगा । इसलिए दिगम्बर जैन कहते हैं कि स्त्रियों का मोक्ष नहीं है; क्योंकि स्त्रियो को नग्न करना कठिन होगा, समाज डांवाडोल होगा, अड़चन खड़ी होगी । तो स्त्री को पहले पुरुष-योनि में जन्म लेना पड़ेगा । क्योंकि बिना पुरुष-योनि में जन्म लिये वह नग्न न हो सकेगी । नग्न न हो सकेगी, तो मोक्ष कैसे ?

अब तुम थोडा सोचो ! नग्न होने में भी दांव है, हिसाब है, गणित है । यह नग्न होना भी शुद्ध सरल नही है । महावीर नग्न हुए थे, मोक्ष का कोई सवाल न था – एक भिखारी ने चादर माग ली थी । महावीर नग्न हुए थे, मोक्ष का कोई सवाल न था – एक फूलों की झाड़ी ने चादर छीन ली थी । महावीर नग्न हुए थे, इसके पीछे कभी सोचा भी न था ।

लेकिन तुम जब नग्न होओगे, तो मोक्ष ... । तुम्हारी नग्नता भी सौदा है ।

कपड़ों में ढाका है हमने अपने शरीर को । और ऐसे ही हमने बहुत-बहुत परतें अपने मन में ढांकी हैं । हम वही कहते हैं, जो हम सोचते हैं रुचिकर लगेगा । हम वही कहते है, चुन-चुन के, छांट-छांट के, जो दूसरे को मोहित करेगा और हमारी एक सुदर प्रतिमा निर्मित होगी । हम वही नही कहते जो हमारे भीतर उठता है । भीतर गालिया भी उठती हों तो भी हम बाहर स्वागत के गीत गाए चले जाते हैं । भीतर क्रोध भी उठता है तो भी ओंठों पर मुस्कराहट को फैलाए चले जाते हैं । मुस्कराहट झूठी होती है । जो भी थोड़ा आंख वाला है, वह देख लेगा, झूठी है; जबर्दस्ती ओंठों को ताना गया है, खीचा गया है – बही नहीं है । मुस्कराहट भीतर से उठी नहीं है । मुस्कराहट कही से आयी नहीं है, बस ऊपर से लीपी-पोती गयी है । लेकिन हमारी मुस्कराहट झूठी है । हमारे आसू झूठे हैं । हमारी सहानुभूति झूठी है, उदासी झूठी है । हमारा सारा जीवन एक झूठ का व्यापार है ।

जब महावीर कहते हैं, सत्य, तो उनका अर्थ यह नही है, जैसा गणित में होता है – दो और दो चार, यह सत्य हुआ गणित का – ऐसे सत्य की बात महावीर नहीं कर रहे हैं । जब महावीर कहते हैं, सत्य, तो वे यह कह रहे हैं कि तुम जो हो, जैसे हो, निपट और नग्न, खोल दो अपने को वैसा ही । तुम चिंता न करो कि कौन क्या सोचेगा । तुम अपने में कोई भी आयोजन न करो । जैसे वृक्ष खड़े हैं नग्न और सहज, ऐसे ही तुम भी नग्न और सहज हो जाओ ।

महावीर का सत्य बड़ा कठिन है । पर महावीर का सत्य बड़ा गहरा भी है । और

महावीर का सत्य ही सत्य है, दार्शनिकों के सत्य में कुछ भी नहीं रखा है। वह तो बातचीत है, शब्दों का जाल है। वह भी शायद कुछ छिपाने की चेष्टा है।

तुम अपने को पकड़ो। तुम अपना पीछा करो और जगह-जगह देखो, चौबीस घंटे में कितना असत्य कर रहे हो! अनजाने ही! ऐसा भी नहीं कि तुम सभी असत्य जान-जान के बोलते हो, सोच-सोच के बोलते हो — आदत इतनी प्रगाढ़ हो गई है, ऐसे रग-रोएं में समा गई है, ऐसे खून-खून की बूद में बैठ गई है, कि अब तो तुम किए चले जाते हो, कोई हिसाब भी नहीं रखना पड़ता। तुमसे असत्य ऐसे ही निकलता है जैसे वृक्षों से पत्ते निकलते हैं। अब कुछ करना भी नहीं पड़ता, कुशलता इतनी गहन हो गई है। कभी तो तुम चौंकोगे कि जहा जरूरत भी नहीं होती, वहा भी असत्य निकलता है। जहा उससे कुछ लाभ भी होने को नहीं है वहां भी असत्य निकलता है। वहा भी सत्य नहीं निकलता, वहां भी असत्य निकलता है।

कभी तुमने पकड़ा अपने को? ऐसे मौकों पर भी, जब कि कोई लाभ भी नहीं दिखाई पड़ता झूठ बोलने में, लेकिन झूठ बोलने की आदत हो गई है! इस आदत को तोड़ना पड़े! कितनी ही मजबूत हो, कितने ही हथौड़े मारने पड़ें, पर तोड़ना पड़े! और धीरे-धीरे तुम जो हो उसके लिए राजी होना पड़े! हो सकता है, प्रतिष्ठा खो जाए, क्योंकि हो सकता है, प्रतिष्ठा तुम्हारे असत्य पर ही खड़ी हो। हो सकता है, तुम्हारा सम्मान खो जाए, क्योंकि अक्सर इस बात की संभावना है कि तुम्हारा सम्मान तुम्हारे उन्हीं झूठों पे खड़ा हो, जो तुमने समाज के सामने बोले है। तुम्हारा दिखावा, तुम्हारे प्रदर्शन, तुम्हारे नाटक ही बुनियाद में हों, तो सम्मान भी गिर जाएगा। गिर जाने दो! इसे ही मैं संन्यास कहता हू, जिसको महावीर सत्य कह रहे है।

तुम जैसे हो, तुम बेशर्त उसे स्वीकार कर लो। कठिन होगा। आग से गुजरना होगा। मगर आग निखारेगी। कचरा जल जाएगा, कुन्दन बाहर आएगा। साफ शुद्ध सोना हो कर तुम निकलोगे। जो सोना आग से निकलने से डर गया वह कभी शुद्ध नहीं हो पाता। जो मनुष्य सत्य की आग से निकलने से डरता है, वह कभी मनुष्य नहीं हो पाता।

'सत्य में तप, सयम, शेष समस्त गुणो का वास है।'

तो पहला सत्य तो जो मैं हू, वैसा ही अपने को स्वीकार कर लू। जो मैं हूं, उससे अन्यथा होने की चेष्टा भी न करू; क्योंकि उससब चेष्टा मे ही झूठ प्रवेश करता है।

तुम क्रोधी हो, तो तुम करते हो क्या? तुम अक्रोध की साधना करते हो। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, 'मन बड़ा अशांत है, शांति की कोई तरकीब बता दें।' क्या करोगे शांति की तरकीब का? ऊपर-ऊपर लीपा-पोती कर लोगे, भीतर अशांति उबलती रहेगी ज्वालामुखी की तरह। ऊपर-ऊपर तुम शांति के भवन बना

लोगे, ज्वालामुखियों पे बैठे होगे भवन। भूकंप आते ही रहेंगे। शांत तुम हो न पाओगे।

शांत होने की उतनी जरूरत नहीं है, जितनी अशांति को समझने की जरूरत है। पहले तो अशांति को स्वीकार करने की जरूरत है कि मैं अशांत हूं। फिर अशांति को पहचानने की जरूरत है कि यह अशांति क्या है — बना किसी निंदा के। पहले से ही अगर तुमने तय कर लिया कि अशांति बुरी है तो तुम जान कैसे पाओगे, देख कैसे पाओगे? जो आंखें पहले ही पक्षपात से भर गईं और जिन्होंने तय कर लिया कि अशांति बुरी है और अशांति से छूटना है, वे आखें अशांति का अवलोकन न कर पाएगी। अवलोकन शुद्ध न होगा, अवलोकन प्रमाणिक न होगा। तुम पहले से ही तैयार हो। तुम जूझने को तैयार हो, लड़ने को तैयार हो। दुश्मन को कभी कोई भर आख देख पाता है! दुश्मन से तो हम आंखें बचा लेते है। मित्र को देख पाते है। प्रेमी को देख पाते है। जिससे हमारा प्रेम हो, उसकी आंखो में आखे डाल पाते हैं।

तो अपने को प्रेम करो, अगर सत्य होना है। और जैसे भी हो, बुरे-भले, यही हो, इसके अतिरिक्त कुछ और हो नही सकता था। जो तुम हुए हो, इसको पहचानो, परचो, जाचो, खोलो एक-एक गाठ। अशांति है तो अशांति सही, क्या करोगे? अशांति तुम्हारा तथ्य है। जैसे आग जलाती है, वह उसका गुणधर्म है। अशांति तुम्हारे आज का तथ्य है। आज तुम जैसे हो उसमें अशानि के फूल लगते है, अशांति के कांटे लगते हैं। लेकिन देखो, पहचानो, समझो, स्वीकार करो। भागो मत। डरो मत। विपरीत की चेष्टा मत करो। अशांति है तो शाति को लाने के प्रयास में संलग्न मत हो जाओ। वह प्रयास अशाति से बचने का प्रयास है। बच के कोई कभी बच नही पाया। अगर कामवासना है तो उतरो। उस गहरे कुए में उतरो जिसका नाम कामवासना है। उसकी सीढ़ी-दर-सीढ़ी नीचे जाओ। उसकी आखिरी तलहटी को खोजो। वही से उठेगा ब्रह्मचर्य। जागरण से उठेगा ब्रह्मचर्य। कामवासना की पहचान में से ही ब्रह्मचर्य पैदा होता है। कामवासना मे ही छुपा है ब्रह्मचर्य; जैसे कामवासना बीज का खोल है और उसके भीतर छिपा है कोमल तंतु, कोमल पौधा ब्रह्मचर्य का। तुम समझो, बीज को कैसे जमीन में बोएं, फिर कैसे सम्हालें — उसी से निकलेगा। कीचड़ से जैसे कमल निकलता, है ऐसे ही कामवासना से ब्रह्मचर्य निकलता है।

अशांति का ही सार है शांति। उसी के भीतर से निचोड़ना है। जैसे फूलों से इत्र निचोड़ते हैं, ऐसे ही क्रोध से निचुड़ के करुणा आती है।

तो जो तुम्हारे पास है उसके विपरीत होने में मत लग जाओ। जो तुम्हारे पास है उसको ही कैसे रूपांतरित करें, कैसे उसमें से ही सार को खोजें, असार को त्यागें, कैसे उसको निचोड़ें, इत्र बनाएं — तो तुम सत्य हो सकोगे।

महंगा यह सौदा है। इसलिए महावीर कहते हैं, तप है यह सत्य। इसमें तपना पड़ेगा। यह तपना सस्ता तपना नही है कि धूप मे खड़े हो गए और तप लिए। वह तो बच्चे भी कर लेते हैं। वह तो बुद्ध भी कर लेते हैं। उसके लिए तो कोई बुद्धिमत्ता की जरूरत नहीं है। जड़ भी कर लेते हैं। वस्तुतः जो जड़बुद्धि हैं, वे ज्यादा आसानी से कर लेते हैं। क्योंकि जितनी जड़ बुद्धि होती है उतनी जिद्दी होती है। और जितनी जड़ बुद्धि होती है, उतनी संवेदनहीन होती है। धूप में भी खड़े हो जाते हैं, थोड़े दिन में उसका भी अभ्यास हो जाता है। उपवास भी कर लेते हैं, उसका भी अभ्यास हो जाता है। कुछ लोग हैं जो खड़े हैं वर्षों से, बैठे नहीं, लेटे नहीं – उसका भी अभ्यास हो गया। लेकिन तुमने कभी इन लोगों की आखो में गौर से देखा ! वहां तुम्हें प्रतिभा की दमक न मिलेगी। वहा तुम्हें आंनन्द और शांति के स्वर सुनाई न पड़ेंगे। इनकी छाती के पास हृदय के पास कान लगा के सुनना। वहां कोई अनाहत का नाद न मिलेगा। वहां तुम पाओगे : जड़ता, राख, मरे हुए लोग।

अक्सर हठी जड़ होता है। और जिसको तुम तप कहते हो, वह हठ से ज्यादा नहीं है, जिद्द है, क्रोध है, अहंकार है – लेकिन सत्य नही।

सत्य का तप क्या है ? सत्य का तप है : अपने को जैसा है वैसा स्वीकार किया, वैसा ही प्रगट किया, अपने और अपनी अभिव्यक्ति में कोई भेद न किया। फिर जो हो, समाज अच्छा कहे बुरा कहे, लोग चाहे न चाहे, सम्मान दे अपमान दे, फिर जो हो – यह है असली तप। लोग निन्दा करें, वह भी स्वीकार है। लोग प्रशंसा करें, वह भी स्वीकार है। लोग भूल जाए, उपेक्षा करें, वह भी स्वीकार है। यह है तप। सत्य होने को महावीर कहते हैं तप।

'सच्चामि वसदि तवो' – सत्य में बसता है तप। सयम भी वही है।

इन दो शब्दों को समझ लेना चाहिए, क्योंकि महावीर ने इन दो शब्दों का साथ-साथ उपयोग किया।

तप का अर्थ है : तुम्हारे भीतर ऐसी बहुत-सी सचाइया है जिनके कारण तुम्हें अड़चन होगी। उस अड़चन को झेलने के लिए तैयार होना तप है। तुम्हारे भीतर ऐसी बहुत-सी सचाइया है; जिनके कारण बहुत-से काम तुम जो अभी कर रहे हो, कल न कर पाओगे। वह जो न करने की अवस्था है, वही संयम है।

समझो ! अब तक तुम दान दे रहे थे। लेकिन सच्चा आदमी सोचेगा : 'दान का भाव उठा है या नही ?' दान के लिए ही तो सभी दान नही देते, और दूसरे कारणो से देते हैं। राह पे भिखमगा पकड़ लेता है, इज्जत दांव पे लगा देता है। भिखमंगा भी अकेले में तुमसे भीख नही मागता, क्योकि अकेले में जानता है कि तुम धुतकारोगे। बीच बाजार में पकड़ लेता है। वहां इज्जत सवाल है : 'लोग क्या कहेंगे, दो पैसे भी न देते बने ! लोग हंसेंगे !' वहा तुम दो पैसा दे के दानी बन जाना चाहते हो। क्योंकि उस दो पैसे में इज्जत मिल रही है, वह इज्जत तुम दुकान पे

काम में ले आओगे। दो पैसे से तुम दो रुपये निकालोगे। जिसने आज तुम्हें दानी की तरह देख लिया है, कल वही ग्राहक की तरह दुकान पे होगा, तो तुम जो भी दाम बताओगे, मान लेगा—आदमी दानी है! बाजार में अगर भिखमंगे ने पकड़ लिया तो तुम्हें देना ही पड़ता है।

एक मारवाड़ी को एक भिखमंगे ने पकड़ लिया बाजार में। तख्ती लगाए था था भिखमंगा कि मैं अंधा हूं। और उसने कहा, 'सेठ, कुछ मिल जाए! बड़े दिन से सिनेमा नहीं गया हूं।' मारवाड़ी तो तैयार ही था कि कैसे छूटे! उसने देखा, 'सिनेमा—और तख्ती लगाए हो कि मैं अंधा हूं! सिनेमा जा के करोगे क्या? धोखा देने की कोशिश कर रहे हो?' उस अंधे ने कहा, 'दाता! गाने ही सुन लूंगा! अब देने से न बचो।'

भीड़ लग गई थी। सेठ ने देखा, बचने का उपाय नहीं है, तो पांच पैसे का सिक्का निकाल के उसको देने लगा। अंधे ने कहा कि सेठ, बैंक में जमा करवा देना। मेरा मारकीट तो मत बिगाड़ बाबा! पांच पैसे?

भिखमगा भी बाजार में है; उसका भी मारकीट है। सेठ भी बजार में है; उसका भी मारकीट है। न दे तो उसका मारकीट बिगड़ता है। ये लोग देख रहे हैं चारों तरफ, वे कहेंगे, अरे कृपण! अरे कंजूस!

उस सेठ ने कहा कि 'तू पहचाना कैसे कि पाच पैसे का सिक्का है अगर तू अंधा है? अभी मैंने दिया भी नहीं, हाथ में ही लिया है।' उस अंधे ने कहा, 'मालिक! अब और क्या प्रमाण चाहिए! मारवाड़ी से भीख माग रहा हूं, इससे बड़ा प्रमाण अंधे होने का और क्या होगा?'

भिखमंगा भी सोच-समझ के पकड़ता है। भिखमंगा भी जानता है, दान तो कोई देना नही चाहता, लेकिन लोग इतने ईमानदार भी नहीं हैं कि कह दें कि हम दान नही देना चाहते। लोग दिखाना चाहते हैं कि हम हैं तो दानी। उसी का भिखमंगा शोषण कर रहा है। तुम भी लज्जा से भर जाते कि अब कैसे निकलें! चलो, छुटकारा पाने के लिए देते हो। लेकिन अगर तुम ईमानदार हुए तो तुम कहोगे कि बाबा, मेरे मन मे देने की कोई इच्छा नही है। चाहे बाजार में सारी इज्जत प्रतिष्ठा पे लग जाए, चाहे कल दुकान बंद क्यों न हो जाए, चाहे लोग तुम्हें कृपण समझें, बेईमान समझें, धोखेबाज समझें, धन का आग्रही समझें—लेकिन तुम कहोगे कि क्या करूं, मेरे मन में देने का कोई स्वर नहीं है।

तप पैदा होगा। संयम भी पैदा होगा। क्योंकि बहुत-से काम तुम कर रहे हो इसलिए, क्योंकि करने चाहिए। अगर सब खरीद रहे हैं कोई सामान, नया फर्नीचर, नई कार, तो तुम भी खरीद रहे हो—बिना इसकी फिक्र किए कि तुम्हें जरूरत है? तुमने कभी सोचा कि तुम जो चीजें खरीद लाते हो, उनकी जरूरत थी? लेकिन अगर पड़ोसी खरीद लाए थे तो तुम भी खरीद लाते हो।

तुमने कभी सोचा है कि तुम जो कर रहे हो, जो दिखावा कर रहे हो, उसकी कोई जरूरत है ? लेकिन और दिखावा कर रहे हैं तो तुम कैसे रह सकते हो ! अगर व्यक्ति सचाई से अपने भीतर देखने लगे, तो पाएगा : अचानक बहुत-से काम तो बंद हो गए, क्योंकि निष्प्रयोजन थे; दूसरे कर रहे थे, दूसरों के दिखावे के लिए तुम भी कर रहे थे।

लड़की की शादी करनी है, लोग हजारों रुपये लुटाते हैं – उनके पास नहीं है, कर्ज ले के लुटाते हैं। क्यों ? और दूसरों ने, दुश्मनों ने, पड़ोसियों ने – पड़ोसी यानी दुश्मन – उन्होंने अपनी लड़की की शादी में इतना लगाया ...। अब तुम्हारी इज्जत दांव पे लगी है। तुम्हारे अहंकार का सवाल है। तुम्हें भी लगाना होगा। तुम्हें लड़की से कोई मतलब नहीं है। न तुमने जो दिया है, वह प्रेम से दिया है। न तुमने लड़की को दिया है। तुमने अहंकार को दिया है। तुम अपने झंडे को ऊंचा करके दिखाना चाहते थे कि देख लो ! तुम अगर गौर से अपनी सचाई को पहचानने लगो तो तुम पाओगे तप भी आता, संयम भी आता।

सौ में निन्यानबे आकांक्षाएं तुम्हारी बिलकुल व्यर्थ हैं। वे न मालूम तुमने कैसे उधार ले ली हैं। संक्रामक रोग की तरह तुम्हें लग गई हैं। दुख आएगा तो तुम स्वीकार करोगे। और बहुत-से सुख जो सुख नहीं हैं, तुम दूसरों के कारण ही भोगे चले जाते हो।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन जा रहा था। पूछा, 'कहां जा रहे हो ?' उसने कहा, 'शास्त्रीय संगीत सुनने जा रहा हूं।' मैंने कहा, 'लेकिन तुम जानते नहीं।' उसने कहा, 'अब क्या करें ! सभी जा रहे है, न जाओ तो ऐसा लगता है कि शास्त्रीय संगीत नहीं आता। हालांकि कुछ समझ में नहीं आता मेरे। अभी से डरा हुआ हूं कि वहां करूंगा क्या। मुझे तो उलटे घबड़ाहट होती है। जब आऽऽऽऽ करने लगते हैं, मुझे ऐसा लगता है कि अब पता नहीं कब यहां से निकलना हो पाएगा।' उसने बताया मुझे कि पहले भी एक दफा ऐसा हो चुका है : मैं गया था शास्त्रीय संगीत सुनने और जब संगीतज्ञ बहुत आऽऽऽऽ करने लगा तो मैं रोने लगा। तो मेरे पड़ोस के लोगों ने पूछा कि अरे मुल्ला ! हमने तो कभी सोचा भी न था कि तुम इतने संगीत के पारखी हो !

उसने कहा, 'पारखी-वारखी कुछ नहीं; यही हालत मेरे बकरे की हुई थी। उसी रात मर गया। यह आदमी बचेगा नहीं। यह बिलकुल मरने के करीब है। इसलिए मुझे याद आ रही है बकरे की, कि बेचारा बकरा, इसी तरह शास्त्रीय संगीत करते-करते...!'

मगर जाना पड़ रहा है, क्योंकि सारा मोहल्ला-पड़ोस जा रहा है। इज्जत सवाल है।

तुमने कभी गौर किया अपने को ! तुम बहुत-सी चीजों में सम्मिलित हुए हो, जहां

तुम कभी जाना न चाहते थे, लेकिन क्या करते ! तुम भीड़ के हिस्से हो ! तुमने कभी-कभी अपनी जरूरतों को भी कुर्बान किया है -- उन बातों के लिए जो तुम्हारी जरूरतें न थीं। तुमने गहने खरीद लिए हैं, पेट को भूखा रखा है। तुमने बड़ा मकान बना लिया है, बच्चों के लिए औषधि नहीं जुटा पाए। तुमने कार खरीद ली, बच्चों को शिक्षा नहीं दे पाए।

तुमने कभी गौर किया है कि तुम वे चीजें कर गुजरे, जो न करते तो चल जाता; और उन चीजों को न कर पाए जो कि करनी बिलकुल जरूरी थीं।

संयम पैदा होता है, जो व्यक्ति सच्चा होने लगता है। उसे दिखाई पड़ता है, जो मेरे लिए जरूरी है वह करूंगा; जो नहीं जरूरी है वह नहीं करूंगा। और ऐसा व्यक्ति धीरे-धीरे भीड़ के बाहर हो जाता है। इस अकेले हो जाने का नाम ही संन्यास है। भीड़ में ही होता है, लेकिन अकेला हो जाता है। अपने ढंग से जीता है। और अपने ढंग को किसी हालत में भी समझौता नहीं करता। कुछ भी हो जाए, सत्य की आकांक्षा करने वाला समझौतावादी नहीं होता। वह आगे-पीछे नहीं देखता, वह यह हिसाब नहीं लगाता कि इसके क्या परिणाम होंगे। वह कहता है, जो भी परिणाम होंगे उसका तप झेल लूंगा; जो भी खोना पड़ेगा, उसका संयम हो जाएगा। लेकिन जो मैं हूं, उससे अन्यथा मैं नहीं होना चाहता।

एक बड़ी क्रांति घटती है, जब तुम अपने से राजी होते हो। जब तुम अपने से राजी होते हो तो तुम अपने भीतर उतरने लगते हो। जब तुम अपने से राजी होते हो और यहां-वहां नहीं दौड़ते और दूसरों का अनुगमन नहीं करते तो तुम अपने में डूबने लगते हो, एक डुबकी लगती है। उस डुबकी के माध्यम से तुम अपनी सतह से ही परिचित नहीं होते, अपने भीतर की गहराइयों से परिचित होने लगते हो। और एक दिन ऐसी भी घड़ी आती है कि तुम अपने केंद्र पर आरोपित हो जाते हो। वही है धर्म, आत्मज्ञान कहो।

'सत्य में तप, संयम और शेष समस्त गुणों का वास होता है। जैसे समुद्र मछलियों का आश्रय है, वैसे ही सत्य समस्त गुणों का आश्रय है।'

सत्य जैसे सागर है, सभी नदियां उसी में गिर जाती हैं। ऐसे ही सत्य जीवन का परम आचरण है; धर्म का पर्यायवाची है; और सभी गुण उसी में गिर जाते हैं।

लेकिन लोग उलटा कर रहे हैं। लोग कहते हैं, तप साध रहे हैं, संयम साध रहे हैं -- क्योंकि सत्य पाना है। महावीर कहते हैं, सत्य साधो, तो संयम और तप अपने से आ जाते हैं। अब इतनी सीधी-सी बात भी कैसे चूक जाती है ! ऐसा लगता है, लोग चूकना ही चाहते हैं। अब इतना साफ-सा वचन है, 'सच्चाम्मि वसदि तवो'... लेकिन किसी जैन मुनि से पूछो, तो वह कहेगा, 'तप करोगे तो ही सत्य मिलेगा। तपश्चर्या के बिना कहीं सत्य मिला है !' महावीर ठीक उलटी बात कह रहे हैं कि सत्य के बिना कहीं तपश्चर्या हुई है ! दोनों दुश्मन मालूम पड़ते हैं। यह जैन मुनि

महावीर के पीछे चलता हुआ मालूम नही पड़ता । यह तो उलटा ही काम कर रहा है। यह तो कारण को पकड के कार्य को लाना चाहता है, जो कि संभव नहीं है। कार्य से कारण आता है। तुम चलते हो, तुम्हारी छाया तुम्हारे पीछे चलती है। महावीर कहते हैं, तुम चलोगे, तुम्हारी छाया तुम्हारे पीछे चलेगी। जैन मुनि कहता है, छाया का पीछा करो, कही ऐसा न हो कि छाया यहां-वहां चली जाए!

अब तुम अड़चन में पड जाओगे, अगर तुमने छाया का पीछा किया तो तुम तो उलटी यात्रा पर लग गए। यह तो छाया तुम्हारी आत्मा हो गई, तुम छाया हो गए।

महावीर कहते हैं, सत्य में तप, सयम और शेष समस्त गुणो का वास हो जाता है। वे नाम भी नही गिनाते। गिनाने की कोई जरूरत नही है। कह दिया सागर, तो सभी नदिया आ गईं। आ ही जाती हैं देर-अबेर। नदी-नदी का कहां-कहां पीछा करोगे? सागर को ही पकड लो। जब सागर ही मिलता हो तो नदियो के पीछे क्यो भटकते हो?

लेकिन अगर जैन मुनि ऐसी बात कहे, तो उसका खुद का क्या हो! क्योंकि वह भी नदियो के पीछे भटक रहा है।

इसे समझो।

जैनो का शब्द है. 'उपवास'। बड़ा प्यारा शब्द है! उपवास शब्द का अर्थ होता है: अपने अतरतम मे वास। उप + वास: अपने पास होना, अपने निकट होना। इसका खाने न खाने से कुछ भी संबंध नही। तुम जिसे उपवास कहते हो, वह अनशन है, उपवास नहीं। फर्क क्या है? महावीर कहते है, जब तुम अपने पास हो जाओगे तो उन घड़ियों मे भोजन भूल जाता है, क्योंकि शरीर भूल जाता है। जब कोई अपने पास होता है, आत्मा के पास होता है। जब आत्मा का सत्सग चलता है, जब उस रस में कोई डूबता है – कहां याद रहती है भूख-प्यास की!

तुमने कभी खयाल नहीं किया! कोई मित्र घर आ जाए वर्षों का बिछड़ा हुआ, भूख याद पड़ती है? प्यास पता चलती है? घंटो बीत जाते हैं, बैठे हैं, चर्चा कर रहे है, न भूख है न प्यास है। तुम्हारा प्रेमी मिल जाए, तुम्हारी प्रेयसी मिल जाए— भूख-प्यास भूल जाती है। घड़िया ऐसे बीतने लगती हैं जैसे पल भागे। दिन-रातें ऐसे गुजर जाती हैं जैसे आईं और गईं, पता ही न चला।

तो जरा सोचो, जिस दिन भीतर का प्यारा, भीतर का प्रियतम मिल जाए, जब उसके पास सरकने लगोगे तो कहा याद आएगी भूख की, कहा याद आएगी प्यास की!

महावीर कहते है, उपवास के कारण अनशन हो जाता है। जैन मुनि कहता है, अनशन करो तो आत्मा के पास जाओगे। अब बड़ा मुश्किल है मामला। अनशन करने वाला और भी शरीर के पास हो जाता है। भूखे मरोगे तो शरीर की ही याद आएगी। नही तो करके देख लो। उपवास करके देख लो। जिसको जैन मुनि उपवास कहते है, मै तो अनशन कहता हूं। अनशन करके देख लो। जिस दिन खाना

न खाओगे, उस दिन खाने ही खाने की याद आएगी। उस दिन रास्ते पे गुजरोगे तो न तो कपड़े की दुकानें दिखाई पड़ेंगी न जूतों की दुकानें; बस रेस्तरां, होटल, उन्हीं-उन्हीं के बोर्ड एकदम पढ़ोगे और दिल में बड़ी तरंगें उठेंगी। रसगुल्ले उठेंगे! रसमलाई फैलेगी! संदेशों के संदेश आएंगे।

भूखा आदमी भोजन का ही सोच सकता है।

इसलिए जैन जब उपवास करते हैं पर्यूषण के दिनों में, तो मन्दिर में गुजारते हैं ज्यादा समय, क्योंकि घर तो बहुत ज्यादा याद आती है। मन्दिर में किसी तरह भुलाए रखते हैं; शोरगुल मचाए रखते हैं! और फिर वहा और भी उन्हीं जैसे भूखे बैठे है, उनको देख के भी ऐसा लगता है: 'कोई अकेले ही थोड़ी हैं! अपन ही थोड़ी परेशान हो रहे हैं, और भी सब हो रहे है!' और एक-दूसरे की हिम्मत बंधाए रखते है। बैंड-बाजा बजाए रखते हैं। घर आए तो भोजन की याद आती है। वहा भी भोजन की ही याद आती है।

तुम जिस चीज के साथ जबरदस्ती करोगे, उसका काटा चुभेगा।

महावीर कहते है, उपवास हो जाए – अनशन अपने से हो जाता है। जैन मुनि कहते है, अनशन करो तो उपवास होगा। यही पूरी की पूरी उलटबांसी चल रही है, उलटी धारा बह रही है।

'समुद्र जैसे सभी नदियों का आश्रय है, ऐसे ही सत्य सभी धर्मों का आश्रय है। कदाचित सोने और चांदी के कैलाश के समान असंख्य पर्वत हो जाएं तो भी लोभी पुरुष को उनसे कुछ भी नही होता, तृप्ति नही होती, क्योंकि इच्छा आकाश के समान अनत है।'

सोने और चांदी के कैलाश, हिमालय के हिमालय सोने और चांदी के, अनंत हिमालय, असंख्य पर्वत तुम्हें उपलब्ध हो जाएं, तो भी लोभी पुरुष को उनसे कुछ भी नहीं होता। क्योंकि लोभ का इससे कोई सम्बन्ध ही नहीं है। लोभ का जो तुम्हारे पास है उससे कोई सम्बन्ध ही नहीं है। लोभ की दौड़ तो उसके लिए है जो तुम्हारे पास नही है।

लोभ के गणित को समझो। जो तुम्हारे पास है, लोभ उसको देखता ही नहीं; जो तुमसे दूर है, उसी को देखता है।

एक बहुत मोटा आदमीथा। डॉक्टर ने उसको सलाह दी कि अब तुम कुछ और नहीं करते तो मरोगे। तुम गोल्फ खेलना शुरू कर दो। तो वह सात दिन बाद आया। उसने कहा, बड़ी मुश्किल है। अगर गेंद को बहुत पास रखता हूं तो दिखाई नही पड़ती! तोंद बड़ी है। अगर बहुत दूर रखता हूं तो चोट नहीं मार सकता। अब करू क्या?

लोभ की तोंद बड़ी है। जो पास है वह तो दिखाई ही नहीं पड़ता। जो दूर है वही दिखाई पड़ता है। लेकिन जो दूर है वह तभी तक दिखाई पड़ता है जब तक दूर है।

जैसे-जैसे तुम पास आए, तुम्हारी तोंद भी गई। जब तुम पास पहुंचे वह तोंद के नीचे फिर ढंक गया। अब फिर दूर रखो। तुम्हारे पास दस हजार हैं तो नहीं दिखाई पड़ते, लाख दिखाई पड़ते है। लाख हो गए, वे नही दिखाई पड़ते, वे तोद के नीचे पड़ गए — दस लाख दिखाई पड़ते हैं। अगर यह गणित समझ में आ गया, तो एक हिमालय हो कि हजार हिमालय ही जाएं सोनों से भरे हुए तुम्हारे पास, क्या फर्क पड़ता है!

जो तुम्हारे पास है, वह लोभ को दिखाई नही पड़ेगा; जो दूर है, जो नही है, वही दिखाई पडता है।

तो जो इस बात को समझ लेगा, वह एक बात समझ लेगा कि लोभ के तृप्त होने का कोई उपाय नहीं है। चोट लग ही नहीं सकती। पास रखो, दिखाई नहीं पड़ता; दूर रखो, दिखाई पड़ता है — लेकिन दूर को चोट कैसे मारो! चोट तो पास को लग सकती थी। इसलिए लोभ कभी तृप्त नही होता। तुम यह मत सोचना कि गरीब आदमी का तृप्त नहीं होता, अमीर का तो हो जाता होगा। किसी का तृप्त नही होता। अमीर गरीब से भी ज्यादा गरीब हो जाता है। जितना होता जाता है उतनी ही मुश्किल होती जाती है। इतना हो गया, कुछ भी नही हुआ — और बेचैनी बढ़ती है। गरीब को तो कम-से-कम एक चैन रहता है, एक आशा रहती है कि जब हो जाएगा तो सब ठीक हो जाएगा; अमीर की वह आशा भी छिन जाती है। क्योंकि उसे एक बात ... कब तक झुठलाएगा वह कि इतना तो हो गया, और कुछ भी नही हुआ!

यह कुछ आश्चर्यजनक नही है कि जैनो के चौबीस ही तीर्थंकर राजपुत्र थे। यह कुछ आश्चर्यजनक नही है कि बुद्ध भी राजपुत्र थे। और कृष्ण और राम और हिन्दुओं के सारे अवतार शाही घरो से आए थे। अगर उनको यह दिखाई पड़ गया, तो इसके दिखाई पड़ने के पीछे कारण है। उन्होंने दौड को देखा। कितना धन था, कुछ सार नही मिलता, लोभ तो पकडे ही रहता है!

तो एक बात तय है कि लोभ का जिसने साथ रखा, अतृप्ति की छाया बनती रहेगी। लोभ से जिसने तृप्ति चाही, वह असंभव चाह रहा है — जो न हुआ है, न होता है, न हो सकता है। तृप्ति अगर चाहनी हो तो लोभ से जागो।

'कदाचित सोने और चांदी के कैलाश के समान असंख्य पर्वत हो जाएं ...।'

'सुवण्णरूप्पस्स उ पव्वया भवे, सिया हु केलाससमा असंखया—' असंख्य हो जाएं कैलास; 'नरस्स लुद्धस्स न तेहि किंचि' — फिर भी लोभी को कोई तृप्ति नहीं।

'इच्छा हु आगाससमा अणन्तिया' — इच्छा आकाश की तरह अनंत है। बढ़ो, दिखाई पड़ता है, आकाश छू रहा है, पृथ्वी को, यही कोई दस-पांच मील दूर, क्षितिज पास ही दिखाई पड़ता है—पहुंचो कभी मिलता नही।

तुम जितने बढ़ते हो, क्षितिज भी उतना ही तुम्हारे साथ बढ़ता जाता है। तुम्हारे

और क्षितिज के बीच का जो फासला है, वह सदा उतना ही रहता है। उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। तुम्हारे पास क्या है, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। तुम्हारे और तुम्हारे लोभ का अन्तर समान रहता है। गरीब और उसकी उपलब्धि में, अमीर और उसकी उपलब्धि में उतना ही अन्तर है। अन्तर बराबर है।

ऐ शेख ! अगर खुल्द की तारीफ यही है
मैं इसका तलबगार कभी हो नहीं सकता।

कवि ने कहा है कि अगर तुम्हारे स्वर्ग की यही प्रशंसा है कि वहां सोने के वृक्ष हैं और हीरे-जवाहरातो, मणि-माणिक्य के फूल हैं, और वहां सुन्दर स्त्रियां हैं जिनका रूप कभी ढलता नहीं, और वहां शराब के चश्मे हैं – तो कवि ने कहा है : ऐ शेख ! अगर खुल्द की तारीफ यही है – अगर तेरे स्वर्ग की यही तारीफ है, यही प्रशंसा है, मैं इसका तलबगार कभी हो नहीं सकता–तो फिर मैं इसकी आकांक्षा नहीं कर सकता। क्योंकि यह तो फिर वही मूढ़ता है जो संसार की है। इसमें तो कुछ भेद न हुआ। यहां थोड़े-थोड़े ढेर थे सोने-चांदी के, वहां कैलाश जैसे पर्वत होंगे। यहां सुन्दर स्त्रियां थी, लेकिन उनका रूप ढल जाता था; वहां सुन्दर स्त्रियां होंगी जिनका रूप न ढलेगा। अंतर परिमाणात्मक है, गुणात्मक नहीं;। क्वांटिटी का है, क्वालिटी का नहीं।

मैं इसका तलबगार कभी ही नही सकता !

जिसने जीवन की लोभ की प्रक्रिया को समझ लिया, वह स्वर्ग की मांग न करेगा। और अगर तुम अभी भी स्वर्ग की मांग कर रहे हो तो तुम समझना कि तुम संसार को ही बार-बार मांगे जा रहे हो। तुम्हारा स्वर्ग तुम्हारे संसार का ही फैलाव है, इसका ही विस्तार है।

तुम जरा स्वर्ग की तारीफ तो देखो ! तुम जरा शास्त्रों में स्वर्ग का वर्णन तो देखो ! जिनने ये शास्त्र लिखे हैं, वे बुद्धिमान नहीं हो सकते। और जिन्होंने स्वर्ग की ये प्रशंसाएं की हैं, वे लोभ से मुक्त नहीं हो सकते। वस्तुतः स्वर्ग की इन आकांक्षाओं में लोभ ही सघनीभूत हो के प्रगट हुआ है। जो यहां पूरा नहीं होता, जो क्षितिज यहां नहीं मिलते, उनको पूरा कर लेने की आकांक्षा है। लोभ, स्वर्ग में कह रहा है, घबड़ाओ मत, वहां तुम जहां खड़े हो वहीं जमीन-आसमान को छुएगा। कल्पवृक्ष ! आकांक्षा हुई नहीं कि पूरी हुई। तुमने चाहा नहीं कि पा लूं क्षितिज को और क्षितिज खुद चला आएगा। तुम्हें जाना न पड़ेगा।

ये जो आकांक्षाएं हैं, ये धार्मिक नहीं हैं – ये अधार्मिक आदमी की आकांक्षाएं है। संसार में आकांक्षा हार गई तो वह कहता है, कोई हर्ज नहीं, स्वर्ग में पूरी कर लेंगे; जो यहा नहीं हुआ उसे वहां पूरा कर लेंगे।

यह जन्नत मुबारिक रहे जाहिदों को
कि मैं आपका सामना चाहता हूं।

जो जानते हैं, वे कहते हैं, 'प्रभु ! तुम्हारा मुकाबला चाहते हैं ।'

यह जन्नत मुबारिक रहे जाहिदों को ! यह तुम्हारे तथाकथित त्यागी, विरक्तों को मुबारिक जिन्होंने यहां बेचारों ने छोड़ा है इस आकांक्षा में कि वहां पा लेंगे, उनको दे देना जन्नत । यहां स्त्रियां छोड़ दी हैं, बैठे हैं आसन लगाए, आशा कर रहे हैं अप्सराओं की । उर्वशी से कम में उनका काम न चलेगा । चौंक-चौंक के देखते हैं, मेनका अभी तक आई नही ! सुना तो था कि आती है । जब ऋषि-मुनि पहुंच जाते हैं समाधि की अवस्था को, समाधि में भी आंख खोल-खोल के देख लेते हैं, मेनका अभी तक आई नहीं । इन्द्र का आसन नही डोला ! लेकिन जो आंख खोल-खोल के मेनका को देख रहा है, उसकी समाधि कहां लगी ? उसकी समाधि कैसे लगेगी ?

समाधि का अर्थ है : लोभ व्यर्थ हो गया । ऐसे समाधान का नाम समाधि है । लोभ व्यर्थ हो गया – यहां का नहीं, वहां का नही, लोभ मात्र व्यर्थ हो गया । न अब यहां, न अब वहां – अब लोभ की कोई आकांक्षा न रही । जान लिया, पहचान लिया, लोभ का सार पकड़ लिया कि लोभ कभी तृप्त नही हो सकता, इसलिए अब लोभ छोड़ दिया । संसार का लोभ नही – लोभ को ही छोड़ दिया । क्योंकि जब तक लोभ है, लोभ नए ससार बनाए चले जाता है । लोभ ससार का सूत्र है ।

तो लोग कहते हैं, 'हम कोई ससारी थोड़ी हैं ! हमने तो ससार छोड़ दिया है । हम तो उस सुख की तलाश कर रहे है जो शाश्वत है ।' लेकिन सुख की ही तलाश जारी है । ये लोग, जिनको तुम सन्यासी कहते हो, ऋषि-मुनि कहते हो, ये ससारी है; ये तुमसे भी गहन संसारी है । तुम तो छोटे-मोटे से राजी हो, छोटा-मोटा टीला सोने का काफी है; ये कहते है, सुमेरू पर्वत, कैलाश, हिमालय ! इनका लोभ तुमसे बड़ा है । 'नरस्स लुद्धस्स न तेहि किंचि !' इनका लोभ इन्हें गिद्ध बना रहा है । ये बैठे है व्यर्थ की आकांक्षा लगाए ।

गिद्धों को देखा है ! जहा लाश पड़ी है, वही मंडराते है । ऐसा ही लोभ भी गिद्ध की भांति व्यर्थ पर, असार पर, मुर्दे पे मंडराता है । और जीवन चूका जाता है ।

यह जन्नत मुबारिक रहे जाहिदो को
कि मैं आपका सामना चाहता हू ।

जिसने समझा लोभ के सत्य को, वह लोभ से मुक्त हुआ । ऐसा नही कि वह चेष्टा करता है मुक्त होने की; क्योंकि चेष्टा तो तभी होती है जब नया लोभ पैदा हो । समझना । तुम तो चेष्टा कर ही नही सकते बिना लोभ के ।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, 'ध्यान तो करें, लेकिन लाभ क्या ? कोई लाभ बताएं ।' तो मैं उनसे कहता हूँ, तुम महर्षि महेश योगी के पास जाओ । वे लाभ बताते हैं । वे कहते हैं, धन भी बढ़ेगा ध्यान करने से । तब तो अमरीका में इतना प्रभाव है । ध्यान में किसकी चिता है ! धन बढ़ाना है ! धन भी बढ़ेगा ध्यान करने से ! कभी सोचा नही था किसी ने कि ध्यान करने से धन बढ़ता है । लेकिन

अगर लोगों को ध्यान में लगाना हो तो धन बढ़ाने का प्रलोभन देना जरूरी है। धन में ही लोग उत्सुक हैं ध्यान में उत्सुक नहीं। उन्हें ध्यान का पता ही नहीं।

ध्यान का अर्थ है : ऐसी मनोदशा जिसके पार कोई लोभ की आकांक्षा नहीं है।

अब तुम पूछते हो, 'ध्यान से लाभ क्या?' कुछ भी लाभ नहीं है। कमल खिलते हैं – लाभ क्या? सूरज निकलता है – लाभ क्या? परमात्मा है – लाभ क्या? बुद्ध और महावीर सिद्धशिलाओं पर बैठे हैं – लाभ क्या? तुम सोचते हो के पच्चीस सौ साल में खूब धन इकट्ठा कर लिया होगा महावीर ने सिद्ध शिला पे बैठे-बैठे, खूब दुकान चलाई होगी? लाभ क्या?

बर्ट्रेन्ड रसेल ने लिखा है कि यह पूरब के लोगों का मोक्ष मुझे घबड़ाता है। (सीधा साफ गणित वाला आदमी है।) मुझे घबड़ाता है। अनंत काल तक वहां बैठे-बैठे करेंगे क्या? एक दफा मुक्त हो गए, हो गए; फिर लौटने का तो उपाय भी नहीं है। संसार से बाहर जाने की व्यवस्था है, भीतर आने की व्यवस्था नहीं है। सोच-समझ के बाहर जाना – गए कि गए; फिर लाख सिर मारो, दरवाजा नहीं खुलता। अब तक जो भी मोक्ष गया, लौट के नहीं आ पाया। इसलिए तो समझदार हैं, वे कहते हैं, जल्दी क्या है? वे कहते हैं, पहले इसको तो भोग लें!

देख ले इस चश्मे-दहर को दिल भर के 'नज़ीर'
फिर तेरा काहे को इस बाग में आना होगा।

खूब देख लो दिल भर के! लौट के आना... कोई आया नहीं। इसलिए लोग कहते है, थोड़ा टालो मोक्ष को, इतनी जल्दी कहां है!

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, अभी तो हम जवान हैं। कब तक रहोगे जवान? टालो, चलो जवानी के नाम पे टालो कि जब बूढ़े होंगे तब। बूढ़ा आदमी कहता है, अभी तो मैं जिंदा हू। टालो! जब मर जाओगे – तब? कोई-न-कोई बहाना आदमी खोजे जाता है। लेकिन असली बहाना यह है कि तुम्हे वस्तुतः धर्म में कुछ लाभ नही दिखाई पड़ रहा। सुनते हो बातें महावीरों की, बुद्धों की – चमत्कृत हो जाते हो। सुनते हो गुणगान उस परम दशा का, तुम्हारे भीतर लोभ जगता है कि अरे, हमें यह भी मिल जाए! लेकिन जो तुम्हें मिल रहा है, मिला हुआ है, या मिलने की आशा में है, उसके साथ-साथ मिल जाए! यह भी तुम्हारा लोभ ही बनता है।

और ध्यान? – तुलसी ने कहा है : स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा! अपनी प्रसन्नता के लिए, आनंद के लिए! कोई पूछता है कि क्यों गाए जाते हो राम के गीत! स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा। अपने सुख के लिए। कहीं कोई भविष्य में लाभ नहीं है। अभी, यहीं – मजा आ रहा है। मैं ही तुमसे बोल रहा हूं – स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा। बोल रहा हूं – न कोई लाभ है, न कोई लोभ है। बोल रहा हूं, ऐसे ही जैसे पक्षी कलरव कर रहे हैं वृक्षों में।

काश, तुम भी ऐसे ही सुन सको जैसे मैं बोल रहा हूं ! तो ध्यान हो गया ।

ध्यान के लिए कुछ करने का थोड़े ही सवाल है । ध्यान तो एक समझ की दशा है, एक प्रज्ञा की स्थिति है । जहां लोभ गिर गया वहां ध्यान; जहां तुमने लोभ की असारता संपूर्णता से जान ली और पहचान ली, कि यह असंभव आकांक्षा है, पूरी नहीं होगी । इसमें तुम्हारी कमजोरी का सवाल नहीं है । तुम कितने ही बलशाली होओ तो भी पूरी न होगी । नेपोलियन भी पूरी नहीं करता, सिकंदर भी पूरी नहीं करता, चगेज और नादिर और तैमूर कोई पूरी नहीं करते । इसमें कमजोरी या ताकत का सवाल नहीं है । यह तो ऐसे ही है जैसे कोई रेत से तेल निचोड़ने की कोशिश कर रहा है । इसमें ताकत और कमजोरी का थोड़े ही सवाल है । रेत में तेल है ही नहीं, तो निचुड़ेगा कैसे ?

लोभ से जो आनंद को निचोड़ने की कोशिश कर रहा है, बस उलझ गया । कोशिश जारी रहेगी, हाथ कभी कुछ भी न लगेगा ।

'कदाचित सोने और चांदी के कैलाश के समान असंख्य पर्वत हो जाएं, तो भी लोभी पुरुष को उनसे कुछ भी नही होना ।'

तृप्ति नही होती, क्योंकि इच्छा आकाश के समान अनंत है । लेकिन इस लोभ की दौड में तुम कुछ गंवा रहे हो, मिलता तो कुछ भी नहीं । एक बात तय है कि मिलता कुछ भी नही । लेकिन गवा तुम बहुत कुछ रहे हो । कमा तो कुछ भी नहीं पाते, गंवाते बहुत हो । अपने को गंवा रहे हो । धन के ठीकरे इकट्ठे करोगे, आत्मा को बेचते जाओगे टुकड़ा-टुकड़ा करके, क्योंकि बिना अपने को बेचे यह धन इकट्ठा न होगा । बिना अपने को बेचे तुम लोभ की दौड़ में न लग पाओगे । हर कदम, लोभ की दिशा में उठाया गया, आत्मघात है । यह जिस दिन जीवन का दीया बुझने लगेगा उस दिन पछताओगे, उस दिन रोओगे; लेकिन तब बहुत देर हो चुकी होगी ।

तूफाने-दर्दो-गम में न गुल हो सकी मगर
शमए-हयात सांस के झोंके से बुझ गई ।

बड़े-बड़े तूफान और दुख और दर्द भी जिसे नहीं बुझा पाते, वह जिंदगी बस जरा-से सांस के झोंके से बुझ जाती है ।

तूफाने-दर्दो-गम में न गुल हो सकी मगर
शमए-हयात सांस के झोके से बुझ गई ।

पर जिस दिन वह जीवन की शमा, वह जीवन की ज्योति सांस के जरा-से झोंके मे बुझने लगेगी, उस दिन पछताओगे, छाती पीटोगे, रोओगे । मेरे देखे मरते वक्त आदमी का जो रुदन है, मरते वक्त आदमी की जो पीड़ा है, वह मृत्यु के कारण नही है – वह व्यर्थ गए जीवन के कारण है । सारा जीवन असार गया, हाथ यह मौत आई अब । क्या-क्या चाहा था ! कैसी-कैसी चाहत न की थी ! कैसे-कैसे

इंद्रधनुष फैलाए थे वासनाओं के ! वह तो कुछ भी हाथ न आया । हाथ यह मौत आई है । जिसको कभी न चाहा था वह हाथ आई । जिसको कभी न मांगा था वह मिली । जिसकी कभी आरजू न कि की थी, मिन्नत न की थी, प्रार्थना न की थी, जिसके लिए परमात्मा के द्वार पर कभी दस्तक न दी थी, वह मिली । और जो-जो चाहा था वह तो मिला ही नहीं । उसको पाने की कोशिश में जो जीवन मिला था वह भी गंवा दिया ।

इसलिए धार्मिक व्यक्ति कल का भरोसा नहीं करता । वह कल पर नही टालता । कल पर टालना ही लोभ है । लोभ का अर्थ है : कल मिलेगा । धार्मिक व्यक्ति कहता है, अभी जिएंगे, यहीं जिएंगे । कल होता कहां ? भविष्य है कहां ? भविष्य तुम्हारे मन का ही खेल है । जो है वह तो सदा वर्तमान है । जिस दिन तुम्हारे मन में कोई लोभ न होगा, उसी दिन तुम पाओगे, भविष्य भी खो गया । लोभ भविष्य है । भय अतीत है । भय के कारण तुम अतीत को पकड़े रहते हो । क्योंकि कुछ तो सहारा चाहिए, नही तो गिर पड़ेंगे अखंड खड्ड में । पकड़े रहते हो कि मै कौन हू – जाति, कुल, धर्म, परिवार, वंश, प्रतिष्ठा, पद, उपाधि, जो-जो किया, उस सबका सार संग्रह – तुम पकड़े रहते हो । अतीत को पकड़े रहते हो, क्योंकि यही लगता है कि उमी को पकड़ के लटके रहें, अन्यथा शून्य है विराट । अगर कोई सहारा न रहा पीछे, शून्य में गिर जाएंगे ।

अतीत को पकडे हो – भय के कारण । और भविष्य को जिलाए रखते हो, जगाए रखते हो – लोभ के कारण । लोभ और भय एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । इसलिए लोभी कभी भय से मुक्त नहीं हो सकता और भयभीत कभी लोभ से मुक्त नहीं हो सकता ।

तुमने देखा ! जितना तुम्हारे पास धन इकट्ठा होता जाता है, उतना ही भय भी बढ़ता जाता है । यह बड़ा अजीब मामला है । लोग धन इकट्ठा करते हैं ताकि भय न रहे जीवन में; लेकिन जैसे-जैसे धन इकट्ठा होता है, वैसे-वैसे भय बढता है, घटता नही । अब और एक नया भय लगता है कि कोई धन न छीन ले । अब एक नया भय लगता है कि कहीं जो मिला है वह खो न जाए ! मिला कुछ भी नहीं है; लेकिन खो न जाए, यह भय तुम्हारे जीवन को घेर लेता है । तब तुम और ज्यादा दौड़ में लगते हो कि और कमाओ, और इकट्ठा करो । इसलिए तो देने में डरते हो कि कहीं दे दिया तो फिर भय में खड़े हो जाओगे । इकट्ठा होता जाता है, कृपणता बढ़ती चली जाती है । जितना धनी, उतना ज्यादा कृपण हो जाता है । गरीब तो शायद कुछ दे भी दे, क्योंकि वह कहता है, दे भी दिया, तो क्या हर्ज है, वैसे ही कुछ नहीं है; होता तो बचाते, जब है ही नहीं तो बचाना क्या ! अमीर तो कुछ भी नही दे पाता । एक-एक पैसे का हिसाब रखता है । अब डरता है कि एक भी पैसा खिसका तो कम हुआ । अब यह बड़े मजे की बात है, मिला कुछ भी नहीं है;

लेकिन कम होने का डर पकड़ता है। कोई छीन न ले ! धन की आकांक्षा भय से होती है – धन पा के भय और दुगना हो जाता है।

तुमने भय के कदम देखे ! लोभ के पीछे-पीछे ही चलते हैं। लेकिन धार्मिक व्यक्ति अभी जीता है।

मैं कल का भरोसा नहीं करता साकी
मुमकिन है कि जाम रहे मैं न रहूं।
मैं कल का भरोसा नहीं करता साकी
मुमकिन है कि जाम रहे मैं न रहूं।

आज काफी है। यह क्षण काफी है। इस क्षण में जो जीता है, वही ध्यान में है। जिसने पूछा, ध्यान का लाभ क्या, वह कल पर सरक गया। उसने पूछा, लाभ क्या ? मिलेगा क्या ? कृष्ण की पूरी गीता बस इतनी-सी ही बात कहती है :

मैं कल का भरोसा नहीं करता साकी
मुमकिन है कि जाम रहे मैं न रहूं।

कृष्ण कहते हैं, फलाकाक्षा-रहित हो कर तू कर्म मे जुट जा – यही ध्यान है, यही धर्म है। फलाकाक्षा यानी लोभ। तू यह मत पूछ कि क्या मिलेगा। जैसे ही कोई व्यक्ति लोभ को हटा कर जीना शुरू कर देता है, उसके जीवन में ध्यान की वर्षा हो जाती है, उसका कण-कण ध्यान से भर जाता है। लोभ के बादल को हटाओ, ध्यान का आकाश उपलब्ध हो जाता है।

'जिस प्रकार जल में उत्पन्न हुआ कमल जल मे लिप्त नही होता, इसी प्रकार काम-भोग के वातावरण में उत्पन्न हुआ जो मनुष्य उससे लिप्त नही होता, उसे हम ब्राह्मण कहते है।'

महावीर की ब्राह्मण की परिभाषा .

जहा पोम्मं जले जाय, नोवलिप्पइ वारिणा।
एव अलितं कामेहि, त वयं बूम माहणं ।।

उसे कहते हैं हम ब्राह्मण, जो कामवासना मे पैदा हुआ, कामवासना में ही जन्मा और बड़ा हुआ, कामवासना के ही जगत मे जीता है – लेकिन कमल के फूल की भांति, अलिप्त, जगत उसे छू नहीं पाता।

इसे समझें।

हिन्दू-शास्त्र भी कहते है कि जन्म से तो सभी शूद्र है। जन्म से तो सभी शूद्र हैं ही, क्योंकि जन्म ही कीचड़ में होना है, जन्म ही कामवासना में होना है। जन्म ही असंभव है कामवासना के बिना। तो जन्म से तो सभी कीचड़ हैं, शूद्र हैं। फिर इनमें से ब्राह्मण कोई बन सकता है, बनना चाहे। सभी बन सकते हैं, बनना चाहें। लेकिन ब्राह्मण कोई तभी बनता है, जब कमल की भांति कीचड़ से दूर होता जाता है – इतना दूर, इतना पार और इतना अलिप्त कि जल उसे छू भी नहीं पाता;

ऐसा निर्दोष कि कुछ भी उसे दोषी नहीं कर पाता; ऐसा पुण्य का फूल कि पाप उसे छू भी नहीं पाता। पाप में ही खड़ा रहेगा, क्योंकि जाओगे कहां ? संसार से भागोगे कहां ? जहां जाओगे वहां भी संसार है। जहां भी जाना-आना हो सकता है वहां संसार है। इसलिए तो हम संसार को आवागमन कहते हैं – आना-जाना। तो कहां जाओगे ? कहां आओगे ? जहा भी जाओगे, जहां भी आओगे, वहीं संसार है। ठहर जाओ ! आना-जाना छोड़ो ! जहां हो वहीं ठहर जाओ ! भीतर उतरो ! इतने भीतर उतर जाओ कि बाहर की धुन भी न पहुंचे ! इतने भीतर उतर जाओ कि बाजार चलता रहे और चलता रहे और तुम्हें पता भी न चले। इतने भीतर उतर जाओ कि पत्नी पास हो, बच्चे पास हों, मकान हो, घर-गृहस्थी हो, सब हो – लेकिन तुम भीतर अकेले हो जाओ।

सबके बीच जो अकेला हो गया, वही संन्यासी है। भीड़ के बीच जो भीड़ का हिस्सा न रहा, वही संन्यासी है। जल में कमलवत् – महावीर कहते हैं – यही मेरी व्याख्या है ब्राह्मण की।

इसलिए ब्राह्मण कोई जाति से नहीं होता, न जन्म से होता है। जन्म और जाति में तो सभी शूद्र हैं। ब्राह्मण तो कोई उपलब्धि से होता है। इसलिए महावीर ने वर्ण-व्यवस्था नहीं मानी। महावीर ने कहा, यह कैसे हो सकता है कि कोई कहे, कि मै ब्राह्मण हू जन्म से ! जन्म से तो कोई ब्राह्मण नहीं होता–जागरण से कोई ब्राह्मण होता है। होश से कोई ब्राह्मण होता है।

'जीव ही ब्रह्म है। देहासक्ति से मुक्त हो कर मुनि की ब्रह्म के लिए जो चर्या है, वही ब्रह्मचर्य है।'

बडी प्यारी परिभाषा है ! ब्राह्मण की जो चर्या है, वह ब्रह्मचर्य। और प्रत्येक व्यक्ति के भीतर ब्रह्म है।

'जीव ही ब्रह्म है। देहासक्ति से मुक्त व्यक्ति की जो चर्या है, वही ब्रह्मचर्या है, वही ब्रह्मचर्य है।'

जैसे ही तुम शरीर के द्वारा नही जीते, शरीर का उपयोग करते हो, लेकिन शरीर के मलिक हो के जीते हो; शरीर सेवक हो जाता है, तुम स्वामी हो जाते – उसी क्षण तुम्हारे भीतर के ब्रह्म का आविष्कार हुआ; तुमने जाना, तुम कौन हो। और उस जानने के बाद जो आचरण है, वही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य का इतना छोटा-सा अर्थ जो लोग ले लेते हैं – वीर्य-नियमन – काफी नहीं है। एक हिस्सा है, लेकिन पूरा नहीं है। पूरा अर्थ तो ब्रह्मचर्य शब्द में छिपा हुआ है – ब्रह्म जैसी चर्या, ईश्वर जैसा आचरण। तुम्हारे भीतर जो ईश्वर छिपा है उससे जब तुम जीने लगोगे तो ब्रह्मचर्य। स्वभावतः वीर्य-नियमन अपने से आ जाएगा, उसे लाना भी न पड़ेगा। वह उसके साथ आया हुआ अनुषंग है।

अभी तो हम ऐसे जीते हैं जैसे शरीर हैं। शरीर में हैं, ऐसे भी नहीं – शरीर

ही है, ऐसे जीते हैं। अभी तो कोई तुम्हारा शरीर काट दे तो तुम समझोगे कि तुम कट गए। अभी तो कोई शरीर को मार डाले तो तुम समझोगे कि तुम मर गए। अभी तो शरीर से तुमने अपने पृथक 'होने' को जरा भी नहीं जाना, रत्ती भर फासला नहीं कर पाए।

काट कर पर मुतमईन सैयाद बेपरवा न हो
रूह बुलबुल की इरादा रखती है परवाज का।

ऐसी घड़ी अभी तुम्हारे पास नहीं आई कि तुम मौत से कह सको —

काट कर पर मुतमईन सैयाद बेपरवा न हो!

— कि हे जल्लाद! पंख काट के तू निश्चिन्त मत बैठ!

रूह बुलबुल की इरादा रखती है परवाज का।

पंखों से क्या लेना-देना है, आत्मा उड़ने का इरादा रखती है आकाश में। पंखों को काट के तू निश्चित मत हो जा। जिस दिन ऐसी घड़ी आती है कि तुम मौत से कह सकोगे कि काट डाल शरीर को, लेकिन इससे निश्चित हो के मत बैठना, क्योंकि मैं अनकटा पीछे हूं। शरीर से थोड़े ही चलता था — शरीर मेरे कारण चलता था। मैं चलता रहूंगा। शरीर से थोड़ी उड़ता था — शरीर मेरे कारण उड़ता था। मैं उड़ता रहूंगा।

काट कर पर मुतमईन सैयाद बेपरवा न हो
रूह बुलबुल की इरादा रखती है परवाज का।

लेकिन जब तुम अपनी रूह को पहचान सको, आत्मा को अलग शरीर से, तब तुम मौत से भी हंस के दो बातें कर सकोगे।

'जीव ही ब्रह्म है।' जो अपने भीतर उतरेगा, पाएगा। लेकिन जिनको तुमने धर्म जाना है, वे तुम्हें भीतर तो उतरने की तरफ नहीं ले जाते, वे तुम्हें बाहर के मन्दिरों-मस्जिदों में भटकाते हैं। वे तुम्हारे हाथ में कुछ झूठे धर्म पकड़ा देते हैं। इन्हीं धर्मों के कारण दुनिया में इतना अधर्म है।

हम तो 'ताबां' हुए हैं लामजहब
मजहला देख सब के मजहब का।

— यह सब उपद्रव और अज्ञान देख के, मजहब के नाम पर जो चलता है, बहुत-से धार्मिक व्यक्ति अधार्मिक हो जाते हैं।

तुम्हें पहुंचाना है तुम्हारे भीतर; कहीं और मन्दिर नहीं है। तुम्हें लगाना है तुम्हारी पूजा और अर्चा में; कहीं और देवता नहीं है। तुम्हें जगाना है वहां, जहां तुम्हारी चैतन्य की धारा उठती है — उसी गंगोत्री में।

धीरे-धीरे उतरो भीतर। शरीर को देखो और पहचानो — मेरी खोल है, मेरे घर की दीवाल है। और भीतर उतरो — विचार को पकड़ो और पहचानो। विचार तुम नहीं हो, क्योंकि तुम उसे भी देख सकते हो। और थोड़े भीतर उतरो — वासना,

भावना को पकड़ो, पहचानो। यह भी तुम नहीं हो, क्योंकि तुम पहचानने वाले हो, देखने वाले हो, द्रष्टा हो। ऐसे चलते चलो, चलते चलो – उस घड़ी तक, जब केवल द्रष्टा रह जाए, और देखने को कुछ भी न बचे, शुद्ध दर्शन हो!

जिसके पीछे तुम न जा सको–वही तुम हो। जिसके और पीछे तुम न आ सको–वही तुम हो। ऐसे पीछे उतरते, उतरते, उतरते साक्षी पकड़ में आता है। बस उसके पार फिर कोई नहीं जा सकता। साक्षी के साक्षी तुम नहीं हो सकते हो। आखिरी घड़ी आ गई। बुनियाद आ गई अस्तित्व की। भूमि आ गई, जिस पे सब खड़ा है, सारा महल खड़ा है। जिसने इस अस्तित्व की बुनियाद को पकड़ लिया, आत्मा को पकड़ लिया, वही ब्राह्मण है। और उसके जीवन की चर्या ब्रह्मचर्य है।

'विषयरूपी वृक्षों से प्रज्ज्वलित कामाग्नि तीनों लोकरूपी को अटवी को जला देती है, किन्तु यौवनरूपी तृण पर संचरण करने में कुशल जिस महात्मा को वह नहीं जलाती या विचलित नहीं करती, वह धन्य है।'

'जो रात बीत रही है वह लौट कर नहीं आती। अधर्म करने वाले की रात्रियां निष्फल चली जाती हैं।'

विषयरूपी वृक्षो से प्रज्ज्वलित कामाग्नि तीनों लोकरूपी अटवी को जला रही है। तीनों लोक जल रहे हैं एक ही कामना में। नर्क तो जल ही रहा है। तुमने नर्क की कथाएं सुनी हैं – अग्नि की लपटें, और लोग जलाए जा रहे हैं। लेकिन तुमने जरा गौर से अपने आसपास देखा, यहा क्या हो रहा है! लपटें यहां भी हैं और लोग जल रहे हैं! लपटें जरा सूक्ष्म हैं – वासना की हैं, काम की हैं, दिखाई नहीं पड़ती। शायद नर्क की लपटें ज्यादा स्थूल होंगी। लेकिन स्थूल लपटों के साथ तो कुछ उपाय भी किया जा सकता है, क्योंकि दिखाई पड़ती हैं।

मैंने सुना है, एक धनपति मरा। कंजूस था बहुत। तो मरने वक्त उसने अपनी पत्नी से कहा कि मेरे कपड़े पहनाने की लाश को कोई जरूरत नही है। सम्हाल के रखना, बच्चों के काम आ जाएंगे। पत्नी ने कहा, 'क्या बात करते हो! नंगे जाने की सोचते हो?' धनपति ने कहा, 'मुझे पता है, कहां जाना है। वहां काफी गर्मी है। तू फिक्र मत कर।' मर गया, लेकिन दूसरे ही दिन रात आ के दरवाजे पे उसने खटखट की। पत्नी घबड़ाई। उसने कहा कि सुन, मेरा कोट कमीज सब निकाल के दे। पत्नी ने कहा कि तुम तो कहते थे ऐसी जगह जाना है, जहां काफी गर्मी है। उसने कहा, 'वहीं गया; लेकिन सभी धनी वहां गए हैं, उन्होंने सब एयरकंडीशन्ड कर डाला। मरा जा रहा हूं ठंढ में, सिकुड़ा जा रहा हूं। कपड़े दे! शीत सर्दी के सब कपड़े दे दे।'

भूत लेने आया है कपड़े!

तो नर्क में तो संभव भी है कि एयरकंडिशनिंग हो सके; क्योंकि लपटें बाहर हैं। यहां इस पृथ्वी पर लपटें बहुत अदृश्य है। बाहर इतनी नहीं हैं जितनी भीतर

हैं। रोएं-रोएं में हैं। तुम्हें कोई आग में फर्क नहीं रहा है, तुम आग में ही खड़े हो।

कामवासना जलाती है, इसे देखा नहीं! कितना जलाती है! किस बुरी तरह जलाती है! तृप्त होती ही नहीं। और तुम जो भी कामवासना की तृप्ति के लिए आयोजन करते हो, वह सब अग्नि में डाले गए घी की तरह सिद्ध होता है। और बढ़ती है, और लपटें लेती है। एक स्त्री से तृप्त नहीं, दो स्त्री से तृप्त नहीं, तीन स्त्री से तृप्त नहीं — किससे कौन तृप्त है!

पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक मार्शेल ने लिखा है कि जीवन भर के अनुभव के बाद मैं यह कहता हूं कि मुझे सारी स्त्रियां भी संसार की मिल जाएं, तो भी मैं तृप्त न हो सकूंगा।

तृप्त कोई हो ही नहीं सकता, क्योंकि तृप्ति के लिए हम जो करते हैं वह घी सिद्ध होता है। अभ्यास और बढ़ता है। और जड़ें मजबूत होती हैं मूढ़ता की।

'विषयरूपी वृक्षों से प्रज्ज्वलित कामाग्नि तीनों लोकरूपी अटवी को जला रही है।'

नर्क तो जल ही रहा है, साफ-साफ लपटें हैं उसकी। पृथ्वी भी जल रही है; लपटें उतनी साफ नहीं है। स्वर्ग भी जल रहा है; लपटें और भी सूक्ष्म हैं स्वर्ग में। पृथ्वी पर तो लपटें पाप की हैं। स्वर्ग में लपटें पुण्य की हैं — और भी सूक्ष्म है। देवता भी जल रहे हैं। देवताओं की भी भाग-दौड़ मची है — वही वासना, वही उपद्रव, वही नाच-गान। और वहां भी घबड़ाहट है। वहां भी तृप्ति मालूम नहीं होती।

कथा है उर्वशी की। पृथ्वी पर विचरण करने आई थी, पुरुरवा के प्रेम में पड़ गई — एक मर्त्य के प्रेम में, एक पृथ्वीवासी के प्रेम में। देवताओं से तृप्ति न मिली। देवता नहीं तृप्त कर पाए। जो भी मिल जाए उससे तृप्ति नहीं होती। अप्सराएं तड़पती हैं पृथ्वी के पुरुषों के लिए। यह कथा है उर्वशी की। पृथ्वी के लोग तड़फ रहे हैं अप्सराओं के लिए। कुछ मामला ऐसा है कि जो जहां है वहां अतृप्त है। कहीं और, कहीं और होने तो तृप्ति हो जाती!

'किंतु यौवनरूपी तृण पर संचरण करने में कुशल जिस महात्मा को वह नहीं जलाती या विचलित नहीं करती, वह धन्य है।'

तीनों लोक जल रहे हैं। जो इस विराट दावानल में अलिप्त खड़ा है, अनजला खड़ा है, जिसे कोई लपट भीतर से नहीं पकड़ती, जिसके भीतर कामवासना की लपट नहीं उठती — वह धन्य है।

एक ही धन्यता को महावीर जानते हैं — और वह धन्यता है वासना की दौड़ से छूट जाना। क्योंकि वासना की दौड़ से छूटते ही तुम आत्मा में थिर हो जाते हो। वासना ऐसे है जैसे हवा के थपेड़े, और लौ को डगमगाते हैं तुम्हारी ज्योति को, तुम्हारे दीये को। और वासना से छूट जाना ऐसे है जैसे हवाएं बंद हो गईं और ज्योति निष्कंप हो गई। वासना यानी आत्मा का डगमगाना। आत्मा यानी वासना

से मुक्त हो जाना। डगमगाहट गई, अकंप हुए ! धन्य है वह व्यक्ति !

'जो जो रात बीत रही है, वह लौट कर नहीं आती। अधर्म करने वाले की रात्रियां निष्फल चली जाती हैं।'

बहादुरशाह ज़फर ने मरने के पहले कुछ वचन कहे :

न किसी की आंख का नूर हूं
न किसी के दिल का करार हूं
जो किसी के काम न आ सके
मैं वो एक मुश्ते-गुबार हूं।

—एक मुट्ठी भर धूल !

न किसी की आंख का नूर हूं !

—अब किसी के आंख की रोशनी नहीं हूं मैं।

न किसी के दिल का करार हूं !

—न किसी के प्रेम, लागत, चाहत का विषय हूं, विषयवस्तु हूं।

जो किसी के काम न आ सके

– अब तो बस हालत ऐसी है कि एक मुट्ठी भर धूल हूं जो किसी के भी काम की नहीं है।

आदमी की देखी हालत ! जानवर मर जाते है तो कुछ काम भी आ जाते हैं। हाथी मर जाए तो हजारो में बिकता है। जिंदा हाथी की कीमत कम है, मरे की ज्यादा है। जिंदा को पाले कौन ! न राजा-महाराजा रहे, न महंत-अधिपति रहे – हाथी को पाले कौन ! मर जाता है तो भी कीमत है लेकिन, हड्डियां बिक जाती हैं। आदमी अकेला प्राणी है संसार में जिसका मरने पर कुछ भी, कुछ काम नही आता, सब जलाने-योग्य सिद्ध होता है; सब व्यर्थ सिद्ध होता है !

जो किसी के काम न आ सके
मैं वो एक मुश्ते-गुबार हूं।

दिन रात बीते चल जाते हैं

बजूज गोरेगरीबां नक्शे पा थे फिर नही आगे
यही तक हर मुसाफिर ने पता पाया है मंजिल का।

लोगों को देखो ! बस उनके पैर उनके मरघट तक जाते हैं। और वहां सब खो जाता है।

बजुज गोरेगरीबा नक्शे पा थे फिर नही आगे – बस मौत तक लोगो के पैरो के चिह्न दिखाई पड़ते हैं। यही तक हर मुसाफिर ने पता पाया है मंजिल का।

पर मौत मंजिल है कि कब्र गंतव्य है ? कि चले और गिरे कब्र में, तो जीवन का अर्थ क्या हुआ, सार्थकता क्या हुई ? नहीं, कुछ और भी लोग हुए हैं, थोड़े-से धन्यभागी लोग, जिन्होंने मौत के आगे का भी पता पाया है। उन्हीं की हम यहां

चर्चा कर रहे हैं – महावीर, बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट, मोहम्मद, जरथुस्त्र, लाओत्सु। कुछ हैं थोड़े-से धन्यभागी, जिन्होंने जीवन इस तरह से साधा कि मौत से बच के निकल गये।

उनकी साधना की कला क्या है ?

उनकी कला का सूत्र महावीर कह रहे हैं .

'यौवनरूपी तृण पर संचरण करने में कुशल जिस महात्मा को वह नहीं जलाती या विचलित नहीं करती, वह धन्यभागी है।'

जो जीवन में रहते-रहते जीवन की वासना के पार हो जाता है, उसे मौत के आगे रास्ता मिल जाता है। क्योंकि मौत सिर्फ वासना की है, तुम्हारी नहीं है। अगर तुमने वासना को जीते-जी त्याग दिया, तो फिर तुम्हारी कोई मौत नहीं है। अन्यथा, जिसको तुम जिंदगी कहते हो वह बस नाममात्र की जिंदगी है – कहने को। जिंदगी जैसा क्या है वहां ? कहां हैं अंगार ? राख ही राख है।

मुझसे जो पूछिए तो बहरहाल शुक्र है
यूं भी गुजर गई मिरी यूं भी गुजर गई।

बस ऐसी ही गुजरी जाती है।

लोग कहते है, सब ठीक है। पर कभी गौर से देखा, जब लोग कहते है सब ठीक है। तब उनके चेहरे पे कैसी उदासी होती है ! जब वे कहते हैं, सब ठीक है, तो जैसे कहते हैं, कुछ भी ठीक कहा ! मगर अब कहने मे भी क्या सार है ! सब ठीक है !

किसी से पूछो, कहो, क्या हाल-चाल हैं – कहता है, सब ठीक है, सब मजे मे चल रही है।

मुझसे जो पूछिए तो बहरहाल शुक्र है।
यूं भी गुजर गई मिरी यूं भी गुजर गई।

बस किसी तरह ले-दे के गुजर जाती है । ऐसे-वैसे गुजर जाती है । इसको तुम जिंदगी कहते हो जो ऐसे गुजर जाती है ? अगर इसको जिंदगी कहते हो, तो किसी दिन रोओगे, तड़फोगे और कहोगे .

मैं वो एक मुश्तेगुबार हूं
जो किसी के काम न आ सके।

गुजारो मत – जियो ! काटो मत – जियो ! गवाओ मत – जियो !

जा जा वज्जई रयणी, ण सा पडिनियत्तई।
अहम्म कुणमाणस्स, अफला जन्ति राइओ ।।

जो-जो रात बीत रही, लौट कर नहीं आएगी, नहीं आती है।

'अधर्म करने वाले की रात्रियां निष्फल चली जाती हैं।'

निष्फल मत जाने दो ! ये दिवस-रात महंगे हैं । ये दिवस-रात बड़ी मुश्किल से मिले हैं ।

मनुष्य का जन्म दुर्लभ है । कोटि-कोटि योनियों के बाद मनुष्य हो पाता है । कितनी आकांक्षाओं, कितनी अभीप्साओं को ले कर तुम मनुष्य हुए हो ! अब इसे ऐसे ही मत गुजर जाने देना ! कितनी चेष्टाओं, कितने जन्मों के यात्रा-पथों के बाद, कितनी देहें, कितनी योनियों में भटकने के बाद, सौभाग्य का क्षण आया है कि तुम मनुष्य हुए हो ? इसे ऐसे ही मत गंवा देना ! ये दिन फिर लौट कर नहीं आते ! ये रातें गईं तो गईं । इनमें एक-एक क्षण को इस ढंग से जीना कि क्षण तो जाए, लेकिन अमृत की तुम्हें खबर दे जाए । क्षण तो जाएगा ही, लेकिन इस ढंग से निचोड़ लेना कि क्षण तो चला जाए, लेकिन सार तुम्हारे साथ रह जाए । क्षण तो जाए, लेकिन अमृत का द्वार खोलता जाए । यह जीवन तो जाएगा ही, लेकिन जाते-जाते तुम जीवन का ऐसा उपयोग कर लेना कि तुम इसके कंधों पे चढ़ जाओ और इसके पार देख लो । इसके पार जो है वही असली जीवन है ।

मनुष्य संक्रमण है, एक सेतु है । पीछे अतीत है – जानवरों का, पशु-पक्षियों का, पत्थरों का, पहाड़ों का । आगे परमात्मा है । तुम बीच के सेतु हो । यह मनुष्य कुछ घर नहीं है, जहां बस जाना है – यह धर्मशाला है, जहां रात टिके, सुबह जाना है ।

याद रखना, यात्रा अभी होने को है – हो नहीं गई ! अभी कुछ घटने को है, घट नहीं गया । तुम सिर्फ एक अवसर हो । अवसर को ही सत्य मत मान लेना । तुम सिर्फ एक संभावना हो, अनंत संभावना, जिसमें अगर ठीक से तैयारी चली, अगर तुम अपने को मंदिर बना पाए, तो किसी दिन, सत्य कहो, ब्रह्म कहो, या जो नाम तुम्हें पसंद हो, जीवन का वह भगवत रूप, भगवत्ता तुममें उतरेगी ।

तो इस जीवन को तुम भोग ही मत समझना – यह जीवन योग भी है । भोग का अर्थ है : गुजार दो; यह कर लो, वह कर लो; यह भोग लो, वह भोग लो । योग का अर्थ है : गुजारो ही मत, सुधारो भी । योग का अर्थ है : सजाओ, कोई मेहमान आने को है ! अतिथि आ रहा पास । ऐसा न हो कि वह आए और तुम्हें तैयार न पाए । तुम तैयार रहना, द्वार खोले ! सिंहासन सजा के रखना ! धूप-दीप, अर्चा, फूल, वंदनवार ! तुम्हारे क्षण अमृत की तैयारी में लगें ! तुम्हारे दिवस और रात्रि ध्यान बन जाएं । धीरे-धीरे समाधि का संगीत तुम्हारे भीतर उठे, बजे ! तो ही, तुम किसी दिन जान पाओगे – उसे, जो तुम हो ! जान पाओगे उसे, जो जीवन का अर्थ है, प्रयोजन है ! जान पाओगे उसे, जो जीवन का गंतव्य है । उसे जाने बिना जो जीते हैं, वे नाममात्र को जीते हैं । उसे जान के जो जीते, वही जीते है । उसे बिना जाने जो जीते, वे तो सिर्फ मरते । उसे जान कर जो मरते भी हैं, तो भी अमृत को उपलब्ध होते हैं ।

आज इतना ही ।

दिनांक १८ मई, १९७६; श्री रजनीश आश्रम, पूना

प्रश्न-सार

आपने कहा कि सत्य संज्ञा नहीं है, क्रिया है। क्या प्रेम, आनंद, ध्यान, समाधि भी क्रिया ही हैं? क्या क्रिया का समझ से कोई संबंध नहीं?

तीर्थंकर चौबीस ही क्यों, ज्यादा क्यों नहीं?

क्या परंपरा की जरूरत नहीं है? क्या परंपरा से हानि ही हानि हुई है?

क्या कारण है कि 'जिन' जैन बन कर रह गया?

किसी सुन्दर युवती को देख कर मन उसकी ओर आकर्षित हो जाता है। क्या यह वासना है, या प्रेम, या सुंदरता की स्तुति?

सम्यक् ज्ञान मुक्ति है

पहला प्रश्न : आपने कल कहा कि सत्य संज्ञा नहीं है, क्रिया है। क्या इसी भांति प्रेम, आनंद, ध्यान, समाधि, जो भी स्वभावगत है, वह भी संज्ञा नहीं, वरन क्रिया है ? और क्या क्रिया का समझ से कोई संबंध नहीं है ? कृपा कर समझाएं।

क्रिया है : जीवतता। संज्ञा है : लाश। संज्ञा का अर्थ है : जो चीज हो चुकी। क्रिया का अर्थ है : जो अभी हो रही, हो रही, हो रही। जैसे नदी बह रही है, नदी क्रिया है, तालाब नहीं बह रहा, तालाब संज्ञा है। बहाव जीवन है, ठहराव मृत्यु है।

जीवन में जो भी महत्त्वपूर्ण है, सभी क्रिया जैसा है। प्रेम भी कोई वस्तु नहीं है; प्रेम भी प्रक्रिया है। करो तो है, न करो तो गया। जो तुमसे कहता है, मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, उसका प्रेम भी उन्हीं क्षणों में होता है जब वह करता है; जब नहीं करता तब प्रेम खो जाता है। प्रेम को बनाये रखना हो तो क्रिया को जारी रखना पड़े। ध्यान भी तभी होता है जब तुम करते हो; जब तुम नहीं करते, खो जाता है। जो तुम करते हो वही होता है। श्वास भी तुम जब तक ले रहे हो, तभी तक है; जब न लोगे, तब कैसी श्वास ?

जीवन का बड़ा गहनतम सत्य है कि यहां सभी प्रक्रियाएं हैं। विज्ञान ने भी इस सत्य को उद्घोषित किया है।

बड़े वैज्ञानिक एडिंगटन ने लिखा है कि 'ठहराव' झूठा शब्द है, क्योंकि कोई चीज ठहरी हुई नहीं है। सब हो रहा है। इसलिए ठहराव को प्रदर्शित करने वाले सभी शब्द अज्ञान-सूचक हैं। हम कहते हैं, वृक्ष है। ऐसा कहना नहीं चाहिए। यह सत्य के अनुकूल नहीं है। यह अस्तित्व का सूचक नहीं है। कहना चाहिए, वृक्ष हो रहा है। जब हम कहते हैं वृक्ष है, तब ऐसा लगता है कि होना बन्द हो चुका, कोई चीज है। जब हम कहते हैं वृक्ष है, जितनी देर हमने कहने में लगाई कि वृक्ष है, उतनी देर में वृक्ष कुछ और हो चुका। कुछ पुराने पत्ते गिर गये। कुछ नई कोपलें सरक के बाहर आ गयीं। कोई कली फूल बन गई। कोई फूल बिखर गया। वृक्ष उतनी देर में बूढ़ा हो रहा है। हम कहते हैं, मकान है, लेकिन मकान भी जराजीर्ण हो रहा

है; आज है कल नहीं हो जायेगा, अन्यथा महलों के खण्डहर कैसे होते ! हम कहते हैं, यह आदमी जवान है; अगर हम गौर से देखें तो कहना पड़ेगा, यह आदमी जवान हो रहा है या यह आदमी बूढ़ा हो रहा है। 'है' की कोई अवस्था नहीं है।

यूनान के बहुत बड़े मनीषी हैराक्लतु ने कहा है, तुम एक ही नदी में दुबारा नहीं उतर सकते। दुबारा उतरने को वही नदी पाओगे कहाँ ? पानी बहा जा रहा है। फिर हैराक्लतु के एक शिष्य ने कहा कि अगर हैराक्लतु सही है तो एक ही नदी में एक बार भी कैसे उतरा जा सकता है ?जब तुम्हारे पैर ने नदी की ऊपर की सतह छुई, तब नदी और थी; जरा पैर नीचे गया, तब नदी और हो गई; और तलहटी तक पहुंचा, तब तक नदी और हो गई। गंगा बही जाती है। बहाव में गंगा है। इसलिए सब हो रहा है।

तुम हो, ऐसा नहीं – तुम हो रहे हो।

जीवन एक घटना है, वस्तु नहीं। और जिसने जीवन का यह घटनामय रूप देखा, उसके भीतर जीवन बड़ी प्रज्ज्वलना से जलेगा। तब तुम यह नहीं कहोगे कि प्रेम कोई स्थायी निधि है, कि रखी है हृदय में ! प्रेम भी श्वास जैसा है; लो तो है, न लो तो नहीं है।

तुम जो करते हो, उस कृत्य में ही चीजें होती हैं। तुम जो हो उसमें तुम्हारी कोई स्थिति का पता नहीं चलता, सिर्फ तुम्हारी क्रिया का पता चलता है। तुम कहते हो, यह आदमी साधु है। इसका केवल इतना ही अर्थ हुआ, यह आदमी साधु होने में लगा है। यह आदमी साधुता को सम्हाल रहा है। तुम कहते हो, यह आदमी ध्यानी है। इसका इतना ही अर्थ होता है कि यह ध्यान की श्वासें ले रहा है।

यहां सब चीज चल रही है, कोई चीज ठहरी नहीं है। सब रूपातरित हो रहा है, प्रतिपल रूपातरित हो रहा है। प्रतिपल नया घट रहा है, पुराना जा रहा है। इसलिए तो कहते हैं, पुराने से मोह मत रखो; क्योंकि तुम्हारा मोह तुम्हें अटकायेगा। और जीवन और तुम्हारा छंद टूट जायेगा। इसलिए तो कहते हैं, भविष्य की चाह मत करो; क्योंकि भविष्य अभी नहीं है। अतीत न हो चुका, भविष्य अभी नहीं है। जो न हो चुका उसे पकोड़ेगे तो मुश्किल में पकड़ोगे, अड़चन पैदा होगी; जो अभी नहीं है उसे तो पकड़ोगे कैसे ? सिर्फ कल्पना करोगे। जो है, उसे देखो। और जो है, वह प्रतिपल बहा जा रहा है। इस बहती गंगा का साक्षात्कार करो।

बुद्ध के ऊपर कोई एक व्यक्ति आया और थूक गया। नाराज था बहुत। बड़े क्रोध में था। बुद्ध जैसे व्यक्तियों का होना भी कुछ लोगों को बड़े क्रोध से भर देता है। क्योंकि बुद्ध जैसे व्यक्तियो के होने से कुछ लोगों के होने की असंभावना पैदा हो जाती है। बुद्ध की मौजूदगी अहंकार को तोड़ती है। बुद्ध की मौजूदगी कहती है कि तुम भी ऐसे हो सकते थे, न हो पाये। बुद्ध की मौजूदगी तुम्हें तुम्हारे

सत्य से परिचित कराती है। बुद्ध का फूल तुम्हें तुम्हारे कांटे की तरफ इशारा करवाता है। नाराजगी पैदा होती है।

थूका बुद्ध के ऊपर। बुद्ध ने पोंछ लिया अपनी चादर से। दूसरे दिन वह आदमी क्षमा मांगने आया। रात भर सो न सका। बुद्ध ने कहा, 'नहीं, क्षमा की कोई बात नहीं; क्योंकि जो थूक गया था, वह अब है ही कहां! जिस पे थूक गया था, वह भी अब नहीं है। न मैं वही हूं, न तुम वही हो। छोड़ो भी। जाने भी दो। उन बातों में पड़ने की जरूरत कहां है? एक तो तुमने थूक के गलती की, फिर रात भर व्यर्थ की चिन्ता की। अब पश्चात्ताप कर रहे हो। अब छोड़ो! मेरी तरफ देखो। मैं वह नहीं हूं, जिस पे तुम थूक गये थे। तुम भी वह नहीं हो।'

आनंद, बुद्ध का शिष्य, पास बैठा था, उसने कहा कि ठहरें, यह बात दर्शनशास्त्र की नहीं है। यह आदमी थूक गया था और वही आदमी है। बुद्ध ने कहा, 'तुम थोड़ा देखो आनंद! कल यह थूक गया था, आज यह क्षमा मांगने आया है — वही आदमी हो कैसे सकता है? जो थूक गया था और जो क्षमा मांगने आया है, इसमें तुम्हें भेद नहीं दिखायी पड़ता? तुम चेहरे से धोखे में आ रहे हो। जरा भीतर देखो। यह आदमी वही नहीं है, नहीं तो थूकता। यह तो क्षमा मांगता है। यह कोई और है। यह किसी नये का आविर्भाव हुआ है। तुम इस नये के दर्शन करो।'

लेकिन आनंद मानने को राजी नहीं है, क्योंकि आनंद तो कल को ही पकड़े बैठा है। जो तुम्हें कल गाली दे गया था, वह आज जब तुम्हें दुबारा मिले तो तुम कल को पकड़ के मत बैठना; अन्यथा तुम, जो आज आया है, उसे न देख पाओगे। हो सकता है, क्षमा मांगने आया हो। कल जो मित्र था, आज शत्रु हो सकता है। जो आज शत्रु है, कल मित्र हो सकता है।

ध्यानी अपने को सतत खाली रखता है; निर्मल रखता है; आंख खुली रखता है। बादल नहीं इकट्ठे करता। तथ्य को देखता है, जैसा अभी है। न तो कल से तौलता है, न आने वाले कल से तौलता है। जैसा अभी है, उस तथ्य को देखता है। लेकिन इस तथ्य को देखने के लिए तुम्हें भी सत्य होना पड़े। इसलिए महावीर ने सत्य को समस्त धर्म का सार कहा। तप और संयम, और शेष सब गुण उसमें समाविष्ट हैं।

सत्य का अर्थ हुआ: भीतर तुम जो हो, वही रहो। तो बाहर भी तुम उसी को देख पाओगे, जो है। हम बाहर वही देखते रहते हैं, जो नहीं है। अतीत बड़ा बोझिल है। भविष्य भी बड़ा बोझिल है। और इन दोनों की कशमकश में, इन दो चक्कियों के पाट के बीच वर्तमान का छोटा-सा क्षण पिस जाता है। तुम या तो कल्पना करते हो, या याददाश्तों में खोये रहते हो। तुम देखते ही नहीं, जो तुम्हारे पास से गुजर रहा है।

जीवन को तथ्य में देखो। लेकिन उस देखने के लिए तुम्हें सत्यमय होना पड़ेगा।

जो सत्य है, वह सत्य को देखेगा। और तब तुम्हें संज्ञाएं न दिखायी पड़ेंगी, क्रियाएं दिखायी पड़ेंगी।

आत्मा कोई वस्तु थोड़ी है कि तुम उसे मुट्ठी में बांध ले सकते हो – आत्मा तो तुम्हारे भीतर चैतन्य की सतत प्रक्रिया है। वह जो चैतन्य का आविर्भाव हो रहा है पल-पल, वह जो साक्षी जन्म रहा है शून्य से निरन्तर – वही है आत्मा।

मनसविद कहते हैं कि आदमी जब पैदा होता है तो शून्य की तरह पैदा होता है, बच्चा पैदा हुआ, शून्य की तरह पैदा होता है। अभी उसे कुछ भी पता नहीं है। वह है, ऐसा भी पता नहीं है। इसे होने के लिए भी थोड़ी देर लगेगी। लेकिन पैदा हुआ है, तो शून्य की तरह – यह उसकी पहली जीवन-घटना है। लेकिन जैसे ही बच्चा पैदा हुआ, मिटने का भय समाने लगता है। जब हुए, तो मिटने का भय भी आता है। भूख लगती है, प्यास लगती है – मिटने का भय पकड़ने लगता है। तो पहली जो तुम्हारे भीतर गहनतम स्थिति है, वह तो शून्य की है। उसे महावीर आत्मा कहते हैं। बुद्ध उसे अनात्मा कहते हैं। दोनों कहे जा सकते हैं। आत्मा, क्योंकि वह तुम्हारा स्वरूप है। अनात्मा, क्योंकि वहां 'मैं' जैसा कोई भाव नहीं। शुद्ध स्वरूप है। 'मैं' भी नहीं है वहां। लेकिन जैसे ही बच्चा पैदा हुआ कि डर पैदा हुआ कि अब मैं हूं, तो कहीं मिट न जाऊं। जहां 'हूं' आया, वहा न होने का भय भी आया। जहां प्रकाश आया पीछे-पीछे अंधेरा भी आया। तो एक भय की पर्त खड़ी होती है। शून्य है भीतर, उसके आसपास भय की परत है। अमृत है भीतर, उसके आसपास मृत्यु की परत है।

फिर समाज बच्चे को ढालना शुरू करता है। बच्चे को वैसा ही नहीं छोड़ देता, जैसा वह आया है। संस्कार देने है। शिक्षा देनी है। सभ्यता देनी है। बहुत कुछ काटना है, बहुत कुछ बनाना है। बहुत कुछ नया उगाना है, बहुत कुछ हटाना है। समाज कांट-छांट शुरू करता है। छैनी उठा लेता है : तो बच्चे के भीतर एक तीसरी परत पैदा होती है – नीति की, समाज की, संस्कार की, संस्कृति की। लेकिन स्वभावतः यह जो संस्कृति, समाज की पर्त है, यह उसके स्वभाव के प्रतिकूल पड़ती है। नहीं तो इसकी जरूरत ही न होती। इसकी जरूरत ही इसलिए होती है कि जैसा बच्चा स्वभाव के अनुसार है, वैसा समाज को अंगीकार नहीं है। बच्चा बेवक्त हंसने लगे, उसके स्वभाव के अनुकूल है कि उसे हंसी आ रही है, लेकिन समाज नियमन करेगा कि सब स्थान सब समय हंसने के योग्य नहीं हैं। कोई मर गया हो और तुम हंसने लगो...।

मेरे एक शिक्षक मर गये थे। बड़े सीधे-साधे शिक्षक थे। रहने-सहने का ढंग भी उनका बड़ा सीधा-साधा था। एक बड़ी पगड़ी बांधते थे। अकेले ही थे उस पूरे गाव में, जो उतना बड़ा पग्गड़ बांधते थे। चलते भी ऐसे ढीले-ढाले थे। संस्कृत के शिक्षक थे। तो उनको लोग पोंगापंडित ही समझते थे। स्कूल में उनका नाम बच्चों ने

' भोलेनाथ ' रख लिया था । जैसे ही वे आते, बच्चे कहने लगते : 'जय भोले बाबा ! ' उनकी कमीज पे पीछे लिख देते : ' जय भोले बाबा ! ' बोर्ड पर लिख देते : भोलानाथ । वे नाराज भी होते थे, लेकिन उनकी नाराजगी भी बड़ी प्रीतिकर थी । वे बड़ी नाच-कूद भी मचाते थे, बड़े गुस्से में भी आ जाते थे। मरने-मारने की जैसी हालत होती, लेकिन मारते-करते किसी को न थे। सीधे-साधे आदमी थे। शोरगुल मचा के चुप हो जाते थे।

वे मरे तो मैं अपने पिता के साथ उनके घर गया। उनकी लाश पड़ी थी। और उनकी पत्नी आयी और उनकी छाती पे गिर पड़ी और कहा, ' हाय मेरे भोलेनाथ ! ' भोलेनाथ कह के हम उन्हें चिढ़ाते थे। यह तो किसी और को पता न था, मुझको ही पता था। वहां तो सब बड़े बूढ़े थे। तो वे तो चुप रहे, लेकिन मुझे बड़ी जोर की हंसी आई कि यह तो हद मजाक हो गयी ! जिंदगी में भी ' भोलेनाथ,' मर के अब कोई और कहने को नहीं तो खुद पत्नी कह रही है, ' हाय मेरे भोलेनाथ ।' जितना मैंने रोकने की कोशिश की, उतनी मुश्किल हो गयी। आखिर हंसी निकल ही पड़ी। पिता नाराज हुए। कहा, दुबारा अब कभी ऐसी जगह न ले जायेंगे। और शिष्टाचार सीखो। यह कोई ढंग हुआ ? वहां कोई मरा पड़ा है, लोग रो रहे हैं— और तुम हंस रहे हो !

मैंने उनसे कहा, मेरी भी तो सुनो। वहां किसी को पता ही नहीं था, जो राज मुझे पता है। जिस वजह से मुझे हंसी आयी – वह हंसी यह थी कि जिंदगी भर इस आदमी को हम भोलानाथ कह के चिढ़ाते रहे, मर के भी मजाक तो देखो ! कोई और नहीं तो खुद पत्नी कह रही है, ' हाय मेरे भोलेनाथ ! ' यह आदमी, इसकी आत्मा वहां भी उछलने-कूदने लगी होगी नाराज हो गई होगी कि हद हो गई ! आखिरी विदा के क्षण में भी !

लेकिन तब से उन्होंने मुझे ले जाना बंद कर दिया। कहीं कोई मर जाये, कुछ हो तो वे मुझे न ले जाते।

संस्कार देना जरूरी है। परिवार की अपनी अड़चन है। समाज की अपनी असुविधा है। बच्चे को वैसे ही नहीं छोड़ा जा सकता, कुछ न कुछ काट-छांट करनी पड़ेगी। वह जो काट-छांट है, उसमें बच्चे के स्वभाव के प्रतिकूल उस पे कुछ थोपा जाता है। जहां रोना चाहता है, रो नहीं सकता है। जहां हंसना चाहता है, हंस नहीं सकता। जहां क्रोध करना चाहता है, क्रोध नहीं कर सकता। जहां प्रेम नहीं करना है, वहां प्रेम दिखलाना पड़ता है। जिनके पैर नहीं छूने, उनके पैर छूने पड़ते हैं। जो नहीं खाना है, वह खाना पड़ता है। जो खाना है, वह खाने को मिलता नहीं है। तो तीसरी परत खड़ी होती है – संस्कार की, समाज की, नियंत्रण की। कारागृह बनता है।

फिर जैसे ही बच्चा बड़ा होता है, धीरे-धीरे जैसे-जैसे उसके पास ताकत आती

है, वह पीछे के दरवाजों से अपने स्वभाव की पूर्ति के रास्ते खोजता है। कमजोर है बच्चा, छोटा है, तब तक तो स्वीकार कर लेता है; लेकिन जैसे-जैसे समझ आने लगती है, ताकत आने लगती है, वह कोई रास्ते निकालने लगता है, छिप-छिप के करने लगता है काम, जो उसे करने हैं। धोखा पैदा होता है। तो चौथी परत पैदा होती है जो समझौते की परत है। वह समाज जो मानता है, चाहता है, वैसा दिखाता है; और जो उसे करना है, वैसा करता है। तो दोहरा व्यक्तित्व बनता है। यह चौथी परत है।

फिर पांचवीं एक परत है, जो सबसे ऊपर-ऊपर है — लोकाचार की, शिष्टाचार की। किसी को तुम मिलते हो तो कहते हो, 'कहिए, कैसे हैं? बड़ी खुशी हुई मिल के। बड़े बाद दर्शन हुए। बड़े दिन से आंखें तरसती थीं।' ये सब बातें हैं। यह औपचारिक परत है। इससे थोड़ा संबंधों में सुगमता बनी रहती है। जयराम जी, हैलो — इससे थोड़ा दो व्यक्तियों के बीच में स्निग्धता बनी रहती है — लुबरीकेशन। नहीं तो कोई मिला और सीधे खड़े हो गये। वह भी खड़ा है, तुम भी खड़े हो— कहां से चलें, क्या कहें, क्या न कहें! तो अड़चन खड़ी होगी, तो कहा जयराम जी! बातचीत शुरू हुई? 'मौसम कैसा है?' 'अच्छा है।' 'पति-पत्नी, बच्चे, घर, सब कुशल है।' सिलसिला चल पड़ा। अब आगे बात चल सकेगी। कहीं से शुरू तो करना होगा।

तो पांचवी परत है उपचार की। ये तुम्हारी परतें है। पहली जो घटना थी शून्य की, वह तुम्हारा सत्य है। अब इन चार परतों के नीचे दबा है सत्य। इन परतों को धीरे-धीरे छांटना होगा। इन परतों को धीरे-धीरे हटाना होगा। जैसे कि नदी पर पत्ते छा जाते हैं, सैवाल फैल जाता है, तो हम हटा के देखते हैं, नीचे जलधार बह रही है — इन चार परतों के नीचे तुम्हारा स्वभाव बह रहा है, तुम्हारी गंगा बह रही है। इनको हटाने का नाम ही साधना है। ये चारों परतें जड़ है। ये चारों परतें सजा की हैं। और तुम्हारा स्वभाव क्रिया का है। इन चारों परतों के साथ समाज राजी है, तुम्हारे स्वभाव से राजी नही है; क्योंकि ये चारों परतें तुम्हें नियंत्रण मे ला देती हैं। तुम्हारा स्वभाव तो बड़ी विस्फोटक घटना है।

इसलिए तो महावीर जब जिंदा होते हैं तो स्वीकार नहीं होते। बड़े विस्फोटक आदमी हैं। अपने रंग में जीते हैं। कोई समझौता नहीं करते। अपने स्वभाव में जीते हैं, चाहे कोई भी कीमत चुकानी पड़े। अगर नग्न होने में मजा आया तो नग्न जीते हैं। चाहे दुनिया कुछ भी कहे। भला कहे, बुरा कहे — कोई चिंता नहीं लेते।

तो महावीर तो एक बगावती हैं, एक क्रांतिकारी है। धर्म बगावत है, क्रांति है। हां, जब महावीर मर जाते हैं तो उनके पीछे जो इकट्ठे होते हैं, वे कोई बगावती नहीं हैं। या हो सकता है, पहली जो संख्या, पहले लोग जो महावीर के पास आये थे, वे बगावती रहे हों; लेकिन उनके बेटे तो बगावती नहीं होंगे। उनके बेटे तो

पैदाइश से जैन होंगे। जिन्होंने महावीर को चुना था अपनी स्वेच्छा से, उन्होंने तो बड़ी हिम्मत की थी, बड़ा साहस किया था। क्योंकि महावीर बदनाम थे। गांव-गांव से खदेड़े जाते थे। पत्थर मारे गये। कान में खीलें ठोंक दिये किसी ने। कहीं स्वीकार न थे। जिन्होंने उन्हें स्वीकार किया था, वे तो बड़े हिम्मतवर लोग रहे होंगे, बड़े साहसी है।

तो शिष्यों का जो पहला समूह होता है, वह तो हिम्मतवर होता है। लेकिन जो दूसरी पीढ़ी आती है, वह तो फिर वैसी ही होती है। इसलिए तो सभी धर्म खो जाते हैं। जब सदगुरु जीवित होता है तो धर्म भी जीवित होता है। जब सदगुरु विदा हो जाता है तो धीरे-धीरे सद्धर्म की ध्वनि भी, प्रतिध्वनि बनती जाती है — दूर, दूर, दूर, दूर — फिर खो जाती है। फिर महावीर पूज्य हो जाते हैं। फिर कोई अड़चन नहीं रह जाती। फिर तुम उनकी मूर्ति बना के पूजो। फिर तुम्हें जो करना हो महावीर के साथ, करो।

देखो! दिगम्बर हैं, नग्न मूर्ति की पूजा करते हैं। उनकी मौज। श्वेताम्बर हैं, नग्न मूर्ति की पूजा नहीं करते। उनकी मौज। दिगम्बर आंख-बंद महावीर की पूजा करते हैं — उनकी मौज। अब महावीर कुछ कह नहीं सकते कि जरा ठहरो, मुझे आंख खोलनी है। वे फौरन रोक देंगे कि बंद करो बकवास, आंख बंद रखो! नियम से चलो! दिगम्बर बंद आंख की पूजा करते हैं, श्वेताम्बर खुली आंख की पूजा करते है। कुछ मंदिर हैं, जो दोनों के हैं, तो आधा दिन दिगम्बर पूजा करते हैं, आधा दिन श्वेतांबर पूजा करते है। अब बड़ी मुश्किल है, पत्थर की मूर्तियां है। वैसा कुछ आसान भी नहीं है कि आंख खोल दो, लगा दो। तो झूठी आंख चिपका देते हैं। जब सुबह दिगम्बर पूजा करेंगे, तो वे खाली मूर्ति की पूजा कर जाते हैं। जब श्वेताम्बरों की घड़ी आती है बारह बजे के बाद, तो वे आ के नकली आंख, खुली आंख चिपका देते हैं; कपड़े पहना देते हैं। पूजा शुरू हो जाती है। महावीर न तो कह सकते कि ये कपड़े मुझे पसंद नहीं, न कह सकते कि मुझे नग्न रहना है, न कह सकते हैं कि मुझे ठंडी लग रही है, अभी नग्न मत करो, कि अभी बहुत गर्मी है, कुछ कह नहीं सकते। अब तुम्हारे हाथ के खिलौने हैं। तुम्हारे महावीर, तुम्हारे बुद्ध, तुम्हारे कृष्ण, तुम्हारे हाथ के खिलौने हैं। असली महावीर, असली कृष्ण और बुद्ध जलते हुए अंगारे थे। उनको हाथ में रखने के लिए बड़ी हिम्मत चाहिए थी। जो दग्ध होने को राजी थे वे उनके पास आये थे। कमजोर तो उनसे दूर भागे थे। कमजोर तो उनके दुश्मन थे। लेकिन पीछे...।

मेरे पास संन्यासी आते हैं। कोई पिता आता है, कोई मां आती है। वह कहते हैं, हमारे बेटे को भी संन्यास दे दें। उनका भाव मैं समझता हूं। उन्हें जो सुख मिला है, उन्हें जो शांति मिली है, वे चाहते हैं उनके बेटे को भी मिल जाये। लेकिन उन्होंने तो मुझे चुना है, बेटे को वे ले आये हैं। बेटे ने मुझे नहीं चुना है। बेटे ने

स्वेच्छा से मुझे नहीं चुना है, बाप के साथ चला आया है। बाप कहता है, संन्यास तेरा भी करवाना है, तो वह कहता है, ठीक है। लेकिन यह संन्यासी और ढंग का संन्यासी होगा। यह तो मजबूरी का संन्यासी होगा।

ऐसी स्त्रियां मेरे पास आती हैं, वे कहती है, 'गर्भ में बच्चा है, उसे संन्यास दे दें।' उनका भाव मैं समझता हूं। उनका प्रेम मैं समझता हूं। मगर उनके भाव और प्रेम से थोड़ी संसार चलता है। उनकी भाव की बात बड़ी शुद्ध है। उनका भाव यह है कि उनका बच्चा पैदा होते से ही सन्यासी हो। ठीक है, शुभ है। लेकिन बेटे से तो पूछो! वह जो अभी पैदा ही नहीं हुआ है, उसे जुआरी बनना है कि शराबी बनना है, कि संन्यासी बनना है, कि हिंदू बनना है कि मुसलमान बनना है – उससे तो पूछो! लेकिन उससे अभी पूछने का कोई उपाय नहीं है।

तो जैसे जैन घर में पैदा होने से कोई जैन हो जाता है, मेरे संन्यासी के घर में पैदा होने से कोई सन्यासी हो जायेगा। लेकिन दूसरी पीढ़ी मुर्दा होगी। शायद दूसरी पीढ़ी में भी थोड़ा घिसटता-लंगड़ता हुआ धर्म रह जाये, क्योंकि उसने पहली पीढ़ी के दर्शन किये होंगे; कम से कम पहली पीढ़ी के पास रही होगी; उस हवा में पली होगी। लेकिन तीसरी पीढ़ी? वह तो और दूर हो जायेगी। चौथी पीढ़ी और...।

फिर पच्चीस सौ साल हो गये महावीर को हुए, अब तो सब मुर्दे हैं। अब तो जैन के नाम से जो है वह मुर्दा है। वह उतना ही मुर्दा है जैसे मुहम्मद का मुसलमान मुर्दा है और ईसा का ईसाई मुर्दा है। यह स्वाभाविक है। इसे टाला नहीं जा सकता। जैसे व्यक्ति पैदा होते है, जवान होते हैं, मर जाते हैं – ऐसे ही धर्म पैदा होते हैं, जवान होते हैं, बूढ़े होते हैं और मर जाते हैं। इस संसार में जो भी चीज जन्मती है, वह मरती भी है। वह जो परमधर्म है, जो कभी पैदा नहीं होता, कभी नही मरता, उसका तो कोई नाम नही है – न हिंदू, न जैन, न मुसलमान, न ईसाई। उसकी हम बात नही कर रहे। लेकिन जैन, हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जिस धर्म का नाम है, यह कभी पैदा हुआ, कभी मरेगा।

ये जो चार परतें हैं तुम्हारे ऊपर, ये सब संज्ञा की तरह हैं। तुमने जिसे जैन धर्म कहा है, वह संज्ञा है। मैं जिसे जैन धर्म कह रहा हूं, वह क्रिया है। तुम जिसे जैन धर्म कह रहे हो, वह तुम्हारी पैदाइश, तुम्हारे जन्म, तुम्हारे संयोग की घटना है। मैं जिसे जैन धर्म कह रहा हूं, वह तुम्हारा आविष्कार है, तुम्हारी खोज है। फिर-फिर तुम्हे खोजना होगा। मेरा जो जैन धर्म है, वह हिंदू धर्म के विपरीत नही है। मेरा जो जैन धर्म है, वह इस्लाम के विपरीत नही है। मेरा जो जैन धर्म है, वह सभी धर्मों का सार है। वहां बाइबिल और कुरान और गीता और धम्मपद और जिन-सूत्र, सब एक हो जाते हैं। तुम्हारा जो जैन धर्म है, वह राजनीति है। वह हिंदू के खिलाफ है, वह मुसलमान के खिलाफ है। तुम्हारा जो जैन धर्म है, वह एक संप्रदाय है, धर्म नहीं। वह एक जड़, मरी हुई वस्तु है।

निश्चित ही, जैसे सत्य एक जीवंत आग है, लपटें जल रही हैं – ऐसे ही प्रेम भी, आनंद भी, ध्यान भी, समाधि भी, जो भी जीवंत है, वह लपट की तरह बहता हुआ है, गंगा की तरह प्रवाहमान है। जो भी मर गया, वह राख की तरह है। फिर उसमें कोई गति नहीं।

तुम मुर्दा से जरा सावधान रहना! और मुर्दे तलों को बहुत मत पकड़ना, अन्यथा तुम उन्हीं के नीचे दबोगे और मर जाओगे। कब्रों में तो लोग बहुत बाद में प्रवेश होते हैं, उनके बहुत पहले मर जाते हैं। मरने के बहुत पहले मर जाते हैं, क्योंकि मुर्दे से साथ जोड़ लेते है। बहुत सजग होना; क्योंकि मुर्दे का बड़ा आकर्षण है; क्योंकि मुर्दा प्राचीन है, उसकी परंपरा है।

अगर मैं कुछ कहता हूं तो नयी बात होगी। मुझ पे भरोसा करने में खतरा भी हो सकता है; यह आदमी कुछ जाना-माना तो नहीं है। महावीर की बात में भरोसा करना आसान होता है; पच्चीस सौ साल से जानी-मानी बात है। अगर गलत होता तो पच्चीस सौ साल तक हजारों-लाखों लोग इसे मानते क्यों? जब इतने लोग मानते है, तो ठीक ही मानते होंगे। फिर शास्त्र गवाह होंगे कि ठीक है; परंपरा गवाह होगी कि ठीक है; लंबी धारा, जो लोगों ने अनुकरण की पैदा की है, वह गवाह होगी कि ठीक है। मेरी बात तो तुम्हें सीधी-सीधी स्वीकार करनी होगी, बिना किसी परंपरा के। बड़ी हिम्मत चाहिए! हां, पच्चीस सौ साल बाद मेरी बात भी इतनी ही आसान हो जायेगी। तब मेरे मानने वाले फिर धर्म के विपरीत खड़े हो जायेंगे।

जो अतीत को पकड़ता है, वह हमेशा धर्म का दुश्मन है। क्योंकि धर्म तो सदा नितनूतन है, नया है, अभी है, ताजा है – अभी खिलते फूल की भांति! धर्म तो सदा खिलता हुआ फूल है! जिसको तुम धर्म कहते हो, वह तो मुर्दा फूलों का निचोड़ा हुआ इत्र है। फूल तो कभी के खो गये। उनका खिलना तो कभी का बंद हो गया। फूल तो बचे भी नहीं, लेकिन तुमने मुर्दा फूलों का लहू निचोड़ लिया है। उसको पकड़ के तुम बैठे हो। और तुमने निश्चित ही अपने मतलब से निचोड़ लिया है।

एक आदमी जुआरी है, बड़ा जुआरी है! सब गंवा दिया है। एक रात घर लौटा देर से। जूआ खेल के ही लौटा था। पत्नी नाराज थी। उसने कहा, 'तुम फिर पहुंच गये जूआ-घर! अब बचा है?' उसने कहा 'जूआ-घर नहीं गया था, महाभारत हो रही थी रास्ते में, वहा बैठ के सुन रहा था। रास्ते से निकला, वहां महाभारत हो रही थी, वह देखता आया था।' कुछ और बहाना न मिला तो यही उसने कह दिया। पत्नी ने कहा, 'मै मान नहीं सकती, तुम और महाभारत सुनने गये! तुम्हारे कपड़े से, तुम्हारे चेहरे से जूए-घर की बास आती है।'

उसने कहा, 'सुन देवी! और वहां मैंने यह भी सुना महाभारत में कि युधिष्ठिर खुद जूआ खेलते थे। धर्मराज – और जूआ खेलते थे! तू मेरे पीछे नाहक पड़ी है।

इससे साफ सिद्ध होता है कि जूआ एक धार्मिक कृत्य है। युधिष्ठिर खेलते थे और धर्मराज थे।'

पत्नी ने कहा, 'तो फिर ठीक है। तो सोच राखिओ, कि द्रौपदी के पांच पति थे।'

लोग अपने मतलब की बातें निकाल रहे हैं। तुम जो धर्म खड़ा कर लेते हो, वह तुम्हारा मतलब है। तुम बड़े चालाक हो, होशियार हो, बड़े कुशल हो – अपने को धोखा देने में।

जब कोई जीवित गुरु होता है, महावीर जब जिंदा होते हैं, तब तो तुम धोखा नहीं दे सकते। क्योंकि महावीर जगह-जगह कहेंगे, 'गलत! यह मैंने कहा नहीं। यह तुमने सुन लिया होगा।' जब महावीर जा चुके, फिर कोई कहने वाला न रहा; फिर तुम्हें जो कहना है, तुम्हें जो मानना है, उसे तुम बनाये चले जाओ, माने चले जाओ।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या जैन धर्म में चौबीस ही तीर्थंकर हो सकते है, ज्यादा नहीं ?

सभी धर्म अपने दरवाजे बंद कर लेते हैं देर-अबेर। क्योंकि अगर दरवाजा खुला रहे तो धर्म पुराना कभी भी न हो पायेगा। और अगर दरवाजा खुला रहे तो धर्म सख्त कभी न बन पायेगा, क्रिया ही बना रहेगा। तो इतने तूफान और उथल-पुथल होते रहेंगे कि तुम कभी आश्वस्त न हो पाओगे। तो सभी धर्म अपने दरवाजे बंद कर लेते हैं। कोई देर, कोई अबेर। और जब दरवाजे बंद करते है, तब याद रखना, ऐसी घड़ी में करते हैं जब उनका सबसे ऊंचा शिखर आ जाता है। महावीर पर जैन दृष्टि ने सबसे ऊंचे शिखर को छू लिया। बस, फिर पीछे चलने वालों को लगा कि अब दरवाजे बंद कर दो। अब बहुत हो चुका। सबसे ऊंचा शिखर छू लिया – अब दरवाजे बंद! अब कोई तीर्थंकर न होगा। क्योंकि तीर्थंकर और होते रहेंगे, इसका अर्थ है कि नितनूतन धर्म होता रहेगा। कोई नया तीर्थंकर नयी बात कहेगा। महावीर ने भी बहुत-सी नयी बातें कही, जो पार्श्वनाथ ने न कही थी। महावीर ने बहुत-सी बाते नयी कही, जो आदिनाथ ने न कही थी। और अब तो मजा यह है कि जो महावीर ने कहा, उसी के आधार पर हम है सोचते कि ऋषभ ने, आदि ने, नेमी ने क्या कहा होगा। अब तो महावीर प्रमाण हो गये। अंतिम प्रमाण हो जाता है, वह सबको रंग देता है। लेकिन महावीर ने कुछ बातें कही है, जो निश्चित ही ऋषभ ने नहीं कही होगी। कारण भी साफ है।

वेद हिंदुओं के ग्रंथ हैं। ऋषभ का बड़े सम्मान से उल्लेख करते है। लेकिन महावीर का किसी हिंदू-ग्रंथ ने उल्लेख नहीं किया। ऋषभ में अड़चन मालूम न हुई होगी, कोई बहुत क्रांतिकारी व्यक्ति न रहे होंगे। तो वेद भी उनका उल्लेख करता है – सम्मान से, बड़े सम्मान से। लेकिन महावीर की बात भी नहीं उठाता। महावीर की बात भी कोई हिन्दू-शास्त्र में नहीं है। महावीर के अगर मानने वाले न होते,

तो महावीर का कोई प्रमाण भी नहीं रह जायेगा। क्योंकि हिंदू-धर्म के ग्रंथों ने कोई उल्लेख नहीं किया। महावीर निश्चित ही बड़े खतरनाक रहे होंगे। इस आदमी की बात भी उठानी खतरनाक थी। बुद्ध से ज्यादा खतरनाक रहे होंगे, क्योंकि बुद्ध को तो हिंदुओं ने बाद में धीरे-धीरे अपना एक अवतार स्वीकार कर लिया। लेकिन महावीर का तो नाम भी उल्लेख न किया। इस आदमी का नाम भी खतरनाक रहा होगा। यह आदमी खतरनाक था!

तुम जरा थोड़ा सोचो! जैन धर्म ने अपनी आखिरी क्रांति छू ली। फिर पीछे चलने वाला अनुयायी घबड़ा गया कि अब बहुत हो चुका; अब द्वार-दरवाजा बंद करो; अब कहो कि अब और कोई तीर्थंकर न होगा। अन्यथा तीर्थंकर आते रहेंगे। अन्यथा नये-नये उन्मेष, नयी-नयी क्रांतिया – तो हम ठहरेंगे कहां? रोज कोई आयेगा और पुराने भवन को गिरायेगा और नये बनाने की योजना रखेगा, तो भवन बनेगा कब?

मुहम्मद के साथ मुसलमानो ने अपने दरवाजे बंद कर लिये। मुहम्मद के साथ ही इस्लाम ने अपनी आखिरी ऊंचाई छू ली। मुहम्मद पहले और आखिरी तीर्थंकर हैं इस्लाम के। पहले और आखिरी पैगंबर। फिर इस्लाम ने इतनी भी हिम्मत न की, जितनी हिम्मत जैनियों ने की थी, कम से कम चौबीस को तो बरदाश्त किया! मुसलमानो ने इतनी भी हिम्मत न की; बड़ा कमजोर धर्म साबित हुआ। दरवाजे बद कर लिये। ईसाइयो ने भी यही किया, दरवाजे बंद कर लिये। अब कोई नही होगा। आखिरी पैगाम आ गया परमात्मा का, अब इसमें कोई तरमीन न होगी, कोई सुधार न होगा, कोई सशोधन न होगा।

जिंदगी रोज चली जाती है, तुम्हारे धर्म कही-न-कही रुक जाते हैं। जो धर्म जिंदगी के साथ नही चलता, वह अधर्म हो जाता है।

तो मै तो तुमसे कहता हूं, प्रतिपल तीर्थंकर होंगे, प्रतिपल पैगंबर होंगे। और तुम्हे अब जब भी कभी मौका मिले और तुम्हें दो पैगंबरों के बीच में चुनना हो, तो नये को चुनना, पुराने को मत चुनना। क्योंकि पुराने को चुनने में तुम अपने को चुनोगे। नये को चुनने में तुम अपने को छोड़ोगे तो ही चुन सकोगे। जब तुम पुराने को चुनते हो तो तुम अपने को ही चुनते हो, क्योंकि पुराने के साथ तो तुम आत्मसात हो गये हो। तुमने पुराने को तो पिघला लिया है। तुमने पुराने को तो अपने ही ढंग का बना लिया है। तुमने तो पुराने में काफी तरमीन और काट-छाट कर ली है। पुराने मे तुम्हें कोई खतरा नही रहा है; नया फिर तुम्हें डगमगाता है, फिर तुम्हारी जड़ें उखाड़ता है, फिर तुम्हें जलाता है, फिर अग्नि में फेंकता है। जब भी चुनना हो तो नये को चुनना।

एक और मित्र ने पूछा है कि आप कहते हैं, धर्म परंपरा नहीं है; लेकिन क्या परंपरा की जरूरत नही है? क्या परंपरा से हानि ही हानि हुई, कुछ लाभ भी?

यह मैंने कहा नहीं कि परंपरा की जरूरत नहीं है। अगर तुम्हें जड़ रहना हो, परंपरा की बड़ी जरूरत है। अगर तुम्हें मुर्दा रहना हो, तो परंपरा औषधि है। अगर तुम्हें रूपांतरित न होना हो तो परंपरा बड़ी सुरक्षा है। कायरों के लिए, कमजोरों के लिए, परंपरा शरणस्थल है। बड़ी जरूरत है, क्योंकि कायर हैं दुनिया में। आखिर उनके लिए भी तो कोई जगह होनी चाहिए। आत्महीन लोग हैं दुनिया में – आखिर उनके लिए भी तो कोई सहारा होना चाहिए! आत्मवंचक हैं दुनिया में – आखिर उनको भी तो कोई उपाय होना चाहिए कि अपने को धोखा दे लें! परंपरा की बड़ी जरूरत है।

मैंने नहीं कहा कि जरूरत नही है। जरूरत न होती तो परंपरा होती ही न। है, जरूरत होगी कही। कही बड़ी जरूरत होगी, क्योंकि इतने महापुरुष हुए, जिन्होंने परंपरा को तोड़ने की हजार-हजार कोशिशें की, परंपरा नहीं टूटती। महावीर कोशिश करते, बुद्ध कोशिश करते, कृष्ण कोशिश करते, क्राइस्ट कोशिश करते – परंपरा तोड़ने की, कुछ नहीं होता, परंपरा नहीं टूटती। लोग इन्हीं को छोड़ देते हैं, परंपरा को नहीं छोड़ते। या इन्हीं को परंपरा में आत्मसात कर लेते हैं, लेकिन परंपरा को नही छोड़ते। वे इन्हीं को परंपरा में रंग देते हैं। वे कहते हैं, हम तुम्हारी भी पूजा करेंगे, लेकिन हमें बख्शो। हमें परेशान मत करो! तुम भी परंपरा के हिस्से बन जाओ। तुम्हारे लिए भी हमारे मंदिर में जगह है। तुम्हारी प्रतिमा भी रख देंगे। तुम ज्यादा शोरगुल न मचाओ। तुम भी स्वीकार!

परपरा की जरूरत जरूर होगी, अन्यथा टूट गयी होती परपरा। बहुत थोड़े-से लोग, बड़े हिम्मतवर, जिंदादिल लोग, बिना परंपरा के जीते हैं। क्योंकि बिना परंपरा के जीने का अर्थ होता है : जागरण से जीना। तब तुम्हे प्रतिपल अपना जीवन-निर्णय करना होगा। परंपरा बड़ी सुविधापूर्ण है, बड़ी सुरक्षापूर्ण है। तुम्हे कुछ तय नहीं करना होता; परंपरा ने तय कर दिया है, तुम चुपचाप अंधे की तरह अनुसरण किये चले जाते हो। सब लिखा है किताब में, नक्शे हाथ मे हैं– तुम उनका अनुसरण कर लेते हो। परंपरा मार्गदर्शक जैसी है। वह तुम्हें बनाये चली जाती है। तुम कभी गये?...

कल एक मित्र ने संन्यास लिया। वे खजुराहो में मार्गदर्शक हैं। खजुराहो के मंदिर-मूर्तियो को, आए यात्रियो को, अतिथियों को समझाते हैं, दिखाते हैं। अगर तुम खजुराहो के मदिर में बिना किसी मार्गदर्शक के जाओ तो बड़ी अड़चन होगी। वर्षों लग जायेंगे। क्योंकि तुम्हें एक-एक चीज की खुद ही खोजबीन करनी होगी। तुम्हें एक-एक मूर्ति को भर आंख स्वयं देखना होगा। तुम्हें एक-एक मूर्ति पर स्वयं ध्यान करना होगा। तभी शायद तुम थोड़ा-सा रहस्य, थोड़ा-सा राज इकट्ठा कर पाओगे। सस्ता उपाय है, तुम मार्गदर्शक को साथ ले लेते हो, वह बताये चला जाता है कि यह मूर्ति कितनी पुरानी है, किसने बनाई, कब बनाई, इसका क्या इतिहास

है। तुम भी बहरे की भांति सुनते चले जाते हो, अंधे की भांति देखे चले जाते हो। घंटे दो घंटे में सब मंदिर देख डाले — चले आये। जिन मंदिरों को बनने में सदियां लगीं, जिन मूर्तियों पर हजारों लोगों के जीवन निछावर हुए तब बनीं, तुम उनको घड़ी भर में निपटा के घर आ जाते हो, कहते हो, 'खजुराहो हो आये हैं। अजंता देख डाला। एलोरा घूम आये।' सारी पृथ्वी का चक्कर लगा लेते हो।

अगर तुम अपने ही हिसाब से चलो तो बड़ी मुश्किल होगी। और यह कोई जिंदगी मूर्तियों का, मंदिरों का हिसाब नहीं है। यहां एक-एक पल तुम्हें अपना निर्णय लेना पड़ेगा, अगर तुम्हारे पास कोई परंपरा न हो। किसी ने गाली दी, अब क्या करना? तुम्हें खुद ही जाग के प्रतिध्वनि करनी होगी। कोई परंपरा नहीं है। तुम परंपरा में मानते नहीं हो। न तुम किसी और की बनाई परंपरा में मानते हो, न अपनी बनाई हुई लीक को मानते हो— क्योंकि कल किसी ने गाली दी थी, तुमने क्रोध किया था; परसों भी किसी ने गाली दी थी, तुमने क्रोध किया था—क्रोध तुम्हारी परंपरा है। आज फिर कोई गाली देता है, तुम परंपरा की सुनोगे या आज तुम जाग के इस गाली समझोगे और तय करोगे, क्या करूं? परंपरा के आधार पर नहीं— होश के आधार पर। बीते कल के आधार पर नहीं — आज के, इस क्षण के आघात के आधार पर। यह जो प्रत्याघात अभी हुआ है, इसको तुम सीधा-सीधा दर्पण की तरह लोगे? इसका उत्तर दोगे? कठिन होगा। तब तो प्रतिपल तुम्हारी जिंदगी लहरों में होगी, तूफानों में होगी, आंधियों में होगी। कुछ तय न हो पायेगा। कुछ बंधी लकीरें न होंगी। कुछ पिटी लकीरें न होंगी। राज-पथ न होगा, पगडंडियां होंगी। तुम्हीं को बनाना पड़ेंगी।

लोग सस्ता रास्ता चुनते हैं। परंपरा को मान लेते हैं। ठीक है, परंपरा की जरूरत है; क्योंकि दुनिया में कायर हैं। दुनिया में बड़े कमजोर दीन-हीन लोग हैं। दुनिया में ऐसे लोग हैं जो अपनी चेतना पर भरोसा नहीं कर सकते। दुनिया में ऐसे लोग हैं जिनकी श्रद्धा जीवन में नहीं है, मृत्यु में है; जो, मर जाओ, तभी भरोसा करते हैं।

तुमने कभी खयाल किया! गांव में कोई मर जाता है, फिर उसके खिलाफ कोई भी नहीं बोलता। सभी कहते हैं: 'स्वर्गीय हो गये।' पूरा गांव उनके खिलाफ रहा हो भला, और सभी जानते हैं कि अगर नरक कहीं है तो वे निश्चित पहुंच गये; या अगर कहीं स्वर्ग है और ये पहुंच गये तो नर्क बना के छोड़ेंगे — मगर कहते हैं, स्वर्गीय हो गये।

मुर्दा जब कोई हो जाता है तो तुम देखते हो, कैसी लोग स्तुति करते हैं, उसके गुणगान करते हैं कि बड़े महापुरुष थे, अंधेरा छा गया, दीया बुझ गया; यह पूर्ति अब कभी हो न सकेगी जो जगह खाली हुई!

मुल्ला नसरुद्दीन ने एक मित्र को फोन किया। पत्नी फोन पर आयी। मुल्ला ने

घबड़ा के पूछा कि ' कहां हैं, पति कहां हैं ?' उसने कहा, ' ऐसे क्या घबड़ा रहे हो ? क्या मामला है ? स्नानगृह में स्नान करते हैं । ' मुल्ला ने कहा, ' फिर ठीक । क्योंकि गांव में कई लोगों से मैंने उनकी प्रशंसा सुनी है, मैंने समझा कि मर गये । '

क्योंकि बिना मरे तो कोई किसी की प्रशंसा करता ही नहीं है । जिंदा की निंदा है, मुर्दे की प्रशंसा है । क्योंकि मुर्दे के साथ तुम अपना समझौता कर लेते हो । जिंदा के साथ समझौता नहीं कर पाते ।

तुम यह मत सोचना कि महावीर और बुद्ध की तुम जो इतनी प्रशसा करते हो, वह कोई धर्म की प्रशसा है — वह मुर्दा, मृत्यु की प्रशंसा है । जब जीवित थे तो तुम्हीं ने इन पे पत्थर फेंके । तुम जब कहानी पढ़ते हो कि किसी ने महावीर के कानों मे खीले ठोक दिये, तुमने कभी सोचा कि यह तुम भी हो सकते हो जिसने खीले ठोके हो ? तुमने कभी फिर मे सोचा कि अगर महावीर आज आ जायें और बाजार में तुम्हे मिल जायें, तो तुम क्या व्यवहार करोगे ? अगर नंग-धड़ग ' ब्लू डायमड होटल ' के सामने खडे हुए मिल जायें, तो तुम क्या व्यवहार करोगे और कोई बताने वाला न हो कि ये महावीर हैं ? तो पहला तो काम, तुम पुलिस में इत्तला करोगे । तुम सम्मान करोगे ? तुम झुक के पैर छुओगे ? हां, अगर कोई कह दे कि महावीर है, भगवान महावीर आ गये, तो शायद झुक भी जाओ, क्योंकि भगवान महावीर शब्द के साथ तुम्हारा बडा लगाव बन गया है । वह तो कोई और भी खड़ा हो जाये...।

जैसे देखा, रामलीला होती है, कोई आदमी राम बन जाता है, तो लोग उसके पैर छूते हैं ! क्या अंधापन है ! जानते हैं भलीभांति, गांव का छोकरा है । लेकिन उसके पैर छूते हैं । राम-नाम की ऐसी ग्रंथि बंध गई है । नाटक में राम बना है, तो भी पैर छूते हैं, फूल चढ़ाते हैं, शोभा-यात्रा निकलती है । अंधापन कैसा गहरा है !

मेरे पास लोग आते हैं । अब जैसे कि मै जिन-सूत्र पर बोल रहा हूं, तो जैन आ गये है । मै जो बोल रहा हूं वही बोल रहा हूं; न मुझे जिन-सूत्र से कुछ लेना है, न शिव-सूत्र से कुछ लेना है । मै शिव-सूत्र में भी यही बोलता हूं, मगर तब जैन नहीं आते : ' शिव-सूत्र है, अपने को क्या लेना-देना है ! ' हिंदू आते है, वे कहते हैं, ' महाराज ! गीता पे फिर कब बोलेंगे ?' गीता ही बोल रहा हूं । उसी के गीत गा रहा हू । मगर नही, शब्द की पकड़ है । बस शब्द की पकड़ है । लकीरों की पकड़ है । तुम्हे अगर मैं हीरा भी दू और कहू कंकड़-पत्थर है, तो तुम कहते हो, क्या करेंगे ! और मै तुम्हें ककड़-पत्थर भी दूं और कहूं हीरा है, तो तुम कहते हो, लाये सम्हाल के रख लें !

तुम शब्दों से जीते हो ? शब्द सत्य हैं ? शब्दों से थोड़ा जागो ! शब्दों की परंपरा होती है, सत्यों की कोई परंपरा नही ।

और पूछते हो, ' क्या हानि-ही-हानि हुई, या लाभ भी हुआ ?'

दुकानदारी कब मिटेगी तुम्हारी ? तुम हानि-लाभ का ही हिसाब करते रहोगे ? धर्म का कोई संबंध हानि-लाभ से नही है। धर्म का संबंध दोनों के त्याग से है। हानि भी नहीं, लाभ भी नहीं। क्योंकि लाभ के पीछे हानि छिपी है, हानि के पीछे लाभ छिपा है – वे एक ही सिक्के के दो पहलू है।

धर्म का संबंध उस परम जागरण से है, जहा तुम कहते हो, अब न हानि की कोई चिंता है, न लाभ की कोई आकांक्षा है। धर्म से कोई हानि-लाभ थोड़ी होता है। धर्म से तो तुम हानि-लाभ से मुक्त होते हो। वह चिंताधारा ही गलत है। अगर उस चिंताधारा से चले, तो जो तुम्हारी मर्जी, वही तुम खोज लोगे। अगर तुम्हे हानि खोजनी है तो परंपरा की हानि खोज लोगे। अगर तुम्हें लाभ खोजने है, तुम लाभ खोज लोगे।

एक आदमी ने एक किताब लिखी है। पश्चिम के मुल्कों में तेरह का आंकड़ा बुरा समझा जाता है। तो बड़ी होटलों में तेरहवी मंजिल ही नही होती, क्योंकि वहां कोई ठहरता नही तेरहवी मंजिल पर। बारहवी मंजिल के बाद सीधी चौदहवी होती है। चौदहवी कहने मे हल हो जाता है. है वह तेरहवी; मगर चौदहवी कह दी तो उतरने वाले को क्या फिक्र है! लेकिन तेरहवी कहो तो कोई उतरने को राजी नही। तेरह नंबर का कमरा नहीं होना। तेरह तारीख को लोग यात्रा करने नही जाते। तो एक आदमी ने बड़ी किताब लिखी है। उसने सारे आंकड़े इकट्ठे किये है कि तेरह निश्चित ही खतरनाक आंकडा है। तेरह तारीख को कितने युद्ध शुरू हुए, उसने सब हिसाब बनाया है। तेरह तारीख को कितनी कार-दुर्घटनाएं होती हैं; तेरह तारीख को कितने लोग कैंसर से मरते हैं; तेरह तारीख को कितने तलाक होते है – तेरह तारीख, तेरहवी मंजिल, तेरह का जहा-जहां संबध है, उसने बड़े हजारों आंकड़े इकट्ठे किये है। कोई मित्र मुझे दिखाने लाया था, वह भी बड़ा प्रभावित था। उसने कहा कि देखो, अब तो तथ्य सामने है। मैंने उससे कहा, तू चौदह तारीख की खोज कर, इतने ही तथ्य चौदह तारीख मे भी मिल जायेंगे। चौदह को भी लोग मरते हैं। चौदह को भी कार-दुर्घटनाए होती है। और चौदहवी मंजिल से भी लोग गिरते हैं। तू कोई भी तारीख के पीछे पड़ जा। जिंदगी इतनी बड़ी है, तुम कोई भी पक्ष तय कर लो, तुम्हें प्रमाण मिल जायेंगे।

इसलिए सत्य की खोज पर जो निकलता है, उसे पहले से पक्ष ले के नहीं चलना चाहिए। नही तो वह जो खोज रहा है, खोज लेगा। यही तो बड़े से बड़ा खतरा है जगत में कि तुम जो खोजना चाहते हो खोज ही लोगे। तुम अपनी मान्यता को सिद्ध कर लोगे। सत्य के खोजी को कोई मान्यता नहीं होनी चाहिए। उसे तो खुली आंख रखनी चाहिए – निष्पक्ष, निर्दोष – तो तथ्य का दर्शन होता है।

परंपरा के लाभ भी हैं, हानिया भी हैं। लेकिन धर्म परंपरा नही है। और हानि-लाभ से धर्म का कोई संबंध नही है। तुम्हें हानि-लाभ में रहना हो, धर्म से बचना,

सावधान रहना। तुम्हें हानि-लाभ से ऊपर उठना हो, तो धर्म के द्वार पर दस्तक देना। और धर्म के द्वार पे दस्तक देनी हो, परंपरा को वहीं छोड़ आना जहां जूते उतार आते हो। अगर परंपरा को ले के धर्म के मंदिर में आये तो तुम धर्म के मंदिर में कभी आओगे ही नहीं; तुम्हारी परंपरा तुम्हें घेरे रहेगी। तुम आओगे भी और नहीं भी आ पाओगे।

धर्म के जगत में जिसे जाना हो उसे महावीर जैसा दिगंबर होना चाहिए — परिपूर्ण नग्न, सारे आवरणों से मुक्त।

लेकिन बुद्धिमान आदमी हानि-लाभ की सोचता है। बुद्धि का ही धर्म से कुछ लेना-देना नहीं है।

तेरे सीने में दम है, दिल नहीं है
तेरा दिल गर्मि-ए महफिल नहीं है
गुजर जा अक्ल से आगे कि यह नूर
चिरागे राह है, मंजिल नहीं है।

यह जो बुद्धि का छोटा-सा टिमटिमाता दीया है, 'चिरागे-राह है', राह पर इसका थोड़ा उपयोग कर लो। चिरागे-राह है, मंजिल नहीं है। इस बुद्धि के दीये को आखिरी मंजिल मत समझ लेना। यह टिमटिमाता दीया, इस पर ही उलझ मत जाना। यह हानि-लाभ का विचार, शुभ-अशुभ का विचार, स्वर्ग-नर्क का हिसाब, यह गणित बिठाना — अगर इसमें ही लगे रहे तो तुम धीरे-धीरे पाओगे कि खोपड़ी तो तुम्हारी बड़ी होती जाती है, हृदय सिकुड़ता जाता है। धर्म का संबंध हृदय से है, बुद्धि से नहीं, सोच-विचार से नहीं। गहन भाव की दशा है धर्म।

तेरे सीने में दम है, दिल नहीं है
तेरे सीने में दम है, दिल नहीं है
तेरा दिल गर्मि-ए महफिल नहीं है
गुजर जा अक्ल से आगे कि यह नूर
चिरागे-राह है, महफिल नहीं है।

ध्यान हम कहते ही उसे हैं जहां तुम इस चिरागे-राह को फूंक के आगे निकल जाते हो। इसलिए तो बुद्ध और महावीर ने उसे 'निर्वाण' कहा है। निर्वाण शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है : दीये को बुझा देना। जब सारे दीये बुझा देते है तो निर्वाण है।

अब बड़े मजे की बात है, जैन दीवाली मनाते है, क्योंकि उस रात महावीर का निर्वाण हुआ। और दीये जलाते हैं। उस रात तो सब दीये बुझा दो, पागलो! निर्वाण का अर्थ होता है : दीये बुझा दो। जैन दीवाली पर दीये जलाते हैं — खुशी में कि महावीर का निर्वाण हुआ। लेकिन निर्वाण शब्द का अर्थ होता है : दीये बुझा दो। ये बुद्धि के, हिसाब के, किताब के दीये बुझा दो। ये तर्क के, विचार के दीये

बुझा दो। उस गहन मौन और शून्य और शांत अंधेरे में खो जाओ, जो तुम्हारा स्वभाव है।

महावीर ने भी खूब रात चुनी – अमावस की रात – मुक्त होने को। पूर्णिमा चुनते तो कुछ हिसाब-किताब समझ में आता। अमावस की रात! लेकिन ठीक चुनी। ऐसा ही गहन स्वभाव है। गहन अंधकार, शांत, असीम! प्रकाश में तो थोड़ी उत्तेजना है। इसलिए तो प्रकाश जलता हो कमरे में तो सोना मुश्किल हो जाता है। आंखें उत्तेजित रहती हैं। इसलिए तो दिन में नींद मुश्किल होती है। रात नींद के लिए है। दीये भी बुझा देते हैं। सब उत्तेजना खो जाती है।

कभी तुमने खयाल किया, प्रकाश को जलाओ तो है, बुझाओ तो मिट जाता है! अंधेरा सदा है, शाश्वत है। अंधेरा सत्य के संबंध में बड़ी गहरी खबर देता है। और अंधेरे में बडी गहन शांति है। तुम्हे डर लगता है, यह दूसरी बात है। ध्यान में सभी को डर लगता है, समाधि में सभी को डर लगता है। तुम्हें डर लगता है, इस कारण तुम दीये को पकड़ लो, यह दूसरी बात है। लेकिन महावीर तो कहते हैं, जो अभय को उपलब्ध हुआ, वही उस गहन आत्मभाव में प्रवेश करता है। वह जो भीतर का शून्य है, वहा तो सब ये चिराग, ये दीये, ये हिसाब-किताब, ये तर्क, ये प्रमाण, ये शास्त्र, ये परपराएं, सब छोड़ के जाना पड़ता है। जिसकी हिम्मत हो अंधेरे में जाने की, वही आये। जिसकी हिम्मत हो जीते-जी मृत्यु में प्रवेश की, वही आये। क्योंकि समाधि जीते-जी मृत्यु का स्वेच्छा से वरण है। इसीलिए तो हम साधु की कब्र को भी समाधि कहते है। सभी की कब्र को समाधि नहीं कहते, लेकिन जिसने अपने भीतर समाधि अनुभव कर ली हो, उसकी मृत्यु को भी हम समाधि कहते हैं। दोनों एक हैं।

ये जो चार परतें मैंने तुम्हे बताई, जब ये मर जाती हैं, तब तुम शून्य में प्रवेश करते हो। तुम वहीं पहुच जाते हो जहां तुम जन्म के पहले थे। और यह पहुंचना प्रक्रिया है। यह पहुंचना संज्ञा नही है।

जिदगानी है फकत गर्मिए-रफ्तार का नाम
मजिलें साथ लिये राह पे चलते रहना।

मंजिल कही ऐसी दूर नही है कि तुम उस तरफ जा रहे हो।

जिंदगानी है फक्त गर्मिए-रफतार का नाम
मंजिलें साथ लिए राह पे चलते रहना।

मंजिल तुम्हारे साथ ही है, तुम्हारे चलने में है, तुम्हारी गति में है। मंजिल गंतव्य नहीं है, तुम्हारी गति की प्रखरता का नाम है; तुम्हारी गति की तीव्रता, त्वरा का नाम है। जब तुम इतने गतिमान होते हो कि तुम्हारे भीतर केवल गत्यात्मकता होती है, कोई और नहीं होता, कोई थिर, जड़ वस्तु नहीं होती, सब प्रवाह होता है, जब तुम गंगा होते हो – तब मंजिल वहीं मिल गई।

तुम्हारा होना, अहंकार, एक जड वस्तु है, पत्थर की तरह है। इसे पिघला लो। इसे जिंदगी की गर्मी में पिघल जाने दो। तुम मिटो तो ही तुम्हारा शून्य प्रगट हो सकेगा। महावीर उस शून्य को आत्मा कहते हैं, क्योंकि वह तुम्हारा स्वभाव है।

ध्यान रखना, दृष्टि की सारी बात है।

साहिल भी एक लय है अगर कोई सुन सके
उमड़े हुए सकूत से तूफान बन सके।

दृष्टि की बात है। तूफान शांति बन सकता है, शांति तूफान बन सकती है। तुम्हारी दृष्टि की बात है। तुम अगर शांति से तूफान को देखो तो तूफान भी एक अद्भुत लयबद्धता है। और अगर तुम अशांति से शांति को भी देखो, तो शांति भी खो जाती है और केवल एक बेचैनी और एक उन्माद रह जाता है।

यह जो जिंदगी का प्रवाह है, इसे तुम दुश्मन की तरह मत देखो, और इससे लड़ो मत। लड़ने से तुम्हारा अहंकार और मजबूत होता चला जायेगा। इसके साथ बहो। इसे होने दो। इसे स्वीकार करो। इसके सत्य को स्वीकार करो और अपने सत्य को स्वीकार करो। और जब दोनों सत्य मिलते हैं – तुम्हारे भीतर का सत्य, प्रवाहमान, और तुम्हारे बाहर का सत्य, प्रवाहमान – जब इन दोनों प्रवाहों का मिलन होता है, उस मिलन का नाम ही समाधि है। उस आलिंगन का नाम ही समाधि है।

और इस प्रश्न का दूसरा हिस्सा है : 'और क्या क्रिया का समय से कोई संबंध नहीं है?'

जब तुम परिपूर्ण क्रिया में होते हो, समय मिट जाता है। जब तुम किसी भी क्रिया में पूरे लीन होते हो, समय मिट जाता है। एक चित्रकार चित्र बना रहा है, जब वह पूरा-पूरा डूबा होता है तो समय मिट जाता है। नहीं कि घड़ी ठहर जाती है, घड़ी चलती रहेगी, घड़ी का समय कोई असली समय थोड़ी है। लेकिन उस चित्रकार के लिए सब ठहर गया। जब कोई गीतकार गीत गाता है, और सिर्फ प्रदर्शन नहीं करता, वस्तुतः गाता है, और ऐसे ओंठ ही नहीं हिलाता, हृदय से प्रवेश हो जाता है, तो समय ठहर जाता है। जब कोई नर्तक नाचता है और नाच ही हो जाता है, तो समय ठहर जाता है। जहां भी क्रिया परिपूर्ण है, वहीं समय ठहर जाता है। जहां भी क्रिया अपूर्ण है, वहीं समय चलने लगता है। जहां क्रिया बहुत अपूर्ण है, झटके ले ले के चलती है, तुम चलना भी नहीं चाहते और चलते हो, मजबूरी होती है – वहां समय लंबा होने लगता है।

तुमने कभी खयाल किया! कोई प्रेमी घर आ जाये, घंटा बीत जाता है, क्षण भर मालूम पड़ता है। और कोई उबाने वाले सज्जन घर आ जायें और बकवास करें, दो-चार-पांच मिनट भी ऐसे लगते हैं जैसे कि घंटों लगाये दे रहे हैं। क्या हो जाता है? समय में इतना अंतर क्यों हो जाता है?

समय बड़ा लोचपूर्ण है। जब तुम सुख अनुभव करते हो, समय छोटा हो जाता है। तब तुम मित्र की बातें सुन रहे हो, साधारण-सी बातें हैं, बड़ी मधुसिक्त हो जाती हैं। जब कोई आ जाता है उबाने वाला, चाहे बातें वह बड़ी मधुर कर रहा हो, लेकिन तुम्हें रास नहीं आता। तो एक भेद पड़ गया। तुम उस चर्चा में डूब नहीं पाते। चर्चा की क्रिया गतिमान नहीं हो पाती, ठहर-ठहर जाती है, लंगड़ाती है। तुम जबर्दस्ती बार-बार घड़ी देखते हो, जम्हाई लेते हो, कोई तरह इशारा करते हो कि भाई देखो, अब जाओ भी!

अल्बर्ट आइंस्टीन के जीवन में उल्लेख है कि एक मित्र के घर गया था। भुलक्कड़ आदमी था। बात चलती रही, भोजन हो गया। फिर बात चलती रही। मित्र बार-बार घड़ी देखे, जम्हाई ले। आइंस्टीन भी बार-बार घड़ी देखे, जम्हाई ले; लेकिन उठे न। आखिर मित्र ने कहा, 'दो बज रहे हैं, पत्नी राह देखती होगी...।' आइंस्टीन ने कहा, 'मतलब?' मित्र ने कहा, 'मेरा मतलब यह है कि पत्नी राह देखती होगी...। वैसे कोई हर्जा नहीं है, आप बैठें और।' आइंस्टीन घबड़ा के खड़ा हो गया। उसने कहा, 'हद हो गई, मैं तो सोचता था कि कब आप जायें तो मैं सोऊं। मैं तो यही सोच रहा था कि मैं अपने घर में हूं।'

दोनों घड़ी देख रहे है, दोनों जम्हाई ले रहे हैं। समय बड़ा लम्बा मालूम पड़ता है। जब तुम किसी क्रिया के साथ लीन नहीं हो पाते, वही क्रिया, ठीक वही क्रिया..।

तुम नाच रहे हो – किसी और के लिए, नाचना नहीं चाहते, तो समय रहेगा। तुम नाच रहे हो अपने लिए, या किसी के लिए जिसके लिए तुम नाचना चाहते हो– समय मिट जायेगा। समय तनाव है। जहां तनाव नहीं वहा समय नहीं। जहा तुम बे-तनाव हो, वहा समय नहीं, तुम समयातीत हो गये, कालातीत हो गये।

और यही बात जो समय के संबंध में सच है वही बात क्षेत्र के संबंध में भी सच है। टाइम-स्पेस, समय और क्षेत्र दोनों एक साथ खो जाते हैं, जब तुम्हारी लीनता परिपूर्ण होती है। भक्त अपनी भक्ति में भूल जाता है – सब भूल जाता है। भगवान को भी भूल जाता है। धुन रह जाती है। मस्ती रह जाती है। ध्यानी अपने ध्यान में भूल जाता है – ध्यान को भी भूल जाता है। फिर बस एक सुवास रह जाती है। वह सुवास इस पृथ्वी की नहीं है। उस सुवास को न तो समय घेरता है, न स्थान घेरता है। वह सुवास समय-क्षेत्र-अतीत है।

दिल की बस्ती अजीब बस्ती है
लूटने वाले को तरसती है।

हिम्मत चाहिए लुटने की। जहा भी लुट जाओ, वहीं से धर्म का द्वारा खुल जायेगा। वही गुरुद्वारा है।

इसलिए इसकी बहुत फिक्र मत करो कि कैसे। जो तुम्हें रास आ जाये, जो तुम्हें जम जाये – भक्ति तो भक्ति, ज्ञान तो ज्ञान, कर्म तो कर्म – लेकिन कहीं से भी ऐसी

घड़ी बना लो, जहां समय मिट जाये; जहां तुम इतने डूब सको, इतने डूब सको कि कोई रेखा तनाव की न रह जाये – समग्र मन से, समग्र तन से । नहीं तो जिंदगी में दुख ही दुख होगा, पीड़ा ही पीड़ा होगी ।

पीड़ा का अर्थ है : तनाव की परतें । दुख का अर्थ है : परमात्मा से चूकते जाना । दुख का अर्थ है : सत्य से चूकते जाना । दुख का अपने-आप में कोई अस्तित्व नहीं है । सत्य से तुम्हारी जितनी दूरी है उतना ही दुख है । नारद उसे ईश्वर कहते हैं । महावीर उसे सत्य कहते हैं । पर इशारे उनके एक ही की तरफ हैं ।

हर तरफ छा रही है तारीकी
आओ मिल जुल के जिक्रे-यार करें ।

जिनको उस परमात्मा का प्रेम की भाषा में स्मरण करना हो – आओ मिल जुल के जिक्रे-यार करें ! चलो उस परमात्मा की बात करें, उसका गीत गायें, उसके लिए नाचें ।

जिन्हें यह रास न आता हो, जिन्हें यह बात कुछ स्त्रैण लगती हो, जिन्हें यह बात जमती न हो, जिनके संकल्प को यह बात बाधा डालती हो – तो महावीर कहते हैं, छोड़ो यह फिक्र, तुम्हारे लिए भी मार्ग है । जिस दिन तुम बने उसी दिन तुम्हारा मार्ग भी तुम्हारे साथ निर्मित हो गया है । तुम अपना मार्ग अपने साथ लाये हो । ऐसा कोई भी नही है जो परमात्मा से चूके । हां, अगर तुम्हारी मर्जी ही चूकने की हो तो परमात्मा बाधा नही डाल सकता । जो चूकना चाहता है वही चूकता है । जिसको पहुंचना है वह पहुंच जाता है ।

मैंने सुना है, एक शराबी बैठा था राह के किनारे और एक आदमी ने कार रोकी और उसने कहा कि मुझे स्टेशन जाना है, कहां से जाऊं । रास्ता भूल गया हूं । अजनबी हूं यहां । शराबी ने झकझोर के अपने को जरा सजग किया । और उसने कहा, ऐसा करो, पहले बायें जाओ – दो फर्लांग । फिर चौरस्ता पड़ेगा । फिर तुम उससे दायें मुड़ जाना – दो फर्लांग । फिर उसने कहा कि नही नही, यह तो गलत हो गया । तुम यहां से दायें जाओ । चार फर्लांग के बाद मस्जिद पड़ेगी । बस मस्जिद के पास से तुम बायें मुड़ जाना । उसने कहा कि नही नही, यह फिर गलत हो गया । अब तो वह अजनबी भी थोड़ा मुश्किल में पड़ा कि यह मामला क्या है । उसने फिर कहा कि तुम ऐसा करो कि जहां से तुम आये हो उसी तरफ लौट जाओ । आठ फर्लांग के बाद नदी पड़ेगी, पुल आयेगा । उसने कहा कि, नही नहीं फिर गलत हो गया ।

उस ड्राइवर ने कहा, 'महानुभाव ! मैं किसी और से पूछ लूंगा ।' उसने कहा कि तुम किसी और से ही पूछ लो तो अच्छा, क्योंकि जहां तक मैं समझता हूं, यहां से स्टेशन पहुंचने का कोई उपाय ही नही है ।

जो जैसा है वहीं से उपाय है । जो जहां है वहीं से उपाय है । निराश मत होना । संकल्प सधे, संकल्प; न सधे, चिंता मत करना । साधनों की बहुत फिक्र मत करना, साध्य को स्मरण रखना । राह की कौन चिंता करता है, वाहन की कौन फिक्र

करता है, बैलगाड़ी से पहुंचे कि हवाई जहाज से पहुंचे – पहुंच गये । हवाई जहाज के भी मजे हैं, बैलगाड़ी के भी मजे हैं। हवाई जहाज में समय बच जाता है, लेकिन बैलगाड़ी में जो सौंदर्य का दोनो तरफ के रास्तों का अनुभव होता है, वह नहीं हो पाता । बैलगाड़ी में थोड़ा समय लगता है, लेकिन दोनों तरफ पृथ्वी के सुहावने दृश्य उभरते हैं।

मेरे एक मित्र हैं, बड़े धनी हैं; लेकिन चलते हमेशा पैसेंजर गाड़ी से । एक दफा मुझे उनके साथ चलना पड़ा । तीन दिन लग गये पहुंचने में जहां एक घंटे में पहुंच सकते थे । मैंने कहा कि मामला क्या है। वे कहने लगे कि मुझे पसंद ही नहीं कुछ और । उनके साथ चला तो मुझे भी समझ में आया कि बात तो वे भी ठीक कहते हैं। पैसेंजर गाड़ी का चलना, हर स्टेशन पे ठहरना । और उनको, वे काफी यात्रा करते रहे हैं तो हर स्टेशन पे उनकी पहचान है । कहां के भजिये अच्छे हैं, कहां की गुजिया अच्छी है, कहां का दूध, कहां की चाय, कहां की चाय केसर-मिली है– वह सारा हिंदुस्तान का उनको हिसाब है । वे कहते हैं, यह भी कोई चलना कि बैठे हवाई जहाज में, यह कोई यात्रा है ! इधर बैठे उधर उतर गये ! यह कोई बात हुई ? चलने का मजा ही न रहा।

अपनी-अपनी मौज है । बैलगाड़ी का भी मजा है । हवाई जहाज का भी मजा है । संकल्प से भी पहुंचते हैं लोग, समर्पण से भी पहुंचते हैं लोग ।

जैसा उस शराबी ने कहा था, यहां से पहुंचने का कोई उपाय नही है – मै भी एक शराबी हूं, मै तुमसे कहता हूं, 'यहां से पहुंचने के सब उपाय हैं। और जो भी रास्ते है सब उसी की तरफ जाते है । तुम बायें चलना चाहते हो तो बायें से पहु- चने का उपाय है । तुम दायें चलना चाहते हो तो दायें से पहुंचने का उपाय है । तुम लौटना चाहते हो पीछे तो लौट के पहुंचने का उपाय है । तुम न चलना चाहो तो खड़े-खड़े पहुंच जाने का उपाय है ।

तीसरा प्रश्न : क्या कारण है कि महावीर का 'जिन' मात्र जैन बन कर रह गया ?

सदा ही ऐसा होता है । महावीर के ही अनुयायी के साथ ऐसा हुआ, नही; सभी के साथ ऐसा होता है । ऐसा ही होगा । प्रकृति का नियम है । जब महावीर जीवित होते हैं तब जिनत्व होता है; जब वे जा चुके होते है तब 'जैन' का प्रादुर्भाव होता है।

जैन का अर्थ है : जो जिन तो नही हुआ, जो जिन होना भी नही चाहता, लेकिन परंपरा से, संस्कार से, जैन घर में पैदा हुआ है । यह संस्कार उधार है; स्वेच्छा से वरण नहीं किये गये । और जो धर्म स्वेच्छा से वरण नहीं किया गया है, वह केवल बौद्धिक है, आत्मिक नहीं है । यह सभी के साथ होगा । यह स्वाभाविक है।

एक डाक्टर ने नौकर को आदेश दे रखा था कि कोई काम उनसे पूछे बगैर न करे। एक दिन वे दवाइयों की डोज देख रहे थे कि नौकर आ के बोला, 'सर! चाय में कितनी चीनी दूं?'

'दो या तीन चम्मच भर,' डाक्टर ने कहा।

नौकर थोड़ी देर बाद फिर आया और बोला, 'सर! सब्जी में नमक कितना देना है?'

'दो या तीन चम्मच भर,' थोड़ा नाराज होते डाक्टर बोला।

फिर थोड़ी देर में लौट के नौकर आया और उसने कहा कि सर, चावल कितना बनेगा?

'कितनी बार कहा', डाक्टर चीखा, 'दो या तीन चम्मच भर।'

चावल दो या तीन चम्मच भर! लेकिन धीरे-धीरे लकीरें बन जाती हैं। उत्तर निर्णीत हो जाते हैं। बहुत बार जो बात तुमने कही है, तुम उसे कहने के लिए धीरे-धीरे अवश हो जाते हो। बहुत बार जिस मंदिर के सामने तुम झुके हो, तुम झुक जाते हो मूर्च्छा में, झुकना सच नही होता। तुम्हे पक्का भी नही होता।

मेरे एक मित्र हैं। मेरे साथ घूमने जाते थे। हनुमान के भक्त है। अब हनुमान के भक्त की बड़ी दिक्कत है, क्योंकि जितने हनुमान के मंदिर, मूर्ति इधर-उधर सब जगह हैं...। जहां जाएं है, वही उनको...। तो उनको जगह-जगह नमस्कार...। और हनुमान के साथ खतरा है कि नाराज न हो जायें! एक और झंझट! तो मैंने उनसे कहा कि यह तुम क्या करते हो दिन भर? तुमको कोई काम दूसरा नही सूझता? चलो तो मुसीबत। रिक्शा रोक के उतरते है, पहले नमस्कार। हनुमान जी नाराज न हो जायें!

मैंने कहा, 'और जहां तक मैं देखता हू, न तो तुम्हारे नमस्कार में कोई रस है। मैं देखता हूं, एक तरह की फजीहत, एक तरह की परेशानी! तुम झिझियाये-से, खिझियाये-से नमस्कार करते हो।'

बोले, 'बात तो ठीक है क्योंकि बचपन से यह आदत मेरे पिताजी ने डाल दी है। वे भी यही करते थे। वे भी खिझियाए रहते थे। क्योंकि गाव क्या है, जहां देखो वहीं हनुमान जी बैठे है। इस झाड़ के नीचे बैठे हैं, उस झाड के नीचे बैठे है। हनुमान जी के बैठने में दिक्कत नहीं लगती। कही भी पत्थर रख दो, लाल रंग से रंग दो। झझट खड़ी हो गई। अब ये हनुमान जी हैं, अब अगर न इनको नमस्कार करो तो नाराज हो जायेंगे।

तो मैंने कहा, तुम एक काम करो। तुम एक तीन दिन नियम रखो कि नमस्कार न करोगे हनुमान जी को। बोले कि 'अगर नाराज हो गये... तो?'

'वह मेरा जुम्मा। मैं निपट लूगा। तीन दिन मैं कर लूगा तुम्हारी तरफ से नमस्कार। लेकिन तुम तीन दिन...।'

उन्होंने कहा कि बड़ा मुश्किल होगा। मैंने कहा, तुम कोशिश तो करो। तीन दिन संभव न हो पाया। वे शाम को उसी दिन आये। उन्होंने कहा, मुश्किल है। वह तो याद ही नहीं रहती, एकदम से हाथ झुक जाता है।

अब यह पूजा हुई? यह प्रार्थना हुई? यह तो एक मजबूरी हो गई, एक बेहोशी हो गई। यह तो एक आदत हो गई; जैसे सिगरेट पीने वाले को सिगरेट की तलफ लगती है, हाथ खीसे में चला जाता है, पैकेट बाहर निकल आता है, सिगरेट ठोंकने लगता है पैकेट पे। एक यांत्रिक प्रक्रिया हो गई।

जब तुम धर्म को बिना स्वेच्छा के स्वीकार कर लेते हो, आदतवश, संस्कारवश, परंपरावश, तब तुम एक खतरे में पड़ रहे हो, क्योंकि धर्म तो तभी धर्म होता है जब तुम स्वेच्छा से, सावचेत, सावधानी से स्वीकार करो। धर्म तो तभी धर्म होता है जब तुम्हे जगाये, सुलाये न।

तो तुम दोहरा सकते हो। जैन दोहरा रहा है। 'जिन' होना हो तो जीना पड़ेगा; दोहराने से काम न होगा। महावीर के वचन याद कर लेने से कुछ भी न होगा। जीना पड़ेगा। उन्हें फिर से खोजना पड़ेगा कि जीवन की सचाई उनमें है या नहीं। तुम्हें प्रमाण बनना पड़ेगा शास्त्र का। तुम्हें खबर देनी पड़ेगी अपने खुद के अन्वेषण से कि ठीक है, मेरा अन्वेषण भी मुझे वहीं ले आता है जहां महावीर का अन्वेषण ले गया; मैं भी तालमेल पाता हूं; उन्होंने जो कहा, ठीक कहा है; यह मेरा अनुभव भी कहता है — तब तो तुम 'जिन' हो पाओगे। लेकिन अगर तुम दोहराते रहे, तो दोहराते रह सकते हो। तुम जैन बने-बने सड़ जाओगे। तुम कहीं पहुंच न पाओगे।

फिर शास्त्रों से हम जो अर्थ लेते हैं, उस अर्थ के लिए भी बड़ी साक्षी भावदशा चाहिए, तो ही अर्थ का फूल तुम्हारे भीतर खिलेगा। शब्द तो मिल जाते हैं शास्त्र से, अर्थ कहां से लाओगे? अर्थ तो तुम्हें डालना होगा।

एक रोगी ने अपने डॉक्टर से आ के कहा कि बड़ी कठिनाई है; जो आपने कहा था, हो नहीं पाता। डॉक्टर ने कहा कि मैंने ऐसी कोई कठिन बात तुमसे कही न थी। इतना ही तो कहा था कि जो तुम्हारा बच्चा खाता है, वही भोजन तुम लो। इसमें क्या अड़चन है? कुछ दिन तक जो तुम्हारा बच्चा लेता है, वही भोजन तुम लो, तो तुम्हारा शरीर ठीक रास्ते पे आ जायेगा।

उसने कहा कि मैंने प्रयत्न तो किया, पर सफल न हो सका। डाक्टर ने कहा, 'क्या बेवकूफी है? इतनी-सी बात तुमसे न हो सकी कि तुम्हारा बच्चा जो खाता है वही तुम खाओ? दूध पीता है तो दूध पीओ। खिचड़ी खाता है तो खिचड़ी खाओ। और जितनी थोड़ी मात्रा में खाता है उतनी ही मात्रा में खाओ। यह भी तुमसे न हो सका?'

तो उसने कहा कि महाराज, मेरा बच्चा मोमबत्ती, कोयला, मिट्टी, जूते के फीते,

ऐसी कौन-सी चीज है जो वह नहीं खाता ! वही तो मैं मरा जा रहा हूं खा-खा के। मेरी हालत और खराब हो गई है।

थोड़ी सावधानी चाहिए। अर्थ तो तुम डालोगे।

महावीर कहते हैं, उपवास; तुम पढ़ोगे, अनशन। महावीर कहते हैं, सत्य में संयम छिपा है; तुम पढ़ोगे, संयम में सत्य छिपा है। ऐसे चूकते चले जाओगे। फिर तुम अपनी मतलब की बात सदा निकाल लोगे। आदमी अपनी मतलब की बात निकाल लेता है।

मैं जबलपुर बहुत वर्षों तक रहा। एक बूढ़े सिंधी की दुकान थी। पुरानी किताबें पुराना कागज, खरीदता और बेचता। मैं भी उसकी दुकान पर पुरानी किताबों की तलाश में जाता था। कभी-कभी बड़े महत्त्वपूर्ण शास्त्र उसकी किताब की दुकान पे से मिल गये। उस सिंधी को... सिंधियों में ऐसी मान्यता थी कि वह कुछ धार्मिक है, वे उसको साईं कहते थे। मैं भी किताबें पुरानी ढूढते-ढूढते, सुनता रहता था उसकी बातें; उसके कुछ शिष्य-शागिर्द भी कभी-कभी बैठे रहते थे। एक दिन एक आदमी आया जो फाउन्टेंनपेन खरीद के ले गया था। पुरानी और चीजें भी वह खरीदता-बेचता था। वह आदमी बड़ा नाराज था। उसने कहा कि यह तुमने धोखा दिया। यह तो फाउन्टेनपेन चार आने का भी नहीं है और लिखा है इस पे 'मेड इन यू. एस. ए.'। यह है नहीं 'अमरीका का बना'।

वह सिंधी नाराज हुआ। उसने कहा, 'कहा किसने कि यह अमरीका का बना है?' पर उसने कहा, 'इस पे लिखा हुआ है : मेड इन यू. एस. ए.। तो वह सिंधी नाराज हुआ। उसने कहा, 'कोई यू. एस. ए. ने यू. एस. ए. लिखने का ठेका ले रखा है? अरे, यू. एस. ए. का मतलब होता है उल्हासनगर सिंधी एसोसिएशन।'

अपने-अपने हिसाब हैं, अपने-अपने मतलब हैं। यू. एस. ए. की चीज खरीदत वक्त उल्हासनगर के सिंधियों को याद रखना। तुम्हीं तो अर्थ डाल लोगे। शब्द तो बेचारा क्या करेगा! अर्थ तो तुम जोडोगे! अर्थ तो तुम निकालोगे!

महावीर की नग्नता हुई – सहज, स्वाभाविक, सहजस्फूर्त।

मेरे एक मित्र हैं जैन-संन्यासी। उनके गांव के पास से गुजरता था तो मैंने गाड़ी रुकवाई। मैंने कहा कि उनको मिलता चलूं, वर्षों से मिला नहीं। देखा खिड़की से तो वे अपनी छोटी-सी कोठरी में – दूर जंगल में रहते हैं – नग्न टहल रहे थे। जब मैं दरवाजे पे गया और मैंने दस्तक दी तो वे आए तो चादर लपेटे थे। मैंने पूछा, 'मामला क्या है? अभी तो मैंने खिड़की से देखा, तुम नग्न थे, चादर क्यों लपेट ली?' वे हंसने लगे। उन्होंने कहा कि जरा अभ्यास कर रहा हूं।

'काहे का अभ्यास कर रहे हो?'

वे अभी ब्रह्मचारी हैं, जैनियों की पहली सीढ़ी पर हैं संन्यास की। मुनि जब नग्न होते हैं, तो वे पांचवीं सीढ़ी हैं। तो उन्होंने कहा, थोड़ा अभ्यास कर रहा हूं। मैंने

कहा, कैसे अभ्यास करोगे ? उन्होंने कहा, 'पहले अकेले में करता हूं। नग्न होने की थोड़ी आदत हो जाये। फिर मित्र, परिचितों के बीच रहूंगा। फिर धीरे-धीरे गांव में जाऊंगा। फिर शहर में भी। ऐसे हिम्मत बढ़ जायेगी। अभी तो बड़ा संकोच लगता है।'

मैंने उनसे पूछा, 'तुमने कभी सुना कि महावीर ने ऐसा अभ्यास किया था नग्नता अभ्यास से आये तो निर्दोष कहां रही ? अभ्यास तो हर चीज को दोषी बना देता है। अभ्यास का तो मतलब हुआ : परफार्मेन्स। अभ्यास का तो अर्थ हुआ : नाटक। यह तुम रिहर्सल कर रहे हो मुनित्व का, मुनि होने का ? तैयारी कर रहे हो ? यह कोई नाटक है या जीवत घटना है ? माना कि तुम संकोच छोड़ दोगे अभ्यास करने से; अभ्यास से जो संकोच छूट जायेगा उससे क्या निर्दोषता आयेगी ? निर्दोषता तो तब आती है जब समझ से संकोच गिरता है, अभ्यास से नही।'

समझ अभ्यास बन गई। फिर चूक हो गई। तो 'जिन' तो खो गये, जैन हैं।

और ऐसा ही सभी धर्मों के साथ हुआ है। ऐसा ही मैं जो तुमसे कह रहा हू, मेरे साथ होगा। यह प्रकृति का नियम है। इसलिए इस पे नाराज मत होना। जब तुम्हे समझ मे आ जाये तो तुम खिसक जाना इसके घेरे के बाहर, बस। इस पे नाराज होने जैसा कुछ नहीं है। ऐसा सदा होगा। आखिर मै अपने शब्दों का अर्थ करने कितनी देर बैठा रहूगा ? एक-न-एक दिन तुम मेरे शब्दों का अर्थ करने के मालिक हो जाओगे। फिर मैं कुछ न कर सकूगा। तुम जो अर्थ निकालोगे, तुम्हारी मौज।

इसलिए तो इतने धर्मों के सप्रदाय पैदा होते हैं। अव महावीर के भी संप्रदाय हो गये। छोटी-सी सख्या है जैनो की, उसमें भी दिगंबर हैं, श्वेताबर है; फिर श्वेताबरो मे भी स्थानकवासी है, और तेरापंथी है; और एक गच्छ, दूसरा गच्छ। फिर दिगम्बरों में भी तारणपंथी है। और छोटे-छोटे पंथ ! और उनके झगड़े क्या हैं-- बडे छोटे-छोटे ! हसने जैसे ! कुछ मुद्दा नही है उनमें।

लेकिन सवाल यह नहीं है। सवाल यह है कि जब सद्गुरु जा चुका तो अनुयायी अपने-अपने तरह से अर्थ करेंगे। अर्थों में भेद हो जायेंगे। भेदों के मानने वाले अलग-अलग हो जायेंगे, सम्प्रदायों में टूट जायेंगे। यह भेद कुछ महावीर के वचनो में नहीं है। यह भेद अर्थ करने वालों की व्याख्या में है। सब व्याख्याएं तुम्हारी होंगी।

तो क्या उपाय है ?

इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि अगर तुम्हें कोई जीवित गुरु मिल सके, तो खोज लेना; अगर न मिल सके तो मजबूरी में शास्त्र में उतरना। क्योंकि शास्त्र में तुम अकेले छूट जाओगे। तुम्हीं अर्थ करोगे, तुम्हीं पढ़ोगे। कौन निर्णय देगा कि तुमन जो पढ़ा, ठीक पढ़ा, कि तुमने जो अर्थ किया वह ठीक किया ? बहुत बेईमानी की संभावना पैदा हो जाती है, जब तुम अकेले छूट जाते हो। तुम बेईमान हो ! अपनी

इस बेईमानी के प्रति सावचेत रहना। कहीं ऐसे व्यक्ति को खोजो, जो तुमसे चार कदम भी आगे हो तो भी चलेगा। कम से कम चार कदम तो तुम सुरक्षा से प्रकाश में चल सकोगे! फिर चार कदम के बाद वह काम का न रह जाये, किसी और को खोज लेना।

आदमियों से थोड़े ही बंधना है – सत्य की खोज करनी है! जहां से जितना इशारा मिल जाये, जीवंत, उतना ले लेना और आगे बढ़ते जाना। एक दिन ऐसी घड़ी भी आ जायेगी कि तुम अपना भी प्रकाश पैदा कर लोगे। तब फिर किसी गुरु की कोई जरूरत नही रह जाती।

आखिरी प्रश्न : किसी सुंदर युवती को देख कर जाने क्यों मन उसकी ओर आकर्षित हो जाता है, आंखें उसे निहारने लगती हैं! मेरी उम्र पचास हो गई है, फिर भी ऐसा क्यो होता है? क्या यह वासना है, या प्रेम, या सुदरता की स्तुति? कृपया मेरा मार्ग-निर्देश करें।

ऐसा होता है निरतर, क्योंकि जब दिन थे तब दबा लिया। तो रोग बार-बार उभरेगा। जब जवान थे, तब ऐसी किताबें पढते रहे जिनमें लिखा है . ब्रह्मचर्य ही जीवन है। तब दबा लिया।

जवानी के साथ एक खूबी है कि जवानी के पास ताकत है – दबाने की भी ताकत है। वही ताकत भोग बनती है, वही ताकत दमन बन जाती है। लेकिन जवान दबा सकता है।

मेरे अनुभव में अक्सर ऐसी घटना घटती रही है, लोग आते रहे हैं, कि चालीस और पैंतालीस साल के बाद बड़ी मुश्किल खडी होती है जिन्होने भी दबाया। क्योंकि चालीस-पैंतालीस साल के बाद, वह ऊर्जा जो दबाने की थी वह भी क्षीण हो जाती है। तो वह जो दबाई गई वासनाएं थी, वे उभर के आती हैं। और जब बेसमय आती हैं तो और भी बेहूदी हो जाती हैं।

जवान स्त्रियो के पीछे भागता फिरे, कुछ भी गलत नहीं है, स्वाभाविक है; होना था, वही हो रहा है। बच्चे तितलियो के पीछे दौड़ते फिरें, ठीक है। बूढ़े दौड़ने लगें – तो फिर जरा रोग मालूम होता है। लेकिन रोग तुम्हारे कारण नहीं है, तुम्हारे तथाकथित साधुओं के कारण है – जिनने तुम्हें जीवन को सरलता से जीने की सुविधा नही दी है। बचपन से ही जहर डाला गया है : कामवासना पाप है! तो कामवासना को कभी पूरे प्रफुल्ल मन से स्वीकार नहीं किया। भोगा भी, तो भी अपने को खीचे रखा। भोगा भी, तो कलुषित मन से, अपराधी भाव से, यह मन में बना ही रहा कि पाप कर रहे हैं। संभोग में भी उतरे तो जान के कि नरक का इंतजाम कर रहे हैं।

अब तुम सोचो, जब तुम संभोग में उतरोगे और नरक का भाव बना रहेगा, क्या खाक उतरोगे ? संभोग की सुरभि तुम्हें क्या घेरेगी ? वह नृत्य पैदा न हो पायेगा। तो तुम बिना उतरे वापिस लौट आओगे। शरीर के तल पर संभोग हो जायेगा; मन के तल पर वासना अधूरी अतृप्त रह जायेगी। मन के तल पर दौड़ जारी रहेगी। तो जब बूढ़े होने लगोगे और शरीर कमजोर होने लगेगा और शरीर की दबाने की पुरानी शक्ति क्षीण होने लगेगी और मौत दस्तक देने लगेगी दरवाजे पर और लगेगा कि अब गये, अब गये – तब ऐसा लगेगा, यह तो बड़ा गड़बड़ हुआ; भोग भी न पाये और चले ! डोली तो उठी नहीं, अर्थी सज गई ! तो मन बड़े वेग से स्त्रियों की तरफ दौड़ेगा, पुरुषों की तरफ दौड़ेगा।

यह तथाकथित समाज के द्वारा पैदा की गई रुग्ण अवस्था है। बच्चे को उसके बचपन को पूरा जीने दो, ताकि जब वह जवान हो जाये तो बचपन की रेखा भी न रह जाये; ताकि वह पूरा-पूरा जवान हो सके। जवान को पूरा जीने दो, उसे अपने अनुभव से ही जागने दो; ताकि जवानी के जाते-जाते वह जो जवानी की दौड़-धूप थी, आपाधापी थी, मन का जो रोग था, वह भी चला जाये; ताकि बूढ़ा शुद्ध बूढ़ा हो सके। और जब कोई बूढ़ा शुद्ध बूढ़ा होता है तो उससे सुंदर कोई अवस्था नहीं है। लेकिन जब बूढे में जवान घुसा होता है, तब एक भूत तुम्हारा पीछा कर रहा है। तब तुम एक प्रेतात्मा के वश में हो। तब तुम्हें बड़ा भटकायेगा। तब तुम्हें बड़ा बेचैन करेगा। और जैसे-जैसे शरीर अशक्त होता जायेगा वैसे-वैसे तुम पाओगे, वेग वासना का बढ़ने लगा।

एक स्त्री के संबंध में मैंने सुना है। वह चालीस से ऊपर की हो चुकी थी। मोटी हो गई थी, बेहूदी हो गई थी, कुरूप हो गई थी। फिर भी बनती बहुत थी। दावत में पास बैठा युवक उसकी बातों से उकता गया था और भाग निकलने के लिए बोला, 'क्या आपको वह बच्चा याद है जो स्कूल में आपको बहुत तंग करता था ?'

उसका हाथ पकड़ के स्त्री ने कहा, 'अच्छा, तो वह तुम थे ?' उसने कहा, 'नहीं, जी नहीं, मैं नहीं। वे मेरे पिता जी थे।'

एक उम्र है तब चीजें शुभ मालूम होती हैं। एक उम्र है तब चीजों को जीना जरूरी है। उसे अगर न जी पाये तो पीछा चीजें करेंगी और तब चीजें बड़ी वीभत्स हो जाती हैं।

एक सिनेमा-गृह मे ऐसा घटा। एक महिला पास में बैठे एक बदतमीज बूढ़े से तंग आ गई थी, जो आधे घंटे से सिनेमा देखने की बजाय उसे ही घूरे जा रहा था। आखिर उसने फुसफुसा कर उस आदमी से कहा, 'सुनिए, आप अपना एक फोटो मुझे देंगे ?'

आदमी बाग-बाग हो गया : 'जरूर जरूर ! एक तो मेरी जेब में ही है। लीजिए ! हां, क्या कीजिएगा मेरे फोटो का ?'

उसने कहा, 'अपने बच्चों को डराऊंगी।'

सावधान रहना। वही जो एक समय में शुभ है, दूसरे समय में अशुभ हो जाता है। वही जो एक समय में ठीक था, सम्यक् था, स्वभाव के अनुकूल था, वही दूसरे समय में अरुचिपूर्ण हो जाता है, बेहूदा हो जाता है।

तो जिन मित्र ने पूछा है, उनको थोड़ा जाग के अपने मन में पड़ी हुई, दबी हुई वासनाओं का अंतरदर्शन करना होगा। अब मत दबाओ! कम से कम अब मत दबाओ! अभी तक दबाया है, उसका यह दुष्फल है। अब इस पर ध्यान करो। क्योंकि अब उम्र भी नहीं रही कि तुम स्त्रियों के पीछे दौड़ो या मैं तुमसे कहूं कि उनके पीछे दौड़ो। वह बात जंचेगी नहीं। वे तुमसे फोटो मांगने लगेंगी। अब जो जीवन में नहीं हो सका, उसे ध्यान में घटाओ। अब एक घंटा रोज आंख बंद करके, कल्पना को खुली छूट दो। कल्पना को पूरी खुली छूट दो। वह किन्हीं पापों में ले जाये, जाने दो। तुम रोको मत। तुम साक्षी-भाव से उसे देखो कि यह मन जो-जो कर रहा है, मैं देखूं। जो शरीर के द्वारा नहीं कर पाये, वह मन के द्वारा पूरा हो जाने दो। तुम जल्दी ही पाओगे कुछ दिन के... एक घंटा नियम से कामवासना पर अभ्यास करो, कामवासना के लिए एक घंटा ध्यान में लगा दो, आंख बंद कर लो और जो-जो तुम्हारे मन में कल्पनाएं उठती हैं, सपने उठते हैं, जिनको तुम दबाते होओगे निश्चित ही — उनको प्रगट होने दो! घबड़ाओ मत, क्योंकि तुम अकेले हो। किसी के साथ कोई तुम पाप कर भी नहीं रहे। किसी को तुम कोई चोट पहुंचा भी नहीं रहे। किसी के साथ तुम कोई अभद्र व्यवहार भी नहीं कर रहे कि किसी स्त्री को घूर के देख रहे हो। तुम अपनी कल्पना को ही घूर रहे हो। लेकिन पूरी तरह घूरो। और उसमें कंजूसी मत करना। मन बहुत बार कहेगा कि 'अरे, इस उम्र में यह क्या कर रहे हो!' मन बहुत बार कहेगा कि यह तो पाप है। मन बहुत बार कहेगा कि शांत हो जाओ, कहां के विचारों में पड़े हो! मगर इस मन की मत सुनना। कहना कि एक घंटा तो दिया है इसी ध्यान के लिए, इस पर ही ध्यान करेंगे। और एक घंटा जितनी स्त्रियों को, जितनी सुंदर स्त्रियों को, जितना सुंदर बना सको बना लेना। इस एक घंटा जितना इस कल्पना-भोग में डूब सको, डूब जाना। और साथ-साथ पीछे खड़े देखते रहना कि मन क्या-क्या कर रहा है। बिना रोके, बिना निर्णय किये कि पाप है कि अपराध है। कुछ फिक्र मत करना। तो जल्दी ही तीन-चार महीने के निरंतर प्रयोग के बाद हलके हो जाओगे। वह मन से धुआं निकल जायेगा।

तब तुम अचानक पाओगे: बाहर स्त्रियां हैं, लेकिन तुम्हारे मन में देखने की कोई आकांक्षा नहीं रह गई। और जब तुम्हारे मन में किसी को देखने की आकांक्षा नहीं रह जाती, तब लोगों का सौंदर्य प्रगट होता है। वासना तो अंधा कर देती है, सौंदर्य

को देखने कहां देती है ! वासना ने कभी सौंदर्य जाना ? वासना ने तो अपने ही सपने फैलाये ।

और वासना दुष्पूर है; उसका कोई अंत नहीं है । वह बढ़ती ही चली जाती है ।

एक बहुत मोटा आदमी दर्जी की दुकान पे पहुंचा । दर्जी ने अचकन के लिए बड़ी कठिनाई से उसका नाप लिया । फिर एक सौ रुपये की सिलाई मांगी । वे महाशय बोले, 'टेलीफोन पर तो तुमने पच्चीस रुपये सिलाई कही थी, अब सौ रुपये ? हद हो गई ! बेईमानी की भी कोई सीमा है ! '

दर्जी ने कहा, ' महाराज ! वह अचकन की सिलाई थी, यह शामियाने की है । '

अचकनें शामियाने बन जाती हैं । वासना फैलती ही चली जाती हैं । तंबू बड़े से बड़ा होता चला जाता है । अचकन तक ठीक था, लेकिन जब शामियाना ढोना पड़े चारों तरफ तो कठिनाई होती है ।

मैं अड़चन समझता हूं । लेकिन अड़चन का तुम मूल कारण खयाल में ले लेना : तुमने दबाया है । तुमने दमन किया है । तुम गलत शिक्षा और गलत संस्कारों के द्वारा अभिशापित हुए हो । तुमने जिन्हें साधु-महात्मा समझा है, तुमने जिनकी बातों को पकड़ा है – न वे जानते हैं, न उन्होंने तुम्हें जानने दिया है ।

मेरे पास साधु संन्यासी आते हैं तो कहते है, 'एकांत में आपसे कुछ कहना है । ' मैं कहता हूं, सभी के सामने कह दो; एकांत की क्या जरूरत है ? वे कहते हैं कि नही, एकांत में । अब तो मैंने एकांत में मिलना बंद कर दिया है । क्योंकि एकांत में... जब भी साधु-संन्यासी आयें तो वे एकांत ही मांगते हैं । और एकांत में एक ही प्रश्न है उनका कि यह कामवासना से कैसे छुटकारा हो ! कोई सत्तर साल का हो गया है, कोई चालीस साल से मुनि है – तो तुम क्या करते रहे चालीस साल ? कहते है, क्या बतायें, जो-जो शास्त्र में कहा है, जो-जो सुना है – वह करते रहे है । उससे तो हालत और बिगड़ती चली गई है ।

मवाद को दबाया है, निकालना था । घाव पे तुमने ऊपर से मलहम-पट्टी की है; आपरेशन की जरूरत थी । तो जिस मवाद को तुमने भीतर छिपा लिया है, वह अब तुम्हारी रग-रग में फैल गई है; अब तुम्हारा पूरा शरीर मवाद से भर गया है ।

तो थोड़ी सावधानी बरतनी पड़ेगी । आपरेशन से गुजरना होगा । और तुम्ही कर सकते हो वह आपरेशन; कोई और नही कर सकता । तुम्हारा ध्यान ही तुम्हारी शल्यक्रिया होगी । तब तक घंटा रोज ... । तुम चकित होओगे, अगर तुमने एक-दो महीने भी इस प्रक्रिया को बिना किसी विरोध के भीतर उठाये, बिना अपराध-भाव के निश्चित मन से किया, तो तुम अचानक पाओगे : धुएं की तरह कुछ बातें खो गईं ! महीने दो महीने के बाद तुम पाओगे : तुम बैठे रहते हो, घड़ी बीत जाती है, कोई कल्पना नही आती, कोई वासना नही उठती । तब तुम अचानक पाओगे : अब तुम चलते हो बाहर, तुम्हारी आंखों का रंग और ! अब तुम्हें सौंदर्य दिखाई पड़ेगा !

क्योंकि सब सौंदर्य परमात्मा का सौंदर्य है। स्त्री का, पुरुष का कोई सौंदर्य होता है? फूल का, पत्ती का, कोई सौंदर्य होता है? सौंदर्य कहीं से भी प्रगट हो, सौंदर्य परमात्मा का है। सौंदर्य सत्य का है। लेकिन सौंदर्य को देख ही वही पाता है, जिसने वासना को अपनी आंख से हटाया। वासना का परदा आंख पे पड़ा रहे, तुम सौंदर्य थोड़ी देखते हो! सौंदर्य तुम देख ही नही सकते।

वासना कुरूप कर जाती है सभी चीजों को। इसलिए तुमने जिसको भी वासना से देखा, वही तुम पे नाराज हो जाता है। कभी तुमने खयाल किया? किसी स्त्री को तुम वासना से देखो, वही बेचैन हो जाती है। किसी पुरुष को वासना से देखो, वही थोड़ा उद्विग्न हो जाता है। क्योंकि जिसको भी तुम वासना से देखते हो, उसका अर्थ ही क्या हुआ? उसका अर्थ हुआ कि तुमने उस आदमी या उस स्त्री को कुरूप करना चाहा। जब भी तुम किसी को वासना से देखते हो, उसका अर्थ हुआ कि तुमने किसी का साधन की तरह उपयोग करना चाहा; तुम किसी को भोगना चाहते हो। और प्रत्येक व्यक्ति साध्य है, साधन नही है। तुम किसी को चूसना चाहते हो? तुम किसी को अपने हित में उपयोग करना चाहते हो? तुम किसी के व्यक्तित्व को वस्तु की तरह पद-दलित करना चाहते हो?

वस्तुओं का उपयोग होता है, व्यक्तियों का नहीं। लेकिन जब तुम वासना से किसी को देखते हो, व्यक्ति खो जाता है, वस्तु हो जाती है। इसलिए वासना की आंख को कोई पसद नही करता। जब वासना खो जाती है तो सौंदर्य का अनुभव होता है। और जब सौंदर्य का अनुभव होता है, तो तुम्हारे भीतर प्रेम का आविर्भाव होता है।

प्रेम उस घड़ी का नाम है, जब तुम्हें सब जगह परमात्मा और उसका सौंदर्य दिखाई पड़ने लगता है। तब तुम्हारे भीतर जो ऊर्जा उठती है, जो अहर्निश गीत उठता है—वही प्रेम है। अभी तो तुमने जिसे प्रेम कहा है, उसका प्रेम से कोई दूर का भी संबंध नही है। वह प्रेम की प्रतिध्वनि भी नही है; वह प्रेम की प्रतिछाया भी नही है। वह प्रेम का विकृत रूप भी नहीं है। वह प्रेम से बिलकुल उलटा है।

इसलिए तो तुम्हारे प्रेम को घृणा बनने में देर कहां लगती है! अभी प्रेम था, अभी घृणा हो गई। एक क्षण पहले जो मित्र था, क्षण भर बाद दुश्मन हो गया। क्षण भर पहले जिसके लिए मरने थे, क्षण भर बाद उसको मारने को तैयार हो गये।

तुम्हारा प्रेम प्रेम है? घृणा का ही बदला हुआ रूप मालूम पड़ता है। प्रेम सिर्फ तुम्हारी बातचीत है। प्रेम तो उनका अनुभव है जिनकी आंख से वासना गिर गई; जिन्हें सौंदर्य दिखाई पड़ा; जिसे सब तरफ उसके नृत्य का अनुभव हुआ; जिसे सब तरफ परमात्मा की पगध्वनि सुनाई पड़ने लगी। फिर प्रेम का आविर्भाव होता है। प्रेम यानी प्रार्थना। प्रेम यानी पूजा। प्रेम यानी अहोभाव, धन्यता, कृतज्ञता।

नहीं, अभी तुम्हें प्रेम का अनुभव नही हुआ। अभी तो तुमने वासना को भी

नहीं जाना, प्रार्थना को तुम जानोगे कैसे ? वासना को जानो, ताकि वासना से मुक्त हो जाओ । जब मैं निरन्तर तुमसे कहता हू, वासना को जानो, तो मैं यही कह रहा हूँ कि वासना से मुक्त होने का एक ही उपाय है : उसे जान लो । जिसे हम जान लेते हैं, उसी से मुक्ति हो जाती है ।

सत्य बड़ा क्रांतिकारी है। जान लेने के अतिरिक्त और कोई रूपान्तरण नही है ।

आज इतना ही

दिनांक १९ मई, १९७६; श्री रजनीश आश्रम, पूना

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ ॥ २२ ॥
एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इन्दियाणि य ।
ते जिणित्तु जहानायं, विहरामि अहं मुणी ॥ २३ ॥
एगओ विरइं कुज्जा, एगओ य पवत्तणं ।
असंजमे नियत्तिं च, संजमे य पवत्तणं ॥ २४ ॥
रागे दोसे य दो पावे, पावकम्म पवत्तणे ।
जे भिक्खू रुंभई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥ २५ ॥

अनुकरण नहीं — आत्म-अनुसंधान

पहला सूत्र :

'अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ ।।'

'आत्मा ही सुख-दुख का कर्ता है। और आत्मा ही सुख-दुख का भोक्ता, विकर्ता है। सत्प्रवृत्ति में स्थित आत्मा अपना ही मित्र और दुष्प्रवृत्ति में स्थित आत्मा अपना ही शत्रु है।'

महावीर के चिंतन का सारा विश्व आत्मा है। महावीर के उड़ने का सारा आकाश आत्मा है। आत्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नही है। आत्मा से अन्यथा को कोई भी स्थान महावीर की धारणा में नहीं है। न संसार का कोई मूल्य है, न परमात्मा का कोई मूल्य है — दूसरे का कोई मूल्य ही नही है। मूल्य है तो अपना।

अगर ठीक से कहें और गलत न समझें तो महावीर से बड़ा स्वार्थी आदमी कभी हुआ नहीं। लेकिन गलत मत समझ लेना। स्वार्थ का अर्थ होता है : अपना अर्थ, अपना प्रयोजन। स्वार्थ का अर्थ होता है : अपना हित, अपना कल्याण, अपना मंगल। जो स्वार्थ को पूरा साध लेते हैं उनसे परार्थ अपने-आप सध जाता है। क्योंकि जो अपने हित में करता है वह दूसरे के अहित में कभी कुछ कर ही नहीं पाता। क्योंकि जिसने अपने हित को पहचानना शुरू किया, वह धीरे-धीरे जानने लगता है : जो अपने हित में है वह दूसरे के हित में भी है; और जो अपने हित में नही है, वह दूसरे के हित में भी नहीं है। इससे विपरीत भी, कि जो दूसरे के हित में नहीं है, वह अपने हित में नहीं हो सकता; और जो दूसरे के हित में है वही अपने हित में हो सकता है। क्योंकि दूसरा भी मेरे जैसा ही आत्मा है। मेरे और दूसरे के स्वभाव में रत्ती भर भेद नहीं है। तो जो मुझे प्रीतिकर है वही दूसरे को प्रीतिकर है। जो दूसरे को प्रीतिकर है वही मुझे प्रीतिकर है। मैं और दूसरा दो अलग-अलग आयाम नहीं — एक ही चैतन्य के दो रूप हैं; एक ही स्वभाव के दो संघट है।

पर महावीर की शिक्षा परम स्वार्थ की है। परार्थ की तो वे बात ही नहीं करते। परार्थ की वे बात ही कैसे करेंगे! 'पर' को तो वे कहते हैं, खयाल ही छोड़ दो।

परार्थ के लिए भी पर का खयाल रखा तो पर से उलझे रह जाओगे । पर ही तो संसार है । दूसरे पर ध्यान रखना ही तो संसार है । दूसरे से अपने ध्यान को मुक्त कर लेना समाधि है । अपने पे लौट आए, अपने घर आ गए । अपना ध्यान अपने में ही लीन कर लिया । अपने से पार कुछ भी न बचा, जिसका कोई मूल्य है ।

इसलिए तो महावीर ने परमात्मा को स्वीकार न किया । क्योंकि परमात्मा को स्वीकार करने का तो अर्थ ही होता है, दूसरा महत्त्वपूर्ण बना ही रहेगा । वस्तुओं से छूटेंगे, दुकान से छूटेंगे तो मंदिर महत्त्वपूर्ण हो जाएगा । धन से छूटेंगे तो धर्म महत्त्वपूर्ण हो जाएगा । पद से छूटेंगे तो परमात्मा का पद, परमपद, उसकी आकांक्षा पैदा हो जाएगी । लेकिन हर हालत में दूसरा महत्त्वपूर्ण बना रहेगा । और महावीर का गहरा विश्लेषण यह है कि जब तक दूसरा है तब तक संसार है ।

जब तुम अकेले हो – इतने अकेले कि तुम्हें अकेलेपन का पता भी नहीं चलता; अगर अकेलेपन का पता चलता हो तो दूसरा अभी मौजूद है । अकेलेपन का पता तभी चलता है जब दूसरे की याद आती है, जब दूसरे की आकांक्षा जगती है । दूसरे की कमी मालूम होती है तो अकेलेपन का पता चला है । अगर दूसरा बिलकुल ही खो गया है, तुम्हें दूसरे की याद भी नहीं आती तो अकेलेपन का पता कैसे चलेगा ? अकेलापन तब परम हो जाता है, पूर्ण हो जाता है । उसको महावीर ने 'कैवल्य' कहा है । वह अकेलेपन की परिपूर्णता है ।

तुम इतने अकेले हो कि अकेलेपन का भी पता नहीं चलता । पता चलाने को तो दूसरे की थोड़ी-सी मौजूदगी चाहिए–छाया सही, स्मृति सही । अपने घर की तुम्हें दीवाल बनानी होती है, तो पड़ोसी चाहिए, पड़ोसी के बिना कहां तुम सीमा-रेखा खींचोगे ? पड़ोसी न भी प्रवेश कर सके तुम्हारी भूमि में तो भी पड़ोसी के बिना तुम अपनी भूमि किस भूमि को कहोगे ? तो जहां तक अकेलेपन का पता चले वहां तक अकेलापन शुद्ध नहीं हुआ – दूसरा मौजूद है; किसी अंधेरे कोने में खड़ा है; दूर सही, पर मौजूद है । उसकी भनक पड़ेगी, उसकी छाया होगी, प्रतिध्वनि होगी ।

इसे समझना । आत्मवान तुम तभी हो सकोगे, जब दूसरे की छाया की भी जरूरत तुम्हारी परिभाषा के लिए न रह जाए । तभी तुम आत्मा हो जब तुम दूसरे से मुक्त हो । अगर तुम्हें अपनी आत्मा की अनुभूति के लिए भी दूसरे का सहारा लेना पड़ता है तो वह अनुभूति भी निर्भर हो गई, वह अनुभूति भी सांसारिक हो गई ।

इसलिए आत्मा की गहनतम स्थिति में 'मैं' का भी पता न चलेगा, क्योंकि 'मैं' के लिए तो 'तू' का होना जरूरी है । 'तू' के बिना 'मैं' का क्या अर्थ ? कैसे कहोगे 'मैं' ? जब भी कहोगे 'मैं', 'तू' आ जाएगा; 'तू' पीछे के दरवाजे से प्रवेश कर जाएगा ।

इसलिए आत्मा का अर्थ अहंकार मत समझना, अस्मिता मत समझना । आत्मा तो तभी परिपूर्ण होता है जब 'मैं' का भाव विलीन हो जाता है । न कोई 'मैं'

बचता, क्योंकि बच ही नहीं सकता – 'तू' ही नहीं बचा। कोई पर नहीं बचता, तभी तुम शुद्ध होते हो; इतने अकेले होते हो कि तुम्हीं पूरा आकाश होते हो; असीम होते हो।

महावीर परम स्वार्थी हैं।

सभी धर्म अपनी पराकाष्ठा में स्वार्थी होते हैं; क्योंकि धर्म का बुनियादी आधार व्यक्ति है, समाज नहीं। यहीं तो राजनीति और धर्म का फर्क है। यहीं तो मार्क्स और महावीर का फर्क है। दूसरा महत्त्वपूर्ण है, तो समाज। मैं अकेला भर महत्त्वपूर्ण हूं, तो व्यक्ति। इससे तुम यह मत समझ लेना कि महावीर समाज-विरोधी हैं। महावीर समाज से मुक्त हैं, विरोधी नहीं। और तुम इससे यह भी मत समझ लेना कि मार्क्स समाज का पक्षपाती है। समाज में है, लेकिन समाज का पक्षपाती नहीं है। यह जरा जटिल है। विरोधाभास मालूम होगा।

इसे फिर से मैं दोहरा दूं। महावीर अपने स्वार्थ को इतनी गहनता से साधते हैं कि उनके स्वार्थ में सबका स्वार्थ सध ही जाता है; उसको अलग से साधने की जरूरत नहीं रह जाती। जहां महावीर विचरण करते हैं, वहां भी सुख की किरणें छिटकने लगती हैं। जहां वे मौजूद होते हैं वहां भी आनंद की लहरें बिखरने लगती हैं।

जो आनंदित है, वह आनंद की लहरें अपने चारों तरफ पैदा करता है। जो दुखी है, वह दुख की लहरें पैदा करता है। तुम दुखी हो, तो तुम लाख चाहो कि दूसरे को सुख दे दें, दोगे कहां से? लाओगे कहां से? अपने लिए न जुटा पाए, दूसरे को कहां दोगे? दूसरे को तो देने की संभावना तभी है, जब इतना हो तुम्हारे पास कि तुम्हारी समझ में न आता हो कि क्या करें, जब इतना हो तुम्हारे पास, बाढ़ की तरह कि कूल-किनारों को तोड़ के बहा जाता हो; तुम इतने भरे हो आनंद से कि न लुटाओगे तो करोगे क्या? बादल जब भर जाता है जल से, तो बरसता है। फूल जब भर जाता है गंध से, तो गंध को लुटाता है। दीया जब रोशनी से जगमगाता है, भरा होता है, तो रोशनी लुटाता है। करोगे क्या?

जो व्यक्ति आनंद को उपलब्ध हुआ, वह एक आनंदित समाज का आधार बनता है। लेकिन चेष्टा से नहीं। अनायास। सहज ही। सोच कर नहीं, विचार कर नहीं। वह कोई समाजवादी थोड़े ही होता है। ऐसा घटता है। जब भीतर के केंद्र पर अहर्निश वर्षा होती है, तो बाढ़ आती है। अमृत बरसता है तो बाढ़ आती है। फिर बाढ़ आती है तो लुटना भी शुरू हो जाता है।

जो दूसरे को सुखी करने की चेष्टा में लगा है, उस पे जरा गौर करना। तुमने भी दूसरे को सुखी करने की चेष्टा की है – कर पाए? कर इतना ही पाए कि उसे और दुखी कर दिया। पति पत्नी को सुखी करने की चेष्टा कर रहा है। पत्नी से पूछो। पत्नी पति को सुखी करने की चेष्टा कर रही है। पति से पूछो। मां-बाप बेटे-बच्चों को सुखी करने की चेष्टा कर रहे हैं। बच्चों से पूछो। तुम चकित होओगे!

राजनेता समाज को सुखी करने की कोशिश कर रहे हैं। समाज से पूछो। राज-नेताओं से मत पूछो। लोगों से पूछो। कौन किसको सुखी कर पा रहा है? सभी सभी को सुखी कर रहे हैं और संसार में सिवाय दुख के कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता! सभी, सभी को आनंद देने की चेष्टा में संलग्न है; मिलता है जो, उस पर तो खयाल करो! तुम्हारी अभिलाषा से थोड़े ही आनंद बंटेगा — होगा तो बंटेगा। और होने की यात्रा तो निजी है — आत्मा की है।

तुम वही दे सकोगे जो तुम हो जाओगे। इसके पहले कि तुम दो, हो जाओ। क्योंकि हम अपने को ही बांट सकते हैं, और तो कुछ बांटने को नहीं है। और अपने को भी हम तभी बांट सकते हैं, जब अनंत हो जाएं; नहीं तो कंजूसी होगी, डर लगेगा कि बांटा तो कुछ कमी हो जाएगी, छोटे हो जाएंगे।

तो जब तक तुम इतने आत्मवान न हो जाओ कि तुम्हारी आत्मा का कोई किनारा न हो, तुम तट-हीन सागर न हो जाओ, तब तक तुम बांट न सकोगे, तब तक कृपणता जारी रहेगी। तो यह विरोधाभास खयाल रखना।

जो दूसरों की चिंता करते ही नहीं, क्योंकि चिंता करना ही भूल गए हैं; जो दूसरे को सुख देना ही नहीं चाहते, न देने का विचार करते हैं, क्योंकि एक सत्य उनकी समझ में आ गया है कि अपने पास जो नहीं है वह हम दे न सकेंगे; जो अपने ही सुख को जन्माने की सतत साधना में लगे हैं, क्योंकि उन्हें पता चल गया है, जो अपने भीतर होगा, बढ़ेगा, बहेगा भी, बिखरेगा भी, फैलेगा भी, बंटेगा भी, वह अपने से हो जाता है, उसका कोई हिसाब नहीं रखना होता — ऐसे सभी व्यक्तियों ने परम स्वार्थ की बात कही है।

मजहब यानी मतलब। धर्म यानी स्वार्थ। लेकिन स्वार्थ इतना महिमापूर्ण है कि परार्थ उसमें अपने-आप सध जाता है।

इसलिए तुम एक अनूठी बात देखोगे, महावीर के धर्म में सेवा का कोई स्थान नहीं है। और अगर जैनियों के पास सेवा शब्द भी है, तो उसका अर्थ उनका बड़ा अनूठा है। जब वे जैन मुनि के दर्शन को जाते हैं तो वे कहते हैं, सेवा को जा रहे हैं। यह सेवा का बड़ा अनूठा अर्थ है। जिसको तुम्हारी सेवा की कोई भी जरूरत नहीं है, उसकी सेवा को जा रहे हैं। कोढ़ी को जरूरत है, बीमार को जरूरत है, दुखी को जरूरत है। इसलिए ईसाइयत का दावा ठीक मालूम पड़ता है कि पूरब में पैदा हुए सभी धर्म स्वार्थी हैं, इनमें सेवा की कोई जगह नहीं है। न अस्पताल खोलने की उत्सुकता है, न स्कूल चलाने की उत्सुकता है। लोग आंखें बंद कर के ध्यान कर रहे हैं — यह कैसा धर्म है!

ईसाइयत की बात में सचाई है। पर बात बुनियादी रूप से भ्रांत है। ईसाइयत धर्म न बन पायी, राजनीति रही, समाजशास्त्र रहा। सेवा तो ईसाइयत ने की, लेकिन जो सेवा करने गए उनके पास कुछ देने को न था। बांटने तो गए, बड़ी शुभ आकांक्षा

थी। लेकिन कहते हैं, नरक का रास्ता शुभ आकांक्षाओं से पटा पड़ा है। गए तो सेवा करने, गर्दनें काट दीं। ईसाइयत ने तलवारें उठा लीं। ईसाइयत ने जितने लोग मारे, किसी ने नहीं मारे। जीसस ने तो कहा था, कोई चांटा मारे तो दूसरा गाल कर देना; लेकिन सेवा की धुन ऐसी चढ़ी कि अगर दूसरा सेवा करवाने को राजी न हो तो खत्म करो उसे, सेवा करके ही रहेंगे। सेवा सीढ़ी बन गई स्वर्ग चढ़ने की। दूसरे से प्रयोजन न रहा।

कभी-कभी मुझे डर लगता है। कभी ऐसी दुनिया होगी, न कोढ़ी होगा, न अंधा होगा, फिर ईसाइयत क्या करेगी? धर्म खत्म! नहीं, खत्म न होगा। वे अंधे को पैदा करेंगे, कोढ़ी को पैदा करेंगे — सेवा तो करनी ही पड़ेगी, नहीं तो मोक्ष कैसे जाएंगे! स्वर्ग कैसे जाएंगे!

महावीर, बुद्ध, कृष्ण, किसी के धर्म में सेवा की कोई जगह नहीं है। कारण? क्या इनके हृदय में प्रेम पैदा न हुआ? क्या इनके भाव करुणा के न थे? थे। लेकिन उन्होंने एक बड़ा गहरा सत्य जाना था कि तुम दूसरे को सुख देने की चेष्टा से सुख नहीं दे सकते — दुख ही दोगे। ईसाइयत युद्ध लायी, दुख लायी। कौन सुखी हुआ! कपड़े दिए होंगे लोगों को, दवा भी दी होगी; लेकिन आत्माएं खंडित कर डालीं। रोटी के सहारे, दवा के सहारे, लोगों के प्राण तोड डाले, उनके जीवन की दिशा भटका दी।

महावीर का धर्म कहता है: तुम हो जाओ परिपूर्ण! तुम खिलो दीये की भांति! तुम बिखरो! फिर तुम्हारे जीवन में होता रहेगा सब, जिससे दूसरे को लाभ होगा। मगर वह लाभ प्रयोजन नहीं है। वह लाभ लक्ष्य नहीं है। वह लाभ परिणाम है। वह सहज परिणाम है। अपने से होता है। सूरज निकलता है तो सोचता थोड़े ही है, रात हिसाब थोड़ी लगाता है कि कितने फूल खिलाने हैं, कि कितने पौधों को प्राण देने हैं, कि कितने पक्षियों के कंठ में गीत बनाना है, कि कितने मोर नाचेंगे, कि कितनी आंखें प्रकाश से भरेंगी! वह कोई हिसाब लगाता है! सूरज से पूछो तो शायद उसे पता भी न हो कि फूल भी खिलते हैं मेरे कारण, कि सोए हुए लोग जगते हैं मेरे कारण, कि पक्षी गीत गाने लगते हैं, कि भोर होती है मेरे कारण! उसे पता भी न होगा। यह स्वाभाविक, सहज परिणाम है। सूरज करता है, ऐसा नहीं; ऐसा सूरज की मौजूदगी में होता है। सूरज तो केटालिटिक है। उसकी मौजूदगी काफी है।

जब भी कोई व्यक्ति महावीर जैसा स्वार्थ को उपलब्ध होता है — स्वार्थ यानी आत्मा को; जिस दिन कोई अपने में रम जाता है — उसके आसपास बहुत पक्षी गीत गाते हैं। उसके आसपास बे-मौसम फूल खिल जाते हैं। उसके आसपास सोए हुओं की आंखें खुल जाती हैं। उसके आसपास जन्मों-जन्मों से भटके हुए लोग मार्ग पर आ जाते हैं। कोई अनजाना तार खींचने लगता है।

लेकिन महावीर जैसा व्यक्ति कुछ करता नहीं; करने की भाषा ही भूल जाता है। होने की भाषा। होता है, कर्ता नहीं। सेवा करता नहीं, सेवा होता है। यह कोई कृत्य नहीं है, यह उसकी भाव-दशा है।

इसलिए इस बात को याद रखना कि महावीर के लिए आत्मा से पार कुछ भी नहीं है। जो भी आत्मा के पार है, वह भटकाने वाला है। अपने से बाहर जिसने देखने की कोशिश की, वह संसार में गया, अपने से भीतर जिसने देखने की कोशिश की, वह मोक्ष में।

तो महावीर कहते हैं : आत्मा की तीन दशाएं हैं। एक बहिरात्मा, जिसको दूसरा दिखाई पड़ता है, जिसकी नजर दूसरे पे लगी है। फिर वह दूसरा कोई भी हो। धन हो कि पद हो, कि स्त्री हो कि पुरुष हो, कि परमात्मा हो, वह दूसरा कोई भी हो, बेशर्त, दूसरे पे आंख लगी है, वह आदमी बहिरात्मा। इसलिए तुम जब मंदिर जाते हो पूजा करने, तब महावीर तुमको बहिरात्मा कहेंगे। पूजा करने और मंदिर गए! नजर बाहर रखी! फूल-थाल सजाए! पूजा करने बाहर गए! मंत्रोच्चार किए। उच्चार बाहर हुआ! तुम बहिरात्मा! कहीं सिर झुकाया, किन्हीं चरणों में सिर रखा, लेकिन चरण बाहर थे, तो तुम बहिरात्मा। अभी तुम्हें भीतर आना होगा। अभी तुम आत्मा की सब से दीन दशा में हो। आत्मा की दरिद्रतम अवस्था जो हैं, 'सर्व-हारा', वह है बहिरात्मा – बाहर जाता हुआ व्यक्ति। जितना बाहर जाता है, उतना ही भीतर के स्वर दूर होते जाते हैं, भीतर का संगीत खोता चला जाता है। जितना बाहर जाता है, उतनी ही स्वभाव से जड़ें उखड़ जाती हैं, उतना ही दुख, उतनी ही क्लांति, उतनी ही थकावट, उतनी ही ऊब, उतना ही जीवन भार, बोझिल हो जाता है।

दूसरी दशा, महावीर कहते हैं, समझो लौटो घर – अंतरात्मा। जिसने दूसरे की तरफ पीठ कर ली, नजर अपनी तरफ कर ली। अभी जहां हम खड़े हैं वहां दूसरे की तरफ नजर है, पीठ अपनी तरफ। हम अपनी ही तरफ पीठ किए हुए हैं – यह सामा-रिक की दशा है। धार्मिक की – उसने पीठ संसार की तरफ की, सन्मुख हुआ अपने, अपनी तरफ चला, अब ध्यान अपने पर है। इसी को महावीर 'सामायिक' कहते हैं। इसी को योग 'ध्यान' कहता है। अब अपनी तरफ लौटने लगे। फिर एक दिन जब पहुंच गए, अपने में पहुंच गए, जिसके आगे जाने की कोई जगह न रही, ठहर गए उस बिंदु पर जहां से चले थे, जो स्रोत था जीवन का, वर्तुल वहीं आ के पूरा हो गया – तो फिर अब अंतरात्मा भी कहना ठीक नहीं। क्योंकि अंतरात्मा तो वह है जो अपनी तरफ नजर किए है। लेकिन अपने से अभी फासला है। मुड़ा है घर की तरफ, लेकिन घर अभी दूर है, रास्ता बीच में है। फिर घर ही पहुंच गया, तो अब तो अपने में और अपनी नजर में कोई फासला न रहा। अब तो स्वयं का

होना और स्वयं को देखना एक ही हो गए। अब दो न रहे। अब तो डुबकी लग गई। इस अवस्था को महावीर कहते हैं : परमात्मा।

परमात्मा महावीर के लिए अवस्था है – तुम्हारे अंतरतम की। दूसरों के लिए परमात्मा बाहर, कहीं स्वर्ग, कहीं आकाश में बैठा है; महावीर के लिए अंतर-आकाश में।

महावीर ने बड़ी से बड़ी क्रांतिकारी उद्घोषणा की है कि तुम परमात्मा हो। जब तुम नहीं जानते हो तब भी हो। इससे क्या फर्क पड़ता है ! जब तुम्हें पता नहीं है, तब भी हो। भेद सिर्फ पता का है। महावीर ने मनुष्य को अंतिम इकाई माना। मनुष्य की महिमा ऐसी किसी व्यक्ति ने कभी न गायी थी। मनुष्य के ऊपर कुछ न कुछ था।

चंडीदास का बड़ा प्रसिद्ध वचन है :

साबार ऊपर मानुस सत्य, ताहार ऊपर नाईं।

चंडीदास ने जरूर महावीर से लिया होगा। या चंडीदास के भीतर भी वैसी ही भाव-ऊर्मि उठी होगी, जैसी महावीर के भीतर। चंडीदास कहते हैं : साबार ऊपर मानुस सत्य, सब सत्यों के ऊपर मनुष्य का सत्य है; ताहार ऊपर नाई, उसके ऊपर कुछ भी नहीं।

इससे बड़ी और महिमा, इससे बड़ा गुणगान न हो सकता था।

महावीर ने परमात्मा को इनकार किया, ताकि आत्मा को परम पद दिया जा सके। क्योंकि परमात्मा रहेगा तो आत्मा दोयम रहेगी, नम्बर दो रहेगी। परमात्मा रहेगा तो नजर दूसरे पर ही रहेगी। लाख उपाय करो, नजर अपने पे न आ पाएगी।

यही पूरब और पश्चिम की मनीषा का फर्क स्पष्ट होता है। नीत्से भी इसी तर्क के करीब पहुच गया था जहां महावीर पहुंचे। सौ वर्ष पहले नीत्से भी करीब-करीब इसी घटना के आ गया, जहां उसे एक बात समझ में आने लगी कि ईश्वर के रहते मनुष्य परिपूर्ण स्वतंत्र न हो सकेगा। कोई ऊपर रहेगा। कोई नजर कौंधती ही रहेगी। कोई जांचता ही रहेगा। कोई मालकियत जतलाता ही रहेगा। ठीक वहीं उसी बिंदु पर जहां महावीर पहुचे, नीत्से भी पहुंचा; लेकिन तब रास्ते अलग हो गए। महावीर तो विमुक्त हुए, नीत्से विक्षिप्त हुआ। क्या फर्क पड़ गया ? नीत्से ने यह बात तो समझ ली कि परमात्मा नहीं होना चाहिए, लेकिन बात दूसरी न समझ पाया। यह तो निषेधात्मक अंग हुआ कि परमात्मा न होना चाहिए। दूसरी बात न समझा कि अगर परमात्मा नहीं है तो अब आदमी को परमात्मा होना पड़ेगा। यह कोई स्वतंत्रता ही नहीं है, जुम्मेवारी भी है। यह स्वच्छंदता बन गई नीत्से के लिए। तो नीत्से ने कहा, 'गॉड इज डैड। एन्ड नाउ मैन इज फ्री टू डू वट सो एवर ही वांट्स टू डू।'...

'ईश्वर मर गया और अब आदमी स्वतंत्र है, जो भी करना चाहे करे।'

यह स्वच्छंदता बनी। ईश्वर की मृत्यु, आत्मा का पुनर्जन्म न बनी। इधर ईश्वर

तो मरा, लेकिन उसकी मृत्यु के कारण आत्मा जगी नहीं, बल्कि आत्मा ने स्वच्छंदता का मार्ग लिया। आत्मा ने कहा, फिर ठीक है, अब कोई मालिक नहीं है; तो अब जो मौज हो, करें; तो अब तक जो-जो बंधन थे, निषेध थे, तोड़ें; तो अब तक जो-जो प्रतिबंध थे, उन्हें उखाड़ें; तो अब तक जो जो करने से रोके गए थे, अब कर ही लें।

जैसे घर में बाप मर जाए तो बेटे में दो घटनाएं घट सकती हैं – या तो वह नीत्से के रास्ते पे जा सकता है, या महावीर के। बाप मर जाए, तो निषेधात्मक तो यह होगा कि बाप ने जो-जो करने से रोका था – कि मत जाना शराबघर, मत जाना वेश्या के पास – अब कर लो। अब कोई रोकने वाला न रहा। दूसरी घटना भी घट सकती है कि अब तक तो बाप रोकने वाला था, अब वह भी न रहा, अब मुझे जागना पड़ेगा! अब जो काम बाप कर देता था, वह मुझे खुद ही करना पड़ेगा। तो अब तक तो डर था कि किसी दिन बाप की आज्ञा तोड़ के पहुंच भी जाता शराबघर, अब तो पहुंचने का कोई उपाय न रहा; अब तो मेरी ही आज्ञा है; मैं ही जाने वाला हूं। तो अनुशासन पैदा होगा। जब भी बाप मरता है तो दोनों घटनाएं सामने आती हैं। क्या तुम चुनोगे, तुम्हारा निर्णय है।

महावीर ने भी कहा कि कोई ईश्वर नहीं है। महावीर ने तो और भी गहरी बात कही है। नीत्से ने तो कहा, मर चुका है। महावीर ने कहा, कभी था ही नहीं, मरने का कोई सवाल नहीं। कल्पना थी।

लेकिन वहीं से उन्होंने सूत्र अपने हाथ में ले लिया। उन्होंने कहा, कोई परमात्मा नहीं है, इसलिए अब प्रत्येक को परमात्मा होना पड़ेगा। परमात्मा तो होना ही चाहिए, और कोई परमात्मा नहीं है। बिना परमात्मा के तो न चलेगा। तो अब जुम्मेवारी बड़ी है, गहन है, असीम है।

स्वतन्त्रता उत्तरदायित्व बनी।

इसलिए महावीर जैसा साधक खोजना बहुत मुश्किल है। क्योंकि कोई सहारा भी नहीं है, जिसके चरणों में बैठ के रो लेते; जिससे शिकायत-शिकवा कर लेते; जिससे कह देते कि तू क्यों नहीं उठा रहा है हमें, हम तो उठने को तैयार हैं, जिससे कह देते कि हम असहाय हैं, अब तू कुछ कर; हमारे किए कुछ भी नहीं होता, अब तू सम्हाल, अब कोई भी न रहा, अब बिलकुल अकेले है, अब नितांत एकांत है! इस एकांत में अपने को ही उठाना है। इस एकांत में अपने को ही चलाना है। अपनी दिशा खोजनी है।

नीत्से अनाथ हुआ, विक्षिप्त हुआ। महावीर अनाथ हो के स्वयं नाथ हो गए, स्वयं भगवान हो गए।

जैनों का 'भगवान' शब्द हिन्दुओं के 'भगवान' शब्द से अलग अर्थ रखता है। ध्यान रखना, शब्द तो हम एक ही उपयोग करते है, लेकिन जब हमारी भाव-दशाएं अलग होती है तो उनके अर्थ बदल जाते है। हिन्दुओं के भगवान का अर्थ होता है,

जिसने सृष्टि की, जिसने सब बनाया। जैनों के भगवान का अर्थ होता है, जिसने अपने को जाना। जो जान के परम महिमा से भर गया: भगवान। भाग्यवान हो गया जो! जिस पे भाग्य की अतुल वर्षा हुई! जिसने अपने भाग्य को खोज लिया। जिसने अपनी नियति को खोज लिया। नहीं कि सृष्टि उसने बनाई, बल्कि जो अपना स्रष्टा हो गया। बड़ा फर्क है। इसलिए हिंदू सदा पूछेगा कि भगवान क्यों कहते हो महावीर को, क्या इन्होंने दुनिया बनाई? वह बात ही नहीं समझ रहा है। वह अपनी धारणा बीच में ला रहा है।

महावीर कहते हैं, दुनिया तो कभी बनायी नहीं गई, कोई बनाने वाला नहीं है। क्योंकि बनाने की बात ही बचकानी है। भगवान बनाएगा तो फिर सवाल उठेगा, किसने उसे बनाया? यह तो बकवास कहीं रोकनी ही पड़ेगी। इसमें जाने में कुछ सार नहीं। है — अस्तित्व है — कोई स्रष्टा नहीं है। लेकिन अस्तित्व कोई अराजकता नही है; जैसा कि नीत्से ने कहा। कोई परमात्मा नहीं है, तो अस्तित्व अराजक है। कोई व्यवस्था नहीं है इसमें, तो फिर कर लो जो करना है। यह तो पागलपन है, कर लो जो करना है। यहा व्यर्थ समय मत गंवाओ, भोग लो जो भोगना है। दौड़ जाओ इच्छाओं मे स्वच्छंद हो कर!

देखो, एक ही घटना को दो अलग व्यक्ति कैसे अलग लेते है! महावीर ने कहा, यहां कोई व्यवस्थापक नही है, इसलिए सम्हलो, नहीं तो पागल हो जाओगे! जागो! यहां कोई सूत्रधार नही है, तुम ही अकेले हो! अगर न जागे तो खो जाओगे, भटक जाओगे, यह अटल अंधेरा है! ये गहन खाइयां हैं। यहां कोई मार्गदर्शक नही है, कोई मार्ग-द्रष्टा नही है। कोई आगे चल नहीं रहा है, तुम अकेले हो! किन्हीं झूठे सहारों पे भरोसा मत रखो! जिम्मेवारी अपने हाथ में लो! तुम ही अपने मालिक हो!

'अप्पा कत्ता विकत्ता य'— तुम ही हो कर्ता, तुम ही हो भोक्ता। न कोई करने वाला है, न कोई तुम्हें भुगा रहा है। परमात्मा कोई लीला नहीं कर रहा है, तुम ही कर रहे हो। यह खेल सब तुम्हारा है। अगर तुम दुखी हो तो तुम ही जिम्मेवार हो। अगर सुखी होना है तो तुम्हे सुख की नीवें रखनी पड़ेंगी। और अगर सुख-दुख दोनों के पार जाना है, तो तुम्हें ही जाना पड़ेगा। यहां कोई नाव नही है, जिसमें बैठ के तुम उतर जाओ। तैरना होगा! प्रत्येक को अलग-अलग तैरना होगा। यहां कोई किसी को कंधे पे बिठा के नहीं ले जा सकता है।

महावीर ने जो द्वार खोला, वह विमुक्ति का द्वार बना। नीत्से ने जो द्वार खोला, उसमें खुद ही पागल हो गया। द्वार एक ही था।

ध्यान रखना, जो भी मै तुमसे कह रहा हूं, अगर तुम ठीक से न समझे तो बड़ी चूक हो जाएगी।

सत्य के साथ संबंध बनाना आग के साथ खेलना है। अगर जरा भी चूके, कुछ

और का कुछ और समझ लिये, तो विक्षिप्तता हाथ आती है। विमुक्ति तो दूर, जो थोड़ी-बहुत समझ-बूझ थी, वह भी खो जाती है।

अभी इंसानों को मानूसे-जमीं होना है
महरो महताब के ऐवान नहीं दरकार अभी।

महावीर ने कहा, पृथ्वी से तो परिचित हो लो! जीवन के सत्य से तो परिचित हो लो! चाँद-तारों के सपने छोड़ो! यहां से परिचित हो लो। अपने तथ्य से परिचित हो लो। आकाशों की आकांक्षाएं छोड़ो! स्वर्ग-नर्कों के जाल छोड़ो!

अभी इसानो को मानूसे-जमी होना है
– पृथ्वी से परिचित होना है।
महरो महताब के ऐवान नहीं दरकार अभी।
– अभी इस उलझन मे मत उलझो कि चाँद-तारों में कौन निवास कर रहा है।

महावीर बड़े यथार्थवादी है, प्रैगमेटिक, व्यवहारवादी हैं। ठोस जमीन पर पैर रखने की उनकी आदत है। सपनो को हटा देते हैं, काट देते हैं।

तुम्हारा परमात्मा भी तुम्हारा सपना है। तुम्हारा परमात्मा भी तुम्हारा परिपूरक सपना है। जिंदगी में जो तुम नही कर पाते, वह तुम परमात्मा के बहाने सपने में करते हो। यहां तुम्हें जो नही मिलता, वह स्वर्ग में मांग लेते हो। लेकिन तुम्हारा परमात्मा – तुम्हारा परमात्मा है। और तुम गलत हो – तुम्हारा परमात्मा गलत होगा।

सोचो, विक्षिप्त आदमी का परमात्मा भी विक्षिप्त होगा! अंधे आदमी का परमात्मा भी अंधा होगा। क्योंकि जिसने खुद प्रकाश नही देखा, वह कल्पना भी नही कर सकता कि प्रकाश क्या है और प्रकाश को देखना क्या है और आंखें क्या हैं! बहरे आदमी का परमात्मा भी बहरा होगा। जिसने खुद ध्वनि नहीं सुनी कभी, वह कल्पना भी कैसे करेगा कि परमात्मा ध्वनि सुनता है, ध्वनि है क्या?

तुम्हारा परमात्मा तुम्हारी प्रतिछवि है। मंदिरों में तुमने मूर्तियां नही बनाई हैं, दर्पण लगाए हैं। उन दर्पणों में तुम अपने को ही देख के अपने ही चरणो में झुक जाते हो, घुटने टेक के अपने से ही बातचीत कर लेते हो। यह एकालाप है। यहां कोई उत्तर देने वाला भी नही है। तुम जो चाहते हो, वही अपने को मना लेते हो, वही उत्तर अपने को समझा लेते हो। और इस तरह जीवन के क्षण व्यर्थ जाते हैं।

महावीर कहते है, हाथ में लो बागडोर अपनी। बहुत भटक चुके दूसरों के द्वारो पर। बहुत हाथ फैलाए भिक्षा के, अब मालिक बनो! उत्तरदायित्व लो! यह बचकानापन छोड़ो। इस बचपन के बाहर आओ, प्रौढ बनो!

'आत्मा ही सुख-दुख का कर्ता है।'

इससे मन में बड़ी पीड़ा होती है। इसलिए तो महावीर को बहुत अनुयायी न मिले। मन हमारा मानता है कि सुख के तो हो भी सकते है कि हमने निर्माण किया

हो; लेकिन दुख, वह तो दूसरों ने किया है। जब भी तुम दुखी होते हो, तुम तत्क्षण आसपास कारण खोजने लगते हो : कौन दुखी कर रहा है ? पति दुखी होता है तो सोचता है, पत्नी दुखी कर रही है। बाप दुखी होता है तो सोचता है, बेटे दुखी कर रहे हैं। तुम जरूर कोई न कोई बहाना खोजने लगते हो : कौन दुखी कर रहा है ? क्योंकि दुख जब आ रहा है तो कोई-न-कोई दुखी कर रहा होगा। और यह तो तुम मान ही नहीं सकते कि मैं अपने को दुखी कर रहा हूं; क्योंकि यह बात तो बड़ी मूढ़ता की होगी। जब तुम दुखी नहीं होना चाहते तो क्यों कर रहे हो ? जरूर कोई और कर रहा है, मैं तो कभी दुखी होना ही नहीं चाहता ! इसलिए मैं क्यों करूंगा ! यह तो सीधा तर्क मालूम होता है। कौन दुखी होना चाहता है ! साफ है कि कोई और शरारत कर रहा है।

जब तुम्हें प्रत्यक्ष कोई कारण न मिल पाए तो तुम अप्रत्यक्ष कारण खोजते हो— समाज, अर्थव्यवस्था, राजनीति। अगर वहां भी कोई निमित्त न मिल पाए, तो भाग्य विडम्बना, विधि, भगवान। मगर कोई, तुम नहीं। यह मन का जाल है। मन तुम्हें एक सत्य देखने से अपरिचित रख रहा है कि तुम ही हो अपने दुख के कारण।

कोई मर गया — ऐसा उदाहरण लें—जिसमें साफ ही दूसरा दुख का कारण मालूम होता हो। पत्नी मर गई। अब तो साफ है कि पत्नी न मरती तो पति दुखी न होता ! इसलिए पत्नी मर के दुखी कर गई। यह भी कैसा वक्त चुना ! यह कोई समय था, अभी तो जवान थी ! अभी तो विवाह कर के, अभी तो फेरे रचा के लाये थे ! तो पति रो रहा है। इसको कैसे समझाओ कि दुख के कारण तुम ही हो ? वह तो कहेगा, यह तो बात साफ ही है कि पत्नी न मरती तो मैं सुखी था; पत्नी मर गई, इसलिए दुखी हूं।

महावीर कहते हैं, पत्नी का मरना तो निमित्त है। तुम मृत्यु को स्वीकार नहीं कर पाते, वहां से दुख आ रहा है। जीवन में मृत्यु तो होगी ही। जन्म है तो मौत है। जन्म के साथ ही मौत हो गई है। थोड़े समय की बात है। जन्म के साथ ही घटना घटनी शुरू हो गई। थोड़ा समय लगेगा और घटना पूरी हो जाएगी। मरना जन्म के साथ ही शुरू हो गया। तुम जन्म के साथ मृत्यु को स्वीकार नहीं कर पाते हो; वहां तुम्हारे अस्वीकार में दुख है।

फिर, महावीर कहेंगे, यह स्त्री तुम्हारी पत्नी न होती, और मर जाती, तो तुम दुखी होते ? तुम कहोगे, फिर मैं क्यों दुखी होता ? इतनी स्त्रियां मरती रहती हैं। ऐसे अगर हर स्त्री के लिए दुखी होने बैठूं तो फिर सुखी होने का मौका ही न आएगा; फिर तो कोई न कोई मरेगा, और रो रहे हैं; कोई न कोई मरेगा, रो रहे हैं। अर्थी तो रोज ही उठती है। कितनी स्त्रियां दुनिया में मरती हैं रोज ! अब इसका कहां हिसाब रखेंगे, नहीं तो मर गए।

नहीं, तो महावीर कहते हैं, यह तुम्हारी पत्नी, यह 'मेरी' है, उस 'मेरे' में से

दुख आ रहा है। यही पत्नी किसी और की होती, मर जाती, तुम्हें कुछ भी न होता, कोई रेखा भी न खिंचती। तो पत्नी 'मेरी' है, इस 'मेरे' में से दुख आ रहा है।

फिर, तुम्हारा खयाल है कि यह पत्नी तुम्हारे सुख का आधार थी। यह भी तुम्हारा खयाल है। क्योंकि सुखी आदमी को कोई सुख का आधार नहीं चाहिए। सुख भीतर से उमगता है। और दुखी आदमी कितने ही आधार खोज ले, सुखी नहीं हो पाता। तो पत्नी तो तुम्हारे सुख का आधार न थी। तुम्हारी कल्पना का, तुम्हारी भावना का, तुम्हारी वासना का– भला परदे की तरह काम किया हो पत्नी ने तुम्हारी अपनी वासना को फैलने के लिए; पत्नी ने तुम्हें मौका दिया हो कि फैला लो अपनी वासना को मेरे ऊपर – लेकिन तुम्हारे सुख और दुख, तुम्हारे भीतर से उमगते हैं।

आदमी को कठिनाई है यह बात मानने में। आदमी चाहता है, कोई और जुम्मेवार हो। कोई भी हो जुम्मेवार, कोई और जुम्मेवार हो। इतिहास हो जुम्मेवार, चलेगा।

पश्चिम में जितने विचार पैदा हुए, उन सब में कोई जुम्मेवार है।

ईसाइयत कहती है, अदम और ईव को शैतान ने भड़काया और शैतान ने कहा कि खा लो यह ज्ञान के वृक्ष का फल। उसने उकसाया। भोले-भाले अदम और ईव उसकी बातों में आ गए। शैतान जुम्मेवार है। लेकिन कोई शैतान से पूछो! शैतान तो अब तक कुछ भी बोला नहीं है। नहीं तो शैतान भी कुछ जुम्मेवारी बताएगा, किसी और पे टालेगा।

अदम कहता है, ईव ने फुसलाया मुझे। अब पत्नी है, इसकी बातों में कौन नहीं आ जाए, आ ही गए! ईव कहती है, मैं क्या करूं, शैतान सांप की शक्ल में आया और मुझे फुसलाया। सांप बेचारा मौन है; उसके पास जबान नहीं, नहीं तो वह भी कहता कि किसने मुझे फुसलाया, शैतान ने मुझे फुसलाया। लेकिन कहीं न कहीं बात सरकती जाती। और यह कहानी कहानी नहीं रही है, यह पूरे पश्चिम के इतिहास पे फैली है। हीगल कहता है, इतिहास जुम्मेवार है, जो भी दुख हो रहा है उसके लिए। मार्क्स कहता है, अर्थव्यवस्था जुम्मेवार है। फ्रायड कहता है, गलत संस्कार जुम्मेवार हैं। मां-बाप ने जो व्यवहार किया है बच्चों के साथ, वह जुम्मेवार है। लेकिन कोई-न-कोई जुम्मेवार है!

अभी पश्चिम का मनोविज्ञान इतना प्रौढ़ नहीं हुआ कि कह सके कि तुम जुम्मेवार हो। इसके लिए बड़ी हिम्मत चाहिए, बड़ी प्रौढ़ता चाहिए। ये बचकानी बातें कि कोई और जुम्मेवार है, अपने उत्तरदायित्व को टालने की बातें हैं।

महावीर, पतंजलि, बुद्ध इस प्रौढ़ता को उपलब्ध हुए कि उन्होंने कहा कि छोड़ो बकवास, तुम जुम्मेवार हो! और ये बहाने तुम जो खोजते हो दूसरों पे टालने के, इनसे कुछ राहत नहीं मिलती, इनसे सिर्फ धोखा पैदा होता है। इनसे ऐसा लगता

है, अब हम करें क्या; दूसरों ने किया है, हमारे किए क्या होगा ! निराशा पैदा होती है। गुलामी पैदा होती है। और एक महन हताशा पैदा होती है। अब करेंगे क्या ? अब इतिहास को बदलने का तो कोई उपाय नहीं। अब अर्थव्यवस्था तो आज बदलेगी नहीं, बदलने में बदलने वाले तो मर ही जाएंगे। जिन्होंने रूस में क्रांति लायी, वे तो मर चुके; और जो आज जिंदा हैं, वे तड़फ रहे हैं। वे परतंत्रता से दबे हैं। लेनिन सोच के मरा होगा कि हम बड़ा भारी काम कर के जा रहे हैं; लेकिन जो आज उनके बच्चे हैं, वे आज परतंत्रता से दबे हैं; वे स्वतंत्र होने के लिए छटपटाते हैं। सोल्जेनित्सिन से पूछो। कारागृहों में पड़े हैं।

लेनिन ने तो सोचा था कि बड़ा सुंदर समाज निर्मित होगा, लेकिन वह हुआ नहीं। वह कभी होने वाला नहीं, क्योंकि बुनियादी बात गलत है। दूसरा जुम्मेवार है, जिस शास्त्र का यह आधार है, वह शास्त्र गलत है।

फ्रायड ज्यादा ईमानदार है इस हिसाब से। फ्रायड ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में लिखा कि आदमी कभी सुखी नहीं हो सकता — हो ही नहीं सकता। यह असंभव है। क्योंकि इतने कारण हैं, आदमी के दुखी होने के, उन कारणों को कब बदला जा सकेगा, कौन बदलेगा, कैसे बदलेगा ? असंभव है। जाल बहुत बड़ा है, आदमी बहुत छोटा है।

फ्रायड की हताशा देखते हो — जीवन भर की चेष्टा, खोज के बाद जब कोई आदमी कहता है कि आदमी कभी सुखी न हो सकेगा, सुख सिर्फ कल्पना है, भुलावा है, आदमी दुखी ही रहेगा !

लेकिन महावीर, बुद्ध, पतंजलि कहते हैं : आदमी परम आनंद को उपलब्ध हो सकता है। पर उसके पहले एक बहुत जरूरी बात समझ लेनी जरूरी है — वह यह कि मैं जुम्मेवार हूं। टालो मत, हटाओ मत ! तथ्य को स्वीकार करो। क्योंकि अगर मैं जुम्मेवार हूं अपने दुख का, तो मेरे हाथ में बागडोर आ गई; अब मैं वे काम बंद कर दूं जिनसे दुख पैदा होता है; वे बीज बोना बंद कर दूं जिनसे कड़वे फल आते हैं, उस फसल को जला डालूं, निर्जरा करूं उन कर्मों की जिनके कारण मैं दुखी हो रहा हूं।

'आत्मा ही सुख-दुख का कर्ता है और विकर्ता, भोक्ता। सत्प्रवृत्ति स्थित आत्मा अपना ही मित्र है।'

महावीर कहते हैं, न तो तुम्हारा मित्र तुम्हारे बाहर है, न तुम्हारा शत्रु। जब तुम सत्प्रवृत्ति में हो ... क्या है सत्प्रवृत्ति ? ... जब तुम जागे हुए, शांत, आनंद-मग्न, निर्दोष भाव से ध्यानस्थ हो, सम्यक् हो, संतुलित हो, तब तुम सत्प्रवृत्ति में हो। तब तुम मित्र हो। दुष्प्रवृत्ति में तुम ही अपने शत्रु हो। कोई तुम्हारा शत्रु नहीं। इसलिए किसी और से मत लड़ना। लड़ना है तो अपने से। जीतना है तो

अपने को। बदलना है तो अपने को। होना है तो स्वयं में। सारा खेल तुम्हारे भीतर है।

'अविजित एक अपना आत्मा ही शत्रु है।'

अविजित – जो जीता नही गया। ऐसा अपना आत्मा ही शत्रु है।

एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इन्दियाणि य।

ते जिणित्तु जहानायं, विहरामि अहं मुणी।।

'अविजित कसाय और इन्द्रिया ही शत्रु हैं। हे मुने! मैं उन्हें जीत कर यथा-न्याय, धर्मानुसार विचरण करता हूं।'

महावीर कहते हैं, जब तक तुम्हारी इन्द्रियां तुम्हारे बस में नहीं, तुम्हें चलाती हैं और तुम उनके पीछे चलते हो, तब तक दुख होगा। होगा ही। अंधे का सहारा ले के जो चलेगा, वह गड्ढ में गिरेगा। इन्द्रियों के पास कोई आंख थोड़ी है। इन्द्रियो के पास कोई बोध थोड़ी है। तुम्हारी जीभ कहती है, खाए जाओ। जीभ के पास बोध थोड़ी है, सिर्फ स्वाद है। कब रुकना है, कितना खाना है, कब नहीं खाना है, कब बिना खाए गुजार देना है, कब पेट भर गया, कब पेट खाली है, कब जरूरत है, कब जरूरत नही है – जीभ कैसे कहेगी? जीभ के पास कोई बोध थोड़ी है। वह बोध तो तुम्हारे पास है। बोध को तो तुमने रख दिया है बांध के एक तरफ। जीभ की मान के चलते हो, उलझन होगी, अड़चन होगी।

जननेंद्रिय के पास कोई बोध थोड़ी है। जननेंद्रिय की उत्तेजना अगर तुम्हें वासना में ले जाती है, तो तुम अंधे का हाथ पकड़ के चल रहे हो। अंधों का हाथ पकड के चलने वाले गड्ढो में गिरेंगे।

सोचो! बोध तुम्हारे पास है। तो तुम घोड़े की मान के मत चलो। लगाम हाथ मे रखो। घोड़ा बुरा नहीं है, शुभ है – लगाम तुम्हारे हाथ में होनी चाहिए। लेकिन अक्सर, लोग इतनी झंझट नही लेते, क्योंकि घोड़े को सिखाना पडेगा।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन अपने गधे पे बैठ के कही जा रहा था। बड़े जोर से भागा जा रहा था। किसी ने पूछा, कहां जा रहे हो? उसने कहा, गधे से पूछो। क्योंकि मैंने तो यह आशा ही छोड़ दी कि इसको चलाना संभव है। झंझट खडी होती है। बीच बाजार में फजीहत होती है। कई दफे इसको चलाने की कोशिश कर चुका – गधा है। मै कहता हूं, बाएं चल, वह दाएं जा रहा है। बीच बाजार में भीड लग जाती है, आखिर में मुझे हारना पड़ता है। इससे मैंने फिर एक तर-कीब निकाल ली: यह जहा जाता है वही हम जाते हैं। अब कम से कम फजीहत तो नहीं होती। कोई यह तो नही कह सकता कि गधा मेरी मानता नहीं। हालांकि मै जानता हूं कि वह मानता नही है, वह अपनी तरफ से जाता है।

गधे की अपनी यात्रा है।

बहुत लोग ऐसी ही दशा में हैं – अधिक लोग। जहा इद्रियां जाती हैं, तुम चले

जाते हो; क्योंकि कौन फजीहत करे, कौन झगड़ा-झांसा करे! अगर इंद्रियों को वहां ले जाना है जहां तुम्हें जाना है, तो बड़ा संयम चाहिए पड़ेगा, बड़ा अनुशासन, बड़ा प्रशिक्षण। इंच-इंच इंद्रियां लड़ेंगी। क्योंकि कौन अपनी मालकियत इतनी आसानी से खोता है! इंद्रियां जन्मों-जन्मों तक मालिक रहीं। गधे ने जन्मों-जन्मों तक तुम्हारी यात्रा तय की है। आज अचानक तुम कहने लगे कि मेरी मान के चलो! गधा कहेगा, सोचो भी, क्या कह रहे हो? किससे कह रहे हो? होश है कुछ? जो सदा से होता आया है, वही होगा। जद्दोजहद होगी। गधा संघर्ष देगा। इंद्रियां लड़ेंगी। लेकिन अगर तुम इंद्रियों की मान के चलने लगे, इसलिए कि कौन संघर्ष करे, तो तुम्हारी आत्मा कभी पैदा न हो पाएगी।

इसलिए मैं कहता हूं, महावीर का मार्ग संघर्ष का, संकल्प का, योद्धा का। इसीलिए तो उनको हमने महावीर कहा। साधारण वीर भी नहीं कहा, महावीर कहा। यह उनका नाम नहीं है; यह तो लोगों ने उनके संघर्ष को देखा। उनके दुर्धर्ष संघर्ष को देखा। उनके योद्धा के भाव को देखा। देखा कि उन्होंने किसी चीज की कभी चिंता न की, संघर्ष कितना ही लंबा हो; लेकिन जब तक विजय निश्चित न होगी, तब तक वे रुके नहीं, तब तक वे लड़ते ही रहे।

और एक बार जब इंद्रियां तुम्हारे वश में आ जाती हैं, तो तुम्हारे जीवन में एक प्रसाद पैदा होता है, एक सौंदर्य पैदा होता है – मालिक का सौंदर्य, सम्राट का सौंदर्य। तभी तो हमने फकीरों को पूजा और सम्राटों की फिक्र छोड़ दी। कौन जानता है आज, महावीर के समय में कौन-कौन सम्राट थे? प्रसेनजित को कौन जानता है? बिम्बसार को कौन जानता है? अगर हम उनका नाम भी जानते हैं तो इसीलिए कि महावीर के जीवन में कहीं-कहीं उनका उल्लेख है। कौन फिक्र करता है उनकी? चूंकि बिम्बसार महावीर से मिलने आया था, इसलिए उसकी भी याद है; कि प्रसेनजित नमस्कार करने आया था, इसलिए उसकी भी याद है। जो नहीं आए, उनके तो नाम भी खो गए। क्या हुआ? फकीर इतने मूल्यवान कैसे हो गए? यह नंगा आदमी, जिसके पास कुछ भी न था – जरूर इसके पास कुछ रहा होगा कि सम्राट फीके हो गए। एक दुर्धर्ष बल था। इसने चुनौती स्वीकार की थी। यह हारा नहीं, इसने अपने पुरुषत्व को सिद्ध किया था। इसने अपनी मालकियत की घोषणा कर दी थी। कुछ भी हो जाए, इसने एक बात जारी रखी कि मालिक मैं हूं।

होश मालिक है। और होश के अनुसार सब चलना चाहिए। यह बिलकुल ठीक गणित है जीवन का।

अमीरे-दो जहां बन जा, असीरे खारो-खस कब तक
नई सूरत से तरतीबे-बिनाए-आशियां कर ले।

– दो दुनियाओं के तुम मालिक बन सकते हो।

असीरे – दो जहां बन जा, असीरे खारो-खस कब तक ?

– यह कांटों में, झाड़ियों में कब तक उलझे रहना ?

नई सूरत से तरतीबे-बिनाए-आशियां कर ले। लेकिन फिर तुम्हें एक नई दृष्टि और एक नई शैली खोजनी होगी – अपने घर को बनाने की। नई सूरत से तरतीबे-बिनाए-आशियां कर ले – फिर तुम्हें अपना नीड़ कुछ और ढंग से बनाना होगा। अभी तुमने जो बनाया है, वह गलत है। इसमें गुलाम मालिक हो गया है, मालिक गुलाम हो गया है। इसमें नौकर सिंहासन पर बैठ गए हैं, सम्राट सोया है। उसे पता ही नहीं कि क्या हो रहा है। सम्राट को जगाना होगा।

सम्राट यानी तुम्हारा विवेक। जैसे ही विवेक जगता है उसके साथ-साथ वैराग्य की व्यवस्था आती है। विवेक सो जाता है, उसके साथ-ही-साथ राग का अंधापन आता है। राग से मत लड़ो, विवेक को जगाओ! जैसे-जैसे विवेक जगेगा – असली लड़ाई वही है, विवेक को जगाने की।

मुल्ला नसरुद्दीन चोरों से डरता है। नए मकान, नए पड़ोस में रहने गया, तो एक कुत्ता खरीद लाया – बड़ा से बड़ा कुत्ता जो मिल सकता था, मजबूत से मजबूत। दुकानदार से पूछा कि 'यह काम आएगा?' उसने कहा, 'काम से ज्यादा ... देखते हो इसको! सम्हाल के रहना। यह खतरनाक है।' लेकिन जिस दिन कुत्ता खरीद के लाया, उसी रात चोरी हो गई। बड़ा परेशान हुआ। वापिस भागा हुआ दुकानदार के पास पहुंचा कि यह क्या मामला है! उसने कहा कि इसमें क्या मामला है, यह कुत्ता इतना बड़ा है, इसको जगाने के लिए एक छोटा कुत्ता भी चाहिए। यह सोया रहा, इसको चोर-वोर ... यह कोई छोटा-मोटा कुत्ता है! एक छोटा कुत्ता और खरीदो! वह घबड़ाहट में चीखेगा, चिल्लाएगा तो यह उठेगा, नहीं तो यह उठने वाला भी नहीं है।

वह तुम्हारे भीतर का जो मालिक है, कितने जन्मों से घर्राटे ले रहा है, सो रहा है! साधना कुछ भी नहीं है, छोटे-छोटे उपाय हैं जिनसे वह सोया हुआ मालिक जगने लगे। इस भांति अगर तुम साधना को देखोगे तो बड़े नए अर्थ खुलेंगे।

महावीर ने महीनों तक उपवास किए हैं। वह कुछ भी नहीं, वह छोटा कुत्ता खरीदना है। उपवास में जब तुम्हें भूख लगेगी, और तुम शरीर की न सुनोगे और शरीर कहेगा, भूख लगी, भूख लगी, भूख लगी, और तुम शरीर की न सुनोगे, तो भूख धीरे-धीरे शरीर से उतर के मन पे आएगी। फिर भी तुम न सुनोगे। मन चीखेगा, चिल्लाएगा, रोएगा, गिड़गिड़ाएगा, हजार उपाय करेगा; समझाएगा कि मर जाओगे; ऐसे भूखे रहेंगे तो क्या होगा तुम्हारा, यह शरीर जीर्ण-शीर्ण हुआ जाता है – तब भी तुम न सुनोगे तो भूख आत्मा तक पहुंच जाएगी। और जब भूख आत्मा तक पहुंचती है तो आत्मा जगती है। तुम शरीर को ही तृप्त कर देते हो, भूख मन तक ही नहीं पहुंच पाती; आत्मा तक पहुंचने का क्या सवाल है? यह

तो चुभाना है तीर का — उस सीमा तक जहां तुम्हारा असली मालिक सोया है।

तो महावीर खड़े ही खड़े साधना करते थे, बैठते नहीं थे, लेटते नहीं थे। क्योंकि वैसे ही नींद गहरी है और अब बैठ के और लेट के, क्या उसे और गहरी करनी है? तो महावीर खड़े-ही-खड़े साधना किये हैं, ताकि जागरण बना रहे। शरीर थक जाता है। एक घड़ी आती है, शरीर कहता है, अब बैठो, अब विश्राम करो! और महावीर कहते, 'छोड़ बकवास! हो गया बहुत विश्राम। अब नहीं करना विश्राम।' खड़े ही रहते, खड़े ही रहते, तब थकान मन में उतरती। मन कहता, अब यह बहुत हो गया, अब तो गिर जाओगे। महावीर कहते कि सुनना नहीं है। जब तक कि भीतर की चेतना खड़ी न हो जाए, वे नहीं सुनते। धीरे-धीरे थकान वहां तक पहुंच जाती है — उस गहरे तल तक कि आत्मा भी झिझक के खड़ी हो जाती है। क्योंकि यह तो घड़ी मरने की आ गई।

महावीर हजार तरह से मौत की घड़ी को अपने पास लाए, क्योंकि मौत की घड़ी ही जगा सकती है। जीवन तो जगा न पाया, जीवन ने तो खूब सुला दिया।

मौत का भी इलाज हो शायद,
जिंदगी का इलाज नहीं।

यह जिंदगी तो बहुत सुला गई। यह जिंदगी तो बहुत जिंदगी सिद्ध न हुई; साथी-संगी सिद्ध न हुई। यह तो मूर्च्छित कर गई, बेहोश कर गई। तो महावीर ने मौत का उपयोग किया — जगाने के लिए। भूखे, प्यासे — खड़े रहे।

एक गांव में...खड़े थे गांव के बाहर। मौन लिये हुए थे। एक गडरिया कह गया कि ये जरा मेरी गायों को देखते रहना, मैं अभी आया। वे तो कुछ बोलते न थे, इसलिए कुछ बोले नहीं। और वह जल्दी में था, इसलिए उसने कुछ फिक्र भी न की। उसने समझा: मौनं सम्मति लक्षणम्। खड़ा है फकीर, देख लेगा। वह लौट के आया, गायें तो सरक गईं, इधर-उधर हो गईं, जंगल में चली गईं। वह बड़ा नाराज हुआ। वह चिल्लाया कि क्या हुआ, मेरी गायें कहां गई? तुम खड़े-खड़े यहां क्या कर रहे हो? जरा रोक लेते, तुम्हारा क्या बिगड़ जाता? लेकिन उसने देखा, यह आदमी तो खड़ा ही है; यह तो बोलता ही नहीं; आंख भी नहीं झपकता। जैसे इसने सुना ही नहीं। उसने कहा, क्या बहरे हो? मगर वह तब भी कुछ न बोला। तो यह सोच के कि बहरा ही है, वह बेचारा भागा कि इससे फिजूल समय खराब करने में कोई सार नहीं है। पागल है, या बहरा है, या क्या मामला है! आंख भी नहीं झपकता! देखता ही चला जाता है। और देखता भी ऐसे है, जैसे देखता ही नहीं है। सुनता भी नहीं। हिलाया-डुलाया भी, लेकिन ओंठ न हिले। उसने यह भी न कहा कि मैं बहरा हूं।

वह भागा। खोज-खाज के जंगल में भटकता रहा, सांझ होते-होते लौटा तो देखा कि गायें आ के महावीर के पास बैठी हैं। अरे! उसने कहा, यह तो बड़ा चालबाज है। होशियार है। कहीं छिपा रखा था, अब भागने की तैयारी कर रहा था। देखता

था कि सूरज ढले, अंधेरा हो जाए – ले भागे। उसने कहा कि इसने तो बड़ी चालबाजी की। इसलिए बना हुआ खड़ा है। वह क्रोध में आ गया। उसने कहा, मैं देखता हूं, तेरा यह बहरापन नकली है। अब मैं तुझे असली बहरा बनाए देता हूं।

उसने दो लकड़ी की खूटियां दोनों कानों में ठोंक दीं। महावीर खड़े रहे, तब भी कुछ न बोले।

कहानी बडी प्रीतिकर है। अब इतनी प्रीतिकर कहानियां घटती नहीं, क्योंकि लोग काव्य की भाषा भूल गए हैं; गणित का गंदा हिसाब सीख गए हैं।

कहानी बड़ी महत्त्वपूर्ण है। इन्द्र घबड़ा गया। देवता घबड़ा गए। क्योंकि ऐसा देवपुरुष मुश्किल से होता है। वे भागे हुए आए और उन्होंने कहा 'आप हमें आज्ञा दें। आप बड़े असुरक्षित हैं। ऐसे तो कोई भी मार डालेगा। हम साथ रहेंगे। हम सुरक्षा रखेंगे। यह दुबारा नही होना चाहिए।'

महावीर बोलते तो नही थे, लेकिन यह तो अन्तर की बात है, बाहर से तो कुछ कहा नही था, न बाहर से कुछ सुना गया था। महावीर ने भीतर से कहा कि जो हुआ है, ठीक हुआ है। यह तो देखो कि मुझे कितनी जाग मिली है। तुम यही देख रहे हो कि कान में खीले ठोंक दिए। कान तो जाते ही, आज नहीं कल अर्थी पे चढते ही, जल ही जाते, टूट ही जाते, इनका क्या लेना-देना है! मिट्टी मिट्टी में मिलती। तुम यह तो देखो, कितनी जाग दे गया वह आदमी! जब वह खीले ठोक रहा था, तब शरीर ने पूरी चेष्टा की थी कि बोल, रोक. लेकिन उस समय मैं सयम मात्र रहा। मैंने कहा, 'क्या बोलना है? क्या रोकना है? जो मिटेगा वह मिट रहा है। जो कल मिटेगा, वह आज मिट रहा है। जो जलेगा अग्नि में उसको बचाना क्या है? कौन बचा पाया है? इधर कान में खीले ठुकने गए, वहा भीतर कोई जागने लगा। मैं शरीर से अलग हो गया। उसकी कृपा बडी है। वह बड़ी दया कर गया है। सहायता करनी हो, उसकी करो, क्योंकि वह मुझे जगा गया है – जो मुझसे नही हो पाता था, वह कर गया है।'

बडा दुर्धर्ष योद्धा का रूप है महावीर का। संघर्ष उनका सूत्र है।

'अविजित एक अपना आत्मा ही शत्रु है। अविजित कसाय और इंद्रियां ही शत्रु हैं। हे मुने! मैं उन्हें जीत कर यथान्याय विचरण करता हूं।'

यह वचन बडा बहुमूल्य है।

> एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इन्दियाणि य।
> ते जिणित्तु जहानाय, विहरामि अहं मुणी ॥

'उन्हें जीत कर मैं उस परम धर्म के अनुसार आचरण करता हूं।'

इससे बड़ी गलती होती है। क्योंकि अनुवाद या मूल भी गलत समझा जा सकता है। ...'यथान्याय' धर्मानुसार विचरण करता हूं... तो अनुयायियों ने समझा कि धर्म के अनुसार विचरण करने से, यथान्याय आदमी विजेता हो जाता है। लेकिन

महावीर बिलकुल उलटी बात कह रहे हैं। वे कह रहे हैं, 'हे मुने! मैं उन्हें जीत कर...।' जीतना पहले है। जागना पहले है। ...'यथान्याय धर्मानुसार आचरण करता हूं।' जाग गया हूं, अब धर्मानुसार आचरण हो रहा है। धर्म यानी स्वभाव। धर्म यानी विवेक जाग्रत, सुप्रतिष्ठित; तुम्हारी भीतर की ज्योति जलती हुई; तुम्हारा दीया बुझा हुआ नहीं, जलता हुआ; तुम्हारे प्राण चमकते हुए। फिर स्वभावतः आचरण धर्म का होता है। फिर तुम जो भी कहते हो वही नीति है। फिर तुम जो भी करते हो वही न्याय है। फिर तुम जो भी करते हो वही शुभ है।

ध्यान रखना, शुभ को साधने की चेष्टा नहीं की जा सकती। जागरण के साथ शुभ के फूल खिलते हैं।

एक ट्रेन में एक आदमी ने पूछा कि क्या मैं यहां सिगारेट पी सकता हूं। जिस रेलवे कर्मचारी से पूछा था, उसने कहा, 'जी नहीं। यहां सिगारेट पीना सख्त मना है।'

'तो फिर यह सिगरेट के टुकड़े किसके पड़े हैं?' उस आदमी ने कहा।

'यह उन लोगों के हैं जो इजाजत नहीं मांगते।'

यहां जो जिंदगी है, इस में अक्सर देखता हूं, लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, 'हम इमानदार हैं; फिर भी जीवन में कोई सुख नहीं, और बेईमान फल-फूल रहे है।' ये भी बेईमान हैं। मगर ये इजाजत माग कर फंस गए है। पीना तो ये भी चाहते थे। लेकिन इजाजन मांगने में उलझ गए। फिर जब 'नही' कह दिया गया तो ये हिम्मत न जुटा सके करने की। इन्होंने शास्त्रों के आदेश सुन लिये, शास्ताओं की आवाज सुन ली। इन्होंने मुनियों के वचन सुन लिये, सद्‌गुरुओं की बात सुन ली। पूछ बैठे। अब तोड़ें तो अपराध लगता है मन में; न तोड़ें तो पीड़ा होती है। और ये देखते है, दूसरे पीए जा रहे है। उन्होंने पूछने की ही फिक्र न की।

अगर तुम धार्मिक जीवन जी रहे हो, तो तुम्हारे मन में यह सवाल कभी भी न उठेगा कि अधार्मिक मजे में हैं और मैं दुख में हूं। अगर यह सवाल उठता है तो इसका अर्थ है कि तुम्हारा धार्मिक जीवन झूठा, झूठा, उच्छिष्ट, उधार, बासा। तुमने नियम पकड़े है, बोध नहीं पकड़ा; अन्यथा यह असंभव है कि धार्मिक आदमी और आनंद में न हो। मैं यह नही कह रहा हूं कि धार्मिक आदमी को महल मिल जाएंगे। मिल भी सकते है, न भी मिलें। मैं यह नही कह रहा हूं कि धार्मिक आदमी राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री हो जाएगा। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि उसके आसपास सोने-चांदी की वर्षा हो जाएगी। पर मैं यह कह रहा हूं कि धार्मिक आदमी के पास कुछ भी न हो तो भी जिनके पास सोने-चांदी की वर्षा हो रही है, उनसे वह ज्यादा आनंदित होगा। जो पदों पर हैं, उनसे वह ज्यादा प्रतिष्ठित होगा। जिनके पास सब है, उनसे ज्यादा होगा उसके पास, चाहे कुछ भी न हो। यह होना कुछ भीतरी है।

अगर तुम ईमानदार हो तो ईमानदारी काफी है आनंद। ईमानदार होने का मजा इतना है कि फिर कौन फिक्र करता है, ईमानदारी से कुछ और मिला कि नहीं। कुछ

और की फिक्र तो वही करता है जो ईमानदार नहीं है। यहां बेईमान भी अपने को ईमानदार समझते हैं। तुमने कभी कोई आदमी देखा जो तुमसे कहता हो कि मैं बेईमान हूं? कोई नही कहता।

एक अदालत में मजिस्ट्रेट ने एक चोर से पूछा कि तूने इस दुकान में रात में पांच बार प्रवेश किया, पूरी रात?

उसने कहा, 'क्या करूं मालिक! ईमानदार संगी-साथी मिलते ही नहीं। अकेले ...। जमाना ऐसा खराब हो गया है...!'

खटपट की आवाज से मुल्ला नसरुद्दीन की नींद उचट गई। सीढ़ियां उतर कर उसने देखा कि चोर रसोई घर का सामान बोरे में समेट रहा है। दरवाजा भेड़ कर उसने पीछे से ललकारा, 'सारा सामान यही रख दो, नही तो तुम्हारी खैरियत नही!' बोरे में चाय की छननी डाल कर चोर बोला, 'अब इतने बेईमान मत बनो सरकार! इसमें आधा माल तो आपके पड़ोसी का है।'

चोर भी ... 'इतने बेईमान मत बनो सरकार!' यहा सभी बेईमानो को ईमानदार होने का खयाल है। कसौटी यह है कि अगर तुम्हारी ईमानदारी सुख न लाए, जब मैं कहता हू, तुम्हारी ईमानदारी सुख न लाए, तो मेरा मतलब है: जब तुम्हारी ईमानदारी ही सुख न हो जाए। भाषा में तो हमें आगे-पीछे शब्द रखने पडते हैं, क्योंकि एक साथ सभी शब्द नही बोले जा सकते; लेकिन जीवन में ईनामदारी और सुख साथ-साथ घटता है। कहने में तो कहना पड़ेगा, ईमानदारी सुख लाती है। क्योंकि भाषा लाइन में जमानी पडती है, पंक्तिबद्ध, रेल के डब्बो की भांति, एक डब्बे के पीछे दूसरा डब्बा रखना पडता है। जीवन तो युगपत है, साइमल्टेनियस है।

इधर मैं बोल रहा हूं, उधर पक्षी गीत गा रहे हैं, इधर तुम सुन रहे हो, हवाए वृक्षों से घूम रही हैं—यह सब एक साथ हो रहा है। लेकिन अगर इसको भाषा मे रखना हो तो एक के पीछे दूसरे को रखना पडेगा, नही तो बडी गडमड हो जाएगी। फिर कुछ समझ में न आएगा। इसलिए कहते हैं कि ईमानदारी सुख लाती है। लेकिन वह कहने की बात है। ईमानदारी सुख है। ईमानदारी सुख है, इसमें भी तो सुख को पीछे रखना पड़ रहा है। ईनामदारी के इतना पीछे भी नहीं है। ईमानदारी में ही सुख है।

ईमानदारी का सुख उसके बाहर नही है। बेईमान का सुख उसके बाहर है। इसे समझ लो। कोई बेईमानी के लिए ही थोड़ी बेईमानी करता है; कुछ और पाने के लिए करता है। बेईमानी में खुद थोड़ी साध्य है, साधन है। आदमी चोरी भी करता है तो चोर होने के लिए थोड़ी; हत्या भी करता है तो हत्या होने के लिए थोड़े ही—कुछ और आकांक्षा है। बेईमान की आकांक्षा बेईमानी के बाहर है।

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, अगर तुम्हारे जीवन की साधना में तुम्हारे जीवन

का सुख समाविष्ट न हो तो तुम बेईमान हो, अधार्मिक हो। अगर तुम कहो कि ध्यान करने से क्या मिलेगा तो तुम बेईमान हो, अधार्मिक हो। अगर तुम कहो, प्रेम करने से क्या मिलेगा, तो तुम दुकानदार हो, बेईमान हो।

प्रेम 'मिलना' है — आगे-पीछे क्या ? प्रेम पर्याप्त है, कुछ और चाहिए नहीं।

तो जब महावीर कहते हैं, 'हे मुने ! मैं उन्हें जीत कर'... इन्द्रियों के ऊपर विवेक जाग गया है। इन्द्रियों की अंधेरी रात पर विवेक का सूरज उग आया है, सूर्यास्त समाप्त हुआ है, सूर्योदय हुआ है।

'मैं उन्हें जीत कर, धर्मानुसार यथान्याय आचरण करता हूं।' इससे ऐसा मत समझना कि महावीर सोच-सोच के आचरण करते हैं। हमें ऐसा ही लगता है। इससे सारा धर्म उलटा हो जाता है हमारी समझ में। एक अंधा आदमी टटोल-टटोल के दरवाजा खोजता है, कहां से बाहर जाऊं। आंख वाला आदमी निकल जाता है, सोचता थोड़ी है ! इतना भी नहीं सोचता कि दरवाजा कहां है। आंख है तो बस दरवाजा दिखाई पड़ता है। सोचता कौन है ! पूछता भी नहीं दरवाजा कहां है। निकल जाता है। टटोलता भी नहीं।

ते जिणित्तु जहानायं, विहरामि अहं मुणी।

—अब मैं विहार कर रहा हूं, परम आनंद में ! हे मुने ! जीत कर इन्द्रियों को, अब सुख ही सुख है। विहार ! अब आनंद ही आनंद है।

मौजे-सहबा निगाह थी अपनी
रक्से-मस्ती कलाम था अपना।

—अगर सूफियों की भाषा में इसको कहें, तो शराब की लहरें अब अपनी आंखों में हैं।

मौजे-सहबा निगाह थी अपनी !

—शराब की लहरें आंखें हो गयी हैं; या आंखें शराब की लहरें हो गई हैं।

रक्से-मस्ती कलाम था अपना।

—और अब नृत्य की मस्ती ही हमारे भीतर का गीत है, कलाम है, कविता है।

जिसका भी विवेक जागा, उसकी मस्ती जागी। जिसका विवेक जागा, उसका आनंद जागा। आनंद और मस्ती विवेक के अनुषंग हैं। ध्यान के साथ मस्ती वैसे ही आती है, जैसे तुम्हारे साथ तुम्हारी छाया आती है। मस्ती गौण है, जैसे छाया गौण है। तुम आ गए तो छाया भी आ गई। अगर मैं तुम्हें निमंत्रण देने जाऊं और कहूं कि आना, तो तुम्हारी छाया के लिए अलग से निमंत्रण नहीं देता। तुम्हारी छाया अपने से आती है। जो अपने से आती है, तुम्हारे आने के कारण आती है, वही छाया है। मस्ती छाया है।

'एक ओर से निवृत्ति और दूसरी ओर से प्रवृत्ति करना चाहिए। असंयम से निवृत्ति और संयम में प्रवृत्ति।'

छाया को बहुत लोगों ने धर्म समझ लिया है। वे छाया को लाने की कोशिश में लगे हैं। मूल की फिक्र ही भूल गई है। कोई उपवास कर रहा है और खयाल ही भूल गया है कि उपवास छाया है, विवेक मूल है। अगर विवेक को साधा तो उपवास घटेगा। घटता है। सधते-सधते विवेक के एक दिन ऐसी घड़ी आती है कि शरीर की याद ही भूल जाती है। ऐसी महा घड़ी आती है, इतना आनंद भीतर होता है कि कौन शरीर की याद करता है!

तुमने कभी खयाल किया, शरीर की याद दुख में ही आती है! दुख के कारण ही आती है। पैर में कांटा गडे तो पैर का पता चलता है। सिर में दर्द हो तो सिर का पता चलता है। सिरदर्द गया तो सिर भी गया। जब शरीर पूरा स्वस्थ होता है तो पता ही नही चलता। और जब भीतर महा आनद की घटना घटती है, जब आत्मा स्वस्थ होती है – जरा उसकी कल्पना तो करो! उसे कहना ही मुश्किल है। तो शरीर की याद भूल जाती है। न भूख का पता चलता है, न प्यास का पता चलता है – ऐसा रम जाता है चित्त, ऐसा ठहर जाता है। समय रुक जाता है। क्षेत्र भूल जाता है।

मयाने-कल्ब-ओ-नजर एक मुकाम है उसका
मुकाम? मरहला? जो भी कुछ है नाम उसका
जमाले ताबिशेरू र्गमिए खिराम नही
हजार ऐसी अदाए है जिनका नाम नही।

–वह एक ऐसी अदा है जिसका कोई नाम नहीं।
–ध्यान भी एक पडाव है, वह भी अंत नही।
मयाने-कल्ब-ओ-नजर एक मुकाम है उसका
–इन दोनों आंखों के बीच में एक पडाव है ध्यान का।
मुकाम? मरहला? जो भी कुछ है नाम उसका
–कोई भी नाम दो – पड़ाव कहो, मुकाम कहो।
जमाले ताबिशेरू र्गमिए खिराम नही
–लेकिन उसे प्रगट करने का उपाय नही है।
हजार ऐसी अदाएं है, जिनका नाम नही।

जिंदगी में ऐसी हजार अदाएं है, जिनके लिए कोई शब्द नही, जिनके लिए कोई नाम नही, जिनकी कोई अभिव्यक्ति नही हो सकती। बस इशारे, बस इशारे, इगित।

तो महावीर कहते हैं, 'एक ओर से निवृत्ति, दूसरी ओर से प्रवृत्ति करना चाहिए' यह बड़ा अनूठा सूत्र है। लोग है, जो कहते हैं, प्रवृत्ति करनी चाहिए। चारवाक है, कहते हैं, प्रवृत्ति करो, प्रवृत्ति ही सब कुछ है, निवृत्ति की बकवास में मत पड़ना। मौत आएगी, सब खो जाएगा, कुछ भी न बचेगा। भोग लो। आज जो है उसे भोग

लो। कुछ भी छोड़ो मत; क्योंकि जिसने छोड़ा वह व्यर्थ गया, उसने व्यर्थ समय गंवाया, तो चारवाक कहते हैं कि घी भी पीना पड़े उधार ले के तो पी लो। ऋणं धृत्वा ...! कोई फिक्र नहीं, ले लो ऋण से, क्योंकि कौन चुकाता है! कौन चुकाने के लिए बच जाता है! मौत सबको मिटा देती है; न कोई लेने वाला है, न कोई देने वाला है — सब हिसाब-किताब खत्म हो जाता है। सब हिसाब-किताब यहीं की बात-चीत है। न कोई कभी लौटता; इसलिए न कोई कोई पुण्य है, न कोई पाप। वे कहते हैं, प्रवृत्ति।

फिर दूसरी तरफ उनके विपरीत लोग हैं। वे कहते हैं, त्याग! त्याग करो। भोगो मत। फंस जाओगे। नर्क जाओगे।. छोड़ो, क्योंकि छोड़ने का मूल्य है परमात्मा की नजरों में। वे प्रवृत्ति के दुश्मन हैं। तो भोगी है चारवाक, फिर त्यागी हैं।

अब यह बड़े मजे की बात है कि अगर जैन मुनियों को आज समझा जाए तो वे महावीर के अनुयायी सिद्ध न होंगे। वे चारवाक के दुश्मन सिद्ध होते हैं, लेकिन महावीर के अनुयायी सिद्ध नही होते। वे चारवाक के विपरीत हैं, यह सच है; लेकिन महावीर के साथ नही है, यह भी सच है। वे कहते हैं, छोडो, छोड़ो, छोड़ना ही...। एक कहता है, भोगो, भोगो, भोगना ही...।

महावीर बड़े संतुलित है। वे कहते है, ' एक ओर से निवृत्ति, दूसरी ओर से प्रवृत्ति करना चाहिए। असंयम से निवृत्ति और संयम में प्रवृत्ति करनी चाहिए, वे कहते है. भोगो–संयम को भोगो! छोड़ो–असंयम को छोड़ो! भोगो प्रकाश को, छोडो अंधकार को। भोगो आत्मा को, छोड़ो शरीर को। भोगो विवेक को, वैराग्य को, बोध को, बुद्धत्व को! त्यागो मूर्च्छा को, मिथ्या दृष्टि को, असम्यक्त्व को। छोड़ो!

लेकिन ध्यान रहे, महावीर कहते है, निवृत्ति-प्रवृत्ति दोनों दो पंख की भांति हैं। पक्षी उड़ न पाएगा एक पंख से। भोगी भी गिर जाता है, त्यागी भी गिर जाता है। ऐसे भोगो कि त्याग भी बना रहे। ऐसे त्यागो कि भोग भी बना रहे। यह जीवन की परम कला है।

' एगओ विरइं कुज्जा, एगओ य पवत्तणं
असंजमे नियत्तिं च, संजमे य पवत्तणं। '

जीवन में जो भी तुम्हारे पास है, कुछ भी छोड़ने योग्य नहीं। उसका उपयोग करना है। पत्थर है, सीढ़ी बना लो। अनगढ़ पत्थर है, छैनी उठा लो, प्रतिमा बना लो। इसलिए तो मैं कहता हूं, कामवासना को ब्रह्मचर्य बना लो। क्रोध को करुणा बना लो। काटो मत। काटने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि जो तुमने काटा, तो तुम कभी पूरे न हो पाओगे। वह जो अंश तुमने काट दिया है, उतनी जगह सदा-सदा खाली रह जाएगी। वह छेद की तरह तुम्हारे व्यक्तित्व में रहेगी। तुम परिपूर्ण पुरुष न हो सकोगे।

कुछ भी मत छोड़ो। सबका उपयोग कर लो। बुद्धिमान वही है जो जीवन में जो मिला है, उन सभी उपकरणों का ठीक संयोजन कर लेता है। अभी सब असंबंधित पड़ा है, तार है, वीणा है, सब टूटा-फूटा पड़ा है। ठीक से जोड़ो। इसी टूटे-फूटे तार, इसी टूटी-फूटी वीणा से महासंगीत पैदा हो सकता है। कुछ भी छोड़ना नहीं है। तुम जैसे हो, इसका आयोजन बदलना है। चीजें गलत स्थानों पे रखी हैं; जहां होना चाहिए वहां नहीं है। जो जहां होना चाहिए वहां नहीं है। कुछ कहीं रखा है, कुछ कहीं रखा है। लेकिन इसमें से कुछ भी छोड़ने योग्य नहीं है। क्योंकि जो भी है, अकारण नहीं है। उसका कोई कारण है। तुम्हारी समझ में न आए तो जल्दी मत करना। तोड़ने, काटने, हटाने की भाषा गलत है। संयोजन की, साधन की भाषा सही है।

'पापकर्म के प्रवर्तक राग और द्वेष, ये दो भाव हैं। जो भिक्षु इनका सदा निषेध करता है, वह मंडल में नहीं रुकता, मुक्त हो जाता है।'

संसार तो नहीं रुकेगा। संसार तो चलता ही रहेगा। संसार तो चक्र है। महावीर उसे मंडल कहते हैं। वह तो घूमता रहेगा। गाड़ी का चाक घूमता रहेगा। जब तक गाड़ी में बैठे हुए वासना से भरे लोग हैं, गाड़ी चलती रहेगी। तुम इसे रोकने की कोशिश मत करो। तुम चाहो तो गाड़ी से नीचे उतर सकते हो। तुम्हें कोई रोकने वाला नहीं है।

अधिक लोग इस कोशिश में रहते हैं कि संसार बदल जाए। मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं कि 'इतना दुख है संसार में, आप क्यों नहीं कुछ करते?' दुख संसार में है। लोग दुख चाहते हैं। मैं क्या करूं? और अगर वे दुख चाहते हैं, तो यही उनका सुख होगा। उनके सुख में बाधा देने वाला मैं कौन हूं? यह गाड़ी पर जो लोग बैठे हैं, यह चाक जो लोग चला रहे हैं, वे चलाना चाहते हैं इसलिए चला रहे हैं। उन्हें उनके दुख से जबरदस्ती थोड़ी ही छुड़ाया जा सकता है। हां, जिनकी समझ में आ जाए वे गाड़ी से नीचे उतर जाएं।

रुकता नहीं किसी के लिए कारवाने वक्त
मंजिल है जुस्तजू की न कोई मुकाम है।

इस संसार की न तो कोई मंजिल है, न कोई मुकाम है। और यह जो कारवां है समय का, यह किसी के लिए रुकता नहीं। हां, तुम चाहो तो उतर सकते हो। तुम चाहो तो रुक सकते हो। तुम्हें यह रोकता भी नहीं। इस बात को खूब गहरे हृदय में बैठ जाने देना कि तुम संसार में तभी तक रुके हो जब तक तुम रुकना चाहते हो। एक क्षण को भी, क्षण के अंशमात्र को भी, संसार तुम्हें रोक नहीं सकता। तुम उतरने को राजी हो, तुम्हें कोई नहीं रोक सकता। और अगर तुम सोचते हो कोई और तुम्हें रोक रहा है, तो तुम अपने को धोखा दे रहे हो।

महावीर के समय की कथा है। एक युवक महावीर को सुन के घर लौटा। नया-

नया उसका विवाह हुआ था। स्नान करने बैठा। पुरानी कथा है, अब तो ऐसी बात होती नहीं। पत्नी उसके शरीर पर उबटन लगा रही थी। अब तो कौन पत्नी लगाती है! किसी तरह शरीर ही बचा के घर से निकल गए तो बहुत है। वह उबटन लगा रही थी, स्नान करवा रही थी! स्नान-गृह में वह बैठा था चौकी पर, पत्नी उबटन लगा रही थी, और पत्नी ने कहा, 'सुनो! तुम भी महावीर को सुनने गए। मेरा भाई भी कई वर्षों से सुनता है। और वह सोच रहा है संन्यास ले लेने की।' वह युवक हंसने लगा। उसने कहा, 'सोच रहा है? सोचने का संन्यास से क्या सम्बंध? लेना हो ले ले, न लेना हो न ले। सोचने से क्या मतलब? न लेना हो तो साफ समझे कि नहीं लेना है, लेना हो तो ले ले। कौन रोक रहा है?' उसकी पत्नी ने कहा कि 'क्या तुम सोचते हो, संन्यास इतनी आसान चीज है? आदमी को सोचना पड़ता है, विचार करना पड़ता है। तुम भी तो सुनने गए थे, क्या तुम संन्यास तत्क्षण ले सकते हो?'

वह युवक उठ के खड़ा हो गया। पत्नी ने कहा, 'कहां जाते हो? यह तो बात-चीत ही थी।' मगर वह तो दरवाजा खोल के बाहर हो गया। पत्नी ने कहा, 'नग्न हो, कहां जाते हो?' उसने कहा, 'खत्म हो गई बात। लेना है – ले लिया।' पत्नी ने कहा, 'अंदर आओ! यह मजाक की बात थी।'

'संन्यास तो,' उसने कहा, 'मजाक में भी ले लिया जाए तो बात खत्म हो गई।'

वह नग्न ही महावीर के पास पहुंचा। सारे गांव की भीड़ लग गई। महावीर से उसने कहा कि ऐसा-ऐसा हुआ। उस क्षण में मुझे लगा कि ठीक है, यह मैं क्या कह रहा हूं। दूसरे के लिए कह रहा हूं कि सोचे न, सोच तो मैं भी रहा था। मगर तत्क्षण मुझे बोध हुआ कि अगर लेना है तो ले लूं। कौन रोक रहा है? कौन रोक सकता है?

जब मरते वक्त तुम्हें कोई न रोक सकेगा, तो संन्यास के वक्त कोई तुम्हें कैसे रोक सकता है? जो उतरना चाहता है, उतर जाता है। लेकिन हम बड़े बेईमान हैं। हम हजार बहाने करते हैं। हमारी बेईमानी यह है कि हम यह भी नहीं मान सकते कि हम संन्यास नहीं लेना चाहते, कि वैराग्य नहीं चाहते। हम यह भी दिखावा करना चाहते हैं कि चाहते हैं, लेकिन क्या करें! किंतु-परंतु बहुत हैं।

'पापकर्म के प्रवर्तक राग और द्वेष ये दो भाव हैं। जो भिक्षु इनका निषेध करता है, वह मंडल संसार में नहीं रुकता, मुक्त हो जाता है।'

रागे दोसे य दो पावे, पावकम्म पवत्तणे
जे भिक्खू रुंभई निच्चं, से न अच्छइ मंडले।

बस दो बातें है – राग और द्वेष, इन दो के सहारे चक्र चलता है। राग, कि कुछ मेरा है। राग, कि कोई अपना है। राग, कि किसी से सुख मिलता है। इसे सम्हालूं,

बचाऊं, सुरक्षा करूं। द्वेष, कि कोई पराया है। द्वेष, कि कोई शत्रु है। द्वेष, कि किसी के कारण दुख मिलता है। द्वेष कि इसे नष्ट करूं, मिटाऊं, समाप्त करूं।

बाहर देखने वाली नजर हर चीज को राग और द्वेष में बदलती है।

तुमने कभी खयाल किया। राह से तुम गुजरते हो, किसी की तरफ राग से देखते हो, किसी कि तरफ द्वेष से देखते हो। कोई लगता है अपना है, प्यारा है; कोई लगता है पराया है, दुश्मन है। कोई लगता है आज अपना नहीं, तो कल अपना हो जाए, ऐसी आकांक्षा जगती है। कोई दूर है तो आकांक्षा होती है, पास आ जाए, गले लग जाए। और कोई पास भी खड़ा हो तो होता है, दूर हटे, विकर्षण पैदा होता है। तुम सारे संसार को राग-द्वेष में बांटते चलते हो। जाने-अनजाने। इसे जरा होश से देखना, तो तुम पाओगे प्रतिपल : अजनबी आदमी रास्ते पे आता है, तत्क्षण तुम निर्णय कर लेते हो भीतर, राग या द्वेष का; मित्र कि शत्रु; चाहत के योग्य कि नहीं; प्यारा लगता है कि दुश्मन; भला लगता है, पास आने योग्य कि दूर जाने योग्य। झलक भी मिली आदमी की राह पर और चाहे तुम्हें पता भी न चलता हो, तुमने भीतर निर्णय कर लिया – बड़ा सूक्ष्म राग का या द्वेष का। यह निर्णय ही तुम्हें संसार से बाधे रखता है।

एक कार गुजरी, गुजरते से ही एक झलक आंख पे पडी, तुमने तय कर लिया : ऐसी कार खरीदनी है कि नही खरीदनी है। लुभा गई मन को कि नही लुभा गई। कोई स्त्री पास से गुजरी। कोई बड़ा मकान दिखाई पड़ा। सुन्दर वस्त्र टगे दिखाई पडे, वस्त्र के भंडार में। राग-द्वेष पूरे वक्त, तुम निर्णय करते चलते हो।

यह राग-द्वेष की सतत चलती प्रक्रिया ही तुम्हारे चाक को चलाए रखती है। तुम मंडल में फंसे रहते हो। फिर क्या उपाय है?

एक तीसरा सूत्र है। बुद्ध ने उसे उपेक्षा कहा है। वह बिलकुल ठीक शब्द है। महावीर इसको विवेक कहते है, बिलकुल ठीक शब्द है। वे कहते है, न राग न द्वेष, उपेक्षा का भाव। न कोई मेरा है, न कोई पराया है। न कोई अपना है, न कोई दूसरा है। न कोई सुख देता है, न कोई दुख देता है। चौबीस घंटे भी एका दफा तुम उपेक्षा का प्रयोग करके देखो, चौबीस घंटे में कुछ हर्जा न हो जाएगा। चौबीस घंटे एक धारा भीतर बना के देखो कि कुछ भी सामने आएगा, तुम उपेक्षा का भाव रखोगे, न इस तरफ न उस तरफ, न पक्ष न विपक्ष, न शत्रु न मित्र – तुम बाटोगे न, देखते रहोगे खाली नजरों मे। चौबीस घंटे में ही तुम पाओगे : एक अपूर्व शांति! क्योंकि वह जो सतत क्रिया चाक को चला रही थी, वह चौबीस घंटे के लिए रुक गई तो चाक ठहर जाता है।

ऐसा ही समझो कि तुम साईकल चलाते हो, तो पैडल मारते ही रहते हो। दोनों तरफ पैडल लगे हैं। दोनों पैडल एक-दूसरे के विपरीत लगते है, मगर एक-दूसरे के विपरीत नही हैं; दोनों एक-दूसरे के सहयोगी हैं। एक पैडल ऊपर होता है तो दूसरा

नीचे होता है। एक बाएं होता है तो दूसरा दाएं तरफ है। दोनों दुश्मन मालूम पड़ते हैं, लेकिन दोनों गहरे संयोग में हैं, और दोनों के कारण ही चाक चल रहा है, गाड़ी चल रही है, साईकिल चल रही है। तुम पैडल रोक दो, तो हो सकता है, थोड़ी-बहुत दो-चार-दस कदम पुरानी गति के कारण साईकिल चल जाए, लेकिन सदा न चल पाएगी। पैडल रोकते ही गति क्षीण होने लगेगी, साईकिल लड़खड़ाने लगेगी। दो-चार-दस कदम के बाद तुम्हें साईकिल से नीचे उतरना पड़ेगा, नहीं तो साईकल तुम्हें नीचे उतार देगी।

राग और द्वेष पैडल की भांति हैं। विपरीत दिखाई पड़ते हैं, लेकिन उन दोनों के ही पैडल मार के तुम जीवन के चके को सम्हाले हुए हो। उपेक्षा को साधो! उपेक्षा का अर्थ है: पैडल मत मारो, बैठे रहो साईकिल पे, कोई हर्जा नहीं। कित्ती देर बैठोगे? इसलिए तो मैं कहता हूं अपने संन्यासियों को, भागने की कोई जरूरत नहीं, बैठे रहो जहां हो। साईकिल पे ही बैठना है, बैठे रहो। घर में रहना है, घर में रहो। दुकान पे रहना है, दुकान पे रहो। थोड़ा ध्यान सधने दो, साईकिल खुद ही गिराएगी तुम्हें, तुम्हे थोड़ी छोड़ना पड़ेगा। साईकल खुद ही छोड़ देगी। साईकिल कहेगी, अब बहुत हो गया, उतरो!

जरा उपेक्षा सधे, जरा विवेक सधे, जरा ध्यान सधे, जरा अमूर्च्छा थोड़ी उठे, कि जीवन में अपने-आप क्रांति घटित होनी शुरू हो जाती है। चौबीस घंटे शायद तुम्हे लगे, बहुत मुश्किल है, शायद डर भी लगे कि कहीं ऐसा न हो कि साईकिल से गिर ही जाएं, हाथ-पैर न टूट जाए; कहीं ऐसा न हो जाए कि फिर साईकिल पे दुबारा चढ़ ही न सके – तो ऐसा करो कि दिन में एक घंटा ही उपेक्षा साधो। लेकिन फिर एक घंटा परिपूर्ण उपेक्षा साधो। वह एक घंटा भी तुम्हें जीवन का दर्शन करा जाएगा। क्षण भर को भी अगर राग-द्वेष की बदलियां आखों में न घिरी हों, तो जीवन का सत्य दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। तब न कोई मित्र है, न कोई शत्रु है। तब तुम्हीं अपने मित्र हो, तुम्हीं अपने शत्रु हो। सत्प्रवृत्ति में मित्र हो, दुष्प्रवृत्ति में शत्रु।

खुदी क्या है राजे-दुरूने-हयात
समन्दर है एक बून्द पानी में बंद।
तुम्हारे भीतर समुंदर बंद है।

समुन्दर है एक बूंद पानी में बंद! लेकिन भीतर नज़र ही नहीं जाती तो समुंदर का दर्शन नहीं होता। तुम नाहक छोटे बने हो। तुम व्यर्थ ही अपने को क्षुद्र समझे हो। तुम अकारण ही हीन माने बैठे हो। और हीन मान लिया, इसलिए श्रेष्ठ बनने की कोशिश में लगे हो। थोड़ी आंख भीतर आए, थोड़ी उपेक्षा में दृष्टि सम्हले, थोड़ी तुम्हारी ज्योति यहां-वहां न कंपे, राग-द्वेष के झोंके न आएं, तो तुम अचानक पाओगे: समंदर है एक बूंद पानी में बंद। तब तुम विराट हो जाओगे, विशाल हो जाओगे। यही तुम्हारा परमात्म-भाव है।

किरण चांद में है शरर सग मे
यह बेरंग है डूब कर रंग में
खुद ही का नशेमन तिरे दिल में है
फलक जिस तरह आंख के तिल में है ।

— जैसे आंख के छोटे-से तिल में सारा आकाश समाया हुआ है...आंख खोलते हो आकाश को देखते हो, कितना विराट आकाश आंख के छोटे से तिल में समाया हुआ है।

खुदी का नशेमन तिरे दिल में है
फलक जिस तरह आंख के तिल में है।

वह परमात्मा का घर भीतर है । वह तुम छोटे मालूम पड़ते हो ..आख का तिल कितना छोटा है, सारे आकाश को समा लेता है ! तुम छोटे मालूम पड़ते हो, हो नही । जिस दिन तुम्हारा भीतर का विस्फोट होगा, उस दिन तुम जानोगे कि तुम सदा-सदा से अनंत को, निराकार को, निर्गुण को अपने भीतर लिये चलते थे ।

समंदर है एक बूंद पानी मे बद !

लेकिन इसकी खोज नियम, मर्यादा, अनुशासन, नीति, सदाचार, इतने से ही न होगी । इतने से तुम अच्छे आदमी बन जाओगे -- सभ्य । सभ्य शब्द बडा अच्छा है । इसका मतलब : सभा में बैठने योग्य । और कुछ खास मतलब नही है । जहा चार जन बैठे हो, वहा तुम बैठने योग्य हो जाओगे, सभ्य हो जाओगे । कोई तुम्हे दुतकारेगा नही कि हटो यहा से ! नीति-नियम सीख जाओगे, शिष्टाचार । लेकिन उस परमात्मा के जगत मे इतने से काफी नही है । सभा मे बैठने योग्य हो जाने से, तुम अपने मे बैठने योग्य न बनोगे । जो तुम्हे सभा मे बैठने योग्य बना दे, वह सभ्यता । जो तुम्हे अपने में बैठने योग्य बना दे, वही संस्कृति ।

शेख ! मकतब के तरीकों से कुशादे-दिल कहा
किस तरह किबरीज से रोशन हो बिजली का चिराग ।

शेख ! मकतब के तरीकों से कुशादे-दिल कहां -- यह उठने-बैठने के निमय और व्यवस्थाएं और आचरण की पद्धतियां, मकतब के तरीके, इनसे दिल का विकास नही होता, इनसे आत्मा नहीं बढ़ती, इनसे आत्मा नही फलती-फूलती ।

किस तरह किबरीज मे रोशन हो बिजली का चिराग ! यह तो ऐसे ही है, जैसे कोई तेल से या गंधक से बिजली के बल्ब को जलाने की कोशिश करे । कोई संबंध नही है । तेल भरना पड़ता है दीये में । गंधक के भी दीये बन सकते हैं । लेकिन बिजली की रोशनी को गंधक और तेल की कोई भी जरूरत नही है ।

किस तरह किबरीज से रोशन हो बिजली का चिराग ! मकतब के तरीकों से, जीवन के साधारण शिष्टाचार के नियमों को जिसने धर्म समझ लिया, वह ऐसे ही

है जैसे एक बिजली के बल्ब को तेल भर के जलाने की कोशिश कर रहा हो। वह व्यर्थ है।

जैसे ही थोड़ी-सी समझ को तुम उकसाओगे, वैसे ही तुम पाओगे : तुम्हारे भीतर की रोशनी न तो तेल चाहती है न गंधक; तुम्हारे भीतर की रोशनी ईंधन पर निर्भर नहीं है। तुम्हारे भीतर की रोशनी तुम्हारा स्वभाव है।

'अप्पा कत्ता विकत्ताय, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ॥'

आत्मा ही सुख-दुख का कर्ता, विकर्ता, सत्प्रवृत्ति में स्थित मित्र, दुष्प्रवृत्ति में स्थित अपना ही शत्रु है। इस सत्य को तुम हृदयंगम करो। इस सत्य को भीतर ले जाओ। इस सत्य का साक्षात्कार करो। इस सत्य को खोजो अपने जीवन में, क्या ऐसा ही नहीं है? अगर तुम्हें भी ऐसा दिखाई पड़ने लगे — मेरे कहने से नहीं, महावीर के वक्तव्य से नहीं, ऐसा तुम्हें भी दिखाई पड़ने लगे, ऐसी तुम्हारी दृष्टि हो जाए — तो तुम 'जिन' होने की यात्रा पर निकल जाओगे। और जैन कभी होना मत चाहना। होना ही है तो जिन होना। होना ही है तो महावीर होना। अनुयायी होने से क्या होगा? अनुकरण नहीं, आत्म-अनुसंधान। जैन बन के धोखा मत देना। जैन बनने का मतलब है : सीख गए ऊपर के मकतब के तरीके; आत्मा का नियम खिला नहीं; आत्मा के नियम में विहार न हुआ। ऊपर-ऊपर की व्यवस्था सीख गए — कैसे उठना, कैसे बैठना, कैसे मंदिर जाना, कैसे पूजा करना, क्रियाकांड, वह सब सीख गए तो जैन हो गए, हिंदू हो गए, मुसलमान हो गए, ईसाई हो गए। लेकिन जो होना था उससे बच गए।

और झूठे सिक्के बड़े खतरनाक होते हैं। क्योंकि झूठे सिक्कों का बोझ और उनकी खनन-खनन तुम्हें धोखा दे सकती है और ऐसा लग सकता है, असली सिक्के अपने पास हैं। असली सिक्का तो जिनत्व का है। जिन होना। अगर होना ही है तो जिन होना। कुछ और होने से राजी मत होना। सस्ते में अपने को मत बेच डालना। परमात्मा ही खरीदा जा सकता है इस जीवन से; इससे कम की आकांक्षा मत करना।

यह हो सकता है, क्योंकि यह हुआ है। यह हो सकता है, क्योंकि यह तुम जैसे ही मनुष्यों में हुआ है। तुम इसके मालिक हो। यह तुम्हारा स्वभाव सिद्ध अधिकार है।

आज इतना ही।

दिनांक २० मई, १९७६; श्री रजनीश आश्रम, पूना

प्रश्न-सार

लोग आपको धर्म-भ्रष्ट करने वाला कहते हैं, विरोध करते हैं। उनके साथ कैसे जिया जाए?

जो कुछ मुझे मिला है, वह कम नहीं — फिर भी आखिर क्या पा कर मुझे संतोष होगा?

कागा सब तन खाइयो, चुन-चुन खाइयो मांस।
दो नैना नहिं खाइयो, पिया मिलन की आस॥
आप न जानो गुरुदेव मेरे, मैं तुम्हें पुकारा करती हूं।
एक बार हृदय में छेद करो, वह क्षण मैं निहारा करती हूं॥

जिंदगी नाम है रवानी का

पहला प्रश्न : मेरे घर वाले तथा दूसरे भी आपको धर्म को भ्रष्ट करने वाला कहते हैं। लेकिन मेरा मन कहता है :

परवर्दिगार आलम तेरा ही है सहारा
तेरे बिना जहां में कोई नहीं हमारा।

किंतु यह तो मेरा मन हुआ। रहना तो उन लोगों के साथ है जो आपके विरोध में हैं। अतः कृपापूर्वक बताएं कि कैसे अपने सत्य की रक्षा करूं!

पहली बात, घर वाले ठीक ही कहते है। उनसे नाराज मत होना। जिसे वे धर्म कहते हैं, उसे निश्चित ही मैं भ्रष्ट करता हूं। उनकी बात में कुछ भूल नहीं है। उनकी बात सीधी-साफ है। मेरे और उनके धर्म की परिभाषा अलग है। अगर तुम्हारी भी परिभाषा उनके धर्म की परिभाषा से अलग हो जाए, तो तुम नाराज न होओगे, तुम परेशान भी न होओगे। तुम्हारी परेशानी यह है कि तुम्हारी भी धर्म की परिभाषा वही है जो उनकी परिभाषा है। इसलिए उनकी बात चोट करती है, उनकी बात से पीड़ा होती है। तुम सिद्ध करना चाहते हो कि मैं धर्म को नष्ट नहीं करता। तुम सिद्ध करना चाहते हो कि मैं तो धर्म को, धर्म-चक्र को प्रवर्तित करता हूं। लेकिन धर्म के संबंध में तुम्हारी भूल है।

उन्होंने जो धर्म जाना है, वह है परंपरा का धर्म। मैं परंपरा के विपरीत हूं। क्योंकि मैंने जो धर्म जाना है, वह है नितनूतन, प्रतिक्षण नया; शाश्वत, लेकिन फिर भी नितनूतन। उन्होंने जो धर्म जाना है, वह शास्त्र से आता है। मैंने जो धर्म जाना है, वह स्वयं से आता है।

निश्चित ही, शास्त्र भी कभी स्वयं से आये थे। लेकिन वह घटना घटे बहुत देर हो गई। उस घटना पे बहुत राख जम गई समय की। उस घटना पर बहुत व्याख्याओं की परतें जम गई है। जब कृष्ण ने बोला था तो उन्होंने तो अंतस्थल से बोला था। लेकिन गीता पर तो बहुत धूल जम गई। गीता के तो बहुत अर्थ हो गए। इतने अर्थ हो गए कि अनर्थ हो गया।

इसलिए जिन्होंने शास्त्र में धर्म को जाना है, उन्हें तो लगेगा, मैं नष्ट करता हूं। क्योंकि मैं कहता हूं, शास्त्र से मुक्त हो जाओ। मेरी गीता में उत्सुकता नहीं, कृष्ण के चैतन्य में उत्सुकता है। गीता तो उस चैतन्य से निकला हुआ उच्छिष्ठ है। अगर होना ही है कुछ तो कृष्ण ही हो जाओ। लेकिन कृष्ण होने के लिए तो भीतर जाना पड़े। कृष्ण होने के लिए तो जीवन दांव पे लगाना पड़े। कृष्ण होने के लिए तो मरना पड़े, तो ही पुनर्जन्म हो, तो ही नया जीवन हो। वह तो सौदा महंगा है।

लोग सस्ता धर्म चाहते हैं। वे चाहते हैं, बिना कुछ किए मिल जाए; बिना कुछ किए धार्मिक होने का सुख मिलने लगे; बिना कुछ किए अहंकार पर धर्म भी आभूषण की तरह सजावट दे, शृंगार दे।

मैं जो धर्म की बात कर रहा हूं, वह तुम्हें जलाएगा, गलाएगा, मिटाएगा। यह सिर्फ थोड़े-से लोगों के लिए हो सकती है।

भीड़ सदा ही शास्त्र को मानेगी। क्योंकि भीड़ इतनी हिम्मतवर भी नहीं है कि कह दे कि हम अधार्मिक है, कह दे कि हम नास्तिक है। और इतनी हिम्मतवर भी नहीं है कि सत्य को स्वयं खोजने की यात्रा पर निकले। भीड़ समझौतावादी है। भीड़ कहती है, हम धार्मिक हैं। लेकिन धर्म ऐसा मरा लाश की तरह कि उससे दुर्गंध उठती है, कोई सुगंध नहीं उठती।

निश्चित ही मैं कहता हूं, इस लाश को फेंको। क्योंकि इस लाश के कारण तुम मरे जा रहे हो। लाश के साथ रहोगे तो मरोगे। जो जिसके साथ रहेगा, वैसा हो जाता है। अगर तुम शास्त्र के साथ रहोगे तो धीरे-धीरे शब्द-ही-शब्द रह जाएगे, सत्य खो जाएगा। अगर तुम अतीत की परंपरा के पीछे ही चलते रहोगे, तुम्हारी आंखे धीरे-धीरे अंधी हो जाएंगी, उनके उपयोग की जरूरत ही न होगी। तुम सदा किसी के पीछे चलोगे। जो अपने पैरों से चलता है, जो खुद खोजता है, जो खुद खोजने का खतरा लेता है, उसकी आंखे सजग होती हैं। वह जागने लगता है। प्रति-पल चुनौती होती है। उसी चुनौती में आविष्कार होता है।

जो परिवार के लोग, पास-पड़ोस के लोग, तुम्हारे मित्र प्रियजन, जिसे धर्म कहते हैं, वह संप्रदाय है — हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन। मैं जिस धर्म की बात कर रहा हूं, वह न तो हिंदू है, न मुसलमान है, न इसाई है, न जैन है। मैं उस धर्म की बात कर रहा हूं, उस अंगारे की, जो बुझ के कभी ईसाई हो गया, बुझ के कभी हिंदू हो गया, बुझ के कभी जैन हो गया। लेकिन ये बुझे हुए अंगारे हैं, राख के ढेर हैं। मैं उस धर्म की बात कर रहा हूं, जो जीवंत है। लेकिन जीते हुए अंगारे को हाथ पे लेना, जीते हुए अंगारे को हृदय पे लेना तो थोड़े-से दुस्साहसियों का काम है। भीड़ वैसा न कर सकेगी। तुम भीड़ से वैसी अपेक्षा भी न करना।

वे ठीक ही कहते हैं। जब वे ऐसा कहते हैं तो वे अपनी रक्षा कर रहे हैं। तुम्हारे कारण खतरा पैदा हो गया। तुम्हारे कारण उनके जीवन में पहली दफा खलल

पड़ा। तुम्हारे कारण तरंगें पैदा हुई हैं, उन्हें सोचने को मजबूर होना पड़ा है। वे सब तरह से झंझट करेंगे। वे सब तरह से तुम्हें गलत सिद्ध करने की कोशिश करेंगे। तुम्हें गलत सिद्ध करने में उनकी उत्सुकता नहीं है; उनकी उत्सुकता यह है कि 'हमारी सुरक्षा तो मत छीनो। हम तो अब तक सोचते थे कि शास्त्र में धर्म है, तुम कहते हो नहीं है, तो तुम हमारे पैर के नीचे की भूमि खींचे ले रहे हो। हमारा क्या होगा?'

जब लोग विरोध करते है तो विरोध में उनका रस नहीं है, आत्मरक्षा कर रहे हैं वे। तुम उन पे दया करना। उनका आक्रमण, उनकी आत्मरक्षा का उपाय है। वे कहेंगे, यह व्यक्ति धर्म भ्रष्ट करता है। ऐसा कहेंगे, ऐसा मानेंगे, तो मेरे पास आने से बच सकेंगे। ऐसा न कहेंगे, न मानेंगे, तो फिर किसी दिन मेरे पास आना पड़े। वह सौदा करने की अभी उनकी तैयारी नहीं है।

तो पहली तो बात, वे ठीक ही कहते है। मैंने तुम्हें धर्म की नई परिभाषा देनी शुरू की है। तुम उसे समझो। मैं तुम्हें हिन्दू नहीं बना रहा हूं, मुसलमान नहीं बना रहा हूं, ईसाई नहीं बना रहा हूं – मैं तुम्हें सिर्फ धार्मिक बना रहा हूं। मैं तुम्हें कोई मंदिर, मस्जिद नहीं दे रहा हूं। मैं तुम्हें आत्म-रूपांतरण की प्रक्रिया दे रहा हूं। मैं तुम्हें परमात्मा से सीधा जोड़ना चाहता हूं। बीच में कोई मध्यस्थ नहीं दे रहा हूं। क्योंकि मैं देखता हूं कि मध्यस्थ पहुंचाने वाले तो सिद्ध नहीं होते, रोकने वाले सिद्ध हो जाते है। जिनको तुम बीच में ले लेते हो, वे ही दीवारें बन जाते है।

मैं तुम्हे ज्ञानी नहीं बना रहा हूं, क्योंकि सब ज्ञान अहंकार को भर देता है। मैं तुम्हें त्यागी नहीं बना रहा हूं, क्योंकि त्यागी भी बड़े सूक्ष्म अहंकार को जन्माता है। मैं तुम्हे सरल, सीधा, साफ, प्रमाणिक बना रहा हूं। मैं तुमसे कह रहा हूं, आदमी हो जाना काफी है। अगर तुम आदमी ही हो जाओ तो परमात्मा आ जाए। इतना काफी है कि तुम सरल हो जाओ, सीधे-साफ हो जाओ। तुम, जीवन जैसा तुम्हें मिला है, उसे अंगीकार कर लो। और जीवन तुम्हे जो अनुभव देने के लिए द्वार खोला है, उन अनुभवों से गुजर जाओ, क्योंकि उससे बड़ा कोई और विश्वविद्यालय नहीं है।

सबसे बड़ा विश्वविद्यालय अनुभव है
पर इसकी देनी पड़ती है फीस बड़ी।

लोग सस्ता अनुभव चाहते हैं, उधार चाहते हैं, कोई दे दे, खुद न लेना पड़े, खुद न गुजरना पड़े आग से। लेकिन न तो तुम्हारे लिए कोई जी सकता है, न तुम्हारे लिए कोई प्रेम कर सकता है, न तुम्हारी जगह कोई मर सकता है–तो तुम्हारी जगह कोई सत्य का अनुभव कैसे ले सकता है?

निजी है जीवन में जो भी श्रेष्ठ है। सम्प्रदाय का अर्थ होता है: भीड़। सम्प्रदाय का अर्थ होता है: संगठन। परमात्मा से भीड़ का और संगठन का कुछ लेना-

देना नहीं। परमात्मा से संबंध हमारा निजी है, वैयक्तिक है। एक-एक जाता है उसकी तरफ, अकेला-अकेला जाना है। और जब भी कोई जाता है तो भीड़ को छोड़ के जाना पड़ता है; क्योंकि भीड़ चलती है राजपथ पर, चौड़े सीमेन्ट-पटे पथ पर, सुरक्षित। और परमात्मा बड़ा जंगली है। परमात्मा अभी भी सभ्य नहीं हुआ, सौभाग्य है कि सभ्य नहीं हुआ। परमात्मा अभी भी सरल और प्राकृतिक है। तो जिसे परमात्मा को खोजना है उसे सरल और प्राकृतिक होना पड़ता है। उसे उतरना पड़ता है राजपथ से, अपनी पगडंडी खोजनी पड़ती है झाड़-झंखाड़ में, कांटों-भरे रास्ते पर। न कोई मार्गदर्शक, न कोई हाथ में नक्शा, न कोई किताब – अकेले, सिर्फ जीवन पर भरोसा!

मैं तुम्हें जीवन पर भरोसा दे रहा हूं, और सारे भरोसे छीन रहा हूं। तुम्हारे और सारे भरोसों ने तुम्हें नपुंसक बना दिया है। तुम्हारा आत्मविश्वास खो गया है। जीवन पे तुम्हारी श्रद्धा खो गई है।

मैं कहता हूं, एक ही श्रद्धा करने योग्य है और वह जीवन की श्रद्धा है। तुम यह मान के चलो कि जिसने तुम्हें जन्माया है, जो तुम्हारे भीतर जन्मा है, वह तुम्हें मंजिल की तरफ भी ले जाएगा। तुम सुनो उसकी, गुनो उसकी। डरो मत। भीड़ को मत पकड़ो। जो तुम्हें यहां तक ले आया है, वह वहां भी पहुंचा देगा। लेकिन डर के कारण हम भीड़ से चिपटते हैं। अगर तुम हिन्दू नहीं हो, जैन नहीं हो, मुसलमान नहीं हो तो तुम्हें डर लगेगा, तुम हो कौन! कोई सहारा चाहिए, कोई नाम-पट चाहिए, कोई व्याख्या-परिभाषा चाहिए। हिन्दू होने से लगता है, मैं कुछ हूं। मुसलमान होने से लगता है, मैं कुछ हूं। शूद्र, ब्राह्मण, क्षत्रिय होने से लगता है, मैं कुछ हूं। त्याग किया, मंदिर गए, पूजा की – लगता है, मैं कुछ हूं।

मैं तुम्हें यहां सिखा रहा हूं कि तुम कुछ भी नहीं हो, परमात्मा है। तुम हो ही नहीं, तुम जगह दो। तुम जगह खाली करो। तुम सिंहासन पर बहुत बैठ चुके हो, उतरो।

तो मेरी पुकार तो केवल उनके लिए है, जो अति दुस्साहसी होंगे। धर्म आत्यंतिक साहस है – कमजोरों का रास्ता नहीं। इसलिए कमजोर धर्म के नाम पर भी राजनीति चलाते हैं। हिन्दू हैं, मुसलमान हैं, जैन हैं, ईसाई हैं, ये सब राजनीतियां हैं। नाम धर्म के हैं; पताकाएं धर्म की हैं – भीतर राजनीति है। चर्च हैं, मन्दिर हैं, पुजारी हैं, पंडे-पुरोहित हैं – बाने धर्म की हैं, भीतर अगर थोड़ा गहरे उतरोगे, राजनीति पाओगे। संसार की दौड़ है, पद की, प्रतिष्ठा की, सम्पदा की, साम्राज्य की। ईसाइयत चाहती है, सारे संसार पे छा जाए। परमात्मा पाने में उतना रस नहीं है, जितना संसार पे छाने में रस है। इस्लाम चाहता है, सारी दुनिया को मुसलमान बना ले। तलवार के बल तो तलवार के बल सही। चाहे काटना पड़ें लोग, लेकिन उनके हित में उन्हें काटना ही पड़ेगा! जलाने पड़ें गांव, बस्तियां उजाड़नी पड़ें, लेकिन आदमी को मुसलमान बनाना ही पड़ेगा!

यह क्या पागलपन है ? आदमी आदमी होने से पर्याप्त है । उसे हिंदू और मुसलमान और ईसाई बनाने को कोई जरूरत नहीं है । लेकिन सब राजनीतियां हैं ।

इधर हिंदू परेशान रहते हैं । मेरे पास आ जाते हैं लोग । वे कहते हैं, ' आप कुछ करिए ! ईसाई मिशनरी हिंदुओं को ईसाई बना रहे हैं । ' मैं उनसे कहता हूं, अगर वे जितने अच्छे आदमी पहले थे उससे अच्छे आदमी ईसाई हो के हो रहे हैं, तो क्या हर्जा है ? हां, अगर जैसे पहले थे, उससे बुरे हो रहे हैं तो कुछ करें । अगर वे वैसे के वैसे ही रह रहे हैं, जैसे हिंदू थे वैसे इसाई हो के रहेंगे, तो क्या चिंता है ? होने दो ! इससे क्या फर्क पड़ता है ?

नहीं, लेकिन वे कहते हैं, फर्क पड़ता है, हमारी संख्या कम होती जाती है । संख्या कम होती है तो राजनीति में बल कम होता चला जाता है । संख्या कम होती है तो मत कम हो जाते हैं । अगर ऐसा ही होता रहा तो ईसाइयों का राज्य हो जाएगा ।

गौर से देखो तो धर्म के भीतर तुम राजनीति छुपी पाओगे । हिंदू कहता है, हिंदू धर्म को बचाना है । धर्म से कुछ लेना-देना नहीं – हिंदू राजनीति को बचाना है ! ईसाई कहता है, ईसाइयत को फैलाना है । ईसाइयत से क्या लेना-देना है ? ईसा से क्या ईसाइयत का संबंध रहा है ? वह यह कह रहा है, अपनी राजनीति को फैलाना है, अपने साम्राज्य को, शक्ति को फैलाना है । कोई भी बहाना हो, आदमी राजनीति में डूबा है ।

ध्यान रखना, जहां तुम्हारा भीड़ में रस हुआ, वहां राजनीति आई । तुम अपने में रस लो । धर्म नितांत वैयक्तिक घटना है । परमात्मा घटेगा तुम्हारे अंतरतम में, तुम्हारे एकांत में । किसी को कानोकान खबर भी न होगी । तुम्हारी पत्नी भी पास होगी, उसे भी पता न चलेगा । तुम्हारे बेटे को पता न चलेगा, जो तुम्हारा ही खून, हड्डी, मांस का हिस्सा है ।

धर्म जब घटता है तो नितांत वैयक्तिक है । राजनीति सामूहिक है । जहां धर्म समूह बनता है, वहां राजनीति हो जाती है । मेरी राजनीति में कोई उत्सुकता नहीं । मेरी उत्सुकता व्यक्तियों में है, समूहों में नहीं ।

यहां भी तुम बैठे हो, तो मैं एक-एक से बात कर रहा हूं, समूह से नहीं । मेरी नजर तुम पर है – एक-एक पर । तुम्हारी भीड़ से मेरा कुछ लेना-देना नहीं है ।

एक मित्र ने पूछा है कि ' सत्यसाईंबाबा की सभा में हजारों लोग होते हैं । पांडूरंग महाराज की सभा में हजारों लोग होते हैं । डोंगरे जी महाराज की सभा में हजारों लोग होते हैं । आपकी सभा में थोड़े-से लोग क्यों होते हैं ? '

मैं आश्चर्यचकित होता हूं कि इतने भी क्यों हैं ! इतने भी होने नहीं चाहिए हिसाब से । जो मैं कह रहा हूं वह इतनों को भी पट जाता है, यह भी आश्चर्य की बात है । और ऐसा नहीं है कि भीड़ मेरे पास नहीं थी । भीड़ मेरे पास भी थी । मैंने सारे रास्ते उसके लिए बन्द कर दिए । वे हजारों लोग मेरे पास भी थे । लेकिन

मैंने पाया, वह हजारों लोगों का मनोरंजन होगा। उनके जीवन में कोई क्रांति की आकांक्षा न थी। जलसा था, तमाशा था। क्रांति की आकांक्षा भीड़ में नहीं है। भीड़ को मैंने छोड़ा। अब तो हर तरह के मैंने उपाय किए हैं कि भीड़ का आदमी पहुंच ही न पाए। सब तरह के द्वार-दरवाजे बिठा दिए कि भीड़ को आने ही न दिया जाए। वे ही थोड़े-से लोग जो सच में रूपातरित होना चाहते हैं, मेरे पास तक पहुंच पाएं। अन्यों में मेरा रस नहीं है।

इसलिए इतने तुम हो यहां, यह चमत्कार है। तुम गणित के सब नियमों को तोड़ के यहां हो।

भीड़ को इकट्ठा कर लेने से सस्ता कोई काम दुनिया में और है? भीड़ की मूढ़ता को समझो। जहा भीड़ है वहां एक बात पक्की हो जाती है कि कुछ गलत चल रहा होगा। ठीक के साथ तो भीड़ हो ही नही पाती। इतने लोग कहां कि जहा ठीक चलता हो वहां भीड़ हो जाए? इतने आदमी कहां? नाममात्र के आदमी हैं। रास्ते पे दो आदमी लड़ रहे हों तो भीड़ इकट्ठी हो जाती है। एक-दूसरे को गाली-गुफ्ता कर रहे हो तो भीड़ इकट्ठी हो जाती है। हजार जरूरी काम छोड़ के वहां खड़े हो जाते हैं। इस भीड़ को इकट्ठा करके भी क्या होगा?

लेकिन राजनीतिज्ञ इसी भीड़ में उत्सुक है। और जिन्हे तुम धर्मगुरु कहते हो, वे भी इसी भीड़ मे उत्सुक हैं; क्योंकि भीड़ में बल है। जितनी बड़ी भीड़ तुम्हारे पास इकट्ठी होती है, उतने तुम बलशाली हो जाते हो। लेकिन बलशाली होने की आकांक्षा तो अहंकार की ही यात्रा है।

निर्बल के बल राम। मै तो तुम्हें सिखाता हूं: निर्बल हो जाओ। कोई ताकत तुम्हारे पास न हो, न पद की, न धन की, न मत की। कोई सहारा तुम्हारे पास न हो, तुम बिलकुल बे-सहारे हो जाओ। जब तुम बिलकुल बे-सहारे हो तब तुम्हें परमात्मा का सहारा मिलता है। जब तक तुम्हारा अपना कोई सहारा है, परमात्मा को सहारा देने की जरूरत भी नही है।

सुना है मैंने, कृष्ण भोजन को बैठे है वैकुण्ठ में। अचानक बीच थाली से उठ पड़े। भागे द्वार की तरफ। रुकमणि ने कहा, 'कहां जाते हैं?' लेकिन इतनी जल्दी मे थे, जैसे घर में आग लग गई हो, कि उत्तर भी न दिया; लेकिन फिर द्वार पर रुक गए, वापिस लौट आए। कुछ उदास मालूम पड़े। रुकमणि ने पूछा, 'क्या हुआ? कुछ समझ में न पड़ा। अचानक भागे। कौर भी जो हाथ में लिया था, पूरा न लिया, उसे भी छोड़ दिया। मैंने पूछा तो जवाब न दिया। फिर लौट क्यों आए?'

कृष्ण ने कहा, 'मेरा एक प्यारा एक राजधानी से गुजर रहा है। मेरा एक फकीर एकतारा बजाता, गीत गाता। लोग उस पे पत्थर फेंक रहे है। लहूलुहान, खून उसके माथे से बह रहा है। लेकिन उसका गीत बंद नही होता। वह कृष्ण और कृष्ण की धुन लगाए जाता है। जाना जरूरी हो गया। इतना असहाय, उत्तर भी

नहीं देता ! पत्थर भी नहीं उठाता । वीणा भी बजे जा रही है । वह गीत भी गुनगुनाए जा रहा है, खून भी बहा जा रहा है। जिसने इतना मुझ पे छोड़ा, मैं बैठ के भोजन करूं ? तो भागा ।'

रुकमणि ने कहा, ' ठीक ! यह समझ में आता है । यह गणित साफ है । फिर लौट क्यों आए ? ' कृष्ण ने कहा, ' जाने की जरूरत न रही । जब तक मैं द्वार तक पहुंचा, उसने एकतारा तो फेंक दिया है, पत्थर उठा लिया। अब वह खुद ही उत्तर दे रहा है; अब मुझे कुछ उत्तर देने की जरूरत न रही।'

धार्मिक व्यक्ति अपने को असहाय करता जाता है । असहाय हो जाने में ही उसकी पूजा, उसकी प्रार्थना है। वह धीरे-धीरे अपने सब सहारे तोड़ता जाता है। वह अपने को एक ऐसे सागर में छोड़ देता है, एक दिन न नाव, न कोई कूल न कोई किनारा ! उस घड़ी में ही परम आलंबन मिलता है। उस घड़ी में ही प्रभु का हाथ तुम्हारी तरफ आता है । उसका अर्थ यह हुआ ... जब तुमने सब अपने सहारे छोड़ दिए, उसका अर्थ यह हुआ कि अब तुम्हें भरोसा आया, अब तुम्हें श्रद्धा हुई । इसके पहले तुम्हारी श्रद्धा अपनी चीजों पे थी । धन पे थी, पद पे थी, मत पर थी, भीड़ पर थी, राज पर थी । तुम्हारी कोई श्रद्धा और थी । लेकिन जिस दिन तुमने अपनी और सारी श्रद्धाएं छोड़ दी, उसी दिन उस परमशून्य में, उस श्रद्धा का जन्म होता है जिसको धर्म कहें । उस दिन परमात्मा के सिवाय तुम्हारा कोई सहारा न रहा। उस दिन उसी घड़ी में, वह महाक्रांति घटती है । उसी घड़ी में तुम उठा लिये जाते हो । उसी घड़ी में तुम्हारे भीतर जो कूड़ा-करकट है, जल जाता है; जो सोना है निखर जाता है ।

इसलिए भीड में मेरी उत्सुकता नही है । धर्म मेरे लिए अभिजात्य है, अरिस्टोक्रेटिक है । भीड का उससे कुछ लेना-देना नहीं है । कभी-कभी कोई आदमी इतने अभिजात्य को उपलब्ध होता है, ऐसी अन्तरतम की अरिस्टोक्रेसी को ... !

तुम समझो इसे । कोई कवि है । जितना श्रेष्ठतर कवि होगा, उतने ही कम लोग उसे सुनने जाएंगे । क्योंकि ज्यादा लोग सुनने तभी आ सकते हैं जब वह निकृष्ट हो, जब वह नीचा हो; जब वह उन्हीं की भाषा में बोल रहा हो जिस भाषा में लोग समझ सकते है; जब वह उन्ही मनोवेगों को छेड रहा हो जिनको लोग समझ सकते है; जब वह कामवासना के गीत गा रहा हो । जहां लोग हैं, जब उसकी कविता भी वही हो, तभी लोग उसे समझ पाएंगे; ९ी लोग आदोलित होंगे ।

उपन्यास वही बिकेगा जो अत्यंत सस्ता से सस्ता हो; दाम में ही नही, जिसकी आत्मा ही सस्ती हो, जिसमें कुछ भी न हो विशेष । गीत वही गुनगुनाया जायेगा जो जितना क्षुद्र हो, निम्न हो, जितने नीचे तल पर पुकार हो । संगीत भी वही सुना जाएगा जिसमें आदमी की क्षुद्र वासनाओ की संतुष्टि हो । फिल्म भी वही चलेगी। फिल्म भी वही चलेगी जो लोगों की कामवासना को थिरकाती हो । हिंसा हो,

कामवासना हो, हत्या हो, तो फिल्म चलेगी, तो लोग खिंचे हुए चले जाएंगे । अब किसी फिल्म में समाधि का दर्शन हो, कौन जाएगा ? बुद्ध बैठे रहें, बैठे रहें वृक्ष के तले, समाधि के फूल खिलें – कौन जाएगा ? लोग ऊब जाएंगे । लोग बीच फिल्म में झगड़ा-फसाद करने को खड़े हो जाएंगे, कि न मार-काट, न कोई हत्या, न कोई सनसनीखेज बात – यह मामला क्या है ?

ऐसा हुआ है ? सेमुअल बेकेट ने एक फिल्म बनाई । अनूठा आदमी आदमी था । छोटी-छोटी किताबें उसने लिखी हैं, बड़ी, बड़ी गहन-गंभीर ! उसने एक फिल्म भी बनाई । उस फिल्म में कुछ भी नहीं है । एक आदमी घर लौटता है – कई वर्षों के बाद । घर भी खंडहर जैसा हो गया है । पत्नी कहां गई, पता नहीं । बच्चे कहां गए, पता नहीं । उसका आना, घर में उसका प्रवेश, अतीत को खोजती उसकी आंखें ! द्वार पर, दीवार पर, चित्र पर, केलेन्डर पर, फर्नीचर पर – सारा अतीत उसका छाया है । वह खोया है, स्तब्ध खड़ा है । वह एक-एक चीज को उठा के देखने लगता है । एक शब्द नहीं बोला जाता, सिर्फ उसकी श्वास बढ़ने लगती है । वह घबड़ा गया है । यह सारा अतीत है उसका । और सब सूत्र खो गए हैं । कहां है बेटा, कहां पत्नी – कुछ भी पता नहीं है । यह भी कुछ कहा नहीं जाता; यह भी देखने वाले को समझना है । अभी तक एक शब्द बोला ही नहीं गया है – सिर्फ उसकी बढ़ती हुई सांस की आवाज है । वह एक-एक चीज को उठाता है, आंख से आंसू बहने लगते हैं । सिसकियां आ जाती हैं । उसके रोने की आवाज और गहन अंधकार हो जाना है । फिल्म खत्म हो जाती है ।

जहां चली, वहीं झगड़े हो गए । वहीं लोगों ने कुर्सियां तोड़ डालीं, परदे तोड़ डाले । लोगों ने कहा, ' यह धोखा है । यह कोई फिल्म है ? '

बड़ा सूक्ष्म चित्रण है । कुछ ऐसे भावों को उसकी आंखों से प्रगट किया है जो शब्दों में नहीं कहे जा सकते । उसके उठने में, बैठने में, उसकी श्वास की बढ़ती हुई आवाज में, उसकी आंखों से टपकते हुए टप-टप आंसुओं में, फिर अंधेरे में खो गई उसकी सिसकियों में – आदमी की पूरी जिंदगी है । यही तो जिंदगी है ।

एक दिन तुम भी तो यही पाओगे कि जहां सब बसाया था वहां सिर्फ खंडहर है । बेटे भी खो गए, पत्नी भी खो गई, पति भी खो गये – सब खो गये । अकेला रह जाता है आदमी । सांस की आवाज बढ़ती जाती है और टूट जाती है । अंधेरा ! मौन ! सिसकियां ! हाथ खाली के खाली ! और है क्या जिंदगी में ? सारी जिंदगी को उसमें रख दिया है; लेकिन कहीं भी फिल्म चल न सकी । और जहां भी चली वहीं उपद्रव हुआ । जनता ने कहा, पैसे वापस !

नहीं, भीड़ को एकत्रित करना हो तो निकृष्ट होना जरूरी है । सत्यसाईंबाबा के पास भीड़ इकट्ठी होगी; क्योंकि तुम्हारी जो क्षुद्रतम आकांक्षाएं हैं उनकी तृप्ति का भरोसा है । भरोसा दिया जा रहा है, आश्वासन दिया जा रहा है । किसी का

मुकदमा जीतना है। किसी को सुंदर पत्नी पानी है। किसी को धन कमाना है। किसी को बीमारी मिटानी है। आदमी की जो सामान्य जीवन की चिंताएं हैं ... तो सत्यसाईंबाबा के पास लगता है कि पूरी होंगी। चमत्कार घटते हैं। स्विस घड़ियां हाथ में आ जाती हैं। सूने आकाश से राख आ जाती है। वस्तुएं निकल आती हैं। तो जो आदमी ऐसा चमत्कारी है उससे आशा बंधती है कि जो शून्य से घड़ियां निकाल देता है, उसे क्या असंभव है! अगर उसकी कृपा हो जाए तो तुम्हारे ऊपर धन भी बरस सकता है। अगर उसकी कृपा हो जाए तो तुम मुकदमा भी जीत सकते हो। अगर उसकी कृपा हो जाए तो तुम्हारी बीमारी भी दूर हो सकती है। यह आश्वासन जगता है। यह मदारीगीरी है; तुम्हारे भीतर में जो छुपी हुई वासनाएं हैं, उनको सुगबुगाती है।

स्वभावत: भीड़ इकट्ठी हो जाती है। क्योंकि भीड़ बीमारों की है। भीड़ अदालतबाजों की है। भीड़ धन के पागल प्रेमियों की है। भीड़ पद के आकांक्षियों की है। तो राजनेता भी पहुंच जाता है चरण छूने, क्योंकि मुकदमा उसको भी लड़ना है, चुनाव उसको भी जीतना है। कोई आशीर्वाद, ईश्वर का भी सहारा मिल जाए उसे। वह भी ताबीज ले आता है। वह भी भभूति ले आता है, सम्हाल के रख लेता है।

दिल्ली में ऐसा एक भी राजनीतिज्ञ नहीं है, जिसका गुरु न हो। और जब कोई राजनीतिज्ञ जीत जाता है, तब तो भूल भी जाए; लेकिन जब हार जाता है तो गुरुओं के चरणों मे जाने लगता है। कहीं से कोई आशा की किरण ...।

स्वभावत: मेरे पास तुम किसलिए आओगे? न मैं तुम्हारी बीमारी दूर करूंगा, न मैं तुम्हें मुकदमे जिताऊंगा, न तुम्हारे लिए सुंदर पत्नियों की तलाश करूंगा, न तुम्हारे लिए धन का आयोजन करने वाला हूं — उलटे तुम्हारे पास जो होगा वह भी ले लूंगा।

यहां तो तुम्हें कुछ छोड़ना होगा। यहां तो थोड़े-से हिम्मतवरों का काम है। जो मिटने को राजी हों, उनके लिए मेरा निमंत्रण है। जिनको अभी जीवेष्णा है, वे कहीं और जाएं। और ठीक है कि वे यहां न आएं, क्योंकि यहां वे व्यर्थ का उपद्रव करते हैं।

मेरे पास भी कभी-कभी इतने बंधनों के बाद भी लोग आ जाते हैं, इतने इंतजाम के बाद भी आ जाते हैं। कहते हैं कि ध्यान के संबंध में समझना है। लेकिन जब पूछने मेरे पास पहुंच जाते हैं, तो मैं उनसे कहता हू, 'सच में ही ध्यान के संबंध में समझना है?' अब वे कहते हैं, 'अब आपसे क्या छिपाना... !'

सब तरह की कोशिश कर रहा हूं, लेकिन दीनता नहीं मिटती, दारिद्रय नहीं मिटता। 'कुछ आशीर्वाद दे दें!' आते हैं ध्यान को पूछने। शायद उन्हें भी साफ नहीं है कि उनकी जो अशांति है, वह अशांति ध्यान के लिए नहीं है, वह अशांति धन के लिए है। धन नहीं है, इसलिए अशांत हैं।

पूछते हैं मुझसे लोग कि 'ध्यान करेंगे तो सफलता मिलेगी जीवन में ?' जीवन की सफलता के लिए ध्यान को साधन बनाना चाहते हैं। ध्यान तो उनके लिए है जिन्होंने यह जान लिया है कि जीवन का स्वभाव असफलता है। हारे को हरिनाम ! जिन्होंने जान लिया कि जीवन में तो हार ही हार है, यहां जीत होती ही नहीं !

मैं तुम्हें किसी तरह के धोखे देने में उत्सुक नहीं हूं। कोई कारण भी नहीं है कि तुम्हें कोई धोखा दूं, क्योंकि भीड़ में मेरी कोई उत्सुकता नहीं है। मैं इधर अकेला हूं; तुम भी अगर अकेले होने के लिए राजी हो गए हो तो मेरे पास आओ।

तो ठीक ही है, लोग कहेंगे कि मैं धर्म को भ्रष्ट कर रहा हूं। और निश्चित ही मैं ऐसी बातें कह रहा हूं, कि जो धर्म समझा जाता रहा है वह भ्रष्ट होगा। वह होना चाहिए। वह धर्म नहीं है। जो बातें मैं कह रहा हूं, वे अजनबी हैं।

शरहे-फिराक मदहे-लबे-मुश्कबू करें
गुरबकदे में किससे तेरी गुफ्तगू करें।

जैसे कोई परदेस में खो गया, जहां न कोई अपनी भाषा समझता है, न अपनी कोई शैली समझता है — वहां अगर तुम अपने प्रेमी की चर्चा करने लगो और अपने प्रेमी की जुदाई की बात करने लगो, कौन समझेगा ? और वहां अगर तुम अपने प्रेयमी और प्रेमी के सुगंधित ओठो का वर्णन करने लगो, महिमा का गान करने लगो, कौन समझेगा ?

शरहे-फिराक मदहे-लबे-मुश्कब करें
— किससे कहें अपने प्रेमी के सुगंधित ओंठों की बात ! इस बिछुड़न में कैसे कहें !
गुरबकदे में किससे तेरी गुफ्तगू करें !
— इस परदेस में किससे तेरी चर्चा करें !

तो मैं तो दीवानों की तलाश में हूं, जो इस चर्चा को समझ सकें। तुम्हारे कारण मैं नीचे उतरने को राजी नहीं हूं। हां, मेरे कारण तुम ऊपर चढ़ने को राजी हो तो मेरे द्वार खुले हैं। यह मेरा संगीत नीचे न उतरेगा, ताकि तुम जहां हो वहां तुम समझ सको। तुम्हें अगर मेरे संगीत को समझना है तो तुम्हें ही सीढ़ियां चढ़नी पड़ेंगी और वहां आना होगा जहां मैं हूं।

दो ही उपाय हैं मेरे और तुम्हारे मिलने के। एक तो यह है कि मैं नीचे उतरूं, जो कि असंभव है; क्योंकि कोई कभी ऊपर जा के नीचे नहीं उतर सकता। जो नीचे उतरा हुआ मालूम पड़े, वह नीचे होगा ही, ऊपर गया नहीं है। दूसरा उपाय है कि तुम मेरी तरफ चढ़ो, मेरी बात तुम्हें पकड़ ले, मेरे शब्द तुम्हारे प्राणों को जकड़ लें, मेरी पुकार तुम्हें सुनाई पड़ जाये, तुम्हारी निद्रा में, तुम्हारे स्वप्न में थोड़ी खलल पड़ जाए, एक धागा भी तुम मेरे शब्दों का पकड़ के उठने लगो — तो धीरे-धीरे जैसे-जैसे तुम ऊपर उठोगे वैसे-वैसे मेरी बात साफ होगी। जैसे-जैसे तुम ऊपर उठोगे वैसे-वैसे तुम्हें लगेगा कि धर्म क्या है। अनुभव तुम्हारा गहरा होगा तो तुम पाओगे

कि मैं धर्म के खिलाफ बोल रहा था, क्योंकि मैं धर्म के पक्ष में हूं; मैं शास्त्र के खिलाफ बोल रहा था, क्योंकि मैं शास्त्र के पक्ष में हूं। लेकिन मैं जीवंत अनुभव तुम्हें देना चाहता था। राख पर मेरा भरोसा नहीं है। अंगारे मैं अपनी झोली में लिये बैठा हूं, जो भी जलने को राजी हों।

तो घर के लोग ठीक ही कहते हैं। उनसे बेचैन मत होना। उनसे विवाद मत करना। उनसे नाहक माथा-पच्ची मत करना। क्योंकि माथा-पच्ची में तुम व्यर्थ ही अपना समय गंवाओगे। कह देना कि हा ठीक कहते हैं आप; अब मैं क्या करूं, मैं पागल हो गया हूं! तुम पागल हो जा के अपने को बचा लेना। व्यर्थ के विवाद, व्यर्थ की चर्चा, व्यर्थ के सिद्धांतो के विश्लेषण – और इस सब में समय मत खोना। क्योंकि उनका तो कुछ न खोएगा – उनके पास कुछ भी नही है – तुम्हारा कुछ खो जाएगा। तुम्हारे पास कुछ है; या उतर रहा है। तुम्हारी एक-एक घड़ी बहुमूल्य है। तुम बाज़ार में खड़े हो कर दुकानों पे चर्चा करने में मत समय व्यतीत करना। तुम्हारे पास ध्यान की संभावना है। तुम तो उनसे कह देना, आप ठीक कहते हैं, लेकिन कुछ हो गया, मैं पागल हो गया! वे तुम्हें पागल भी समझ लें तो कुछ हर्ज नही।

तुम मेरी आखों की तरफ देखो! मै तुम्हें क्या समझता हूं, इसकी फिक्र करो! और लोग तुम्हें क्या समझते हैं, इसकी चिंता छोड़ो! अगर तुम्हें मुझ पे थोड़ा भी भरोसा है तो मैं तुमसे कहता हूं कि तुम उस राह पर हो, जहां पागल हो जाना भी बुद्धिमानी है। और दूसरे लोग, जो तुमसे कह रहे हैं कि तुम गलत राह पे गए हो, समझदार रह के भी सिर्फ बुद्धिहीनता कर रहे हैं। और उन्हें समझाने का एक ही उपाय है कि तुम बदलो। तुम्हारी क्रांति उन्हें छुएगी। तुम्हारे जीवन में उठी नई ऊर्जा उन्हें प्रभावित करेगी। तुम्हारा प्रेम, तुम्हारा आनंद। तुम्हारा तर्क नही। तुम्हारे शब्द नही। तुम्हारा अस्तित्व। तुम कुछ ऐसे हो जाओ, जो मैं कह रहा हूं वैसे हो जाओ। फिर तुम देखना, वे खुद ही तुमसे पूछने लगेंगे, 'कहां से यह तृप्ति आई?' अंधे थोड़ी हैं वे लोग! वे भी आंख वाले हैं। हीरे दिखाई पड़ने लगें तो वे भी समझेंगे, कितनी देर न समझेंगे! तुम हीरा बनो! तुम्हारे भीतर चमक आए। वही तुम्हारा तर्क होगा।

मैं तुमसे शाब्दिक विवाद में पड़ने को नही कहता हूं। और तुम इसकी बिलकुल फिक्र मत करना कि तुम्हें मेरी रक्षा करनी है। मेरी रक्षा की कोई भी जरूरत नहीं है। मेरा होना-न-होना, लोग क्या कहते हैं, इस पे निर्भर नही है। मैं हूं। वे पक्ष में हों कि विपक्ष में, इससे कोई फर्क नही पड़ता। मेरे होने पे कोई रेखा नहीं पड़ती इससे। इसलिए तुम इसकी फिक्र ही मत करना।

मेरे शिष्यों को मुझे बचाने की चिंता ही नहीं करनी चाहिए। क्योंकि जिस गुरु को बचाने के लिए शिष्यों को चेष्टा करनी पड़ती हो, वह गुरु ही नही। जो

शिष्यों के आधार पर बचता हो, वह बचाने योग्य भी नहीं। तुम इसकी फिक्र छोड़ दो।

तुम्हारे अहंकार को चोट लगती है, वह मैं जानता हूं। जब तुम्हारे गुरु को कोई गाली देता है, तो तुम्हीं को गाली देता है परोक्ष से। जब कोई कहता है कि तुम्हारा गुरु धर्म भ्रष्ट करने वाला, तो वह तुमसे यह कह रहा है कि तुम धर्म भ्रष्ट हो रहे हो। जब कोई कहता है, तुम्हारा गुरु गलत है, तो वह कहता है तुम गलत हो। तुम्हारे मन को चोट लगती है। शिष्य का मन होता है कि सारी दुनिया कहे कि तुम्हारा गुरु सबसे बडा गुरु! क्योंकि तुम सबसे बड़े गुरु के शिष्य हो, तो सबसे बड़े शिष्य हो गए! तुम्हारा अहंकार तृप्त होगा। लोग मेरी पूजा में थाल सजाए, लोग मेरा गुणगान करें, तो तुम्हारा भी गुणगान उसमें छिपा होगा। तुम भी मेरे हो। मेरी पूजा अनजाने तुम्हारी भी पूजा होगी। यह अहंकार छोड़ो! यह बकवास बंद करो। यही तो चलता रहा।

जैनो से पूछो तो महावीर सबसे ऊपर; किसी को महावीर के ऊपर नही रख सकते। ऊपर रखने की तो बात छोड़ो, महावीर के साथ भी नहीं रख सकते। कृष्ण को तो नर्क में डाल दिया है। राम ससारी है। बुद्ध मे जरा अडचन है, क्योंकि न तो बुद्ध ससारी है, न कृष्ण जैसे किसी युद्ध मे खडे है, न युद्ध करवाने वाले हैं – लेकिन फिर भी महावीर की ऊंचाई पे तो नही रख सकते! तो महावीर को 'भगवान' कहते हैं, बुद्ध को 'महात्मा' कहते है।

एक जैन विचारक मेरे पास आते थे। कहते है अपने आपको, सहिष्णु हू, सभी धर्मों में समभाव रखता हूं। जैन है। उन्होने एक किताब लिखी है। भगवान बुद्ध तो नही लिखा : महात्मा बुद्ध; और महावीर को 'भगवान' लिखा। 'भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध'। किताब मेरे पास लाए कहा कि 'देखे, जैन हू; लेकिन मेरा सद्भाव सब की तरफ है।' तो मैंने कहा कि 'सद्भाव ही था, इतनी कंजूसी क्यो कर गए? इधर थोड़ी हिम्मत और बढा लेते।'

महात्मा का अर्थ होता है : जो भगवान होने की तरफ जा रहा है, अभी पहुचा नही। महात्मा का अर्थ होता है : जो अंतरमुखी है, अंतरात्मा की तरफ जा रहा है। भगवान का अर्थ है : जो पहुंच गया। तो उन्होंने कहा कि 'वह तो ठीक है, लेकिन बुद्ध अभी महात्मा ही है, तो मैं क्या करूं?'

बौद्धो से पूछो, तो बौद्धो ने जो मिथ्या दृष्टियां गिनाई है, उनमे एक महावीर की दृष्टि भी है। बौद्धो ने बडा मजाक उड़ाया महावीर का। क्योंकि महावीर के शिष्य कहते थे कि महावीर सर्वज्ञ है, तीनो काल के ज्ञाता है। तो बौद्ध शास्त्रों में बड़ा मजाक उडाया है कि महावीर एक घर के सामने भीख माग रहे है, और उन्हे यह भी पता नही कि घर में कोई भी नही है, घर खाली है। और त्रिकालज्ञ है, तीनों काल के ज्ञाता है और इतना भी पता नही है कि जिस घर के सामने भिक्षापात्र लिये खड़े

है, वहां भीतर कोई भी नहीं। बाद में पता चलता है, घर खाली है। राह से गुज-रते हैं, सुबह का अंधेरा है। राह पे सोये कुत्ते की पूछ पे पैर पड़ जाता है। जब कुत्ता भौंकता है तब पता चलता है। त्रिकालज्ञ हैं!

बौद्ध मजाक उड़ा रहे हैं।

शिष्यों को हमेशा बड़ी तकलीफ होती है। शिष्यों की तकलीफ यह है कि हमारा गुरु श्रेष्ठतम होना ही चाहिए! नहीं तो हम चुनते? हम जैसे बुद्धिमान ने जिसे चुना, वह श्रेष्ठतम से कम हो सकता है, असंभव!

तुम जरा ध्यान रखना, जब कोई मुझे गाली दे, कोई मेरा खंडन करे, तब अपने अहंकार का खयाल रखना, वह भी सहयोग कर रहा है। वह भी तुम्हारे अहंकार को काट रहा है। उससे कहना, 'काट! ठीक से काट।' वही मेरे खिलाफ कुछ कह रहा है या नहीं कह रहा है, इससे क्या फर्क पड़ता है? मुझे क्या फर्क पड़ता है? तुम्हें फर्क पड़ता है। तुम्हें अड़चन होती है। तुम लड़ने-मारने को, झगड़ने को उतारू हो जाते हो। तुम्हारे गुरु को कुछ कह दिया तो यह जीवन-मरण का सवाल हो गया।

देखना, यह सब अहंकार का सवाल है, जीवन-मरण का इसमें कुछ लेना-देना नहीं। और यहां मेरी पूरी शिक्षा है कि अहंकार तोड़ देना है, गिरा देना है। तो ये भी तुम्हारे मित्र हैं। ये भी तुम्हारे अहंकार को तोड़ने के लिए साथ दे रहे हैं। इनको भी धन्यवाद देना।

जैसे-जैसे तुम शांत भाव से लोगों की बात सुनने लगोगे, उनकी बातें इतनी महत्त्व-पूर्ण न मालूम पड़ेंगी — सोये हुए लोगों की बकवास है। नींद में बड़बड़ा रहे हैं। अपना उन्हें पता नहीं है, तुम्हारा क्या पता होगा, मेरा क्या पता होगा? उनकी बात को ज्यादा मूल्य मत देना।

> जिंदगी नाम है रवानी का
> क्या थमेगा बहाव पानी का
> जिंदगी है कि बेताल्लुक-सा
> एक टुकड़ा किसी कहानी का।

—अप्रासंगिक, जैसे किसी कहानी का एक टुकड़ा उड़ता हुआ हवा में, कागज का एक टुकड़ा तुम्हारे हाथ लग जाये, उसे तुम पढ़ो — न कुछ प्रारंभ का पता चले, न कुछ अंत का पता चले।

> जिन्दगी है कि बेताल्लुक-सा
> एक टुकड़ा किसी कहानी का।

—अप्रासंगिक! लोग कहे जा रहे हैं। लोग बोले जा रहे हैं। लोग होश में नहीं हैं। तुम समय मत गंवाना। तुम हर घड़ी को अपना होश साधने में लगाना।

एक और मित्र ने पूछा है कि जब भी आपके पास आते हैं तो कुछ लोग हैं, वे

कहते हैं, 'वहां जाने से क्या फायदा ; क्या मिलेगा वहां ? वहां कुछ भी नहीं है। सत्यसाईंबाबा के पास जाओ, अगर महिमा देखनी है।'

वे भी ठीक कहते हैं। यहां कुछ भी नही है। यहां मेरा सारा शिक्षण ही ना-कुछ होने के लिए है। वे बिलकुल ठीक कहते हैं। यहा तुम्हें देने का कोई सवाल ही नहीं है; तुम्हारे पास जो-जो भी होने की भ्रांति है, उसे भी खंडित करना है, तोड़ना है, मिटाना है; तुम्हें भी शून्य की तरफ ले आना है। इतना शून्य हो जाए तुम्हारे भीतर कि कहने वाला भी कोई न बचे, देखने वाला भी कोई न बचे, तो ही समाधि फलित होगी।

वे बिलकुल ठीक कहते हैं। महिमा देखनी हो तो कही और जाना चाहिए। मैं कोई मदारी नही हूं। और तुम्हारी किन्हीं वासनाओं को तृप्त करने में मेरी कोई उत्सुकता नही है। तुम मुझे महिमावान समझो, ऐसी भी मेरी कोई आकांक्षा नही है। तुम्हारी आखों को मैं दर्पण नहीं बनाना चाहता, जिसमे मैं अपनी तस्वीर देखूं। मैंने अपने को देख लिया है, अब किसी दर्पण की मुझे कोई जरूरत नहीं है।

तो तुम जब मेरे पास आते हो तो यह जान के ही आना : खतरे में जा रहे हो। मरने जा रहे हो। क्योंकि जीवन का गहनतम राज मरने की कला में छिपा है।

प्राचीन शास्त्र कहते है : गुरु मृत्यु है। वे बिलकुल ठीक कहते है। कठोपनिषद में पिता ने अपने बेटे को यम के पास भेज दिया — वह गुरु के पास भेजा है। मृत्यु के पास भेजा। क्योंकि जब तक तुम मिटोगे न, तब तक तुम वह न हो सकोगे जो तुम्हें होना चाहिए। यह तुम जो अभी हो गए हो, यह जो गलत ढाचा तुम्हारे चारों तरफ इकट्ठा हो गया है, यह जो तुम समझते हो अभी मैं हूं — यह तुम्हारा वास्तविक होना नहीं है, यह तुम्हारा स्वभाव नही, यह तुम्हारा स्वरूप नहीं।

तो लोग ठीक कहते है। अगर महिमा देखनी हो, कही और जाना चाहिए। अगर महिमा वगैरह देखने से ऊब चुके हो, वैराग्य जगा है, देख ली कि जिन्दगी बेकार है, अब और खेल-तमाशा देखने की आकाक्षा नही रही है, अब सब खिलौनों से ऊब गए हो, तो मेरे पास आना। उस आखिरी घड़ी में ही मेरे पास आने का कुछ सार है।

तो पहले तुम भटक लो। तुम सब के पास हो आओ। तुम सब जगह देख लो। अगर कही सत्य मिल जाये तो बहुत अच्छा। अगर न मिले तो फिर मेरे पास आना।

लोग ठीक ही कहते हैं। लोगों से नाराज होने की कोई जरूरत नही है।

क्या मैकदों में है कि मदारिस में वो नहीं
अलबत्ता एक वा दिले-बेमुद्दआ न था।

बड़ा मधुर वचन है। तथाकथित ज्ञानियों के स्कूलों में कौन-सी चीज की कमी है ? कुछ ऐसी चीज की कमी है जो कि मधुशाला में भी है, लेकिन ज्ञानियों के स्कूलों में नही है।

क्या मैकदों में है कि मदारिस में वो नहीं !

–मदरसे में जो नहीं है, वह मधुशाला में है। वह क्या है ?

अलबत्ता एक वां दिले-बेमुद्दआ न था।

–निष्काम हृदय, आकांक्षा से रहित हृदय, वासना से शून्य हृदय, तत्त्वज्ञानियों के मदरसों में भी नही है। वहाँ भी लोग वासना से ही जाते हैं। ईश्वर को भी खोजने जाते हैं ऐश्वर्य की तलाश में। स्वर्ग को भी मांगते हैं सुख की आकांक्षा में। भगवान को भी भजते हैं भय के कारण। बेमुद्दआ न था! अभी उनके मन की फलाकांक्षा समाप्त नहीं हुई। फलाकांक्षा समाप्त हो, तो ही धर्म से तुम्हारा सम्बन्ध जुड़ता है। फलाकांक्षा समाप्त हो, कुछ पाने जैसा न लगे, तो ही परमात्मा पाया जाता है। परमात्मा भी पाने जैसा न लगे, तो ही परमात्मा पाया जाता है। जब तुम परमात्मा को भी चाहने की उत्सुकता में नहीं हो; तुम कहते हो, सब चाह व्यर्थ हो गई; देख लीं सब चाहतें और सभी चाहतें व्यर्थ पायीं, चाह मात्र व्यर्थ हो गयी, अचाह पैदा हुई – बस उसी अचाह में परमात्मा उपलब्ध होता है।

यहां जो महिमा है वह शून्य की है। यहा जो महिमा है वह मृत्यु की है, महामृत्यु की है। और जो मैं तुम्हें सिखा रहा हूं वह बहुत गहरे अर्थों में आत्मघात है – तुम कैसे अपने को मिटा डालो, पोंछ डालो !

समझा था न समझा है, न समझेगा ' रजा ' कुछ

दीवाना था, दीवाना है, दीवाना रहेगा।

यहां तो मैं पागलों को बुलाया हूं। क्योंकि जो बुद्धिमान नहीं पा सकते, वह पागल पा लेते हैं। जो ज्ञानी नहीं पा सकते, वह प्रेमी पा लेते हैं। जो ज्ञानियों के मदरसे में न मिलेगा, वह मस्तों के मैकदे में मिल जाता है। यह तो एक मधुशाला है। यहा तो जो मेरे साथ उस आत्यतिक गहराई पर नाचने को उत्सुक है ...। वे गहराइया दिखाई भी नहीं पड़ती, उन गहराइयों के लिए शब्द भी नहीं हैं। वे निराकार की हैं। तो तुम जैसे-जैसे मेरे सरगम में बैठोगे, जैसे-जैसे पास आओगे, जैसे-जैसे मेरे और तुम्हारे बीच उपनिषद का सम्बन्ध बनेगा – उपनिषद यानी पास बैठने का ! उपनिषद के वचन उन गुरुओं के वचन हैं, जिनके पास कुछ शिष्य बैठ गए। ये गुरुओं ने कहे कम हैं, शिष्यों ने पकड़े ज्यादा हैं।

जब मेरे और तुम्हारे बीच उपनिषद का सम्बन्ध बनेगा, जब तुम पास आते-आते इतने पास आ जाओगे कि मेरे अन्तरराग से तुम्हारा राग मिल जायेगा, मेरी वीणा और तुम्हारी वीणा साथ-साथ कम्पित होने लगेंगी, स्पंदन सहयोग में होने लगेगा; मेरी श्वासें और तुम्हारी श्वासें एक साथ चलने लगेंगीं, मेरा हृदय और तुम्हारा हृदय एक साथ धड़कने लगेगा, मेरा होना और तुम्हारा होना दो अलग सीमाओं में बंटा हुआ न होगा, एक-दूसरे में डूबने लगेगा – ऐसे मिलन में उपनिषद का सम्बन्ध बनता है। उस क्षण तुम्हें महिमा पता चलेगी, जो यहां हो रहा है उसकी। यहां हाथ से भभूति नही गिरायी जा रही है, न स्विस मेड घड़ियां प्रगट की जा रही हैं। यहां

कुछ और हो रहा है, जो उन्हीं को दिखाई पड़ेगा जिन्हें आंख बंद करने की कला आ गई। यहां कुछ और घट रहा है जो उन्ही को दिखाई पड़ेगा, जिन्होंने संसार को खूब देख लिया, खूब देख लिया और कुछ भी न पाया। अगर देखने की कुछ और महिमा की आकांक्षा रह गई हो तो भटक लेना, उसे पूरा कर लेना। हार जाओ सब भांति, तब मेरे पास आ जाना। हारे को हरिनाम!

मैं दीवाना भला, मुझको मेरे सहरा में पहुचा दो
कि मै पाबदे आदाबे गुलिस्तां हो नही सकता

मेरे पास आने का उनके लिये निमंत्रण है जो बगीचे के नियमों मे ठीक-ठीक न बैठ पाये, जो समाज की व्यवस्था में ठीक-ठीक न बैठ पाये। कि मैं पाबंदे आदाबे गुलिस्तां हो नही सकता – कि जो बगीचे की व्यवस्था में, क्यारियो मे, बटाव मे, आयोजन में, शिष्टाचार में ठीक न बैठ पाये – जो जगली पौधे है, जो माली के काटने को बरदाश्त नही करते, जिन्होंने अपने होने की परिपूर्ण स्वतत्रता को स्वीकार किया है, जो वही होना चाहते है जो परमात्मा ने उन्हे होने के लिए भेजा है। अन्यथा नही। जो किसी और नीति-नियम, और किसी मर्यादा को नही मानते, जो जीवन पर परम श्रद्धालु है – उन्ही के लिए निमत्रण है। और वे ही आयेंगे तो आ पायेंगे। दूसरे आ भी जायेंगे भूले-भटके तो मुझसे उनका कोई सम्बन्ध न बन सकेगा। वे आयेंगे, परदेसी रहेंगे। वे मेरे अग न हो पायेंगे। न मैं उनका अग हो पाऊगा। वे आयेंगे और मुझसे बिना परिचित हुए लौट जाएगे। बहुत आते है, लौट जाते है। सभी आते है, सभी का परिचय थोडी हो पाता है! हजार आते है तो दस रुक पाते है। दस रुकते है तो एक का परिचय हो पाता है।

'किंतु यह तो मेरा मत हुआ। रहना तो उन लोगों के साथ है, जो आपके विरोध में है। अत. कृपापूर्वक बताए कि कैसे अपने सत्य की रक्षा करू!'

सत्य अपनी रक्षा स्वयं करता है। तुम डरे हो। तुमने अभी मेरे सत्य को जाना नही है। माना होगा, इसलिए डर है। इसलिए तुम्हे रक्षा करने खयाल पैदा होता है। इसलिए तुम सोचते हो, कही वे खडन न कर दे। सत्य का कभी कोई खडन कर पाया?

मजनू प्रेम में पड गया है लैला के। गांव के राजा ने उसे बुलाया और कहा, 'तू बिलकुल पागल है! यह लैला साधारण-सी बदशकल औरत है। तेरी दीवानगी और तेरा पागलपन देख के मुझे भी दया आती है।' उसने अपने महल से बारह सुदरियां बुलवाईं और कहा, तू कोई भी चुन ले। परम सुदरियां थी – राजा के महल की सुदरियां थी। मजनू ने गौर से देखा और उसने कहा, 'लेकिन लैला इनमे कोई भी नही।' राजा ने कहा, 'पागल हुआ है? लैला इनके पैर की धूल भी नही है।' मजनू हसने लगा और उसने कहा, 'हो सकता है। लैला को आपने कभी देखा?' राजा ने कहा, 'बिना देखे नही कह रहा हू। तेरी दीवानगी देख के मै भी उत्सुक

हो गया था कि कुछ होगा। तो मैंने भी लैला को देखा, कुछ भी नहीं है। पागल! अपने को होश में ला।' मजनू ने कहा कि फिर आपने देखा ही नहीं। असल में लैला को देखने के लिए मजनू की आख चाहिए। मुझसे आंखें उधार लेते तो ही देख सकते थे; तुम्हारी आंखो से यह न हो सकेगा।

तो अगर तुमने मेरे प्रेम को पहचाना है, मेरे सत्य को पहचाना है, तो फिर रक्षा की फिक्र नहीं है। सत्य अपनी रक्षा स्वयं कर लेता है। सत्य कितनी ही असुरक्षा में हो, सुरक्षित है। तुम बस उसे जीने में लग जाओ। मैं जो तुमसे कह रहा हूं, उसको तुम केवल शब्दो का विलास मत बनाओ – जीवन की तरंगें बनने दो। तुम जीने में लग जाओ। तुम उनकी मत सुनो, वे क्या कहते हैं। मैंने जो कहा है, उसे गुनो और उसे जीवन में उतारने लग जाओ। तुम जैसे-जैसे सत्यतर होने लगोगे, वैसे-वैसे ही तुम पाओगे, सत्य के लिए किसी सुरक्षा की कोई जरूरत नहीं। सत्य सूली पर भी लटका हो तो भी सिंहासन पर ही होता है।

दूसरा प्रश्न : आखिर मैं क्या चाहता हूं ? जो कुछ भी मुझे मिला है और मिल रहा है, वह कम नहीं। लेकिन मन में एक बेचैनी बनी ही रहती है: आखिर मैं क्या पा कर संतुष्ट होऊंगा ?

पा कर कभी कोई संतुष्ट हुआ ? बात ही गलत पूछ रहे हो। दिशा ही गलत पकड़ी है। जिसने ऐसा सोचा कि कुछ पा के संतुष्ट होऊंगा वह तो कभी संतुष्ट नहीं हुआ। संतुष्ट तो वही होता है, जो यह समझ लेता है कि पाने से संतोष का कोई सम्बंध नहीं है। पाने में ही तो असंतोष छिपा है। दस हजार हैं तो लाख होने चाहिए, लाख हैं तो दस लाख होने चाहिए। दस लाख हैं तो करोड़ होने चाहिए। वह दस गुने का फासला बना ही रहता है। जितना पाते चले जाते हो, उतना ही पाने की आकांक्षा आगे हटती जाती है। कभी ऐसी घड़ी नहीं आती, जब तुम कह सको कि पा लिया।

हां, ऐसा नहीं है कि लोग संतुष्ट नहीं हुए हैं, लेकिन संतुष्ट वे हुए हैं जिन्होंने यह असंतोष का पागलपन ठीक से पहचाना, कि यह तो पूरा होने वाला नहीं है। तुम कितना ही पा लो, तुम्हारी पाने की आकांक्षा और जो तुमने पाया है, उसमें कभी मेल नहीं होगा। तुम जो भी पाओगे, उससे श्रेष्ठतर की कल्पना कर सकते हो – बस ख़त्म हो गई बात! और मनुष्य का यही तो सारा भव-जाल है कि वह श्रेष्ठतर की कल्पना कर सकता है।

सुंदरतम स्त्री पा ली, लेकिन क्या ऐसी स्त्री तुम पा सकते हो जिसमें तुम भूल-चूक न खोज पाओगे ? क्या तुम ऐसी स्त्री पा सकते हो जिससे सुंदर की कल्पना न

कर पाओगे? क्या तुम ऐसी स्त्री पा सकते हो जिससे सुंदर का सपना न देख पाओगे? फिर कैसे संतुष्ट होओगे?

तुमने एक बड़ा मकान बना लिया, क्या तुम सोचते हो मकान ऐसा हो सकेगा जिसमें कोई तरमीम और सुधार न हो सके, जिससे बेहतर न हो सके? अगर बेहतर हो सकता है, असंतोष शुरू हो गया।

कल्पना श्रेष्ठ की तो कभी भी मौजूद रहेगी। संतोष कैसे होगा? तुम कुछ भी हो जाओ, तुम कुछ भी पा लो -- इससे तुम्हारे संतोष होने का कोई सम्बंध नहीं है। फिर संतोष का किस बात से सम्बंध है? सम्बंध है इस बात से कि तुम यह असंतोष की प्रक्रिया समझ लो। इसे जान लो। इसे देख लो। इसके देखने और जानने मे ही यह पूरा जाल गिर जाता है। अचानक तुम पाते हो कि असंतुष्ट होने का कोई कारण ही नही।

संतोष अभी और यही होने का ढंग है। असतोष, कल बेहतर हो सकता है, उस आकाक्षा के पीछे दौड़ है। सतोष जो है, इससे बेहतर हो ही नही सकता, इस भावदशा का नाम है। इस क्षण जो है इससे बेहतर हो ही नहीं सकता। जो बेहतर से बेहतर हो सकता था वह हो गया है।

इसलिए ज्ञानियो ने कहा है, इस संसार से बेहतर ससार हो ही नही सकता।

उमरखयाम का एक गीत है कि हे परमात्मा! अगर तू हमें एक मौका दे तो हम दुनिया को फिर से मिटा के अपने हृदय के अनुकूल बना लें। लेकिन क्या तुम अपने हृदय के अनुकूल दुनिया को कभी भी बना पाओगे? यह मौका भी दिया जा सकता है। यह मौका ही तो दिया गया है। संसार और क्या है? यह मौका ही है कि तुम अपने हृदय के अनुकूल बना लो। अपना घर, अपना बगीचा, धन-दौलत, प्रतिष्ठा, मान-सम्मान, अपनी प्रतिमा, पत्नी, बच्चे -- तुम बना लो अपने हिसाब से। लेकिन कौन कब तृप्त हो पाया है! सिकंदर भी खाली हाथ विदा होते हैं।

खाली हाथ हम आते हैं, खाली हाथ हम विदा होते है। लेकिन अगर तुम महावीर, बुद्ध, कृष्ण और क्राइस्ट के वचन समझो, तो वे कहते हैं, भरे प्राण हम आते है, भरे प्राण हम रहते हैं, भरे प्राण हम जाते हैं। खाली हाथ पर नजर ही गलत है। हृदय पर ले जाओ नजर; हृदय भरा ही हुआ है। इसी क्षण जो होना था हुआ है।

इसी को मैं आस्तिकता कहता हूं कि इस क्षण जो हुआ है, परम है, आत्यंतिक है। इससे श्रेष्ठ का कोई उपाय नही। फिर अचानक तुम संतुष्ट हो। फिर सब दौड खो गई। अभी और यहां हो जाना ही संतोष है।

किन जहागीर बहारों के तसव्वुर में 'नदीम'
मौसमे गुल मे उजड़ा हुआ लगता है तू?

-- वसंत आया हुआ है। फूल खिले हुए हैं। पक्षी गीत गुनगुना रहे हैं। सूरज

निकला है। सब तरफ किरणों का जाल फैला है। मौसमे गुल में उजड़ा हुआ लगता है तू। लेकिन मामला क्या है? वसंत चारों तरफ बरस रहा है और तुम क्यों उजड़े-उजड़े खड़े हो?

किन जहांगीर बहारों के तसव्वुर में 'नदीम'
मौसमें गुल में उजड़ा हुआ लगता है तू?

– तू किन सपनों में खोया हुआ है? किन सपनों की बहारों में खोया हुआ है? दुनिया को विजित कर लेने की, दुनिया को जीत लेने की, किन कल्पनाओं में तू तल्लीन है कि वसंत को देख नही पा रहा है जो चारों तरफ मौजूद है?

किन जहांगीर बहारों के तसव्वुर मे 'नदीम'
मौसमे गुल में उजड़ा हुआ लगता है तू?

वसंत तो है। परमात्मा है। अब और क्या होना है? जियो! जीने की योजना मत बनाओ। गाओ! वसंत तो आ गया, द्वार पर दस्तक दे रहा है! जागो! नाचो! उत्सव मनाओ! पाने को यहा कुछ भी नहीं है; जो पाने को है वह तुम्हें मिला ही हुआ है। उसे तुम ले कर ही जन्मे हो। वह तुम्हारा स्वभाव है।

स्वभाव को देखते ही व्यक्ति संतुष्ट हो जाता है। संतोष स्वभाव के अनुभव की छाया है। स्वभाव के प्रतिकूल, स्वभाव से अन्य की योजना, कल्पना में, भटकता हुआ आदमी असंतुष्ट हो जाता है। असंतोष, स्वभाव से अन्य होने की चेष्टा की छाया है।

मैंने मासूम बहारो में तुझे देखा है
मैंने मौहूम सितारो में तुझे देखा है
मेरे महबूब तेरी पर्दानशीनी की कसम
मैंने अश्को की कतारो में तुझे देखा है।

फूलो की तो बात और, आंसुओं में भी उसी के दर्शन होंगे।

मैंने अश्को की कतारों में तुझे देखा है!

एक बार देखने की कला आ जाये, आंख आ जाये, नजर आ जाये, तो कंकड़-पत्थर हीरे हो जाते है। साधारण-सा भोजन परम प्रसाद हो जाता है। साधारण-सा घर महलो को मात करने लगता है। हवा का जरा-सा झोंका, अपरिसीम कृपा की वर्षा हो जाता है। नजर की बात है। नजर न हो तो हीरे-जवाहरात भी कंकड़-पत्थर; महल भी झोंपड़े; जीवन की परमधन्यता का कोई पता ही नहीं चलता। सब बासा-बासा लगता है। नजर की ही बात है। नजर को बदलो।

अगर लगता है असंतोष है, तो किसी गलत नजर को पकड़े बैठे हो।

पूछा है, 'आखिर मै क्या चाहता हूं?'

चाहने को कुछ है नहीं, मिला ही हुआ है। इसीलिए तो कितना ही चाहो, मुश्किल में पड़ोगे। जो मिला ही हुआ है, उसे तुम खोज-खोज के थोड़े ही पा सकोगे! खोज छोड़ो, ताकि चैतन्य घर पे लौट आये! खोज छोड़ो! क्योंकि खोज के कारण ही तुम

अपने बाहर गए हो और उसे नही देख पा रहे हो जो तुम हो। रुको! परमात्मा को खोजना थोडी है! सब खोज छोड देने वाला व्यक्ति अचानक पाता है, परमात्मा है।

तुम्हारी हालत ऐसी है कि हीरा सामने पड़ा है, लेकिन तुम कही दूर आखें लगाए बैठे हो, चांद-तारों पर, कही दूर तुम्हारा सपना तुम्हे भटका रहा है। यहां तुम देखते ही नही; यहां तुम अंधे हो जाते हो।

मेरे देखे, लोगों की एक ही बीमारी है – वह सब दूरदृष्टि है। दूर का तो देख पाते है, पास का नहीं देख पाते। निकट-दृष्टि नष्ट हो गई है। ऐसा होता है न कभी-कभी आखो में, किसी की आख पे चश्मा होता है, जिसमें वह पास का देख पाता है। क्योकि पास का बिना चश्मे के नही देख पाता, किताब नहीं पढ सकता है, हालांकि चाद-तारे देख सकता है। दूर का दिखाई पड़ता है, लेकिन पास का नहीं दिखाई पडता। कुछ होते है जिन्हें पास का दिखाई पड़ता है, दूर का नही दिखाई पड़ता। तो दो तरह के चश्मे होते हैं। लेकिन आध्यात्मिक जीवन में एक ही तरह की बीमारी है। भीतर की आख की एक ही बीमारी है। वह बीमारी है कि पास जो है, वह दिखाई नही पडता। जो दूर है, वह दिखाई पड़ता है। जो दूर है, वह दिखाई पडता है, इसलिए दूर की आकांक्षा होती है। दूर के ढोल सुहावने! तो मन भटकता है।

> किन जहांगीर बहारो के तसव्वुर मे 'नदीम'
> मौसमे गुल में उजड़ा हुआ लगता है तू?

पास देखने की दृष्टि का नाम धर्म है। जो मिला हुआ है, उसमे पहचान बनाने का नाम धर्म है। जिसे कभी खोया ही नही है उसकी प्रत्यभिज्ञा, उसका ही नाम धर्म है।

'आखिर मै क्या चाहता हू? जो कुछ भी मुझे मिला है और मिल रहा है, वह कम नही है।'

लेकिन कम तुम्हें लग रहा है। कम न होगा। कम नहीं है। लेकिन कम तुम्हें लग रहा है। क्योंकि मन कहे जाता है और मिल सकता है, और मिल सकता है, और मिल सकता है।

परसों रात एक सन्यासिनी मुझ से चप्पल मांगने लगी कि आपकी चप्पल दें। वह पहले भी आयी थी, तब भी उसने चप्पल मांगी थी। मैंने उसे कुछ दिया था; क्योंकि सवाल, क्या देना हूं, यह थोड़ी है। मैंने दिया। उसे कुछ दिया था, मैंने कहा, यह ले जा। क्योंकि चप्पल मागने का रोग बढ जाये तो मैं मुसीबत में पड जाता हू! कितनी चप्पलें दू? और एक के पास दिखती है तो दूसरा मागने आ जाता है, तीसरा मागने आ जाता है। फिर किसको मना करो! तो मैंने उसे काष्ठ की एक छोटी डब्बी दी थी। इस बार वह फिर आई, उसने फिर मांगा कि चप्पल। तो मैंने उससे कहा, पहले मैंने तुझे कुछ दिया था? उसने कहा, कुछ नही, एक

छोटी-सी डिब्बी दी थी। अब अगर इसे मैं चप्पल भी दूं तो अगले साल यह आ के कहेगी, 'क्या दिया था – चप्पल!' क्योंकि सवाल ...

मैं तुम्हारे हाथ में खाली हाथ दूं, तो भी कुछ दे रहा हूं। देखने की आंख चाहिए। और ऐसे मैं उठ के तुम्हारे घर भी चला आऊं, तो भी तुम कहोगे, 'यह और एक मुसीबत कहां से घर आ गई! अब इनकी कौन साज-सम्हाल करे!'

दृष्टि की बात है। बहुत मिल रहा है, लेकिन तुम्हारे पास जो मन है, वह उसे देख ही नही पाता जो है। मन की आदत अभाव को देखने की है।

कभी पता है, दांत टूट जाता है तो जीभ वहीं-वहीं जाती है! जब तक था, कभी न गई। जब टूट जाता है तो वहीं-वहीं जाती है। खाली जगह। अभाव। तुम लाख समझाते हो वहां मे कि क्या सार है; पता तो चल गया एक दफे कि दांत टूट गया है – लेकिन फिर, भूले-चूके फिर तुम पाओगे, जीभ वहीं टटोल रही है। जैसे जीभ अभाव को टटोलती है, ऐसे ही मन जो नही है उसको टटोलता है। जो है, उसे देखने की मन की आदत ही नहीं है।

लोग मुझसे पूछते हैं कि परमात्मा दिखाई क्यों नही पड़ता। वह दिखाई इसीलिए नहीं पड़ता कि वह इतना ज्यादा है, इतना घना है, सब ओर से है, बाहर-भीतर है, देखने वाला भी वही है, दिखाई पड़ने वाला भी वही है – इसीलिए चूके जा रहे हैं। इसलिए थोड़ी कि वह कहीं दूर है, बहुत दूर है। अगर बहुत दूर होता, हम पा ही लेते उसे। चांद पर पहुंच गए, कितनी दूर होगा!

जब पहला रूसी अंतरिक्ष-यात्री वापिस लौटा, तो कहते हैं ख्रुश्चेव ने उससे पहली बात पूछी, 'ईश्वर मिला?' तो उसने कहा कि नही, कोई ईश्वर नही मिला, चांद बिलकुल खाली है। तो रूस में लेनिनग्राड मे उन्होने अन्तरिक्ष-यात्रा के लिए एक अनुसंधानशाला बनाई है। उसके द्वार पर ये वचन लिख दिए गए हैं कि हमारे अंतरिक्ष-यात्री चांद पर पहुंच गए और उन्होंने वहां पाया कि ईश्वर नही है।

जिनको जमीन पे नही मिलता उनको चांद पे कैसे मिलेगा, यह भी तो थोड़ा सोचो! तुम तो तुम ही हो! देखने की नजर तुम्हारी ही है। मिलता होता तो यहां मिल जाता।

रवींद्रनाथ ने बुद्ध के संबंध मे एक कविता लिखी है। कविता बड़ी मधुर है। बुद्ध वापिस लौटे हैं, बारह वर्षों के बाद। यशोधरा ने उनसे पूछा है कि मैं तुमसे एक ही प्रश्न पूछती हूं, इस एक प्रश्न पूछने के लिए जीती रही हूं, कि तुम्हें जो वहां मिला, वह यहां नही मिल सकता था? जो तुम्हें जंगल में जा के मिला, वह घर में नही मिल सकता था? बस एक ही प्रश्न मुझे पूछना है।

बुद्ध को कभी किसी प्रश्न के उत्तर में ऐसा स्तब्ध नहीं रहते देखा गया, जैसे बुद्ध स्तब्ध खड़े रह गए। यह तो वे भी न कह सकेंगे कि यहां नहीं मिल सकता था। नजर की बात थी। अब तो यहां भी है। एक दफा आंख खुल गई, तो घर में भी

वही है, बाहर भी वही है। दुकान पर भी वही है। मंदिर में भी वही है। इसलिए असली सवाल आंख का है।

तुम यह मत पूछो कि क्या चाहता हूं। और यह भी मत पूछो कि मैं क्या पा कर संतुष्ट होऊंगा। कुछ भी पा कर संतुष्ट न होओगे। पाने वाला कभी संतुष्ट हुआ? पाने वाले का असंतोष आगे सरकता जाता है, बडा होता चला जाता है, फैलता चला जाता है – गुब्बारे की तरह। इसलिए तो अमीर भी गरीब बना रहता है और सम्राट भी भिखारी बने रहते है।

फरीद अकबर के पास गया था। गांव के लोगों ने भेज दिया। कहा कि गांव में एक मदरसा चाहिए। कह दो अकबर को। तुम्हें इतना मानता है। फरीद गया। अकबर प्रार्थना कर रहा था, सुबह की नमाज पढ रहा था। फरीद पीछे खड़ा रहा। अकबर ने अपने दोनो हाथ फैलाए नमाज की पूर्णता पर और कहा, 'हे परमात्मा! और धन दे, और दौलत दे! तेरी कृपा की दृष्टि हो!' फरीद लौट पड़ा। अकबर उठा, देखा फरीद सीढ़ियां से नीचे जा रहा है! कहा, कैसे आए? क्योकि फरीद कभी आया भी न था। जब भी जाता था, अकबर ही उसके पास जाता था।

'कैसे आए और कैसे चले?' फरीद ने कहा, 'मैंने सोचा था कि तुम सम्राट हो। यहा भी भिखारी को देखा, इसलिए लौट चला। और फिर मैंने सोचा कि तुम जिससे मांग रहे हो उसी से मैं माग लूगा। बीच में और यह एक ... एक दलाल बीच में और क्यो! गाव के लोगो ने भेजा था कि एक मदरसा खोल दो, यह मागने आया था; लेकिन अब नही। इससे तुम्हारी दौलत मे थोडी कमी हो जाएगी। मै तुम्हें दरिद्र हुआ नही देखना चाहूगा। मेरी तो एक ही आकांक्षा है, सभी समृद्ध हो। लेकिन तुम भिखारी हो।'

तुम्हारा सम्राट भी तो माग ही रहा है। और मांग रहा है। और माग रहा है। जिनके पास है वे भी मांग रहे हैं। तो एक बात तय है कि मिलने से मागना नही मिटता – त्यागने से मागना मिटता है।

इसलिए तो एक अनूठी घटना इस पूरब में घटी कि सम्राट तो हमने पाए कि भिखारी हैं और कभी-कभी हमने कुछ भिखारी पाए जो सम्राट...। महावीर, बुद्ध भिखारी हो के खड़े हो गए, कुछ भी उनके पास न था। क्योंकि उन्हें एक बात दिखाई पड गई कि दौडे जाओ, दौड़े जाओ, दौड़े जाओ, पहुचोगे न। ठहरो, खडे हो जाओ! खड़े होते ही तुम्हारे संबंध शाश्वत से जुड़ जाते है।

तो मैं तुम से यह नही कह सकता कि क्या पा कर तुम संतुष्ट होओगे, मै तुमसे इतना ही कह सकता हू कि पाने से सतोष का कोई संबंध नहीं है। तुम पाने की व्यर्थता देखो। उस व्यर्थता के दर्शन में ही पाने की दौड़ गिर जायेगी। तुम अचानक अपने को खड़ा हुआ पाओगे, दौड़ते हुए नहीं। अचानक तुम पाओगे, तुम्हारे भीतर की प्रज्ञा थिर हो गई, कंपित नहीं हो रही। उस एक अकंपन के क्षण में ही

तुम तृप्त हो जाओगे । और एक बार तृप्ति की झलक मिल जाये तो राज हाथ आ गया, तो आंख हाथ आ गई, तो देखने का ढंग आ गया । परमात्मा तो है, देखने का ढंग चाहिए !

हुस्न की दुनिया को आंखों से न देख
अपनी एक तर्जे-नजर ईजाद कर ।

यह जो परमात्मा के सौंदर्य का जगत है, यह जो परम सौंदर्य का जगत है, इसको साधारण आंखों से देखने की कोशिश मत करो, अन्यथा असंतुष्ट रहोगे, अभाव में जियोगे । भिखारी रहोगे !

हुस्न की दुनिया को आंखों से न देख
अपनी एक तर्जे-नजर ईजाद कर ।

एक नया ढंग, एक नई शैली देखने की खोजो । संतुष्ट हो के देखो । अभी तुमने असंतुष्ट हो के देखा है । असंतुष्ट हो के देखा है तो असंतोष बढ़ता चला गया है । तुम्हारी आंख मे है तो फैलता चला गया है । संतुष्ट हो के देखो । संतोष आंख में होगा, तुम पाओगे संतोष फैलता जाता है ।

तुम्हारे जीवन की दृष्टि ही तुम्हारे जीवन का सत्य हो जाती है । जो तुम विचारते हो वही वास्तविकता हो जाती है । अभी तक तुमने असंतोष, असंतोष, असंतोष, इसको ही साजा-संवारा, इसके ही बीज बोए, इससे ही देखा – निश्चित ही, असंतोष बढ़ता चला गया । जो बीज बोओगे, उसकी ही फसल तो काटोगे ! इस छोटे-से गणित को पहचानो । थोड़ा संतोष से देखो । थोड़ा ऐसे देखो कि कोई असंतोष नहीं है, सब है । भरी आंख, प्रफुल्ल चित्त, कृतज्ञता से भरे, कृतज्ञता में डूबे, पगे – ऐसा देखो । अचानक तुम पाओगे, कहीं तो कुछ कमी नहीं है ! सब तो पूरा-पूरा है ! सब तो भरा-भरा है ! कहीं तो कुछ खाली नहीं है ! क्या है मांगने को और ?

ऐसी झलकें धीरे-धीरे आएंगी, बढ़ती जाएंगी । पहले थोड़े बीज खिलेंगे; फिर और बीज खिलेंगे; फिर और बीजो में से फूल लगेंगे; फूलों में और नए बीज लगेंगे । एक दिन तुम पाओगे, वसंत तुम्हारे चारों तरफ लहराने लगा । उस परम सौंदर्य, उस वसंत का नाम ही परमात्मा है । वही संतुष्टि है । वही परम तृप्ति है ।

तीसरा प्रश्न : तेरी दिव्य आग में जल-जल कर राख हुआ जा रहा हूं । अब तो सारे शब्द बंद हो चुके, एक आस लिए जी रहा हूं ।

कागा सब तन खाइयो, चुन-चुन खाइयो मांस ।
दो नैना नहीं खाइयो, पिया मिलन की आस ।।

नहीं, इन दो आंखों से कोई उस प्यारे को मिलता नहीं । दो के कारण ही तो

मिल नहीं पाता। उसको पाने के लिए तो एक आंख चाहिए। इसलिए तो हम तीसरी आंख की बात करते हैं।

काया सब तन खाइयो, चुन-चुन खाइयो मांस।
दो नैना नहीं खाइयो, पिया मिलन की आस।।

वचन प्यारा है; लेकिन कवि का है, ऋषि का नहीं है। आकांक्षी का है, जानने वाले का नहीं। इन दो आंखों से तो जो प्यारा मिलता है वह बाहर का है। प्रेयसी मिलती है, प्रियतम मिलता है, पति मिलता है, पत्नी मिलती है। इन दो आंखों से तो जो मिलता है, वह बाहर का है। ये दो आंखें तो बाहर से जोड़ने के द्वार हैं। नहीं, उससे मिलना हो तो एक तीसरी आंख चाहिए। परम प्यारे से मिलना हो जो तुम्हारे भीतर ही घर बसाए बैठा है, तुम्हारी प्रतीक्षा करता है कि कब आओ, कब वापिस लौटो; कितने जन्म हो गये तुम्हें गए, कब घर आओगे, परदेश में कैसे लुभा गए – उसे पाने के लिए तो एक आंख...। क्योंकि दो आंख से जो मिलता है, वह द्वैत; और एक से जो मिलेगा, वही अद्वैत।

दो आंखें ही तो दो में तोड़ देती हैं सारे संसार को। फिर ये दो आंखें तो बाहर देखती हैं, भीतर नहीं देख सकती। इसलिए तो समस्त ध्यान की प्रक्रियाओं में आंख बंद कर लेनी पड़ती है, ताकि यह दो आंखों का संसार तो खो जाये, मिट जाये। एक तीसरी आंख, इन दोनों आंखों से बहती हुई ऊर्जा, एक तीसरी आंख में संघट हो जाये। दोनों भ्रू-मध्यों के बीच, इन दोनों आंखों की ऊर्जा संग्रहीत होती है, इकट्ठी होती है – और एक नई ही आंख पैदा होती है, जो भीतर देखती है।

ठीक है, आकांक्षा बिलकुल ठीक है; ठीक दिशा में है। और जलना होगा। राख होना होगा। यह भी सच है।

जिंदगी यूं भी गुजर ही जाती
क्यों तेरा राहगुजर याद आया?

जो उस प्रेमी के द्वारा पुकारे गए हैं, उनको ऐसा ही लगा है। जिंदगी ऐसे ही गुजर जाती है; और एक मुसीबत आ गई कि तूने पुकारा है। ऐसे ही दुख कुछ कम थे? अब तेरे विरह की आग जलाती है।

जिंदगी यूं भी गुजर ही जाती
क्यों तेरा राहगुजर याद आया?

– तेरी याद आ गई, फिर तेरी राह भी मिल गई; अब यह एक नया पीड़ा का सूत्रपात हुआ।

संसार में जो पीड़ा तुमने जानी है, वह विध्वंसक पीड़ा है। उसमें सिर्फ तुम गलते हो, मिटते हो, पाते कुछ भी नहीं। परमात्मा के मार्ग पर भी पीड़ा है, जलन है, पर बड़ी सृजनात्मक है। तुम गलते भी हो, मिटते भी हो, कुछ नया आविर्भूत होता है। मृत्यु अकेली नहीं है वहां। प्रत्येक मृत्यु के साथ नया जन्म है।

हजारों बार मर-मर कर भी न मर पाया प्रेमी कभी।
मरण हर बार आ-आ कर नये ही प्राण देता है।।

उस रास्ते पर बहुत बार मरना होता है, प्रतिपल मरना होता है। क्योंकि जैसे ही तुम थोड़ी देर के लिए न मरे, अहंकार इकट्ठा हो जाता है। इसे पल-पल जलाना होता है। इसे मिटाते ही जाना होता है। नहीं तो जरा ही तुम चूके कि धूल फिर जमी, फिर 'मैं' खड़ा हुआ। यह 'मैं' इतना सूक्ष्म है, धन से खड़ा होता है, पद से खड़ा होता है, त्याग से खड़ा होता है – यहां तक कि विनम्रता के भाव से खड़ा हो जाता है कि मैं तो ना-कुछ हूं। उसमें भी खड़ा हो जाता है।

हजारों बार मर-मर कर भी न मर पाया प्रेमी कभी,
मरण हर बार आ-आ कर नये ही प्राण देता है।

यह सतत मरण की प्रक्रिया ही ध्यान है, प्रार्थना है, पूजा है, अर्चना है।

'तेरी दिव्य आग में जल-जल कर राख हुआ जा रहा हूं!'

घबड़ाना मत। धन्यवाद देना उसे। सौभाग्य कि तुम्हें उसने इस योग्य समझा कि तुम्हें जलाये! धन्यभाग कि तुम पे उसकी नजर गई कि तुम्हें जलाए! क्योंकि इस जलन में ही, इस मिटने में ही नये का सूत्रपात है। सूर्योदय होगा। घबड़ाना मत। पीड़ा भी हो तो रो लेना, आंसू बहा लेना; पर यह आकांक्षा मत करना कि बंद कर, रोक!

जीसस तक को ऐसी घड़ी आ गई थी। सूली पर लटके हुए, आखिरी क्षण में, ऊपर की तरफ आंख उठा के उन्होंने कहा कि 'हे परमात्मा, यह क्या दिखला रहा है? बंद कर!' सूली पर किसको न लगेगा ऐसा! लेकिन फिर उनको होश आ गया, सम्हल गए, तत्क्षण बात बदल दी। वक्त पे बदल दी, ठीक क्षण में बदल दी, अन्यथा चूक जाते। तत्क्षण फिर आंखें ऊपर उठाईं और कहा, 'हे परमात्मा, क्षमा कर! तेरी मर्जी पूरी हो! अगर तू जलाना चाहता है तो यही शुभ होगा! अगर तू मिटाना चाहता है, सूली देना चाहता है, तो जरूर यही मेरे हित में होगा! मेरे कल्याण को तू मुझ से बेहतर जानता है! तेरी मर्जी पूरी हो!'

थक गई है जुबां तो चुप हो कर
काम में आंसुओं को लाए हैं।

रो लेना। कहते न बने, कहना मुश्किल हो जाये, आंसुओं से कह देना। मगर विपरीत की प्रार्थना मत करना। पीड़ा को भोग लेना। जलन को स्वीकार कर लेना। लोग समझाएंगे। लोग कहेंगे, 'लौट आओ, भले-चंगे थे। यह क्या झंझट मोल ले ली?'

मीरा को समझाया लोगों ने। चैतन्य को समझाया लोगों ने। बुद्ध को समझाया लोगों ने, 'लौट आओ! यह क्या पागलपन सवार हुआ है? अपनी बुद्धि को सम्हालो!' सारी दुनिया बुद्धिमान है।

तो तुम जब विरह में रोओगे और जब उसकी आग तुम्हें जलाएगी, और जब तुम्हारा हृदय कटेगा इंच-इंच, हर कोई तुमसे पूछेगा, 'क्या हुआ है ?' तुम न तो लोगों की सुन के लौटना, न लोगों को समझाने लग जाना। क्योंकि कुछ बाते है, जो समझाने-समझाने की नहीं हैं।

सबब हर एक मुझसे पूछता है मेरे रोने का
इलाही सारी दुनिया को मैं कैसे राजदां कर लूं !

कैसे सभी को इस राज में भागीदार बना लू ! सभी पूछते हैं, 'क्यों रो रहे हो ? क्यों गा रहे हो, क्यों नाच रहे हो ?' 'क्यों' तो खड़ा ही है। जरा भी तुमने अन्यथा किया, लोगो से भिन्न किया कि लोगों ने पूछा, 'क्यों ?' लोग चाहते है, तुम ठीक वैसे ही रहो जैसे वे है, रत्ती भर भेद न हो; तुम मूर्तिवत्, यन्त्रवत् चलते रहो भीड़ के साथ। जब तुम रोओगे, गाओगे, कभी मस्ती में हंसोगे – यह सब होगा, क्योंकि भीतर की यात्रा तुम्हें सभी भावों में से गुजारेगी। हर भाव का तीर्थ मिलेगा। कभी-कभी ऐसा भी होगा कि तुम बिलकुल पागल मालूम पड़ोगे – हसोगे भी, रोओगे भी, साथ-साथ।

सबब हर एक मुझसे पूंछता है मेरे रोने का
इलाही सारी दुनिया को मै कैसे राजदा कर लूं।
मैने पूछा कि है मंजिले-मकमूद कहां
खिज्र ने राह बतलाई मुझे मयखाने की।

– पूछा मैंने कि वह आखिरी मंजिल कहा है, तो सद्गुरु ने मुझे राह बताई मधुशाला की।

मैने पूछा कि है मंजिले-मकसूद कहा
खिज्र ने राह बतलाई मुझे मयखाने की।

– मस्ती की, बेहोशी की, प्रेम की. प्रार्थना की !

खोओ अपने को ! जब मैं कहता हूं, जलोगे, उसका इतना ही अर्थ है कि मिटोगे, डूबोगे। धीरे-धीरे तुम पाओगे, पुराने से संबंध टूट गया और एक नई ही चेतना का जन्म हुआ है। इस चेतना मे मस्ती भी होगी, होश भी होगा। इस चेतना में ऐसी मस्ती होगी कि जिसमें होश है। इस चेतना में बेहोशी भी होगी; जैसा महावीर कहते हैं, निवृत्ति संसार से, प्रवृत्ति स्वयं से। इस बेहोशी मे ससार के प्रति बेहोशी होगी, परमात्मा के प्रति होश होगा। 'पर' के प्रति बेहोशी होगी, 'स्व' के प्रति होश होगा। बाहर से तो तुम देखोगे, लुट गए; और भीतर से अनंत धन तुम्हे उपलब्ध हो जाएगा, खजाने उपलब्ध हो जाएगे।

फिर नजर में फूल महके दिल में फिर शमएं जलीं
फिर तसव्वुर ने लिया उस बज्म मे जाने का नाम।

परवाने को देखा है ? जलता है ! फिर शमा जलती है, फिर दीया जलता है,

फिर परवाना आया ! कितनी बार जल चुका है, लेकिन फिर-फिर आ जाता है, फिर शमा में खो जाता है। निश्चित ही परवानों में तर्क, चिंतन, विचार वाले लोग नहीं; अन्यथा कहते, पागल है, दीवाना है। आदमी तो कहते ही हैं।

यह धर्म का प्रेमी भी परवाने की तरह है। हमें लगता है कि जलने चला, लेकिन परवाने से तो कोई पूछे, उसके भीतर हृदय से तो कोई पूछे !

फिर नजर में फूल महके दिल में फिर शमएं जलीं
फिर तसव्वुर ने लिया उस बज्म में जाने का नाम।

उसे तो याद आते ही अपने प्रेमी की, उसकी बैठक की धुन पड़ते ही चारों तरफ फूल खिल जाते हैं, चारों तरफ दीये जल जाते हैं !

परमात्मा प्रेम की खोज है। इसमें तुम हिसाब मत लाना। इसमें तुम पूरे-के-पूरे जाना। तुम यह भी मत कहना कि : दो नैना नहिं खाइयो, पिया मिलन की आस ! तुम इतना भी मत कहना। तुम तो कहना, सब तरह डुबा दो ! यह पिया मिलन की आस इतनी गहन हो जाए कि आस जैसी भी मालूम न पड़े। आस करने वाला कोई न बचे भीतर।

जैसे कोई मरुस्थल में भटक गया हो कई दिनों से और जल न मिला हो, तो पहले प्यास लगती है। प्यास के साथ भीतर यह भाव भी होता है कि मैं प्यासा हूं। फिर प्यास बढ़ती जाती है, जल नहीं मिलता। फिर धीरे-धीरे प्यास इतनी सघन होने लगती है कि भीतर कभी-कभी ऐसा खयाल आता है कि मैं प्यासा हूं, अन्यथा प्यास ही प्यास मालूम पड़ती है। फिर और एक ऐसी घड़ी आती है, आखिरी घड़ी, जब सिर्फ प्यास ही रह जाती है, प्यासा भी नहीं रहता। इतनी भी शक्ति नहीं बचती कि अपने को अलग कर ले और कहे कि मैं प्यास का देखने वाला हूं, कि मैं प्यास का जानने वाला हूं। प्यास ही हो जाती है। सारा प्यासा प्यास में रूपांतरित हो जाता है। पूरे प्राण प्यास में जल उठते हैं। उसी घड़ी में मिलन होता है, जब तुम पूरे के पूरे डूब जाओगे ! बचाने की आकांक्षा अपने को करना ही मत। दो आंख भी बचाने की आकांक्षा मत करना। क्योंकि सब बचाने की आकांक्षा में तुम अपने को ही बचा लोगे। अपने को गंवाना है, खोना है !

आखिरी प्रश्न :

आप न जानो गुरुदेव मेरे !
नित तुम्हें पुकारा करती हूं।
एक बार हृदय में छेद करो
वह क्षण मैं निहारा करती हूं।

कृपा करो, बचाओ ! जल जाऊं, ऐसी भीख दो !

'आप न जानो' – ऐसा कैसे होगा ? जिन्होंने मुझसे संबंध जोड़ा है, कुछ भी उन्हें घटेगा, उसे मैं जानूंगा। संबंध न जोड़ा हो तो बात अलग। जिन्होंने मुझसे संबंध जोड़ा है, जिन्होंने इतनी हिम्मत की है मेरे साथ चलने की – क्योंकि मेरे साथ चल के मिलेगा क्या ? न धन, न प्रतिष्ठा, न पद। होगी पद-प्रतिष्ठा, खो जायेगी। लोक-लाज खोनी पड़ेगी। गंवाओगे ही मेरे साथ, कमाओगे क्या ?

तो जिसने मेरे साथ चलने की हिम्मत की है और साहस किया है, उसके भीतर कुछ भी घटे, मुझे पता चलेगा। तुम जुड़ गए ! उसी को तो मैं सन्यास कहता हूं – मुझ से जुड़ जाने का नाम। वहां तुम्हारे हृदय में कुछ खटका होगा तो मुझे पता चलेगा। तुम्हें भी पता चलेगा, शायद उसके भी पहले पता चल जाए।

'आप न जानो' – ऐसा होगा नहीं। बस एक शर्त तुम पूरी कर देना – जुड़ने की – उसके बाद शेष मैं सम्हाल लूंगा। पहली ही शर्त पूरी न हुई तो फिर शेष नहीं सम्हाला जा सकता। और घबड़ाओ मत।

सबा ने फिर दरेजिंदा पे आ के दी दस्तक
सहर करीब है दिल से कहो न घबराये।

– सुबह की हवा आ गई, कारागृह पे उसने फिर से दस्तक दी !

सबा ने फिर दरेजिंदा पे आ के दी दस्तक
सहर करीब है दिल से कहो न घबराए।

इधर मैं आया हूं, तुम्हारे हृदय पे दस्तक दी है। अगर तुम्हें सुनाई पड़ गई है – सहर करीब है, दिल से कहो न घबराए।

ये जो पीड़ा के क्षण होंगे, किसी दिन तुम इनके लिए अपने को धन्यभागी समझोगे। आज तो पीड़ा होगी ही। राह पर पीड़ा होती है। मंजिल पे पहुंच के यात्री को पता चलता है कि जो पीड़ा थी वह तो कुछ भी न थी, जो पाया है वह अनंत गुणा है।

खुश्बुओं के सफर में गुजरी है
चांदनी के नगर में गुजरी है
भीख है, बाकी जिंदगी है वही
जो तेरी रहगुजर में गुजरी है।

एक दफा पहुंच के पता चलता है कि और सब –

खुश्बुओं के सफर में गुजरी है
चांदनी के नगर में गुजरी है

भीख है – और सब भीख है – चाहे खुश्बुओं का रास्ता हो, चाहे चांद की नगरी हो।

... बाकी जिंदगी है वही
जो तेरी रहगुजर में गुजरी है।

जो परमात्मा को खोजने में गुजरी है, वही जिंदगी है। बाकी जिंदगी का नाम मात्र है।

तो एक तरफ से तो तुमसे कहता हूं, सब गंवाना होगा। लेकिन धन्यभागी हैं वे जो गंवाने को राजी हैं। क्योंकि वे ही सभी कुछ पाने के अधिकारी हो जाते है। एक तरफ से तो लगेगा, तुम खोने लगे, दूसरी तरफ से तुम पाओगे, पाने लगे।

खोया हुआ-सा रहता हूं अक्सर मैं इश्क में
या यूं कहो कि होश में आने लगा हूं मैं।

संसार छूटने लगेगा – सत्य मिलने लगेगा। जुआरी चाहिए! अपने को दाव पर लगाने वाले चाहिए। अगर तुमने अपने को दाव पे लगा दिया तो तुम फिक्र मत करो। तुमने अगर संबंध बनाने की हिम्मत कर ली है तो कुछ उत्तरदायित्व मेरा भी है। जब तुम मुझसे जुडते हो, तुम अकेले ही थोड़ी जुड रहे हो; मैं भी तुमसे जुड रहा हू। इतना ही खयाल रखना कि 'तुम मुझसे जुड़े हो?' कही ऊपर-ऊपर तो नही है बात? कही कहने भर की तो नही है बात? क्योंकि बहुत लोग आ जाते है। कोई आता है, मुझसे कहता है, बस अब आपके चरणों में सब समर्पण है। तो मैं कहता हू, ठीक, तो अब संन्यास ले लो! वह कहता है यह जरा मुश्किल है। सब समर्पण है! यह जरा कठिन है।

क्या कह रहे थे, अभी क्षण भर पहले? सब समर्पण है! सब समर्पण का तो अर्थ यह था कि सन्यास की तो छोडो, अगर मैं कहता कि जाओ, डूब मरो नदी में, तो भी चले गए होते। अगर बचाना होता तो मैं भागा हुआ आता। तुम्हे चिंता की जरूरत न थी। लेकिन लोग शब्दो का उपयोग करते हैं, शायद अर्थ का भी उन्हे बोध नही। औपचारिक बातें लोग सीख गए है। उपचार निभाते है। सब समर्पण है! सब मे सन्यास समाविष्ट न था? सब में तो मौत भी समाविष्ट थी।

बस इतना ही तुम खयाल रखना, तुम्हारी तरफ मे पूरा हो, प्रमाणिक हो, तुम्हारी तरफ मे हार्दिक हो – फिर यह न होगा कि मैं न जानू। जो भी हो रहा है, मैं जानता रहूगा।

तुम्हारी प्रार्थना जरूरी नही कि पूरी करू, क्योंकि तुम तो जल्दी ही घबड़ा जाते हो। तुम कहते हो, अब मत रुलाओ, अब बहुत हो गया! तुम तो कहते हो, अब मत जलाओ, अब तो बहुत हो गया! तुम तो जल्दी ही उकता जाते हो, जल्दी ही घबड़ा जाते हो। मेरा उपयोग ही यही है तुम्हारे साथ कि तुम्हें हिम्मत बधाऊं, कि बस थोड़ी दूर और, ज्यादा नही चलना है।

बुद्ध एक बार एक गाव के पास से गुजरे, दूसरे गाव जा रहे थे। गांव में लोगो से पूछा, कितनी दूर है? गांव के लोगों ने कहा, यही कोई दो कोस। फिर कोई दो कोस चल चुके जंगल में। लकड़हारा आता था, उससे पूछा कि भई दूसरा गांव कितनी दूर? उसने कहा, बस यही कोई दो कोस। बुद्ध मुस्कुराए। आनंद

जरा क्रोध में आ गया। उसने कहा, गांव के बदतमीज बेईमान लोग! दो कोस हम चल भी चुके और अभी भी दो कोस है, यह कहना है!

फिर कोई दो कोस चल चुके, अब तो सांझ भी होने लगी, सूरज भी ढलने लगा और एक आदमी से पूछा, तो उसने कहा, यही कोई दो कोस, बस अब पहुंचते ही हैं। आनंद ने कहा कि इस तरह के झूठ बोलने वाले लोग मैंने कभी नहीं देखे। यात्रा करते जिंदगी हो गई!

बुद्ध ने कहा, ये झूठ बोलने वाले लोग नहीं हैं; ये मेरे जैसे लोग हैं। ये बड़े अच्छे लोग हैं। ये हिम्मत बधाते हैं। ये कहते हैं, बस जरा दो कोस! ये तुम्हें चलाए जा रहे हैं। देखो, छह कोस तो चला ही चुके!

अब मैं भी तुमसे कहता हूं, दो ही कोस है।

तुम कई बार थक जाते हो, बैठ जाना चाहते हो, तुमसे कहना पड़ता है, बस होने को ही है।

सबा ने फिर दरे-जिंदा पे आ के दी दस्तक
सहर करीब है दिल से कहो न घबराए।

आज इतना ही

दिनांक २१ मई, १९७६; श्री रजनीश आश्रम, पूना

अणथोवं वणथोवं, अग्गीथोवं कसायथोवं च ।
न हु भे वीससियव्वं, थोवं पि हु तं बहु होइ ॥ २६ ॥
कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणयनासणो ।
माया मित्ताणि नासेइ, लोहो सव्वविणासणो ॥ २७ ॥
उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे ।
मायं चऽज्जवभावेण, लोभं संतोसओ जिणे ॥ २८ ॥
जहा कुम्मे सअंगाई, सए देहे समाहरे ।
एवं पावाइं मेहावी, अज्झप्पेण समाहरे ॥ २९ ॥
से जाणमजाणं वा, कट्टं आहम्मिअं पयं ।
संवरे खिप्पमप्पाणं, बीयं तं न समायरे ॥ ३० ॥
सव्वगंथविमुक्तो, सीईभूओ पसंतचित्तो अ ।
जं पावइ मुत्ति सुहं, न चक्कवट्टी वि तं लहइ ॥ ३१ ॥

अध्यात्म प्रक्रिया है जागरण की

कुछ मिटे-से नक्से-पा भी है जुनू की राह मे
हमसे पहले कोई गुजरा है यहा होते हुए ।

शास्त्र का सम्यक् उपयोग भी है, असम्यक् उपयोग भी । शास्त्र को जो अंध की तरह स्वीकार कर ले, शास्त्र उसके लिए बोझ हो जाता है । शास्त्र को जो समझे, शास्त्र को जो निष्पक्ष हो कर विचार करे, शास्त्र को जो जागरूक हो कर ध्यान करे, तो शास्त्र से बड़ी सुगध उठती है, बड़ी मुक्तिदायी सुगंध उठती है ।

शास्त्र को पकड़ना मत— सोचना । शास्त्र को अंधे की तरह स्वीकार मत करना । अधे की तरह स्वीकार करने मे शास्त्र का अपमान है । आख खोल कर, शास्त्र में उतरना, शास्त्र को स्वय मे उतरने देना — तो शास्त्र का सम्मान है ।

कोई भी सद्गुरु तुम्हे अधा नही बनाना चाहता है । क्योंकि वस्तुत तो, तुम्हारी आख में ही तुम्हारा गुरु छिपा है । तो सभी सद्गुरु तुम्हारी आख खोलना चाहते हैं । उतनी ही देर तुम्हारे साथ होना चाहते है कि तुम्हारी आख खुल जाये, कि तुम्हें अपना भीतर का गुरु मिल जाये ।

महावीर के ये वचन जैन पढते है — अधे की तरह । और अ-जैन तो पढेंगे क्यो ! गीता हिन्दू पढते है — अंधे की तरह । गैर-हिन्दू तो फिक्र क्यो करेंगे ! कुरान मुसलमान पढ़ते हैं, दोहराते है तोते की तरह । गैर-मुसलमान तो फिक्र ही क्यो करेगा !

मेरे जाने, तुम शास्त्र को तभी समझ सकोगे जब तुम न हिंदू हो, न मुसलमान हो, न जैन हो । क्योकि अगर पक्षपात पहले से ही तय है, अगर तुमने जन्म से ही तय कर रखा है कि क्या ठीक है, तो अब ठीक की खोज कैसे करोगे ? मान ही लिया हो कि सत्य कहा है, तो आविष्कार का उपाय कहा रहा ? तुमने जल्दी स्वीकार कर लिया, खोजे बिना स्वीकार कर लिया, तो तुम खोज से वंचित रह जाओगे ।

ये महापुरुषों के चरणचिह्न तुम्हें बांध लेने को नही हैं, तुम्हें मुक्त करने को हैं । और ये चरणचिह्न बड़े मिटे-मिटे से है । काफी समय बीत गया, इन राहो पर और लोग भी गुजर चुके हैं । इन चरण चिह्नों को अंधे की तरह मत मान के चलना, अन्यथा भटकोगे । जागना, खोजना । इन चरणचिह्नो मे अपने चरणो की गति को

खोजना है, अपनी चरणों की शक्ति को खोजना है।

कुछ मिटे-से नक्से-पा भी हैं जुनूं की राह में
हमसे पहले कोई गुजरा है यहां होते हुए।

– और सौभाग्यशाली हैं हमसे कि हम पहले लोग यहां गुजरे हैं। वे जो कह गये हैं, उनके जीवन का अनुभव जो बिखेर गये हैं, उससे तुम बहुत कुछ पा सकते हो। लेकिन पाने के लिए बड़ी समझदारी चाहिए।

समझो। जीवन से बहुत कुछ पाया जा सकता है। लेकिन तुम तो जीवन से भी नहीं पाते हो। शास्त्र तो जीवन की छाया मात्र है, प्रतिफलन है। शास्त्र जीवन से निकलते हैं, जीवन शास्त्र से नहीं निकलता। तुम्हें जीवन मिला है, उससे तुम कुछ नहीं पाते, तो बहुत कठिन है कि तुम शास्त्र से कुछ पा सकोगे। क्योंकि मूल से नहीं मिलता कुछ, छाया से क्या मिलेगा?

जो जानते हैं, जो जाग के जीते हैं, जो हिम्मत और साहस से जीते हैं, जिनके जीवन का आधार सुरक्षा, सुविधा नहीं है, साहस है–वे जीवन से भी निचोड़ लेते हैं सत्य को। वे शास्त्र से भी निचोड़ लेते हैं सत्य को। जो जाग कर जीते हैं वे तो छाया में भी मूल को खोज लेते हैं क्योंकि छाया में भी– 'कुछ मिटे-से नक्से-पा' कुछ धुंधले हो गये पैरों के चिह्न हैं।

अभागे हैं वे, जो जीवन से भी वंचित रह जाते हैं। सौभाग्यशाली हैं वे, जो कि शास्त्रों से भी खोज लेते हैं। इधर महावीर के वचनों पर हम चर्चा कर रहे हैं – इसलिए नहीं कि तुम उन्हें मान लो। मानने से कभी कुछ हुआ नहीं। मानना तो कमजोर की आदत है। वह कहता है, 'कौन चले, कौन झंझट करे! ठीक ही कहते होंगे। हम पूजा करने को तैयार हैं। हम शास्त्र को फूल चढा देंगे। कहो, शोभा-यात्रा निकाल देंगे। लेकिन हमसे जीवन बदलने को मत कहो। वह जरा ज्यादा हो गया।'

पूजा हमारी तरकीब है शास्त्र से बचने की। मंदिर तुम्हारे धर्म के प्रतीक नहीं; धर्म के साथ तुमने जो चालाकी की है, उसके प्रतीक हैं।

मन बड़ा चालाक है।

मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने नौकर से कहा था कि मेरे जूतों पे पालिश कर दे।

'अरे फजलू, इतनी देर हो गई और अभी तक मेरे जूतों पे पालिश भी नहीं हो पाया?'

'सरकार! यह दूसरा बूट हाथों में है।'

'और पहला?'

नौकर ने कहा, 'उसे इसके बाद हाथ में लूंगा सरकार।'

पहला! दूसरे के बाद!

मन बहुत चालक है! बड़ी तरकीबें खोजता है। ऐसी तरकीबें खोजता है कि दूसरे

तो धोखा खाते ही हैं, खुद भी धोखा खा जाता है। इस मन से थोड़े जागना। मन ही तुम्हें मनन नहीं करने देता है। मन ही तुम्हें उतरने नहीं देता। जहां भी जाते हो, तुम्हारी गंदी छाया पड़ जाती है। शास्त्र पढते हो, तुम्हारी छाया में शास्त्र दब जाता है। शब्द सुनते हो, तुम्हारे पास तक पहुंचते-पहुंचते उनका अर्थ रूपांतरित हो जाता है।

ये महावीर के वचन बड़े बहुमूल्य हैं। आज के सूत्र तुम्हारे जीवन को बदल देने वाले हो सकते हैं। ये तथ्यगत हैं। महावीर का कोई रस सिद्धांतों में नहीं है। महावीर कोई दार्शनिक नहीं हैं। महावीर तो सीधे पथ के वैज्ञानिक खोजी हैं।

इन शब्दों को समझना, मनन करना। बन सके, थोड़ा-थोड़ा उतारना। क्योंकि उतारोगे, तभी इनका अर्थ खुलेगा। इनका अर्थ इनके पढ़ने और इनके सुन लेने में नहीं है। इनका अर्थ इनके साथ थोडी देर जीने मे है। क्षण भर को भी अगर तुम इनके साथ जिये, तो तुम पाओगे इनकी सचाई, इनकी गहनता, इनकी गंभीरता। और क्षण भर भी तुम जिये तो ये सत्य तुम्हारी धरोहर हो जायेंगे; ये तुम्हारा हिस्सा हो जायेंगे। ये तुम्हारे खून, हड्डी, मांस-मज्जा में समा जायेंगे। इन्हें समाने देना।

पहला सूत्र : 'ऋण को थोडा, घाव को छोटा, आग को तनिक और कषाय को अल्प मान कर मन बैठ जाना। क्योंकि ये थोडे बढ के बडे हो जाते है।'

ऋण को थोडा ..। जो भी आदमी ऋण लेता है, पहले थोडा ही मान के लेना है और सोचता है. 'चुका देंगे। इतना-सा तो ऋण है। ब्याज भी कुछ ज्यादा नही है, चुका देंगे। जो भी ऋण लेते हैं, इसी आशा में लेते है कि चुका देंगे। ऋण चुकता नहीं मालूम होता फिर, बढता जाता है। ब्याज घना होता जाता है। ब्याज ही नही चुकता, मूल का चुकाना तो बहुत दूर। और यह साधारण जीवन के ऋण की बात तो छोड़ दो, जो जीवन का बहुत गहरा ऋण है, वह तो कभी चुकता नही मालूम पड़ता। ले सभी लेते है, फम जाते हैं।

महावीर कहते हैं, सभी ले लेते हैं तो जरूर मन में कोई कारण होगा ले लेने का। सभी सोचते हैं, थोडा है। थोडा श्रम कर लेंगे, चुक जायेगा।

'ऋण को थोडा, घाव को छोटा...।' कितना ही छोटा घाव हो, यह सोच के कि छोटा है, क्या फिक्र करनी है, बैठ मत जाना, आश्वस्त मत हो जाना, क्योंकि घाव प्रतिपल बड़ा हो रहा है, जैसे छोटा-सा बीज बडा वृक्ष हो जाता है। बीज को मिटा देना बड़ा आसान था, वृक्ष को काटना बहुत मुश्किल हो जायेगा। तो जो जानकार हैं, वे ऋण लेते ही नही। वे कहते हैं, गरीबी में जी लेंगे; लेकिन ऋण ले के अमीर होने में कुछ सार नहीं, क्योंकि वह अमीरी ऊपर होगी, धोखे की होगी, भीतर जलन होगी और भीतर दरिद्रता होगी। रूखी रोटी खा के सो लेंगे, एक बार खा लेंगे, पर ऋण न लेंगे; क्योंकि ऋण बढेगा। शायद पेट मे तो रोटी पड़ जायेगी, लेकिन प्राणों की शांति खो जायेगी। शायद ऊपर-ऊपर से तो सब रौनक हो जायेगी, भीतर-भीतर अंधेरा हो जायेगा।

महावीर साधारण ऋण की बात नहीं कर रहे हैं; वह तो उदाहरण है। लेकिन जीवन में हम ऐसे बहुत ऋण लिये हैं। हमारा सारा जीवन ऋण से भरा है। महावीर तो कहते है, परमात्मा से भी मत लेना। लेने की आदत ही मत डालना। क्योंकि आदत बढ़ती है। बीज वृक्ष होता है। आज थोड़ा लोगे, कल और थोड़ा ज्यादा लोगे, परसों और थोडा ज्यादा लोगे – भिखमंगे हो जाओगे। यहां तो सम्राट भी भिखमगे हैं; लेते चले जाते है।

महावीर कहते है, ऋण लेना ही मत। और जब बीज की तरह छोटा अंकुर उठे, भीतर भाव उठे, पहली लहर उठे, तभी रोक देना। घाव को छोटा मत मानना, क्योंकि छोटे-छोटे घाव बड़े हो के नासूर हो जाते है। जो उन्हें प्रथम चरण में रोक देता है, वही रोक पाता है।

महावीर कहते हैं, घाव बडा हो जाये, फिर चिकित्सा करने की चिंता में पडोगे; बड़ी आसानी से घाव को रोका जा सकता है, जब वह बहुत छोटा है, या जब अभी पैदा ही नहीं हुआ। पैदा होने के पहले ही मार देना।

क्रोध की लहर उठती है – एक घाव उठा आत्मा में। तुम कहते हो, आज तो कर लें, कल से न करेंगे। अब आज तो जो हो गया, हो जाने दो! क्रोध करके तुम पछताते हो; निर्णय भी लेते हो, कल न करेंगे। लेकिन जब क्रोध उठता है, तब तो तुम कर ही लेते हो। और फिर तुम कहते हो, यह तो छोटा-सा क्रोध है, कोई युद्ध तो खडा नहीं किया, किसी की जान तो ली नहीं। दो कड़े शब्द कह दिये तो क्या बिगड़ गया? और फिर, बिना कड़े शब्द कहे कहीं काम चला है! कहीं संसार चला है! यहां अगर बुद्ध बन के बैठ गये तो लोग बुद्धू समझेंगे। यहां जोर-जबर्दस्ती की दुनिया है। यहां अगर हमला न किया तो दूसरे लोग हमला कर देंगे। यहां अगर किसी ने आंख दमकाई और उसको जवाब न दिया, तो सभी लोग आंख दमकाने लगेंगे। फिर तो जीना मुश्किल हो जायेगा।

तुम बहाने खोज लेते हो। तुम तरकीबें खोज लेते हो। फिर तुम कहते हो, इतना-सा तो है, इसमें क्या बिगड जायेगा? कौन महानर्क हुआ जा रहा है, कौन-सा महापाप हुआ जा रहा है! छोटा है, क्षमा माग लेंगे, प्रार्थना कर लेंगे, गंगा-स्नान कर आयेंगे, पूजा कर लेंगे, दान कर देंगे – कुछ कर लेंगे; लेकिन अभी तो कर लो।

'घाव को छोटा, आग को तनिक...।'

छोटी-सी चिन्गारी महलों को जला देती है।

'और कसाय को अल्प मान...।' क्रोध है, लोभ है, माया-मोह है – कसाय है। 'कसाय' शब्द महावीर का बड़ा बहुमूल्य है – जिससे तुम कसे हो, जिससे तुम बंधे हो, जो तुम्हारा बंधन है। जैसे हिंदू-शास्त्र में 'पशु' शब्द है। जो पशु का अर्थ है वही जैन-शास्त्रों में कसाय का अर्थ है। पशु का अर्थ होता है: जो पाश में बंधा है। पशु यानी पाश मे बधा, बधन में पड़ा। पशु का अर्थ सिर्फ जानवर नहीं है। पशु

का अर्थ है : जो बंधा है, चारों तरफ जिसके जंजीरें हैं । जो बंधा है, वह पशु । जो मुक्त हुआ, वही मनुष्य है । तो सभी मनुष्य दिखाई पड़ने वाले लोग मनुष्य नहीं हैं । काश ! मनुष्यता इतनी सस्ती होती कि दिखाई पड़ने से मिल जाती ।

नहीं, जिनके बंधन गिर गये, जिन्होंने अपनी पशुता काट दी, पाश काट डाले, जो मुक्त हुए -- वही मनुष्य है । जो मनन को उपलब्ध हुए, वही मनुष्य हैं । जो मनु बने, वही मनुष्य हैं ।

जैनों का शब्द ' कसाय ' वही अर्थ रखता है -- जो बाध ले, कस दे, जो बांधती चली जाये और तुम सिकुड़ते जाओ और छोटे होते जाओ, और बंधन बोझिल होते चले जायें ।

कसाय को अल्प मान, विश्वस्त हो के मत बैठ जाना । अल्पता तो धोखा है । यह तो तरकीब है कसाय की तुम्हारे भीतर प्रवेश की । यह तो बीमारी का उपाय है तुम्हारे भीतर घर बनाने का । यह तो बीज का ढग है पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश करने का ।

तुम थोड़ा सोचो कि बीज बहुत बड़ा होता, असंभव था वृक्षों का होना ! उतना बड़ा बीज पृथ्वी में प्रवेश कैसे करता ? बीज बड़ा छोटा है, यह वृक्षों की तरकीब है । बड़ा छोटा बीज बनाते हैं । बड़े से बड़ा वृक्ष भी बड़ा छोटा-सा बीज बनाता है । कोई भी रंध्र, कोई भी जरा-सा छेद पा के घुस जायेगा पृथ्वी में । पृथ्वी को पता भी न चलेगा । लेकिन अगर जितने बड़े वृक्ष है, इतने ही बड़े उनके बीज होते, तो वृक्ष खो जाते । कहा से पृथ्वी में प्रवेश होता ? जितनी बड़ी रंध्रें, इतने बड़े छिद्र कहा खोजने ?

बीज, वृक्ष कितना ही बड़ा हो, छोटे ही बनाता है । छोटे में तरकीब है । वृक्ष अपने को पुनः पुनः जन्माना चाहता है । कई तरकीबें करता है वृक्ष । फूल उगाता है सुंदर, तितलियों को लुभाने के लिए । क्योंकि तितलियों के पैरों में लग के, बीज के छोटे-छोटे कण-पराग, नर पौधे तक पहुच जायेंगे, नारी पौधे तक पहुंच जायेंगे । मिलन हो जायेगा नर और मादा का । तो फूल जो है विज्ञापन है वृक्ष का; बुलावा है तितली को कि आओ । तितली से प्रयोजन नहीं है, तितली के पैरों में पराग लग जाये तो नर मादा को खोज ले, मादा नर को खोज ले, तो बीज-निर्माण हो, तो संतति आगे बढ़े ।

सेमर के फूल देखे ! बीज के पास रुई को पैदा करते है । क्योंकि सेमर बड़ा वृक्ष है । अगर बीज नीचे ही गिरें तो वृक्ष की छाया के कारण बड़े न हो पायेंगे । वृक्ष बड़ी होशियारी कर रहा है । वह साथ में रुई पैदा कर रहा है । तुम्हारे तकियों के लिए नहीं, अपने बीज को हवा की यात्रा पर भेजने को, ताकि बीज दूर चला जाये, नीचे न गिरे । ठीक वृक्ष के नीचे गिर जायेगा तो मर जायेगा । इतने बड़े वृक्ष की छाया में कैसे पनपेगा, कैसे बड़ा होगा ? धूप न मिलेगी । पानी न मिलेगा । क्योंकि

बड़ा वृक्ष सब पी जायेगा । पूरी भूमि को निचोड़ लेगा । ये छोटे-छोटे बीज तो भर जायेंगे । इन बेटे-बेटियों के लिए वह थोड़ी-सी रुई पैदा करता है । वे रुई के बहाने हवा पे तिर जाते हैं, हवा के झोंके में दूर निकल जाते हैं । कहीं दूर जा के जमीन खोज लेंगे । फिर वहां वे भी बड़े हो के खड़े हो जायेंगे ।

काम, क्रोध, लोभ, मोह भी बीज की तरह तुम्हारे मन की भूमि में आते हैं । इसलिए महावीर का सूत्र बड़ा बहुमूल्य है । वे यह कहते हैं, छोटे मान के मत सोच लेना कि क्या बिगड़ता है । जरा-सा बच्चे पे क्रोध कर लिया, क्या हर्ज । अपना ही बच्चा है । उसके ही सुधार के लिए क्रोध कर रहे हैं । और फिर क्रोध जरा-सा है । एक चांटा भी मार दिया तो क्या, अपना ही तो है ! ऐसे छोटे-छोटे बहाने खोज के क्रोध प्रवेश करता है, माया प्रवेश करती है, मोह प्रवेश करता है, लोभ प्रवेश करता है । आदमी कहता है, कोई ज्यादा तो मैं माग नहीं रहा, थोड़ा-सा ही मांग रहा हूं । इस ससार में तो इतनी-इतनी वासनाओं से भरे लोग हैं; मैं तो कुछ मांगता नहीं । परमात्मा, एक छोटा-सा मकान मागता हूं, छोटी-सी घर-गृहस्थी हो, सुख-शांति हो ! ...

छोटा मिल जायेगा तब तुम बड़ा मागना शुरू करोगे । क्योंकि छोटा मिलते ही इतना छोटा हो जायेगा कि तुम्हारी वासना उसमे समा न सकेगी । फिर तुम कहोगे, 'और... ' । फिर तुम कहोगे, 'और ...' । बीज की तरह जो प्रवेश हुआ था, वह जल्दी ही वृक्ष की तरह पनपने लगेगा । और बीज की तरह जिसे मिटाना अति सुगम था, फिर वृक्ष को काटना मुश्किल हो जायेगा; क्योंकि इस वृक्ष की शाखायें तुम्हारी आत्मा में फैल जायेंगी । फिर इस वृक्ष को उखाड़ने में तुम्हें लगेगा, तुम्हारे प्राण उखडे । तुम जरा-जीर्ण होने लगोगे ।

कभी खयाल किया, जो आदमी जिंदगी भर क्रोध करता रहा है, वह कितना सोचता है क्रोध छोड़ दें ! कौन नही सोचता ! क्योंकि क्रोध जलाता है, व्यर्थ की आग में गिराता है, जहर से भरता है, जीवन से सारा सुख-चैन खो जाता है । कौन नही चाहता ! लेकिन क्रोधी क्रोध छोड़ नही पाता । लाख सोचता है, छोड़ दे; छोड़ नही पाता । क्योंकि अब उसे समझ में ही नही आता कि जड़ें उखाड़े कहा से ! अब तो उसे ऐसा भी डर लगने लगता है कि मैंने सदा ही क्रोध ही तो किया है, क्रोध ही तो मेरा होना है । अगर क्रोध ही गया तो मैं कहां बचूगा, मैं क्या बचूंगा । उसको अपनी प्रतिमा ही खोती मालूम पड़ती है । क्रोध के बिना वह अत्यंत दीन मालूम पडेगा । क्रोध ही उसका बल था । क्रोध में ही उसकी महिमा थी । क्रोध में ही वह दूसरो की छाती पे चढ गया था । क्रोध में ही उसने किसी को पराजित किया था। क्रोध में ही बाजार में प्रतियोगिता की थी, प्रतिस्पर्धा की थी । क्रोध में ही उसने बड़ा मकान बना लिया था । क्रोध की ही तरंगों पे चढ़ के उसने जीवन को जाना है । आज अचानक क्रोध छोड़ देने की बात उठती है; उठती है, उसी के मन में उठती है,

कोई न कहे तो भी उठती है — क्योंकि क्रोध दुख देता है। लेकिन, क्रोध उसकी प्रतिमा में इतना प्रविष्ट हो गया है रग-रेशे में, जड़ें फैल गई हैं छोटे-छोटे स्नायुओं में, तंतु-जाल हो गया है!

कभी किसी बड़े वृक्ष को पृथ्वी से उखाड़ के देखा! कितने दूर-दूर तक जड़ें फैल जाती हैं! दूसरे वृक्षों की जड़ों को भी अपने में अटका लेती हैं। तुम्हारे मकान की भूमि में चली जाती हैं। मकान की नींव में प्रवेश कर जाती हैं। मकान की ईंटों को जकड़ लेती हैं।

बैंकाक के पास बुद्ध की एक प्रतिमा है, बड़ी मूल्यवान प्रतिमा है! एक वृक्ष उस प्रतिमा में समा के बैठ गया है। प्रतिमा खंड-खंड हो गई है। वृक्ष ने प्रतिमा के कोने-कोने में जड़ें पहुंचा दी हैं। तुम कहोगे, वृक्ष को अलग क्यों नहीं कर देते? लेकिन अब वृक्ष को अलग किया कि प्रतिमा गिरेगी। वृक्ष तोड़ रहा है प्रतिमा को, लेकिन वृक्ष ही जोड़े भी हुए है। उसकी ही जड़ों में प्रतिमा अटकी है, खंड-खंड हो गई है, टुकड़े-टुकड़े हो गए हैं। नाक अलग है, लेकिन जड़ों में अटकी है। हाथ टूट गया है, लेकिन जड़ों में फंसा है।

जब भी मैं इस प्रतिमा को चित्रों में देखता हूं, तभी मुझे आदमी की याद आई। अब भक्त चाहते हैं कि इससे छुटकारा हो जाये। यह तो मिटाये डाल रही है। इतनी बहुमूल्य प्रतिमा को नष्ट कर डाला इस वृक्ष ने। लेकिन इस वृक्ष को पानी देते हैं, दुश्मन को पानी देते हैं। क्योंकि जिस दिन इस वृक्ष को हटाया, उसी दिन प्रतिमा खंड-खंड हो के गिर जायेगी। तोड़ा भी इसी ने है, जोड़े भी यही है। यही अड़चन है।

क्रोध ही तुम्हें तोड़ रहा है, क्रोध ही तुम्हें जोड़े भी है। लोभ ही तुम्हें तोड़ रहा है, लेकिन लोभ ही तुम्हें सम्हाले भी है। लोभ ही तुम्हें नर्क की तरफ ले जा रहा है, लेकिन लोभ ही तुम्हारी नाव भी है। अब तुम मुश्किल में पड़ोगे। नाव छोड़ो तो डूबे। नाव में बैठे तो नाव सरक रही है नर्क की तरफ। छोड़ना भी तुम चाहते हो, एक पैर उठा भी लेते हो; लेकिन छोड़ा तो डूबे।

इसलिए महावीर कहते हैं, सचेत हो जाना! सावधान हो जाना!

'ऋण को थोड़ा, घाव को छोटा, आग को तनिक और कसाय को अल्प मान कर विश्वस्त मत हो जाना।' ये छोटे जो आज हैं, कल बड़े हो जायेंगे; क्योंकि ये थोड़े ही बढ़ के बहुत हो जाते हैं।

मां के गर्भ में जब पिता का बीज पड़ता है, तो क्या होता है? इतना छोटा होता है कि खाली आंख से देखा भी नहीं जा सकता। इतना छोटा होता है कि दूरबीन चाहिए, खुर्दबीन चाहिए। एक संभोग में कोई एक करोड़ जीवाणु पिता के वीर्य से मां में प्रवेश करते हैं। एक करोड़! वीर्य की एक बूंद में लाखों होते हैं। इतने छोटे! फिर वही गर्भाधान में बड़ा होने लगता है। वही बीज एक से दो होता

है, दो से चार होता है, चार से आठ होता है – इस तरह बढ़ता है। अपने को ही तोड़ता है। एक होता है, बड़ा होता है, पोषण मिलता है, दो हो जाता है। टूट के दो टुकड़े हो जाते हैं, चार हो जाते है, आठ हो जाते है, फैलता जाता है। फिर तुम्हारा पूरा शरीर उसी से निर्मित हुआ है।

कोई सात अरब जीवाणु तुम्हारे शरीर में है। एक से शुरू हुए, सात अरब तक पहुंच गए है। और बहुत जल्दी पहुंच जाते हैं। दिन दूने, रात चौगुने होते चले जाते है। जो आख से नहीं दिखाई पड़ता था, वही आज तुम्हारा मित्र होगा, तुम्हारा भाई होगा, तुम्हारा बेटा होगा, तुम्हारी पत्नी, तुम्हारी प्रेयसी। जो अदृश्य था, जिसको देखने के लिए खुर्दबीन चाहिए थी, इतना छोटा इतना बडा हो जाता है!

फैलाव प्रकृति का नियम है। यहां किसी भी चीज को जगह दी, वह फैलेगी। फैलना स्वभाव है। इसलिए तो हिंदू विश्व को ब्रह्म कहते हैं। ब्रह्म यानी जो फैलता चला जाता है; जो जानता ही नहीं कैसे रुके, जो फैलता ही चला जाता है; अनत जिसका विस्तार है; जिसके फैलाव की कोई सीमा नही। यहा छोटी-सी चीज पकड़ो, जल्दी ही बडी होने लगती है। इन छोटी-छोटी बातों के कारण तुम भटकते चले जाते हो।

कभी-कभी तुम्हे खयाल भी नही होता। तुम जरूरी काम मे जा रहे थे, मां बीमार पडी थी और तुम उसके लिए दवा लेने जा रहे थे और किसी आदमी ने रास्ते में गाली दे दी–भूल गए मां, भूल गए दवा, भूल गए इलाज-चिकित्सा, उससे झगड़ने खड़े हो गए, पहले इससे निपटारा कर लेना है! चाहे इसमें मां मर जाए, लौट के घर आओ और पाओ कि मां जा चुकी, फिर चाहे पछताओ – लेकिन क्षुद्र भी, अति क्षुद्र भी, अति व्यर्थ भी, जब आता है तुम्हारी आंखों मे, तो तुम्हे परिपूर्ण घेर लेता है। इसी तरह तो मंजिल खोती चली गई है। तुम बिलकुल हवा की तरंगों में भटकते लकड़ी के टुकड़े हो; जहा हवा आ जाती है, जहा पानी की तरग ले जाती है, वही चल पडते हो। तुम सांयोगिक हो गये हो–ऐक्सीडेन्टल। तुम्हारे जीवन मे कोई दिशा नही है, कोई बढाव, कोई विकास, कोई गतव्य, कोई मजिल! कहां तुम जा रहे हो, क्यों तुम जा रहे हो – कुछ भी नही है। आकस्मिक घटनाएं, दुर्घटनाएं, तुम्हारे जीवन की निर्णायक हो गई है। कुछ भी उठ आता है, जिसमें तुम्हारी कोई संगति नही है, तुम वह करने में लग जाते हो।

मैं विश्वविद्यालय मे भरती होने गया, तो मैं अपना फार्म भर रहा था। मेरे पास ही एक लडका खडा था, वह भी भरती होने आया था। उसने मेरे फार्म में देखा। उसने कहा, 'तो आप दर्शनशास्त्र ले रहे हैं? तो मै भी लूगा।' मैंने कहा, 'तू रुक। तुझे इससे क्या प्रयोजन? यह भी बिलकुल सांयोगिक है कि मैं यहां खड़ा अपनी दर्खास्त भर रहा हूं, तू भी भर रहा है; मेरी दर्खास्त को एक तो देखने की कोई जरूरत नहीं, देख भी ली तो तझे कोई विषय इसलिए लेने की जरूरत नहीं...।

न तू मुझे जानता।' उसने कहा, 'यह भी आप ठीक कहते हैं। मैंने यह सोचा ही नहीं।'

तुमने कभी जिंदगी में देखा! इस तरह रोज हो रहा है। दुकान पे तुम गये थे; कुछ खरीदने गये थे, कुछ खरीद लाये। क्योंकि दुकानदार बड़ा कुशल था। उसने बेच दिया कुछ। दुकान पर गये थे, दुकानदार ने कुशलता भी न की हो, लेकिन दुकान की खिडकी में सजी हुई चीजो में कुछ चीज जंच गई, जिसकी तुम्हे क्षण भर पहले तक कोई भी जरूरत न थी, क्षण भर पहले तक तुम्हें सपना भी न आया था उसका; लेकिन बस आंख में पड़ गई, सरक गये तुम। शायद जरूरी काम छोड़ के, जो तुम लेने गये थे, कुछ और ले के आ जाओ। तुम जो लेने जाते हो, वही ले के लौटते हो?

पश्चिम में मनोविज्ञान इस पर बड़ी खोज करता है कि लोग क्या खरीदते हैं। और उन्होने बड़ी तरकीबें खोजी हैं। और बड़े हैरानी के निष्कर्ष हाथ लगे हैं।

एक उपन्यास बिकता नही था, छप गया और बिका नही। विशेषज्ञों से सलाह ली तो उन्होने कहा, इस किताब का नाम बदल दो, नाम ठीक नही है, नाम खीचता नही है। नाम बदल दिया, किताब बिकी। ऐसी बिकी, लाखों की प्रतियो में बिकी। साल भर से छपी पड़ी थी, कोई खरीदने वाला न था। किताब वही की वही, सिर्फ नाम बदलने से कुछ भी नही बदला, एक शब्द भीतर नही बदला है, सिर्फ कवर, खोल बदल गई — और किताब बिकने लगी!

मनोवैज्ञानिकों ने हिसाब लगाया है कि चीजें बेचते है तो डब्बे का रंग क्या होना चाहिए। क्योंकि उन्होने सब रंगो के डब्बे रख के देखे। स्त्रियां खरीदने आती हैं, तो वे हिसाब लगाते हैं कि कौन-से रंग से ज्यादा आकर्षित होती हैं। कुछ रग हैं जिनकी तरफ कोई ध्यान ही नहीं देता। अगर उस रंग का डब्बा तुमने अपनी चीज को बेचने के लिए बना लिया है तो तुम्हारा दिवाला निकलेगा। अब रंग से भीतर की चीज का कोई भी संबंध नहीं है, लेकिन लोग सांयोगिक है। लोग ऐक्सीडेंटल है। रंग उन्हे पहले खीचता है। डब्बा खाली हो तो भी चलेगा, लेकिन रंग, रंग आंख को खीच लेता है। कितनी ऊंचाई पर दुकान पे डब्बा होना चाहिए, तब आंख जल्दी पकड़ में आती है। पांच फीट, तो ठीक आंख की सीध में होता है। लोग ऐसे अलाल हैं कि आंख भी ऊपर उठा के कौन देखता है। अगर जरा डब्बा ऊपर रखा हो, या डब्बा बहुत नीचे रखा हो ... तो अब तो विशेषज्ञ हैं इस संबंध में जो बताते हैं कि तुम जब कोई चीज बना के बाजार में बेचो तो डब्बे का रंग क्या हो, कितने बड़े अक्षरों में नाम हो, कितनी ऊंचाई पर दुकान में रखा जाये, कितनी दूरी पर ग्राहक खड़ा हो, तो काउंटर कितने फासले पे बनाया जाये, बेचने वाला क्या कहे, कैसे शब्दों का उपयोग करे, क्योंकि जरा-जरा-सी बातें ...।

एक भिखमंगा एक घर में भीख मांगने गया। सुंदर है, स्वस्थ है, जवान है।

महिला बाहर निकली और उसने कहा कि जवान हो, स्वस्थ हो, सुंदर हो, कोई काम क्यों नहीं करते ? जिंदगी में सफल हो सकते हो, भीख मांगने की जरूरत क्या है ?

उस आदमी ने कहा, 'अब तुमसे क्या कहूं ! दुनिया में बहुत स्त्रियां देखीं, तुम जैसी सुंदर स्त्री नहीं देखी। फिल्म अभिनेत्रियां हैं, लेकिन तुम्हारे मुकाबले कुछ भी नहीं। तुम इस घर में क्या कर रही हो ? तुम तो फिल्म-अभिनेत्री हो सकती थीं।' उस स्त्री ने कहा, 'रुक, रुक। मैं अभी तेरे लिए भोजन लाती हूं।'

भिखमंगे को भी समझना पड़ता है, क्या कहे, किन शब्दों का उपयोग करे ! क्योंकि लोग अंधे हैं। लोगों को पता नहीं, वे क्या कर रहे हैं, क्यों कर रहे हैं। तुम से लोग करवा रहे हैं। तुमने सैकड़ों चीजें खरीद ली हैं जो बेचने वालों को बेचनी थीं, तुम्हें खरीदनी नहीं थी।

पुराने अर्थशास्त्र का नियम था कि जहां-जहां मांग होती है, वहां-वहां पूर्ति होती है। नये अर्थशास्त्र का नियम है : जहां-जहां पूर्ति होती है वहां-वहां मांग पैदा हो जाती है। तुम चीज तो बनाओ ! इसकी तुम फिक्र ही मत करो कि इसकी कोई मांग है या नहीं। मांग पैदा कर ली जायेगी। लोग पागल हैं।

बर्नार्ड शा ने जब पहली दफा अपनी किताबें लिखीं तो बिकीं नहीं। क्योंकि नाम बिकता है। कोई नाम तो था नहीं। कोई जानता तो था नहीं बर्नार्ड शा को। तो क्या किया उसने ? वह खुद ही चक्कर लगा के किताबों की दुकानों पे जाता था पूछने — जार्ज बर्नार्ड शा की किताब है ? दुकानदार पूछता, 'कौन जार्ज बर्नार्ड शा ?

'...अरे ! तुम्हें जार्ज बर्नार्ड शा का पता नहीं ? क्या खाक किताबों का धंधा करते हो ? इस-इस नाम की किताब छपी है।' ऐसा वह खुद ही दुकानों पे चक्कर लगाता। पता बता आता उनको। तरकीब से समझा आता। और जब उसने अपने मित्रों को भी कह दिया कि तुम जब निकलो कहीं से, कोई विशेष रूप से जाने की जरूरत नहीं, लेकिन रास्ते में अगर किताब की दुकान पड़ जाये, इतनी कृपा मुझ पे करना, पूछ लेना — जार्ज बर्नार्ड शा की फलां-फलां किताब है ? कई ग्राहक आने लगे, रोज आने लगे — तब दुकानदारों ने सोचा, 'है कौन जार्ज बर्नार्ड शा ?' दुकानदारों ने पता लगाया, किताबें खरीद के लाये। जार्ज बर्नार्ड शा ने कहा, ऐसे मेरी किताबों का बिकना शुरू हुआ।

चीज होनी चाहिए, फिर चीज के आसपास कांटा, कांटे के आसपास आटा होना चाहिए। फिर कोई न कोई फंस जायेगा। संसार बड़ा मूढ़ है। तुम जरा जागो !

महावीर का इतना ही प्रयोजन है कि तुम जरा जागो, अन्यथा ऐसे तो यह रास्ता बड़ा ही होता चला जायेगा, इसका कोई अंत न होगा।

अजल से गर्मे-सफर हूं, मगर मुझे अब तक
बिछड़ गया था मैं जिससे वोह कारवां न मिला।

तुम अपने स्वभाव से छूट गये हो। संयोग में उलझ गये हो।

बिछड़ गया था मैं जिससे वोह कारवां न मिला !

अजल से गर्म-सफर हूं, मगर मुझे अब तक

– शुरू से, जगत के प्रारंभ से खोज रहा हूं अपने को – और मिल नहीं पाता हूं। क्योंकि और दूसरी चीजें बीच में मिल जाती हैं जो अटका लेती हैं। कभी धन, कभी पद, कभी प्रतिष्ठा, कभी यश, कभी रूप, कभी रंग, कभी शब्द, कभी गंध – इंद्रियों के हजार जाल हैं ! कोई न कोई मिल जाता है। अपने घर तक पहुंच ही नही पाते। कोई न कोई अटका लेता है।

ध्यान रखना, कोई तुम्हें अटकाता नहीं। तुम अटकने को तैयार ही बैठे हो। कोई न भी अटकाये, तो भी अटकने की कोई तरकीब खोज लोगे।

छोटे को छोटा मत मानना। सब चीजें बड़ी हैं। सत्य का खोजी जीवन की रत्ती-रत्ती का होश रखता है। सब चीजें बड़ी हैं। वही करता है जो करना जरूरी है। उसी तरफ जाता है जहां जाना जरूरी है। व्यर्थ को काटता है, ताकि सार्थक ही बचे। जो नहीं करना है, उसे नहीं ही करता है। खिलवाड़ नहीं करता जिंदगी के साथ। जिंदगी उसकी एक साधना है, एक उपक्रम है, एक सोपान है। उसकी जिंदगी में एक दिशा है। वह कहीं जा रहा है।

अगर ऐसे तुम सब दिशाओं में भागते रहे, तो तुम कहीं भी न पहुंचोगे। अगर तुम कही नहीं पहुंचे हो तो कारण तो खोजो ! कारण यही है कि दो कदम चलते हो बायें तरफ, फिर दिल बदल गया; फिर दो कदम चलते हो दायें तरफ, तब तक फिर दिल बदल गया। तुम्हारा दिल है कि पारा है ? छितर-छितर जाता है। जितना पकड़ो उतना ही छितरता जाता है। सब दिशाओं में बिखर जाता है। ऐसे तुम बिखर गये हो। इस बिखरेपन के कारण ही आत्मा का तुम्हें कोई अनुभव नहीं होता।

महावीर कहते हैं, छोटे को छोटा मत जानना। छोटा बड़ा हो जाता है। इसलिए जिससे बचना हो, उसके बीजारोपण के पहले ही जागना।

'क्रोध, प्रीति को नष्ट करता है। मान, विनय को नष्ट करता है। माया, मैत्री को नष्ट करती है। लोभ, सब कुछ नष्ट करता है।'

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणयनासणो।

माया मित्ताणि नासेइ, लोहो सव्वविणासणो ।।

क्रोध, प्रीति को नष्ट करता है।

अब लोग हैं, प्रेम चाहते हैं। कौन है जो नहीं चाहता ! ऐसा आदमी खोजा, ऐसे प्राण तुमने कभी पाये जो प्रेम न मागते हों ? सभी तो प्रेम के भूखे हैं। निरपवाद रूप से सभी प्रेम के लिए प्यासे हैं। फिर प्रेम खो कहां गया है ? जहां सभी लोग प्रेम चाहते हैं और जहां सभी लोग सोचते हैं कि प्रेम दें, वहां प्रेम के फूल खिलते दिखायी नहीं पड़ते। प्रेम खो कहां गया है ? तो महावीर कहते हैं, प्रेम प्रेम की बात करने

से क्या होगा ? क्रोध, प्रीति को नष्ट करता है। तुम क्रोध के बीजों को तो जगह देते जाते हो और प्रेम की पुकार और हाय मचाये रखते हो। चिल्लाते रहते हो, प्रेम, प्रेम, प्रेम – और क्रोध के बीज पनपाये जाते हो ! बोते हो जहर, अमृत की मांग करते रहते हो ! फिर अगर जहर का झाड़-झंखाड़ तुम्हारे जीवन को भर देता है और अमृत की कोई वर्षा नहीं होती – तो कसूर किसका है, उत्तरदायित्व किसका है ?

'क्रोध, प्रीति को नष्ट करता है।'

अगर तुम्हारे जीवन में प्रेम नहीं है तो जानना कि क्रोध होगा – चाहे बहुत-बहुत करने की वजह से तुम्हे याद भी न आती हो अब, ऐसे रग-पग गये होओ क्रोध में कि अब तुम्हें पहचान भी नहीं पड़ता कि क्रोध है। किसी क्रोधी को कहो। वह फौरन कहता है, 'कौन कहता है, मैं क्रोध में हूं ? मैं क्रोध मे नहीं हूं।' क्रोधी भी यही कहे चला जाता है, मैं क्रोध में नहीं हूं। तुम भी जब क्रोध में पकड़े जाते हो तो तुम स्वीकार नहीं करते कि मैं क्रोध में हूं। क्रोध को कोई स्वीकार ही नहीं करता और प्रेम की लांग मांग किये जाते हैं।

अगर क्रोध है तो स्वीकार करो, क्योंकि स्वीकार निदान बनेगा। क्रोध है तो स्वीकार करो कि है, तो मिटाने का कोई उपाय हो सकता है। जिसे तुम स्वीकार ही न करोगे, उसे मिटाओगे कैसे ? और अगर प्रेम न हो तो महावीर का सूत्र यह कह रहा है : अगर तुम्हारे जीवन में प्रेम न हो तो निश्चित जानना कि क्रोध है, चाहे तुम्हें पता चलता हो न पता चलता हो, पुरानी आदत हो, मजबूत आदत हो, खून मे घुल-मिल गई हो, क्रोध तुम्हारा स्वभाव जैसा हो गया हो कि अब तुम्हें याद भी न आता हो कि अक्रोध क्या है, तो भेद करना मुश्किल हो गया हो – लेकिन अगर जीवन में प्रेम न हो तो क्रोध है।

'क्रोध, प्रीति को नष्ट करता है। मान, विनय को नष्ट करता है।'

अहंकार, तुम्हारी विनम्रता को नष्ट कर देता है। और विनम्रता नष्ट होती है, बड़ा बहुमूल्य कुछ तुम्हारे भीतर समाप्त हो जाता है। सीखने की क्षमता खो जाती है। विनम्र सीखने मे सक्षम होता है। विनम्र खुला होता है। विनम्र तत्पर होता है। कुछ भी नया आये, उसके द्वार बंद नहीं होते। और विनम्र जीवन के सत्य को पहचानता है कि मैं एक खंड मात्र हूं इस विराट का।

अहंकारी एक बड़ी भ्रांति में जीता है। अहंकारी की भ्रांति यह है कि जैसे मैं केंद्र हूं सारे विश्व का, जैसे सब मेरे लिए है और मैं किसी के लिए नहीं; जैसे सब मेरे साधन है और मैं साध्य हूं।

अहंकार को अगर हम ठीक से समझें तो उसका अर्थ होता है : सारा जगत साधन है और मैं साध्य हूं। मेरे जीवन के लिए अगर सबको मरना भी पड़े तो भी उचित है। मेरे सुख के लिए अगर सबको दुखी भी होना पड़े तो भी ठीक है। क्योंकि मैं

साध्य हूं, और सब साधन हैं। सबके कंधों पर मेरे पैर रखने पड़ें मुझे और सबके सिरों से मुझे सीढ़ियां बना के चढ़ना पड़े राजमहलों तक, चढ़ूंगा। क्योंकि और सब सीढ़ियां होने को ही बने हैं।

अहंकारी अपने को अस्तित्व का केंद्र मान रहा है। विनम्र का क्या अर्थ है? विनम्र कहता है: मैं कैसे केंद्र हो सकता हूं? मैं नहीं था, तब भी अस्तित्व था। मैं नहीं हो जाऊंगा, तब भी अस्तित्व होगा। मेरे होने-न-होने से क्या फर्क पड़ता है? एक तरंग हूं माना, मैं भी एक लहर हूं इस विराट की, पर बस एक लहर हूं। विराट सत्य है। मेरा होना तो एक सपना है; रात देखा, सुबह खो जायेगा। यह मेरा होना कोई ठोस पत्थर की तरह नहीं है, पानी की लकीर है।

तो विनम्र सीख पाता है जीवन के सत्यों को। और अंततः परमात्मा को भी सीख पाता है, क्योंकि उसने पहली शर्त पूरी कर दी। उसने झूठ को अंगीकार न किया। उसने सत्य से ही शुरुआत की। सत्य से शुरुआत हो तो सत्य पर अंत होता है। असत्य से ही शुरुआत हो जाये, तो फिर सत्य कहां मिलेगा? फिर तो असत्य बढ़ता चला जायेगा।

अहंकारी धीरे-धीरे मद में चूर होता जाता है। आंखें देखने की क्षमता खो देती है। बोध विलुप्त हो जाता है। एक तंद्रा और निद्रा में जीता है।

'मान, विनय को नष्ट करता है।' और अगर तुम्हारे जीवन में विनम्रता न हो तो तुम जान लेना कि कहीं अहंकार का शत्रु घात लगाये छिपा बैठा है।

'माया, मैत्री को नष्ट करती है।' कपट, छल-छिद्र मैत्री को नष्ट करता है। मैत्री का अर्थ ही होता है कि तुम किसी के साथ ऐसे हो जैसे अपने साथ। मैत्री का अर्थ होता है: तुम्हारे और मित्र के बीच कोई रहस्य नहीं, कोई छुपाव नहीं, कोई दुराव नहीं। मैत्री का अर्थ होता है: तुम अपने को अपने मित्र के सामने बिलकुल नग्न करने में समर्थ हो। तुम जानते हो, तुम्हें भरोसा है प्रेम का। तुम जानते हो कि तुम जैसे हो, तुम्हारा मित्र तुम्हें स्वीकार करेगा। उसका प्रेम बेशर्त है। अगर मित्र से भी तुम्हें कुछ छिपाना पड़ता हो, तो तुम मित्र को भी शत्रु मान रहे हो।

मैक्यावली ने लिखा है...। ठीक महावीर से उलटा है मैक्यावली। इसलिए महावीर को समझना हो तो मैक्यावली को भी समझना उपयोगी होता है। मैक्यावली ने लिखा है: मित्र से भी ऐसी बात मत कहना जो तुम शत्रु से न कहना चाहते होओ; क्योंकि कौन जाने, जो आज मित्र है कल शत्रु हो जाये। फिर तुम पछताओगे कि अच्छा होता, इससे यह बात न कही होती। मैक्यावली यह कह रहा है कि तुम मित्र के साथ भी ऐसा ही व्यवहार करना, जैसा तुम शत्रु के साथ करते हो; क्योंकि मित्र यहां शत्रु भी हो जाते हैं। महावीर से पूछो तो महावीर कहेंगे: मित्र की तो बात ही छोड़ो, तुम शत्रु के साथ भी ऐसा व्यवहार करना जैसा मित्र के साथ करते हो; क्योंकि कौन जाने जो आज शत्रु है, कल मित्र हो जाये। तो ऐसी कुछ बातें मत

कह देना जो कल फिर लौटाना बड़ी मुश्किल हो जाये। फिर थूके को चाटने जैसा होगा। जिससे दुश्मनी है, उसको हम ऐसी बातें कहने लगते हैं जो बिलकुल अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। कहते हैं, राक्षस है। कल तक नर में छिपा नारायण था, आज राक्षस! लेकिन कल अगर यह मैत्री फिर बनी, तो फिर कहां मुह छुपाओगे? फिर कैसे लौटाओगे? फिर कैसे कहोगे कि यह नर में नारायण, फिर राक्षस नहीं है।

महावीर कहते हैं: मैत्री को तुम आधार मान के चलना। जो आज मित्र है, वह तो मित्र है ही; जो आज नहीं है, वह भी हो सकता है कल मित्र हो जाये। जो आज शत्रु है वह भी मित्र हो सकता है। और महावीर की बात मान कर जो चलेगा, धीरे-धीरे पायेगा: उसके शत्रु मित्र हो गये। और मैक्यावली की जो मान के चलेगा, वह पायेगा: उसके मित्र धीरे-धीरे शत्रु हो गये; क्योंकि तुमने कभी उनसे मित्र जैसा व्यवहार ही नहीं किया। अगर मित्र से भी छिपाना पड़े, इसी को महावीर माया कहते हैं।

माया, मैत्री को नष्ट करती है। माया का अर्थ है: सच न होना। माया का अर्थ है: धोखे देना। माया का अर्थ है: जो तुम नहीं हो, वैसे दिखाना। माया का अर्थ है प्रमाणिक न होना। माया का अर्थ है: प्रवंचना। माया का अर्थ है: दिखावा, धोखा, आंख में आसू भरे थे, लेकिन मुस्कुराने लगे, तो यह मैत्री न हुई। मित्र के सामने तो हम रो भी सकते हैं। और किसके सामने रोओगे? अगर मित्र के सामने भी नहीं रो सकते तो फिर और कहा रोओगे? मित्र के सामने तो हम अपना दुख, पीड़ा, दैन्य, सभी कुछ प्रगट कर सकते हैं। मित्र के सामने तो हम अपना कलुप, अपना पाप, अपना अपराध, सभी प्रगट कर सकते हैं। क्योंकि हम जानते हैं, प्रेम का भरोसा है। उस प्रेम की छाया में सब स्वीकार है। क्योंकि मित्र ने हमें चाहा है — किन्हीं कारणों से नहीं; अकारण चाहा है। तो किन्हीं कारणों से टूटेगी नहीं मैत्री। ऐसा नहीं है कि मित्र देख लेगा कि अरे, तुमने और ऐसा पाप किया! तो दोस्ती खत्म! नहीं, मित्र तुम्हारे पाप के प्रति भी करुणा का भाव रखेगा। वह कहेगा, सभी से होता है, मनुष्यमात्र से होता है। मित्र तुम्हें समझाने की कोशिश करेगा। मित्र तुम्हारी निंदा नहीं करेगा। जरूरत होगी तो आलोचना करेगा, निंदा नहीं। लेकिन आलोचना भी इस खयाल से करेगा कि श्रेष्ठतर का आगमन हो सके। आलोचना भी इस खयाल से करेगा कि तुम और बड़े होने को हो, तुम अभी और खुलने को हो; यह कली इतने ही होने को नहीं, तुम्हारी नियति और बड़ी है।

मित्र अगर तुम्हारी आलोचना भी करेगा तो उसमें गहन प्रेम होगा। और शत्रु अगर तुम्हारी प्रशंसा भी करता है तो उसमें भी व्यंग होता है; उसमें भी कहीं गहरी निंदा का स्वर होता है, कहीं कटाक्ष होता है।

मैत्री तो संभव है तभी, जब माया बीच में न हो। इसलिए दुनिया में मैत्री धीरे-धीरे खोती गई है। लोग नाममात्र को मैत्री कहते हैं; उसे परिचय कहो, बस ठीक है;

इससे ज्यादा नहीं। दुनिया से मैत्री का फूल तो करीब-करीब खो गया है। क्योंकि मैत्री के फूल के लिए सरलता चाहिए, निष्कपटता चाहिए। कपट, माया अगर बीच में आई तो मैत्री समाप्त हो जाती है। अगर गणित बीच में आया तो मैत्री समाप्त हो जाती है। मैत्री तो एक काव्य है – गणित नहीं, तर्क नहीं। मित्र के सामने हम अपने को वैसा ही प्रगट कर देते हैं जैसे हम हैं। इसलिए तो मित्र के पास राहत मिलती है। कम-से-कम कोई तो है जिसके पास जा के हमें झूठ नहीं होना पड़ता; नहीं तो चौबीस घंटे झूठ। पत्नी है तो उसके सामने झूठ। दफ्तर है, मालिक है, तो उसके सामने झूठ। बाजार में संगी-साथी हैं, उनके साथ झूठ। सब तरफ झूठ है। तो तुम कहीं खुलोगे कहां? तुम बंद ही बंद मर जाओगे। हवा का झोंका, सूरज की किरणें तुममें कहां से प्रवेश करेंगी? तुम कब्र बन गये। नहीं कोई तो हो कहीं, जहां तुम शिथिल हो के लेट जाओ; जहाँ तुम जैसे हो वैसे ही होने को स्वतंत्र होओ; जहां कोई मांग नहीं है; जहां मित्र की आंख यह नहीं कह रही है कि ऐसा नहीं, ऐसे होओ।

मैत्री बड़ी अनूठी घटना है। शब्द ही बचा है संसार में। मैत्री के फूल बहुत कम खिलते है। क्योकि मैत्री के फूल के खिलने के लिए दो ऐसे व्यक्ति चाहिए जो निष्कपट हों, जिनके बीच माया न हो।

माया, मैत्री को नष्ट करती है। और लोभ, सब कुछ नष्ट कर देता है। अगर तुम्हारी जिंदगी में खंडहर-ही-खंडहर मालूम पड़ता हो, मरूद्यान का कहीं कोई पता न चलता हो, मरुस्थल ही मरुस्थल, तो एक बात जान लेना कि तुमने लोभ के ढंग से ही जीना सीखा है, तुम और कुछ नहो जान पाये। लोभ, सब कुछ नष्ट कर देता है।

यह महावीर निदान कर रहे हैं। वे यह कह रहे हैं, अगर तुम्हारी जिंदगी में कोई रस-वर्षा न होती हो, तो दोष मत देना किसी को – इतना ही जानना कि तुम लोभ में बड़े गहरे उतर गये हो। तुमने लोभ की बड़ी गहरी सीढ़ियां पार कर ली हैं। तुम लोभ के कुएं में डूब गये हो। तो ही ऐसा होता है कि सब नष्ट हो जाये।

उसने मंशाए-इलाही को मुकम्मिल कर दिया
अपनी आंखों पर जिसने लिये मुहब्बत के कदम।

जिसने मैत्री सीखी, जिसने प्रेम सीखा, जिसने मैत्री के लिए माया छोड़ी, जिसने प्रेम के लिए क्रोध छोड़ा, जिसने विनय के लिए मान छोड़ा, और जिसने जीवन को सृजनात्मक गति देने के लिए लोभ से विदा ली—उसने मंशाए-इलाही को मुकम्मिल कर दिया; उसने परमात्मा की आकांक्षा पूरी कर दी

अपनी आंखों पर जिसने लिए मुहब्बत के कदम।

—फिर उसकी आंखों पर मुहब्बत की छाया पड़ने लगी। फिर उसके हृदय में मुहब्बत के कंवल खिलने लगे।

प्रेम परम घटना है। अब इसे हम समझें।

महावीर कहते हैं, लोभ से सब नष्ट हो जाता है और प्रेम से सब उपलब्ध हो जाता है। महावीर कहते हैं, 'मित्ति मे सव्वभुएसु'। सबसे मैत्री, सबसे प्रेम, सर्व-भूतों से। क्योंकि महावीर कहते हैं, एक से ही प्रेम करने में इतने कंवल खिलते हैं, जरा सोचो, सबसे प्रेम! प्रेम तुम्हारा स्वभाव बन जाये। प्रेम संबंध न रहे। ऐसा नहीं कि किसी से प्रेम और किसी से नहीं; क्योंकि ऐसे प्रेम में तो कुछ न कुछ कमी रह जायेगी। ऐसे प्रेम में तो सीमा होगी। बस प्रेम। प्रेम, तुम्हारा होने का ढंग। प्रेम, तुम्हारे होने की सुगंध, सुरभि। प्रेम, तुम्हारे होने की व्यवस्था। कोई न भी हो, तुम अकेले कमरे में बैठे हो तो भी प्रेम से भरे बैठे हो। उस शून्य में ही प्रेम उंडेल रहे हो। वृक्षों के पास बैठे हो तो वृक्षों से प्रेम-वार्ता चल रही है। चांद-तारों को देखा है तो वहीं प्रेम का आलिंगन होने लगा। सरिता-सागर के पास गये हो तो वहीं मैत्री का सुर बजने लगा। अकेले कि भीड़ में, अकेले कि साथ में, सुख में कि दुख में – लेकिन प्रेम की वीणा बजती ही रहे; वह तुम्हारे भीतर श्वास हो जाये अहर्निश! पता हो न पता हो, श्वास जैसे चलती रहती है, ऐसा प्रेम भी डोलता रहे!

इस प्रेम की परम घटना के लिए महावीर ने अहिंसा नाम दिया है। इस प्रेम को जीसस ने ईश्वर कहा है। प्रेम ईश्वर है।

'लोभ, सब कुछ नष्ट कर देता है। लोहो सव्वविणासणो!'

लोभ और प्रेम विपरीत हैं। इसे समझो। लोभी व्यक्ति प्रेम नहीं कर पाता– कर ही नहीं सकता। क्योंकि प्रेम में बांटना पड़ता है, देना पड़ता है। लोभी कृपण होगा, बांटेगा कैसे? लोभ तो इकट्ठा करता है। लोभ तो जो इकट्ठा कर लेना है, उसकी रक्षा में लग जाता है – उसमें से कोई एक पैसा खींच न ले! इसलिए तो इस देश में कहावत है कि जब कोई लोभी मरता है, मर के सांप हो जाता है; मंडली मार के, कुंडली मार के, बैठ जाता है अपने खजाने पर। अब सांप कोई सोने को भोग नहीं सकता – भोगने का सवाल भी नहीं है।

लोभी बड़ा अद्‌भुत आदमी है। जरा उसको समझो। क्योंकि वह सबके भीतर छिपा है, उसे समझना जरूरी है। लोभी बड़ा अनूठा आदमी है। साधारण घटना नहीं है लोभी। लोभी उतनी ही बड़ी असाधारण घटना है जितनी बड़ी असाधारण घटना प्रेमी है। दोनों छोर हैं, अतियां हैं। लोभी भोगता नहीं, सिर्फ भोग की आशा को भोगता है। धन इकट्ठा कर लेता है, उसे खर्च नहीं करता। खर्च में तो कम होगा। धन इकट्ठा कर लेने में ही उसका भोग है। धन तो सिर्फ संभावना है। तुम सोने की ईंट रख के बैठे रहो कि मिट्टी की ईंट रख के बैठ लो, कुछ फर्क न पड़ेगा। फर्क तो तब पड़ेगा जब तुम भोगने जाओगे; बिना भोगे तो मिट्टी की ईंट और सोने की ईंट बराबर है। तुम्हारे खीसे में रुपया है या नहीं, इसका पता तो तभी चलेगा जब तुम भोगने जाओगे। जब बाजार में कुछ खरीदने जाओगे, तब पता चलेगा कि

रुपया है या नही। अगर खरीदने कभी गये ही नही तो खीसे में रुपया था या नही, बराबर है।

लोभी बड़ा अद्‌भुत आदमी है। वह रुपया तो इकटठा करता है, लेकिन भोगता नही। तो लोभी के पास धन हो के भी लोभी निर्धन ही होता है; क्योंकि धन का तो पता ही तब चलता है...। रुपया धन थोड़ी है। जिस क्षण तुम रुपये को खर्च करते हो, उस क्षण धन बनता है।

इसे थोडा समझना। तुम्हारे खीसे मे एक रुपया पड़ा है। इसमें कई चीजें छिपी हैं : चाहो तो एक आदमी रात भर मालिश करे – इस एक रुपये में छिपा पडा है। अब एक आदमी को खीसे में रख के चलो, बहुत वजन हो जायेगा, भारी पडेगा। चाहो तो गिलास भर दूध पी लो, इस रुपये मे वह छिपा पड़ा है। चाहो तो जा के तीन घटे फिल्म मे बैठ जाओ। चाहो तो होटल में भोजन कर लो। चाहो तो किसी को दान दे दो, किसी भूखे का पेट भर जाये। हजार संभावनाएं हैं एक रुपये में। यही तो रुपये की खूबी है।

रुपया बडा अदभुत साधन है! क्योकि अगर तुम्हे एक ही चीज पकडनी हो... तो तुमने एक आदमी से अगर मालिश करवानी है तो आदमी रख लो, लेकिन फिर उस आदमी का तुम दूसरा उपयोग न कर सकोगे। नाश्ता करना चाहा तो क्या करोगे ? सिनेमा देखने जाना चाहा तो क्या करोगे ? रुपया बडी अनूठी चीज है ! मनुष्य की बड़ी गहरी ईजादो में एक ईजाद है रुपया। इसमें सब चीजें समाई हैं। लेकिन अभी कोई भी चीज प्रत्यक्ष नही है, सब अप्रत्यक्ष है। अभी कोई भी चीज वास्तविक नही है, सिर्फ सभावना है। इसलिए तो अनंत संभावनाएं रुपये में छिपी हैं। इसलिए तो लोग रुपये के लिए इतने पागल है; क्योंकि रुपया तिजोड़ी में है तो अनंत संभावनाएं हाथ में हैं।

लेकिन रुपया बिलकुल खाली है, जब तक उसका उपयोग न करो – है ही नही रुपया। उसका कोई मतलब नहीं है। तिजोडी में बंद है तो व्यर्थ है। रुपये की सार्थकता तभी है, जब वह तुम्हारे हाथ से दूसरे हाथ में जाता है। बीच में रुपया धन होता है। देने में धन है। भोगने में धन है। रोकने में तो धन मिट्टी हो जाता है।

और यह सारे जीवन के धन के संबंध में सही है। वही चीज तुम्हारे पास है जो तुम दे देते हो। यह बड़ा विरोधाभास लगेगा। जो तुम्हारे पास है और तुमने कभी भी न दी वह तुम्हारे पास थी ही नही; क्योंकि हो कैसे सकती थी ? चीज तो प्रगट तब होती है जब तुम देते हो। आदान-प्रदान में धन प्रगट होता है। मुट्ठी में बद, तो मर जाता है, होता ही नहीं। क्या फर्क पड़ता है कि तुम्हारे पास एक लाख रुपया तिजोड़ी में था या नहीं था ? तिजोड़ी बंद रही, तुम जिये तिजोड़ी के बाहर, मरे तिजोड़ी के बाहर। लाख रुपया बंद था कि नहीं था बंद, क्या फर्क पड़ता है ? कोई भी तो फर्क नहीं पड़ता। फर्क पड़ सकता था, अगर तुम बांटते।

लोभी बांटता नहीं। बाहर के धन को ही नहीं, जब बाहर के धन को ही नहीं बांटता तो भीतर के धन को क्या खाक बांटेगा? जब क्षुद्र रुपये नहीं बांट सकता, तो जीवन की महिमा क्या बांटेगा? ठीकरे नहीं बांट सकता, तो हृदय कैसे लुटा-येगा? और प्रेम के लिए तो चाहिए हृदय लुटाने वाला, बांटनेवाला, देने वाला।

प्रेम है बांटने की कला। लोभ है इकट्ठा करने की कला। मगर तुम जो इकट्ठा करते हो, वह व्यर्थ है। इसलिए लोभी से ज्यादा दरिद्र कोई भी आदमी नहीं है। देखना, कभी देते वक्त उस पुलक को, उस उमंग को! उस घड़ी को गौर से देखना, जब तुम कुछ देते हो! एक पैसा हो कि लाख रुपया हो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। वह रुपया न भी हो, इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता। तुमने किसी का हाथ ही प्रेम से हाथ में ले लिया हो, तुम किसी के पास ही दो क्षण गहरी सहानुभूति से बैठ गये हो, तुम एक फूल, जंगली फूल रास्ते के किनारे से तोड़ के किसी को दे दिये हो – उस घड़ी जरा जाग के देखना, क्या घटता है! जब तुम कुछ देते हो, तब तुम्हारे भीतर कैसा आविर्भाव होता है! कैसा प्रसाद! कैसा बरसाव हो जाता है!

इसलिए ज्ञानियों ने कहा है, जब तुमसे कोई कुछ लेने को राजी हो जाये तो उसका धन्यवाद भी करना। उसे देना तो, साथ में दक्षिणा भी देना। दक्षिणा यानी धन्य-वाद में भी कुछ देना। क्योंकि अगर वह इनकार कर देता तो तुम्हारा धन धन न हो पाता। तुमने एक पैसा जा के किसी गरीब को दे दिया, उस गरीब ने ले के तुम्हारे पैसे को पैसा बनाया; उसके पहले वह पैसा नहीं था। उस गरीब ने उसको धन बनाया। धन्यवाद कौन किसका करे?

पुराने शास्त्र कहते हैं कि तुम उसे धन्यवाद में भी अब कुछ देना, कि तेरी बड़ी कृपा, तू इनकार भी कर सकता था, तू कहता, नहीं लेते – फिर?

प्रेम की दुनिया में, जो लेने वाला है वह भी कुछ दे रहा है। यही तो प्रेम का मजा है! जो लेने वाला है वह भी कुछ दे रहा है। देने वाला ही नहीं दे रहा है, लेने वाला भी दे रहा है। दोनों दे रहे हैं। और कोई घाटे में नहीं है। किसी ने धन दिया, किसी ने लिया; ले के उसने उस धन की हुंडी को स्वीकारा। अभी तक हुंडी थी, अब धन हुई। उसने तुम्हें धनी बना दिया। तुम्हारी दया को स्वीकार करके तुम्हें दयालु बना दिया। तुम्हारे प्रेम को स्वीकार करके तुम्हें प्रेमी बना दिया। तुम्हारे हाथ से जब देने की घटना घटी, उस क्षण तुम्हारे हृदय में कोई फूल खिल गया।

दे के आदमी धन्यभागी होता है।

लोभी प्रेम नहीं कर सकता। क्योंकि प्रेम की यात्रा तो बिलकुल उलटी है; वह बांटने की है और देने की है। लोभी सिर्फ रोकता है। लोभ एक तरह की कब्जियत है, बीमारी है।

लो भी, दो भी – जीवन लेना-देना है।

अब एक और बात तुमसे कह देना चाहता हूं : कुछ लोगों को ऐसी भ्रांति पकड़ जाती है : या तो वे कहते हैं कि हम देंगे नहीं; या वे कहते हैं, हम लेंगे नहीं । लोभी हैं : पहले धन को पकड़ते थे; वे कहते थे कि हम देंगे नहीं । फिर समझ में आया कि यह धन तो सब मिट्टी हुआ जा रहा है, यह तो पकड़ से ही मिट्टी हुआ जा रहा है, तो वे कहते हैं, हम देंगे, अब लेंगे नहीं । तुम ऐसे आदमी को धार्मिक कहते हो। यह आदमी धार्मिक नहीं है । यह अधार्मिक आदमी है; क्योंकि यह किसी दूसरे को मौका नहीं देता कि उसकी मिट्टी धन हो जाये । यह कैसी बात हुई ? परम धार्मिक तो वह है जो लेने-देने में कुशल है, दोनों में कुशल है । यह तो धार्मिक न हुआ, अहंकारी हुआ । यह कहता है, हम तो सिर्फ देंगे, हम ले नहीं सकते – मैं और लूं !

एक बहुत बड़े धनी व्यक्ति हैं, मेरे मित्र है । एक दफा मेरे साथ यात्रा पे गये तो अपने दिल की बातें खोलने लगे । काफी समय तक साथ था, तो छुपा न सके; कुछ-कुछ बाते करने लगे । एक उन्होने अपने बडे दिल की, दुख की बात कही कि 'मैंने अपनी जिंदगी में अपने सब रिश्तेदारों को खूब दिया; मित्रों को दिया ।' और यह सच है, मै जानता हू, उन्होंने दिया । 'लेकिन कैसा मेरा अभाग्य है कि जिनको भी मैं देता हूं, वे कोई भी मुझसे प्रसन्न नही !' और यह भी मैं जानता हूं कि जिनको भी उन्होने दिया है, वे सब उनसे नाराज हैं। और वे झूठ नहीं कह रहे हैं; उन्होंने दिया है, खूब दिया है ! उनके पास खूब था, खूब है । हर रिश्तेदार को उन्होंने लखपति बना दिया है । हर मित्र को लखपति बना दिया है । जिसके साथ भी उनका संबध रहा, वह जल्दी ही लखपति हो गया । लेकिन जिनने भी उनसे लिया, वे सब उनसे नाराज है । तो वे मुझसे कहने लगे, कि क्या हो गया ! मेरा दुर्भाग्य कैसा है ? मैंने क्या कमी की, मेरा कसूर क्या है ?

मैंने कहा, कसूर तुम्हारा यह है, तुमने सिर्फ दिया और उनको तुमने देने का कभी मौका नही दिया । तुम थोड़ा उनको भी मौका देते । लेन-देन होता तो ठीक था । तुमने दिया ही दिया । और तुम अहंकारी हो । और तुम लेने पे राजी नही हो । तुम दाता बने रहना चाहते हो । तो अगर तुम दाता ही रहोगे तो जिसको तुमने दीन बना दिया दे कर, वह अगर नाराज हो तो आश्चर्य क्या ? वह अगर तुम्हें क्षमा न कर सके तो आश्चर्य क्या ? वह तुमसे बदला लेगा । तुमने उसके अहंकार को बड़ी चोट पहुंचा दी ।

मैंने कहा, कभी उनको भी मौका दो । धन की तुम्हें जरूरत नहीं; लेकिन हजार और चीजों की जरूरत है । जिस मित्र को तुमने लाखों दिये हैं, कभी उससे इतना ही कह दिये कि आज मुझे जरा कार की जरूरत है, भेज दो । वह कार तुम्हारी ही दी हुई है, लेकिन उसे भी तो थोड़ा मौका दो कि तुम्हारे लिए कुछ कर सके ।

पर वे कहने लगे, मुझे जरूरत ही नहीं है । मेरे पास ऐसे ही काफी है ।

'कभी तुम बीमार पड़ते हो, किसी मित्र को फोन करके कहो कि आओ, मेरे

पास बैठ जाओ; तुम्हारा होना मुझे सुख देगा। यह भी तुमने कभी नहीं किया। तुम कुछ तो करो। तुम्हारे बेटे की शादी हो तो अपने मित्रों को कहो कि आओ, तुम्हारे बिना शादी न हो सकेगी। कुछ तो करो। तुम बिलकुल पत्थर की तरह हो। तुम देते तो हो, लेकिन देना भी तुम्हारा अहंकार से भरा है; क्योंकि लेने के लिए तुम्हारा हाथ कभी नही फैलता। इसलिए जिसको तुम देते हो, वही तुम पे नाराज है। जिसको तुम देते हो, वही अनुभव कर रहा है कि तुमने उसे नीचे गिराया। तुमने हाथ सदा ऊपर रखा; दूसरों के हाथ सदा नीचे रखे।'

मेरे लिए धार्मिक आदमी वह है जो तुम्हें देता भी है और तुमसे लेता भी है — और लेन-देन बराबर रखता है। कोई क्षुद्र-सी चीज तुमसे ले लेता है। मगर तुम्हें मौका देता है देने का भी। क्योंकि तुम भी तो खिलो। अगर देने से ही लोग खिलते हैं तो तुम भी तो खिलो! कोई छोटी-मोटी चीज। चीजों के मूल्यों का कोई सवाल नहीं है। कोई तुमसे इतना ही कह दे कि वह जो पत्थर पड़ा है, मेरे लिए उठा के ला दो, और तुम्हें धन्यवाद दे दे, तो भी तुम भर जाओगे। क्योंकि जब भी तुम कुछ दे पाते हो, तभी तुम्हारी आत्मा भरती है और खिलती है।

तो मैं तुम्हारी एक भ्रांति को स्पष्ट कर देना चाहता हूं। प्रेम सिर्फ देना ही देना नही है; नही तो वह तो अहंकार हो जायेगा, वह प्रेम नहीं होगा। प्रेम तो लेने-देने की छूट है। प्रेम तो देता भी खूब है, लेना भी खूब है। प्रेम न तो इस तरफ कंजूस है, न उस तरफ कंजूस है। प्रेम अकड़ा हुआ नही है। प्रेम विनम्र है। वह कभी हाथ नीचे भी कर लेता है। वह कभी हाथ ऊपर भी कर देता है। प्रेम लेने और देने को खेल मानता है। इस आवागमन में. ऊर्जा के आने-जाने मे, जीवन ताजा रहता है। और खेल बड़ा महिमावान है, क्योंकि दोनो इस लेने-देने मे निखरते हैं; दोनो बड़े होते है; दोनो खिलते है, विकसित होते है।

सुनो! इसे गुनो! तुम त्यागियो जैसे अहंकारी मत बन जाना, जो कहते हैं, हमने सब त्याग किया। ये लोभी है — शीर्षासन करते हुए — जो कहते हैं, हम कुछ न लेंगे।

एक बड़ा अद्भुत आदमी है बंबई में : रमणीक जौहरी। वह मेरे पास आया। वह एक मोतियों का हार बना लाया था। उसकी आखों में आसू थे। उसने मुझे हार पहनाया। उसने कहा कि आप मना मत करना। पर मैंने कहा, तुम रो क्यों रहे हो? कहने लगे, मै खुशी से रो रहा हू। मैने कहा, 'तुम मुझे पूरी बात कहो।'

वे जैन हैं, तेरापंथी जैन हैं। तो उसने कहा, मै आचार्य तुलसी का भक्त हूं। उसी घर में, उसी परंपरा में पैदा हुआ। उनको मै कुछ देना चाहता हूं, लेकिन वे तो कुछ ले नही सकते। इसलिए मेरा कोई संबंध ही नहीं बन पाता। संबंध तो तब बनता है जब दोनों तरफ से कुछ आदान-प्रदान हो। वे मुझसे कुछ ले ही नहीं सकते, क्योंकि वे कहते हैं, वे त्यागी हैं। इसलिए आपसे मैंने प्रार्थना की। मैं किसी को, जो मुझसे

बड़ा हो, कुछ देना चाहता हूं। क्योंकि उस देने में मैं भी बड़ा हो जाऊंगा, मैं भी कुछ खिलूंगा। आप मना मत करना!

उसी दिन जो आंसू उसकी आंखों से बहे, वे बड़े बहुमूल्य थे। मोतियों का हार मुझे पहना के वे अति प्रसन्न हो लिया। वह बार-बार मुझे धन्यवाद देने लगा कि मैं डरा हुआ था कि कहीं आप भी मना न कर दें। मैंने कहा, मैं किसी भी तरफ से कंजूस नहीं हूं। जो मेरे पास है, तुम्हें देता हूं; जो तुम्हारे पास है, लेने को हमेशा तैयार हूं। यह बात तो जरा गलत है और अहंकार की है कि मैं सिर्फ दूंगा, लूंगा नहीं। मैं और लूं! मैं और इतना छोटा हो जाऊं कि तुमसे लूं! क्षुद्र सांसारिक पुरुषों से कुछ लूं!

मैंने कहा, तुम फिक्र छोड़ो; क्योंकि मेरे लिए कोई क्षुद्र नहीं है। परमात्मा ही दोनों तरफ बैठा है। अगर तुम्हें कुछ लगा है कि मुझसे तुम्हें मिला है और तुम बेचैनी अनुभव करते हो बिना कुछ दिए – और ठीक है बेचैनी, अनुभव होनी चाहिए; जिसके भीतर भी धड़कता हुआ दिल है, अनुभव होगी – तो तुम ले आना, तुम्हारे पास जो हो ले आना। मैं न तो भोगी हूं न त्यागी हूं। मैं कृपण हूं ही नहीं। भोगी भी कृपण है, त्यागी भी कृपण है। एक ने भोग को पकड़ा है, एक ने त्याग को पकड़ा है। मैं सिर्फ जीवंत हूं। आओ, जाओ। तुमने मेरे लिए हृदय खोला है, तो मेरा हृदय भी तुम्हारे लिए खुला है। और मैं तुम्हारे आंसू समझ सकता हूं। तुम कुछ और बड़ा लाना चाहते थे; तुम जानते हो, कंकड़-पत्थर लाये हो। लेकिन क्या करो, तुम्हारी मजबूरी है! जो तुम्हारे पास था वही तुम लाये हो। लाने के भाव का मूल्य है; क्या तुम ले आये हो, यह थोड़ी सवाल है!

खयाल रखना, मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि प्रेम का अर्थ होता है : बस दो। मैं तुमसे यह कह रहा हूं, प्रेम का अर्थ होता है : तुम भी बड़े होओ, दूसरे को भी बडा होने दो; तुम भी फैलो, दूसरे को भी फैलने दो। दो भी, लो भी। और तुम्हारे बीच लेने-देने में एक संतुलन हो। ये दोनों पंख तुम्हें उड़ायें खुले आकाश में।

और जल्दी करो। लेन-देन कर लो। क्योंकि बाजार जल्दी ही उठ जायेगा। दुकानें बंद होने का वक्त भी आ गया। सांझ होने लगी। लोग अपने-अपने पसारे इकट्ठा करने में लगे हैं। ऐसा न हो कि पीछे तुम पछताओ – जब जा चुके बाजार, न कोई लेने को हो, न कोई देने को हो।

> शराबे-जीस्त अभी सेर हो के पी भी नहीं
> कि सुन रहा हूं सदाए शिकस्त सागर की

– अभी जीवन की मदिरा को तुम पी भी तो नहीं पाये; लेकिन देखो, मदिरा-पात्र के टूटने की आवाज आने लगी!

> शराबे-जीस्त अभी सेर हो के पी भी नहीं

– अभी मन भर के पी भी नहीं पाये जीवन के मधु को,

कि सुन रहा हूं सदाए शिकस्त सागर की।
— और यह तो मधु-पात्र के टूटने की आवाज आने लगी।

जन्म के साथ ही तो मधु-पात्र के टूटने की आवाज आने लगती है। इसके पहले कि मधु-पात्र टूट जाये, पियो, पिलाओ। लो, दो। मिलो-जुलो। फैलो, दूसरों को फैलने दो। गतिमान, गत्यात्मक हो तुम्हारा जीवन ! कहीं भी जकड़ा न हो; न इस किनारे न उस किनारे। उठने दो लहरें इस किनारे से उस किनारे तक ! आने दो लहरें उस किनारे से इस किनारे तक ! तुम दोनों किनारों के बीच का फैलाव बनो ! तब तुम्हारे जीवन में सम्यक् धर्म का उदय होता है।

'क्षमा से क्रोध को हरें, क्षमा से क्रोध का हनन करें, नम्रता से मान को जीतें, ऋजुता से माया को और संतोष से लोभ को।'

'क्षमा से क्रोध को...।' जब तुम क्रोध करते हो तो क्या कर रहे हो ? क्रोध तुम्हारा एक दृष्टिकोण है। क्रोध तुम्हारा ऐसा दृष्टिकोण है जो तुमसे कहता है : जो नहीं होना चाहिए था वह हुआ है। किसी ने कुछ कहा, क्रोध का अर्थ है : तुम यह कहते हो कि नहीं, यह नहीं कहना चाहिए था। तुम्हारी कुछ और अपेक्षा थी। क्रोध के पीछे अपेक्षा छिपी है। अगर एक कुत्ता आ के भौंक जाये तो तुम नाराज नहीं होते; क्योंकि तुम जानते हो कुत्ता है, भौंकेगा। लेकिन आदमी आ के भौंक जाये तो तुम नाराज हो जाते हो। आदमी है तो तुम्हारी बड़ी अपेक्षा थी।

क्षमा का अर्थ है : तुम्हारी कोई अपेक्षा नहीं; जो दूसरा कर रहा है, वही कर सकता था, इसलिए कर रहा है। जो गाली दे सकता था, गाली दे रहा है। जो गीत गा सकता था, गीत गा रहा है। क्षमा एक दृष्टिकोण है। क्षमा का यह अर्थ है कि हमारी कोई अपेक्षा नहीं; हम हैं कौन जो तुमसे अपेक्षा करें; मैं हूं कौन, जो तुमसे अपेक्षा करूं कि तुम ऐसा व्यवहार करो तो ठीक, ऐसा न करोगे तो मैं क्रोधित हो जाऊंगा !

एक झेन फकीर राह से गुजर रहा था, एक आदमी आ के उसको लट्ठ मार दिया। घबड़ाहट में वह आदमी भागने को था, उसकी लकड़ी भी हाथ से छूट गई, तो उस फकीर ने लकड़ी उठा के उसको दे दी और कहा, भाई लकड़ी तो ले जा। फकीर के साथ एक युवक चल रहा था। उसने कहा, 'यह माजरा क्या है ? इस आदमी ने तुम्हें चोट पहुंचाई; तुम उलटे उसकी लकड़ी उसको उठा के दे रहे हो ? तुम कुछ कहे ही नहीं ?'

उसने कहा, 'अब कहना क्या है ? रास्ते से गुजर रहा हूं, और एक वृक्ष से शाखा गिर पड़े और मेरा सिर तोड़ दे, तो क्या कहूंगा ? कुछ भी नहीं कहूंगा। क्या करने की बात है ? संयोग की बात है कि वृक्ष की शाखा टूटने को थी और हम गुजरते थे। हो गया मिलन आकस्मिक, अब कहना क्या है ? इस आदमी को मारना था किसी को, हम मिल गये। वृक्ष की शाखा टूटी, समय पर सिर पे पड़ गई। इससे

कहना क्या है ? और यह जो कर सकता था, वही इसने किया है; न कर सकता होता तो करता ही क्यों ? जो इसके भीतर हो सकता था, हुआ है। मैं कौन हूं ?'

यह संसार मेरी अपेक्षा से चले, इससे ही तो क्रोध पैदा होता है। जिस-जिस को तुमने अपनी अपेक्षा से चलाना चाहा, उसी पे क्रोध होता है। इसलिए जिनसे तुम्हारी जितनी ज्यादा अपेक्षा है, उनसे तुम्हारा उतना ही क्रोध होता है। पत्नी पति पर आगबगूला हो जाती है; हर किसी पे नहीं होती। हर किसी पे होने का सवाल ही कहां है ? अपेक्षा ही नहीं है। जिससे अपेक्षा है...। बाप बेटे पे क्रोधित हो उठता है– अपेक्षा है। बड़ी आशाएं बांधी हैं इस बेटे से और यह सब तोड़े दे रहा है। सोचा था, यह बनेगा, यह बनेगा, बड़े सपने देखे थे – और यह सब उलटा ही हुआ जा रहा है।

जिससे तुम्हारी अपेक्षा है, ध्यान रखना वहीं-वहीं क्रोध पैदा होता है। जिनसे तुम्हारे कोई संबंध नहीं हैं, कोई क्रोध पैदा नहीं होता। पड़ोसी का लड़का भी बर्बाद हो रहा है, वह भी शराब पीने लगा है – मगर इससे तुम्हें चिंता नहीं होती।

सुना है मैंने एक यहूदी अपने धर्मगुरु के पास गया और उसने कहा, 'मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा हूं। मेरा लड़का अमरीका गया था, लौट के आया तो वह ईसाई हो गया। मेरा लड़का और ईसाई ! और हम परंपरा से बड़े रूढ़िवादी यहूदी हैं। यह बर्दाश्त नहीं हो रहा। आत्महत्या करने का मन होता है।'

धर्मगुरु ने कहा, 'बहुत चिंता न करो। मेरी तो सुनो। तुम्हारा तो एक लड़का है। हो गया, कोई बात नहीं है। फिर तुम कोई धर्मगुरु नहीं हो, मैं धर्मगुरु हूं। मेरे लड़के के साथ भी यही हुआ। वह भी अमरीका गया, वहां से बिगड़ के आ गया। वह भी ईसाई हो गया। और मैं धर्मगुरु हूं। कम-से-कम मेरा लड़का तो होना ही नहीं चाहिए।'

तो उन दोनों ने कहा, अब क्या करें ? उन्होंने कहा, हम परमात्मा से प्रार्थना करें, और क्या कर सकते हैं ! उन दोनों ने प्रार्थना की जा के सिनागाग में कि हे प्रभु ! यह क्या दिखला रहे हो ? मेरा लड़का ... मैं प्राचीन परंपरा से यहूदी हूं, मेरा लड़का ईसाई हो गया ! दूसरे ने कहा, मैं धर्मगुरु हूं। तुम्हारा प्रतिनिधि हूं इस पृथ्वी पर। कम-से-कम मेरा तो कुछ खयाल रखते ! मेरा लड़का भी ईसाई हो गया।

और कहते हैं, ऊपर से आवाज आई कि 'तुम बकवास क्या कर रहे हो ? मेरी तो सोचो। लड़का ईसा मसीह भेजा था, वह भी ...।'

अपनी-अपनी अपेक्षाएं हैं। 'और मैं ईश्वर हूं। तुम तो धर्मगुरु ही हो।'

जहां अपेक्षा है, वहां क्रोध है। क्षमा का अर्थ है : तुमने अपेक्षा छोड़ दी। तुम हो कौन ? माना, बेटा तुमसे पैदा हुआ है, लेकिन तुम हो कौन ? तुम एक रास्ते थे जिससे बेटा आया। तुमने जगह दी आने की। तुमने बेटा बनाया थोड़ी है, बनाने

वाला कोई और है। तुम तो केवल माध्यम थे, निमित्त थे। तुम निर्णायक थोड़ी हो। जो हो जाये, अपेक्षा-शून्य व्यक्ति स्वीकार कर लेता है। उसी स्वीकार में क्षमा है।

अब इसे समझना।

साधारणतः धर्मगुरु तुम्हें समझाते हैं – कुछ ऐसी बात समझाते हैं जिससे लगता है : क्षमा क्रोध के उलटी है। वे ऐसा समझाते हैं कि तुम क्रोध मत करो, क्षमा कर दो इस आदमी को; इसने पाप किया, क्रोध मत करो, क्षमा कर दो ! लेकिन मानते वे भी हैं कि इसने पाप किया; नहीं तो क्षमा क्या खाक करोगे ? जब इसने कुछ गलती ही नहीं की तो क्षमा क्या करना है ? क्षमा तो गलत हो गया, तभी की जाती है। तो फिर क्रोध और क्षमा में एक बात तो समान रही कि इसने गलती की है। कोई क्रोध करता है गलती पर, कोई क्षमा करता है गलती पर; लेकिन गलती दोनों स्वीकार कर लेते हैं।

मेरे क्षमा का अर्थ और महावीर की क्षमा का अर्थ बिलकुल अलग है। महावीर जब कहते हैं, क्षमा करो, तो वे इतना ही कह रहे हैं : समझो कि तुम हो कौन गलती और सही का निर्णय करने वाले ? अपेक्षा मत करो और क्षमा आ जायेगी।

क्षमा क्रोध के विपरीत नहीं है – क्षमा क्रोध का अभाव है। इसलिए क्षमा करनी नहीं पड़ती; अपेक्षा के गिरते ही हो जाती है।

' क्षमा से क्रोध का हनन करें, नम्रता से मान को जीतें। '

नम्रता का क्या अर्थ है ? – अपनी स्थिति को जानना। यह कोई साधना नहीं है, सिर्फ अपने तथ्य को पहचानना : क्या है मेरी स्थिति ? सांसों में अटका हूं। सांस बंद हो गई, समाप्त हो जाऊंगा। स्थिति क्या है ? आज हूं, कल नहीं हो जाऊंगा। अभी जमीन पे चल रहा हूं, कल जमीन मेरे ऊपर होगी। अभी सबके सिर पे बैठने की कोशिश की है, कल इन्हीं के चरण मेरे ऊपर पड़ेंगे।

नम्रता का अर्थ है अपनी वास्तविक स्थिति का जानना कि हमारा होना ही क्या है ? अहंकार किस बलबूते पर ? अपने को 'मैं' कहना भी किस बलबूते पर ? एक तरंग है, आई-गई !

' नम्रता से मान को जीतें, ऋजुता से माया को।

ऋजुता का अर्थ है : सरलता, प्रामाणिकता, सीधासादापन। तुम्हारे साधु भी तिरछे हैं, वे भी ऋजु नहीं हैं। ऋजुता का तो अर्थ है : बच्चे जैसा भोलाभालापन। साधु तो तुम्हारे बहुत अऋजु हैं, बहुत उलटे हैं। ऋजु नहीं हैं, इरछे-तिरछे हैं, बड़े जटिल है। एक-एक बात को गणित से कर रहे हैं। अगर उपवास रखा है तो हिसाब भी रखा है साथ में कि उपवास किया है। इस साल कितने उपवास किये, वह भी हिसाब है। यह परमात्मा के सामने पूरे खाते-बही ले के मौजूद होंगे। इनकी जिंदगी में सरलता नहीं है। इनकी जिंदगी में बड़ा गणित है। अगर क्रोध छोड़ा है, माया-मो-

छोड़ा है, तो स्वर्ग पाने की आकांक्षा में छोड़ा है; लेकिन कुछ पाने की आकांक्षा है। यह छोड़ना सीधा, साफ, सरल नहीं है।

ऋजुता बड़ा बहुमूल्य शब्द है – सीधी लकीर की तरह। दो बिंदुओं के बीच जो निकटतम दूरी है वह लकीर है। निकटतम! अगर जरा लम्बा किया तो इरछा-तिरछा हो जायेगा। दो व्यक्तियों के बीच जो निकटतम दूरी है, वह ऋजुता है। दो बिंदुओं के बीच जो निकटतम दूरी है, वह लकीर है, पंक्ति है, रेखा है।

जब कोई व्यक्ति तुमसे कुछ पूछता है, तब तुम दो तरह का व्यवहार कर सकते हो : या तो इरछे-तिरछे जाओ, गली-कूचों से घूमो, सीधे न जाओ, सीधी बात न करो, चालबाजी चलो; कुछ कहना चाहते हो, कुछ कहो; कुछ बताना चाहते हो, कुछ बताओ।

कहते हैं, मुल्ला नसरुद्दीन बचपन से ही उलटी खोपड़ी था। उलटी खोपड़ी यानी उससे जो भी कहो, वह उससे उलटा करेगा। तो मां-बाप समझ गये थे। क्या करोगे, अब उलटी खोपड़ी है...। तो उससे वे वही कहते जो वे चाहते थे कि वह न करे। और जो वे चाहते कि वह करे, उससे उलटा कहते। जैसे अगर उनको चाहिए कि वह चुप बैठे तो वे कहते, 'बेटा! जरा शोरगुल कर।' तो वह चुप बैठ जाता। समझ गये एक दफे गणित, तो वे वैसे ही चलते।

एक दिन बाप बेटे के साथ लौट रहा था, नदी पार कर रहे थे। गधे पर शक्कर के बोरे लादे हुए थे। बीच नदी में बाप ने देखा कि बोरे बाईं तरफ झुके जा रहे हैं। नसरुद्दीन के गधे पे जो बोरे थे वे बाईं तरफ झुके जा रहे हैं। तब वह चाहता था कि बेटा उन्हें दाईं तरफ थोड़ा सरकाये। लेकिन वैसा कहो कि दाईं तरफ सरकाओ तो वह कभी सरकायेगा नहीं। तो उसने कहा, 'बेटा, बोरों को जरा बाईं तरफ सरका।' बाईं तरफ वे खुद ही सरक रहे थे। मगर उस दिन चकित हो के बाप को देखना पड़ा कि बेटे ने उनको बाईं तरफ सरका दिया। सब बोरे नदी में गिर गये। बाप ने कहा, 'यह तेरा व्यवहार आज कुछ संगत नहीं!' उसने कहा, 'अट्ठारह साल का हो गया; अब मैं भी समझने लगा तरकीब। अब तो तुम जो कहोगे, उसके उलटा न करूंगा; अब तो तुम जो चाहते हो, उसके उलटा करूंगा।'

लेकिन बाप भी आखिर नसरुद्दीन का बाप! उसने भी तरकीब निकाल ली। अब बात और भी तिरछी हो गई। अगर बाप को चाहिए कि बोरे दाएं तरफ सरकाये जाएं, तो पहले तो वह कहता था कि बाएं तरफ सरकाओ; अब अगर दाएं तरफ ही सरकवाना हो तो कहना पड़ता है कि दाएं तरफ सरकाओ। क्योंकि बेटा सोचेगा, यह बाएं तरफ सरकवाना चाहता है, इसलिए दाएं तरफ सरकायेगा। अब और तिरछी हो गई बात। गणित और उलझ गया।

दो बिंदुओं के बीच जो सीधी रेखा है, वही ऋजुता है। जो कहना है, जो करना है, जो चाहना है – वही कहो। जो कहते हो वही हो जाओ : ऋजुता का अर्थ है।

नहीं तो उलटा होता है। तुम जाते हो किसी के पास, तुम कहते हो... । तुम हंस रहे हो इस बात पर, लेकिन अगर खोजोगे तो इस उलटी खोपड़ी को हर खोपड़ी में छिपा हुआ पाओगे। तुम किसी के पास जाते हो, तुम कहते हो कि आप के चरण की धूल हूं, मैं तो कुछ भी नहीं! तुम चाहते यह हो कि यह कहे, 'अरे आप और चरण की धूल! आप बड़े महापुरुष हैं।' अब समझो कि वह दूसरा आदमी कहे कि बिलकुल ठीक कह रहे हैं आप, चरण की धूल तो हैं ही, इसमें कहने का क्या है! तो आप नाराज हो जायेंगे कि हद हो गई; इस आदमी को शिष्टाचार भी नहीं आता!

तुम जरा खयाल करना, तुम्हारी जिंदगी में यह उलटी खोपड़ी काफी समायी हुई है। तुम चाहते कुछ और हो, कहते कुछ और हो। यह धोखा फैला चला जाता है।

महावीर कहते हैं, 'ऋजुता से माया को...।' वह जो कपट है, तिरछापन है, उसको ऋजुता से जीत लो। क्योंकि जितने तुम कपट मे भरते जाओगे, उतनी जीवन में उलझन होगी; उतना तुम्हारा जीवन पांखों में कट जायेगा।

सरल व्यक्ति शात होता है। देखा तुमने! जब भी तुम झूठ बोलते हो, तभी अशांति होती है। क्योंकि फिर याद रखना पड़ता है झूठ को कि किससे क्या बोले। जो आदमी झूठ ही बोलता रहता है सबसे, उसका जरा हिसाब तो समझो। एक बात तो माननी पड़ेगी, उसकी स्मृति की दाद देनी पड़ेगी। याददाश्त तो देखो! याद रखना पड़ता है। सत्य को याद रखने की कोई भी जरूरत नही है। जो व्यक्ति सचाई से जीता है, उसे याददाश्त की जरूरत ही नही है; क्योंकि सत्य हमेशा वही का वही है। लेकिन तुमने एक से कुछ कहा, दूसरे से कुछ कहा, तीसरे से कुछ कहा —फिर हिसाब रखना पडता है, पहले से क्या कहा, दूसरे से क्या कहा, तीसरे से क्या कहा।

मुल्ला नसरुद्दीन दो स्त्रियों के प्रेम में था। बहुत कम लोग हैं जो एक स्त्री के प्रेम में हों। द्वैत हमारा सभी जगह होता है। तो एक स्त्री से कहता है कि तुझसे सुंदर इस जगत में कोई भी नही; दूसरी से भी यही कहता है कि तुझसे सुंदर इस जगत में कोई नही। दोनों बातें झूठ थी। कम से कम एक तो झूठ थी ही। एक दिन सयोग की बात, दोनों स्त्रियां साथ मिल गईं और दोनों को शक तो था ही। उन्होंने नसरुद्दीन से पूछा, 'अब कहो कि कौन स्त्री दुनिया में सबसे ज्यादा सुंदर है?'

नसरुद्दीन थोड़ा झिझका। उसने कहा कि तुम एक-दूसरे से ज्यादा सुंदर हो!

एक-दूसरे से ज्यादा सुंदर! आदमी तरकीब निकाल ही लेता है। लेकिन हम झूठ बोलते चले जाते है। जाल उलझता चला जाता है। धीरे-धीरे तो बहुत बार झूठ बोल के ऐसी हालत आ जाती है कि हमें भी लगता है कि शायद यही सच होगा; क्योंकि इतने दिन से बोल रहे हैं, याद भी नही आती कि कब शुरू किया था। बहुत बार बोलने से, बहुत बार पुनरुक्त होने से झूठ स्वयं को भी सच जैसा मालूम पड़ने लगता

है। तब तुम अऋजु हो गये। तब तुम अर्जुन हो गये — अऋजु!

कृष्ण की पूरी चेष्टा गीता में इरछे-तिरछे अर्जुन को सीधा करने की है। नाम 'अर्जुन' का बड़ा सार्थक है। कृष्ण की पूरी चेष्टा यही है कि तू सीधा-साफ हो; क्षत्रिय है, क्षत्रिय की बात बोल। अचानक, यह अर्जुन कभी भी अहिंसा की बात नहीं बोला था, आज अचानक अहिंसा बोलने लगा। और अहिंसा इसकी सच्ची नहीं है। क्योंकि अगर ये इसके प्रियजन न होते, संबंधी न होते, भाई-भतीजे, गुरु, पितामह, चचेरे, सब तरह के, मौसी, मामा के रिश्तेदार, सब इकट्ठे थे — अगर ये इसके अपने न होते, अपनों को देख के यह जरा डरा। इसने कहा कि यह तो सब अपनों को ही मार डालूगा।

अब यह थोड़ा सोचने जैसा है। अर्जुन को सवाल उठा कि आदमी धन भी कमाता है, पद भी कमाता है, सिंहासन पे भी बैठता है, तो मजा तो तभी आता है जब अपने देखने को मौजूद हो। तुम अगर दूसरे किसी गाव में जहां तुम्हें कोई भी नहीं जानता, सम्मानित भी हो जाओ तो तुम्हें वह मजा न आएगा जो अपने गांव में सम्मानित हो के आयेगा। दूसरे गांव में जहां कोई जानता ही नहीं, वहां सम्मानित भी हो गये तो क्या खाक सम्मान! तुम्हारी इच्छा उस दूसरे गांव में यह होगी कि अपने गाव वालो को पता चल जाये कि कैसा सम्मान मिल रहा है, कैसी प्रतिष्ठा मिल रही है! अगर तुम्हें ऐसा कुछ हो कि तुम दुनिया के सम्राट हो जाओगे, लेकिन तुम्हें जानने वाले सब मर जायेंगे, तो तुम भी अर्जुन की हालत में खड़े हो जाओगे। तुम भी सोचेगे, सार क्या! अगर जंगल में जा के राजा हो गये, जहां कोई आदमी नहीं, तो जंगली जानवरो के बीच राजा होने का सार क्या! इससे तो डिप्टीकलेक्टर होना अच्छा, पुलिस इन्सपेक्टर होना अच्छा, पटवारी होना अच्छा — लेकिन कम-से-कम अपने गांव में। जहां कोई जानता है, पहचानता है, वहीं अकड़ का मजा होता है। उन्हीं के सामने तो हम सदा सिद्ध करना चाहते हैं कि देखो, तुम वहीं के वही रह गये, हम कहां पहुंच गये, जिनके साथ हमने यात्रा शुरू की थी! अब अर्जुन इन्ही के साथ बड़ा हुआ, यही भाई-बंधु, इन्ही के साथ जिंदगी का दांव था, इन्हीं के साथ सारी स्पर्धा थी बचपन से ले के अब तक, यही सब खत्म हो जायेंगे — फिर सिंहासन पे भी बैठ जाओगे, तो आसपास गिद्ध बैठे होंगे, सियार आवाज कर रहे होंगे और अजनबी साधारण-से लोग होंगे जिनसे तुम्हारी कोई झंझट ही न थी, कोई प्रतिस्पर्धा न थी, जिनका होना न होना बराबर होगा। तो अर्जुन के मन में उठो तो है असल में अहंकार की बड़ी गहरी पकड़, बड़ा मोह। इन्हीं के सामने तो सिद्ध करने का मजा है। दुर्योधन रहे, और हम जीतें। भीष्म पितामह रहें, और देखें कि अर्जुन सिंहासन पर है। और ये सारे कर्ण, और ये सारे संबंधी पराजित खड़े हों, तो ही मजा है। नहीं तो मजा क्या है? उठा तो यह था, लेकिन बात उसने दूसरी की। उसने कहा कि मैं मारना नहीं चाहता, हिंसा तो बड़ा पाप

है ! आज तक हिंसा ही करता रहा, मांसाहारी; आज अचानक अहिंसक हो गया ! कृष्ण को धोखा देना संभव न था । वे अर्जुन को खींच-खींच के सीधा करने लगे ।

गीता पूरी-की-पूरी अर्जुन को ऋजु बनाने की चेष्टा है । वे उसको पकड़-पकड़ के सीधा कर रहे हैं कि जरा अक्ल ला, वापिस लौट, कहां की बातें कर रहा है ? संन्यास तुझे सोहता नहीं । यह तेरे भीतर की बात नहीं । अन्यथा इतने दिन तक कौन तुझे रोकता था संन्यास लेने से ? आज अचानक युद्ध के मैदान पर संन्यास की भाषा उठने लगी है ! इस संन्यास में कहीं कुछ और छिपा है ।

तुम अपने भीतर ऋजुता को खोजना । जब भी तुम कुछ कहो तो जरा गौर से देखना, तुम यही कहना चाहते हो ? यही तुम्हारी गहनतम आकांक्षा है या इससे विपरीत ? तो जो सीधा-साफ हो, उसी को धीरे-धीरे साधना ।

ऋजता से जटिलता कट जाती है, माया हार जाती है । संतोष से लोभ जीत लिया जाता है । जो तुम्हारे पास हो, उसमें आनंदित, उसमें मग्न होना । संतोष का अर्थ है : इतना मिला है, थोड़ा धन्यवाद तो दो ! इतना मिला है, अनुग्रह तो मानो ! आंखें हैं कि तुम रोशनी देख सके, कि सूरज में खिले फूल देख सके, कि वृक्षों की यह हरियाली देख सके ! जरा सोचो तो, अंधे भी हैं दुनिया में, जिन्हें रंग नही दिखाई पड़े ! और जिन्होने रंग न जाना, उन्होने क्या खाक दुनिया जानी ! जिन्हें रूप न दिखाई पड़ा, जिन्हें चेहरा और आंखों में जो परमात्मा प्रगट होना है उसकी कोई झलक न मिली... ! तुम्हारे पास कान हैं, तुम गहनतम संगीत को सुनने में समर्थ हो, पक्षियों का नाद, नदी की कलकल, सागर में उठे तूफानों की दहाड़, बादलों की गड़गड़ाहट ! जरा सोचो तो कि जिनके पास कान नही है, उनका जीवन कैसा खाली-खाली, सूना-सूना होग. ! जहां कोई ध्वनि नहीं गूंजी, कैसा मरुस्थल जैसा होगा ! कितना तुम्हें मिल है ! इन पांचों इंद्रियों से कितनी वर्षा तुम पर हुई है ! इस भीतर के बोध से कितने आनंद के द्वार खुले हैं, खुलते रहे हैं ! एक बंद हुआ है तो दूसरा खुला है !

लेकिन नही, लोभी कहता है, इसमें क्या धरा है ? तिजोड़ी ! धन ! जो मिला है उसकी तो फिक्र नहीं करता; जो नही मिला है उसकी दौड़ में, आपाधापी में नष्ट होता है ।

महावीर कहते हैं, संतोष से लोभ को जीत लो । जरा देखो जो मिला है । उस पर नजर लाओ जो मिला है ।

दुनिया में दो तरह के लोग हैं । एक – जिनकी नजर उसको ही देखती है, जो नही मिला है। वे लोभी हैं । दूसरे – जिनकी नजर वही देखती है, जो मिला है । वे संतोषी हैं । और संतोषी को बहुत मिलता है । क्योंकि मिलने पे उसकी नजर होती है, तो और मिलता है । और लोभी को कुछ भी नहीं मिलता; क्योंकि न मिलने पे उसकी नजर होती है । न मिलना ही बढ़ता जाता है । लोभ मे और लोभ बढ़ता है ।

संतोष से और संतोष बढ़ता है। जो थोड़ा संतोष में डूबेगा वह पायेगा—

काफिले या मिट गए या बढ़ गए

अब गुबारे-राह भी उठता नहीं ।

वे जो वासनाओं के, असंतोष के, अतृप्तियों के, लोभ के, कामनाओं के काफिले थे – काफिले या मिट गए या बढ गए – या तो मिट गये, या कहीं और हट गये।

अब गुबारे-राह भी उठता नहीं।

– अब तो रास्ते पर गुबार भी नहीं है। काफिलों के बीत जाने के बाद जो थोड़ी गुबार उठती रहती है, वह भी नहीं है।

ध्यान रखना, भोग जब बीत जाता है तो त्याग की गुबार रह जाती है। भोग का काफिला तो निकल जाता है, तब त्याग की धूल रह जाती है। लेकिन परम शांति तभी मिलती है, जब भोग भी गया, त्याग भी गया।

काफिले या मिट गए या बढ़ गए

अब गुबारे राह भी उठता नहीं।

तब एक परम तृप्ति, एक अहर्निश शांति की वर्षा होने लगती है! तब तुम पहली दफा पाते हो: जीवन क्या है! और कितने अहोभागी हैं कि हम हैं! तब होना मात्र ही इतनी बड़ी सम्पदा है कि और कुछ चाहने की बात ही नादानी है।

'जैसे कछुआ अपने अंगों को अपने शरीर में समेट लेता है, वैसे ही मेधावी पुरुष पापों को अध्यात्म के द्वारा समेट लेता है।'

अध्यात्म यानी जागरण की प्रक्रिया; आत्मवान होने का शास्त्र। जैसे कछुआ सिकोड़ लेता है अपनी इंद्रियों को; जहां-जहां पाता है भय है, जहां-जहां पाता है चिंता है, वहीं भीतर सिकुड़ जाता है, अपनी गहरी सुरक्षा में डूब जाता है – ऐसे ही जहां-जहां तुम्हें लगे भय है, दुख है, पीड़ा है, असंतोष है, अभाव है, चिंता है, संताप है, वहां-वहां से अपने चैतन्य को हटा लेना। और अंतरात्मा की गहनता में सब है जो तुम पाना चाहते हो।

यकीन रख कि यहां हर यकीन में है फरेब

बका तो क्या है, फना का भी ऐतबार न कर।

होश को सम्हालो! यहां भरोसा मत करो। यहां बड़े धोखे भरे पड़े हैं। यहां अब तक तुम जिन चीजों में डोले हो, सभी में धोखा है। यहां जिंदगी की तो बात छोड़ो, मौत भी धोखा दे जाती है। क्योंकि मौत भी कहां मौत सिद्ध होती है, फिर पैदा हो जाते हो!

यकीन रख कि यहां हर यकीन में है फरेब

बका तो क्या है, फना का भी ऐतबार न कर।

यह सब फरेब है नजरे इम्तियाज का

दुनिया में वरना कोई भी अच्छा-बुरा नहीं।

न यहां कुछ अच्छा है, न बुरा है । अच्छा तुमने समझा कुछ – मोह पैदा हुआ, राग पैदा हुआ । बुरा समझा कुछ – द्वेष पैदा हुआ, विराग पैदा हुआ । यहां न कुछ अच्छा है, न बुरा है । सब दृष्टि की बात है । तुम दृष्टि को भीतर मोड़ लो, एक गहन संतुलन पैदा होता है, जहां बुरा और अच्छा सब मिट जाता है, न कोई मित्र न कोई शत्रु ।

'जान या अजान में कोई अधर्मकारी हो जाये तो अपनी आत्मा को तुरंत उससे हटा लेना चाहिए । फिर दूसरी बार वह कर्म न किया जाये ।'

जान या अजान में अधर्मकारी हो जाये तो तुरंत, उसे पूरा भी मत करना ! अगर क्रोध करने के क्षण में आधा वचन बोले थे गाली का और याद आ जाये तो आधा ही बोलना और क्षमा मांग लेना; उसे पूरा भी मत करना । अगर वासना में एक कदम उठ गया था और दूसरा उठने को था और याद आ जाये तो जो नहीं उठा है, उसे मत उठाना; जो उठ गया है, उसे वापिस मोड़ लेना ।

बहुत सम्हल के चलोगे तो ही पहुच पाओगे । रास्ता बड़ा कंटकाकीर्ण है, चढाव भारी है – और तुम्हारी आदत उतरने की, फिसलने की है । तुम तो धर्म से भी फिसलने का उपाय खोज लेते हो ।

एक व्यक्ति ने डाक्टर से पूछा, 'आखिर मुझे हुआ क्या है ?'

'आप बहुत अधिक खाते हैं, 'कहा डाक्टर ने, 'बहुत शराब पीते है, और सुस्त है, महाकाहिल, महामुस्त है । यही आपकी बीमारी है ।'

उस आदमी ने कहा, 'डाक्टर साहिब ! कृपा करके इसे अपनी डाक्टरी भाषा में लिख देंगे, जिससे मैं दफ्तर से एक महीने की छुट्टी प्राप्त कर सकू !'

सुस्त है, शराब पीता है, अनिशय खाना है – उसमें से भी एक महीने की छुट्टी निकालने की आशा रखता है, तो और सुस्ती बढ़ेगी, और खायेगा, और पी के पड़ा रहेगा । लेकिन डाक्टरी भाषा मे लिख दें, क्योकि सुस्ती से तो बात चलेगी नही ।

शास्त्र तुम्हारे लिए डाक्टरी भाषा सिद्ध होते है । तुम उनमें से अपना मतलब निकाल लेते हो । उनसे भी फिसल जाते हो ।

जान या अजान में कोई अधर्मकार्य हो जाये तो अपनी आत्मा को तुरंत उससे हटा लेना चाहिए । फिर दूसरी बार वह कार्य न किया जाये । और एक बार जहां भूल दिखाई पड़ गई हो, आधे मे दिखाई पड़ी हो, तो वही से लौट आना चाहिए । और फिर दुबारा स्मरण रखना चाहिए कि इस यात्रा पर दुबारा कदम न उठे । ऐसा याद रखोगे, रखोगे, रखोगे, धीरे-धीरे याद पकेगी, मजबूत होगी । फिर बीज से ही वह जो गलत है, तुम्हारे भीतर प्रवेश न कर पायेगा ।

उसके चक्कर में दुबारा तो मैं आने का नही
ढूंढ़ती फिरती है क्यो गर्दिशे-दौरां मुझको ।

– अब संसार के चक्कर मे दुबारा आने का नहीं है । एक बार होश सम्हला, फिर

कितना ही ढूंढे संसार की विपत्तियां तुम्हें, फिर कितना ही लोभ के विषय तुम्हारे चारों तरफ खड़े रहें, और कामवासना के लिए कितनी ही अप्सराएं तुम्हें निमंत्रण देती रहें – नहीं, फिर तुम न जा सकोगे। जो जागने लगता है, होश करने लगता है, अपने जीवन की स्थिति को जांचने-परखने लगता है, स्वाभाविक है कि जहां आग है वहां से हाथ खींच ले।

इश्क बाबस्तए-जंजीरें-जुनूं कब है 'रविश'

हुस्ने-खुदबी की तमन्ना है तो खुद होश में आ।

तुम्हारी अंतरात्मा, तुम्हारा गहन हृदय किसी जंजीर में बंधा हुआ नहीं है। तुम्हारा प्रेम कारागृह में बंद नहीं है। सिर्फ तुम बेहोश हो। अगर वास्तविक सौंदर्य का अनुभव करना है तो बस एक काम कर लो–

हुस्ने-खुदबीं की तमन्ना है तो खुद होश में आ।

–बस होश में आ जाओ। बेहोशी ही तुम्हारा कारागृह है। वही तुम्हारी जंजीरें हैं।

महावीर का सर्वाधिक जोर होश पर है। बेहोशी पाप है, होश पुण्य है।

'संपूर्ण परिग्रह से मुक्त, शांतिभूत, शीतिभूत, प्रसन्नचित्त श्रमण जैसा मुक्ति-सुख पाता है, वैसा सुख चक्रवर्ती को भी नहीं मिलता।'

अगर तुम सम्राट भी हो जाओ सारे संसार के, छहों द्वीप के चक्रवर्ती हो जाओ, तो भी तुम उस सुख को न पा सकोगे जो उस भिक्षु को मिलता है, उस श्रमण को, या उस ब्राह्मण को, जो परिग्रह से मुक्त, लोभ से मुक्त, शीतिभूत, भीतर शांत हुआ, शीतल हुआ, प्रसन्नचित्त!

ये सारे सूत्र बड़े बहुमूल्य हैं। जीवन में तुमने अभी गर्मी जानी है, शीत नहीं जानी। जीवन का तुमने एक ही काल जाना है – ऊष्ण; अभी शीतल क्षण नहीं जाने। अभी तुम उबले हो, जले हो, शांत नहीं हुए, ठंडे नहीं हुए। धीरे-धीरे अपने को शीतल करो, शांत करो। जो-जो चीज तुम्हें उबालती हो, ईंधन बनती हो तुम्हारी वासना में, तुम्हें जलाती हो, उससे धीरे-धीरे जागो और दूर हटो। तो तुम उस शांति को, उस मुक्ति-सुख को पाने में समर्थ हो जाओगे, जो सारे संसार का मालिक भी कोई हो जाये तो नहीं पाता। अपने मालिक हो कर ही पाया जाता है वह।

कहीं से ढूंढ कर ला दे हमें भी ऐ गुलेतर!

वोह जिंदगी, जो गुजर जाए मुस्कराने में।

लेकिन किसी से मांगने से वह जिंदगी न मिलेगी। वह जिंदगी तो तुम खोजोगे तो ही, बनाओगे तो ही। तुम वही पाओगे, जो बना लोगे। आत्मा तुम्हारा निर्माण है, तुम्हारा सृजन है।

कौन कहता है ख्वाबे-रायगां है जिंदगी

ऐ अमीने होश! कैफे-जाविदां है जिंदगी

जादा पैमां, कारवां-दर-कारवां है जिंदगी

जिंदगी मौजे-रवां, जूए-रवां, बहरे-रवां
–किसने कहा कि जीवन व्यर्थ है !
कौन कहता है ख्वाबे-रायगां है जिंदगी ।

किसने कहा कि जिंदगी सपना है ! होशवाले ! थोड़ा होश को सम्हाल ! ऐ अमीने होश ! कंफे-जाविदां है जिंदगी । जिंदगी तो परम आनंद है, स्थायी आनंद है।

जादा पैमा, कारवां-दर-कारवां है जिंदगी !

यह तो एक यात्री-दल है जीवन-यात्रा पर निकला, प्रतिक्षण गतिमान ।

जिंदगी मौजे-रवां, जूए-रवां, बहरे-रवां ।

जीवन आनंद की लहर है ! आनंद की सरिता है ! आनंद का सागर है ! लेकिन उनके लिए ही, जिन्होंने अपने को कछुए की भांति सिकोड़ लिया; उनके लिए ही, जिन्होंने अपने को जगा लिया । और जिनको जीने का यह ढंग नहीं आता, वे जीवन के विपरीत बातें करने लगते हैं; उनसे सावधान रहना !

महावीर जीवन के विपरीत नहीं है । महावीर तुम्हारे तथाकथित जीवन के विपरीत हैं, ताकि तुम असली जीवन को पा सको ।

न आया जिसे शेवए-जिंदगी
वही जिंदगी से खफा हो गया ।

और जिसको भी जिंदगी जीने का ढंग न आया, वही नाराज हो गया । नाराजगी धर्म नहीं है – समझ, होश ।

महावीर महासुख के पक्षपाती है । उस महासुख को ही वे मोक्ष कहते है । तो उन्होंने जितनी जिंदगी के खिलाफ बाते कही हैं, हमेशा याद रखना, तुम्हारी जिंदगी के खिलाफ कही है । जिंदगी जो कही गलत हो गई, जहर हो गई; जिंदगी जो कही रोग हो गई; जिंदगी जो कही विक्षिप्त हो गई – उसके खिलाफ कही हैं । और इसीलिए खिलाफ कही हैं, ताकि असली जिंदगी की तलाश में तुम निकल सको । इसीलिए कही हैं, ताकि तुम्हे अगर तुम्हारी जिंदगी दुख मालूम पड़े, तो तुम जागो ।

दुख जगाता है । दुख की याद आने लगे, समझ आने लगे, तो फिर सुख की दिशा की खोज पैदा होती है । महावीर जीवन-विपरीत नहीं, विरोध में नहीं । महावीर महाजीवन के पक्षपाती हैं । खोटे सिक्कों के विरोध में है; क्योंकि असली सिक्के मौजूद हैं और तुम खोटे सिक्कों से अपने को भरमाये चले जाते हो । जागो !

आज इतना ही

दिनांक २२ मई, १९७६, श्री रजनीश आश्रम, पूना

प्रश्न-सार

मुझसे न समर्पण होता है और न मुझमें संकल्प की शक्ति है। और आपसे दूरी भी बरदाश्त नहीं होती। क्या करूं ?

आपका कहना है कि प्यास है तो जल भी होगा ही, और प्यासा ही जल को नहीं खोजता, जल भी प्यासे को खोजता है.... ? मेरा मार्ग-निर्देश करें।

आश्चर्य है कि मैं आपके प्रति अनाप-शनाप बकता हूं, कभी-कभी गाली भी देता हूं। यह क्या है ?

मेरी विचित्र धारणाओं के कारण आप मुझे भगवान जैसे नहीं लगते... ?

मेरी दिनचर्या आनंदचर्या बन गयी है। अब पिघलूं और बहूं—बस यही कह दें।

संकल्प की अंतिम निष्पत्ति : समर्पण

पहला प्रश्न : मुझसे न समर्पण होता है और न मुझमें संकल्प की शक्ति ही है; बीच में उलझा हूं। आपने तो मेरे लिए बड़ी झंझट खड़ी कर दी है। हाल यह है कि आपसे दूरी भी बरदाश्त नहीं होती। क्या करूं?

वेइख्तियार माग ली तेरे सितम की खैर
उठते नहीं है हाथ अब दस्ते-दुआ के बाद।

संकल्प तो किया जाता है – समर्पण होता है। इसलिए ऐसा प्रश्न तुम उठा ही न सकोगे कि समर्पण नही होता। समर्पण तुम्हारी शक्ति की बात नही है। इसलिए ऐसा प्रश्न तो बुनियाद से ही गलत है कि समर्पण की मुझमें शक्ति नही है। इसे ठीक से समझना।

समर्पण कोई कृत्य नही है, जो तुम कर सको। समर्पण तो ऐसी चित्त की दशा है, जहा तुम पाते हो कि अब मुझसे तो कुछ भी नहीं होता। जरा भी आशा बनी रही कि मुझमे कुछ हो सकता है तो समर्पण न होगा; तो तुम्हारा अहंकार बचा है। तुम सोचते हो, अभी संभव है कि मै कुछ कर लू। लेकिन जब तुम्हारा अहंकार सभी तरफ से जराजीर्ण हो के बिखर जाता है; जैसे कोई पुराना भवन गिर गया हो, जैसे कोई पुराना वृक्ष, जड़ टूट गई, उखड़ गया हो–जिस दिन तुम्हारा अहंकार परिपूर्ण रूप से गिर जाता है और तुम्हें लगता है: मेरे किये कुछ भी न होगा, क्योंकि मेरे किये अब तक कुछ न हुआ। जब तुम्हारे करने ने बार-बार हार खायी; जब तुमने किया और हर बार असफलता हाथ लगी; जब कर-कर के तुमने सिर्फ दुख ही पाया, और कुछ न पाया; कर-कर के नर्क ही बनाया, और कुछ न बनाया–जब यह पीड़ा सघन होगी, जब तुम पूरे असहाय मालूम पड़ोगे, उस असहाय क्षण में ही समर्पण घटित होता है। वह तुम्हारा कृत्य नहीं है; वह तुम्हारे कृत्य की पराजय है। हारे को हरिनाम! जब तुम्हारी हार इतनी प्रगाढ़ हो गई कि अब जीत की कोई आशा भी न बची; जब तुम्हारी हार अमावस की अंधेरी रात हो गई कि अब एक किरण भी अहंकार की शेष नहीं रही, अब तुम्हें लगता नहीं कि तुम कुछ कर पाओगे – पराजय की परिपूर्णता में समर्पण घटित होता है।

पूछा है कि 'मुझसे न समर्पण होता है, न संकल्प की शक्ति ही मुझमें है।' दूसरी बात तो ठीक हो सकती है कि संकल्प की शक्ति न हो; पहली बात ठीक नहीं हो सकती। और अगर पहली बात ठीक नहीं है तो दूसरी भी पूरी ठीक नहीं हो सकती। तुम कहते हो, संकल्प की मुझमें शक्ति नहीं – यह भी तुम कहते हो, मानते नहीं। ऐसा तुम जानते नहीं। कहीं भीतर अभी भी आशा बची है। कोई किरण तुम सम्हाले हुए हो। तुम सोचते हो, इस बार नहीं हुआ, अगली बार होगा; आज नहीं हुआ, कल हो जायेगा। आज हार गया, वह अपनी शक्ति की कमी के कारण नहीं; परिस्थिति अनुकूल न थी। आज हार गया, क्योंकि भाग्य ने साथ न दिया। आज हार गया, क्योंकि मैंने चेष्टा ही पूरी न की। यदि मैं चेष्टा पूरी करता, ठीक सम्यक् मुहूर्त चुनता, तो बराबर जीतता।

सभी हारे हुए हार को समझा लेते हैं। हार को स्वीकार कौन करता है! हारा हुआ समझा लेता है कि लोग विरोध में थे। हारा हुआ समझा लेता है कि चेष्टा पूरी न हो सकी।

एक हाथी खड़ा था। और हाथी के पास, पैरों के पास सुबह की धूप थी। सूरज निकला था। सर्दी के दिन थे। एक चूहा बैठा था, वह भी धूप ले रहा था। ऐसे साधारणतः हाथियों को चूहे दिखायी नहीं पड़ते, लेकिन खाली खड़ा था हाथी, कुछ काम भी न था, इधर-उधर देख रहा था, सुबह की धूप ले रहा था – चूहा दिखाई पड़ा। उसने कहा, 'अरे! आश्चर्य! इतना छोटा प्राणी, कभी देखा नहीं!' चूहे ने कहा, 'आप गलत न समझें! मैं जरा कुछ दिनों से बीमार हूं।'

छोटा कौन है! थोड़े दिनों से बीमार हूं! जरा तबीयत नासाज है, इसलिए छोटा दिखाई पड़ रहा हूं।

तुमने भी नहीं समझा लिया है हजारों बार अपने को? समझाना छोड़ो! उस समझाने में ही, उस तर्क में ही, तुम्हारा अहंकार शेष रह जाता है। जिस दिन तुम अपनी हार को स्वभाव समझ लोगे कि मेरे किये होगा क्या...नहीं कि मैं आज कमजोर हूं, कल बलशाही हो जाऊंगा। नहीं कि मुझे ठीक विधि का पता नहीं है, कल पता चल जायेगा। नहीं कि आज भाग्य ने साथ न दिया, कल देगा। कोई हर्ज नहीं, एक बार हारे तो सदा थोड़े ही हारेंगे। कभी तो भाग्य बरसेगा! कभी तो किस्मत साथ होगी! कभी तो परमात्मा भी दया करेगा! किये जाओ!

नहीं, अहंकार नपुंसक है स्वभाव से। उसके किये कुछ होता ही नहीं।

तो मैं तुमसे कहूंगा कि तुम संकल्प कर ही लो; जितना तुमसे बन सके कर लो। हारो पूरी तरह। हार में विजय छिपी है। संकल्प की हार में समर्पण उठता है। जीत गये तो ठीक। अगर संकल्प से जीत गये तो ठीक; कोई जरूरत न रही। कुछ लोग जीत गये हैं। इक्के-दुक्के जीते हैं। रास्ता बड़ा कठोर है, बड़ा दुर्गम है! लेकिन कुछ लोग जीते हैं। तो अपनी पूरी कोशिश कर लो। अगर जीत गये, अगर

संकल्प से पा लिया तो पा ही लिया। अगर न जीते, तो भी पूरी कोशिश कर लेने के बाद हार समग्र होगी। तो पूरी तरह हार जाना। तो अनेकों ने हार के पाया है। और जीत के पाने से हार के पाने का मजा ज्यादा है।

यह प्रेम कुछ बात ऐसी है कि यहां हार, जीत है। तो हारने से घबड़ाना मत। मगर एक बार तुम्हें अपनी पूरी ताकत दांव पे लगा लेनी चाहिए। कहीं मन में यह लुका-छिपा भाव न रह जाये कि कर सकते थे। अगर वह भाव रहा तो समर्पण न हो पायेगा। ऐसा ही दिखता है –

क्या मैं है, मुहब्बत भी कुहसार को ढाए है
तिरतों को डुबोये है, डूबों को तिराए है।

तुमने देखा, कभी कोई मर जाता है तो नदी पे तैर जाता है! जिंदा डूब गया था, मर के तैर जाता है! मुर्दे को कोई तरकीब पता है जो जिंदे को पता नहीं थी। अगर जिंदा भी मुर्दे की भांति हो जाता तो नदी ने तैरा दिया होता, तो नदी डुबाती न। अगर जिंदा ने भी स्वीकार कर लिया होता कि चलो राजी हैं, डुबाओ, तो नदी डुबाती न। जो राजी है उसे कौन डुबाता है! वह जो डूबना नहीं चाहता, जो प्रतिरोध करता है, संघर्ष करता है, नदी उसी को डुबा देती है। तुम लड़ो मत!

मगर यह न लड़ने की घटना तभी घटेगी जब तुम्हारी लड़ने की वृत्ति पूरी तरह पराजित हो जाये; रत्ती मात्र भी आशा शेष न रहे। तुम गहन निराशा में गिरो। वहीं से सुबह है समर्पण की। संकल्प जहां हारता है, वहां समर्पण है। जीत गये तो जीत गये; न जीते तो भी हारे नहीं, क्योंकि फिर हार में से जीत निकल आती है। इसलिए धर्म के मार्ग पर जाने वाला कभी, कभी भी हारता तो है ही नहीं; जीतता है तो जीतता है, हारता है तो जीतता है। परमात्मा की तरफ जाने वाला हर हालत में पहुंचता है। क्योंकि सभी रास्ते उसकी तरफ जाते हैं।

जिन मित्र ने पूछा है, उनकी अड़चन यह है कि संकल्प का पूरा प्रयोग नहीं किया, और उस कमी को समर्पण से पूरा करना चाहते हैं। संकल्प पूरा नहीं हुआ, तो समर्पण कैसे पूरा होगा? तुम्हारा अहंकार पूरी तरह धूल में गिर जाना चाहिए।

यही तो अंजामे-जुस्तजू है कि ठोकरें खा के बुतकदों की
जबीने-रुसवा को रख के अपनी हरम की चौखट पै सो गया हूं
जो काफिला इस तरफ से गुजरे, वह एक ठोकर मुझे लगा दे
'जमील' मैं बीच रस्ते में इसी भरोसे पै सो गया हूं।

यही तो अंजामे-जुस्तजू है – यही तो खोज का नतीजा है कि ठोकरें खा के बुतकदों की – कि बहुत पूजा-गृहों की, मंदिरों की, मूर्तिगृहों की, ठोकरें खा-खा के ...

जबीने-रुसवा को रख के अपनी हरम की चौखट पै सो गया हूं।

– अपने बदनाम मस्तक को अब तो तेरे भवन के सामने सीढ़ियों पे सिर रख के सो गया हूं। अब खोजता भी नहीं।

जबीने-इसबा को रख के अपनी हरम की चौखट पै सो गया हूं
जो काफिला इस तरफ से गुजरे वह एक ठोकर मुझे लगा दे
' जमील ' मैं बीच रस्ते में इसी भरोसे पै सो गया हूं ।

समर्पण ऐसी घड़ी में घटता है, जब तुम बिलकुल हार के बीच रस्ते पे गिर के सो गये कि अब ठीक है, तुझे उठाना हो उठा लेना ! तुझे जिलाना हो जिला देना ! तुझे मारना हो मार देना ! न अपनी अब कोई खोज है, न अपनी अब कोई आकांक्षा है ! जो तेरी मर्जी – वही पूरी होने दे ! तब समर्पण उठता है ।

समर्पण करने की बात नहीं है, होने की दशा है । इसलिए तुम यह तो पूछ ही नहीं सकते कि मुझमें समर्पण की शक्ति भी नहीं । समर्पण का शक्ति से क्या लेना ? शक्ति की भाषा ही समर्पण के विपरीत है । समर्पण तो असहाय, बेसहारा, पराजित ...उससे उठता है । अभी तुम शक्ति की भाषा में सोच रहे हो, इसलिए मैं कहता हूं, थोड़ा संकल्प कर लो । महावीर के रास्ते पे थोड़ा चलो । पहुंच गये तो महावीर हो जाओगे, न पहुंचे तो मीरा हो जाओगे । घबड़ाना क्या है ? जो चलता है, मैं कहता हूं, पहुंच ही जाता है ।

महावीर और बुद्ध दोनों एक ही रास्ते मे चले । दोनों का रास्ता संकल्प का रास्ता था । दोनों समसामयिक भी थे । थोड़े-से ही वर्षों का फासला था । महावीर बारह वर्षों तक जूझते रहे । जूझ के उन्होंने पा लिया । बुद्ध छह वर्ष के बाद थक गये, हार गये । रास्ता वही था । इतने थक गये, इतने हार गये कि सब छोड़ के एक दिन वृक्ष के नीचे बैठ गये कि बस अब हो गया; न संसार में कुछ पाने योग्य है, न आत्मा में कुछ पाने योग्य है – पाने योग्य ही कुछ नहीं तो पाऊंगा क्या ! उस सांझ उन्होंने सब छोड़ दिया । खोज भी छोड़ दी । उनके पांच शिष्य, जो उनके साथ थे सदा, यह देख के कि बुद्ध भ्रष्ट हो गये, छोड़ के चले गये । उन्होंने कहा, यह गौतम तो अब भ्रष्ट हो गया । इसने तो साधना का पथ ही छोड़ दिया । लेकिन उसी रात घटना घटी । उसी रात बुद्धत्व को बुद्ध उपलब्ध हुए । उसी रात दीया जल गया ।

महावीर ने संकल्प से पाया, बुद्ध ने समर्पण से । गये दोनों संकल्प के रास्ते पर थे । इसलिए जैनों और बौद्धों में बड़ा बुनियादी विरोध बना रहा है, क्योंकि जैनों को लगता है, अगर बुद्ध भी ठीक हैं तो फिर महावीर के ठीक होने में कठिनाई पड़ती है । क्योंकि बुद्ध ने तो छोड़ के पाया, प्रयास छोड़ के पाया; अप्रयास से पाया । खोज ही छोड़ दी, तब पाया । और फिर तो बुद्ध ने इसे नियम बना दिया कि तुम तब तक न पा सकोगे, जब तक तुम्हारा प्रयास समाप्त न हो जाये । क्योंकि जिसे पाना है, वह पाया ही हुआ है; प्रयास छोड़ो तो दिखाई पड़ जाये । प्रयास की आपा-धापी में दिखाई नहीं पड़ता । तुम दौड़ते हो, चिल्लाते हो, भागते हो, तो जो मौजूद है, उससे चूक जाते हो ।

महावीर ने संकल्प से पाया। इसलिए बौद्धों को महावीर प्रीतिकर नहीं लगते। क्योंकि अगर महावीर ठीक हैं तो फिर बुद्ध का पाना कैसे हुआ ?

मैं तुमसे कहता हूं, दोनों ठीक हैं। सत्य कंजूस नहीं। और परमात्मा का एक ही रास्ता नहीं। जितने लोग हैं, उतने रास्ते हैं। हर आदमी वहीं से तो चलेगा, जहां है ! तुम वहां से चलोगे जहां तुम हो। दूसरा वहा से चलेगा जहां वह है। लेकिन सभी रास्ते उस तक पहुंच जाते हैं। सत्य का अर्थ ही यह है कि सब द्वार उसी तक पहुंचाते हैं। असत्य का बंधा हुआ मार्ग होता है। सत्य का कोई बंधा हुआ मार्ग नहीं होता। क्योंकि असत्य की सीमा होती है; सत्य की कोई सीमा नहीं होती। अगर क्षुद्र के पास जाना हो तो सभी रास्तो से न पहुंच सकोगे। अगर तुम्हें गंगा जाना है तो सभी रास्तों से न पहुंच सकोगे। लेकिन अगर महासमुद्र की तरफ जाना है तो कहीं से भी चलो, पहुच जाओगे। पूरब जाओ, पश्चिम जाओ, उत्तर जाओ, दक्षिण जाओ, देर-अबेर सागर तुम्हें मिल ही जायेगा। क्योंकि सागर ने पृथ्वी को सब तरफ से घेरा है। काई रास्ते से करीब मिलेगा, किसी से थोड़ी दूर मिलेगा। नाम शायद अलग होंग, कहीं हिंद महासागर मिलेगा, कहीं प्रशांत महासागर मिलेगा, कहीं अरब सागर मिलेगा – नाम ही अलग होंगे, सागर का स्वाद एक है।

सत्य महासागर जैसा है; असत्य छोटे-छोटे डबरे हैं। अगर जरा भी इधर-उधर गये तो चूक जाओगे।

समर्पण घट सके, इसके लिए संकल्प पूरी तरह कर लो। दोनों हालत में संकल्प जरूरी है। संकल्प से पहुंचना हो तो भी जरूरी है; समर्पण से पहुचना हो तो भी जरूरी है। संकल्प हर हाल आवश्यक है – और पूरा। क्योंकि जो थोड़ा तुमने अधूरा किया, जो बच गया, वही तुम्हें सतायेगा; वही समर्पण को घटित न होने देगा।

और मैं तुमसे यह नहीं कहता कि इसी मार्ग से चलोगे तो पहुंचोगे। अगर तुमने पहुचना है तो ऐसा कोई भी मार्ग नहीं है जो तुम्हें रोक पाये। लेकिन पहुंचन की एक शर्त है : जो भी करो, समग्र भाव से करना। अब समर्पण तो किया नहीं जा सकता, इसलिए संकल्प ही करो। तो यहां भी मैं इतने संकल्प के प्रयोग तुम्हें देता हू और समर्पण की बात किये चला जाता हूं।

मेरे पास लोग आ जाते हैं, कभी-कभी वे कहते है, आप कहते हैं समर्पण, कुछ भी नहीं करना, सिर्फ बहना है। फिर क्यों ध्यान ? फिर क्यों पांच-पांच ध्यान दिन में ? मैं जानता हू कुछ भी नहीं करना, बहना है, लेकिन तुम जैसे हो, अभी बह न सकोगे। तुम तैरने लगोगे। तुम तड़फड़ाने लगोगे।

मुर्दे की भांति नदी में छूट जाने के लिए तैरने की बड़ी गहरी कुशलता चाहिए। बड़ा तैराक ही अपने को छोड़ सकता है नदी में। क्योंकि बड़ा तैराक ही भय से मुक्त हो जाता है। वह जानता है कि तैर लेंगे जब जरूरत होगी। अगर कोई कठिनाई

आ गई तो तैरना तो अपने पास है। जितना बड़ा तैराक हो, उतना ही अपने को निस्पंद छोड़ देता है। हाथ-पैर भी नहीं हिलाता। क्योंकि वह जानता है, डर क्या है! हाथ अपने पास हैं, मैं सदा मौजूद हूं – अगर कोई घड़ी ऐसी आई तो तैर लूंगा। लेकिन ऐसी घड़ी का भय उसे नहीं सताता।

जिसने तैरना नहीं जाना, उससे मैं कहूं कि तू कूद जा नदी में, छोड़ दे अपने को, वह कूद भी जाये किसी प्रेरणा में, किसी उल्लास के क्षण में, उत्साह में, उत्तेजना में, किसी मदहोशी में, मेरी बात में पड़ जाये, मेरा गीत उसे पकड़ ले, नशे में आ जाये, कूद जाये – तो कूदते ही भूल जायेगा कि मैंने क्या कहा था। वह तत्क्षण हाथ-पैर फेंकने लगेगा। वह हाथ-पैर फेंकना अवश होगा। उसे रोक न सकेगा। क्योंकि रोकने का मतलब होगा: मौत। उसके सामने तो एक ही सवाल होगा: अगर जीना है तो हाथ-पैर फेंको, नहीं तो मरे! नदी तो भूल ही जायेगी, मौत और जीवन के बीच चुनाव होगा। कौन चिंता करता है उस समय कि बहो! तैरना जो नहीं जानता है, वह हाथ-पैर तड़फड़ाने लगेगा। जो तैरने में बहुत कुशल है, वही राजी होगा; वह कहेगा कि ठीक है, बह के देख लें।

निर्भय चित्त से बहना संभव है। संकल्प तुम पूरा कर लो। उससे तुम तैरना सीख जाओगे। अगर पहुंच गये तैरने से, तो ठीक है, पहुंच ही गये। अगर न पहुंचे, तो घबड़ाने की कोई बात नहीं। एक उपाय शेष रह जाता है – निरुपाय होने का उपाय; असहाय होने का उपाय।

भक्ति की वही भाषा है। प्रेमी की वही भाषा है। सूफियों की, नानक की, कबीर की, मीरा की, चैतन्य की, वही भाषा है: छोड़ दो! लेकिन इसके पहले वे बड़े निष्णात हो चुके हैं तैरने में। ऐसे ही, बिना तैरना जाने कौन कब छोड़ पाया है? तुम्हारे अचेतन से इतने जोर का भय उठेगा कि उस भय से तुम प्रभावित हो जाओगे, तड़फड़ाने लगोगे; चिल्लाने लगोगे: बचाओ!

कहते हैं, जब कोई संगीतज्ञ परिपूर्ण रूप से पारगत हो जाता है, तो वीणा तोड़ देता है; क्योंकि फिर वीणा से भी सूक्ष्म संगीत में बाधा पड़ती है। वीणा भी तो कोलाहल ही पैदा करती है। मधुर कोलाहल, पर है तो कोलाहल ही। जब कोई और गहरे संगीत में उतरने लगता है, जहां शून्य की ध्वनि बजती है, जहां शून्य का अनाहत नाद है, तो वीणा भी हटा देता है, वीणा भी छोड़ देता है। अब तो भीतर का अनरंग बजने लगा, अब बाहर के सहारे कौन लेता है!

ऐसा ही मैं तुमसे कहता हूं। समर्पण में जो उतरना चाहता हो, संकल्प में कुशल हो जाना जरूरी है। इसलिए तो इन विपरीत मार्गों की तुमसे चर्चा करता रहता हूं, ताकि कोई मार्ग तुम्हें पकड़ न ले। और इन विपरीत का उपयोग तुम रोज करते हो सामान्य जीवन में; लेकिन परमात्मा की तरफ जाते वक्त भूल जाते हो। जरा व्यवहारिक बनो! चलते हो तुम, तो तुम्हारे दोनों पैर एक साथ नहीं चलते; एक

पैर खड़ा रहता है तो दूसरा उठता है । दोनों विपरीत काम करते हैं; एक खड़ा रहता है, अडिग, जमीन को पकड़ के; दूसरा उठता है, आगे जाता है । फिर दूसरा खड़ा हो जाता है तो पहला उठता है, आगे जाता है ।

तुमने खयाल किया, इस वैपरीत्य में ही तुम्हारी गति है । अगर दोनों पैर एक साथ उठा लो, गिरोगे, बुरी तरह गिरोगे, हाथ-पैर तोड़ लोगे । फिर कभी चल न पाओगे । अगर दोनों पैर जमा के खड़े हो जाओ तो भी न चल पाओगे । चलना हो तो एक पैर समर्पण का, एक पैर संकल्प का । पक्षी उड़ता है, दो पंख चाहिए– दोनों अलग-अलग दिशाओं में फैले हुए । एक ही पंख से तो पक्षी डूब जायेगा ।

एक फकीर, सूफी फकीर को उसके शिष्य ने पूछा कि 'क्या अकेले संकल्प से पहुंचना न हो सकेगा या अकेले समर्पण से ?' वह फकीर नदी के किनारे खड़ा था । वे नदी के पार जाने की तैयारी कर रहे थे । उस फकीर ने कहा, आओ रास्ते में उत्तर दे दूंगा । नाव में दोनों बैठ गये । साधारणतः तो शिष्य ही नाव को चलाता था, लेकिन उस दिन गुरु ने कहा, मैं ही नाव चलाता हूं । उसने एक पतवार से नाव खेनी शुरू कर दी । अब नाव दो पतवार से चलती है । एक पतवार से तो नाव गोल-गोल घूमने लगी, वर्तुलाकार चक्कर मारने लगी । उसका शिष्य हंसने लगा । उसने कहा, 'आप क्या मजाक कर रहे हैं ? आपको मालूम नहीं चलाना, मुझे दें । कहीं एक पतवार से नाव चली है ? ऐसे तो हम यहीं चक्कर खाते रहेंगे ।'

तो गुरु ने कहा, एक पतवार का नाम समर्पण है और दूसरी पतवार का नाम संकल्प । और जिसने एक से चलाने की कोशिश की, वह मुश्किल में पड़ेगा ।

अब तुम इसे ऐसा समझो – बड़ा विरोधाभास लगेगा – समर्पण करना हो तो भी तो मूलतः संकल्प चाहिए । संकल्पहीन कैसे समर्पण करेगा ? समर्पण कोई छोटी घटना है ? किसी के चरणों में अपने को छोड़ देना, कोई छोटा निर्णय है ? इससे बड़ा और कोई निर्णय हो सकता है ? हवाओं के सहारे सूखे पत्ते की भांति अपने को छोड़ देना, इससे बड़ा कोई और निर्णय हो सकता है ? इतना अभय, इतना गैर-डावाडोल चित्त... तो समर्पण का भी पहला कदम तो संकल्प है । और संकल्प की भी आत्यंतिक परिपूर्णता समर्पण में है । क्योंकि करते-करते तो तुम थकोगे ही । कभी तो ऐसी घड़ी आनी चाहिए जब करने से छुटकारा हो – उसी को तो हम मोक्ष कहते हैं । करा, किया, बहुत किया, जन्मों-जन्मों तक किया, कर-कर के ही तो हमने अपने जीवन को उलझा लिया है । इसलिए इस उलझाव के मूल आधार को हम कर्म कहते हैं । कर्म का अर्थ है : जो किया । और हम कहते हैं, कर्म से कैसे छुटकारा हो ?

लोग मुझसे पूछते भी हैं कभी-कभी आ के, कर्म से कैसे छुटकारा हो ? लेकिन मुझे लगता है, उन्हें ठीक याद नहीं रहा कि कर्म का अर्थ क्या होता है – करने से कैसे छुटकारा हो ? अकर्ता-भाव का कैसे जन्म हो ? कब ऐसी घड़ी आयेगी जब मैं

सिर्फ हो सकूं और करने की कोई रेखा न बचे ?

करने को कुछ भी न रहे, होना परिपूर्ण हो जाये – उसको हम मोक्ष कहते हैं। मोक्ष का अर्थ है : जहां तुम हो, विश्व के साथ ऐसी संगति में, विश्व के साथ ऐसे तारतम्य में, विश्व के साथ ऐसे संगीत में लयबद्ध, कि तुम कुछ भी नहीं करते; विश्व ही करता है; तुम उसके साथ बहते हो।

संकल्प का भी अंतिम परिणाम समर्पण है; और समर्पण की भी शुरुआत, प्रथम चरण संकल्प है। इसलिए मैं तुमसे कहूंगा, तुम अभी संकल्प की ही चिंता कर लो।

दूसरा प्रश्न : आपका कहना है कि प्यास है तो जल भी होगा ही। यही नहीं, प्यास इसलिए है कि कहीं जल है। और आपने तो यहां तक कहा कि प्यासा ही जल को नहीं खोजता, जल भी प्यासे को खोजता है। तब जानना चाहता हूं कि प्यासे और पानी के बीच कभी-कभी इतनी दूरी मालूम देती है कि प्यासा पानी तक नहीं जा पाता; या कि प्यासा अंधा और बहरा है कि न उसे जल दीखता है, न उसका कलकल नाद सुनाई देता है। और कभी-कभी तो जल के बीच रह कर भी आदमी प्यासा रह जाता है। मुझे अपने बारे में कुछ ऐसा ही लगता है। कृपापूर्वक मुझे मार्ग-निर्देश दें।

निश्चित ही यह खोज एकतरफा नहीं है। एकतरफा हो तो कभी पूरी न होगी। अगर तुम्हीं सत्य को खोज रहे हो और सत्य तुम्हें न खोज रहा हो, तो मिलने की कोई संभावना नहीं है। अगर सत्य भी आतुर न हो तुमसे मिल जाने को, तो सत्य फिर अपने को छिपाये चला जायेगा। तुम उघाड़े जाओगे, वह छिपाये जायेगा। फिर तो ऐसा हो जायेगा जैसे द्रौपदी का चीर बढ़ता गया। वह उघड़ने को राजी न थी। वह उस दरबार में नग्न होने को राजी न थी। नग्न करने की चेष्टा दरबारियों की थी, दुर्योधन की थी, उसके मित्रों की थी – पर द्रौपदी सहयोगी न थी। चीर बढ़ता चला गया। वे उघाड़ते गये, चीर बढ़ता चला गया, द्रौपदी ढकती चली गई।

यह कहानी बड़ी बहुमूल्य है, बड़ी प्रतीकात्मक है। लेकिन द्रौपदी जब किसी को प्रेम करती होगी, तब तो नग्न हो जाती होगी। तब तो भीतर गहन में यह आकांक्षा होती होगी, कोई उघाड़ ले, किसी के सामने सब खोल दूं, कुछ भी छिपाया हुआ न रह जाये!

अगर परमात्मा तुम से बच रहा है तो एक बात पक्की है, इस दौड़ में तुम जीत न पाओगे : वह बचना चाह रहा है और तुम खोज रहे हो। वही जीतेगा। उसके पास विराट ऊर्जा है, बड़ी शक्ति है; तुम्हारे पास है क्या? अगर वह परम सत्य ही तुमसे बचना चाह रहा है तो फिर तुम जीत नहीं सकते, तुम्हारी हार निश्चित

है। लेकिन आदमी जीते हैं। महावीर जीते, बुद्ध जीते, कृष्ण, क्राइस्ट जीते। आदमी जीते हैं। एक बात साफ है कि वे भी उघड़ने के लिए राजी हैं। वह घूंघट मार के बैठा हो, मगर चाहता है कि तुम घूंघट उठाओ। बड़ी भीतर आकांक्षा है कि तुम पास आओ, खोजो।

इसलिए मैं कहता हूं कि पानी भी तुम्हारे द्वारा पिये जाने को प्यासा है। तुम्हीं जल को नहीं खोज रहे हो, जल भी तुम्हें खोज रहा है।

गर न होतीं कैदे-रस्मो-राह की मजबूरियां
शमा खुद उड़ कर पहुंचती अपने परवानों के पास।

—अगर जीवन के नियम न होते, व्यवस्था के सूत्र न होते...। गर न होतीं कैदे-रस्मो-राह की मजबूरियां! हजार नियम हैं, व्यवस्था है। और कम-से-कम व्यवस्था जिसने बनाई है, वह तो पालेगा ही।

गर न होतीं कैदे-रस्मो-राह की मजबूरियां
शमा खुद उड़ कर पहुंचती अपने परवानों के पास।

—परमात्मा खुद तुम्हारे पास आ जाता। शायद आता भी है, तुम पहचान नहीं पाते। क्योंकि जब तक तुम उस खोज पर न निकलो, तुम न पहचान पाओगे। यह खोज दोनों तरफ से हो, यह आग दोनों तरफ से लगी हो, तो ही परिणाम हो सकता है। अगर भक्त अकेला भगवान, भगवान, भगवान चिल्लाता रहे, भगवान बहरा हो, या सुनने को राजी न हो, या बचना चाहता हो, तो तुम्हारी चीख-पुकार सूने आकाश में खो जायेगी। लेकिन नहीं, पुकार सुनी गई है। प्रार्थना कभी-न-कभी उस हृदय तक पहुंच जाती है। अगर न पहुंचती हो तो कारण यह नहीं है कि वह सुनने को उत्सुक नहीं है, कारण कुछ और होंगे। या तो तुम गलत दिशा में चिल्ला रहे हो; या तुम पूरे मन से बुला ही नहीं रहे हो; या बुलाने के साथ-साथ तुम भीतर डरे भी हो कि कहीं सुन ही न लेना!

मैंने सुना है, एक आदमी लौटता था लकड़ियां अपने सिर पे ले के। थक गया है, बूढ़ा हो गया है सत्तर साल का। लकड़ी काटते-काटते जिंदगी बड़ी ऊब हो गई है। जैसा कि अनेक बार लोग कहते हैं, ऐसा ही उसने कहा। मुहावरा था, कुछ मतलब न था। ऐसा ही कहा कि हे भगवान! अब कब तक और जिंदगी घसिटवानी है? मौत को मुझे ही क्यों नहीं भेजता? जवानों को आ जाती है, मुझे क्यों लटकाये हुए है? अब तो भेज! अब तो मैं मरने को राजी हूं कि यह जीवन बहुत हो गया! यह सुबह से रोज लकड़ी काटना, यह दिन भर लकड़ी इकट्ठी करना, सांझ बेच के किसी तरह रोटी पेट के लिए जुटानी, रात सो जाना, फिर सुबह यही! आखिर मार क्या है? अब तो भेज दे मौत को!

ऐसा होता नहीं अक्सर कि इतनी जल्दी मौत आ जाये, पर उस दिन आ गई। मौत को सामने देख के लकड़हारा घबड़ा गया। अपने गट्ठर को नीचे रख के सुस्ता

रहा था झाड़ के नीचे, मौत ने कहा, 'मैं आ गई। बोलो, क्या काम है?'

उसने कहा, 'कुछ और नहीं है, यहां कोई दिखाई न पड़ता था, गठ्ठर उठवा के मेरे सिर पर रखना है। इतनी कृपा करो, इस गठरी को मेरे सिर पे वापस रख दो। बहुत धन्यवाद! और आगे बुलाऊं भी तो ऐसा कष्ट मत करना!'

तुम बुलाते भी हो तो तुम्हारा बुलावा पूरा है, हार्दिक है? तुम्हारा रोआं-रोआं उसमें सम्मिलित है कि एक परत इनकार किये चली जा रही है? एक परत कहती है, अभी कोई प्रार्थना के दिन हैं, अभी तुम जवान हो! ये तो बुढ़ापे की बातें हैं। बुढ़ापे की भी कहां, लोग जब मरने लगते हैं तभी! जब जीभ लड़खड़ा जाती है, जब खुद बोलते भी नहीं बनता, तब किराए के पंडित-पुरोहित कान में राम-राम जप देते है! जिंदा रहते-रहते तो आदमी और हजार वासनाओं में उलझा रहता है, परमात्मा की वासना निर्मित कहा होती है?

जब सारी वासनाएं उस एक वासना में तिरोहित हो जाती हैं, जैसे सभी नदियां समुद्र में गिर जाती हैं; ऐसे जब तुम्हारी सारी आकांक्षाएं एकजूट परमात्मा की तरफ प्रवाहित होती है, अभीप्सा होती है, तब प्रार्थना पैदा होती है। फिर क्षण भर भी देर नही लगती। और मैं तुमसे कहता हूं कि फिर अगर परवाना न भी जाये तो शमा उड़ के उसके पास आ जाती है।

तुम्ही नही खोज रहे, वह भी खोज रहा है।

इजिप्त में पुराना वचन है कि अगर उसने न खोजा होता तो तुम्हारे मन में उसे खोजने की बात भी पैदा न होती। कहते हैं कि जो उसकी खोज पे निकलता है, वह वही है, जिसे परमात्मा ने खोज ही लिया। तुम प्यासे ही तब होते हो उसके लिए, जब किन्हीं गहरे अर्थों में, कही किसी गहरी गहराई पर उसने तुम्हारे हृदय पर हाथ रख दिया। सभी तो उसे खोजने नही निकलते। कभी-कभी कोई दीवाना हो उठता है। जरूर उसने अपने मधु-पात्र से कोई मदिरा तुम में उंडेल दी। शायद तुम्हे भी पता नही है, इतनी गहराई पर उंडेली। शायद तुम्हारे प्राणो के प्राण, तुम्हारे केंद्र पर उंडेली। वहां तो तुम कभी जाते नही, तुम तो बाहर-बाहर घूमते रहते हो। तुम तो घर कभी आते नही।

मेरे देखे भी ऐसा ही है। जो परमात्मा को चुनता है, वह इसकी खबर दे रहा है कि परमात्मा ने उसे चुन लिया।

तिब्बत में भी ऐसी एक लोकोक्ति है कि शिष्य थोड़े ही गुरु को चुनता है, गुरु शिष्य को चुनता है। लगता यही है कि शिष्य ने चुना; क्योंकि शिष्य का अहंकार अभी 'मैं' के आसपास जीता है। वह कहता है, मैं दीक्षित हो रहा हूं! वह कहता है, मैंने इस गुरु को चुना! लेकिन जिन्होंने तिब्बत में यह लोकोक्ति बनाई होगी, वे जानते थे। तिब्बत में गुरु-शिष्य की परंपरा अति प्राचीन है, अति शुद्ध है। वे ठीक जानते हैं। वे ठीक कह रहे हैं कि गुरु शिष्य को चुनता है। कहता नहीं, क्योंकि

कहने से भी हो सकता है, शिष्य छिटक जाये। कहने से भी हो सकता है, शिष्य में प्रतिरोध पैदा हो जाये। कहने से भी हो सकता हो, उसके अहंकार को चोट लग जाये, घाव बन जाये और जो पास आता था, दूर निकल जाये। गुरु कुछ कहता भी नहीं। वह यह भी स्वीकार कर लेता है कि तुमने मुझे चुना।

लेकिन मैं भी तुमसे यही कहता हूं कि जब तक गुरु ने तुम्हें नहीं चुना है, तुममें चुनने का सवाल ही न उठेगा, तुम्हें यह भाव ही पैदा न होगा, यह हिम्मत ही न आयेगी, यह साहस ही न जन्मेगा।

तो अड़चन कहां होगी ? तुम भी खोजते हो, परमात्मा भी खोजता है – अड़चन कहां है ? मिलन होता क्यों नहीं ?

पहली बात – तुम लगते हो कि खोजते हो, खोजते नहीं। दांव पर तुम कुछ भी नहीं लगाते। तुम परमात्मा को मुफ्त पाना चाहते हो। तुम क्षुद्र चीजों की तलाश में भी जीवन दाव पे लगा देते हो। मजनू लैला को खोजता है, तो जैसा दाव पे लगा देता है, ऐसा तुमने परमात्मा की खोज में अपने को दांव पे लगाया ? नहीं, तुम परमात्मा को भी अपने जीवन में थोड़ी जगह देते हो, चौबीस घंटे में पांच मिनट पूजा-प्रार्थना कर लेते हो। वह भी जल्दी-जल्दी निपटा देते हो। वह भी एक औपचारिकता है, जिसको कर लेना है, वह भी तुम्हारी चालाकी, होशियारी का हिसाब है कि पता नहीं, परमात्मा हो ही, तो यह कहने को तो रहेगा कि ध्यान रख, रोज पांच मिनट तेरी प्रार्थना करते थे, कितनी मालाएं सरकाईं, रोज गीता पढ़ते थे ! कहीं मौत के बाद ऐसा हो ही कि कहीं परमात्मा हो, तो हमारे पास कुछ कहने को होगा, कुछ बैंक-बैलेंस होगा, हम खाली हाथ न होंगे ! न हुआ तो कुछ बिगड़ता नहीं है। पांच-दस मिनट खर्च भी हो गये तो क्या हर्ज है ! हुआ तो काम आ जायेगी बात।

तुम होशियार हो ! तुम दो नावों पे सवार रहते हो। तुम्हारी प्रार्थना भी तुम्हारा गणित है। वहीं तो प्रार्थना मर जाती है। क्योंकि प्रार्थना गणित हो ही नहीं सकती। उन्माद है प्रार्थना। पागलपन है प्रार्थना। दीवानगी है प्रार्थना। एक नशा है। गणित नहीं, हिसाब-किताब नहीं। तुम्हारी प्रार्थना जब पागल हो जायेगी, तो पूरी हो जायेगी। जब परमात्मा तुम्हें सब तरफ से घेर लेगा, सुबह भी उसकी, सांझ भी उसकी, भर दोपहरी भी उसकी, तुम उठोगे-बैठोगे तो भी उसमें ही लीन रहोगे ; बाजार भी जाओगे तो ऊपर-ऊपर बाजार होगा, भीतर-भीतर उसकी याद होगी, दुकान पर भी बैठोगे तो ऊपर-ऊपर से ग्राहक को देखोगे, भीतर-भीतर उसी का दर्शन होगा – जब तुम्हारा चौबीस घंटे का जीवन अहर्निश; भीतर-बाहर आती श्वास-प्रश्वास की भांति उस पर समर्पित होगा – तो मिलन हो जायेगा।

तो पहली तो बात, तुम बातें करते हो मिलने की, दांव पर कुछ नहीं लगाते। और यह दांव कुछ ऐसा है कि पूरा ही पूरा लगाओगे तो ही लगेगा; रत्ती भर भी

बचाया तो चूक जाओगे। क्योंकि उस बचाने में ही अश्रद्धा आ गई। उस बचाने में ही चालाकी आ गई, भोलापन खो गया। प्रार्थना तो निर्दोष भाव है। पूरा-का-पूरा कोई अपने को रख देता है, जरा भी बचाता नहीं। यह नहीं सोचता कि ऐसे कहीं ऐसा न हो कि दाव खत्म हो जाये, नाहक, थोड़ा तो बचा लूं!

इसलिए मैं कहता हूं : प्रार्थना जुआरी कर सकता है, दुकानदार नहीं। दुकानदार तो सोच-समझ के चलता है : 'इतना लगाऊंगा, कितना मिलेगा? अगर खोया भी तो बहुत ज्यादा तो न खो जायेगा? इतना खोयें कि जिसकी पूर्ति हो सके।'

जुआरी सब दाव पे लगा देता है, कुछ बचाता नहीं। उतना साहस चाहिए और जुआरी तो वस्तुए दाव पे लगाता है, धन-पैसा दांव पे लगाता है; भक्त, प्रार्थी, अपने को दांव पे लगाता है। क्योंकि परमात्मा को पाना हो तो स्वयं को ही दांव पे लगाना पड़ेगा। स्वय की कीमत पर ही मिलता है।

तो पहली बात, तुम्हारी प्रार्थना झूठी है, मिथ्या है। तुम्हारी पूजा औपचारिक है; लोक-व्यवहार है, पूजा नहीं है। दूसरी बात, तुम परमात्मा को चाहते हो या परमात्मा के नाम पे कुछ और चाहते हो? प्रार्थना तुम्हारी झूठी है, परमात्मा भी तुम्हारा अंतिम गंतव्य नहीं है। लोग परमात्मा को चाहते हैं कि चलो, उसकी प्रार्थना से धन मिलेगा, पद मिलेगा, प्रतिष्ठा मिलेगी, तो वस्तुत तो पद, प्रतिष्ठा और धन चाहते हैं; परमात्मा का तो साधन की तरह उपयोग कर लेना चाहते है। वे तो परमात्मा को भी चाकर की तरह अपने काम में लगा लेना चाहते है। लेकिन उनका असली लक्ष्य और है। अगर शैतान उन्हें धन दे, तो वे शैतान की पूजा करेंगे। जो उन्हें धन दे, उसकी पूजा करेंगे। जो उन्हे पद दे, उसकी पूजा करेंगे। जो उन्हे पद दे, वही उनका परमात्मा हो जायेगा। परमात्मा गौण है, कुछ और मूल्यवान है, कुछ और पाने की तलाश है।

तो तुम परमात्मा को साधन नहीं बना सकते हो; बनाओगे तो चूक जाओगे। परमात्मा परम साध्य है। अपने को तुम उसका साधन बना लो, फिर मिलने में देर न होगी।

तीसरी बात, परमात्मा बहुत निकट है, निकट से भी निकट है। निकट कहना भी गलत है, क्योंकि निकट में भी थोड़ी दूरी आ जाती है। परमात्मा तुम्हारे रोएं-रोएं में समाया है। वह इतने पास है कि तुम्हारे और उसके बीच स्थान नहीं है, जगह नहीं है। इसलिए भी चूकना होता रहता है। जब तुम इतने शांत हो जाओगे, जब तुम इतने थिर हो जाओगे, जब तुम्हारे जीवन की लौ अकंप हो जायेगी, तभी तुम देख पाओगे, जो निकट से भी निकट है।

मुहम्मद ने कहा है कि गर्दन में जो प्राण को प्रवाहित करने वाली नाड़ी है, जिसके काट देने से आदमी मर जाता है, वह भी दूर है; परमात्मा उससे भी ज्यादा पास है। लेकिन इतने पास को जानने के लिए तुम्हें भी पास आना पड़ेगा। तुम अपने से

बहुत दूर निकल गये हो। तुम्हारी वासनाएं जहां हैं, वहीं तुम हो। वासनाएं तुम्हारी बड़ी दूर भविष्य में फैली हैं। तुम पास आते ही नहीं। निर्वासना जब पैदा होती है, तो प्रार्थना पैदा होती है। तुम अपने पास आ जाते हो। पास जैसे-जैसे आने लगते हो, उसकी धुन बजने लगती है। जैसे-जैसे पास आते हो, उसकी सुगंध आने लगती है। जैसे-जैसे पास आते हो, उसका कलकल-नाद सुनाई पड़ने लगता है, अनाहत सुनाई पड़ने लगता है। फिर तो तुम नाचने लगते हो। फिर तुम चलते नहीं। फिर नाच के दौड़ते हो घर की तरफ। फिर तो तुम्हारे जीवन में घूंघर बंध जाते हैं, गीत बंध जाते हैं। फिर तो तुम मस्ती में तरोबोर हो जाते हो।

लेकिन अपने पास आओ। परमात्मा के पास आने का एक ही उपाय है : अपने पास आओ! परमात्मा कोई दूसरा नहीं है, तुम्हारा ही परम अस्तित्व है, तुम्हारी नियति है। तुम अगर बीज हो तो परमात्मा वृक्ष है। तुम अगर कली हो तो वह फूल है। वह तुम्हारा ही पूरा-पूरा खिलाव है। पास आओ। करीब आओ। अपने में थिर बनो।

मैं सुन रहा हूं तेरे दिल की धड़कनें पैहम
है तेरा दिल मुनजस्सिस कहीं जरूर मेरा।

मैं अपने हृदय में भी तेरे ही दिल की धड़कनें सुन रहा हूं। मैं सुन रहा हूं तेरे दिल की धड़कनें पैहम — लगातार, सतत, अनवरत! इस दिल की धड़कन में भी उसकी ही धड़कन है। सुनने वाला चाहिए। तुम्हारे कान इतनी व्यर्थ की आवाजों से भरे है कि तुम्हें अपने दिल की धड़कन सुनाई ही नहीं पड़ती।

पश्चिम के एक विचारक ने अपनी डायरी में लिखा है — बड़ा संगीतज्ञ है — कि अमरीका में एक प्रयोगशाला में वह गया। गया था कुछ कारण से। उसे खबर मिली थी कि वहां एक प्रयोगशाला बनाई गई है, जो परिपूर्ण रूप से सांउड-प्रूफ है, सौ प्रतिशत। कोई आवाज, किसी तरह की आवाज भीतर नहीं आती। तो वह गया। वह जानना चाहता था कि परम सन्नाटा कैसा होता है। क्योंकि संगीतज्ञ था और परम सन्नाटे से पहचान चाहता था। क्योंकि संगीत भी उसी तरफ ले जाता है। वह भीतर गया तो वह बड़ा हैरान हुआ : बिलकुल सन्नाटा था, लेकिन दो आवाजें आ रही थीं। वह साफ-साफ सुन सका। उसने, जो आदमी से दिखा रहा था प्रयोगशाला, उससे पूछा कि तुम तो कहते हो कि यह सौ प्रतिशत साउंड-प्रूफ है, ध्वनि किसी तरह की यहां नहीं आ सकती; लेकिन मैं दो आवाजें सुन रहा हूं। वह जो साथ था, हंसने लगा। उसने कहा, वे दो आवाजें आपके भीतर हैं; वे बाहर से नहीं आ रहीं। एक आवाज है तुम्हारे हृदय की। इतने जोर से धक् धक् हो रही थी कि उसे याद भी न रहा कि यह हृदय की आवाज हो सकती है। और दूसरी आवाज है तुम्हारे खून की गति की; रगों में जो खून दौड़ रहा है, उसका कलकल-नाद। ये आवाजें बाहर से नहीं आ रही हैं।

लेकिन बाहर की आवाजें जब बिलकुल बंद थीं, तब ये सुनाई पड़ीं। हो तो यह तुम्हें भी रही हैं; उसको भी हो रही थीं, रोज चौबीस घंटे चल रही है। लेकिन इतना शोरगुल है कि उसमें ये धीमी-धीमी आवाजें खो जाती हैं। हृदय की धड़कन, खून की गति, ये भी तुमसे बाहर हैं। एक और आवाज है जहां हृदय की धड़कन भी बंद हो जाती है और खून की गति भी बंद हो जाती है, तब सुनी जाती है। उसको हमने ओंकार कहा है, अनाहत-नाद कहा है, प्रणव कहा है।

मैं सुन रहा हूं तेरे दिल की धड़कनें पैहम
है तेरा दिल मुतजस्सिस कहीं जरूर मेरा।

—और इससे मुझे ऐसा लगता है कि मैं ही तुझे नहीं खोज रहा, तेरा दिल भी मेरी तलाश कर रहा है – चूंकि तेरी आवाज मैं अपने हृदय में सुनता हूं। तुम्हारे भीतर उसी ने रूप धरा है। उसी ने तुम्हारे जीवन में रंग भरा है। जिसकी तुम तलाश कर रहे हो, वह तुम्हारे घर मे आ के बैठा है। तुम दरवाजे पे आख लगाये अतिथि की राह देख रहे हो – और अतिथि कभी घर के बाहर गया नही। तुम बाहर बैठे हो, आगन में खड़े हो, राहगीरों को देख रहे हो कि कब आयेगा मेहमान, वह प्यारा कब आयेगा! हर राहगीर की आवाज मे तुम्हे भनक आती है, शायद आ गया! उड़ते पत्ते तुम्हें भ्रम दे जाते है कि शायद आ गया! हवा के झोंके वृक्षों में सरसराहट करते हैं और तुम्हे लगता है, शायद आ गया! तुम चौंक-चौंक उठते हो। तुम चौबीस घटे तने रहते हो कि शायद अब आये, अब आये, पता नहीं कब आये! और कहीं ऐसा न हो कि वह आये और तैयारी अधूरी हो! तो तुम राह पे खड़े राह देखते रहते हो! वह तुम्हारे घर में बैठा है। वह तुम्हारे होने से पहले तुम्हारे घर मे बैठा है। मेजबान के पहले मेहमान आ गया है। घर आओ! तुम उसे भीतर बैठा पाओगे।

बोधिधर्म जब ज्ञान को उपलब्ध हुआ तो कहते हैं, वह बड़े जोर से खिलखिला के हसा। उसके आसपास और भी साधक थे। उन्होंने पूछा, 'क्या हुआ?' उसने कहा, 'हद हो गई! मजाक की भी एक सीमा होती है। जिसकी हम तलाश करते थे, उसे घर मे बैठा पाया। जिसे हम खोजने निकले थे, वह खोजने वाले में ही छिपा था। खूब मजाक हो गई।' फिर बोधिधर्म, कहते है, जिंदगी भर हंसता ही रहा। जब भी कोई परमात्मा की बात करता, वह हंसने लगता। वह कहता, यह बात ही मत छेडो। यह बड़े मजाक की बात है। यह बड़ा गहरा व्यग्य है।

चूकोगे इसलिए नही कि वह दूर है – चूक रहे हो इसलिए कि वह बहुत-बहुत पास है, पास से भी पास है। लौटो! पहले घर मे तलाश कर लें, फिर बाहर निकलें। क्योंकि बाहर तो बड़ा विस्तार है। चाद-तारो तक कहां खोजते रहोगे? घर को तो पहले खोज लो। वहां न मिले तो फिर बाहर जाना। लेकिन जिसने भी घर में खोजा है, उसे पा ही लिया है। इसका अपवाद कभी भी नही हुआ है।

तीसरा प्रश्न : आप मुझे बहुत-बहुत अच्छे लगते हैं। मुझे आपके प्रेम में रोने के अतिरिक्त कुछ नहीं सूझता। कैसे कहूं उस प्रेम को! और आश्चर्य है कि मैं अक्सर आपके प्रति अनाप-शनाप भी बकता हूं; कभी-कभी गाली भी देता हूं। यह क्या है?

मै एक बार मुल्ला नसरुद्दीन के घर मेहमान था। वह अपने बेटे को समझा रहा था, डरा रहा था; क्योंकि बेटा भद्दी गालियां पास-पड़ोस से सीख के आ जाता था। तो उसने एक तख्ती पर लिख के कमरे में बेटे के टांग दिया था, कि अगर तूने 'बदमाश' शब्द का उपयोग किया तो पांच पैसा जुर्माना; अगर 'गधे' शब्द का उपयोग किया तो दस पैसा जुर्माना, अगर 'साला' शब्द का उपयोग किया तो बीस पैसे जुर्माना, अगर 'हरामजादा' शब्द का उपयोग किया तो चालीस पैसा जुर्माना। पचास पैसे वह अपने बेटे को जेब-खर्च के लिए रोज देता है। बेटा हंसने लगा। वह सुनता रहा और देखता रहा और हंसने लगा। तो उसने पूछा, 'तू हंसता क्यों है? बात क्या है?' उसने कहा कि मुझे ऐसी भी गालिया आती हैं कि रुपया भी कम पड़ेगा।

गालियां तुम्हे आती है, तो तुम जिससे भी संबंध बनाओगे उसी की तरफ बहने लगेंगी। जो तुम्हें आता है वही तो बहेगा। गालियां ही तुमने जीवन में सीखी हैं, तो तब जब तुम प्रेम में भी पड़ते हो तो प्रेम में भी तुम्हारी गालियां प्रवाहित होने लगती है। आखिर तुम्ही तो बहोगे न अपने प्रेम में? तो तुमने जीवन भर में जो दुर्गंध इकट्ठी की है, वह तुम्हारे प्रेमी पर भी तो पड़ेगी। आखिर प्रेम 'तुम' करोगे तो तुम्हारी गालिया कहा जायेंगी?

इसे समझने की कोशिश करना। तुम शायद सोचते हो, तुम शत्रुओं को ही गाली देते हो – गलत। अगर गाली देना तुम्हारी आदत में शुमार है, अगर गाली देने की तुम्हारे भीतर संभावना है, तो शत्रु को तुम प्रगट में देते होओगे, मित्र को तुम अप्रगट मे देते होओगे – मगर दोगे जरूर। जो तुम्हारे पास है वह तो तुम बांटोगे। मित्र को शायद मजाक में दोगे – मगर दोगे जरूर।

ऐसे लोग हैं कि जब तक उनमें गाली-गुफ्ता का संबंध न हो तब तक वे मित्रता ही नही मानते। जब तक 'आइये', 'बैठिये', 'आप कैसे हैं' इत्यादि शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है, तब तक मित्रता नहीं, परिचय है। जब गाली-गुफ्ता शुरू हो जाती है, तब मित्रता है।

इसे थोड़ा देखना। यह कैसी मित्रता हुई? लेकिन तुम्हारी मजबूरी है। जो तुम्हारे पास है, वह तुम्हारी मित्रता पर भी छाया डालेगा।

दो तरह के लोग हैं। कुछ लोग हैं जो एक आदमी को मित्र बना लेते हैं और दूसरे को शत्रु बना लेते हैं। वे अपने को बांट लेते हैं। जो-जो बुरा है वह शत्रु की तरफ प्रवाहित करते हैं, नहर खोद लेते हैं; जो-जो अच्छा है, वह मित्र की तरफ

प्रवाहित करते हैं, नहर खोद लेते हैं। लेकिन जब तुम मेरे प्रेम में पड़ोगे तो पूरे-के-पूरे ही पड़ोगे। तब नहर खोदने से काम न चलेगा। तब तुम्हारी गाली भी मेरे पास आयेगी, तुम्हारी प्रार्थना भी मेरे पास आयेगी।

तुम्हें जागना होगा! और गालियों से निस्तार पाना होगा। अन्यथा तुम्हारा प्रेम भी कलुषित हो जायेगा, तुम्हारी प्रार्थना भी कलुषित हो जायेगी।

अच्छा है कि इस बहाने तुम्हें तुम्हारी गालियां दिखाई पड़ने लगीं; अब धीरे-धीरे उन गालियों से अपने बंधन को खोलो। अब धीरे-धीरे जागो। क्योंकि वे गालियां तुम्हें उड़ने न देंगी; वजनी हैं, पत्थर की तरह तुम्हारी गर्दन में अटकी रह जायेंगी। मेरे और तुम्हारे बीच पत्थरों की तरह अटकी रह जायेंगी। प्रवाह ठीक से न हो पायेगा। तुम जब भी गाली दोगे, सिकुड़ जाओगे। जब भी गाली दोगे, तुम्हारे भीतर अपराध-भाव उठेगा। जब भी गाली दोगे, ग्लानि मालूम होगी।

अच्छा है कि प्रश्न पूछा, कम से कम ईमानदारी तो की। अब इतना और होश सम्हालो। गाली देना बंद करने को नहीं कह रहा हूं मैं, क्योंकि अगर तुमने जबर्दस्ती बंद की तो तुम किसी और को देने लगोगे। तब तुम्हें एक और गुरु चाहिए पड़ेगा, जिसको तुम गाली दो और एक गुरु जिसकी तुम प्रशंसा करो। यही तो लोग कर रहे हैं। अगर महावीर की प्रशंसा करते हैं, तो बुद्ध को गाली देते हैं। गालियां कहां जायें? नहर खोदनी पड़ती है। अगर राम की प्रशंसा करते हैं तो कृष्ण को गाली देते हैं। अगर कृष्ण की प्रशंसा करते हैं तो राम को गाली देते हैं।

लेकिन थोड़ा जागो!

मैंने सुना है कि एक बहुत बड़ा आर्किटेक्ट, एक बड़ा शिल्पी समुद्र में जहाज डूबने से, समुद्र में तैरते-तैरते एक अनजान द्वीप पर लग गया। अकेला था। वहां द्वीप पर कोई भी न था। बड़ा कुशल शिल्पी था। और कोई काम भी न था। उसे बड़े फल थे, वृक्ष लदे फलों से, तो भोजन की कोई कमी न थी। जंगल में लकड़ियां थीं। सुंदर पत्थर थे। उसने धीरे-धीरे बैठे-बैठे क्या करेगा, बनाना शुरू कर दिया। मकान बनाये। दुकानें बनाईं। चर्च बनाये। वर्षों बाद, कोई बीस वर्ष बाद, जब उसका पूरा नगर आबाद हो गया, तब एक जहाज किनारे लगा आ के। तो उस शिल्पी ने कहा जहाज के यात्रियों को, कैप्टन को, कि इसके पहले कि तुम छोड़ो, इसके पहले कि मैं जहाज पर सवार हो जाऊं, आओ, मैंने जो बनाया है उसे तो देख लो! तो उसने जा के दिखाया। और सब तो ठीक था, लेकिन लोग बड़े हैरान हुए: उसने दो चर्च बनाये। दो चर्च का क्या करोगे? एक चर्च समझ में आता है। तो उसने कहा, एक चर्च वह जिसमें मैं जाता हूं और एक चर्च वह जिसमें मैं नहीं जाता हूं।

थोड़ा सोचो। अकेले एक चर्च से काम न चलेगा, जिसमें तुम जाते हो। वह चर्च भी चाहिए, जिसमें तुम नहीं जाते। मंदिर से काम न चलेगा, मस्जिद भी चाहिए जिसमें तुम नहीं जाते। गिरजे से ही काम नहीं चलेगा, गुरुद्वारा भी चाहिए जिसमें

तुम नहीं जाते। मजा ही क्या है अगर अकेला वही चर्च हो जिसमें तुम जाते हो ! तो फिर तुम्हारा गलत जो है वह तुम कहां रखोगे ?

तो अक्सर लोग दो गुरु चुनते हैं : एक, जिसके पक्ष में; और एक जिसके विपक्ष में। दो प्रेमी चुनते हैं : एक को मित्र कहते हैं, एक को शत्रु। ध्यान से देखना, अगर तुम्हारा शत्रु मर जाये तो तुम्हें बड़ी कमी मालूम होगी। तुम बड़े खाली-खाली मालूम पड़ोगे। अब तुम क्या करोगे ? शत्रु के मरने से भी – जिसको तुम सदा चाहते थे कि मर जाये, जिसके लिए तुम प्रार्थना करते थे कि मर जाये – वह भी जब मरेगा तो तुम रोओगे भीतर। क्योंकि तुमको लगेगा, अब तुम क्या करोगे ? जो तुम शत्रु की तरफ बहा रहे थे, अब वह कहां जायेगा ? फिर तुम्हे कोई शत्रु खोजना पड़ेगा।

लोग बिना शत्रु के नही रह सकते, क्योंकि उनके भीतर बड़ी शत्रुता छिपी है।

तो दो उपाय है. या तो तुम एक गुरु और खोज लो, एक चर्च और बनाओ जिसमें तुम नही जाते, जिसकी तुम नहीं सुनते, जिसके तुम दुश्मन हो, जो गलत है, पाखंडी है। और दूसरा उपाय यह है कि तुम्हारे भीतर ये जो गालिया उठ रही हैं, इन्हे समझो, देखो, अपने भीतर के कलुष को पहचानो, अपने भीतर के कूड़ा-करकट को समझो-बूझो।

पहला उपाय सार्थक नही है, क्योंकि उससे तुम बदलोगे न; तुम जैसे हो वैसे ही रहोगे। उससे तो यही बेहतर है कि तुम मुझे प्रेम भी किये जाओ और गालियां भी दिये जाओ। क्योंकि यह स्थिति ज्यादा दिन न चल सकेगी; तुम्हारा प्रेम ही भीतर सकुचाने लगा है; तुम्हारा प्रम ही भीतर कष्ट पाने लगा है। अच्छा है, कोई फिक्र नही। ऐसे ही जिये जाओ। धीरे-धीरे तुम खुद ही सोचोगे, यह मैं क्या कर रहा हूं ! एक हाथ मे बनाता हूं, दूसरे हाथ से मिटाता हूं। यह भवन फिर कैसे बनेगा ? एक हाथ से श्रद्धा की ईंट रखता हू, दूसरे हाथ से अश्रद्धा का जहर डालता हूं। एक हाथ से बीज बोता हूं, दूसरे हाथ से अग्नि बरसाता हूं। यह भवन, यह बगीचा निर्मित कैसे होगा ?

तुम कुछ मेरा नुकसान कर रहे हो, ऐसा मत सोचना। तुम अपना ही नुकसान कर रहे हो। तुम अपने भोजन में ही गदगी डाल रहे हो। वह तुम्हें ही भोजन करना है। वह तुम्हारे ही खून में बहेगा। उससे तुम्हारी ही हड्डी बनेगी। गाली देने से उसका थोड़े ही नुकसान होता है जिसे गाली दी – गाली देने वाले का नुकसान होता है। उसकी जीभ खराब हुई। उसका हृदय धूमिल हुआ। उसके प्राण क्षुद्र हुए।

पूछा है, 'यह क्या है ?'

यह तुम्हारे भीतर का सीज़ोफ्रेनिया, तुम्हारे भीतर का विभक्त व्यक्तित्व। तुम दो हो, एक नहीं। इस 'दो' को हटाओ और एक को जन्माओ। अन्यथा तुम

विक्षिप्त हो जाओगे – ऐसे जैसे तुम्हारे भीतर दो व्यक्ति हैं और तुम्हारे भीतर एकता नहीं है। जिसने पूछा है, उसे मैं जानता हूं। अगर वह ऐसे ही चलता रहा तो आज नहीं कल पागल-घर में होगा, पागलखाने में होगा। जैसे तुम्हारा एक पैर एक तरफ जाये, दूसरा पैर दूसरी तरफ जाये; एक आंख कुछ देखे, दूसरी आंख कुछ देखे – तो तुम धीरे-धीरे खंडित हो जाओगे; तुम्हारे भीतर का सुर-संगीत खो जायेगा; सामंजस्य, समन्वय टूट जायेगा।

यह एक तरह का पागलपन है। इससे जागो! और इसमें रस मत लो। क्योंकि प्रश्नकर्ता के प्रश्न से ऐसा लगता है, जैसे वह कोई बड़ी बहुमूल्य बात कर रहा है। क्योंकि उसने यह भी लिखा है पीछे कि जब मैं इस तरह गालियां इत्यादि देता हूं तो लोग मुझे 'नासमझ' कहते हैं और मुझे उन पे हंसी आती है। ऐसा लगता है, तुम रस ले रहे हो। कोई हर्जा नहीं। अगर इससे ऊपर न उठ सको तो यह भी ठीक है। कम-से-कम गाली देते हो, तब भी मेरी याद तो कर ही लेते होओगे। मगर याद करने के बेहतर ढंग हो सकते हैं। यह याद करने का तुमने बड़ा बेहूदा ढंग चुना।

मैं तुमसे कहता हूं, अगर अनापशनाप बकना हो, गाली देना हो, तो प्रेम को हटा दो, कम-से-कम इकहरे इकट्ठे तो रहोगे। अगर प्रेम करना हो तो गाली-गलौज से छुटकारा पा लो। क्योंकि मेरा सवाल नहीं है। मुझे गाली देने से मेरा क्या हर्ज है! लेकिन तुम्हारी गाली तुम्हीं को तोड़ती जायेगी। तुम धीरे-धीरे अपने से ही अलग होने लगोगे। और इन दोनों छोरों को मिलाना मुश्किल हो जायेगा।

एक रात मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को मुन्ना के अपने कमरे में आ गया। एक घंटे में ऊपर हो गया, मगर वह बेटा बार-बार चिल्लाये जा रहा था. 'पापा! मुझे प्यास लगी है।'

'चुपचाप सो जाओ', मुल्ला ने जोर से चिल्ला के कहा। 'अगर अब और तंग किया तो उठूंगा और थप्पड़ लगाऊंगा।'

'पापा, जब थप्पड़ लगाने उठो तो एक गिलास पानी भी लेते आना', बेटे ने कहा।

ठीक कहा। कम से कम इतना तो कर ही लेना। उठोगे तो ही।

तो अगर कोई और उपाय न हो, और याद करने का यही ढंग तुम्हें आता हो, कोई हर्जा नहीं। चलो, यह भी ठीक, गाली ही दे लेना। याद तो जारी रहेगी। लेकिन दोनों में अगर चलते रहे तो तुम दो घोड़ों पे सवार हो, तुम बड़ी अड़चन में पड़ोगे। या तो प्रेम को जाने दो। यह भी प्रेम क्या? या गाली को जाने दो।

एक स्वर बनो, तो ही शांत हो सकोगे। अन्यथा शांति का कोई उपाय नहीं है। शांति कुछ भी नहीं है – एकस्वर हो गये आदमी की अवस्था है। अशांति कुछ भी नहीं है – दो स्वरों में, अनेक स्वरों में बंटे और टूटे हुए आदमी की विक्षिप्तता है।

उन्हीं मित्र ने दूसरा सवाल भी पूछा है : भगवान के संबंध में मेरे मन में जो पुरानी और विचित्र धारणाएं जमी हैं, उनके कारण आप मुझे भगवान जैसे नहीं लगते; किंतु आप जो मेरे लिए है, उसे मैं कोई नाम देने में असमर्थ पाता हूं अपने को। आप इतने विराट और हम जैसे ही लगते हैं। कृपा कर इस पर कुछ प्रकाश डालें।

भगवान जैसा मैं हूं भी नहीं, तो लगूंगा कैसे? 'भगवान-जैसे' का अर्थ समझे कि जो भगवान नहीं है, भगवान–जैसा है! मैं तुमसे कहता हूं, मैं भगवान हूं, भगवान-जैसा नहीं। और तुमसे भी मैं कहता हूं, तुम भगवान हो, 'भगवान-जैसे नहीं। 'जैसे' शब्द में तो बड़ा झूठ छिपा है, बड़ा असत्य छिपा है। 'जैसे' का तो अर्थ हुआ : खोटा सिक्का; असली सिक्के जैसा लगता है, है नहीं।

रही भगवान की धारणा, तो क्या भगवान की तुम्हारी धारणा है, इस पे सब निर्भर करेगा, क्या तुम्हारी परिभाषा है। भगवान शब्द तो बड़ा साफ-सुथरा है। इसका मतलब केवल होता है: भाग्यवान। उसका अर्थ होता है : द ब्लेसिड वन। उसका इतना ही अर्थ होता है कि जिसने अपनी नियति को पा लिया, अपने भाग्य को उपलब्ध हो गया; जो होने को था, हो गया। बस इतना ही। जब कली फूल बन जाती है, तब भगवान है। जो हो सकती थी, हो गई। बीज में पड़ी थी, तब भगवान न थी। वृक्ष में छिपी थी, तब भगवान न थी। कली थी, तब भी भगवान न थी। भगवान होने के रास्ते पर थी। फिर फूल हो गई। भगवान हो गई। भाग्य खिल गया।

मेरे लिए तो 'भगवान' शब्द का इतना ही अर्थ है कि तुम जो होने को हो वही हो जाओ। निश्चित ही, प्रत्येक की भगवत्ता भिन्न होगी। कोई पिकासो होगा और उसके जीवन में बड़े चित्रकारी के फूल खिलेंगे। कोई कालीदास होगा; उसके जीवन में काव्य के बड़े फूल खिलेंगे। हर व्यक्ति की भगवत्ता उसकी अपनी निज होगी। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का बीज अनूठे-अनूठे ढंग से खिलेगा।

इसलिए तो महावीर महावीर जैसे हैं, बुद्ध बुद्ध जैसे हैं, कृष्ण कृष्ण जैसे हैं। इनके लिए तुलना भी तो नहीं खोजी जा सकती कि किसके जैसे हैं। अब कृष्ण को महावीर से कैसे तौलोगे? और तुमने अगर भगवान का अर्थ बड़ा सीमित कर लिया कि कृष्ण भगवान हैं, तो फिर अड़चन आ जायेगी; फिर राम भगवान न हो सकेंगे। फिर तुम्हारा भगवान का दायरा बड़ा छोटा है। वह एक आदमी पे समाप्त हो गया। फिर बुद्ध भगवान न हो पायेंगे। फिर महावीर को कहां रखोगे? फिर मुहम्मद को कहां रखोगे, क्राइस्ट को कहां रखोगे, मूसा को कहां रखोगे? फिर नानक और कबीर और दादू और रैदास ... ? नहीं, फिर तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। फिर करोड़ों भगवान हुए हैं। जो भी खिल गया, वह भगवान

हो गया, भाग्यवान हो गया । तो फिर तुम उनको कहां रखोगे ? अगर तुमने फूल के खिलने की कोई ऐसी परिभाषा बना ली कि जैसा चम्पा का फूल खिलता है, वही खिलना है, तो फिर गुलाब के फूल को तुम क्या कहोगे ? तुम कहोगे, 'यह कोई खिलना है ? खिलता तो चम्पा का फूल है ।' तो फिर तुम्हारा फूल शब्द बड़ा सीमित है । फिर तो चम्पा का ही फूल फूल है; और गुलाब और कमल, फिर कोई फूल न रहे । लेकिन गुलाब भी फूल है, कमल भी फूल है, चम्पा भी फूल है, चमेली भी । एक ही फूल शब्द सबके लिए उपयोग करते हो । क्योंकि न तो रंग से कोई फूल का संबंध है, न आकृति से कोई संबंध है – फूल का संबध तो खिलने से है, फूलने से है, प्रफुल्ल होने से है, खुल जाने से है । तो जो भी खुल जाता है, वही फूल है । गुलाब भी खुलता है, कमल भी खुलता है । गंध अलग, रंग अलग, रूप, ढंग अलग–इसमे कोई लेना-देना नही है । फूल का संबध है, खुल गया; पूरा हो गया; जो छिपा था वह प्रगट हुआ; जो गीत अनगाया पड़ा था, वह गाया गया; जो नाच अभिव्यक्त नही हुआ था, अभिव्यक्त हो गया !

बीजरूप से सभी भगवान हैं । फूलरूप से सभी भगवान हो सकते हैं । तुम्हारी परिभाषा पे निर्भर है । तुम्हारी परिभाषा अगर बहुत क्षुद्र और सकीर्ण है तो अच्छा हा है कि तुम मुझे उसके बाहर रखो, क्योंकि उतनी संकीर्ण परिभाषा में जीना मुझे रुचेगा नही : तुम यही समझो कि यह आदमी भगवान नही है । लेकिन तुम ध्यान रखना, अगर परिभाषा तुम्हारी बहुत छोटी है, तो तुम भी भगवान न हो सकोगे । तुम्हारी परिभाषा में अगर मैं नही समा सकता तो तुम कैसे समाओगे ?

मित्र ने पूछा है कि आप तो हमें हम जैसे ही लगते है !' तो यही दोष है कि मैं तुम्हें तुम जैसा लगता हूं । तो फिर तुम्हारा क्या होगा ? तुम जैसे लगने के कारण भी परिभाषा मे नहीं समाता, तो तुम्हारी क्या गति होगी ? तुम तो बिलकुल परिभाषा के बाहर पड़ जाओगे । मैने तो चाहा है कि तुम्हें याद आ जाये कि तुम भगवान हो, लेकिन तुम्हारी कोई धारणा होगी । उस धारणा से मैं मेल न खाता होऊंगा । तुम अगर हिंदू हो तो कृष्ण...., अगर जैन हो तो महावीर.... । निश्चित ही मैं नग्न नही खडा हूं, कपड़े पहने हुए हूं, तो महावीर तो हूं ही नही । तो उस अर्थ में भगवान नही हू । निश्चित ही मै बुद्ध जैसा नहीं हूं और न ही किसी बोधि-वृक्ष के नीचे बैठा हू । निश्चित ही बुद्ध नही हूं । न कृष्ण जैसा हूं; मोरमुकुट नही बाधा, बांसुरी हाथ मे नही है, पीताम्बर नही पहना, तो कैसे कृष्ण जैसा हूं ? तो तुम्हारी परिभाषा मे तो मै न आऊंगा ।

लेकिन तुम याद रखना, कृष्ण के समय में बहुत लोग थे जो कृष्ण को भगवान नहीं मान सकते थे । नही माना था उन्होने, क्योंकि उनकी और पुरानी परिभाषाएं थी जिनमे वे नही बैठते थे । नया भगवान कभी भी पुराने भगवान वाली परिभाषा मे नही बैठ सकता, क्योंकि वह परिभाषा उसके लिए बनी न थी । वह परिभाषा

किसी और के लिए बनी थी। अब जिन्होंने राम को भगवान माना है, वे कृष्ण को कैसे भगवान मानें? इधर राम हैं—एक पत्नीव्रता! इधर कृष्ण हैं—कहते हैं, सोलह हजार उनकी रानियां हैं! अनब्याही, दूसरों की ब्याही हुई स्त्रियों को भी उठा लाये हैं! यह कोई भगवान जैसी बात है? तो बहुतों को तो कृष्ण लम्पट ही मालूम होते हैं। बहुतों को राम भी कुछ बहुत ऊंचाई पे नहीं मालूम होते।

तुम्हें मैं समझाने की कोशिश में कुछ उदाहरण दूं। भगवान सभी को एक जैसा उपलब्ध है; जैसे सूरज का प्रकाश सब पर पड़ रहा है। लेकिन कोई वृक्ष हरा मालूम हो रहा है, कोई फूल लाल मालूम हो रहा है, कोई फूल सफेद है—और प्रकाश सब पर एक जैसा पड़ रहा है। भौतिकी, फिजिक्स के जानकारों का कहना है कि प्रकाश की किरण तो सब पर पड़ रही है, लेकिन जो पत्ते प्रकाश की हरी किरण को वापस लौटा देते हैं, वे हरे मालूम हो रहे हैं। जो चीजें प्रकाश की किरणों को पूरा पी जाती हैं, वे काली मालूम होती हैं। जो चीजें प्रकाश को पूरा का पूरा लौटा देती हैं, वे सफेद मालूम होती हैं। जो चीजें जिस किरण को लौटाती हैं, वे उसी किरण के रंग की हो जाती हैं। अंधेरे में सभी वस्तुओं का रंग खो जाता है—यह तुम जान के हैरान होओगे। अंधेरे में तुम यह मत सोचना कि जो हरे वृक्ष थे, वे अभी भी हरे होंगे। भूल में मत पड़ना। फिजिक्स कहती है, वृक्ष हरे नहीं होते अंधेरे में। और यह मत सोचना कि जब अंधेरा होता है तो गुलाब का फूल और चमेली का फूल अभी भी सफेद और लाल होगा। गलती में हो तुम। रंग के लिए प्रकाश चाहिए। जब अंधेरा होता है तो सब रंग खो जाते हैं; कोई वस्तु का कोई रंग नहीं होता। न काली वस्तुएं काली होती हैं, न सफेद वस्तुएं सफेद होती हैं; क्योंकि रंग वस्तुओं में नहीं है, रंग तो वस्तुओं और प्रकाश के बीच के अन्तर्संबंध में है; जिस चीज में भोग की गहन वृत्ति है।

इसलिए हम राक्षसों को काला प्रतीक मानते रहे हैं। वह प्रतीक बिलकुल ठीक है। जरूरी नहीं है कि रावण काला रहा हो, लेकिन प्रतीक की तरह बिलकुल ठीक है। काले का अर्थ है: जो सब पी जाये, कुछ छोड़े न; सब पर कुंडली मार के बैठ जाये, कुछ दान न करे; जिसके जीवन से प्रेम न उठता हो; जो सब चीजों के लिए कृपणता से इकट्ठा करता चला जाये। ठीक है कि रावण की लंका सोने की थी, रही होगी। सारा सोना उसने इकट्ठा कर लिया होगा सारे संसार से। काला रंग राक्षस, शैतान, असुर, उसका रंग है।

साधारणतः हममें से अधिक लोग भगवान के साथ यही करते हैं। भगवान हम पे बरस रहा है। वह प्रकाश की भांति है। लेकिन हम उसे पी के बैठ जाते हैं। हम उसे सिकोड़ लेते हैं। हम सब तरफ से उस पे कुंडली मार लेते हैं। हम उसे बांटते नहीं। हम उसे लौटने नहीं देते। उसके कारण हम बेरंग हो जाते हैं, काले हो जाते हैं।

बांटो! जितना तुम बांटोगे उतना तुम्हारे जीवन में रंग आने लगेगा। अगर

तुमने एक किरण लौटा दी तो हरा रंग आ जायगा; अगर दूसरी किरण लौटा दी तो लाल रंग आ जायेगा। अगर तुमने सब लौटा दिया तो तुम शुभ्र हो जाओगे। दुनिया के सारे धर्मशास्त्र शैतान को काला रंगते हैं, राक्षस को काला रंगते हैं। जरथुस्त्र अहरिमन को काला रंगता है। ईसाई डेविल को, मुसलमान शैतान को, सब काले रंगते हैं। वह काला बिलकुल प्रतीक है। वह जैसा भौतिक-शास्त्र का अंग है, वैसे ही अध्यात्म-शास्त्र का भी अंग है।

जब भी तुम किसी चीज को पी के बैठ जाते हो, तुम काले हो जाते हो। तब तुम बीज की भांति हो; सब भीतर बंद है और एक खोल ऊपर से चढ़ी है। जब तुम सब छोड़ देते हो, इसलिए सफेद त्याग का प्रतीक है।

जैनों ने सफेद वस्त्र चुने मुनियों के लिए – त्याग की वजह से। सब छोड़ देता है। सब त्याग कर देता है।

तो एक तरफ शैतान है। फिर जो सब छोड़ देता है; जैसे राम, जैसे महावीर, सब छोड़ देते हैं – शुभ्र हैं। तो राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। उनका जीवन बड़े संयम, विवेक, संतुलन, अनुशासन का जीवन है। महावीर का जीवन परम त्याग का जीवन है; सब छोड़ दिया है; सब छोड़ दिया; कुछ भी नहीं रखा है – शुभ्र हो गये हैं!

जैनों के दो पंथ हैं: दिगंबर और श्वेतांबर। महावीर ने वस्त्र तो पहने नहीं, रहे तो वे नग्न ही; लेकिन फिर भी श्वेतांबर दृष्टि में भी सार है। यह कहना कि वे सफेद वस्त्रों में ढके थे, बिलकुल सार्थक है। जैसे शैतान को काला रंगने में सार्थकता है, वैसे ही महावीर को शुभ्र वस्त्रों में, श्वेतांबर बनाने में भी सार्थकता है। यद्यपि वे नग्न थे, लेकिन उनके जीवन का लक्षण सफेद, शुभ्र, श्वेत वस्त्र है – श्वेतांबर है। सब उन्होंने छोड़ दिया। यह दूसरा उपाय है।

अगर परमात्मा को तुम सिकोड़ के बैठ गये, तो तुम कुछ भी हो सकते हो: पशु, पत्थर, आदमी। परमात्मा तुम्हारे भीतर सिकुड़ा पड़ा रहेगा।

बांटो! खोलो इन जालों को जो भीतर बंधे हैं! तोड़ो खोल को, अंकुर उठने दो! तुम पाओगे: शुभ्र परमात्मा का उदय हुआ।

ये साधारण विभाजन है। फिर एक तीसरी भी स्थिति है। जैसे कि कोई पारदर्शी कांच का टुकड़ा, वह किरणों को लौटाता नहीं है, पीता भी नहीं, पार हो जाने देता है; शुभ्र भी नहीं है, काला भी नहीं है। क्योंकि काला होने के लिए पी जाना जरूरी है। शुभ्र होने के लिए लौटा देना जरूरी है। कांच का टुकड़ा पार हो जाने देता है; पारदर्शी है। सफेद दीवाल है; वह लौटा देती है। काला पत्थर है, वह पी जाता है। कांच है, वह पार हो जाने देता है।

तो महावीर, बुद्ध, राम, मोजिज शुभ्र वस्त्रों की भांति हैं, शुभ्र दीवाल की भांति हैं। लाओत्सु पारदर्शी कांच की भांति है। तो अगर कांच पूरा पारदर्शी हो तो तुम्हें

दिखाई ही नहीं पड़ेगा। उसके पार क्या है, वह दिखाई पड़ेगा; कांच दिखाई नहीं पड़ेगा। अगर कांच दिखाई पड़ता है तो उसका मतलब है, थोड़ी अशुद्धि रह गई। तो लाओत्सु अगर तुम्हारे पास भी बैठा रहे तो तुम्हें पता न चलेगा। अगर महावीर तुम्हारे पास बैठें, तुम्हारी आंखें चमचमा जायेंगी; शुभ्रता तुम्हें घेर लेगी। अगर रावण तुम्हारे पास बैठे तो तुम घबड़ाने लगोगे; वह तुम्हें चूसने लगेगा, खींचने लगेगा। वह तुम्हारी सीता को चुराने में लग जायेगा। वह तुम्हें भी पी जाना चाहेगा। जरूरी नहीं है कि वह तुम्हें भोगे, क्योंकि भोगने के लिए भी थोड़ा त्यागना पड़ता है। वह तो सिर्फ कुंडली मार के बैठ जायेगा।

इसलिए मैं... रामायण में जो कथा है कि वह सीता को चुरा के ले गया, फिर उसने अशोक-वाटिका में उन्हें रख दिया, उन्हें छुआ भी नहीं। असली कंजूस छूता भी नहीं। धन को छूता भी नहीं; बस उसको रख के तिजोड़ी में बैठ जाता है। उसने सीता को भोगा नहीं। उसमें प्रयोजन भी न था। बस सुंदरी स्त्री मेरे कब्जे में आ गई, इतना काफी है। उसका रस कब्जे का रस है।

तो अगर रावण जैसा आदमी तुम्हारे पास बैठे तो तुम पाओगे, जैसे कोई अंधकार तुम्हें खींचे लेता हो, पी जाना चाहता है। अगर राम और महावीर जैसे व्यक्ति तुम्हारे पास खड़े हों, तो तुम पाओगे कि तुम्हारी आंखें किसी शुभ्रता में झपकपाने लगीं। उन्हें झेलना मुश्किल मालूम पड़ेगा।

लाओत्सु जैसा व्यक्ति अगर तुम्हारे पास भी बैठा हो तो तुम्हें पता न चलेगा कि कोई बैठा है या नहीं बैठा है। इसलिए तो लाओत्सु के पीछे कोई धर्म न बन सका। धर्म बने कैसे? धर्म बनने के लिए दिखाई पड़ना चाहिए। लाओत्सु तो ना-कुछ है, शून्यवत् है। यह भी परमात्मा का एक रूप है।

परमात्मा का पहला रूप है : शैतान — सबसे नीचा रूप। दूसरा रूप है : शुभ्र। कुछ उस ढंग से प्रगट होते हैं परमात्मा। फिर लाओत्सु है; वह भी एक रूप है परमात्मा का — पारदर्शी। फिर एक चौथा रूप भी है — दर्पण की भांति; किरणें लौटती ही नहीं सिर्फ, तुम्हारा प्रतिबिंब भी बनाती हैं। तुम अगर दर्पण के पास जाओगे तो तुम्हारी तस्वीर तुम्हें दिखाई पड़ जायेगी। कुछ में परमात्मा इस रूप में भी प्रगट हुआ है — पतंजलि। अगर पतंजलि के पास जाओगे तो तुम्हें अपनी तस्वीर दिखाई पड़ने लगेगी। महावीर के पास न दिखाई पड़ेगी तुम्हें अपनी तस्वीर। सिर्फ तुम्हें उनकी शुभ्रता घेर लेगी; जैसे चांदनी के फूल तुम पे बरस पड़ें! लेकिन पतंजलि के पास तुम्हें अपना ही रूप दिखाई पड़ जायेगा; तुम्हारी झलक बनेगी। और पतंजलि तुम्हें आत्म-आविष्कार के लिए बड़ा सहयोगी हो सकेगा।

लाओत्से के साथ तो वे लोग चल सकेंगे, बहुत मुश्किल, विरले, जिनके पास इतनी सूक्ष्म दृष्टि है कि पारदर्शी को भी देख सकें। पतंजलि के साथ बहुत लोग चल सकेंगे। महावीर के साथ भी लोग चल सकेंगे, राम के साथ भी चल सकेंगे; लेकिन राम

और महावीर से अभिभूत होंगे, रूपांतरित बहुत नहीं होंगे। क्योंकि खुद का दर्शन नहीं होगा। महावीर का दर्शन होगा अगर उनके पास जाओगे। पतंजलि की खूबी और! उसके पास तुम्हें तुम्हारा दर्शन होगा! तुम्हारा चेहरा विकराल है तो विकराल दिखाई पड़ेगा, सुंदर है तो सुंदर दिखाई पड़ेगा। तुम जैसे हो, पतंजलि के पास तुम वैसे ही प्रगट हो जाओगे। कुछ लोग पतंजलि के पास से नाराज हो के लौटेंगे, क्योंकि उनका कुरूप चेहरा दिखाई पड़ेगा, उनकी वीभत्सता दिखाई पड़ेगी। ऐसे लोग महावीर से नाराज न होंगे, क्योंकि महावीर के पास सिर्फ महावीर के फूल दिखाई पड़ेंगे। तुम महावीर की पूजा कर लोगे। महावीर के साथ पूजा पर्याप्त हो जायेगी। पतंजलि के साथ साधना जरूरी होगी। लेकिन जो भी पतंजलि के साथ जायेगा उसके जीवन में क्रांति निश्चित है।

फिर एक और पांचवां रूप है – प्रिज्म की भांति। किरण गुजरती है तिकोन काच के टुकड़े से, तो इंद्रधनुष पैदा हो जाता है। कृष्ण ऐसे हैं जैसे इंद्रधनुष। किरण पार भी होती है, लेकिन लाओत्से जैसी नहीं। प्रिज्म में से पार होती है। सीधा-सरल कांच का टुकड़ा नहीं है। बड़े कोणों वाला कांच का टुकड़ा! बड़े पहलुओं वाला काच का टुकड़ा! कृष्ण बहुआयामी हैं, बड़े पहलू हैं! और जब कृष्ण से किरण गुजरती है तो सात रंगों में टूट जाती है। बड़ा नृत्य, बड़ा गीत, बड़ा राग पैदा होता है। इसलिए मोर-मुकुट है। इसलिए मोर-पंख बंधे हैं। इसलिए हाथ में बांसुरी है। इसलिए पैर में घूंघर बंधे है। इसलिए पीतांबर वेश है। इसलिए सिल्क, शुद्धतम सिल्क के वस्त्र हैं। गले में हार है। बाहुए आभूषणों से सजी हैं। करधनी बांधी हुई है। कृष्ण बड़े रंगीले है, बड़े सजे हैं। परमात्मा बड़े श्रृंगार में प्रगट हुआ है। अगर नाचना हो तो कृष्ण के साथ। अगर गीत की धुन सुननी हो तो कृष्ण के पास।

कृष्ण पतंजलि जैसे शिक्षक नहीं है, न महावीर जैसे है, अभिभूत कर ले, ऐसे है। न लाओत्से जैसे कि शून्य में खो गये हों, ऐसे है। कृष्ण के साथ महोत्सव है, उत्सव है। कृष्ण के साथ राग-रंग है।

और सभी रूप परमात्मा के हैं। अब इसमें से जो किसी एक रूप से जकड़ गया उसको दूसरा रूप पहचान में न आयेगा। अगर तुमने कृष्ण की रंगरेली देखी और उसको तुमने परमात्मा का रूप जाना, तो फिर महावीर तुम्हें सूखे-सूखे, रूखे-रूखे मालूम पड़ेंगे। तुम कहोगे, 'ये कैसे भगवान हैं? बांसुरी तो बजती ही नहीं, भगवत्ता कहां है? संगीत तो पैदा ही नहीं होता, गीत तो बरसते ही नहीं, ये कैसे भगवान?' बड़े मरुस्थल जैसे मालूम होंगे।

और अगर तुम महावीर से अभिभूत हो गये और तुमने कहा, यही भगवान का रूप है तो कृष्ण में तुमको लगेगा, कुछ गड़बड़ हो रही है। यह नाच कैसा? परम वीतराग पुरुष कहीं नाचता है? यह बांसुरी कैसी? क्योंकि सब बांसुरी तो राग है।

सब रास राग है। यह आसपास खड़ी हुई सुंदर स्त्रियां, नाचतीं, डोलतीं, यह सब क्या हो रहा है ? यह तो संसार है।

तुम्हारी परिभाषा पे निर्भर है। और मैं धार्मिक व्यक्ति उसको कहता हूं, जिसकी परमात्मा की कोई परिभाषा नहीं; जो परमात्मा को अपरिभाष्य मानता है, अनिर्वचनीय मानता है। और जिस रूप में भी परमात्मा प्रगट होता है, पहचान लेता है, खोज लेता है; क्योंकि रूप तो सब उसी के हैं। इसलिए धोखे का कोई उपाय नहीं है।

तामीरे-कायनात को गहरी नजर से देख
वह जर्रा कौन-सा है यहा जो अहम् नहीं।

जरा गहरी नजर से देखो सृष्टि को ! यहां कण-कण महत्वपूर्ण है ! उसकी महिमा से आपूरित है ! उसकी ही विभूति है, उसका ही प्रसाद है। लेकिन तुम्हारा जितना बड़ा प्याला होगा, उतनी ही तुम क्षमता जुटा पाओगे परमात्मा के प्रसाद की। इसलिए छोटी-छोटी परिभाषाओं के प्याले ले के मत चलो। जब प्याला ही लेना है तो बड़ा लो कि सागर समा जायें। नहीं तो आज नहीं कल, तुम पाओगे कि तुम्हारे प्याले में बड़ा थोड़ा है। और थोड़ा तुम्हें कष्ट देगा। और कष्ट तुम्हारे प्याले के कारण हो रहा है। तुमने प्याला बड़ा चुना होता तो परमात्मा बड़े प्याले मे भी उतरने को राजी था।

अनिर्वचनीय को पकड़ो ! अव्याख्य की व्याख्या मत करो। अव्याख्य को अव्याख्य रहने दो। नाम-रूप मत धरो उसके। तो फिर जिस रूप में भी आयेगा, तुम पहचान लोगे। तुम हर रूप मे पहचान लोगे। तुम रावण में भी देख लोगे, राम में तो देख ही लोगे। वह भी उसी का रूप है; विपरीत चला गया, गलत हो गया, बेस्वाद हो गया — लेकिन उसी का स्वाद है।

साकिए-दौरां से शिकवा बेश-कम का है फिजूल
जर्फ जितना उसने देखा उतनी पैमाने में है।

साकिए-दौरां से शिकवा बेश-कम का है फिजूल — साकी से कम-ज्यादा की शिकायत करनी व्यर्थ है। जर्फ जितना उसने देखा, उतनी पैमाने में है। उसने देखा, कितनी तुम पचा सकोगे, उतनी तुम्हारे पैमाने में है।

बड़ी करो परिभाषा ! मेरी मानो तो परिभाषा को छोड़ो; इतनी बड़ी करो कि परिभाषा बचे न। तो तुम्हारा जर्फ बड़ा होगा, तुम्हारी क्षमता और पात्रता बड़ी होगी। तब मै ही तुम्हें भगवान नहीं, तुम भी, तुम्हारा बेटा भी, तुम्हारी पत्नी भी — सभी तुम्हे भगवान दिखाई पड़ने लगेंगे। कोई बीजरूप है, कोई वृक्षरूप हुआ, कोई कली बना, कोई फूल बना। और फूलों की हजारों-हजारों किस्में हैं; ऐसे ही परमात्मा के हजार-हजार रूप हैं।

फिर जो मुझे भगवान् कहते हैं, वे केवल अपना प्रेम प्रदर्शित करते हैं। जिससे

प्रेम हो जाये, वही भगवान दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। वह प्रेम ही क्या जिसमें भगवान दिखाई न पड़े ? तुम मेरी तो छोड़ो, तुम अगर किसी स्त्री के प्रेम में पड़ गये तो वहां भी दिव्यता की झलक दिखाई पड़ेगी। तुम अगर किसी पुरुष के प्रेम में पड़ गये तो वहां भी अचानक पुरुष-भाव खो जायेगा, परमात्म-भाव प्रगट होगा।

शबाब आया, किसी बुत पर फिदा होने का वक्त आया
मेरी दुनियां में बंदे के खुदा होने का वक्त आया।

जब कोई जवान होता है, शबाब आया, जवानी आई, किसी बुत पर फिदा होने का वक्त आया ! अब किसी प्रतिमा पर पागल हो जाने का समय आ गया।

मेरी दुनिया में बंदे के खुदा होने का वक्त आया।

—अब कोई बंदा खुदा जैसा दिखाई पड़ेगा।

यह तो साधारण प्रेम में हो जाता है। यह तो मजनू को लैला में दिखाई पड़ने लगता है। यह तो शीरी को फरिहाद में दिखाई पड़ जाता है। तो आत्मिक प्रेम में तो घटना और भी गहरी घटती है।

अब जिनका मुझसे प्रेम है, उन्हें भगवान दिखाई पड़ जायेगा। तुम्हारा हो या न हो, मेरा तुमसे है; मुझे तुम में दिखाई पड़ता है। अगर तुम्हें न दिखाई पड़े तो तुम व्यर्थ ही वंचित रह जाओगे।

और ध्यान रखना, अगर मैं तुमसे कहूं कि परमात्मा मुझ मे है और किसी में नही, तो खतरनाक बात कह रहा हूं। तुम भी यही सुनना चाहते हो, क्योंकि फिर तुम्हारा अहकार मजे से रस ले सकेगा। लेकिन मै कहता हूं, परमात्मा सबकी सामान्यता है। परमात्मा कोई विशेष बात नही है, कोई विशिष्टता नहीं है। परमात्मा सभी के होने का ढंग है, सभी का स्वभाव है। जानो न जानो, तुम परमात्मा हो, जब तक न जानोगे, बंद रहोगे, जिस दिन जान लोगे, खुल जाओगे। इसलिए कही अगर तुम्हे कोई फूल मिल जाये तो उसके पास थोड़े रह लेना, क्योंकि सत्संग संक्रामक होता है। फूल के पास शायद तुम्हारी कली भी खुलने का ढंग सीख जाये। बस इतना ही सत्संग का अर्थ होता है।

आखिरी प्रश्न : कुछ कहना था, नहीं कह पा रहा हूं। हृदय की पीड़ा प्रेम बन के बिखर जाती है मेरी दिनचर्या आनंदचर्या बन चुकी है। मेरी आंखें अब झपकने-सी लगी हैं, क्योंकि आपकी आंखों में जादू है। अब पिघलूं और बहूं – बस यही कह दें !

तस्थास्तु !
आज इतना ही।

दिनांक २३ मई, १९७६; श्री रजनीश आश्रम, पूना

जीववहो अप्पवहो, जीवदया अप्पणो दया होइ ।
ता सव्वजीवहिंसा, परिचत्ता अत्त कामेहिं ॥ ३२ ॥
तुमं सि नाम स चेव, जं हंतव्वं ति मन्नसि ।
तुमं सि नाम स चेव, जं अज्जावेयव्वं ति मन्नसि ॥ ३३ ॥
रागादीणमणुप्पाओ, अहिंसकत्तं ति देसियं समए ।
तेसिं चे उप्पत्ती, हिंसेत्ति जिणेहि णिद्दिट्ठा ॥ ३४ ॥
अज्झवसिएण बंधो, सत्ते मारेज्ज मा थ मारेज्ज ।
एसो बंधसमासो, जीवाणं णिच्छयणयस्स ॥ ३५ ॥
हिंसा दो अविरमणं, वहपरिणामो य होइ हिंसा हु ।
तम्हा पमत्तजोगे, पाणव्ववरोवओ णिच्चं ॥ ३६ ॥
अत्ता चेव अहिंसा, अत्ता हिंसत्ति णिच्छओ समए ।
जो होदि अप्पमत्तो, अहिंसगो हिंसगो इदरो ॥ ३७ ॥
तुगं न मंदराओ, आगासाओ विसालयं नत्थि ।
जह तह जयंमि जाणसु, धम्ममहिंसासमं नत्थि ॥ ३८ ॥

वासना ढपोरशंख है

परमात्मा को अस्वीकार करने वाले और लोग भी हुए हैं; लेकिन जैसी कुशलता से महावीर ने अस्वीकार किया, वैसा किसी ने भी नहीं किया। कुशलता से मेरा अर्थ है, परमात्मा को अस्वीकार भी किया और फिर भी परमात्मा को बचा लिया। इनकार भी किया, परमात्मा को खोने भी न दिया। मूर्ति-भंजक बहुत हुए हैं; लेकिन मूर्ति तोड़ने में ही परमात्मा भी टूट गया। महावीर ने मूर्ति तोड़ी, लेकिन उस अमूर्त को पूरा-पूरा बचा लिया। यही उनकी कुशलता है।

परमात्मा जब मूर्ति बन जाता है तो खोया हो जाता है। परमात्मा जब तक अमूर्त अनुभव हो, तभी तक बहुमूल्य है। जैसे ही आकार दिया, वैसे ही परमात्मा से दूर होने लगे; क्योंकि परमात्मा निराकार है। जैसे ही पत्थर में परमात्मा को देखना शुरू किया, वैसे ही आखें अंधी होनी शुरू हो जाती हैं।

इसलाम ने भी मूर्तियां तोड़ी। महावीर ने भी मूर्तियां तोड़ी। लेकिन महावीर ने बड़ी कुशलता से तोड़ी। महावीर ने बड़ी अहिंसा से तोड़ी, बड़े प्रेम से तोड़ी। जरा-सा फासला है, लेकिन बड़ा भेद है। इसलाम ने बड़े क्रोध से तोड़ दी, बड़ी हिंसा से तोड़ दी। हिंसा और क्रोध में, तोड़ने के आग्रह में, एक बात साफ हो गई। जब हम आग्रह से कोई चीज तोड़ते है तो उसका अर्थ है, कहीं अचेतन में हमारा लगाव है। तोड़ने योग्य मानते हैं, इतना श्रम उठाते हैं तोड़ने के लिए, तो जरूर हमें लगता है कि मूर्ति में कोई मूल्य है। महावीर ने इस तरह न तोड़ा। तोड़ा भी, मूर्ति बिखेर भी दी, चोट भी न हुई, आवाज भी न हुई, और भीतर जो छिपा था, अमूर्त, उसे बचा भी लिया।

कारवां लग चुका है रस्ते पर
फिर कोई रहनुमा न आ जाए
बुत-ओ-बुतखाना तोड़ने वाले
इसी जद में खुदा न आ जाए
देखो-देखो इन आंसुओं पे 'जमील'
तुहमते इल्तिजा न आ जाए।

बुत-ओ-बुतखाना तोड़ने वाले
इसी जद में खुदा न आ जाए।

मूर्तियों और मंदिर से छुटकारा उपयोगी है। लेकिन ध्यान रखना, इसी जद में कहीं खुदा न आ जाए! कहीं ऐसा न हो, मंदिर और मूर्ति तोड़ने में खुदा भी टूट जाए! उसे तो बचाना है, जो मंदिर में छिपा है। उसे तो बचाना है जो मूर्ति में छिपा है। महावीर ने बड़ी कुशलता से बचाया है। इसे समझने की कोशिश करें।

'जीव का वध अपना ही वध है। जीव की दया अपनी ही दया है। अतः आत्म-हितैषी पुरुषों ने सभी तरह की जीव-हिंसा का परित्याग किया है। जिसे तू हनन योग्य मानता है, वह तू ही है। जिसे तू आज्ञा में रखने योग्य मानता है, वह तू ही है।'

यही तो उपनिषद कहते हैं। यही तो वेद कहते हैं। लेकिन उपनिषद और वेद परमात्मा के नाम से कहते हैं; महावीर ने आत्मा के नाम से कहा। बड़ा फर्क है। जैसे ही परमात्मा का विचार होता है, ऐसा लगता है ईश्वर कोई और, कहीं और। दूरी पैदा हो जाती है। महावीर ने आत्मा के नाम से वही कहा। आत्मा से दूरी पैदा नहीं होती। वह तुम्हारा स्वरूप है। वह तुम्हारा होने का केंद्र है। तो दूसरे में भी तुम्हें जब अपना केंद्र दिखाई पड़ने लगे, तब महावीर कहते हैं, तुम जागे।

अहिंसा का पूरा शास्त्र दूसरे में भी स्वयं को देखने का ही शास्त्र है। लेकिन इस दूसरे को देखने को एक परमात्मा को महावीर नहीं मानते कि परमात्मा सब में छाया हुआ है। महावीर मानते हैं, तुम्हीं दूसरे से जुड़े हो और दूसरा तुमसे जुड़ा है। जीवन एक अंतरात्माओं का अंतर्जाल है; अंतरात्माओं का अतर्संबंध है। जैसे मकड़ी का जाला होता है; एक धागे को हिला दो, पूरा जाला हिल जाता है – ऐसे ही एक व्यक्ति की चेतना को हिला दो, सारा अस्तित्व हिल जाता है। एक वृक्ष को चोट पहुंचा दो, चोट सभी पर फैल जाती है। क्योंकि हम अलग-थलग नहीं हैं। हम टूटे-टूटे नहीं हैं। मेरे और तुम्हारे बीच कोई दीवाल नहीं है। जो मुझे घटेगा, वह तुम्हें भी घटेगा। जो तुम्हें घटेगा, वह मुझ तक भी आ जाएगा। जैसे हम सागर में एक कंकड़ को फेंक दे, लहरें उठती हैं, दूर-दिगंत तक फैलती चली जाती हैं। अगर मैंने तुम्हें चोट पहुंचाई तो एक कंकड़ फेंका सागर में। माना, तुम्हारी तरफ फेंका था, लेकिन उसकी लहरें सभी को आंदोलित करेंगी। उन सभी में मैं भी सम्मिलित हू।

तो जो दुख देता है, वह अपने हाथ से अपने लिए दुख निर्मित करता है। जो सुख बांटता है, वह अपने हाथ से अपने लिए सुख निमंत्रित करता है। तुम जो दोगे वही तुम्हें मिलेगा। जो तुमने दिया था पहले वही तुम पा रहे हो। किया तुमने दूसरे के साथ था, हो गया तुम्हारे साथ।

महावीर कहते हैं, तुम्हारे अतिरिक्त यहां कोई नहीं है। तो तुम जो भी करोगे, अपने ही साथ कर रहे हो।

हमारी हालत ऐसी है, जैसे तुमने उस शेखचिल्ली की कहानी सुनी होगी । वह बैठा था, शांति से राह चलते लोगों को देख रहा था । एक मक्खी उसे परेशान करने लगी, आ के नाक पर बैठने लगी । एक-दो दफे उसने झपट्टा मारा, लेकिन मक्खियां जिद्दी होती हैं । जैसे ही उसने झपट्टा मारा, मक्खी फिर आ के नाक पे बैठ गई । फिर उसे क्रोध आने लगा । यह छोटी-सी मक्खी और उसे सता रही है ! उसका क्रोध बढ़ता चला गया । उसने और झपट्टे जोर से मारे । फिर उसके बरदाश्त के बाहर हो गया । पास में ही पड़ी हुई छुरी थी, उठा के छुरी उसने मक्खी को मारी । मक्खी तो उड़ गई, नाक कट गई ।

तुमने जो चोट दूसरे को मारी है, वह क्रोध में तुम्हीं को लग गई है । महावीर का यह मूलभूत आधार है । अगर तुम दुखी हो तो तुमने किसी को दुख देना चाहा था; अन्यथा तुम दुखी न हो सकते थे । तुम पीड़ित हो, परेशान हो, चिंताग्रस्त हो, संताप से भरे हो, चैन खो गया, शांति खो गई, जीवन की प्रफुल्लता खो गई है, तो जरूर यही तुमने जीवन के साथ किया है । जीवन के साथ तुम जो करते हो, उसी के प्रतिफल तुम्हें मिलते हैं ।

हमारी हालत उलटी है । साधारणत: हम ऐसा सोचते हैं कि दूसरे हमें दुखी कर रहे हैं । दूसरे तो केवल तुमने जो दिया था वापिस लौटा रहे हैं । तुम्हारी धरोहर तुम्हें सौंप रहे हैं । और अगर तुमने ऐसा देखा कि दूसरे तुम्हें दुखी कर रहे हैं तो तुम्हारी पूरी जीवन-दिशा भ्रांत हो जाएगी । तब तुम कभी सुखी न हो सकोगे । क्योंकि दूसरों को तुम कैसे बदलोगे ? अपने को ही बदलना इतना मुश्किल है, दूसरों को तुम कैसे बदलोगे ? फिर दूसरा कोई एक थोड़ी है, अनंत है ! इस अनंत को तुम कैसे बदलोगे ? और इसको बदलने के लिए तो अनत काल लग जाएगा । अगर बदल भी पाए तो इतना समय लग जायेगा ... ! एक तो बदलना असंभव, बदल भी लिया तो अनंत काल तुम दुख भोगते रहोगे ।

यहीं मार्क्स और महावीर की दृष्टि में भेद है । मार्क्स कहता है, समाज जुम्मे-वार है, अर्थव्यवस्था जुम्मेवार है । इसे बदल दो, सब सुख हो जायेगा । परमात्मा को मनुष्य से अलग दूर ऊपर आकाश में मानने वाले कहते हैं, प्रार्थना करो, पूजा करो, सब ठीक हो जायेगा । गंगा-स्नान करो, सब ठीक हो जायेगा । वे भी बड़ी झूठी बातें हाथ में दे रहे हैं ।

महावीर सीधी बीमारी का निदान करते हैं । वे कहते हैं, न तो कोई परमात्मा ऊपर बैठ के तुम्हें दुख दे रहा है । इसलिए तुम्हें दुख नहीं दिया जा रहा है कि तुमने प्रार्थना नहीं की है, कि तुमने पूजा नहीं की है । ऐसा परमात्मा भी क्या पर-मात्मा होगा जो तुम्हारी पूजा की अपेक्षा और आकांक्षा रखता हो, और जो इसलिए नाराज हो जाता हो कि तुम ठीक से पूजा नहीं कर रहे, प्रार्थना नहीं कर रहे, तुम नियम और व्यवस्था से नहीं चल रहे ! ऐसा परमात्मा तो बड़ा अहंकारी होगा ।

ऐसा परमात्मा तो स्वयं दुखी होगा, तुम्हें कैसे सुखी कर पाएगा? थोड़ा सोचो, अगर परमात्मा तुम्हारी प्रार्थनाओं से सुखी होता हो, तो मरा जाता होगा, पागल हुआ जाता होगा! इतने लोग हैं, कौन प्रार्थना करता है? जो प्रार्थना करते हैं, वे भी परमात्मा के लिए प्रार्थना नहीं करते; वे भी कुछ और मांगने के लिए करते हैं। जब काम निपट जाता है तो भूल जाते हैं। दुख में याद आ जाती है, सुख में बिस्मरण हो जाता है। दुख में विस्मरण नहीं होता, सुख में बिस्मरण हो जाता है। परमात्मा को तो वे भी याद नहीं करते हैं। तो परमात्मा तो पागल हुआ जा रहा होगा, अगर तुम्हारी प्रार्थनाओं से उसे प्रसन्न होने की अपेक्षा है तो!

महावीर कहते हैं, ऐसा कोई परमात्मा नहीं है। यह भी तुम्हारे भुलावे हैं। तुम सत्य को नहीं देखना चाहते कि तुमने दुख फैलाया, इसलिए दुख पा रहे हो, तो तुम कोई-न-कोई बहाना खोजते हो बाहर। कभी समाज-व्यवस्था में, कभी भाग्य में, कभी-कभी प्रकृति के दोषों में, कभी त्रिगुणों में, कभी परमात्मा की प्रार्थना-पूजा में — लेकिन तुम बाहर कोई सहारा खोजते हो। तुम एक बात नहीं देखना चाहते कि तुम जुम्मेवार हो।

जीवन का सबसे बड़ा कठोर सत्य यही है — इसे स्वीकार कर लेना कि जो मुझे हो रहा है, उसके लिए मैं जुम्मेवार हूं। बड़ी उदासी आएगी। मैं जुम्मेवार हूं — अपने दुखों के लिए, अपनी चिंताओं के लिए! दूसरे पे जुम्मा टाल के थोड़ी राहत मिलती है। कम-से-कम इतनी तो राहत मिलती है कि दूसरे कर रहे हैं, मैं क्या करूं! असहाय होने का मजा तो आ जाता है।

महावीर ने कहा, यह धोखाधड़ी अब और मत करो। यह तुमने किया था, वही लौट रहा है। यह तुमने दिया था, उसकी ही प्रतिध्वनि है। और अगर तुमने यह न देखा तो तुम फिर वही किए चले जा रहे हो जिसके कारण तुम दुखी हो। तो जाल फैलता ही चला जायेगा। इस दुष्टचक्र का अंत ही न होगा। चाक घूमता ही रहेगा।

'जीववहो अप्पवहो'! जीव का वध अपना ही वध है। जब भी तुमने किसी को मारा, अपने को ही काटा और मारा।

'जीवदया अप्पणो दया होइ।' और जीव पर जब भी तुमने दया की, किसी पर भी, तुमने अपने पर ही दया की।

'अतः आत्महितैषी पुरुषों ने सभी तरह की जीव-हिंसा का परित्याग किया है।' यह बचन समझना। 'आत्महितैषी' आत्मकाम अत्त—कामेहिं। स्वार्थ का जो अर्थ होता है, वही। आत्महितैषी, अपना हित चाहने वालों ने..।

यहां जैनों को भी कुछ बात समझ लेनी जैसी है। भ्रांतियां हमारी ऐसी हैं कि सत्य भी हमारे हाथ लग जाएं तो हम उन्हें विकृत कर लेते हैं। जैन सोचते हैं कि वे जीव-दया कर रहे हैं, दूसरे पे दया कर रहे हैं। महावीर कहते हैं, जिसने जीव

पे दया की उसने अपने पे दया की। बस इतना ही। नहीं तो एक नया अहंकार, एक नया भूत पैदा होता है कि मैं जीव-दया कर रहा हूं, कि मैं अहिंसक हूं, कि मैंने देखो कितने जीवों को बचाया! एक नई अकड़ पैदा होती है। इतना ही कहो कि तुमने अपने को दुख देने से स्वयं को बचाया। तुमने स्वार्थ साधा। तुमने आत्महित साधा। इसमें घोषणा और विज्ञापन करने की कोई भी जरूरत नहीं है। तुम ऐसी तो घोषणा नहीं करते कि आज मैंने अपना सिर दीवाल से नही तोड़ा। तुम ऐसा तो नही कहते कि आज मैंने पैर में छुरा नही मारा। तुम ऐसा कहोगे तो लोग हंसेंगे। लोग कहेंगे, इसमें क्या बड़ा किया? यह तो सभी करते हैं।

अगर तुमने जीव-हिंसा नहीं की, तो कुछ पुण्य किया, ऐसा मत सोचो। इतना ही कि अपने पे दया की। यह सूत्र बड़ा बहुमूल्य है। नहीं तो एक नया पागलपन शुरू होगा। पहले तुम सोचते थे, दूसरे तुम्हें दुख दे रहे हैं; अब तुम सोचने लगोगे कि तुम दूसरो को सुख दे रहे हो। लेकिन, अगर तुम दूसरों को सुख दे सकते हो तो दुख भी दे सकते हो। मूल भ्रांति तो मौजूद रही। और अगर तुम दूसरों को सुख-सुख दे सकते हो तो दूसरे तुम्हें क्यो नहीं दे सकते? तर्क तो वही-का-वहीं रहा, कहीं हटा न।

महावीर चाहते हैं कि तुम इस गहन सत्य को एक बार प्रगाढता से अंगीकार कर लो, कि तुम जो करोगे, वह अपने ही साथ कर रहे हो। दूसरे निमित्त हो सकते है, बहाने हो सकते हैं। लेकिन अंततः, अंततोगत्वा, सभी किया हुआ अपने साथ किया हुआ सिद्ध होता है।

'जीव का वध अपना ही वध है। जीव की दया अपनी ही दया है।'

तो महावीर कहते है, धार्मिक व्यक्ति स्वार्थी व्यक्ति है। उसे समझ में आ गया कि अपने साथ क्या करना है। उसने अपने साथ शिष्टाचार सीख लिया। अधार्मिक व्यक्ति अशिष्ट है; अपने साथ ही अशिष्टता कर रहा है। अधार्मिक व्यक्ति अज्ञानी है; अपने को ही काट रहा है, चोट पहुंचा रहा है। सोचता है, दूसरे को चोट पहुंचा रहे है। उस सोचने में, उस सपने में, अपने को ही तोड़ता चला जाता है।

'आत्महितैषी पुरुषो ने सभी तरह की जीवहिंसा का परित्याग किया है।' उन्होंने किसी भी तरह की हिंसा को अपने जीवन में बचाया नही।

हिंसा का अर्थ होता है: दूसरे को दुख देने की आकाक्षा। हिंसा का अर्थ होता है: दूसरे के दुख में सुख लेने का भाव। हिंसा का अर्थ है: परपीड़न में रस। जिसको आज आधुनिक मनोविज्ञान सैडिजम कहता है – दूसरे को पीड़ा देने में रस – उसको ही महावीर हिंसा कहते है।

महावीर की हिंसा का सिद्धांत अति मनोवैज्ञानिक है। दुनिया में दो तरह के लोग हैं। मनोवैज्ञानिक उनका विभाजन करते हैं। एक – जिनको वे सैडिस्ट कहते हैं, जो दूसरे को सताने में रस लेते हैं।

एक बड़ा लेखक हुआ : सादे। उसके नाम पर सैडिज़म निर्मित हुआ। उसका एक ही रस था, दूसरों को सताने में। वह प्रेम भी करता किसी स्त्री को तो द्वार-दरवाजे बंद करके पहले तो उसकी पिटाई करता, कोड़े मारता, लहूलुहान कर देता। वह चिल्लाती और चीखती, भागती और वह कोड़े मारता। और भागने का कोई उपाय न था, द्वार-दरवाजे बंद थे। जब तक वह चीखती-चिल्लाती न, रोती, भागती न, तब तक उसकी कामोत्तेजना न जागती। ये कामोत्तेजना का उपाय था। जब वह स्त्री भागने, चीखने-चिल्लाने लगती और लहू बहने लगता, तब उसकी कामोत्तेजना जगती। तब वह उसे प्रेम करता। उसके नाम पर सैडिज़म शब्द निर्मित हुआ। वह जेल में मरा, क्योंकि अनेक स्त्रियों के साथ उसने यही किया।

लेकिन एक बड़े आश्चर्य की बात पता चली कि जिन स्त्रियों ने भी दि सादे से प्रेम किया, उनको फिर किसी दूसरे का प्रेम कभी न जंचा। माना कि दुबारा हिम्मत न की उसके पास जाने की, लेकिन फिर सब प्रेम फीके पड़ गए। यह भी थोड़ी हैरानी की बात हुई। जैसी उत्तेजना उसने जगाई, जैसा तूफान उसने खड़ा कर दिया, वैसा फिर कोई भी न कर पाया। दि सादे तो अपना बैग साथ में ले के चलता था — कहां कौन मिल जाये, क्या पता! उस बैग में, जैसे डॉक्टर ले के चलता है, उसका सब साज-सामान होता था। कोड़े, कांटे, चुभाने के सामान, सब सामान ले के चलता था। कब कहां कोई स्त्री मिल जाए, किसी से प्रेम हो जाए, और सामान न हो तो कैसे प्रेम करे!

लेकिन स्त्रियों के अनुभव से भी यह पता चला कि उनको भी इसमें रस आया है। चाहे हिम्मत न रही दुबारा इस आदमी के पास जाने की, लेकिन इस आदमी को वे स्त्रियां कभी भूल न सकीं। तो मनोवैज्ञानिकों को पहली दफा एक सूत्र समझ में आना शुरू हुआ कि स्त्रियों को स्वयं को पीड़ा देने में कुछ रस मालूम होता है; जैसे पुरुषों को दूसरों को पीड़ा देने में कुछ रस मालूम होता है।

फिर एक दूसरा आदमी हुआ : मैसोच। उसके नाम पर दूसरा शब्द बना : मैसोचिज़म। मैसोचिज़म का अर्थ है : स्वयं को दुख देने में रस लेना। वह खुद को सताता था, वह भी कोड़े मारता था, लेकिन खुद को मारता था। और जब तक वह अपने को ठीक से पीटता, मारता और खुद चीखने-चिल्लाने न लगता, तब तक उसकी कामोत्तेजना न जगती थी। तो जो स्त्री उसके प्रेम में पड़ जाती, वह स्त्री को कहता कि पहले मुझे मारो, पीटो, मेरी छाती पे नाचो। जैसे काली नाचती है शिव की छाती पर, ऐसा मैसोच कहता कि पहले मेरी छाती पे नाचो, मुझे रौंदो। जब वह काफी पीटा जाता और खून बहने लगता और सब तरफ कोड़ों के निशान बन जाते, तब कामोत्तेजना का ज्वार उठता। तब वह प्रेम कर पाता। ये भी उसके लिए कामोत्तेजना को जगाने का उपाय था। उसके नाम पर मनोवैज्ञानिकों ने दूसरा शब्द बनाया : मेसोचिज़म।

तो दो तरह के लोग हैं दुनिया में : दूसरे के दुख में रस लेने वाले और स्वयं के दुख में रस लेने वाले।

तुम जिनको त्यागी, महात्मा कहते हो, उनमें से अधिक तो मेसोचिस्ट हैं, बीमार हैं। वास्तविक स्वस्थ आदमी न तो दूसरे को दुख देने में रस लेता है, न खुद को दुख देने में रस लेता है। दुख में रस नहीं लेता – स्वस्थ आदमी का लक्षण है। दुख में रस लेने का अर्थ हुआ : परवर्सन; कुछ विकृति हो गई; कहीं कुछ गड़बड़ हो गई बात।

फूल में कोई रस ले, यह समझ में आता है; लेकिन कांटों में कोई रस लेने लगे ...। फूल को कोई अपने हाथों पर रखे, आंखों की पलकों से छुआए, समझ में आता है। फूल की माला बना के अपने गले में डाल ले, समझ में आता है। लेकिन कांटों को कोई अपने में चुभाने लगे और कांटों का हार बना के पहनने लगे, तो कुछ विकृति हो गई। कहीं स्वभाव से च्युत हो गया यह आदमी।

दुख में रस, चाहे वह अपने दुख में हो और चाहे दूसरे के दुख में हो, हिंसा है। इसलिए अगर तुम मुझ से पूछो तो महावीर के पीछे चलने वाले जैन मनियों में निन्यानवे प्रतिशत तो महावीर के दुश्मन हैं। वे हिंसा में रस ले रहे हैं; यद्यपि उन्होने हिंसा का रुख अपनी तरफ बदल लिया है।

यह भी थोड़ा सोचने जैसा है।

महावीर कहते हैं, दूसरे को भी दुख दो तो भी अपने पे लौटता है– जरा वर्तुल बड़ा होता है। अगर तुमको मैं कोड़ा मारूं तो भी कोड़ा मेरी तरफ लौटेगा, थोड़ा समय लगेगा; क्योंकि तुम तक की दूरी जाना, फिर लौटना। फिर हो सकता है, तुम भी सीधा-सीधा न भेजो, केयर ऑफ भेजो, तो लम्बी यात्रा होगी। कभी जन्म भी लग जाते हैं। कभी जन्मों के बाद लौटेगा कोड़ा। मैं भी भूल चुका होऊंगा कि कब तुम्हें दिया था – लेकिन आएगा।

फिर जिसको मेसोचिस्ट हम कहते हैं, वह ज्यादा कुशल है। वह कहता है, इत्ती लम्बी यात्रा क्या करनी है; कोड़ा अपने हाथ में ले के खुद ही को मार लेना उचित है। वह ज्यादा नगद है। मगर हर हालत में कोड़ा अपने पर ही पड़ता है। तो दुख चाहे तुम दूसरे को दो, चाहे अपने को दो – तुम हिंसक हो।

तुमने देखा होगा काशी के रास्तों पर कांटों पे लेटे हुए त्यागियों को – वे मैसोचिस्ट हैं, वे हिंसक हैं। वे रस ले रहे हैं खुद को सताने में।

तुमने ऐसे साधुओं को देखा होगा, जो महीनों का उपवास कर रहे हैं। वे दुखवादी हैं। वे अपने को सता रहे हैं। वे हिंसा में मजा ले रहे हैं। तुमने ऐसे साधुओं के बाबत सुना होगा, जिन्होंने अपनी आंखें फोड़ लीं। वे दुखवादी हैं। तुमने ऐसे साधुओं के संबंध में सुना होगा जिन्होंने अपनी जननेन्द्रियां काट ली हैं। वे दुखवादी हैं।

आदमी दो हिस्सों में बंटा है : दूसरे को दुख दो या अपने को दुख दो, मगर दुख दो।

स्वस्थ आदमी सब भांति की हिंसा का त्याग करता है। यह महावीर के स्वास्थ्य की परिभाषा है। स्वस्थ व्यक्ति अहिंसक होता है। न वह दूसरे को दुख देता न स्वयं को दुख देता, क्योंकि दुख देने में कुछ अर्थ ही नहीं है। दुख देना तो जीवन के अवसर को व्यर्थ करना है, खराब करना है। जहां संगीत उठ सकता था आनंद का, उस ऊर्जा को तुमने दुख में बदल लिया। जहा फूल खिल सकते थे, वहां कांटे बिछा लिये।

'जीव का वध अपना वध है।' ऐसे महावीर परमात्मा की भावना को भीतर से ले आते हैं। मन्दिर गिरा देते है, परमात्मा को बचा लेते हैं। क्योंकि जब मेरे देने से तुम तक दुख पहुंचता है और फिर मुझ पे लौट आता है, तो इसका अर्थ एक ही हुआ कि मै और तुम जुड़े हैं, कोई सेतु है। कुछ आवागमन हो रहा है। कुछ लेन-देन चल रहा है। हमारे फासले और फर्क ऊपर-ऊपर होंगे, भीतर कही गहराई में हम जुड़े हैं। तभी तो मै तुम्हें दुख दे पाता हूं और दुख मेरे पास लौट आता है। बीच में कोई दीवाल होती, कोई खाई होती, खड्ड होता, सेतु न होता, हमें जोड़ने वाला कोई तत्त्व न होता, तो ठीक था, दुख कैसे लौटता? जाता है, आता है। तरंगें जाती है, लौट आती है। अर्थ हुआ कि कोई गहराई में हम एक ही सागर के हिस्से हैं। उस सागर का नाम ही परमात्मा है।

लेकिन महावीर उसे बाहर स्थापित नही करते; तुम्हारे भीतर स्थापित करते हैं। क्योंकि बाहर जैसे ही परमात्मा स्थापित किया जाता है, लोग पूजा और प्रार्थना में लग जाते हैं। लोग जीवन का रूपांतरण नही करते, पूजा-प्रार्थना करते हैं। वे परमात्मा से कहते हैं, हे प्रभु! जीवन को बदलो! बिगाड़ते जीवन को खुद हैं और आशा रखते है, कोई और बदलेगा। तो फिर ऐसा परमात्मा भी पुराने ढांचे को चलाने का ही आधार बन जाता है। क्योंकि जब तक तुम न बदलोगे, कोई न बदलेगा। अगर कोई परमात्मा होता तो उसने कभी का बदल दिया होता। तुम कितने दिन से प्रार्थना कर रहे हो! तुम्हारे हाथ कब से जुड़े है नमाज में! तुम कितने दिन से झुके बैठे हो मूर्तियो के सामने! कुछ भी तो नही होता। सदियां बीत गईं, जनम-जनम तुमने प्रार्थना की है, पूजा की है – कुछ भी तो नहीं होता। तुम वही के वहीं हो।

देखो पूजा करने वाले को! रोज चला जाता है मंदिर, रोज लौट आता है – वही का वही है! कोई भी तो रूप बदलता नही। हां, एक और खतरा पैदा हो जाता है। अब वह आश्वस्त हो जाता है कि ठीक है, प्रभु खयाल रखेगा। और जो उसे करना है, किये चला जाता है। जो करता है, उससे जीवन निर्मित होगा; पूजा से नही।

देखो-देखो इन आंसुओं पे 'जमील'
तुहमते-इल्तिजा न आ जाए!

जमील ने कहा है कि ये जो आंसू बह रहे आनंद के, कोई भूल से इन्हें प्रार्थना न समझ ले ! कहीं इन पे प्रार्थना का आरोप न आ जाए !

तो महावीर ने कभी हाथ भी नहीं जोड़े, झुके भी नहीं – कहीं प्रार्थना का आरोप न आ जाए ! कहीं कोई यह न कह दे कि यह आदमी प्रार्थना कर रहा है !

क्योंकि प्रार्थना का अर्थ हुआ : मैंने किया है गलत, कोई और उसे ठीक कर दे। लेकिन यह तो गणित के बाहर होगा, जीवन के गणित के विपरीत होगा। मैंने किया गलत, मुझे ही ठीक करना होगा। जो घट रहा है मेरे पास, वह मेरे ही कर्मों का फल है। मुझे कर्म रूपांतरित करने होंगे। कठिन होगा मार्ग, लेकिन कोई उपाय नहीं। कठिन होगा मार्ग, पर बस एक ही मार्ग है। कठिन ही मार्ग है।

'जिसे तू हनन योग्य मानता है वह तू ही है।' जिसे तू मारने चला है, जिसे तू ने मारने की योजना बनाई है, वह तू ही है। 'जिसे तू आज्ञा में रखने योग्य मानता है, वह भी तू ही है।' जिसे तूने गुलाम बना लिया है वह भी तू है। जिसे तू मारने चला है वह भी तू है। यह एक ही आत्मा का विस्तार है। ठीक तेरे जैसा ही चैतन्य दूसरे में भी है।

हजार मिट्टी के दीये हों, ज्योति एक है। ज्योति का स्वभाव एक है। मिट्टी के दीयों में बड़ा फर्क हो सकता है – एक आकार, दूसरा आकार, हजार आकार हो सकते हैं; एक रंग, दूसरा रंग, हजार रंग हो सकते हैं। छोटे दीये, बड़े दीये, लेकिन सबके भीतर जो ज्योति जलती है वह एक है।

जो मेरे भीतर है, उससे अन्यथा तुम्हारे भीतर नहीं है। मुझ में और तुम में जो फर्क और फासले हैं, वे मिट्टी के दीये के हैं। मेरी देह अलग, तुम्हारी देह अलग; रंग-ढंग अलग, शैली-व्यवस्था अलग – पर सब ऊपर-ऊपर की बात है! जैसे-जैसे भीतर उतरोगे, वैसे-वैसे ही भेद समाप्त होते जाते हैं। जब ठीक अंतरतम में पहुंचोगे तो पाओगे : जो दीया यहां जल रहा है, जो ज्योति यहां जल रही है, वही ज्योति वहां भी जल रही है। ज्योति का स्वभाव एक है। इसलिए इस ज्योति को नुकसान पहुंचाना अपने ही स्वभाव को नुकसान पहुंचाना है।

'जिसे तू हनन योग्य मानता है वह तू ही है। और जिसे तू आज्ञा में रखने योग्य मानता है, वह भी तू ही है। इसलिए न तो किसी को आज्ञा में रख, न किसी को हनन योग्य मान।'

यहां सभी मालिक हैं; गुलाम होने को कोई भी नहीं है।

थोड़ा सोचना। तुम तो जिनसे प्रेम करते हो, उन्हें भी गुलाम बना लेते हो। पति पत्नी का मालिक हो जाता है। वह पत्नी से कहता है, मान कि मैं परमात्मा हूं। पति परमेश्वर हो जाता है। पत्नी यद्यपि लिखती है 'तुम्हारी दासी' चिट्ठी-पत्री में, बाकी वह असलियत नहीं है। दिल में वह भी सोचती है कि तुम्हारी मालकिन। इसीलिए तो घर स्त्री का समझा जाता है, वह घरवाली समझी जाती है।

कोई पति को थोड़ी घरवाला कहता है, पत्नी को ! मालकियत उसकी है । और मुश्किल है ऐसा पति खोजना जो उसकी मालकियत मान के न चलता हो । तो ऊपर ऊपर पति बाजार में दिखलाता रहता है कि मैं मालिक हूं, भीतर-भीतर पत्नी रोज उसे जतलाती रहती है सुबह से सांझ तक, अनेक मौकों पर कि मालिक कौन है, ठीक समझ लेना !

मुल्ला नसरुद्दीन के घर उसके मित्र इकट्ठे थे एक दिन । कुछ झंझट हो गई । पत्नी झपटी, जैसी उसकी आदत । तो वह भाग के बिस्तर के नीचे छिप गया । पत्नी झुक आयी और उसने कहा, 'निकल बाहर... ! निकलो बाहर ।' तो मुल्ला और भीतर सरकता गया बिस्तर के । उसने कहा, 'निकलते हो कि नहीं ... !' उसने कहा, 'आज तय ही हो जाये कि मालिक कौन है ! नहीं निकलते !'

यह कोई तय करने का ढंग हुआ ! लेकिन जिन्हें हम प्रेम करते हैं उनको भी हम गुलामी में बांधते हैं । इसलिए तो प्रेम से भी लोग ऊब जाते हैं; प्रेम से भी छुटकारा चाहते हैं । बड़ी अजीब बात है ! यहां इस जगत में प्रेम भी दुख देता मालूम पड़ता है । क्योंकि प्रेम हम कहते है, है कुछ और । नाम हम अच्छे चुनते हैं, सुंदर चुनते हैं – लेकिन नाम ही सुंदर और अच्छे हैं, भीतर कुछ और है ।

तुम जरा गौर करना कि जब तुम किसी को कहते हो कि मुझे तुझसे प्रेम है, तो तुम जरा गौर करना, तुम्हारी असली आकांक्षा क्या है ? असली आकांक्षा कुछ और होगी । प्रेम के नाम के नीचे कुछ और छिपा होगा – हिंसा छिपी होगी, स्वामित्व का भाव छिपा होगा, महत्त्वाकांक्षा छिपी होगी । एक आदमी को कब्जे में ले लेने की आकांक्षा छिपी होगी । इसीलिए तो जिसको तुम कब्जे में ले लेते हो, उसमें रस खो जाता है ।

किस पति को पत्नी में रस है ? बड़ा रस था जब तक पाया न था । तब तक जान दांव पे लगा देने को तैयार थे । मिलते ही सब हाथ-पैर ढीले हो जाते हैं, बात खतम हो गई ! क्योंकि जो रस था, वह जीतने में था । जो रस था, वह चुनौती में था । अब चुनौती दूसरी स्त्रियों से आती है, पत्नी से नहीं आती । पत्नी तो जीत ली । अब जीते हुए को क्या जीतना ! कोई भी रास्ते से गुजरती स्त्री आकर्षण का कारण बन जाती है, क्योंकि फिर, फिर कोई विजय की यात्रा के लिए एक निमंत्रण मिला । प्रेम के नाम पर जीत की आकांक्षा होगी । जीत यानी अहंकार । और फिर प्रेम के नाम पर कब्जे की दौड़ चलती है, कौन कब्जा करे ! कौन असली मालिक है, यह तय करने में जिंदगी खराब हो जाती है । हर छोटी-बड़ी बात पे झगड़ा चलता है । कलह, एक-दूसरे को आज्ञा में रखने की चेष्टा ! ... बाप बेटे से कहता है कि मेरी मान के चल, क्योंकि मुझे तुझसे प्रेम है । मैं जो कहता हूं, वैसा कर, क्योंकि मुझे तुझसे प्रेम है । मैं जो कहता हूं, उससे विपरीत मत करना, क्योंकि मुझे तुझसे प्रेम है । मै तेरे हित में कह रहा हूं !

अपना हित साध नहीं पाये, दूसरे का हित तुम क्या साधोगे? खुद कोरे के कोरे रह गये, बेटे को उपदेश दिये जा रहे हो! बेटा भी सुन लेता है जब तक कमजोर है। वह भी देखता है कि ठहरो थोड़ा, जल्दी ही मैं भी शक्तिशाली हो जाऊंगा। तो अगर बेटे जवान हो के बाप को सताने लगते हैं, तो यह कुछ आकस्मिक नहीं है। हर बाप ने बेटे को, जब वह छोटा था, सताया है – उसके ही हित में सताया है; मगर सताया है। हित की बातें तो सब व्यर्थ की बकवास है – सताने का मजा...! बूढ़े हो जाने पर बेटा उत्तर देने लगता है। जो दिया था, वह वापिस लौटने लगता है।

मैंने सुना है, एक घर में शादी हो कर, पत्नी आयी। तो बूढ़ा बाप, पति का बाप, उसे पसंद नहीं पड़ता था। किसी को पसंद नहीं पड़ता। वह चाहती थी कि किसी तरह इस बूढ़े से छुटकारा हो। एक बोझ ...। लेकिन कोई उपाय न था। कहीं जाने की कोई जगह न थी। बूढ़े को वहां रहना ही पड़ा। वह बहुत बूढ़ा हो गया था। उसके हाथ भी कंपते थे। भोजन करता तो कभी-कभी चम्मच से बाहर सामान भी गिर जाता, कभी चम्मच भी गिर जाती, कभी उसके कपड़ों पर भी खाना गिर जाता। तो पत्नी बहुत नाराज होती थी। आखिर पत्नी ने एक दिन उसे उठा दिया कुर्सी से, खाने की टेबल पर से, कोने में ले जा के बिठा दिया और कहा कि चम्मच से अब खाना तुम बंद करो! एक बर्तन में इकट्ठा सब भोजन रख दिया और कहा कि इसी से तुम भोजन करो। उस दिन से बूढ़े को टेबल पे आने की मनाही हो गई। लेकिन बूढ़ा बूढ़ा होता जा रहा था और हाथ-पैर उसके कंपते थे और अब और कपने लगे। क्योंकि अब घर में यह स्थिति हो गई कि आदमी की आदमी की तरह गिनती न रही। एक दिन उसके हाथ से बर्तन भी छूट गये, तो उसकी बहू ने कहा कि 'अब बहुत हो गया! अब तुम्हें तो जानवरों जैसी व्यवस्था करनी पड़ेगी।' तो उसने एक बड़ी बालटी में उसके सामने भोजन रखना शुरू कर दिया; जैसे गाय-भैंस को रखते हैं।

ऐसा कुछ दिन चला। इस युवती का छोटा बेटा था। वह यह सब देखता रहता था। एक दिन वह बाहर से, बढ़ई कुछ काम कर रहा था घर में, लकड़ी के टुकड़े उठा लाया और उन्हें जोड़-जोड़ के कुछ बनाने लगा। तो उसकी मां ने और उसके पिता ने, दोनों टेबल पे बैठे थे, पूछा, 'क्या कर रहे हो?' तो उसने कहा कि मैं भी आप दोनों के लिए, जब आप बूढ़े हो जाएंगे, तो यह लकड़ी की बालटी बना रहा हूं।

स्वभावत: सब चीजें वर्तुल में घूमती हैं। जो तुम अपने बाप के साथ कर रहे हो, याद रखना, बेटा तुम्हारे साथ करेगा! ध्यान रखना, जो बेटा तुम्हारे साथ कर रहा है, वह तुमने अपने बाप के साथ किया था। और ध्यान रखना, तुम जो बेटे के साथ अभी कर रहे हो, वह कल लौटायगा। क्योंकि जिंदगी में कोई भी चीज रुकती नहीं, लौटानी पड़ती है।

सोच-समझ के ! प्रेम के नाम पर अधिकार, गुलामी मत थोपना । क्योंकि प्रेम तो परम स्वतंत्रता है । जिसको प्रेम है, वह अकारण है । वह कुछ भी थोपता नहीं । प्रेम का अर्थ ही होता है : दूसरे को दूसरा होने देने की स्वतंत्रता । दूसरा जैसा है उसको वैसा ही अंगीकार कर लेने की क्षमता प्रेम है । न उसे बदलना है — बड़े-बड़े आदर्शों के नाम पर भी नहीं, क्योंकि सब आदर्श मालकियत करने के ढंग हैं । तुम बेटे से कहते हो, यह आदत गलत है, इसे छोड़ो ! अब तुम आदत के बहाने बेटे की गर्दन पे कब्जा कर रहे हो । आदत अगर गलत है तो निवेदन कर दो । आदत अगर गलत है तो जतला दो । लेकिन इसके बहाने मालकियत मत करो । इतना ही कहो कि मुझे गलत दिखाई पड़ती है आदत, फिर तुम्हारी मर्जी ! फिर तुम अपने मालिक हो ! फिर अगर तुमने गलत को भी चुना, तो चुनो !

कल रात मैं एक आधुनिक विचारक, ' सार्त्र ' की एक किताब पढ़ रहा था । उसमें कुछ परिभाषाएं दी हैं । उसमें जवान, प्रौढ़ आदमी की परिभाषा भी है । उसने लिखा है : प्रौढ़ वह आदमी है, जिसे ठीक करने की तो आजादी है ही, गलत करने की भी आजादी है । अगर गलत करने की आजादी न हो तो आजादी क्या हुई ? अगर ठीक ही करने की स्वतंत्रता हो तो यह तो स्वतंत्रता शब्द का बड़ा दुरुपयोग हुआ ।

प्रेम स्वतंत्र करता है । निश्चित, सावधान करता है, कि यहां-यहां मैं गया हूं और मैंने गड्ढे पाए, तुम सोच-समझ के जाना, सम्हल के जाना । अगर जाने का मन हो तो मेरा अनुभव ले लो, मेरे अनुभव के बाद जाना । जाने से नहीं रोकता हूं; लेकिन मैं गिर गया था, उसकी खबर तुम्हें दे देता हूं । हो सकता है, तुम न भी गिरो । हो सकता है, तुम सम्हल के जाओ और बच के निकल आओ । लेकिन मैं जल गया था । तो इतना तुम्हें कह देता हूं कि वहां जलन है, फिर तुम सोच के जाना । न जाओ, तुम्हारी मर्जी ! जाओ तुम्हारी मर्जी !

अपना सत्य निवेदन कर देना पर्याप्त है । लेकिन गर्दन पे हम हावी हो जाते हैं । हम आदर्शों का उपयोग भी कारागृहों की तरह करते हैं, जंजीरों की तरह करते हैं ।

महावीर कहते हैं : ' जिसे तू हनन योग्य मानता है, वह तू ही है । और जिसे तू आज्ञा में रखने योग्य मानता है वह भी तू ही है । '

एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात इस सूत्र से निकलती है । अगर तुमने किसी को गुलाम बनाने की चेष्टा की तो वही व्यक्ति तुम्हें भी गुलाम बनाने की चेष्टा करेगा । क्योंकि जिसे तुम आज्ञा में रखना चाहते हो, वह तुम ही हो । भूल के किसी को गुलाम मत बनाना, अन्यथा तुम गुलाम बन जाओगे । और अगर तुम गुलाम बन गए हो तो खोज-बीन करना; तुम पाओगे कि गुलाम बनाने की आकांक्षा का ही यह परिणाम है । परिपूर्ण स्वस्थ आदमी वही है, जो न तो किसी का गुलाम है और

न किसी को गुलाम बनाना चाहता है। क्योंकि जब तक गुलाम बनाने की चाह है तब तक गुलामी आती रहेगी।

ठीक तुम जैसे ही लोग हैं सब तरफ। जो तुम चाहते हो, वही वे भी चाहते हैं। जो तुम नहीं चाहते, वही वे भी नहीं चाहते। इस सत्य को ठीक से समझना।

जीसस से कोई पूछता है, एक युवक निकोदेमस, कि मैं जल्दी में हूं, मुझे कुछ छोटा-सा सूत्र दे दें जो मेरा जीवन बदल दे। तो जीसस ने कहा, दूसरे के साथ वह मत करना, जो तुम चाहते हो, दूसरा तुम्हारे साथ न करे। उन्होंने कहा, इतना काफी है। इतने से सारा धर्म निकल आता है। दूसरे के साथ वह मत करना, जो तुम नहीं चाहते कि दूसरा तुम्हारे साथ करे। बस काफी है।

यह एक वचन ही बाइबिल की पूरी कथा है, पूरा सार है। महावीर का भी पूरा सार यही है। वे समझा रहे हैं कि तुम्हें यह बात खयाल में आ जाये कि दूसरा 'दूसरा' नहीं है – तुम्हारे जैसा ही चैतन्य, तुम्हारे जैसी ही आत्मा, ठीक तुम्हारे ही जैसे सुख और दुख का आकांक्षी, ठीक तुम जैसा ही मोक्ष का खोजी, स्वतंत्रता का दीवाना है। इतना खयाल रखना। इतना खयाल रख के अगर चले तो न तो तुम किसी को बांधोगे और न तुम बंधोगे।

बांधने वाला भी बंध जाता है। कारागृह का मालिक भी कारागृह को छोड़ के थोड़ी जा सकता है। कैदी भीतर होंगे, मालिक बाहर होगा – लेकिन बाहर जो है वह भी खड़ा रहता है कि कैदी भाग न जायें। उसे भी कैदियों के साथ कैदी ही हो जाना पड़ता है।

'जिनों ने, जाग्रत पुरुषों ने कहा है, राग आदि की अनुत्पत्ति अहिंसा, और उसकी उत्पत्ति हिंसा है।'

'जागे हुए पुरुषों ने कहा है, राग आदि की उत्पत्ति हिंसा और अनुत्पत्ति अहिंसा है।'

यह अहिंसा का बड़ा सूक्ष्मतम विश्लेषण है। दूसरे को चोट करने जाओ, यह तो दूर की बात है। यह तो फिर विचार का स्थूल होने की बात है। तुम्हारे मन में राग उठा तभी हिंसा उठ जाती है। फिर तुम करो या न करो, यह सवाल नहीं है। तुम्हारे मन में जरा-सा राग उठा... तुम राह से जाते थे, एक बड़ा मकान देखा, तुम्हारे मन में हुआ : 'ऐसा मकान मैं भी बनाऊं!' हिंसा हो गई। हिंसा का बीज पड़ गया; क्योंकि अब इस बड़े मकान को बनाने के लिए धन चाहिए, इस बड़े मकान को बनाने के लिए दूसरों से धन छीनना पड़ेगा। इस बड़े मकान को बनाने के लिए अब प्रतिस्पर्धा करनी पड़ेगी। इस बड़े मकान को बनाने के लिए ईमानदारी, बेईमानी, सब मार्गों से खोजबीन करनी पड़ेगी – जैसे भी हो। इस बड़े मकान की आकांक्षा के उठते ही तुम्हारे भीतर हिंसा का बीज पड़ गया। देर लगेगी वृक्ष बनने में; लेकिन, अगर बचना हो वृक्ष से तो बीज से ही बच जाना।

इसलिए महावीर कहते हैं, राग की उत्पत्ति–हिंसा। ऐसा मत सोचना कि किसी की गर्दन काटोगे तब हिंसा। यही अपराध और पाप का भेद है। अपराध – जब पाप वास्तविक हो के प्रगट हो जाता है। जब पाप कानून की पकड़ में आ जाता है तो अपराध। और जब तक पाप कानून की पकड़ में नहीं आता तभी तक पाप। तुम अपने मन में बैठे अगर दुनिया भर को भी मारने का विचार करते रहो, तो कोई अदालत तुम्हे दंड नहीं दे सकती। पुलिस नही आ सकती पकड़ने कि तुम बहुत हिंसा के विचार कर रहे हो। विचार की स्वतंत्रता है तुम्हे। विचार को व्यक्त मत करना।

कानून इतनी ही फिक्र करता है कि तुम जो सोचते हो, करना मत; किया तो पकड़े गये। अगर तुम सिर्फ सोचते रहो, तुम्हारी मौज। लेकिन धर्म इससे गहरे जाता है। धर्म कहता है, तुम सोचना मत। क्योंकि जो तुमने सोचा, कितनी देर बचोगे करने से? विचार वस्तु बन जाता है। जो भाव है, वह कल घना हो के बरसेगा। आज जो बिलकुल छोटा-सा मालूम पड़ता था, वह कल बडा हो जायेगा; वह फैलता रहेगा। आज कही भी पता न चलता था, तुम बिलकुल शांत बैठे थे।

महावीर के जीवन मे उल्लेख है कि उनका एक शिष्य था: प्रसेनचन्द्र। वह सम्राट था पहले, फिर संन्यस्त हो गया, नग्न मुनि हो गया। एक दिन प्रसेनचन्द्र का एक दूसरा मित्र बिम्बसार महावीर के दर्शन को आया। वह भी सम्राट था। उसने आ के महावीर को पूछा कि राह मे प्रसेनचन्द्र को खडे देखा एक गुफा में। धन्यभागी है प्रसेनचद्र! मेरा बचपन का साथी है। वह मुनित्व को उपलब्ध हो गया। वह दिगबर मुनि हो गया। एक मै हूं अभागा, अभी भी सड़-गल रहा हूं संसार में। एक प्रश्न मेरे मन में उठा है, वह आप से पूछना है। जब मै प्रसेनचंद्र के पास से गुजर रहा था और मेरे मन में यह भाव उठा कि धन्यभागी है प्रसेनचन्द्र – मेरे साथ ही बडा हुआ, साथ हम पढ़े और लिखे और खेले और ये इतने बड़े आतंरिक साम्राज्य का मालिक हो गया और मै कुछ भी न कर पाया; मैं बाहर की व्यर्थ चीजें जुटाने में लगा रहा; मेरी जिंदगी यू ही गई – तो तब मेरे मन में सवाल उठा था कि अगर प्रसेन चंद्र की इसी समय मृत्यु हो जाये तो यह किस स्वर्ग मे या मोक्ष में जन्मेगा, वह मै आप से पूछता हू।

महावीर ने कहा, उस समय अगर प्रसेनचंद्र की मृत्यु हो जाती तो वह सातवे नर्क में पडता।

बिबसार ने कहा, आप क्या कहते हैं? सातवे नर्क में? तो हमारी क्या गति होगी? वह सब छोड़ के खड़ा है!

महावीर ने कहा कि तुम आए, उसके पहले तुम्हारा फौज-फांटा आया; तुम्हारे वजीर निकले, सेनापति निकले, सिपाही निकले, उन सबने भी प्रसेनचंद्र को देखा। तुम्हारे दो वजीर उसके पास खड़े हो के बात करने लगे कि ये देखो, बुद्धू की तरह

यहां खड़ा है ! यह प्रसेनचंद्र है ! यह बड़ा सम्राट था। अगर आज लगा रहता अपने काम में तो सारी जमीन का मालिक हो जाता। यहां बुद्धू की तरह खड़ा है नग्न ! और ये अपने वजीरों के ऊपर सब छोड़ आया है। इसके बेटे छोटे हैं और वजीर सब लूटे ले रहे हैं। जब तक इसके बेटे बड़े होंगे तब तक खजाने में कुछ बचेगा ही नहीं।

उन दोनों वजीरों ने ऐसी बात की, प्रसेनचंद्र ने सुनी। वह आंख बंद किये खड़ा था। लेकिन उसने सुनी। सुनते ही क्रोध आ गया। उसने कहा, 'अच्छा ! तो मेरे वजीर समझते क्या हैं, क्या मैं मर गया हूं ! मैं अभी जिंदा हूं !' क्रोध में, जैसी उसकी पुरानी आदत थी, हाथ उसका तलवार पे चला गया। तलवार अब नहीं थी, अब तो नंगा खड़ा था। लेकिन पुरानी आदत...! तलवार पे हाथ चला गया। जब तलवार पे उसका हाथ गया तो उसकी पुरानी एक और आदत भी थी कि जब भी वह बहुत क्रोध में आ जाता और तलवार पे उसका हाथ जाता तो दूसरे हाथ से वह अपना मुकुट सम्हालता कि कहीं वह गिर न जाये क्रोध में। अब मुकुट भी न था। दूसरा हाथ उसने मुकुट सम्हालने के लिए रखा; वहां कुछ भी न था। अपने ही माथे को छू के उसे याद आयी कि अरे, यह मैं क्या कर रहा हूं ! तत्क्षण उसने अपना तनाव छोड़ दिया, हिंसा का भाव छोड़ दिया।

तो महावीर ने कहा, जब तुम गुजर रहे थे उसके पास से, तब उसका हाथ तलवार पे था। मरता तो सातवें नर्क जाता। लेकिन अब अगर मरे तो मोक्ष उसका है। घड़ी भर का ही फासला हुआ है। बाहर से देखने पे प्रसेनचंद्र अब भी वैसा है। बाहर तो कोई भी फर्क न पड़ा, लेकिन भीतर की भाव-दशा बदल गई।

तुम्हारा होना, तुम्हारा भीतर, तुम्हारा आंतरिक तत्त्व है। भाव तुम्हें भीतर बदलते हैं। विचार तुम्हें भीतर बदलते हैं। बाहर तो जब तुम विचारों को लाते हो तो समाज शुरू होता है। समाज जहां शुरू होता है वहां कानून शुरू होता है। लेकिन तुम जहां हो, वहां पाप और पुण्य का हिसाब है, वहां धर्म का हिसाब है।

'राग आदि की उत्पत्ति हिंसा, अनुत्पत्ति अहिंसा है।'

जान भी जिंदगी पै देते हैं
जिंदगी काबिले-यकीं भी नहीं।
मैं हूं वोह जिससे चर्ख दबता था
अब तो गरदानती जमीं भी नहीं।

आज नहीं कल, यह शरीर तो गिरेगा, मिट्टी में मिल जायेगा। मैं हूं वोह जिससे चर्ख दबता था — कभी आकाश दबता था। अब तो गरदानती जमीं भी नहीं — फिर जमीन भी कोई फिक्र न करेगी।

जान भी जिंदगी पै देते हैं।
जिंदगी काबिले-यकीं भी नहीं।

और जिस जिंदगी पे हम मरने-मारने को उतारू हो जाते हैं, वह जिंदगी पानी का एक बबूला है – अब मिटा तब मिटा; एक सपने में खींची गई लकीर है – खिंची भी नहीं, सिर्फ खिंचे होने का खयाल है !

जिस जिंदगी के लिए हम मरने-मारने को उतारू हो जाते हैं उस जिंदगी का मूल्य कितना है ? जिस दिन व्यक्ति को अपने जीवन का मूल्य दिखाई पड़ना शुरू होता है कि इस जीवन का कोई भी मूल्य नहीं है, मिट्टी में मिट्टी गिर जायेगी, तो मैं व्यर्थ इस मिट्टी को बचाने के लिए जो उपाय करता हूं, राग-द्वेष करता हूं, उनका कोई सार नही है। जीवन की असारता दिखाई पड़ जाये तो सब राग-द्वेष की असारता दिखाई पड़ जाती है। उस असारता के अनुभव का नाम ही अहिंसा है !

लेकिन हम झूठ में ऐसे रगे-पगे हैं कि जहां बार-बार आशा टूटती है वहां भी आशा किये चले जाते हैं; जहां कभी कुछ नहीं मिलता वहा भी खोजे चले जाते है !

एक सूफी फकीर के घर एक रात चोर घुस गए। सूफी सोया था, उठा और दीया जला लिया उसने। चोर बड़े घबड़ा गए। उसने कहा, 'घबड़ाओ मत ! मै तुम्हारा साथ दूंगा।' उन्होने कहा, 'मतलब ? तुम पागल तो नहीं हो ? होश मे हो ? हम चोर हैं ! '

उसने कहा, 'तुम फिक्र छोड़ो। इस घर में मैं तीस साल से रह रहा हू और खोज रहा हूं कि कुछ मिल जाये, मिलता नही। मैं तुम्हें साथ दूगा। अगर तुम खोज लो, आधा-आधा बांट लेंगे। तो मै दीया जला के आया, भाग मत जाना।'

जिस जिंदगी में तुम रह रहे हो जन्मों से, उसमें कुछ पाया है ? लेकिन उम्मीद नही छूटती। शायद मिले कल, ऐसे आशा के सहारे बंधे जीते हो। अनुभव पे सदा तुम्हारी आशा जीत जाती है। यही जीवन का सबसे बड़ा रोग है : अनुभव पर आशा की जीत। अनुभव तो कहता है, कुछ भी नहीं है। अनुभव तो हजार बार कह चुका कि कुछ भी नही है। अनुभव से तो सदा हाथ में राख लगी है। लेकिन आशा कहती है, कौन जाने !

उमीद तो बध जाती, तस्कीन तो हो जाती
वादा न वफा करते, वादा तो किया होता।

उमीद तो बध जाती, तस्कीन तो हो जाती – एक भरोसा तो आ जाता, एक आशा तो बंध जाती ! वादा न वफा करते – कोई जरूरत न थी कि जो वायदा किया था वह पूरा करते। वादा तो किया होता !

आदमी इतने से ही जिये चला जाता है : 'कहा तो होता ! आशा तो बधा दी होती ! सांत्वना तो रखवा देते ! '

तुमने कभी गौर किया ? तुम उन चीजों पे भी भरोसा किये जाते हो जिनको तुम जानते हो कुछ परिणाम होने का नहीं। बहुत बार जान चुके हो कि कुछ मिलता नही ! कितनी बार क्रोध किया ! कितनी बार कामवासना में जले, डूबे, क्या मिला ?

हाथ खाली के खाली रहे। लेकिन फिर भी ..।

हजार बार भी वादा वफा न हो लेकिन
मैं उनकी राह में आंखें बिछा के देख तो लूं।

— न आये, कोई हर्जा नहीं ! हजार बार न आये, कोई हर्जा नहीं। एक हजार एकवीं बार शायद आ जायें। मैं उनकी राह में आंखें बिछा के देख तो लूं !

ऐसे ही सब बैठे हैं अपने दरवाजों पर, राह में आंखें बिछाए — उसकी, जो न कभी आया है और न कभी आएगा। बंद करो दरवाजे। उठो, बहुत देख चुके यह राह ! तुम जिसकी राह देख रहे हो, वह है ही नहीं। उसके आने का कोई सवाल नहीं है।

वासनाओं से जिसने आनंद के आने की राह देखी है वह गलत की राह देख रहा है, जो आ ही नहीं सकता। वासना का स्वभाव आनंद नहीं। सिर्फ आशा बंधाती है। वासना ढपोरशंख है।

तुमने कहानी सुनी है ? एक आदमी ने शिव की बड़ी भक्ति की। जब उसकी भक्ति पूरी हो गई, शिव ने कहा, तू वरदान मांग ले। उस आदमी ने कहा, 'मैं क्या मांगूं ! आप ही जो उचित हो, दे दें।' शिव ने उठा के अपना शंख दे दिया और कहा, यह शंख है, इससे तू जो भी मांगेगा मिल जायेगा। तू कहेगा कि एक मकान मिल जाये, मकान मिल जायेगा। तू कहेगा, धन की वर्षा हो जाये, धन की वर्षा हो जायेगी।

उस आदमी ने तत्क्षण — शिव को तो भूल ही गया — प्रयोग किया कि हीरे-जवाहरात बरस जाएं, बरस गए। घर, आंगन, द्वार सब भर गए। यह खबर धीरे-धीरे आसपास फैलने लगी। क्योंकि अचानक वह आदमी ऐसी शान से रहने लगा कि दूर दूर तक उसकी सुगंध फैल गई। एक संन्यासी उसके दर्शन को आया। वह रात ठहरा। संन्यासी ने कहा कि मुझे पता है कि तुम्हें शंख मिल गया है, क्योंकि मुझे भी मिल गया है। मैंने भी शिव की भक्ति की थी। मगर तुम्हारा शंख मुझे पता नहीं, मेरा शंख तो महाशंख है। इससे जितना मांगो, दुगना देता है। कहो लाख मिल जायें, दो लाख...।

तो उसने कहा, देखें तुम्हारा शंख ! लोभ बढ़ा। इतना सब मिल रहा था उसे, लेकिन फिर भी लोभ पकड़ा। उसने कहा, देखें तुम्हारा शंख। उस संन्यासी ने शंख दिखलाया और संन्यासी ने शंख से कहा कि एक करोड़ रुपये चाहिए। शंख बोला, एक क्या करोगे, दो ले लो ! वह भक्त तो ... कहा कि बस ठीक है। आप तो संन्यासी हैं, आपको क्या करना ! छोटे शंख से भी काम चल जायेगा, छोटा मेरे पास है। छोटा तो उसने संन्यासी को दे दिया। संन्यासी तो भाग गया उसी रात। उसने सुबह उठते ही से पूजा-प्रार्थना की, अपने महाशंख को निकाला और कहा, 'हो जाये करोड़ रुपयों की वर्षा !' शंख बोला, दो करोड़ की कर दूं ? मगर हुआ कुछ भी नहीं। उस आदमी ने कहा, 'अच्छा दो करोड़ की सही।' उसने

कहा, अरे, चार की कर दूं ? मगर हुआ कुछ नहीं। वह आदमी थोड़ा घबड़ाया। उसने कहा कि भई करते क्यों नहीं ... चार ही सही। उसने कहा, 'अरे, आठ की कर दें न ... !' ऐसा ही ढपोरशंख था वह। उससे कुछ हुआ नहीं, बस दुगना करता जाता ... !

वासना ढपोरशंख है। राग ढपोरशंख है। वह तुमसे कहता है कि होगा, होगा; जितना मांग रहे हो उससे ज्यादा होगा। तुम्हारे सपने से भी बड़ा सपना पूरा कर के दिखला दूगा। क्या तुमने खाक आशा की है ! जो तुम्हें दूंगा, तुम चकित हो जाओगे। तुमने इसकी कभी आशा भी नहीं की थी, सोचा भी न था।

मगर ये सब बातें हैं। अनुभव तो कुछ और कहता है। अनुभव तो कहता है, न दो की वर्षा होती है, न चार की वर्षा होती है, न आठ की वर्षा होती है। लेकिन आशा बड़ी होती चली जाती है। आशा कहे चली जाती है, 'अरे ! और कर दूं ! तुम घबड़ा क्यों रहे हो ? अगर इतने दिन बेकार गये, कोई फिक्र नहीं, आगे देखो, भविष्य में देखो ! अतीत का हिसाब मत रखो। सूरज उगेगा ! चंदा चमकेगा ! जरा आगे देखो !'

आशा तुम्हें आगे खीचे लिये चली जाती है।

इसलिए महावीर कहते हैं, राग की उत्पत्ति ...। जहां से आशा का जन्म होता है, वहीं समझने की जरूरत है, वहीं जागने की जरूरत है। वहीं आशा को मत सहारा देना। कहना, 'ठीक ढपोरशंख, तुझे जो कहना हो, कह। हम कुछ मांगते ही नही। न हम लाख मागते न दो लाख मांगते। हमने मांग ही छोड़ दी।' थोड़े दिन में तुम पाओगे कि जब तुम न मांगोगे तो ढपोरशंख दुगना न कर पाएगा। क्योंकि वह दुगना तभी करता है, जब तुम मागते हो। तुम न मागो तो वह चुप हो जायेगा। तुम न मांगो तो वासना आशा न बंधाएगी। तुम मांगते हो, इसलिए बंधाती है। भूल तुम्हारे मांगने में हो जाती है। तुमने मांगा कि तुम आशा के चक्कर में पड़े। आशा कहती है, दुगना दिला देंगे !

जड़ से महावीर पकड़ते हैं।

'हिंसा करने के अध्यवसाय से ही कर्म का बंध होता है। फिर कोई जीव मरे या न मरे, जीवों के करबंध का यही स्वरूप है।'

यह बहुमूल्य सूत्र है। इस सूत्र को गीता के परिप्रेक्ष्य में समझने की जरूरत है, क्योंकि गीता का सारा सदेश यही है। कृष्ण अर्जुन को कहते हैं, न कोई मरता है न कोई मारता है, तो तू बेफिक्री से मार। क्योंकि तो आत्मा अमर है। न हन्यते हन्यमाने शरीरे ! शरीर के मारने से वह नही मरती। तू फिक्र छोड़ ! यह तो मिट्टी है, गिरेगी, गिर जायेगी। लेकिन जो इसके भीतर छिपा है, वह तो रहेगा और रहेगा !

कृष्ण बिलकुल ठीक कह रहे हैं, आत्मा मरती नही। महावीर कुछ और बात

प्रवेश करते हैं। महावीर कहते हैं, हिंसा करने के अध्यवसाय से ... हिंसा करने के विचार से, भाव से, कर्म का बंध होता है। फिर कोई जीव मरे या न मरे ...। किसी के मरने से हिंसा नहीं होती; तुमने मारना चाहा, इससे हिंसा होती है।

कृष्ण बिलकुल ठीक कहते हैं कि काट डालो, कोई मरेगा नहीं; क्योंकि आत्मा मरणधर्मा नहीं है। लेकिन महावीर कहते हैं, तुमने काट डालना चाहा! कटा कोई या नहीं कटा, यह सवाल नहीं है; तुमने काटना चाहा, तुम्हारी उस चाह में हिंसा है। फिर कोई मरा न मरा, यह बात अप्रासंगिक है। तुमने मारना चाहा था, तुम फंस गए। तुम्हारी मारने की चाह ने बीज बो दिया। तुम दुख पाओगे। तुम्हें दुख मिलेगा। इसलिए नहीं कि तुमने लोग मारे, क्योंकि लोग तो मरे ही नहीं, लेकिन तुमने मारना चाहे। वस्तुतः हिंसा घटती है या नहीं घटती है, यह सवाल नहीं है। गहरा सवाल यही है कि तुम्हारी आकांक्षा मारने की थी। कभी-कभी तो ऐसा भी हो जाता है कि तुम्हारी आकांक्षा कुछ थी, हो कुछ जाता है।

ऐसा हुआ, चीन में कोई पांच हजार साल पहले इस तरह अकुपंचर की विद्या का जन्म हुआ। एक आदमी को जिंदगी भर से सिरदर्द था। वह बड़ा तकलीफ में पड़ा था। वह बड़ा परेशान था। सब इलाज कर चुका था, कोई इलाज नहीं होता था। कोई दवा नहीं मिलती थी। कोई चिकित्सक ठीक नहीं कर पाता था। पत्थर के बोझ की तरह उसका सिर चौबीस घंटे भारी था। और जैसे बिजली कौंधती हो, ऐसे उसके सिर में तड़फन थी। वह न बैठ सकता था, न काम कर सकता था। जीना उसका दूभर हो गया था। आत्महत्या करने का उपाय किया था तो लोगों ने करने न दिया। कोई दुश्मन था उसका, किसी से झगड़ा हो गया, उस दुश्मन ने एक तीर उसे मारा। वह तीर उसके पैर में लगा और पैर में तीर के लगते ही सिरदर्द चला गया। वह चिकित्सकों के पास गया। उसने कहा, 'यह हुआ क्या? यह तीर पैर में लगा और उसी क्षण दर्द चला गया।' ऐसे अकुपंचर का जन्म हुआ। तब लोगों ने खोज-बीन करनी शुरू की कि ऐसा मालूम पड़ता है कि पैर में लगने से सिर में कोई परिणाम हुआ है। तो फिर सिरदर्द वाले लोगों को उसी पैर के स्थान पर तीर चुभाने से फायदा देखा गया। और सिरदर्द के बीमार भी ठीक हो गए उसी जगह तीर चुभाने से। तो फिर बिंदु खोजे गए अकुपंचर के, सात सौ बिंदु शरीर में। तो कुछ बिंदु हैं जिनको दबाने से कुछ बीमारियां ठीक हो जाती हैं। कुछ बिंदु हैं जिनको दबाने से कुछ और बीमारियां ठीक हो जाती हैं। तो शरीर विद्युत का मंडल है। उसमें एक तरफ से विद्युत को दबाने से कहीं दूसरी तरफ विद्युत में परिणाम होते हैं। बड़ा रहस्यमय है। लेकिन अकुपंचर काम करता है।

अब सवाल यह है कि जिस आदमी ने तीर मारा था, उसने पाप किया या पुण्य? क्योंकि जीवन भर का सिरदर्द चला गया। अगर हम फल को देखें, तब तो पुण्य

किया। लेकिन अगर उसके भाव को देखें, तो पाप ही है। क्योंकि वह तो मारना चाहता था। वह कोई इसका सिरदर्द ठीक करना नहीं चाहता था। उसने तो मारना चाहा था। इसलिए उसने तो हिंसा की। यह बात अप्रासंगिक है कि यह आदमी ठीक हो गया। इससे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह तो दुर्घटना है।

तो तुम्हारा कृत्य फल के द्वारा निर्धारित नहीं होता कि पाप है या पुण्य है, तुम्हारे अभिप्राय के द्वारा निर्धारित होता है। इन्टेंशन। कभी ऐसा भी हो सकता है, बुरे अभिप्राय से ठीक घट जाये। और कभी ऐसा भी हो सकता है कि ठीक अभिप्राय से बुरा घट जाये। लेकिन फल से निर्णय नहीं होता; निर्णय तुम्हारे अभिप्राय से होता है – तुम्हारे अंतरतम में तुमने क्या चाहा था! कभी ऐसा भी हो सकता है कि तुम कुछ भला करने गए थे और बुरा हो गया। तो भी वह पाप नहीं है। कभी तुम बुरा करने गए थे और भला हो गया, तो भी वह पाप है।

महावीर का विश्लेषण फल पर नहीं ले जाता। कृष्ण और महावीर दोनों राजी हैं कि आत्मा मरती नहीं। फिर भी महावीर कहते है, मारने की आकांक्षा, मारने की आकांक्षा में हिंसा है। मारने की आकांक्षा ही बंधन का कारण है।

धन नहीं बांधता। धन तुम्हारे चारों तरफ पड़ा रहे, लेकिन धन को पकड़ने की, परिग्रह की आकांक्षा बांधती है। पत्नी, स्त्री नहीं बांधती, भोगने की कामना बाधती है। ऐसा ठीक से देखोगे तो सारा जाल भीतर है, बाहर नहीं।

लोग मुझसे कहते हैं कि संसार छोड़ना है। जैसे संसार कहीं बाहर है! ससार से उनका मतलब है – दुकान, बाजार, पत्नी, बच्चे – इनको छोड़ना है। संसार भीतर है। संसार तुम्हारे अभिप्राय में है। संसार तुम्हारी कामना और वासना में है।

'हिंसा करने के अध्यवसाय से ही कर्म का बंध होता है। फिर कोई जीव मरे या न मरे, जीवों के कर्म-बध का यही स्वरूप है।'

आशा के स्वभाव को समझने की कोशिश करो। अनुभव को जिताओ, आशा को हराओ। जो तुमने जीवन के अनुभव से जाना है उसका भरोसा करो। जो तुम्हारा मन फैलाव करता है, सपनों के, उनका भरोसा मत करो।

यूं तो नहीं कहता कि सचमुच करो इंसाफ
झूठी भी तसल्ली हो तो जीता ही रहूं मैं।

तुम भी झूठी तसल्लियों में जी रहे हो। तुम दूसरों से झूठी तसल्ली मांगते हो।

पश्चिम से जब लोग पूरब आते हैं तो बड़े हैरान होते हैं। क्योंकि पूरब के आदमी झूठी तसल्लिया देने में बड़े कुशल हैं। यहां इस मुल्क मे अगर तुम किसी के पास जाओ और कहो कि फलां काम करना है, आप करवा देंगे, वह कहता है, बिलकुल करवा देंगे। पश्चिम में ऐसा नहीं है। अगर वह करवा सकेगा तो ही कहेगा। फिर भी वह शर्त के साथ कहेगा कि मैं कोशिश करूंगा। होगा कि नहीं होगा, यह मुश्किल है। मैं अपनी तरफ से कोशिश करूंगा। अगर नहीं करवा सकेगा तो स्पष्ट 'नहीं'

कहेगा कि नहीं, यह मुझसे न हो सकेगा, क्षमा करें ! पूरब में ऐसा नहीं है । तुम किसी से भी कहो, वह कहता है, हां करवा देंगे ! चाहे वह करवा सकता हो, चाहे उसकी क्षमता में हो चाहे न हो; लेकिन वह यह कहता है कि क्यों नाहक तुम्हें दुखी करना । जब होगा तब होगा, अभी तो तसल्ली !

जब पश्चिम से लोग पूरब आते हैं, धंधे और व्यवसाय के लिए, तो वे बड़े हैरान होते हैं । उनको समझ में ही नहीं आता कि किसकी मानें, किसकी न मानें; क्योंकि सभी 'हां' कहते हैं । 'नहीं' तो कोई मुश्किल से कहता है । 'नहीं' तो जैसे अशिष्टाचार है ।

तुमने भी कभी खयाल किया ? कोई तुम्हारे पास आता है कि नौकरी चाहिए, तुम कहते हो कि हां, कोशिश करेंगे, दिलवा देंगे ! ऐसा कहते वक्त तुम क्षण भर को भी सोच नहीं रहे हो कि दिलवाने की कोई तुम्हारी आकांक्षा है । तुम टाल रहे हो कि झंझट मिटाओ, जाओ । और तुम कह रहे हो कि ठीक मलहमपट्टी कर दी, अब तुम आशा में जियो ।

पूरब में यह शिष्टाचार है, सांत्वना बंधा दो । कोई मर गया, तुम पहुंच जाते हो कहने कि कोई हर्जा नहीं, आत्मा तो अमर है । तुम्हें पता है ! लेकिन तुम कहते हो, पता हो या न हो, अब यह तो कोई दुख में पड़ा है, इसको तो सांत्वना दो !

तू तो नहीं कहता कि सचमुच करो इंसाफ
झूठी भी तसल्ली हो तो जीता ही रहूं मैं ।

और ऐसी झूठी तसल्ली के धागे पर लोग जीते रहते हैं । यही तुम्हारे साधु-संन्यासी कर रहे हैं । वे तुम्हें झूठी तसल्ली बंधाए जाते हैं । तुम उनके पास जाओ और तुम कहो कि मन में बड़ी अशांति है, वह कहता है, 'कोई फिक्र न करो । यह राम-राम जपना, सब ठीक हो जायेगा ।' अब राम-राम जपने से कोई भी सम्बन्ध अशांति का नहीं है । अशांति तुम पैदा कर रहे हो, राम का इसमें कुछ हाथ नहीं है । अशांति तुम पैदा किये चले जाओगे, राम-राम भी जपोगे, क्या होगा ? थोड़ी और अशांति बढ़ जाएगी, बस । उसने तुम्हारे मूल कारण को न पकड़ा । मूल कारण पकड़ना झंझट की बात है, मुश्किल बात है, कठिन बात है । शायद उसको भी पता न हो, लेकिन तुम्हारी तसल्ली उसने बंधा दी । तुम भी प्रसन्न लौटे । तुम भी आनंदित हुए कि चलो । तुम गए कि आशीर्वाद दे दो कि शांत हो जाये चित्त ।

भारत में साधु हैं, जो तैयार बैठे हैं, हाथ तैयार ही रखते हैं वे आशीर्वाद देने को । वे कहते हैं, यह लो आशीर्वाद । न कुछ लेना है, न कुछ देना है । न उनका कुछ हर्जा हो रहा है और न तुम्हें कुछ मिल रहा है; लेकिन बात हो गई, तसल्ली बंध गई । तुम अपने घर लौट गए, जैसे-के-तैसे जैसे आये थे । थोड़ी और आशा मजबूत ले के लौट गए कि अब सब ठीक हो जायेगा ।

अगर तुम ईमानदारी से जीवन का रूपांतरण चाहते हो तो उनके पास जाना

जो तसल्ली बंधाते न हों; जो तुम्हारे जीवन का निदान सीधा कर के रख देते हों सामने – चाहे चोट भी लगती हो; चाहे तुम्हारा घाव भी छू जाता हो और तुम्हारी मलहम-पट्टी उखड़ जाती हो, चाहे तुम्हारे नासूर से मवाद निकल आती हो। लेकिन उनके पास जाना जो तसल्ली बंधाने के आदी नहीं हैं; जो तुम्हारे जीवन के सत्य को वैसा का वैसा रख देते हैं जैसा है। पीड़ा होती हैं। लेकिन जीवन-रूपांतरण में पीड़ा छुपी है। और अगर तुमने उनकी बात सुनी और समझने की कोशिश की और जीवन में वैसा आचरण और व्यवहार किया तो तुम बदल जाओगे। तसल्ली उन्होंने नहीं बंधाई, लेकिन तुम्हारे जीवन को क्रांति दे देंगे वे। लेकिन तुम मुफ्त तसल्ली में घूमते हो। फिर एक साधु चुक जाता है, क्योंकि कई दफे तसल्ली बंधा चुका, अब तुम्हें उसमें भरोसा नही रहा, फिर तुम दूसरा साधु खोज लेते हो। साधुओं की कोई कमी नहीं है। जिंदगी बडी छोटी है, साधु बहुत हैं। तसल्ली, तसल्ली तसल्ली। तुम घूमते फिरते हो।

बंद करो! जीवन के सत्य को पकड़ो! जीवन का सत्य सुगम नहीं है, सांत्वना नहीं है। जीवन का सत्य कठोर है। काटा चुभा है तुम्हारी छाती में, उसे निकालने में पीड़ा होगी। तुम चीखोगे, चिल्लाओगे। लेकिन वह चीख-चिल्लाहट जरूरी है। और तुम्हें जो उस पीड़ा से गुजारने में साथी हो सके, उसे मित्र मानना!

सद्गुरु तसल्ली नही देता। सद्गुरु सत्य देता है, फिर चाहे कितना ही कड़वा हो। आखिर वैद्य अगर यह सोचने लगे कि मीठी ही दवा देनी है, तो चिकित्सा न होगी, मरीज चाहे प्रसन्न हो जाये क्षण भर को। शरबत पिला दे मरीज को, लेकिन इससे बीमारी ठीक न होगी; मरीज प्रसन्न हो के घर लौट जायेगा, लेकिन बीमारी और बढ़ जायगी। नहीं, कड़वी दवा भी देनी पड़ती है, जहर जैसी दवा भी देनी पड़ती है। मरीज नाराज भी होता है, तो भी देनी पड़ती है।

आशा ने सारे संसार को भटकाया हुआ है। और आशाएं मत खोजो। जहां आशा टूटती हो, जहां तसल्ली उखड़ती हो, जहां तुम्हारे सांत्वना के सब जाल बिखरते हों, जहां तुम्हारा सारा व्यक्तित्व जो अब तक झूठ पे खड़ा था तहस-नहस हो के खंडहर हो जाता हो – वहां जाना। दुर्धर्ष है मार्ग।

लोग कहते हैं मौत से बदतर है इंतजार
मेरी तमाम उम्र कटी इंतजार में

– सभी की कटती है। तुम कर क्या रहे हो सिवाय इंतजार के?

सैमुअल बैकेट का एक छोटा नाटक है – वेटिंग फार गोडोड, गोडोड की प्रतीक्षा। यह गोडोड कौन है? किसी ने सैमुअल बैकेट को पूछा कि आखिर यह गोडोड कौन है! क्योंकि पूरा नाटक पढ़ जाओ, पता ही नहीं चलता कि गोडोड कौन है। सैमुअल बैकेट ने कहा कि अगर मुझे ही पता होता तो मैंने नाटक में लिख दिया होता। मुझे भी पता नहीं, गोडोड कौन है।

लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं। ठीक से पूछो, किसकी प्रतीक्षा कर रहे हो ? उनको भी पता नहीं है। गोडोड यानी वह, जिसका पता नहीं, लेकिन प्रतीक्षा कर रहे हैं। सभी लोग उत्सुकता से बैठे हैं दरवाजे खोले हुए – कोई आने वाला है।

यह गोडोड की कहानी बड़ी प्यारी है। दो आदमी बैठे हैं। ऐसा नाटक शुरू होता है। और वे एक-दूसरे से पूछते हैं कि क्यों भई, क्या हाल है ? वह कहता है, 'सब ठीक है। आज आयेगा, ऐसा मालूम पड़ता है।' कौन आयेगा, इसकी तो कोई बात ही नहीं – 'आज आयेगा, ऐसा मालूम पड़ता है।' दूसरा कहता है, 'सोचता तो मैं भी हूं। आना चाहिए। कब से हम राह देख रहे हैं! और भरोसा बंधवाया था। और आदमी ऐसा गैर-भरोसे का नहीं है। देखें शायद आज आए।' ऐसी बात चलती है। वे दोनों देखते रहते हैं रास्ते की तरफ, रास्ते के किनारे बैठे। कोई आता नहीं। दोपहर हो जाती है। सांझ हो जाती है। वे कहते हैं, 'फिर नहीं आया। हद हो गयी बेईमानी की ! आदमी ऐसा तो न था, कुछ अड़चन आ गई होगी, कोई बीमार हो गया !' बाकी कौन है इसकी कोई बात नहीं चलती। कई दफे वे परेशान हो जाते हैं। वे कहते हैं, 'अब बहुत हो गया, बंद करो जी इंतजार !' मगर दोनों बैठे हैं। कभी-कभी कहते हैं 'अब मैं चला। तुम ही करो।' एक कहता है कि बहुत हो गया, एक सीमा होती है। मगर जाता-करता कोई नहीं, क्योंकि जाएं भी कहां ! कहीं और जाओगे, वहां भी इंतजार करना पड़ेगा। रहते वहीं हैं। बैठे वहीं हैं। बात भी करते रहते हैं, कभी यह भी नहीं एक-दूसरे से पूछते कि किसका इंतजार कर रहे हो ? मान लिया है कि किसी का इंतजार कर रहे है।

यह जो गोडोड है, यह सब को पकड़े हुए है।

तुमने कभी पूछा है, किसकी राह देख रहे हो ? कौन आने वाला है ? किसके लिए द्वार खोले हैं ? और किसके लिए घर सजाए बैठे हो ? नहीं, तुम कहोगे यह तो हमें पक्का पता नहीं है, कौन आने वाला है; लेकिन कोई आने वाला है, ऐसा लगता है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हम क्या खोज रहे हैं, हमें पता नहीं; मगर खोज रहे हैं। अब खोजोगे कैसे अगर यह ही पता नहीं कि क्या खोज रहे हो ? लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, कुछ पूछना है; लेकिन हमें मालूम नहीं कि क्या पूछना है। और वे गलत नहीं कहते, बड़े ईमानदार लोग हैं। यही स्थिति है। लोग पूछना चाहते हैं, कुछ पूछना जरूर है। ऐसा आभास मालूम होता है। कहीं प्राणों में ऐसी घुमड़ मालूम होती है, कुछ पूछना है – लेकिन क्या ? कुछ पकड़ में नहीं आता। कुछ रूप नहीं बनता। कुछ आकार नहीं बैठता। खोजना है – लेकिन क्या ? यह गोडोड कौन है ? किसी को मालूम नहीं।

इस इंतजार से जागो ! यह प्रतीक्षा बहुत हो चुकी। न कभी कोई आया है, न कभी कोई आयेगा। बंद करो दरवाजे। अब तो उसको खोजो जो तुम हो। कभी

धन में प्रतीक्षा की, कभी पद में प्रतीक्षा की: कभी लोगों की आंखों में सम्मान चाहा, कभी प्रार्थना की, आकाश की तरफ देखा, किसी परमात्मा को खोजा -- लेकिन सब थोथोथ ! तुम्हें साफ नहीं, तुम क्या खोज रहे हो, तुम क्या मांग रहे हो ! अब तो उचित है कि अपने में डूबो। उसे देखें जो हम हैं। किसी और की प्रतीक्षा करनी उचित नहीं है।

'हिंसा में विरत न होना, हिंसा का परिणाम रखना हिंसा ही है।'

अगर तुमने हिंसा का बोधपूर्वक त्याग नहीं किया है तो हिंसा जारी रहेगी। महावीर और सूक्ष्म तल पर ले जाते हैं। वे कहते हैं, दूसरे को मारने का, दूसरे को दुख देने का भाव तो हिंसा है ही; लेकिन अगर तुमने बोधपूर्वक दूसरे को दुख देन की समस्त संभावना का त्याग नहीं किया है, अगर तुमने अहिंसा को बोधपूर्वक अपनी जीवनचर्या नही बनाया है, तो भी हिंसा है।

हिंसा में विरत न होना, जाग के होशपूर्वक, निर्णयपूर्वक अपने सामने यह साफ न कर लेना कि मैं हिंसा से विरत हुआ, तो खतरा है। जिससे तुम विरत नही हुए हो, वह पैदा हो सकता है। किसी घड़ी किसी असमय में, किसी परिस्थिति में, जिसमे तुम विरत नही हुए हो, उसके पैदा होने की संभावना है। माना कि तुमने सोचा भी नही कि किसी को मारना है; लेकिन कोई छुरी ले के सामने आ गया तो तुम भूल जाओगे। तुम्हारे पास अहिंसा की कोई शैली नहीं है। तुम हिंसा की शैली को पकड़ लोगे, क्योंकि वह पुरानी आदत है।

तो महावीर यह कह रहे हैं कि हिंसा की शैलीतो जन्मों-जन्मों की आदत है। अहिंसा की शैली को बोधपूर्वक स्वीकार करना पड़ेगा। उसे जीवन की साधना बनाना होगा। नहीं तो जब कोई हिंसा करने को तैयार हो जाएगा, तुम अचानक भूल जाओगे। तुमने सोचा भी न था हिंसा करने के लिए, लेकिन हिंसा होगी। पुरानी आदत है, पुराने संस्कार हैं। पुराने संस्कारों को गिराने के लिए बोधपूर्वक निर्णय चाहिए। हिंसा से विरत होने का निर्णय चाहिए।

'हिंसा में विरत न होना, हिंसा का परिणाम रखना हिंसा ही है।'

संभावना भी बचा लेना हिंसा है।

'इसलिए जहां प्रमाद है, वहां नित्य हिंसा है।'

यह गहरी से गहरी पकड़ है, जो हो सकती है।

'जहां प्रमाद है वहा नित्य हिंसा है।'

प्रमाद यानी मूर्च्छा। जहां सोया-सोयापन है; जहां चले जा रहे हैं नींद में, आंखें खुली हैं, लेकिन मन सोया, बेहोश है; जहा हम मूर्च्छा में चल रहे हैं -- वहां हिंसा है। क्योंकि मूर्च्छित व्यक्ति क्या करेगा ? हजार परिस्थितियां रोज आती हैं हिंसा की, मूर्च्छित व्यक्ति क्या करेगा ? होश तो है नहीं कि कुछ नया जीवन-उद्‌बोध, कुछ नयी जीवन-उमंग, कोई नई किरण फूट सके। बेहोश है तो पुरानी आदत से

चलेगा, बेहोश आदमी आदत से चलता है। होश वाला आदमी प्रतिपल होश से चलता है, आदत से नहीं।

किसी ने गाली दी, तुम्हें याद भी न रहेगा कि तुम्हारा चेहरा तमतमा गया। यह तमतमा जाएगा, तब पता चलेगा कि अरे, फिर हो गया ! यह एक क्षण में हो जाता है, क्षण के खंड में हो जाता है। एक सुंदर स्त्री पास से गुजरी, कोई चीज हिल गई भीतर। अभी खाली बैठे थे तो कुछ बात न थी। स्त्री का खयाल ही न था। अभी बैठे वृक्षों की हरियाली देखते थे; खिले फूलों को, आकाश के तारों के देखते थे – कुछ पता भी न था, लेकिन परिणाम तो भीतर पड़ा है। आदत तो पुरानी भीतर पड़ी है। एक स्त्री पास से गुजर गई, क्षण भर में बिजली कौंध गई। भीतर कुछ हिल गया। भीतर कोई तूफान उठ आया। भीतर कोई वासना सजग हो गई। बीज तो पड़े ही हैं, जब भी वर्षा हो जायेगी, अंकुर हो जायेंगे।

तो महावीर कहते हैं, 'वस्तुतः मूर्च्छा ही हिंसा है। और अमूर्च्छा अहिंसा है। आत्मा ही अहिंसा है और आत्मा ही हिंसा है। जब आत्मा मूर्च्छित है तो हिंसा; जब आत्मा जाग्रत है तो अहिंसा। यह सिद्धांत का निश्चय है।'

अत्ता चेव अहिंसा-आत्मा ही अहिंसा, आत्मा ही हिंसा। यह सिद्धांत का निश्चय है।

'जो अप्रमत्त है वह अहिंसक है।'

जो जागा हुआ है, जो होशपूर्वक जीता है, अवेयरनेस, सम्यक् बोध, एक-एक कदम बोधपूर्वक रखता है, विवेकपूर्वक रखता है – वह अहिंसक है।

'जो प्रमत्त है, वह हिंसक है।' जो नशे में जी रहा है, जिसे ठीक पता भी नहीं है – कहां जा रहे हैं, क्यों जा रहे हैं – चला जा रहा है ! तुम अपने को पकड़ो। अपने को हिलाओ, डुलाओ, जगाओ ! झटका दो !

सूफियों में एक प्रक्रिया है – झटका देने की। सूफियों का एक वर्ग साधकों को कहता है कि जब भी तुम्हें लगे कि तन्द्रा आ रही है, जोर से एक झटका शरीर को दो। जैसे कोई वृक्ष तूफान में हिल जाता है, आंधी में कंप जाता है, धूल-धंवास गिर जाती है, ऐसा कभी अपने को झटका दो।

तुम कभी कोशिश करके देखना। क्षण भर को तुम पाओगे एक ताजगी, एक होश, अपनी याद, मैं कौन हूं ! चैतन्य थोड़ी देर को प्रखर होगा, झलकेगा; फिर खो जायेगा। ऐसे झटके अपने को देते रहना।

कभी-कभी छोटी चीजें काम की हो जाती हैं। बहुत छोटी चीजें काम की हो जाती हैं। तो जब भी कोई गाली दे, एक झटका अपने को देना। इसको धीरे-धीरे अपने जीवन की व्यवस्था बना लेना। कोई गाली देगा, तुम अपने को झटका दोगे। झटका दे के तुम पाओगे कि आदत से संबंध छूट गया। यही तो 'इलेक्ट्रो शॉक ...' मनोविज्ञान इसी को कहता है। आदमी पागल हो जाता है, कोई उपाय नहीं सूझता,

कैसे ठीक करें, तो उसके मस्तिष्क में बिजली दौड़ा देते हैं। होता क्या है ? जब बिजली तेजी से दौड़ती है तो उसके मस्तिष्क में एक झंझावात आ जाता है। एक झटका लगता है। उस झटके के कारण, वह जो पागलपन उस पे सवार था, उससे उसका संबंध क्षण भर को टूट जाता है। क्षण भर को वह भूल जाता है कि मैं पागल हूं। सातत्य टूट जाता है, कंटीन्यूटी टूट जाती है। फिर उसे याद नहीं रहती। फिर जब वापिस लौटता है झटके के बाद, तो उसे याद नहीं रहती कि वह अभी थोड़ी देर पहले पागल था, अब उसको पागल रहना है। आदत से संबंध छूट गया। तो अक्सर लाभ हो जाता है। अक्सर पागल ठीक हो जाता है। लेकिन यह तुम खुद अपने लिए कर सकते हो।

और हम सब पागल हैं। और हमारा सारा व्यवहार सोया हुआ है। जिस भांति बन सके, जगाने की चेष्टा अपने को करनी है। तो कई तरह से झटके दिये जा सकते हैं। कोई भी छोटा स्मरण भी सहयोगी हो सकता है। तुम्हें मैंने माला दी है। इसको ही एक नयी स्मरण की आदत बना लो कि जब कोई कामवासना उठने लगे, तत्क्षण माला को हाथ में पकड़ लेना। किसी को पता भी न चलेगा। लेकिन उस माला को पकड़ना तुम्हें याद दिला देगा कि अरे, फिर गिरे, फिर गिरने को तैयार हुए ! तुम्हें मैंने गैरिक वस्त्र दिये हैं। वे याददाश्त के लिए हैं; अन्यथा गैरिक वस्त्रों से क्या होता जाता है !

एक आदमी शराबी है, वह सन्यास लेने आ गया था। वह कहने लगा कि मैं शराबी हूं, अब आपसे कैसे छिपाऊं ! सन्यास भी लेना है। घबड़ाहट यही है कि गैरिक वस्त्रों में फिर शराब-घर कैसे जाऊंगा !

'वह तेरी फिक्र है। वह हमारी क्या फिक्र है ? तू चिंता करना। हमने अपना काम कर दिया, तुझे संन्यास दे दिया। अब इसमें हम क्या फिक्र करें, कहां तू जायेगा कहां नहीं। तेरे पीछे हम कोई चौबीस घंटे घूमेंगे नहीं। अब तू ही निपट लेना।'

उसने कहा कि झंझट में डाल रहे हो आप।

झंझट तो है। क्योंकि सोए-सोए जीते थे, जागना एक झंझट है। पर वह हिम्मतवर आदमी है। साफ-सुथरा आदमी है। अन्यथा कहने की कोई जरूरत ही नहीं थी, छिपा जाता। शराब पीते हैं, कौन कहता है ! लेकिन कुछ दिन बाद आया और उसने कहा कि मुश्किल हो गई। अब पैर रुकते हैं। ऐसा नहीं कि शराब पीने का मन अब नहीं होता; होता है, लेकिन अब ये गैरिक वस्त्र झंझट का कारण हैं। वहां पहुंच जाता हूं तो लोग चौंक के देखते हैं जैसे कि कोई अजूबा जानवर हूं। सिनेमा-घर में खड़ा था कतार में, तो चारों तरफ लोग देखने लगे। दो आदमियों ने आ के पैर छू लिये तो मैं भागा कि अब यहां...जहां लोग पैर छू रहे हैं, अब यहां सिनेमा में जाना योग्य नहीं है।

तुमने कहानी सुनी है पुरानी ? एक चोर भागा। उसके पीछे लोग लगे थे। उसे

कोई भागने का, बचने का उपाय नहीं दिखाई पड़ा। वह एक नदी के किनारे पहुंचा। वहां कुछ राख का ढेर पड़ा था। उसने जल्दी से कपड़े उतार के तो फेंके नदी में, नग्न हो गया, डुबकी मारी, राख ऊपर से डाल ली और झाड़ के नीचे आंख बंद कर के बैठ गया। पद्मासन लगा लिया। पकड़ने वाले आ गये, कोई वहां दिखाई नहीं पड़ता – एक साधु महाराज। उन्होंने सबने पैर छुए। चोर ने कहा, 'अरे हद हो गई! मैं झूठा साधु हूं और मेरे लोग पैर छू रहे हैं!' लेकिन एक झटका लगा कि काश, मैं सच्चा होता तो क्या न हो जाता! लेकिन उस झटके में क्रांति हो गई। लोग तो चले गए पैर छू कर, लेकिन वह सदा के लिए साधु हो गया। उसने कहा, जब झूठे तक को, जब झूठी साधुता तक को ऐसा सम्मान मिल गया, जब झूठे में ऐसा रस, तो सच्चे की तो कहना क्या!

स्मरण के साधन हैं। गैरिक वस्त्र है तुम्हारा, किसी को मारने के लिए हाथ उठने लगेगा तो अपना गैरिक वस्त्र भी दिखाई पड़ जायेगा। बस उतना ही काफी होगा। हाथ को नीचे छोड़ देना। शराब का प्याला हाथ में उठा लो, पास लाने लगो, तो गैरिक वस्त्र दिखाई पड़ जायेगा। फिर हाथ को वहीं वापिस लौटा देना। धीरे-धीरे तुम पाओगे, एक नए बोध की दशा तुम्हारे भीतर सघन होने लगी, जो पुरानी आदतों को काट देगी।

'जैसे जगत में मेरु पर्वत से ऊंचा और आकाश से विशाल कुछ भी नहीं है, वैसे ही अहिंसा के समान कोई धर्म नहीं है।'

इसलिए महावीर ने अहिंसा को परम धर्म कहा है। आकाश से विशाल, मेरुओं से भी ऊंचा!

'अहिंसा' शब्द सोचने जैसा है। महावीर ने प्रेम शब्द का उपयोग नहीं किया, यद्यपि ज्यादा उचित होता कि वे प्रेम शब्द का उपयोग करते। लेकिन उन्होंने किया नहीं। उनके न करने के पीछे कारण हैं। क्योंकि प्रेम शब्द से तुम कुछ समझे बैठे हो जो कि बिलकुल गलत है। उसी शब्द का उपयोग करने से कहीं ऐसा न हो, महावीर को डर रहा, कि तुम अपना ही प्रेम समझ लो कि तुम्हारे ही प्रेम की बात हो रही है। तो महावीर को एक नकारात्मक शब्द उपयोग करना पड़ा: अहिंसा; हिंसा नहीं। लेकिन महावीर का मतलब प्रेम से है। सूफी जिसको 'इश्क' कहते हैं, जीसस ने जिसको प्रेम कहा है – वही महावीर की अहिंसा है। लेकिन महावीर एक-एक शब्द को बहुत सोच के बोले हैं, तुम्हारी तरफ देख के बोले हैं। क्योंकि प्रेम के साथ तुम्हारा पुराना एसोसिएशन है, पुराना संबंध है। तुमने प्रेम से अब तक जो मतलब समझे हैं वे राग के हैं, काम के हैं। तुम्हारे लिए प्रेम का एक ही मतलब होता है: वासना। तुमने प्रेम का दूसरा गहनतम अर्थ नहीं जाना।

प्रेम का वास्तविक अर्थ होता है: इतने स्वस्थ हो जाना कि तुम न किसी को दुख पहुंचाना चाहते हो, न स्वयं को दुख पहुंचाना चाहते हो। तुम अपने को भी प्रेम करते

है। हो, दूसरे को भी प्रेम करते हो। और यह प्रेम अब कोई संबंध नहीं है, तुम्हारी दशा है। कोई न भी हो तो भी तुम्हारे चारों तरफ प्रेम फैलता रहता है। जैसे अकेले में खिले विजन में फूल, तो भी तो सुगंध बिखरती रहती है। दीया जले अकेले अंधकार में अमावस की रात में, तो भी तो प्रकाश फैलता रहता है। दीया यह थोड़ी सोचता है कि कोई यहां है ही नहीं, तो फायदा क्या! फूल यह थोड़ी सोचता है, इस रास्ते से कोई गुजरता ही नहीं, कोई नासपुट आएंगे ही नहीं यहां, तो किसके लिए गंध बिखेरूं! छोड़ो, क्या सार है! ऐसे ही प्रेम को जो उपलब्ध है, वह यह थोड़ी सोचता है कि कोई लेगा तब दूं, या किसी खास को दूं। प्रेम उसका स्वभाव है।

लेकिन महावीर ने अहिंसा शब्द का उपयोग किया। उस शब्द के कारण उन्होंने पुरानी एक भ्रांति से बचाना चाहा आदमी को, ताकि लोग उनके ही प्रेम को न समझ ले कि महावीर उन्हीं के प्रेम का समर्थन कर रहे हैं। लेकिन एक दूसरी भ्रांति शुरू हो गयी। आदमी इतना उलझा हुआ है कि तुम उसे बचा नहीं सकते। तब अहिंसा शब्द के साथ एक नयी भ्रांति शुरू हो गयी।

अब जैन मुनि हैं, उनके जीवन में प्रेम दिखाई ही नहीं पड़ेगा। उनने अहिंसा का ठीक-ठीक मतलब ले लिया, हिंसा नहीं करनी, तो नकारात्मक, विधायक कुछ भी नहीं, पाजिटिव कुछ भी नहीं। चींटी नहीं मारनी, मगर चींटी के प्रति कोई प्रेम नहीं है। चींटी नहीं मारनी, क्योंकि मारने से नर्क जाना पड़ता है। यह तो लोभ ही हुआ। किसी को नहीं मारना, किसी को गाली नहीं देना, क्योंकि गाली देने से मोक्ष खोता है। यह तो लोभ ही हुआ, प्रेम नहीं। इस फर्क को समझना।

तो मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि अहिंसा का महावीर का अर्थ है: प्रेम। तुम्हारा प्रेम नहीं; क्योंकि एक और प्रेम है। लेकिन जैन मुनियों की अहिंसा भी नहीं, क्योंकि वह बिलकुल मुर्दा है। वह मर गयी। नकार में कहीं कोई जी सकता है? सिर्फ नकार-नकार में कोई जी सकता है? नकार में कोई घर बना सकता है? कुछ विधायक चाहिए। विधायक का अर्थ है: कुछ ऊर्जा तुम्हारे भीतर जगनी चाहिए। सिकुड़ने से ही थोड़ी काम चलेगा! किसी को मारो मत, बिलकुल ठीक; लेकिन क्यों न मारो किसी को? क्योंकि तुम्हे प्रेम है, इसलिए। इसलिए नहीं कि मारोगे तो नर्क जाना पड़ेगा। यह कोई प्रेम हुआ? यह तो अपना ही लोभ हुआ। लोगों को मत मारो, क्योंकि तुम्हारा प्रेम तुम्हें बताएगा कि दूसरे को मारना, दूसरे को दुख देना... तो तुम कैसे आशा बांधते हो कि तुम्हारे जीवन में प्रेम का फैलाव हो सकेगा?

प्रेम फैलता है, बढ़ता है। महावीर कहते हैं, 'आकाश जैसा! सुमेरु पर्वत से भी ऊंचा, आकाश से भी विशाल!' तो यह कुछ विधायक घड़ी हो तो ही बढ़ सकती है। कुछ हो तो बढ़ सकता है।

अहिंसा का तो अर्थ है: हिंसा का न होना। यह तो ऐसे ही हुआ जैसे कि चिकित्सा-शास्त्र में अगर पूछा जाये कि स्वास्थ्य क्या है, तो वे कहते हैं बीमारी का न होना।

लेकिन मुर्दा भी बीमार नहीं होता, लेकिन उसको तुम स्वस्थ न कह सकोगे। वह स्वास्थ्य की परिभाषा पूरी करता है, क्योंकि बीमार नहीं है। जिंदा ही बीमार होता है, मुर्दा कैसे बीमार होगा? बीमार होने के लिए जिंदा होना जरूरी है। तो यह स्वास्थ्य की परिभाषा पर्याप्त नहीं है कि बीमार न होना। यह तो नकारात्मक हुई। हां, स्वस्थ आदमी बीमार नहीं होता, यह बात जरूर सच है। लेकिन स्वास्थ्य कुछ और भी है। बीमारी न होने से ज्यादा कुछ है, कुछ विधायक है। जब तुम स्वस्थ रहे हो, क्या तुमने अनुभव नहीं किया, क्या तुम इतना ही जानते हो कि न टी. बी., न कैंसर, न और रोग? क्या जब तुम स्वस्थ होते हो, तब तुमको इनकी याद आती है कि देखो, कितना मजा आ रहा है, न टी. बी. है, न कैंसर है? ऐसा होता है? जब तुम स्वस्थ होते हो, न तो टी. बी. की याद आती है, न कैंसर की, न नकार की।

स्वास्थ्य का अपना ही रस है। स्वास्थ्य का अपना ही अहोभाव है। स्वास्थ्य की अपनी ही प्रफुल्लता है। स्वास्थ्य का झरना फूटता है। यह कोई बीमारी की बात नहीं है।

ऐसा समझो कि एक झरना है, उसके मार्ग पे पत्थर रखे हैं। तो हम कहते हैं, पत्थर हटा लो, तो झरना फूट जाये। लेकिन पत्थर का हटा लेना ही झरना नहीं है। क्योंकि कई जगह और जगह भी पत्थर पड़े हैं, वहां हटा लेना, तो झरना नहीं फूटेगा; तुम बैठे रहना कि पत्थर तो हटा लिये, बस झरना हो गया। पत्थर का हटाना झरने के लिए जरूरी हो सकता है, लेकिन पत्थर के हटने में ही झरना नहीं है। झरना तो कुछ विधायक बात है। हो तो पत्थर के हटने पर प्रगट हो जायेगा; न हो तो तुम पत्थर हटाए बैठे रहना जैसे जैन मुनि बैठे हुए हैं। यह नहीं करते, वह नहीं करते—सब नहीं करने पर है। चोरी नहीं करते, लेकिन अचोर नहीं हैं। लोभ नहीं करते, लेकिन अलोभी नहीं हैं। हिंसा नहीं करते, लेकिन अहिंसक नहीं हैं। क्योंकि विधायक चूक रहा है।

> जिंदगी जिगारे आईना है, आईना है इश्क।
> संग है मामूरए-कौनैन और शीशा है इश्क।
> इल्म बरबत है, अमल मिजराब है, नग्मा है इश्क।
> जर्रा-जर्रा कारवां है, इश्क खिज्रे-कारवां।

प्रेम स्वच्छ दर्पण है। और प्रेम के सिवाय जीवन में जो कुछ है, वह दर्पण पे मैल है, धूल है। सांसारिक वस्तुएं तो पत्थर हैं। प्रेम प्रकाश है। ज्ञान वाद्य है। आचरण मिजराब है। प्रेम संगीत है। जीवन का कण-कण यात्री है। प्रेम यात्री-दल का पथ-प्रदर्शक है।

महावीर ने जिसे अहिंसा कहा है, वह सूफियों का इश्क है। इस बात को अब दोहरा देने की जरूरत पड़ी है। क्योंकि जैसी मुश्किल महावीर को मालूम पड़ी थी प्रेम के साथ, वैसी ही मुश्किल मुझे मालूम पड़ती है अहिंसा के साथ। महावीर प्रेम

शब्द का उपयोग न कर सके, क्योंकि गलत धारणा लोगों के मन में प्रेम की थी। आज मुझे अहिंसा शब्द का उपयोग करने में अड़चन होती है, क्योंकि बड़ी गलत धारणा लोगों के मन में है।

हमारे सभी शब्द हमारे कारण खराब हो जाते हैं, गंदे हो जाते हैं; क्योंकि हमारे शब्दों में भी हमारी प्रतिध्वनि होती है। जब कामी प्रेम की बात करता है तो उसका प्रेम भी काम से भर जाता है। जब निषेधात्मक वृत्तियों का व्यक्ति अहिंसा की बात करता है तो उसकी अहिंसा निषेधात्मक हो जाती है। अहिंसा यानी प्रेम, परम प्रेम।

है अब जिंदगी सायए इश्क में
जरा मौत दामन बचा कर चले
वह शोलों से अक्सर रहे हमकिनार
जो फूलों से दामन बचा कर चले।

–जिंदगी अब प्रेम के साथ है, प्रेम की छाया में है।

है अब जिंदगी सायए इश्क में
जरा मौत दामन बचा कर चले।

– अब जरा मौत होशियारी से चले, क्योंकि जो प्रेम के साये में आ गया उसकी कोई मौत नहीं। वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है।

और प्रेम फूल जैसा है। मौत अंगार जैसी है। लेकिन इस जीवन की, अस्तित्व की यही महत्त्वपूर्ण राज-भरी बात है कि अंततः फूल जीतते हैं, अंगार हार जाते हैं। अततः कोमल जीतता है, कठोर हार जाता है। गिरता है पहाड़ से जल, कोमल जल, क्षीणदेह जलधार, बड़ी-बड़ी चट्टानें मार्ग में पड़ी होती हैं – कौन सोचेगा कि ये चट्टानें कभी कट जायेंगी! लेकिन एक दिन धीरे-धीरे-धीरे-धीरे चट्टानें कटती जाती हैं और रेत होती जाती हैं। धार बड़ी कोमल है। चट्टानें बड़ी कठोर हैं। लेकिन कोमल सदा जीत जाता है। अंतिम विजय कोमल की है।

वह शोलों से अक्सर रहे हमकिनार
जो फूलों से दामन बचा कर चले।

– और जिन्होंने अपने को फूलों से बचाया, कोमलता से बचाया, उनकी जिंदगी में अंगारे ही अंगारे रहे, जलन ही जलन रही।

तुम फूल को कमजोर मत समझना। तुम फूल को महाशक्तिशाली समझना। पत्थर कमजोर हैं; यद्यपि दिखाई यही पड़ता है कि पत्थर बड़े मजबूत, बड़े शक्तिशाली हैं। लेकिन पत्थर मुर्दा हैं, शक्तिशाली हो कैसे सकते हैं? फूल जीवंत है। उसके खिलने में जीवन है। उसकी सुगंध में जीवन है। उसकी कोमलता में जीवन है।

अक्सर हम हिंसा के लिए राजी हो जाते हैं, क्योंकि हिंसा लगती है ज्यादा मजबूत, शक्तिशाली! अहिंसा, प्रेम लगता है कमजोर। हम जल्दी भरोसा कर लेते

हैं हिंसा पर; अहिंसा पर भरोसा नहीं कर पाते, क्योंकि फूलों पे हमारा भरोसा उठ गया है। कोमल की शक्ति को हम भूल ही गये हैं। विनम्र की शक्ति को हम भूल गए हैं। प्रेम बलवान है, यह हमें याद भी न रहा है। हम तो सोचते हैं, क्रोध बलवान है। बस यही धार्मिक और अधार्मिक आदमी का अंतर है।

अगर तुम मुझ से पूछो तो धार्मिक आदमी वह है जो यह जान गया कि कोमल अंततः जीतता है; जिसका भरोसा फूल पे आ गया और पत्थर से जिसकी श्रद्धा उठ गई। और अधार्मिक आदमी वह है, जो भला फूल की प्रशंसा करता हो, लेकिन जब समय आता है तो पत्थर पे भरोसा करता है।

महावीर की अहिंसा अनुयायियों के हाथ में पड़ के विकृत हो गयी, निषेध हो गयी है। वह बड़ा विधायक जीवन-स्रोत था। लेकिन हमारी अड़चन है। जो भी हम सुनते हैं, उसका हम अर्थ अपने हिसाब से लगाते हैं। अगर कोई मर गया – किसी का प्रेमी मर गया, किसी की प्रेयसी मर गई – तो हम अपने हिसाब से अर्थ लगाते हैं। जिसकी प्रेयसी मर गई है या प्रेमी मर गया है, उसे अगर हम रोता नहीं देखते, आख में आंसू नहीं देखते, तो हम सोचते हैं, 'अरे! तो कुछ दर्द नहीं हुआ, दुख नहीं हुआ? रोई भी नहीं? तो कोई लगाव न रहा होगा। तो कोई चाहत न रही होगी। तो कोई प्रेम न रहा होगा।'

लेकिन तुम्हें पता है, अगर सच में ही गहरी पीड़ा हो तो आंसू आते नहीं! आंसू भी रुक जाते हैं। और आंसू बहुत गहरी पीड़ा के सबूत नहीं हैं – पीडा के सबूत हैं; बहुत गहरी पीडा के सबूत नहीं है। अब बड़ी कठिनाई है। आंसू तब भी नहीं आते, जब पीडा नहीं होती; और आंसू तब भी नहीं आते जब महान पीडा होती है। तो भूल-चूक की संभावना है। कभी यह भी हो सकता है कि रूखी आंखों को देख के तुम सोचो कि कोई पीड़ा नहीं हुई; और कभी यह भी हो सकता है, क्योंकि मैं कहता हूं रूखी आंखो में बड़ी गहरी पीड़ा है कि आंसू भी नहीं बह रहे, तो फिर उसको भी तुम समझ लो की बड़ी गहरी पीड़ा हो रही है जिसको कोई पीड़ा नहीं हुई। जिंदगी में शब्द सीमित हो जाते हैं। अस्तित्व में शब्दों की कोई सीमा नहीं है। वहां तो हमें प्रत्येक घटना को उसके निजी व्यक्तित्व में देखना चाहिए। हमें कोई पुरानी परिभाषा से नहीं चलना चाहिए।

शक न कर मेरी खुश्क आंखों पर
यूं भी आंसू बहाए जाते हैं।
– यह भी एक ढंग है।

तो तुम जल्दी से निर्णय मत लेना। महावीर ने प्रेम की ही बात कही, लेकिन प्रेम शब्द का उपयोग नहीं किया। प्रेम शब्द का उपयोग न करने के कारण अतीत की भूल तो बचा ली, लेकिन भविष्य की भूल हो गयी। तो पीछे जो आये, उन्होंने अहिंसा को सिर्फ निषेध बना लिया। शब्द में निषेध है। सारे शब्द निषेधात्मक हैं।

अचौर्य, अपरिग्रह, अहिंसा, अकाम, अप्रमाद – सारे शब्द निषेधात्मक हैं। तो ऐसा लगा उनको कि महावीर कहते हैं : नहीं, नहीं, नहीं। हां की कोई जगह नहीं है। इसी कारण हिंदुओं ने तो महावीर को नास्तिक ही कह दिया; क्योंकि परमात्मा नहीं और फिर सारा शास्त्र 'नहीं' से भरा है। नहीं, लेकिन उस 'नहीं' के भीतर बड़ी गहरी 'हां' छिपी है। 'नहीं' का उपयोग करना पड़ा, क्योंकि लोगों ने 'हां' वाले शब्दों का दुरुपयोग कर लिया था।

लेकिन भूल फिर हो गयी। महावीर का कोई कसूर नहीं है। शब्द का उपयोग करना ही पड़ेगा। और आदमी कुछ ऐसा है, तुम जो भी शब्द उसे दो वह उसका ही दुरुपयोग कर लेगा। क्योंकि सुनते तुम वही हो जो तुम सुन सकते हो। तो महावीर के पीछे निषेधात्मक लोगों की कतार लग गई। इसलिए तो महावीर का धर्म फैल नहीं सका। कहीं निषेध के आधार पे कोई चीज फैलती है? महावीर का धर्म सिकुड़ के रह गया। 'नहीं-नहीं' पर कोई जिंदगी बनती है? 'नहीं-नहीं' से कोई जिंदगी के गीत बनते हैं? तो सिकुड़ गया। लेकिन कुछ रुग्ण लोग, जो नकारात्मक थे, उनके पीछे इकट्ठे हो गये। उनकी कतार लगी है। उनका सारा हिसाब इतना है कि बस 'नहीं' कहते जाओ। जो भी चीज हो उसे इनकार करते जाओ। इनकार कर-कर के वे कटते जाते हैं, मरते जाते हैं। तो उनकी प्रक्रिया करीब-करीब आत्मघात जैसी हो गयी। इसलिए जैन मुनियों के पास जीवन का उत्सव न मिलेगा, जीवन का अहोभाव न मिलेगा। इसलिए जैन मुनियों के पास तुम्हें जीवन की सुरभि न मिलेगी। तुम्हें जैन मुनियों के पास कोई गीत और नृत्य न मिलेगा।<

यह भी क्या धर्म हुआ, जिससे नृत्य पैदा न हो सके! यह भी क्या धर्म हुआ जिससे गीत का जन्म न हो सके, जिसमें फूल न खिलें! यह सिकुड़ा हुआ धर्म हुआ। यह बीमारों को उत्सुक करेगा। निषेधात्मक और नकारात्मक लोगों को बुला लेगा। यह एक तरह का अस्पताल होगा, मंदिर नहीं।

इसलिए मैं तुमसे कह देना चाहता हूं कि महावीर की अहिंसा का ठीक-ठीक अर्थ प्रेम है। सूफी जिसे इश्क कहते है, उसी को महावीर अहिंसा कहते हैं। जीसस ने कहा है, प्रेम परमात्मा है। उसी को महावीर ने कहा है:

'तुग न मंदराओ, आगासाओ विसालयं नत्थि।
जह तह जयंमि जाणसु, धम्महिंसासमं नत्थि।।'

– 'जैसे जगत में मेरु पर्वत से ऊंचा कोई और पर्वत नहीं, और आकाश से विशाल कोई और आकाश नहीं, वैसे ही अहिंसा के समान कोई धर्म नहीं है।

आज इतना ही।

<

दिनांक २४ मई, १९७६; श्री रजनीश आश्रम, पूना

प्रश्न-सार

परंपरा-भंजक महावीर ने स्वयं को चौबीसवां तीर्थंकर क्यों स्वीकार किया?

महावीर का स्वयं सद्‌गुरु, तीर्थंकर बनना व शिष्यों को दीक्षा देना—क्या उनके ही सिद्धान्त के विपरीत नहीं है?

वर्तमान शताब्दि में आप हमें कौन-सा शब्द देना पसंद करेंगे?

आपके सामने दिल खोलूं कि नहीं खोलूं—मुझे घबड़ाहट होती है। और क्या मैं कुछ भी नहीं कर पाती? मेरी हिम्मत अब टूटी जा रही है।

प्रेम से मुझे प्रेम है

पहला प्रश्न : परंपरा-भंजक महावीर ने स्वयं को प्राचीनतम जिन-परंपरा का चौबीसवां तीर्थंकर क्योंकर स्वीकार किया होगा ? कृपया समझाएं !

परंपरा की तो परंपरा है ही, परंपरा-भंजन की भी परंपरा है। परंपरा तो प्राचीन है ही, क्रांति भी कुछ नवीन नहीं। क्रांति उतनी ही प्राचीन है जितनी परंपरा।

इस पृथ्वी पर सब कुछ इतनी बार हो चुका है कि नया हो कैसे सकेगा ? जिसको तुम नया कहते हो, वह भी बड़ा पुराना है; जिसे पुराना कहते हो, वह तो है ही। जब से परंपरावादी रहा है, तभी से क्रांतिवादी भी रहा है। जब से रूढ़ीवादी रहा है, तभी से रूढ़ी को तोड़ने वाला भी रहा है। जब प्रतिमाएं बनाने वाले लोग पैदा हुए, तभी से प्रतिमा ओं को तोड़ने वाले लोग भी पैदा हो गये। वे साथ-साथ हैं। वे अलग-अलग हो भी न सकेंगे। वे दिन और रात की तरह साथ-साथ हैं।

क्रांति और परंपरा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। न परंपरा जी सकती है बिना क्रांति के, न क्रांति जी सकती है बिना परंपरा के। जिस दिन परंपरा मर जायेगी, उस दिन क्रांति भी मर जायेगी।

इसे थोड़ा समझना; क्योंकि साधारणत: हम जीवन में जहां भी विरोध देखते हैं—सोचते हैं, दोनों दुश्मन हैं। ऐसा देखना अधूरा है। जहां-जहां विरोध है, वहां गौर से खोजोगे तो गहराई में पाओगे, दोनों परिपूरक हैं। विरोध भी एक भांति की मैत्री है और शत्रुता भी एक ढंग का प्रेम है। पुरुष हैं, स्त्रियां हैं उनमें प्रेम भी है, विरोध भी है। विरोध के कारण ही प्रेम है। क्योंकि विरोध से भिन्नता पैदा होती है। विरोध से दूसरे को खोजने की आकांक्षा पैदा होती है। स्त्री-पुरुष लड़ते रहते हैं और प्रेम करते रहते हैं। लड़ाई और प्रेम कुछ इतने विपरीत नहीं हैं।

जिस पति-पत्नी में लड़ाई बंद हो चुकी हो, समझना कि प्रेम भी मर चुका। जब तक प्रेम की निखार रहेगी, तब तक थोड़ा-बहुत झगड़ा, थोड़ी-बहुत कलह

भी रहेगी। लड़ने से प्रेम नहीं मरता है। लड़ना प्रेम का ही अनिवार्य हिस्सा है।

जैनों की परंपरा उतनी ही प्राचीन है जितनी हिन्दुओं की। जैनों के पहले तीर्थंकर ऋषभ का नाम वेदों में उपलब्ध है – बड़े सम्मान से उपलब्ध है। उस जमाने के लोग बड़े हिम्मतवर रहे होंगे।। अपने विरोधी को भी सम्मान से याद किया है।

जिस दिन दुनिया समझदार होती है, उस दिन ऐसा ही होगा। तुम अपने विरोधी को भी सम्मान से याद करोगे, क्योंकि विरोधी के बिना तुम भी नहीं हो सकते हो। विरोधी तुम्हें परिभाषित करता है। उसकी मौजूदगी तुम्हें त्वरा देती है, तीव्रता देती है, गति देती है। उसका विरोध तुम्हें चुनौती देता है। उसके विरोध के ही आधार पर तुम अपने को निखारते हो, सम्हालते हो, मजबूत करते हो।

अडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है : जिस राष्ट्र को शक्तिशाली रहना हो, उसे शक्तिशाली दुश्मन खोज लेने चाहिए। अगर दुश्मन कमजोर होगा, तुम कमजोर हो जाओगे। जिससे लड़ोगे, वैसे ही हो जाओगे। अगर दुश्मन शक्तिशाली होगा तो उससे लड़ने में तुम शक्तिशाली होने लगोगे। मित्र तो कैसे भी चुन लेना, लेकिन शत्रु जर सोच-समझ के चुनना। क्योंकि-अंततः उतना निर्णायक नही है जितना शत्रु निर्णायक है। वह तुम्हें परिभाषा देता है। वह तुम्हें जीवन की व्याख्या देता है। वह तुम्हे चुनौती देता है। वह तुम्हें बुलावा देता है, प्रतिस्पर्धा का अवसर देता है।

तो ऋग्वेद में ऋषभ को बड़े सम्मान में याद किया है। ऋषभ जैनो के पहले तीर्थंकर हैं।

जैनो का विरोध, जैनों की क्रांति उतनी ही पुरानी है, जितनी हिन्दुओं की परंपरा। जैन वेद-विरोधी है। लेकिन वेद ने बड़ा सम्मान दिया है। जैन मूर्ति-विरोधी है, यज्ञ-विरोधी है, परमात्मा को भी स्वीकार नहीं करते, भक्ति का कोई उपाय नही मानते–मूलतः व्यक्तिवादी हैं, अराजक है। समूह में उनका भरोसा नहीं है, व्यक्ति में भरोसा है। और एक-एक व्यक्ति अलग और अनूठा है। और एक-एक व्यक्ति को अपना ही मार्ग खोजना है। कृष्णमूर्ति जो कह रहे हैं, वह जैनों की प्राचीनतम परपरा है, वह कुछ नई बात नहीं है। यद्यपि जैन भी उनसे राजी न होंगे, क्योंकि अब तो जैन भी भूल गए हैं कि उनके प्राणों में कभी क्रांति का तत्त्व था; वह आग बुझ गई है, राख रह गई है। अब तो वे भी परंपरावादी हैं।

लेकिन जैनों को समझना हो तो उनकी क्रांति के रूप को समझना जरूरी होगा। इससे बड़ी क्या क्रांति हो सकती है कि परमात्मा नहीं है, प्रार्थना नहीं है, पूजा, पूजागृह, सब व्यर्थ है! तुम किसी की अनुकंपा के आसरे मत बैठे रहना; तुम्हें स्वयं ही उठना है। तुम्हें कोई ले जा न सकेगा! महावीर यह भी नही कहते

कि मैं तुम्हें कहीं ले जा सकता हूं; ज्यादा से ज्यादा इशारा करता हूं, जाना तुम्हीं को पड़ेगा-- अपने ही पैरों से।

महावीर तो आदेश भी नहीं देते कि जाओ। वे कहते है, आदेश में भी हिंसा हो जायेगी। मैं कौन हूं जो तुमसे कहूं कि उठो और जाओ? मैं उपदेश दे सकता हूं, आदेश नहीं।

इसलिए तीर्थंकर उपदेश देते हैं, आदेश नही। उपदेश का मतलब है: मात्र सलाह। मानो न मानो, तुम्हारी मर्जी। न मानो तो तुम कोई पाप कर रहे हो, ऐसी घोषणा न की जायेगी। मान लो, तो तुमने कोई महापुण्य किया, ऐसा भी कुछ सवाल नहीं है। मान लिया तो समझदारी, न मानो तो तुम्हारी नासमझी। लेकिन इसमें कुछ पाप-पुण्य नहीं है।

तीर्थंकर आदेश भी नही देते। वे कहते हैं कि आदेश देने का अर्थ हुआ कि तुम दूसरे के मालिक हो गए। तुमने कहा, ऐसा करो; अब अगर न करेगा दूसरा व्यक्ति तो उसके मन में अपराध का भाव पैदा होगा, उसकी जुम्मेवारी तुम्हारी हो गई। अगर करेगा तो गुलामी अनुभव करेगा; तुम्हारी आज्ञा से चला। जैन कहते हैं, अगर आज्ञा मान कर किसी को तुम स्वर्ग भी पहुंच गए तो वह स्वर्ग भी नर्क ही सिद्ध होगा, क्योंकि दूसरे के द्वारा जबरदस्ती पहुंचाए गए।

सुख में कभी कोई जबरदस्ती पहुंचाया जा सकता है? सुख तो स्वेच्छा से निर्मित होता है। अगर नर्क भी तुम स्वयं चुनोगे तो सुख मिलेगा; और स्वर्ग भी अगर धक्का दे के पहुंचा दिया, पीछे कोई बंदूक ले के पड़ गया और दौड़ा के तुम्हें स्वर्ग में पहुचा दिया, तो वहां भी तुम्हे सुख न मिलेगा।

निज की स्वतन्त्रता में स्वर्ग है। परतंत्रता में नर्क है।

इसलिए महावीर तो आदेश भी नही देते। क्रांति उनकी बड़ी प्रगाढ़ है। और वे कहते हैं, तुम स्वयं जुम्मेवार हो, कोई और नहीं। बड़ा बोझ रख देते हैं व्यक्ति के ऊपर। बड़ा भारी बोझ है! राहत का कोई उपाय नहीं। महावीर के पास कोई सांत्वना नहीं है। वे सीधा-सीधा तुम्हारा निदान कर देते हैं कि यह तुम्हारी बीमारी है; अब तुम्हें सांत्वना खोजनी हो तो कहीं और जाओ।

तो महावीर उस मूर्ति-भंजक परंपरा के अंग हैं जो उतनी ही प्राचीन है जितनी परंपरा। इसलिए स्वभावतः उस परंपरा-विरोधी परंपरा ने उन्हें अपना चौबीसवां तीर्थंकर घोषित किया। वस्तुतः उनके पहले के तेईस तीर्थंकरों में कोई भी उनकी महिमा का व्यक्ति नहीं था। वे बड़े महिमाशाली व्यक्ति थे, लेकिन महावीर की प्रगाढ़ता बड़ी गहरी है। इसलिए धीरे-धीरे ऐसी हालत हो गई कि तेईस तीर्थंकरों को तो लोग भूल ही गए। पश्चिम से जब पहली दफे लोग जैन-धर्म का अध्ययन करने पूरब आये तो उन्होंने यही समझा कि ये महावीर ही इस धर्म के जन्मदाता हैं। तो पुरानी सभी अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच की किताबों में महावीर को जैन-धर्म का

स्थापक कहा गया है। वे स्थापक नहीं है। वे तो अंतिम हैं, प्रथम तो हैं ही नहीं। लेकिन बाकी तेईस खो गए। महावीर की प्रतिभा ऐसी थी, ऐसी जाज्वल्यमान थी कि ऐसा लगने लगा, उन्हीं से जन्म हुआ है इस धर्म का। तेईस तो करीब-करीब पुराण-कथा हो गए; उनका कोई उल्लेख भी नहीं रहा। वे तो धूमिल कथा-कहानी के हिस्से हो गए, पुराण हो गए, इतिहास न रहे। ऐसा कभी-कभी होता है, जब बहुत प्रतिभाशाली व्यक्ति पैदा होता है तो वह चाहे बीच में पैदा हो, चाहे पहले हो, चाहे अंत में, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता—सभी चीजें उसके आसपास वर्तुलाकार चक्कर काटने लगती हैं।

आज तुम जिस जैन-धर्म को जानते हो, पक्का नहीं है कि ऋषभ का वही रहा हो, पार्श्वनाथ का वही रहा हो, नेमीनाथ का वही रहा हो, जरूरी नहीं है। आज तो तुम जिस जैन-धर्म को जानते हो, उसकी सारी रूप-रेखा महावीर ने दी है। वह रूप-रेखा इतनी गहन हो गई कि अब तुम उसी बात को ऋषभ में भी पढ लोगे, क्योंकि महावीर को तुमने समझ लिया है।

समझो कि जो मैं तुमसे कह रहा हूं महावीर के सम्बन्ध में, जरूरी नहीं है कि महावीर उससे राजी हो। लेकिन अगर तुमने मुझे ठीक से समझा, तो फिर मैं तुम्हारा पीछा न छोड़ सकूंगा, फिर तुम जब भी महावीर को पढ़ोगे, तुम मुझे ही पढोगे। जो मै कह रहा हूं, वह तुम्हे सुनाई पडने लगेगा। अर्थ तुम्हारे भीतर प्रविष्ट हो जाये, तो बाहर के शब्दों में वही अर्थ दिखाई पड़ने लगता है।

महावीर इस क्रांतिकारी परपरा में सबसे ज्यादा महिमावान, सबसे बड़े मेधावी व्यक्ति हुए। इसलिए उनके शब्द समझने जैसे हैं, विचार करने जैसे हैं। क्रांतिकारी तो अनूठे रहे होंगे, क्योकि जैनों के दो संप्रदाय हैं — दिगम्बर और श्वेतांम्बर। दिगम्बर तो मानते हैं, महावीर का कोई भी वचन बचा नही, कोई शास्त्र बचा नहीं। यह भी क्रांति का हिस्सा है। वे कहते हैं, कोई शास्त्र महावीर का वचन नहीं। ये जो वचन हैं, यह श्वेतांबरों के संग्रह मे लिये गये है। दिगम्बरो के पास कोई संग्रह नहीं है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि दिगम्बरो ने बचाया क्यो नही! यह भी उसी गहरी क्रांति का हिस्सा है। क्योकि अगर बचाओ शब्दों को, तो आज नहीं कल वे शास्त्र बन जाएंगे। बचाओ तो शास्त्र आज नही कल वेद बन जाएंगे। इसलिए दिगम्बरो ने तो महावीर के वचन बचाए ही नहीं। यह शास्त्र के प्रति बगावत की बड़ी अनूठी कहानी है। मानते हैं महावीर को, लेकिन कुछ शास्त्र नहीं बचाया है। व्यक्तिगत, गुरु से शिष्य को कह कर जो बातें आयी हैं, बस वही; उनको लिखा नही है।

और इसलिए कोई भी शास्त्र महावीर के सम्बन्ध में दिगम्बरों के हिसाब से प्रामाणिक नही है। न शास्त्र बचाया कि कहीं उसके साथ परिग्रह न हो जाए, न इस तरह के कोई आश्वासन दिये कि महावीर को पूजोगे तो मोक्ष मिल जायेगा। स्वयं को

जगाओगे तो मोक्ष मिलेगा, महावीर की पूजा से नहीं। स्वयं को जगाओगे तो मोक्ष मिलेगा, महावीर की अनुकंपा से नहीं। कोई गुरुप्रसाद की जगह जैनों के पास नहीं है। क्योंकि वे कहते हैं, सत्य अगर किसी के प्रसाद से मिल जाये तो सस्ता हो गया। फिर तो सत्य भी वस्तु की तरह हो गया; किसी ने दे दिया; उधार हो गया। अपने जीवन को गलाओ। अपने जीवन को गला-गला के ही सत्य ढाला जायेगा। यह सत्य कहीं बाहर नहीं है कि कोई दे दे।

इसलिए यह समझ लेना जरूरी है कि महावीर को जब स्वीकार किया गया चौबीसवें तीर्थंकर की तरह, तो इसीलिए स्वीकार किया गया कि उनसे ज्यादा बगावती आदमी उस समय में कोई भी न था। और भी लोग थे। और भी दावेदार थे। क्योंकि क्रांति किसी की बपौती थोड़ी है। जब महावीर जिंदा थे तो बड़े तूफान के दिन थे भारत में; बड़ी बौद्धिक जागृति का काल था; बड़े शिखर पर लोग, आकाश में परिभ्रमण कर रहे थे। जैसे आज अगर विज्ञान समझना हो तो कहीं पश्चिम में शरण लेनी पड़ेगी; उस दिन अगर धर्म का कोई भी रूप समझना था, तो भारत में शरण लेनी पड़ती। भारत के पास सभी धर्म की परंपराओं के बुद्ध जाग्रत पुरुष थे। और उन सभी के शिष्यों की आकांक्षा थी कि वे चौबीसवें तीर्थंकर की तरह घोषित हो जायें। प्रबुद्ध कात्यायन था, मक्खली गोशाल था, संजय विलेट्ठीपुत्त था, और भी लोग थे। अजित केशकंबली था। ये सभी बड़े महिमाशाली पुरुष थे। लेकिन इन सबके बीच से वह जो सर्वाधिक क्रांतिकारी था, महावीर, वह श्रमणों की परंपरा में चौबीसवां तीर्थंकर बना। बुद्ध भी थे।

बुद्ध की तो अलग ही परंपरा बन गई; अलग ही धर्म का जन्म हुआ। लेकिन यह सोचने जैसा है कि बुद्ध की मौजूदगी में भी क्रांतिकारियों की धारा ने महावीर को चुना था। महावीर की क्रांति बुद्ध से ज्यादा गहरी है। बहुत जगह बुद्ध थोड़ा समझौता करते मालूम पड़ते हैं; ज्यादा व्यवहारिक हैं। महावीर बिलकुल अव्यवहारिक हैं। क्रांतिकारी सदा अव्यवहारिक रहा है। उसके पैर जमीन पे नहीं होते, आकाश में होते हैं। वह आकाश में उड़ता है।

कुछ उदाहरण के लिए समझना जरूरी है। बुद्ध के पास स्त्रियां आयीं, दीक्षा के लिए, तो बुद्ध ने इनकार कर दिया। यह समझौता था। यह थोड़ा भय था। यह इस बात का भय था कि ऐसा तो कभी नहीं हुआ कि स्त्री और पुरुष साथ-साथ संन्यासी हों और साथ-साथ रहें। बुद्ध को भय लगा, इससे तो कहीं ऐसा न हो जाये कि धर्म नष्ट हो जाये! कहीं स्त्री-पुरुषों का साथ रहना कामवासना के ज्वार के पैदा होने का कारण न बन जाये! कहीं स्त्रियां पुरुषों को भ्रष्ट न कर दें। तो वह जो स्त्रियों के प्रति पुरुषों का पुराना भय है, कहीं-न-कहीं बुद्ध के मन में उसकी छाया थी। उन्होंने इनकार किया। वे वर्षों तक इनकार करते रहे कि स्त्री को मैं संन्यास न दूंगा; क्योंकि स्त्री को संन्यास देने से खतरा है।

महावीर के सामने भी सवाल उठा। वे तत्क्षण संन्यास दे दिये। उन्होंने एक बार भी यह सवाल न उठाया कि स्त्री को संन्यास देने से कोई खतरा तो न होगा! क्रांतिकारी खतरे को मानता ही नहीं; बल्कि जहां खतरा हो वहां आन के जाता है। उन्होंने यह खतरा स्वीकार कर लिया। उन्होंने कहा, जो होगा ठीक है। फिर बुद्ध ने मजबूरी में, बहुत दबाव डाले जाने पर, वर्षों के बाद जब स्त्रियों को दीक्षा भी दी तो उन्होंने तत्क्षण कहा कि अब मेरा धर्म पांच सौ वर्ष से ज्यादा न जियेगा; यह मैंने अपने हाथ से ही बीज बो दिया अपने धर्म के नष्ट होने का। और बुद्ध का धर्म पांच सौ वर्ष के बीच नष्ट भी हो गया भारत से। और कारण वही सिद्ध हुआ जो बुद्ध ने माना था; जो भय था वह सही साबित हुआ। क्योंकि जब स्त्री-पुरुष पास-पास रहे तो विराग तो दूर हो गया, वैराग्य तो दूर हो गया, राग-रंग शुरू हुआ। राग-रंग ने नये रास्ते खोज लिये, नयी तर्क की व्यवस्थाएं खोज लीं। तंत्र का जन्म हुआ। बुद्ध-धर्म समाप्त हो गया।

लेकिन महावीर का धर्म अब भी जीता है, अब भी जीता-जागता है। स्त्रियों को समाविष्ट कर लिया, धर्म नष्ट न हुआ। बड़ा क्रांतिकारी भाव रहा होगा। महावीर नग्न खड़े हो गए। कोई जैनों में भी परंपरा न थी नग्न होने की। आज तो तुम जा के देखोगे, दिगंबर जैन मंदिरों में तो चौबीस ही जैनों की प्रतिमाएं नग्न हैं। वह महावीर ने परिभाषा दे दी। वे तेईस नग्न थे नहीं, महावीर ही नग्न हुए थे। बाकी तेईस तो वस्त्रधारी ही थे। इसलिए अगर श्वेतांबरों और दिगंबरों के विवाद में निर्णय करना हो तो बहुमत श्वेतांबरों के पक्ष में होगा, क्योंकि चौबीस तीर्थंकरों में तेईस वस्त्रधारी थे, और एक ही निर्वस्त्र था। तो अगर निर्णय ही करना हो तो तेईस की तरफ ध्यान करके करना चाहिए, सीधा लोकतांत्रिक हिसाब है। लेकिन महावीर का प्रभाव इतना महिमाशाली हुआ कि जिनके वस्त्र थे उनकी प्रतिमाओं से भी वस्त्र उतर गए। क्योंकि फिर ऐसा लगने लगा, अगर महावीर नग्न हैं और पार्श्वनाथ वस्त्र पहने हुए हैं तो पार्श्वनाथ ओछे मालूम पड़ेंगे, छोटे मालूम पड़ेंगे इतना भी त्याग न कर पाये! नग्नता कसौटी हो गई।

ऐसा सदा हुआ है। जो सर्वाधिक महिमाशाली है वह कसौटी बन जाता है। फिर उसके पीछे इतिहास भी बदल जाता है। अतीत भी बदल जाता है; क्योंकि अतीत के संबंध में हमारे दृष्टिकोण बदल जाते हैं। नग्न खड़े हो जाना बड़ा क्रांतिकारी मामला था, क्योंकि नग्नता सिर्फ नग्नता नहीं है। इसका तुम अर्थ समझो।

नग्न होने का अर्थ है: समाज का परिपूर्ण अस्वीकार; समाज की धारणाओं की परिपूर्ण उपेक्षा। तुम अगर चौरस्ते पे नग्न खड़े हो जाओ तो उसका अर्थ यह होता है कि तुम दो कौड़ी कीमत नहीं देते कि लोग क्या सोचते हैं, कि लोग अच्छा सोचते हैं कि बुरा सोचते हैं, कि लोग तुम्हारे संबंध में क्या कहेंगे! हमारे पास शब्द है भाषा में — किसी को गाली देनी हो तो हम कहते हैं 'नंगा-लुच्चा'— वह महावीर

से पैदा हुआ। नग्न वे थे और बाल लोंचते थे, इसलिए लुच्चा। पहली दफा महावीर को ही लोगों ने नंगा-लुच्चा कहा; क्योंकि वे नग्न खड़े होते थे और बाल भी काटते न थे। जब बाल बढ़ जाते थे तो हाथ से उनका लोंच करते थे।

तुमने कभी सोचा न होगा कि आखिर नंगे को लुच्चा क्यों कहते हैं! लुच्चे का क्या संबंध है? फिर तो धीरे-धीरे लुच्चा शब्द अलग भी उपयोग होता है। अब तुम कहते हो, फलां आदमी बड़ा लुच्चा है। लेकिन तुम यह नहीं पूछते कि उसने लोंचा क्या है! महावीर के साथ पैदा हुआ शब्द है— गाली की तरह पैदा हुआ निश्चित ही समाज बहुत नाराज हुआ होगा, बहुत क्रुद्ध हुआ होगा। इस आदमी ने सारे हिसाब तोड़ दिये।

वस्त्र सिर्फ वस्त्र थोड़ी हैं, समाज की सारी धारणा है। वस्त्रों में छिपे हुए समाज का सारा संस्कार, उपचार, शिष्टाचार, सभ्यता, सब है। नग्न को हम असभ्य कहते हैं। आदिवासी हैं, नग्न रहते हैं, उनको हम असभ्य कहते हैं, आदिम कहते हैं। क्यों? क्यो असभ्य? क्योंकि अभी उन्हें इतनी भी समझ नही कि अपने शरीर को ढांके, छिपाएं; जानवरों की तरह हैं; पशुओं की तरह हैं। आदमी और जानवर में जो बड़े-बडे फर्क हैं, उनमें एक फर्क यह भी है कि आदमी कपड़े पहनता है। आदमी अकेला पशु है जो कपड़े पहनता है। बाकी सभी पशु नग्न हैं।

तो महावीर जब नग्न हुए, उन्होंने कहा कि संस्कृति नहीं, प्रकृति को चुनता हूं; सभ्यता को नही, आदिम स्वभाव को चुनता हूं। और जो भी दांव पे लगती हो इज्जत, पद-प्रतिष्ठा, वह सब दांव पे लगा देता हूं। आज से पच्चीस सौ साल पहले वैसी हिम्मत बड़ी कठिन थी; आज भी कठिन है। आज भी नग्न खडे होने पर अड़चनें खड़ी हो जायेंगी, तत्क्षण पुलिस ले जायेगी, अदालत में मुकदमा चलेगा।

दिगम्बर जैन मुनि को किसी गांव से गुजरना हो तो पुलिस को खबर करनी पड़ती है। और जब दिगम्बर जैन मुनि, नग्न मुनि गुजरता है, तो उसके शिष्यों को उसके चारो तरफ घेरा बना के चलना पड़ता है ताकि उसकी नग्नता कुछ तो ढंकी रहे।

दिगम्बर जैन मुनि खोते चले गए हैं, एक दर्जन से ज्यादा नहीं हैं अब। क्योंकि बड़ा कठिन मामला है। वह नग्नता ही उपद्रव है। फिर सारे समाज की व्यवस्था को जड़-मूल से इनकार करना, तो समाज भी प्रतिरोध करता है, बदला लेता है, नाराज हो जाता है।

तो प्रथम तीर्थंकर का उल्लेख तो ऋग्वेद में है; लेकिन महावीर का उल्लेख किसी हिंदू-ग्रंथ में नही है। निश्चित ही महावीर अति क्रांतिकारी रहे। इतने क्रांतिकारी रहे कि उनका उल्लेख करने तक की हिम्मत हिंदू-शास्त्रों ने नहीं की है। इस आदमी का नाम लेना भी खतरनाक मालूम हुआ है।

तो क्रांतिकारियों की जो परंपरा है, उस परंपरा ने अगर महावीर को चौबीसवां तीर्थंकर स्वीकार किया, स्वाभाविक था यह।

यह भी समझ लेना जरूरी है कि महावीर के पहले तक जैन-धर्म कोई अलग धर्म न था। वह चिंतकों की एक धारा थी, लेकिन कोई अलग धर्म न था। महावीर के साथ ही चिंतकों की धारा सघन हुई; उसने रूप लिया, संगठन बनी, संघ बनी और हिन्दू परंपरा से अलग हो के चलने लगी। पार्श्वनाथ या ऋषभदेव एक अर्थ में हिन्दू ही थे — वैसे ही जैसे जीसस यहूदी थे। महावीर भी जब जिन्दा थे तो करीब-करीब हिन्दू थे। लेकिन महावीर ने जो प्रखरता से क्रांति को रूप दिया, वह इतना प्रगट हो गया, इतना साफ हो गया कि उसे फिर हिन्दू-धारा में सम्मिलित रखना मुश्किल हो गया। वह अलग ही टूट गई धारा।

यहां तुम सोचो, बुद्ध महावीर के समकालीन थे। बुद्ध को श्रमणों की परंपरा ने अपना चौबीसवां तीर्थंकर स्वीकार नहीं किया; महावीर को किया। हिन्दुओं ने बुद्ध को अपना दसवां अवतार स्वीकार किया; महावीर के नाम का उल्लेख भी नहीं किया। क्या मामला है? बुद्ध अभी भी स्वीकार किये जा सकते थे। थोड़े बगावती थे, लेकिन डोर बिलकुल न तोड़ दी थी; फिर भी बंधे थे। महावीर ने बिलकुल ही डोर तोड़ दी, खूंटी उखाड़ ली; बाहर खड़े हो गए खुले आकाश में।

महावीर सभी तरह से मनुष्य को विशाल करना चाहते हैं।

नजर को वुसअत नसीब होगी
हदों से निकलेगा जब तखैय्युल
हरम भी ऐ शेख! सतहे-बीं, सुन
मकान है, ला-मकां नहीं है।

— तभी विशालता आत्मा को उपलब्ध होती है, जब कल्पना के ऊपर से भी सारी जंजीरें हट जाती हैं। जब तुम्हारा सोच-विचार मुक्त होता है तभी तुम्हारी आत्मा भी विशाल होती है।

नजर को वुसअत नसीब होगी — तभी तुम्हारी दृष्टि विशाल बनेगी, जब उसके ऊपर किसी तरह के बंधन न रह जाएं — न शास्त्र के, न अतीत के, न सद्गुरुओं के।

हरम भी ए शेख! सतहे-बीं, सुन
मकान है, ला मकां नहीं है।

ये मन्दिर, ये मस्जिद, ये पूजा-गृह भी, सुन, ये भी संकीर्ण हैं, मकान हैं, ला-मकां नहीं हैं। और हमें एक ऐसी जगह चाहिए जहां कोई सीमा न हो, ला-मकां; जहां कोई सीमा न रोकती हो। नजर को वुसअत नसीब होगी — और तब तेरी दृष्टि विशाल होगी।

तो महावीर ने अत्यंत विशाल दृष्टि दी है। लेकिन जब अत्यंत विशाल दृष्टि होगी, तो सभी की दृष्टियों के विपरीत पड़ जायेगी। संकीर्ण दृष्टि के साथी मिल जाएंगे; विशाल दृष्टि के साथी नहीं मिलते। अब अगर मैं कृष्ण की ही महिमा गाऊं तो हिन्दू मेरे साथ हो जाएंगे; लेकिन उनकी शर्त है कि फिर महावीर की बात मत

उठाना। अगर मैं महावीर के ही गीत गुनगुनाऊं, तो जैन मेरे साथ हो जाएंगे; लेकिन उनकी शर्त है, अब कृष्ण को बीच में मत लाना। अगर तुम संकीर्ण हो तो तुम्हें किसी-न-किसी का साथ मिल जायेगा, क्योंकि संकीर्ण लोग चारों तरफ मौजूद हैं। मुझसे जैन भी नाराज हो जाता है, क्योंकि मैंने कृष्ण की बात की; मुझसे हिन्दू भी नाराज हो जाता है, क्योंकि मैंने महावीर की बात की; मुझसे बौद्ध नाराज हो जाता है कि क्यों मैंने महावीर की चर्चा की; मुझसे जैन नाराज हो जाता है कि बुद्ध की बात क्यों उठाई!

मुझसे तो साथ-संग वही दे सकता है जिसकी नजर संकीर्ण न हो। और मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि मैं परंपरा के भी पक्ष में हूं और क्रांति के भी पक्ष में हूं। तब और अड़चन हो जाती है। तब परंपरावादी मुझसे नाराज हो जाता है कि क्रांति की तुम बात करते हो; और क्रांतिवादी नाराज हो जायेगा कि तुम परंपरा की बात करते हो। लेकिन मैं असल में चाहता हूं कि तुम्हारी नजर पे कोई भी सीमा न रह जाये; तुम्हारी सब सीमाएं टूट जाएं; तुम विशाल हो जाओ; तुम खुले आकाश के नीचे खड़े हो जाओ; कोई घेरा न रहे! बड़े-से-बड़ा घेरा भी आखिर घेरा है। और आत्मा का तभी जन्म होता है जब तुम्हारी दृष्टि सभी दृष्टियों से मुक्त हो जाती है। उस अवस्था को महावीर ने सम्यक् दृष्टि कहा है — जब कोई दृष्टि नहीं पकड़ती।

इसलिए महावीर ने अपने विचार-दर्शन को अनेकान्त कहा है। अनेकान्त का अर्थ होता है: जिसने कोई एकांतिक दृष्टि नहीं पकड़ी। महावीर ने जिस दर्शन को जन्म दिया, उसका नाम स्यादवाद है। तुम महावीर से कुछ पूछो तो वे सात भंगियों में उत्तर देते है। तुम उनसे पूछो, ईश्वर है, तो वे कहते हैं, है; और तत्क्षण कहते हैं, नहीं है। ओर वे कहते हैं, दोनों ह, और दोनों नहीं हैं। और ऐसा उत्तर देते चले जाते है। सात दृष्टियां हो सकती हैं ईश्वर के बाबत, वे सातों दृष्टियों का एक साथ उपयोग करते हैं। वे तुम्हें कोई जगह नहीं देना चाहते। तुमने पूछा, ईश्वर है; महावीर कहते हैं, है। इसके पहले कि तुम उठो और सोचो कि बस फैसला हो गया, वे कहते हैं रुको, नहीं है। तुम सोचोगे, चलो यह भी ठीक है — नहीं है तो भी बात साफ हो गई। उठने लगे, वे कहते हैं, बैठो, दोनों हैं, है भी और नहीं भी। अब तुम जरा अड़चन में पड़े। लेकिन वे अभी भी नहीं रुकते, वे बढ़ते ही चले जाते हैं। कहते हैं, दोनों हैं। चौथा उनका उत्तर है, दोनों नहीं हैं। और ऐसा सात भंगियों में — सप्त-भंग!

कौन राजी होगा इस आदमी से? क्योंकि तुम चाहते हो, कोई बंधी हुई लकीर मिल जाये। लेकिन महावीर कहते हैं, सभी बंधी लकीरें, सभी संकीर्णताएं उस परम सत्य को प्रगट नहीं कर पातीं। एक अर्थ में वह है और एक अर्थ में नहीं है।

जैसे कोई तुमसे पूछे, शून्य है? क्या कहोगे? एक अर्थ में है; अगर कहो कि नहीं

है तो पूरा गणित गिर जायेगा । एक अर्थ में है । और एक अर्थ में नहीं है, क्योंकि शून्य का मतलब ही होता है कि जो नहीं है । और अगर दोनों बातें एक साथ सच हैं तो फिर तीसरी बात भी ठीक है कि दोनों हैं । लेकिन दोनों बातें एक साथ सच कैसे हो सकती हैं ? कोई चीज या तो होती है या नहीं होती । तो महावीर कहते हैं, दोनों असत्य भी हैं । ऐसा वे बढ़ते चले जाते हैं । और प्रत्येक वक्तव्य के साथ वे स्यात् लगाते हैं, परहैप्स । यह बड़ी अनूठी बात है । वे कहते हैं, स्यात् ।

तुम सुनने आते हो कोई मत । तुम अनिश्चित हो । तुम्हें पता नहीं, क्या है, क्या नहीं है । तुम चाहते हो, कोई आदमी जो टेबिल ठोक के कह दे कि हां, ईश्वर है और इतने जोर से कहे कि तुम घबड़ा जाओ और मान लो । लेकिन महावीर कहते हैं, स्यात्; वे तुम्हें सांत्वना नहीं देते । वे कहते हैं, हो भी सकता है, न भी हो । इसमें कोई झिझक नहीं है ।

अनेकों को ऐसा लगेगा, शायद महावीर को पता नहीं है। कहते हैं 'शायद' ? लेकिन महावीर को पता है, इसलिए कहते हैं स्यात् । क्योंकि जो पता है वह इतना बड़ा है कि उसके संबंध में कोई भी वक्तव्य एकांगी हो जाता है । उसके संबंध में सभी वक्तव्य एक साथ ही सार्थक हो सकते हैं । तब एक वक्तव्य दूसरे वक्तव्य को काटता जाता है । तुम्हारे पास कुछ सिद्धांत नहीं बचता, अखीर में तुम ही बचते हो । तुम्हारी बुद्धि के पास कोई दृष्टिकोण नहीं बचता, केवल देखने की क्षमता बचती है ।

इससे बड़ी क्रांति कभी घटी नहीं । इसलिए क्रांतिकारियों ने अगर महावीर को अपना चौबीसवां तीर्थंकर स्वीकार किया तो कुछ आश्चर्य नहीं है । तुम्हें अड़चन होती है सोचने में कि क्रांति, मूर्ति-भंजन और उसमें भी फिर चौबीसवें तीर्थंकर ! क्योंकि तुमने सोचा है और समझा है अब तक कि क्रांति कोई नई चीज है । क्रांति और परंपरा ऐसे है, जैसे तुम्हारे दो पैर । सभी क्रांतियां अंततः परंपरा बन जाती हैं और सभी परंपराएं प्रारंभ में क्रांतियां थीं । क्रांति परंपरा का पहला कदम है और परंपरा क्रांति की अंतिम दशा है ।

कृष्णमूर्ति कुछ कहते हैं, वचन क्रांतिकारी है – परंपरा बनने लगे । कृष्णमूर्ति-वादी आदमी पैदा हो गया है । कृष्णमूर्ति कहते है, कोई गुरु नहीं । उनका मानने वाला भी कहता है, कोई गुरु नहीं । लेकिन मेरे पास उनके मानने वाले आ जाते हैं । वे कहते हैं, कोई गुरु नहीं । मैंने कहा, तुमने यह सीखा कहां ? वे कहते हैं, उनके चरणों में बैठ के सीखा है । तो वे तुम्हारे गुरु हो गए । तुम यह स्वयं के बोध से दोहरा रहे हो कि कोई गुरु नहीं ? यह भी तुमने सीख लिया है । और जहां सीखना हो गया, वहां गुरु आ गया । कृष्णमूर्तिवादी भी अपने पक्ष की तर्कणा करता है, विचारणा करता है, सिद्ध करने के लिए प्रमाण देता है, वाद-विवाद करता है । बचना मुश्किल है ।

क्रांति ऐसे ही है जैसे जन्म – और जब जन्म हो गया तो मौत भी होगी । अब

तुम लाख उपाय करो बचने के; अगर बचना था तो जन्मना ही नहीं था। वहीं भूल हो गई। अब कुछ किया नहीं जा सकता। मरना तो पड़ेगा ही। आगे खयाल रखना, जन्मना मत। इसलिए जिसको मौत से बचना हो उसे जन्म से बचना चाहिए।

कहते हैं, डायोजनीज को किसी ने पूछा कि दुनिया में सबसे बेहतर बात कौन-सी है। उसने कहा, बेहतर बात तो है पैदा न होना। उस आदमी ने कहा, और अब यह तो हो ही नहीं सकता, हम हो ही गए पैदा — नंबर दो क्या? उसने कहा, नंबर दो — जितनी जल्दी मर सको मर जाना। पैदा न होते, कोई झंझट न होती; मर गए, फिर झंझट मिट गई।

क्रांति जन्म है। मगर जब क्रांति हो गई तो मौत भी होगी। क्रांति परंपरा बनेगी। यही तो तुम देख रहे हो। ये जो सारे धर्म तुम्हें पृथ्वी पे दिखाई पड़ते हैं, क्या तुम सोचते हो, ये पहले ही क्षण से परंपरा थे? पहले क्षण में तो ये क्रांति की तरह उठे थे। फिर सम्हल गए, संगठित हो गए, व्यवस्थित हो गए; अराजकता खो गई, ज्योति खो गई। फिर सब बात बंद हो जाती है। फिर धीरे-धीरे सब समाप्त हो जाता है।

जैन-धर्म अब एक परंपरा है। बुद्ध-धर्म परंपरा है। सिक्ख-धर्म अब एक परंपरा है। नानक के साथ क्रांति था, बड़ी बगावत थी। फिर खो गई बात। फिर धीरे-धीरे राख जम गई। सभी चीजों पे राख जम जायेगी, क्योंकि यह जीवन का नियम है। इसलिए क्रांति को फिर-फिर करते रहना पड़ता है और धर्म को पुनः पुनः जन्म देना पड़ता है। लेकिन कोई भी व्यक्ति धर्म को जन्म देते वक्त यह न सोचे कि उसका धर्म अपवाद होगा। असंभव है। अपवाद कोई भी नहीं हो सकता। जो पैदा हो रहा है, वह मरेगा। फिर नये धर्मों की जरूरत रहेगी।

अब यहा भी थोड़ा सोचने जैसा है। जब धर्म क्रांतिकारी होता है तब अलग तरह के लोगो को आकर्षित करता है — क्रांतिकारियों को, बगावतियों को, विद्रोहियों को। फिर धीरे-धीरे जैसे-जैसे धर्म स्थापित होने लगता है, ऐस्टेब्लिश होने लगता है, फिर वह क्रांतिकारियों को आकर्षित करना तो दूर, अगर वे पैदा हो जायें तो उन्हे निकाल बाहर करता है, क्योंकि वे खतरा करने लगते हैं।

अब यह एक बड़ा विरोधाभास है। अगर जैन-धर्म में फिर महावीर पैदा हो जायें तो जैनी उन्हें निकाल बाहर कर देंगे, बरदाश्त न करेंगे। अगर जीसस फिर पैदा हो जायें ईसाई घर में तो अब की बार फिर सूली लगेगी — अब की बार ईसाई लगाएंगे। पिछली बार यहूदियों ने लगाई थी, क्योंकि उन्होंने यहूदी-घर में पैदा होने की गलती की थी। किसी और ने नही लगाई, यहूदियों ने लगाई थी। और यहूदी बड़े क्रांतिकारी थे अपने प्रथम चरण में। मूसा बड़े क्रांतिकारी हैं। यहूदियों की मुक्ति, इजिप्त से उनका छुटकारा, नए जीवन और जगत की खोज, नए समाज की पूरी-की-पूरी अंतर्रचितना और उसकी नींव मूसा ने भरी। लेकिन उसी घर में, उसी कुल में, उसी परंपरा में आता है जीसस, और जीसस वही करना चाहता है जो

मूसा ने किया था; लेकिन मूसा के मानने वाले बरदाश्त न करेंगे, क्योंकि वह फिर उखाड़ डालेगा।

कहीं भी तुम पैदा हो जाओ, अगर तुमने नये धर्म की चितना की – और धर्म सदा ही नया है, क्रांति उसकी शुरुआत है – तो तुम निकाल बाहर किये जाओगे। हां, तुम्हारे आसपास एक नया धर्म निर्मित हो जायेगा। जल्दी ही तुम्हारे बच्चे वहां भी क्रांति न चलने देंगे। वहां भी जब कोई क्रांतिकारी पैदा होगा, उसे निकाल बाहर किया जायेगा। यह क्रांतिकारी का भाग्य है कि सूली पे लटके। और यह सभी धर्मों की नियति है कि क्रांति की तरह पैदा हों, परंपरा की तरह सड़ जाएं

दूसरा प्रश्न : कल आपने समझाया कि महावीर ने बड़ी कुशलता से, बड़ी अहिंसा के साथ ईश्वर, पूजा, प्रार्थना, प्रेम आदि शब्दों का इनकार किया। उसके पहले भी आपने बताया था कि उन्होंने शरण और भक्ति का भी इनकार किया। कृपया समझाएं कि तब उनका स्वयं एक सद्गुरु, तीर्थंकर बनना व शिष्यों को दीक्षा व आशीर्वाद देना क्या उनके ही सिद्धांत के विपरीत नहीं है ?

पहली बात – महावीर तीर्थंकर है, सद्गुरु नहीं। सद्गुरु भक्तों का शब्द है। इसलिए महावीर के लिए सद्गुरु शब्द का उपयोग मत करना। और तीर्थंकर का बड़ा अलग अर्थ होता है। सद्गुरु का बड़ा अलग अर्थ होता है।

सद्गुरु का अर्थ होता है : जो तुम्हारा हाथ पकड़ ले; जैसे बाप बेटे का हाथ पकड़ लेता है और ले चलता है। और बेटा अपनी सारी श्रद्धा बाप को दे देता है; वह जानता है कि हम ठीक जा रहे हैं – चाहे बाप खतरे में भी जा रहा हो, भयंकर जंगल से गुजर रहा हो। बाप डरता हो तो डरता रहे, बेटा मस्ती से चलता है। बाप के हाथ में हाथ है, अब और क्या चाहिए ! बेटा आनंदित हो के देखता है जंगल। वह हजार प्रश्न उठाता है। बाप कहता है, चुप रहो ! बाप घबड़ा रहा है। बाप अकेला है। बेटे को क्या फिक्र है ! जब बाप साथ है तो सब बात हो गई।

सद्गुरु का अर्थ होता है : समर्पण किसी के प्रति; उसके हाथ में हाथ दे देना, बस। फिर भक्त कहता है, अब हम छोटे बच्चे की तरह हो गए; अब तुम्हें जहां ले चलना हो ले चलो; हम शिष्य हो गए।

तीर्थंकर का बड़ा अलग अर्थ है। तीर्थंकर तुम्हारे हाथ को अपने हाथ में नहीं लेता। तीर्थंकर तुम्हें सहारा नहीं देता। तीर्थंकर शब्द का अर्थ होता है : तीर्थ बनाने वाला, घाट बनाने वाला। नदी के किनारे घाट बना देता है, फिर जिसकी मौज हो उस घाट से उतर जाये। लेकिन वह तुम्हें एक नाव में बिठा के ले नहीं जाता। वह मांझी नहीं है। वह तुम्हें नाव में बिठा के उस पार नहीं ले जाता, न वह तुम्हारा हाथ पकड़ के नदी में तैराता है। वह सिर्फ घाट बना देता है।

तीर्थ का अर्थ होता है : घाट। तीर्थंकर का अर्थ होता है : जिन्होंने घाट बनाये। तो सुगम कर देता है उतरना, लेकिन हाथ पकड़ के उतारता नहीं। ऊबड़-खाबड़ जंगल पहाड़ में उतरना मुश्किल होता है। वह घाट बना देता है। वह सब व्यवस्थित कर देता है। ठीक जगह — जहां से दूसरा किनारा करीब से करीब है; ऐसी जगह, जहां जलधार बहुत खतरनाक नहीं है; ऐसी जगह, जहां जलधार छिछली है, तुम चल के भी पार हो सकोगे; ऐसी जगह, जहां कम-से-कम डूबने का भय है — वह घाट बना देता है। वह घाट के उपर सारे नक्शे रख देता है कि बाएं जाओ कि दाएं जाओ, कि कितने कदम चलने पे पानी गहरा होगा और कितने कदम चलने पर दूसरा किनारा करीब आ जायेगा। वह दूसरे किनारे का वर्णन कर देता है। वह सारी बात कर देता है, घाट निर्मित कर देता है, सारे उपकरण यात्रा के मौजूद कर देता है — बस, वहीं छोड़ देता है। फिर तुम जाओ, यात्रा तुम्हीं को करनी है।

तीर्थंकर सद्‌गुरु नहीं है। तीर्थंकर से तुम्हारा कोई व्यक्तिगत संबंध नहीं है। तीर्थंकर से तुम्हारा बड़ा अव्यक्तिगत संबंध है। महावीर के पास तुम जाओ तो तुम्हारा जो प्रेम महावीर के प्रति है वह एकतरफा है। तुम्हारा होगा। महावीर तो कहते हैं, उसे भी छोड़ो, क्योंकि वह भी बंधन बनेगा। महावीर का तो बिलकुल नहीं है। तुम भला अपनी कल्पना से सोचते होओ कि हम दीवाने हैं महावीर के, लेकिन महावीर तुम्हारे दीवाने नहीं हैं। तुम चले जाओगे तो वे बैठ के रोएंगे नहीं कि कहां खो गया।

भक्त और सद्‌गुरु की बात अलग है। जीसस ने कहा है : सद्‌गुरु ऐसा है... वह धारणा है पैगंबर की, सद्‌गुरु की, कि जैसे गडरिये की कोई भेड़ भटक जाये। सांझ हो गई, सारी भेड़ें आ गईं, लेकिन एक भेड़ जंगल में भटक गई, तो सारी भेड़ों को खतरे में छोड़ कर वह उस एक भेड़ की तलाश में जाता है। वह जंगल में उतरता है फिर अंधेरी रात मे, चिल्लाता है, पुकारता है। जब भेड़ को खोज लेता है तो उसे कंधे पे रख के लौटता है। भटकी भेड़ को कंधे पे रख के लौटता है। और भटकी भेड़ के लिए जो भेड़ें साथ थीं, उनको खतरे में छोड़ जाता है। इस बीच जंगली जानवर हमला भी कर सकते हैं।

यह ईसाइयों की मसीहा की धारणा है, सद्‌गुरु की। उसका संबंध वैयक्तिक है। वह तुम्हारी तरफ व्यक्तिगत ढंग से सोचता-विचारता है। तीर्थंकर निर्वैयक्तिक है। वह सिर्फ सिद्धांत बता देता है। वह कहता है, दो और दो चार होते हैं, तुम जोड़ लो। गणित बता दिया, नियम बता दिया, अब तुम कर लो हल। इससे ज्यादा उसका कोई संबंध नहीं है। अगर तुम चले जाओ, खो जाओ, तो तुम्हारे लिए बैठ के रोता नहीं और न बीहड़ में तुम्हें चिल्लाता हुआ आता है। क्योंकि तीर्थंकरों की धारणा ऐसी है, वे कहते हैं, जिसे भटकना है वह भटकेगा। जब अपने ही भटकने से ऊब न जायेगा, तब तक भटकेगा। और अगर कोई भटकना ही चाहता है तो

उसे न भटकने देना उचित नहीं है, उसकी स्वतंत्रता में बाधा है। अब इस बात का भी मूल्य है।

जीसस की बात भी समझ में आती है कि जो जाग गया है, वह उसको सहारा दे जो सोया है। महावीर की बात भी समझ में आती है। वे कहते हैं, सहारा देना एक बात है; लेकिन वह सहारा न चाहता हो तो उस पे सहारा थोपना बिलकुल दूसरी बात है। इसलिए वे उपदेश देते हैं, आदेश नहीं देते। वे मार्ग दिखा देते हैं, फिर यह भी नहीं कहते कि चलो, उठो। फिर तुम्हें झिझकारते नहीं हैं, तुम्हें सोए से उठाते नहीं, तुम्हारे सपने को तोड़ते नहीं। वे कहते हैं, अगर तुम्हारी यही मर्जी है तो तुम्हारी वैयक्तिक स्वतंत्रता है। वे तुम्हारी वैयक्तिक स्वतंत्रता को सम्मान देते हैं। अगर तुमने भटकना तय किया है तो यही तुम्हारी नियति है, अभी और भटको; जब तुम्हें समझ में आ जाये तब लौट आना। इसका मतलब यह हुआ : वे तुम्हें भेड़-बकरी नहीं मानते, तुम्हे मनुष्य मानते हैं। हूं, तब तुम्हें समझ में आयेगी बात कि उनकी बात का भी बल है। वे कहते हैं, तुम कोई भेड थोड़ी हो कि हम तुम्हें उठा के कंधे पे ले आए। तुम मनुष्य हो! तुम्हारे भीतर परमात्मा छुपा है। और अगर तुम्हारे परमात्मा ने यही अभी तय किया है कि अभी और थोड़ा झेलना है दुख, और थोडा जीना है नर्क, तो कौन तुम्हे रोक सकता है! तुम्हारे ऊपर कोई भी नही है, तुम अंतिम हो। मुझे कुछ मिला है, वह मै कह देता हू, उपयोग करना हो कर लेना, न करना हो न कर लेना। ऐसा निर्वैयक्तिक संबंध है।

इसलिए पहली बात – तीर्थंकर सद्गुरु नहीं है। दूसरी बात – तीर्थंकर दीक्षा तो देता है, आशीर्वाद नही देता। आशीर्वाद सद्गुरु देता है। आशीर्वाद का अर्थ है : मेरी शुभाकाक्षा तुम्हारे साथ है। न, महावीर बिलकुल निर्वैयक्तिक हैं। वे कहते हैं, मेरी शुभाकाक्षा क्या करेगी? नरक का रास्ता शुभाकांक्षाओं से पटा पड़ा है। तुम्हारा होश काम आएगा, मेरी शुभाकांक्षा थोड़ी! और वे कहते हैं, कहीं तुम्हारे मन में ऐसा भरोसा आने लगे जैसा कि काहिलो ओर सुस्तों को आ जाता है – किसी के आशीर्वाद से सब हो जायेगा – तो वे वैसे ही मर रहे थे और मर जाते। वे वैसे ही डूब रहे थे, वे और हाथ तड़फड़ाना छोड देते हैं। वे कहते हैं, अब आशीर्वाद मिल गया, अब सब ठीक है।

महावीर कहते हैं, ऐसी झूठी बातो के लिए मेरे पास मत आना। दीक्षा देते हैं। दीक्षा का अर्थ है . इनिसिएशन। दीक्षा का अर्थ है : वे तुम्हें बता देते हैं, जो उन्हें हुआ है। वे कहते हैं, यह रहा रास्ता। ज्योति फेंक देते हैं रास्ते पर। दीक्षा का तो अर्थ है, उद्घाटन कर देते हैं एक द्वार का। जिस द्वार से वे प्रवेश किए हैं, वह द्वार तुम्हें भी इंगित कर देते हैं कि वो रहा। आशीर्वाद का अर्थ है कि वे तुम्हारे लिए प्रार्थना करते हैं। आशीर्वाद का अर्थ है कि वे मंगल कामना करते है। आशीर्वाद का अर्थ है कि तुम्हारी यात्रा में वे भी सम्मिलित हैं।

नहीं, तीर्थंकर आशीर्वाद नहीं देते । ये अलग-अलग परंपराओं के शब्द हैं, इनका अलग-अलग अर्थ समझ लेना जरूरी है, अन्यथा बड़ी भ्रांति पैदा होती है ।

पहली दफा मैं बम्बई निमंत्रित हुआ, कई वर्ष पहले — एक महावीर जयंती पर । मेरे पहले, एक जैन मुनि बोले । तो मैं तो बहुत चकित हुआ, क्योंकि उन्होंने जो बातें कहीं, वे बिलकुल अ-जैन थीं । उन्होंने कहा महावीर का जन्म हुआ जगत के कल्याण के लिए । ऐसा जैनी मुनि कहते हैं । जैनी भी कहते हैं । उनको पता नहीं कि वे क्या कह रहे हैं । यह तो हिंदू-भाषा है । कृष्ण का जन्म हुआ जगत के कल्याण के लिए, यह समझ में आ जाता है । यदा यदा हि धर्मस्य, ... जब-जब होगी धर्म को अड़चन, तब-तब आऊंगा ... युगे युगे । यह ठीक है । अवतार की भाषा तो बिलकुल ठीक है कि जब जरूरत होगी मेरी, मैं आऊंगा, तुम फिक्र मत करना । जब अंधेरा होगा तब आऊंगा दीया ले कर । जब जाल फैलेगा घृणा का और हिंसा का, तब आऊंगा तुम्हें उठाने । और हमेशा हमेशा, तुम भरोसा कर सकते हो ।

लेकिन तीर्थंकर ऐसी भाषा नहीं बोलते । तीर्थंकर की भाषा ही अलग है । तीर्थंकर कहता है, कौन किसका कल्याण कर सकता है ? महावीर पैदा हुए अपने पिछले जन्मों के कर्म-फल के कारण । पैदा होना मजबूरी है । महावीर की कोई स्वेच्छा नहीं है । पैदा हुए, क्योंकि पिछले जन्म में जो कर्म-जाल पैदा किया है, वह खींच लाया । और जो चेष्टा उन्होने की, कोई जगत-कल्याण के लिए नहीं है । क्योंकि महावीर का मानना ही है कि कोई दूसरा किसी दूसरे का कल्याण नहीं कर सकता । कल्याण तो सदा आत्म-कल्याण है ।

तो जब मैं बोला और मैंने यह कहा तो मुनि तो बहुत नाराज हुए । बड़ी घबड़ाहट फैल गई । 'गुणा' यहां मौजूद है, वह उस सभा में भी मौजूद थी । उसने बाद में मुझे बताया, कई साल बाद, कि उसने तो 'ईश्वर भाई' को कहा कि अब हम यहां से निकल चलें, यहां कुछ झगड़ा-फसाद होगा । यहां मारपीट हो के रहेगी अब । क्योंकि सभी जैन नाराज हो गए, क्योंकि मैंने कहा, महावीर किसी के कल्याण के लिए पैदा नहीं हुए । लेकिन नाराजगी से क्या होता है ? तुम्हारे शास्त्र, तुम्हारी पूरी दृष्टि अलग है । और उस दृष्टि का अपना मूल्य है । इसलिए उसकी शुद्धता को बचाया जाना चाहिए । ऐसे तो सब वर्णसंकर हो जाती हैं बातें ।

महावीर कहते हैं, कल्याण आत्म-कल्याण है । इसलिए आशीर्वाद नहीं दे सकते । फिर उस दिन से जो जैन नाराज हुए तो नाराज ही हैं । क्योंकि उनको लगा कि मैंने उनके महावीर की कुछ प्रतिष्ठा छीन ली है । मैं उनके महावीर को ठीक-ठीक प्रतिष्ठा दिया । मैंने वही कहा जो महावीर कहते ।

लेकिन साधारण आदमी साधारण आदमी है । वह खुद नहीं करना चाहता । वह चाहता है कि कोई के आशीर्वाद से हो जाये, मुफ्त मिल जाये । धन तो तुम खुद कमाते हो, धर्म तुम आशीर्वाद से चाहते हो । तुमने बेईमानी परखी ? मकान बनाना

हो, तुम खूब बताते हो; मोक्ष आशीर्वाद से हो जाये ! तुम जो तुम करना नहीं चाहते, जो तुम कहते हो मुफ्त मिले तो ले लेंगे, उसमें भी सोचने का समय मांगोगे। अगर सच में ही कोई देने आ जाये कि रहा मोक्ष, लेते हो ? तुम कहोगे, अभी इतनी जल्दी तो मत करो, थोड़ा सोचने दो, घर जाने दो, पत्नी भी है, बच्चे भी हैं, थोड़ा पूछ तो लूं ! जो तुम टालना चाहते हो, तुम बड़ी कुशलता से टालते हो। तुम कहते हो, जब होगी प्रभु की कृपा ! मगर और चीजों के लिए तुम नहीं कहते। और के लिए तुम खब आपा-धापी करते हो। तो साफ-साफ कहो न कि अभी चाहिए नहीं। यह बेईमानी तो मत करो। इतना ही कह दो कि हमें अभी कोई आकांक्षा नहीं पैदा हुई है। नहीं, लेकिन वह कहना जरा अभद्र मालूम पड़ता है। तुम शिष्टाचार को मानते हो, सभ्यता को मानते हो। तुम कहते हो, यह कहना जरा, साफ-साफ कहना ठीक नहीं। तुम जरा चोरी-छिपे लुके-लुके कहते हो। तुम ढंग से, सजा के कहते हो, शृंगार से कहते हो। तुम कहते हो, जब प्रभु की कृपा होगी, जब आशीर्वाद होगा सद्गुरु का ...।

मेरे पास लोग आते हैं। मैं उनसे पूछता हूं, कभी बहुत वर्ष से नहीं दिखाई पड़े। वे कहते हैं, आपने बुलाया ही नहीं। कितनी मजेदार बात कह रहे हैं वे ! तो मैंने कहा, अब कैसे आ गये ? मैंने तो अभी भी नहीं बुलाया था। वे कहते हैं, जरा पूने में कुछ धंधे का काम आ गया था। धंधा का जब काम होता है तब वे अपने से आते हैं। अब रहा यह कि मैं पूना में हूं तो मेरे पास भी चलो हो आओ। लेकिन मेरे पास आने के लिए जिम्मेवारी मुझ पे ही छोड़ते हैं कि आपने बुलाया ही नहीं। हालांकि वे सोचते होंगे, बड़ी प्रेमपूर्ण बात कह रहे हैं, लेकिन बड़ी बेईमानी की बात कह रहे हो। आना हो तो तुम आ जाते हो; न आना हो तो कहते हो, जब आप बुलायेंगे। कसूर जैसे मेरा है ! तुम जब कहते हो, जब प्रभु की कृपा होगी...इसका अर्थ हुआ कि प्रभु की कृपा नहीं हो रही है। तुम सोचते हो, ऐसा भी हो सकता है कि प्रभु की कृपा न होती हो ? क्या तुम सोचते हो, प्रभु कुछ अड़चन डाल रहा है कि दूसरों पे कृपा बरसा रहा है, तुम पे नहीं कर रहा है ? अगर कोई कृपा जैसी चीज है तो वह सभी पे बरस रही है। लेकिन तुम जब लेना चाहोगे तभी ले सकोगे।

इसलिए महावीर कहते हैं, यह बात ही छोड़ दो आशीर्वाद की। इशारा मैं कर देता हूं, चलना तुम्हें है। और वे कोई व्यक्तिगत संबंध नहीं बांधते। उनका जो सबसे बड़ा शिष्य था, गौतम, वह महावीर के जीते-जी समाधि का अनुभव न कर सका, 'केवल ज्ञान' उसे उपलब्ध न हो सका। जिस दिन महावीर की मृत्यु हुई, उस दिन वह गांव के बाहर उपदेश देने गया था, दूसरे गांव। जब वह लौटता था, रास्ते में उसे खबर मिली की महावीर ने शरीर छोड़ दिया, उनका महापरिनिर्वाण हो गया। तो वह रोने लगा। उसने राहगीरों से पूछा कि यह तो हद हो गई, जिनके साथ मैं जीवन भर रहा, आखिरी क्षण में किस दुर्भाग्य के कारण मैं दूसरे गांव चला

गया ! आखिरी क्षण तो उन्हें देख लेता ! और अब मेरा क्या होगा ? उनके रहते-रहते मैं मुक्त न हो सका, अब मेरा क्या होगा ? अब तो गहन अंधकार है और दीया भी बुझ गया । क्या उन्होंने कुछ मेरे लिए संदेश छोड़ा है ? तो राहगीरों ने कहा, हां । आखिरी समय में उन्होंने आंख खोली; उन्होंने कहा, गौतम यहां नहीं है; लौटे तो उसे इतनी बात कह देना कि तू पूरी नदी तो पार कर गया, अब किनारे को पकड़ के क्यों रुक गया है ?

कहते हैं, उसी क्षण गौतम ज्ञान को उपलब्ध हुआ । क्या कहा महावीर ने उसके लिए ? क्या संदेश छोड़ा कि तू पूरी नदी तो पार गया – संसार छोड़ दिया, धन छोड़ दिया, पत्नी छोड़ दी, घर द्वार छोड़ दिया, सब छोड़ दिया, सब तरफ से राग हटा लिया – अब तूने राग मुझ पे जमा लिया ! किनारे को पकड़ लिया । अब तू कहता है, गुरु... । यह भी छोड़ दे, नहीं तो नदी तो पार कर आया, अब किनारे को पकड़ के अटका है, तो बाहर कैसे निकलेगा ? अब यह भी छोड़ । जब सब छोड़ा है तो सभी छोड़ । अब इतना भी अपवाद मत रख ।

उसी क्षण गौतम को बोध आया कि अरे, मैं महावीर को पकड़ने के कारण ही रुक गया हूं ! यह मोह छूटता नहीं, इसलिए रुक गया हूं ।

तो जैन भाषा अमोह की भाषा है । वहां आशीर्वाद नहीं है ।

डूब जाये कि सलामत रहे किश्ती मेरी
न हाथ बढ़ा कभी खिज्र के दामन की तरफ ।

– चाहे डूब जाये, चाहे बचे नाव; लेकिन महावीर कहते हैं, किसी और की तरफ हाथ बढ़ाना मत । न हाथ बढ़ा कभी खिज्र के दामन की तरफ । किसी सद्‌गुरु की तरफ हाथ मत बढ़ाना । आशीर्वाद मत मांगना । डूब जाए तो भी ठीक । पार हो जाये तो भी ठीक । लेकिन भीख मत मांगना ।

महावीर का पथ सम्राटों का पथ है, भिखारियों का नहीं ।

मेरी फितरत है तूफां और मैं आशोबे-फितरत हूं
तसव्वुर का भी दामन तर नहीं करता मैं साहिल से ।

– स्वभाव मेरा तूफान का है ।

मेरी फितरत है तूफां और मैं आशोबे-फितरत हूं ।

– और मैं प्रकृति की मुक्त निगाह, मुक्त दृष्टि हूं । तसव्वुर का भी दामन तर नहीं करता मैं साहिल से–साहिल की तो बात ही नहीं करता, किनारे की तो बात ही नहीं करता । बात तो दूर, अपनी कल्पना को भी मैं किनारे की बात से भ्रष्ट नहीं करता ।

सहारे की बात ही गलत है । बे-सहारा ! जब तक तुम इतने बे-सहारा न हो जाओ कि तुम्हें लगे अब अपने ही पैरों पे खड़ा होना होगा, और कोई पैर नहीं हैं; अब अपनी ही बुद्धि को जगाना होगा, और कोई सहारा नहीं है; और अपने ही

प्राणों का उत्कर्ष करना होगा, कोई और आशीर्वाद, कोई और सांत्वना नहीं है...।

तुमने कभी सोचा ?

आस्कर वाइल्ड ने लिखा है कि जब नाव डूब जाती है किसी की और आदमी सागर में तड़फड़ाता है तो जैसी उसकी दशा होती है, जब तक तुम्हारी न हो जाये तब तक तुम कुछ करोगे न। नाव डूब गई। सागर की उत्तुंग तरंगें, किनारे का कोई पता नहीं – तब क्या दशा होती है ? तब तुम सोचते हो कि आयेगा किसी का आशीर्वाद या उसको बचाना होगा बचायेगा ? नहीं, तब तुम प्राणपण से, अपनी समग्र ऊर्जा से बचने की चेष्टा में लग जाते हो; तुम सागर से लड़ने लगते हो। उस समय न तो विचार रह जाते हैं। कहां विचार की जगह है ? सुविधा कहां है ? फुरसत किसे है उस समय विचार करने की ? जीवन संकट में है। न विचार रह जाते हैं। कितनी बार ध्यान किया था और न लगा था; उस दिन लग जाता है। अब कोई विचार नहीं रह जाते। न कोई कामना उठती, न कोई वासना उठती, न धन, न स्त्री, न संसार, कुछ भी नहीं, सब खो जाता है। सिर्फ एक स्वयं को बचाने की – वह भी भाव की दशा होती है, विचार नही होता। और तुम जूझने लगते हो सागर से। महावीर कहते हैं, ऐसी ही तुम्हारी स्थिति होनी चाहिए। ऐसी ही स्थिति है, लेकिन तुमने कल्पना की नावें बना रखी हैं और तुमने कल्पना के सहारे ले रखे हैं। उन सहारों के कारण तुम चेष्टा नहीं कर पाते जितनी कि कर सकते थे। इसलिए वे कहते हैं, हटा लो सारी सांत्वनाएं।

महावीर ने अपने साथ चलने वालों के सब आश्रय छीन लिये। उनको बे-आसरा कर दिया, ताकि उनके भीतर जो सोए हुए प्राणों की ऊर्जा है, वह इस चुनौती में उठ जाये, ज्योतिर्मय हो उठे।

मुकाबिल में तेरे लाखों खुदा इसने बनाए हैं
उन्हें पूजा है, उनकी बंदगी के गीत गाए हैं।

आदमी ने असली परमात्मा की जगह न मालूम कितने परमात्मा बनाए हैं। उन्हें पूजा, उनकी बंदगी के गीत गाए है। महावीर कहते हैं, असली परमात्मा तुम्हारे भीतर छिपा है। न तो बंदगी से कुछ होगा, न गीतो से कुछ होगा, न पूजा-अर्चा के थालो से कुछ होगा। तुम जीवन के तथ्य को समझो। इस सत्य को समझो कि भव-सागर में पड़े हो और डूब रहे हो। स्थिति को ठीक से समझ लोगे तो तुम स्वयं को बचाने में लग जाओगे। और तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हें कोई और बचा नहीं सकता। इसलिए महावीर कहते हैं, शरण-भावना से बचना, अशरण-भावना में ध्यान करना। किसी की शरण जाने की बात मत सोचना। समर्पण नहीं, संकल्प।

तीसरा प्रश्न : आपने कहा कि लोक-व्यवहार में आ कर प्रज्ञापुरुषों के शब्द अपना अर्थ खो बैठते हैं। और आपने बताया कि महावीर ने अहिंसा, जीसस ने प्रेम और

सूफियों ने इश्क शब्द अपनाए। भगवान ! वर्तमान शताब्दि में आप कौन-सा शब्द हमें देना पसंद करेंगे ?

मैं तो प्रेम के प्रेम में हूं। उस शब्द से बहुमूल्य मुझे कोई और दूसरा शब्द मालूम नहीं होता। लाख विकृतियां हो गई हों, फिर भी उस शब्द में जादू है। अहिंसा मरा-मरा शब्द लगता है। उससे औषधि की बास आती है। अहिंसा – अस्पताल में जैसी बास आती है, वैसी बास आती है। कुछ नहीं करना है, कुछ रोकना है, कुछ निषेध – प्रेम जैसे फूल नहीं खिलते। प्रेम शब्द हृदय में कुछ और ही गूंज लाता है, कोई कंवल खिल जाते हैं, कोई द्वार खुलते हैं। अहिंसा से ऐसा पता चलता है, कुछ मजबूरी, कुछ कर्तव्य – विधायकता नहीं है, पोजिटीवीटि नहीं है। 'नहीं' में होती भी नहीं।

प्रेम में 'हां' है, स्वीकार है। प्रेम मे एक अहोभाव है, गीत है, नृत्य है। तो लाखों विकृतियां हो गई हों प्रेम में, तो भी मैं प्रेम को चुनता हूं। क्योंकि प्रेम जिंदा है और उन विकृतियो को अलग करने की क्षमता है उसमें। अहिंसा शब्द में कोई प्राण नही है। तो भला उसमें महावीर ने जब प्रयोग किया तो कोई विकृतियां न रही हों, अब तो हजारों विकृतियां हो गई हैं। और तकलीफ यह है कि अहिंसा मुर्दा शब्द है। इसलिए उन विकृतियों को छिटका के फेंक नहीं सकता। प्रेम फेंक सकता है। प्रेम जीवंत है।

ऐसा ही समझो कि एक आदमी मरा हुआ पडा है, साफ-सुथरे वस्त्रो में पड़ा है; बिलकुल धुले-धुलाए वस्त्र हैं, शुभ्र वस्त्र हैं; धूल का कण भी नहीं है। और एक जिंदा आदमी बैठा है; पसीने से तरबतर है; धूल भी चिपक गई है; दिन भर मेहनत की है; स्नान की जरूरत है। और तुम अगर मुझसे पूछो कि किसको चुनोगे, तो मैं कहूंगा, मैं जिंदा को चुनता हूं। पसीना है, नहाने से छूट जायेगा। धूल जम गई है वस्त्रो पर, साबुन उपलब्ध है। मगर आदमी जिंदा है! यह मुर्दा आदमी, माना कि न इसमें पसीना निकलता है, न इस पे धूल जमी है, यह काच के ताबूत में रखा रह सकता है, ऐसा ही साफ-सुथरा बना रहेगा – पर इसका करोगे क्या? इससे होगा क्या?

अहिंसा मुर्दा शब्द है। प्रेम जीवंत है। निश्चित ही प्रेम के साथ पसीना भी है। पसीने में कभी-कभी बदबू भी आती है। पसीने पे धूल भी जम जाती है। आदमी गंदा भी हो जाता है। लेकिन यह सब जिंदगी के लक्षण हैं। जहां गंदगी हो सकती है, वहां स्वच्छता लायी जा सकती है। ध्यान रखना, जहां गंदगी हो ही नहीं सकती, वहां स्वच्छता कैसे लाओगे? वहां तो मौत आ चुकी। तुम उस बच्चे को पसंद करोगे जो मुर्दे की तरह एक कोने में बैठा रहता है! मां-बाप पसंद करते हैं अक्सर, क्योंकि उनके लिए कम उपद्रव का कारण होता है। गोबर-गणेश ! बैठे हैं ! कभी-

कभी पूजा करनी हो तो गणपति जी की पूजा कर लो, बाकी वे बैठे रहते हैं। मां-बाप को ठीक लगते हैं, लेकिन बाद में पछताएंगे। वे ऐसे ही बैठे रहेंगे। फिर एक उपद्रवी, नटखटी बच्चा है, दौड़ता है, हाथ-पैर भी तोड़ लाता है, खून भी निकल आता है, कपड़े भी गंदे कर आता है, कीचड़ में सना हुआ घर आ जाता है। मैं तो इसी को चुनूंगा। यह जिंदा तो है! इससे कुछ होने की संभावना है।

अहिंसा में कुछ न हो, इसकी चेष्टा है। प्रेम में कुछ हो, इसकी चेष्टा है। मैं जीवन के पक्ष में हूं, मौत चाहे कितनी ही साफ-सुथरी हो। और मौत बड़ी साफ-सुथरी चीज है। झंझटें तो जीवन में है, मौत में क्या झंझट है? वह तो सब झंझटों का अंत है। तो भी मैं मौत को न चुनूंगा, मैं जीवन को ही चुनूंगा।

दयारे-रंगो-निकहत में गुजर क्या होशमंदों का
यह पैगामे-बहार आया तो दीवानों के नाम आया।

—वे जो बहुत होशियार हैं, गणित से जीते हैं, समझदारी-समझदारी ही जिनके जीवन में है और दीवानगी बिलकुल नहीं, जिन्होंने पागल होने की सारी क्षमता को नष्ट कर दिया है—उनके जीवन में कभी वसंत का पैगाम नहीं आता।

दयारे-रंगो-निकहत में गुजर क्या होशमंदों का!

—इस रंग-रूप, फूलों से भरी दुनिया में समझदारों की कहां जरूरत है?

यह पैगामे-बहार आया तो दीवानों के नाम आया।

और जब भी वसंत की लहर आती है, संदेश आता है जीवन का, तो दीवानों के नाम आता है।

अहिंसा तुम्हें होशियारी दे देगी, लेकिन दीवानगी कहां से लाओगे? अहिंसा तुम्हें गलत करने से बचा लेगी; लेकिन सही करने का रंग-रूप कहां से लाओगे? अहिंसा तुम्हें गाली देने से रोक लेगी; लेकिन गीत कहां से जन्माओगे? गाली देने से रुक जाना काफी है? तो जो आदमी गाली नहीं देता, बस पर्याप्त है?

यही तो जैन मुनियों की दशा हो गई है। वे गाली नहीं देते; गीत उनसे पैदा नहीं होता। बैठे हैं, गोबर-गणेश, उनकी पूजा कर लो! तो जैनी जाते हैं सेवा को। उनसे बुराई तो उन्होंने काट डाली, लेकिन कहीं कुछ भूल हो गई; कहीं कुछ बड़ी बुनियादी चूक हो गई। और वह चूक यह है कि उन्होंने गलत को छोड़ने की आकांक्षा की, गलत से बचने की चेष्टा की; लेकिन सही को जन्माने के लिए उन्होंने कोई प्रयास न किया। उनका खयाल है कि गलत हट जाए तो सही अपने से आ जायेगा। मेरा खयाल है कि सही आ जाये तो गलत अपने से हट जायेगा। और मैं तुमसे कहता हूं कि उनका खयाल गलत है। उनका खयाल ऐसे ही है जैसे कोई आदमी, अंधेरा भरा हो कमरे में, अंधेरे को धक्का दे दे के निकालने लगे। नहीं, अंधेरे को कोई धक्के दे के नहीं निकाल सकता—थकेगा, मरेगा, जिंदगी खराब हो

जायेगी। दीया जलाओ! कुछ विधायक को जलाओ! अंधेरा अपने से चला जाता है।

तो मैं तुमसे नहीं कहता, क्रोध छोड़ो। मैं कहता हूं, करुणा जन्माओ। मैं तुमसे नहीं कहता, संसार छोड़ो। मैं कहता हूं, आत्मा को जगाओ। मैं तुमसे नहीं कहता, धन-दौलत छोड़ो। मैं कहता हूं, भीतर एक धन-दौलत है, उसे खोजो। मेरा रुख विधायक है। और यह मेरा जानना है कि जिस दिन तुम्हें भीतर की धन-दौलत मिल जायेगी, तुम बाहर की धन-दौलत को पकड़ोगे? न पकड़ोगे न छोड़ोगे, क्योंकि वह धन-दौलत ही न रही। छोड़ने-लायक भी न रही, पकड़ने की तो बात दूर है। रखा ही क्या है वहां? जहां भीतर के हीरे दिखाई पड़ने लगें, वहां सब बाहर का कंकड़-पत्थर हो जाता है। जब भीतर के सौंदर्य में जीने लगे तो बाहर सौंदर्य दिखता ही नहीं। लेकिन अगर तुम बाहर के सौंदर्य को छोड़ के भागे और यही तुम्हारी जीवन की शैली हो गई, निषेध, इनकार, नेति-नेति, तो तुम मुश्किल में पड़ोगे। फांसी लगा लोगे अपने हाथ से गले में। और जिसको तुम छोड़ के भागे हो, उसकी बुरी तरह याद आएगी। आयेगी ही।

इसलिए जो छोड़ के भागते हैं — स्त्रियों के संबंध में चिंतन चलता रहता है, धन के संबंध में चिंतन चलता रहता है। छिड़कते हैं, झिटकते हैं उस चिंतन को, हटाते हैं। जब-जब स्त्री की याद आ जाती है, जोर-जोर से राम-राम-राम-राम जपने लगते हैं कि किसी तरह ... । मगर तुम्हारे जपने से क्या होता है? राम-राम-राम-राम ऊपर रह जाता है, काम-काम-काम-काम भीतर चलता जाता है। तुम्हारे हर दो राम के बीच में से काम की खबर आने लगती है।

भागो मत! घबड़ाओ मत। डरो मत! परमात्मा जीवन का निषेध नहीं है, जीवन का परिपूर्ण अनुभव है। और धर्म पलायन नहीं है, जीवन का परिपूर्ण भोग है।

महावीर ने प्रेम के लिए अहिंसा शब्द चुना; वहां भूल हो गई। पर भूल हो जाने के लिए कारण थे। क्योंकि प्रेम शब्द...उपनिषद और वेद प्रेम की चर्चा कर रहे थे। और प्रेम का सब तरफ जाल था। और प्रेम के नाम पर सब तरफ भ्रष्टाचार था। तो महावीर को लगा, अब प्रेम का शब्द उपयोग करना खतरे से खाली नहीं है। उन्होंने इसी आशा में अहिंसा का उपयोग किया कि वे समझ लेंगे तुम्हें कि अहिंसा का अर्थ प्रेम ही है। लेकिन वे न समझ पाए। कसूर उनका नहीं है। कसूर उनका है जिन्होंने सुना। उन्होंने तत्क्षण अहिंसा में से प्रेम तो न निकाला, नकारात्मकता निकाल ली। तो महावीर का धर्म धीरे-धीरे ऐसा धर्म हो गया कि इसमें क्या-क्या नहीं करना है, वही महत्त्वपूर्ण हो गया।

जाहिद हुई-होशो-खिरद में रहा 'असीर'
नादां ने जिंदगी ही को जिंदां बना दिया।

वह जो बुद्धि-बुद्धि मे जी रहा है?......

जाहिद हुऐ-होशो-खिरद में रहा 'असीर'

– जो सदा ही बुद्धि की सीमा में ही घिरा रहा, छोड़ने-त्यागने की सीमा में ही घिरा रहा ...

नादां ने जिंदगी ही को जिंदा बना दिया।

– उस ना-समझ ने अपने जीवन को ही एक कारागृह बना लिया। छोड़ो-छोड़ो, सिकुड़ते जाओ – धीरे-धीरे तुम पाओगे, फांसी लग गई अपने ही हाथों। लेकिन, तुम समझ न पाओगे, क्योंकि जितनी तुम्हारी फांसी लगेगी उतने ही लोग तुम्हारे पैरों में फूल चढ़ाएंगे। वे कहेंगे, कैसे महा त्यागी! तो तुम्हें फांसी में भी रस आने लगेगा। क्योंकि फांसी जितनी तुम कसते जाओगे, उतना ही तुम्हें सम्मान मिलेगा। जितने ज्यादा उपवास करोगे, जितना अपने को तोड़ते जाओगे, उतना सम्मान मिलेगा। जितना अपने को मिटाओगे, अपना घात करोगे, उतना सम्मान मिलेगा। तो उस मुनि को ज्यादा सम्मान मिलता है जो ज्यादा त्याग करता है। उसको वे लोग कहते हैं, महामुनि। लोग सिर रखते हैं उसके चरणों में। तो अहंकार मजा लेता है।

तो जिन्होंने भी निषेध की यात्रा की, उन्होंने सिर्फ अहंकार को भर लिया। उनके जीवन में आत्मा खुली नहीं, खिली नहीं।

तो मैं तो प्रेम को ही चुनता हूं। मैं प्रेम के प्रेम में हूं। मैं तो तुमसे कहूंगा, लाख खराबियां हों इस शब्द में – महावीर से कुछ सीख लो। महावीर ने इस शब्द की खराबियों को देख के अहिंसा चुना, लेकिन जो परिणाम हुए वे और भी बदतर हुए। बीमारी तो बीमारी, औषधि भी बीमारी बन गई।

मैं तो तुमसे कहूंगा, प्रेम चुनो। और प्रेम इतना सबल है कि वह अपनी भूलों को पार करने की क्षमता रखता है। वह जिंदा है, तो गंदा भी हो जाये तो स्नान कर सकता है। अहिंसा लाश है। गंदी न होगी, लेकिन उसकी स्वच्छता का भी क्या मूल्य है? उसकी स्वच्छता में जीवन की सुवास नहीं है। उसकी स्वच्छता क्लिनिकल है।

मुझे तो प्रेम शब्द में रस है। क्योंकि मेरे देखे, यह सारा जगत प्रेम से आदोलित है। यहां श्वास-श्वास प्रेम से चल रही है। यहां फूल-फूल प्रेम से खिल रहे हैं। और अभी तो वैज्ञानिक भी सोचने लगे हैं कि जब प्रेम से सारा जगत बंधा हुआ है – स्त्री पुरुषों से बंधी, पुरुष स्त्रियों से बंधे, मां-बाप बेटों-बच्चों से बंधे, बेटे-बच्चे मां-बाप से बंधे, मित्र मित्रों से बंधे – जहां सब कुछ बंधा है प्रेम से, वहां हमें यह मान के चलना पड़ेगा कि हम एक प्रेम के सागर में जी रहे हैं।

जब अणु की पहली दफा खोज हुई और अणु का विस्फोट किया गया, तो रदरफोर्ड ने, जिसने पहली दफा अणु के संबंध में गहरी खोज की, उसको एक सवाल उठा कि अणु के जो परमाणु हैं – इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन, पाजिट्रॉन – ये आपस में कैसे

बंधी हैं? इनको कौन-सी शक्ति बांधे हुए है? ये बिखर क्यों नहीं जाते?

तुमने कभी खयाल किया – एक पत्थर पड़ा है, सदियों से पड़ा है, बिखरता क्यों नहीं? तुम इसे तोड़ दो हथौड़े से, बिखर गया, फिर तुम इसे जोड़ो, फिर रख दो टुकड़ों को पास-पास, मगर अब न जुड़ेगा। बात क्या हो गई है? इतने दिन तक कौन-सी चीज इसे जोड़े थी? अगर वह चीज इत्ते दिन तक जोड़े थी, फिर तुमने टुकड़े पास रख दिये, अब क्यों नहीं जोड़ती? कोई चीज तोड़ दी तुमने। पत्थर नहीं तोड़ा तुमने; कोई और चीज जो सूक्ष्म थी, तोड़ दी। पत्थर तो अब भी वही का वही है, उसका वजन भी वही है, टुकड़े भी उतने के उतने हैं – लेकिन पहले जुड़े थे, अब टूट गए। अब तुम लाख उनको पास-पास बिठाओ, उनको लाख समझाओ कि अब फिर से जुड़ जाओ, पूजा-प्रार्थना करो, यज्ञ-हवन करो, वह सुनेगा नहीं। कोई चीज तुमने तोड़ दी, कोई बहुत सूक्ष्म चीज तोड़ दी।

रदरफोर्ड सोचने लगा, कौन-सी चीज जोड़े हुए है! बहुत-से सिद्धांत प्रतिपादित किये गए हैं। उनमें एक सिद्धांत प्रेम का भी है, यह आश्चर्य की बात है। वैज्ञानिक और प्रेम की बात करे! लेकिन आश्चर्यचकित होने की जरूरत नहीं है। अगर जीवन सब तरफ प्रेम से जुड़ा है, अगर वृक्ष फलों से प्रेम के कारण जुड़े हैं, अगर वृक्ष फूलों से प्रेम के कारण जुड़े हैं, अगर आदमी आदमी से प्रेम के कारण जुड़ा है, तो फिर निश्चित ही जीवन की इकाइयां भी, ईंटें भी प्रेम से ही जुड़ी होंगी। चाहे तुम उसे मैग्नेटिज्म कहो, चाहे तुम उसे इलेक्ट्रिसिटी कहो – यह नाम का भेद है। लेकिन कोई चुंबकीय शक्ति सारे जीवन को जोड़े हुए है। उस चुंबकीय शक्ति को भक्तों ने भगवान कहा है, प्रेम कहा है, परमात्मा कहा है। महावीर उसे सत्य कहते हैं।

लेकिन फिर महावीर का 'सत्य' शब्द बड़ा तटस्थ है। उससे रसधार नहीं बहती। सत्य बड़ा रूखा-सूखा है, मरुस्थल जैसा है। प्रेम मरुद्यान है; बड़ी रसधार बहती है। उपनिषद कहते हैं, रसो वै सः। वह जो परमात्मा है, रस उसका स्वभाव है।

रस को मैं भी जीवन का सत्य मानता हूं। और तुम्हारे जीवन में रस तभी होता है जब प्रेम होता है। जहां-जहां प्रेम, वहां-वहां रस। जहां-जहां प्रेम खोया, वहां-वहां रस सूखा। रस में डूबो। तन डूबे, मन डूबे, सब डूबे रस में डूबो! और तब तुम्हारी दृष्टि में एक अलग ही दृश्य दिखाई पड़ना शुरू हो जायेगा।

'जमील' अपनी असीरी पै क्यों न हो मगरूर
यह फख्र कम है कि सैय्याद ने पसंद किया!

'जमील' अपनी असीरी पै क्यों न हो मगरूर! जमील ने कहा है, क्यों न हम अभिमान करें इस बात कि का परमात्मा ने हमें कैद करने-योग्य समझा, बांधने-योग्य समझा! कह फख्र कम है कि सैयाद ने पसंद किया!–कि उसने हमें पसंद किया कि भेजा, कि बनाया!

भक्त तो अपने दुख में से भी सुख का गीत सुन लेता है। अपनी जंजीरों में भी

रस पा लेता है। कहता है, परमात्मा ने ही बांधा है। छूटने की जल्दी भक्त को नहीं है। भक्त कहता है, तेरे बंधन हैं – राजी हैं! और ऐसे भक्त छूट जाता है। क्योंकि जिस बंधन को तुमने सौभाग्य समझ लिया, वह बंधन बांधेगा कैसे? बंधन तभी तक बांधता है जब तक तुम छूटना चाहते हो। तुम्हारे छूटने की वृत्ति के विपरीत होने के कारण बंधन मालूम होता है। जब तुम स्वीकार करे लिये, राजी हो गए, तुमने कहा कि ठीक ...

'जमील' अपनी असीरी पै क्यों न हो मगरूर

यह फख्र कम है कि सैय्याद ने पसंद किया!

जो बनाया, जैसा बनाया, वह यह कोई कम गौरव की बात है कि परमात्मा ने चुना! हर जगह उसके प्रेम को खोज लेता है।

और तुम्हारा जीवन अगर हर जगह प्रेम को खोजने लगे, ऐसी जगह भी जहा खोजना बड़ा मुश्किल है, जिस दिन तुम सब जगह प्रेम के दर्शन करने लगो – उस दिन परमात्मा के दर्शन हो गए।

जीसस ने कहा है, परमात्मा प्रेम है। और मैं कहता हू, प्रेम परमात्मा है।

पर ये रास्ते अलग-अलग है। महावीर का रास्ता भक्त का रास्ता नही है – होश का। भक्त का रास्ता है बेहोशी का। भक्त का रास्ता मधुशाला का है। वह कहता है, यह होश ही हमारी पीडा है।

तुझ पै कुर्बां मेरे दिल की हर एक बेखबरी

आ! इसी मंजिले-एहसासे फरामोश में आ।

हे प्रभु! भक्त कहता है, तुझ पै कुर्बां मेरे दिल की हर एक बेखबरी – और तो मेरे पास कुछ भी नही है, बेहोशी है। यह मेरे दिल का पागलपन है, दीवानगी है। यह तुझ पे कुर्बान करता हू। यह तुझ पर न्योछावर करता हूं। और तो मेरे पास कुछ भी नही है।

तुझ पै कुर्बां मेरे दिल की हर एक बेखबरी

आ! इसी मंजिले एहसासे फरामोश में आ।

और मैं तुझे याद भी कर सकू, यह भी मेरी सामर्थ्य नही। तू मेरे विस्मरण के द्वार से ही आ!

आ! इसी मंजिले। एहसासे फरामोश मे आ। –मेरी इस बेहोशी के रास्ते से ही तू आ!

भक्त का ढग और। भक्त भी पहुंच जाते हैं। साधक भी पहुंच जाते हैं। महावीर का मार्ग साधक का है। नारद का मार्ग भक्त का है। लेकिन अगर तुम मुझसे पूछते हो, तो मेरे देखे भक्त के मार्ग से अधिक लोग पहुंच सकते हैं। हा, जिनको भक्ति असंभव ही मालूम पड़ती हो, उनको साधक का मार्ग है। वह मजबूरी है। तुम्हारा प्रेम अगर इतना मर गया है और जड़ हो गया है कि उसमें से तुम पर-

मात्मा को प्रगट नहीं कर सकते, तो फिर छोड़ो। फिर तुम साधक के मार्ग से चलो। लेकिन साधक का मार्ग दोयम है, नंबर दो है। वह उनके लिए है जिनके भीतर की आत्मा कुछ मुर्दा हो गई है और जिनके भीतर प्रेम के स्रोत सूख गए हैं, जिनके भीतर गीत-गान नहीं उठता, जिनके भीतर नृत्य-नाच नहीं उठता, जिनकी बांसुरी खो गई है – उनके लिए है। अगर तुम्हारी बांसुरी अभी भी तुम्हारे पास हो और तुम गुनगुना सको गीत, तो सौभाग्यशाली हो। अगर यह न हो; अगर कहीं खो चुके बांसुरी दूर जीवन की यात्रा में; कहीं प्रेम को कुठाराघात हो गया; कहीं सब जड़ हो गया तुम्हारा हृदय, अब उसमें कोई पुलक नहीं उठती – तो फिर साधक का मार्ग है। साधक का मार्ग उन थोड़े-से लोगों के लिए है, जिनके भीतर प्रेम की सब संभावनाएं समाप्त हो गई हैं। लेकिन अगर प्रेम की जरा-सी भी संभावना हो और अंकुरण हो सकता हो, तो फिक्र छोड़ो। जब गीत गा के और नाच के उसके घर की तरफ जा सकते हैं, तो फिर लंबे चेहरे, उदास चेहरे ले के जाने की कोई जरूरत नहीं। जब स्वस्थ, प्रफुल्लित उसकी तरफ जा सकते हैं, तो नाहक की उदासी, नाहक का वैराग्य थोपने की कोई जरूरत नहीं।

महावीर के मार्ग से लोग पहुंचे हैं, तुम भी पहुंच सकते हो। लेकिन महावीर का मार्ग बहुत संकीर्ण है; बहुत थोड़े-से लोग पहुंचते हैं; बहुत थोड़े-से लोग जा सकते हैं।

भक्ति का मार्ग बड़ा विस्तीर्ण है। उस पे जितने लोग जाना चाहें, जा सकते हैं। लेकिन कुछ लोगों को कठिनाई में रस होता है। कुछ लोगों को जो चीज सुलभता से मिलती हो, वह जंचती नहीं। कुछ लोगों को जितने ज्यादा उपद्रव और मुसीबतों में से गुजरना पड़े उतना ही उन्हें लगता है, कुछ कर रहे हैं। उनके लिए महावीर का मार्ग बिलकुल ठीक है।

आखिरी प्रश्न : आपके पास कुछ भी लिखती हूं तो आप नाराज हो जाते हैं। पीछे मुझे बहुत घबड़ाहट होती है कि आपके पास दिल खोलूं कि नहीं खोलूं। और क्या मैं कुछ भी नहीं कर पाती? कोशिश तो हर हाल करती हूं कि आपकी बात समझ में आए। भक्त को अहंकार का कुछ भी पता नहीं। कैसे क्या करूं? मेरी हिम्मत अब टूटी जा रही है। कृपया एक बार फिर समझाएं!

तरु का प्रश्न है।

'आपके पास कुछ भी लिखती हूं तो आप नाराज हो जाते हैं।' बहुत बार ऐसा लगेगा कि मैं नाराज हुआ हूं, पर मेरी नाराजगी में केवल इतनी ही अभिलाषा है कि शायद नाराज हो के कहूं तो तुम सुन लो; शायद नाराज हो के कहूं तो तुम्हारा सपना टूटे; शायद चोट दे के कहूं तो तुम थोड़े तिलमिलाओ और जागो।

झेन फकीर तो डंडा हाथ में रखते हैं तरु! और उन्होंने देखा कि जरा उनका

कोई शिष्य झपकी खा रहा है कि उन्होंने सिर फोड़ा। लेकिन कई बार ऐसा हुआ है कि झेन सद्गुरु का डंडा पड़ा है और उसी क्षण साधक समाधि को उपलब्ध हो गया है।

तुम्हारी नींद गहरी है; चोट करनी जरूरी है। तुम्हें धक्के देने जरूरी हैं। तुम्हें लौरी ही गा के सुनाता रहूं तो तुम और भी सो जाओगे। हालांकि लौरी तुम्हें अच्छी लगती है। मगर तुम्हारे अच्छे लगने को देखूं? तो तुम्हें तो नींद ही अच्छी लगती है। तुम्हें जगाना होगा! तुम्हें झकझोरना होगा!

और धीरे-धीरे तुमने अपने रोगों को भी अपने जीवन का हिस्सा मान लिया है। तुम धीरे-धीरे अपने रोगों के भी प्रेम में पड़ गए हो।

एक छोटा बच्चा अपने नाना-नानी के घर आया था। रात जब नानी उसको सुला गई उसे कमरे में और बिजली की बत्ती बुझाई, तो वह बैठ गया और रोने लगा। उसने पूछा कि क्या हुआ तुझे। नानी ने पूछा, क्या हुआ तुझे? उसने कहा कि मुझे अंधेरे का बहुत डर लगता है। पर उसने कहा, 'अरे पागल! और तू अपने घर भी तो अंधेरे में ही सोता है और अलग ही कमरे में सोता है, तो फिर क्या डर है?' तो उसने कहा, 'नानी, वह बात अलग है। वह मेरा अंधेरा है।'

अपने-अपने अंधेरे से भी लगाव हो जाता है। मेरा अंधेरा, मेरी बीमारी, मेरा रोग, मेरी चिंता, मेरा संताप – 'मेरा' उससे भी जुड़ जाता है। तभी तो हम अपने दुख को भी पकड़े बैठे रहते हैं। दुख छोड़ने में भी डर लगता है, क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि दुख भी छूट जाये और हाथ खाली हो जायें, और कुछ मिले न; कम-से-कम कुछ तो है, दुख ही सही, दर्द ही सही! होने का पता तो चलता है कि हैं।

तो कई बार तुमसे मुझे नाराज भी होना पड़ता है – सिर्फ इसीलिए कि तुम्हें प्रेम करता हूं, अन्यथा कोई कारण नहीं है।

'और पीछे मुझे घबड़ाहट होती है कि आपके पास दिल खोलूं कि नहीं खोलूं!'

क्या तुम्हारे खोलने-न-खोलने से कुछ फर्क पड़ेगा? खुला ही हुआ है। जिस दिन अपने को जाना, उसी दिन से सभी का दिल खुल गया है। अपना दिल खुले तो सब का दिल खुल जाता है। अब मुझसे छुपाने का उपाय नहीं है। न बताओ, कोई फर्क न पड़ेगा। क्योंकि मनुष्य मात्र की पीड़ा एक है। विस्तार के फर्क होंगे, थोड़े बहुत रंग-ढंग के फर्क होंगे; लेकिन मनुष्य मात्र की पीड़ा एक है – कि जिससे हम जन्मे हैं उससे हम बिछुड़ गए हैं; कि जो हमारा मूल स्रोत है उससे हम खो गये हैं। और इसलिए सब खोजते हैं, लेकिन तृप्ति नहीं होती। बहुत दौड़ते हैं, लेकिन पहुंचते नहीं; क्योंकि अपने घर का पता ही भूल गया है। विस्तार की बातें अलग हैं। वे हर एक व्यक्ति की अलग हैं। उसमें जाने से कोई सार भी नहीं है।

तुम अपना दिल खोलो या न खोलो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम्हारी आधारभूत पीड़ा का मुझे पता है। वह पीड़ा यही है कि कैसे प्रभु से मिलन हो

जाये ! प्रभु नाम दो या न दो। कैसे उससे मिलन हो जाये, जिसे पा के फिर कुछ और पाने को न बचे !

'और क्या मैं कुछ भी नहीं कर पाती हूं ?'

करती बहुत हो, लेकिन करने से वह मिलता नहीं। कर-कर के हारने से मिलता है। जब तक करना जारी रहता है, तब तक तो थोडी-न-थोड़ी अस्मिता बनी ही रहती है। 'मैं कर रहा हूं,' तो मैं बचा रहता हूं। कृत्य से तो अहंकार कभी मरता नहीं। हां, कृत्य से अहंकार सुंदर हो जाता है, सुरुचिकर हो जाता है। कृत्य से अहंकार में सजावट आ जाती है, शृंगार आ जाता है; मिटता नहीं। मिटता तो तभी है, जब तुम्हें पता चलता है, मेरे किए कुछ भी न होगा। आत्यंतिक रूप से ऐसा पता चलता है कि मेरे किए कुछ भी न होगा। अंतिम रूप से यह निर्णय आ जाता है कि मेरे किए कुछ भी न होगा। वहीं 'मैं' गिरता है, जहां उसके किए कुछ भी नहीं होता।

तो तुम करते तो बहुत हो; लेकिन मैं तुमसे कहे चला जाता हूं, कुछ भी नहीं, यह भी कुछ नहीं, और करो, और करो। और जो जितना ज्यादा कर रहा है उससे मैं और ज्यादा कहता हूं, यह कुछ भी नहीं, और करो। क्योंकि जो जितना ज्यादा कर रहा है, उससे उतनी ही और आशा बंधती है कि करीब पहुंच रहा है उस सीमा के, जहां सब करना व्यर्थ हो जाएगा। तो और दौड़ाता हूं। जो पिछड़ गए हैं, उनको न भी कहूं, क्योंकि उनके दौड़ने से भी कुछ बहुत होने वाला नहीं है। लेकिन जो दौड़ में बहुत आगे हैं और बड़ी शक्ति से दौड़ रहे हैं, उनको तो जरा भी शिथिलता खतरनाक होगी और महंगी पड़ जायेगी।

ऐसा उल्लेख है, रवींद्रनाथ के चाचा थे अवनींद्रनाथ। बड़े चित्रकार थे। भारत में ऐसे चित्रकार इस सदी में एक दो ही हुए। दूसरा जो बड़ा चित्रकार भारत में पैदा हुआ, नंदलाल, वह उनका शिष्य था। रवींद्रनाथ एक दिन बैठे थे अवनींद्रनाथ के साथ। और नंदलाल, जब वह युवक था और विद्यार्थी था, कृष्ण का एक चित्र बना के लाया। रवींद्रनाथ ने लिखा है कि ऐसा सुंदर चित्र मैंने पहले कभी देखा न था; कृष्ण की ऐसी छवि कोई बना न पाया था। और मैं तो भावविभोर हो गया, विमुग्ध हो गया, नाच उठने का मन हो गया; लेकिन मैं चुप रहा। क्योंकि अवनींद्रनाथ मौजूद थे, और वे चित्र को बड़े गौर से देख रहे थे। बड़ी देर सन्नाटा रहा।

रवींद्रनाथ ने लिखा है कि मैं घबड़ा गया कि बात क्या है, वे कुछ कहें ! तोड़ें इस खामोशी को, कुछ तो कहें। नंदलाल भी थरथर कांप रहा था। और आखिर उन्होंने आंखें ऊपर उठाईं और उस चित्र को उठा के बाहर फेंक दिया अपनी बैठक से। और नंदलाल से कहा, 'इसको तुम बड़ी कला मानते हो ? यह तो बंगाल में जो पटिये हैं, जो कृष्ण का चित्र बनाते हैं, दो-दो पैसे में बेचते हैं, उनके लायक भी नहीं है। तुम जाओ पटियों से सीखो कि कृष्ण कैसे बनाये जाते हैं !'

नंदलाल सिर झुका के, चरण छू के लौट गया। रवींद्रनाथ को तो बड़ा आश्चर्य हुआ और क्रोध भी आया। लेकिन गुरु-शिष्य के बीच क्या बोलना, तो वे चुप रहे। जब नंदलाल चला गया तब उन्होंने कहा कि यह मेरी समझ के बाहर है। आपके भी चित्र मैंने देखे, लेकिन मैं कह सकता हूं कि उन चित्रों में भी मुझे कोई इतना नहीं भाया जितना यह कृष्ण का चित्र भाया। और आपने इसको उठा के फेंक दिया!

लेकिन अवनींद्रनाथ चुप! तो उन्होंने आंखें उठा के देखा, आंख से आंसू बह रहे हैं। अवनींद्रनाथ ने कहा कि तुम समझे नहीं; इससे मुझे बड़ा भरोसा है; इससे अभी और खींचा जा सकता है। अभी यह और ऊंचाइयां छू सकता है। मैं भी जानता हूं कि ऐसा चित्र मैंने भी नहीं बनाया। मगर इसकी अभी और संभावना है। अगर मैं कह दूं कि बस, बहुत हो गया। मेरी प्रशंसा का हाथ इसके सिर पे पड़ जाये, तो यही इसकी रुकावट हो जायेगी। मैं इसका दुश्मन नहीं हूं।

नंदलाल तीन साल तक पता न चला, कहां चला गया। वह गांव-गांव बंगाल में घूमता रहा और जहां-जहां पटियों की खबर मिली, गांव के ग्रामीण कलाकारों की, वह उनसे जा के कृष्ण के चित्र बनाना सीखता रहा। तीन साल बाद लौटा। रवींद्रनाथ को नंदलाल ने आ के कहा कि उनकी बड़ी अनुकंपा है! ऐसा बहुत कुछ सीख के लौटा हूं जो यहां बैठ के कभी सीख ही न पाता! उन ग्रामीण सरल हृदय लोगों में तकनीक तो नहीं है, तकनीक की उन्हें कोई शिक्षा नहीं मिली है, लेकिन भाव की बड़ी गहनता है। और असली चीज तो भाव है, तकनीक में क्या रखा है?

तो जो यहां मेरे पास तीव्रता से काम में लगे हैं, उनकी पीठ मैं नहीं थपथपाता। उनसे तो मैं कहता हूं, यह क्या है? बंगाल के पटिये भी इससे बेहतर कर लेते हैं। उनसे तो मैं यही कहे चला जाऊंगा, यह भी कुछ नहीं – और-और-और – उस घड़ी तक, जहां कि करने की पराकाष्ठा आ जाये। क्योंकि जहां करने की पराकाष्ठा आती है वहीं अहंकार की भी पराकाष्ठा आ जाती है। और जब करना-मात्र गिर जाता है, जब तुम्हें लगता है, अब आगे करने को कुछ भी नहीं बचा और तुम बैठ जाते हो, उस बैठने में ही पहली दफा परमात्म-तत्व से संबंध होता है। तुम नहीं होते, उस बैठने में तुम नहीं होते; उस बैठने में तुम्हारे भीतर परमात्मा ही होता है।

'क्या मैं कुछ भी नहीं कर पाती हूं? कोशिश तो हर हाल करती हूं कि आपकी बात समझ में आये। भक्त को अहंकार का कुछ भी पता नहीं। कैसे क्या करूं? मेरी हिम्मत अब टूटी जा रही है।'

बड़े शुभ लक्षण हैं। किए जाओ। हिम्मत को टूट ही जाना है। तुम्हारी हिम्मत ही बाधा है – भक्त के लिए। समर्पण के मार्ग पर तुम्हारी हिम्मत और तुम्हारा बल ही बाधा है। निर्बल के बल राम! वहां तो जब तुम बिलकुल निर्बल हो जाओगे, सब टूट जायेगा, उसी क्षण, उसी पल अनिर्वचनीय से मिलन हो जाता है

मुहब्बत में तेरी गिरफ्त हो कर
हर एक रंजोगम से रिहा हो गए हम।

उसके प्रेम को तुम्हारे चारों तरफ बंधने दो, उसके प्रेम को कसने दो। उसके प्रेम की फांसी में तुम्हारा अहंकार मर जायेगा।

मुहब्बत में तेरी गिरफ्त हो कर
हर एक रंजोगम से रिहा हो गए हम।

अब तुम छोड़ो अपना रंज भी, अपना गम भी; जो तुम्हारे पास है उसके चरणों में चढ़ा दो! कुछ और तो है नहीं, कहां से लाओगे फूल? जो है ...आंसू सही। उसके चरणों में रख दो! और उससे कह दो कि –

मुहब्बत में तेरी गिरफ्त हो कर
हर एक रंजोगम से रिहा हो गये हम।

अब तू जान!

कितने दीवाने मुहब्बत में मिटे हैं 'सीमाब'
जमा की जाए खाक उनकी तो वीराना बने।

कितने प्रेमी उसके प्रेम में मिट गए हैं! जमा की जाये जो खाक उनकी तो वीराना बने। एक मरुस्थल बन जाये, अगर उनकी राख इकट्ठी करें। उसी राख के मरुस्थल में अपनी राख को भी मिला दो।

गर बाजी इश्क की बाजी है
जो चाहो लगा दो, डर कैसा?
गर जीत गए तो क्या कहना
हारे भी तो बाजी मात नहीं।
गर जीत गए तो क्या कहना!

तो महावीर हो जाता है आदमी, अगर जीत गया।

हारे भी तो बाजी मात नहीं! हार गए तो मीरा पैदा हो जाती है। अड़चन नहीं है, बाधा नहीं है।

गर बाजी इश्क की बाजी है
जो चाहो लगा दो डर कैसा?
गर जीत गए तो क्या कहना
हारे भी तो बाजी मात नहीं।

यह कुछ रास्ता ऐसा है प्रभु का कि जो पहुंचते हैं, वे तो पहुंच ही जाते हैं; जो भटकते हैं वे भी पहुंच जाते हैं। संसार के मार्ग पर उलटी ही कथा है: जो पहुंचते हैं, वे भी नहीं पहुंचते; जो भटकते हैं, उनका तो कहना ही क्या! परमात्मा के मार्ग पर जो पहुंचते हैं, वे तो पहुंच ही जाते हैं; जो भटकते हैं, वे भी पहुंच जाते हैं। इतना ही क्या कम है कि हम उसे खोजने में भटके? इतना कम है कि हमने

उसे खोजना चाहा ? इतना कम है कि अंधेरी रात में हमने उस दीये की आशाएं और सपने संजोए ?

कैफियत उनके करम की कोई हमसे पूछे
जिससे खुश होते हैं दीवाना बना देते हैं ।

परमात्मा का प्रेम जब तुम पे बरसेगा तो दीवानगी और बढ़ेगी, आंसू और बहेंगे, हृदय टूटेगा, बिखरेगा । राख हो जाओगे तुम उस बडे मरुस्थल में—जहां मीरा भी खो गई है, चैतन्य भी खो गए हैं, जहां राबिया खो गई है, जहां कबीर, नानक, रैदास खो गए हैं । उस विराट मरुस्थल में तुम भी खो जाओगे । लेकिन खोने के पहले एक शर्त पूरी कर देनी जरूरी है कि तुम जो कर सकते हो वह कर लो; अन्यथा तुम्हें ऐसा लगा रहेगा कुछ-न-कुछ कर लेते । अटके रहोगे । अहंकार थोड़ी-सी जगह बनाए रखेगा ।

प्रेम की आकांक्षा जिसने की है और भक्ति का मार्ग जिसने चुना है, उसने बडे असंभव की आकांक्षा की है । इसलिए महावीर गणित की तरह साफ हैं । वहां साफ-सुथरा विज्ञान है । इसलिए जैन-धर्म में विज्ञान की भाषा है । मीरा और चैतन्य, नारद और कबीर – उनकी भाषा अटपटी है, सधुक्कड़ी, उलटबांसी जैसी । वहां गंगा गंगोत्री की तरफ बहती है । बड़ी रहस्य से भरी, क्योंकि उन्होंने बडे असंभव की आकांक्षा की है । महावीर की बात चाहे कितनी ही कठोर मालूम पड़ती हो, लेकिन गणित के समक्ष में आने वाली है । और प्रेमियों की बात चाहे कितनी ही सरल मालूम पडती हो, बड़ी असाध्य मालूम होती है ।

उस दर्द को मांगा, मेरी हिम्मत कोई देखे
जो दर्द की नाकाबिले-दरमा नजर आया ।

प्रेम का दर्द ऐसा है कि असाध्य है; इस कोई इआज नही है ।

उस दर्द को मांगा, मेरी हिम्मत कोई देखे
जो दर्द की नाकाबिले-दरमां नजर आया ।

– जिसका कोई इलाज नहीं, असाध्य है, जिसकी कोई औषधि नही ।

प्रेम एक ऐसी पीडा है, जिसका कोई इलाज नहीं । लेकिन जिसने उस पीडा को स्वीकार कर लिया है, वह धीरे-धीरे पायेगा : पीड़ा मीठी होती जाती है; पीड़ा और मीठी होती जाती है । और एक दिन पता चलता है कि जिसे हमने पहले क्षण में दर्द जाना था, वह दर्द न था; वह उस प्रभु के आने की खबर थी, उसके पगों की ध्वनि थी, आहट थी । हम परिचित न थे, इसलिए दर्द जैसा मालूम हुआ था; या प्रभु इतनी तीव्रता से करीब आया था कि हम झेल न सके थे, हमारी पात्रता न थी; जैसे कि आंख में सूरज एकदम से पड़ गया हो और आंखें चौंधिया जायें और दर्द मालूम पड़े ।

जब परमात्मा की तरफ कोई चल रहा है तो उसने एक ऐसी दीवानगी मांगी है,

जो असंभव जैसी लगती है। यहां संसार में धन नहीं मिलता; यहां संसार में प्रेम-पात्र नहीं मिलता; यहां संसार में कुछ भी नहीं मिलता — ऐसे संसार में हमने परमात्मा को मांगा है। जहां कुछ भी नहीं मिलता; जहां जो दिखाई पड़ने वाली चीजें हैं, वे भी हाथ में पकड़ में नहीं आतीं — वहां हमने अदृश्य को पकड़ना मांगा है! दृश्य पकड़ में नहीं आता, सीमित पर हाथ नहीं बंधते — वहां हमने असीम की अभीप्सा की है!

उस दर्द को मांगा, मेरी हिम्मत कोई देखे
जो दर्द की नाकाबिले-दरमां नजर आया।

राह बड़ी पीड़ा से भरी है, पर पीड़ा बड़ी मधुर है। उसके मार्ग पर लगे कांटे भी अंततः फूल बन जाते हैं।

आज इतना ही।

दिनांक २५ मई, १९७६; श्री रजनीश आश्रम, पूना

सीतंति सुवंताणं, अत्था पुरिसाण लोगसारत्था ।
तम्हा जागरमाणा, विधुणध पोराणयं कम्मं ॥ ३९ ॥

जागरिया धम्मीणं, अहम्मीणं च सुत्तया सेया ।
वच्छाहिवभगिणीए, अकहिंसु जिणो जयंतीए ॥ ४० ॥

पमायं कम्ममाहंसु, अप्पमायं तहाऽवरं ।
तब्भावादेसओ वावि, बालं पंडितमेव वा ॥ ४१ ॥

न कम्मुणा कम्म खवेंति बाला, अकम्मुणा कम्म खवेंति धीरा ।
मेघाविणो लोभमया ववीता, संतोसिणो नो पकरेंति पावं
॥ ४२ ॥

जागरह नरा ! णिच्चं, जागरमाणस्स बड्ढते बुद्धी ।
जो सुवति ण सो धन्नो, जो जग्गति सो सया धन्नो ॥ ४३ ॥

जह दीवा दीवसयं पइप्पए सो य दिप्पय दीवो ।
दीवसमा आयरिया, दिप्पंति परं च दीवेंति ॥ ४४ ॥

मनुष्यो, सतत जाग्रत रहो

जिन-सूत्रों का सार आज के सूत्रों में है – जिन साधना की मूल भित्ति; जिनत्व का अर्थ।

परमात्मा की खोज में दो उपाय हैं। एक उपाय है : उस में ऐसे तल्लीन हो जाना कि तुम न बचो; उसमें ऐसे लीन हो जाना कि लीन होने वाला बचे ही नहीं– जैसे सागर में नमक की डगली डाल दें, खो जाती है, स्वाद फैल जाता है, लेकिन कोई बचता नहीं। दूसरा मार्ग है : खोना जरा भी नहीं; जागना ! इतने जागना कि जागरण ही शेष रह जाये, जागने वाला न बचे।

पहला मार्ग बेहोशी का है, दूसरा मार्ग होश का है, लेकिन दोनों के भीतर सार बात एक है कि तुम न बचो। इसलिए तुम्हें रामकृष्ण जैसे उल्लेख महावीर और बुद्ध के जीवन में न मिलेंगे, कि रामकृष्ण परमात्मा का नाम लेते-लेते बेहोश हो गये, कि घंटों बेहोश पड़े रहे। कभी-कभी दिनों होश में न लौटते। और जब होश में आते तो फिर रोने लगते और कहते कि मां ! यह कहां मुझे बेहोशी की दुनिया में भेज रही हो ? वापिस बुला लो ! उसी गहन बेहोशी में मुझे वापिस बुला लो ! मुझे संसार का होश नहीं चाहिए ! मुझे तुम्हारी बेहोशी चाहिए !

ऐसा उल्लेख महावीर के जीवन में असंभव है; कल्पना में भी नहीं लाया जा सकता; महावीर की जीवन-सरणी में बैठता नहीं। गिर पड़ना बेहोश हो के, यह तो दूर, महावीर एक पैर भी नहीं उठाते बेहोशी में; हाथ भी नहीं हिलाते बेहोशी में; आंख की पलक भी नहीं झपते बेहोशी में।

लेकिन इन दोनों विपरीत दिखाई पड़ने वाले मार्गों के बीच में कुछ सेतु है। वह सेतु स्मरण रखना। भक्त अपने को डुबा देता है – इतना डुबा देता है कि कोई बचता ही नहीं, पीछे लकीर भी नहीं छूट जाती। साधक अपने को जगाता है – इतना जगाता है कि जागरण की ज्योति ही रह जाती है, कोई जागने वाला नहीं बचता। हर हालत में अहंकार खो जाता है – चाहे परिपूर्ण रूप से तल्लीन हो के खो दो और चाहे परिपूर्ण रूप से जाग के खो दो। इन दो अतियों पर परिणाम एक ही होता है। इस-

लिए भक्त और ज्ञानी, प्रेमी और साधक सभी वहीं पहुंच जाते हैं। मार्ग का बड़ा फर्क है, मंजिल का जरा भी फर्क नहीं है।

राह जुदा, सफर जुदा, रहजनो-राहबर जुदा
मेरे जुनूने-शौक की मंजिले बेनिशां है और।

महावीर से पूछो तो वे कहेंगे : राह जुदा, सफर जुदा, रहजनो-राहबर जुदा! यह मेरी राह अलग, इस राह की यात्रा अलग; इतना ही नहीं, मेरी राह पर लूटने वाले और पथ-प्रदर्शक भी अलग! लुटेरे भी मेरी राह के अलग हैं। स्वभावतः होंगे। क्योंकि जहां होश साधना है, वहां लुटेरे अलग होंगे। वहां वही लुटेरे बन जायेंगे जो भक्ति के मार्ग पर पथ-प्रदर्शक होते हैं। जहां होश को गंवा देना है, मस्ती में डूब जाना है, जहां परमात्मा की शराब पी लेनी है – वहां जो सहयोगी है, वह महावीर के मार्ग पर लुटेरा हो जायेगा। महावीर के मार्ग पर जो सहयोगी है, पथ-प्रदर्शक है, राहबर है, वह भक्ति के मार्ग पर लुटेरा हो जायेगा।

ध्यान भक्ति के मार्ग पे लुटेरा हो जायेगा, वहां प्रार्थना पथ-प्रदर्शक है। महावीर के मार्ग पर प्रार्थना लुटेरा हो जायेगी; वहां ध्यान पथ-प्रदर्शक है। लेकिन मंजिल पे जा के सब मिल जाते हैं। क्योंकि पहुंचना उस जगह है जहां तुम अशेष भाव से, कुछ भी बचे न, परिपूर्ण रूप से मुक्त हो जाओ।

इसे भी खयाल में ले लेना। साधारणतः हम सोचते हैं, मैं मुक्त हो जाऊंगा, तो ऐसा लगता है कि मैं तो बचूंगा – मुक्त हो के बचूंगा। लेकिन जो गहरे उतरते की कोशिश करेंगे या जिन्होंने सच में ही समझना चाहा है – मैं मुक्त हो जाऊंगा, इसका केवल इतना ही अर्थ होता है कि 'मैं' से मुक्त हो जाऊंगा। 'मैं'-भाव चला जायेगा। 'मैं'-भाव जहां तक है वहां तक मुक्ति नहीं है। जहां 'मैं'-भाव विसर्जित हो जाता है, वहीं मुक्ति है। 'मैं'-भाव को विसर्जित करने के दो उपाय हैं : या तो डुबा दो, या जगा लो।

ऐसा समझो, पतंजलि ने योग-सूत्रों में मनुष्य के चित्त की तीन दशायें कही हैं। एक है सुषुप्ति। एक है जाग्रत। एक है स्वप्न। जिस दशा में हम साधारणतः हैं, वह स्वप्न की दशा है, कामना की, विचारणा की, ऊहापोह की, हजार-हजार वासनाओं की। स्वप्न की दशा है। इस स्वप्न की दशा के दोनों तरफ एक-एक दशायें हैं : एक सुषुप्ति की और एक जागृति की। इस स्वप्न की दशा से मुक्त होना है। इस स्वप्न की दशा में ही तुमने स्वप्न देख लिया है कि तुम हो। यह तुम्हारा स्वप्न है। या तो सुषुप्ति में खो जाओ, जहां स्वप्न न बचे; या जाग्रत हो जाओ, जहां स्वप्न के बाहर आ जाओ।

तो स्वप्न के बीच में हम खड़े हैं। स्वप्न यानी संसार। इसलिए तो शंकर उसे माया कहते हैं। वह स्वप्न की दशा है। वहां जो नहीं है, वह हम देख रहे हैं। और वहां जो है, वह हमें दिखाई नहीं पड़ रहा है। वहां हम जो देख रहे हैं, वह हमारा

ही प्रक्षेपण है। वहां जिसमें हम जी रहे हैं, वह हमारी ही कामना, हमारी ही आशा, हमारी ही भावना है। सत्य से उसका कोई संबंध नहीं। वह हमारी निर्मिति है।

तुमने स्वप्न में देखा ! स्वप्न देखते समय तो ऐसा ही लगता है कि सब सच है; ऐसा ही लगता है कि कुछ भी असत्य नहीं है। सुबह जाग के पता चलता है कि अरे, एक सपने में खो गये थे, इतना सत्य मालूम पड़ा था !

रोज-रोज तुम सपना देखे हो, रोज-रोज सुबह पाया है कि असत्य है; फिर भी जब रात घनी होती है, फिर नींद में डूब जाते हो, फिर सपना तरंगित होने लगता है, फिर भूल जाते हो, वह याद काम नहीं आती।

स्वप्न की दशा से बाहर होने के दो उपाय हैं। या तो सुषुप्ति में डूब जाओ। रामकृष्ण और भक्तों ने सुषुप्ति का उपयोग किया है स्वप्न से मुक्त होने के लिए। महावीर और बुद्ध और पतंजलि ने जागृति का उपयोग किया है स्वप्न से मुक्त होने के लिए। लेकिन असली बात स्वप्न से मुक्त होना है। या इस किनारे या उस किनारे, यह मंझधार में न रह जाओ !

महावीर के ये सूत्र जागरण के सूत्र है। इनका सार-भाव है . जागो !

मैंने सुना है, एक आदमी भर-दुपहर भागा हुआ शराब-घर में आया। उसने कलारिन से कहा कि एक बात पूछने आया हू। बड़ा बेचैन और परेशान था। जैसे कुछ गंवा बैठा हो, कुछ बहुत खो गया हो।

'एक बात पूछनी है : क्या रात मैं यहाँ आया था ? '

' जरूर आये थे। '

' कई लोगों के साथ आया था ? '

' कई लोगों के साथ आये थे। '

' सबको शराब पिलवाई थी, खुद भी पी थी ? '

' जरूर पिलवाई थी और पी थी। '

वह आदमी बोला, ' शुक्र खुदा का ! सौ रुपये चुकाये थे ?

उसने कहा, ' बिलकुल चुकाये थे। '

उसने कहा, ' तब कोई हर्जा नहीं। '

वह बड़ा प्रसन्न हो गया। उस कलारिन ने पूछा कि मैं कुछ समझी नहीं, बात क्या है ? उसने कहा, ' मैं तो यह सोच रहा था कि सौ रुपये कहीं गंवा बैठा। इस लिए परेशान था। '

बेहोश आदमी भी सोचता है कि कहीं गंवा तो नहीं बैठा ! लेकिन बेहोशी में कमाओगे कैसे, गंवाओगे ही ! चाहे शराब पीने में गंवाये हों, चाहे किसी बगीचे की बैंच पर भूल आये होओ। शायद बगीचे की बैंच पे भूल आना ज्यादा बेहतर था; सौ रुपये ही गंवाते, कम से कम होश तो न गंवाया होता ! लुट जाना बेहतर था,

यह तो लुट जाने से बदतर दशा है। पर वह आदमी बोला, 'शुक्र खुदा का! मैं तो डर रहा था कि कहीं रुपये गंवा तो नहीं बैठा।'

जिंदगी के अंत में अधिक लोग ऐसी ही दशा में पाते हैं। सोचते हैं, कहीं जिंदगी गंवा तो नहीं बैठे! लेकिन कितने ही बड़े मकान बना के छोड़ जाओ और कितने ही धन की राशियां लगा जाओ, इससे क्या फर्क पड़ता है? जिंदगी तो गई और गई। जिंदगी तो राख हो गई। मकान बना आये, खंडहर बनेंगे। बड़ी दौड़-धूप की थी, बड़ी तिजोड़ियां छोड़ आये – कोई और उनकी मालकियत करेगा। तुम्हारे हाथ तो खाली है। इससे तो बेहतर होता कि तुम बैठे ही रहते और तुमने कुछ न किया होता, तो कम-से-कम तुम उतने पवित्र तो रहते जितने जन्म के समय थे। यह तो सारी आपाधापी तुम्हे और भी अपवित्र कर गई। यह तो तुम और भी शराब से भर के विदा हो रहे हो। यह तो तुम और जहर ले आये।

जिंदगी से कमाया तो कुछ भी नहीं, एक नयी मौत और कमाई, फिर जन्मने की वासना कमाई। यह कोई कमाना हुआ? जिसे तुम जिंदगी कहते हो, महावीर उसे स्वप्न कहते हैं। और जिसे तुम जागरण कहते हो, वह जागरण नहीं है; वह सिर्फ खुली आख देखा गया सपना है।

हम दो तरह के सपने देखते हैं: एक, रात जब हम आख बंद कर लेते हैं, और एक तब जब सुबह हम आख खोल लेते हैं। लेकिन हमारा सपना सतत चलता है। महावीर के हिसाब से सपने से तो तुम तभी मुक्त होते हो, जब तुम्हारा मन ऐसा निष्कलुष होता है कि उसमें एक भी विचार की तरग नहीं उठती। जब तक तरगें हैं, तब तक स्वप्न है। जब तक तुम्हारे भीतर कुछ चित्र घूम रहे हैं और तुम्हारे चित्त पर तरंगे उठ रही हैं –'यह हो जाऊ यह पा लू, यह कर लू, यह बन जाऊ'– तब तक तुम स्वप्नो मे दबे हो। फिर तुम्हारी आख खुली है या बंद, इससे बहुत फर्क नहीं पडता। तुम बेहोश हो। महावीर के लिए तो होश तभी है, जब तुम्हारा चित्त निर्विचार हो।

तो जागरण का अर्थ समझ लेना। जागरण का अर्थ तुम्हारा जागरण नहीं है। तुम्हारा जागरण तो नींद का ही एक ढग है। महावीर कहते हैं जागरण चित्त की उस दशा को, जब चैतन्य तो हो लेकिन विचार की कोई तरंग में छिपा न हो; कोई आवरण न रह जाय विचार का; शुद्ध चैतन्य हो; बस जागरण हो। तुम देख रहे हो और तुम्हारी आंख मे एक भी बादल नहीं तैरता – किसी कामना का, किसी आकांक्षा का। तुम कुछ चाहते नहीं। तुम्हारा कोई असंतोष नहीं है। तुम जैसे हो, उसमे तुम परम राजी हो। एक क्षण को भी तुम्हारा यह राजीपन, तुम्हारा यह स्वीकार जग जाये और तुम जगत को खुली आंख से देख लो – आंख जिस पे सपनों की पर्त न हो, आख जिस पर सपनों की धूल न हो; ऐसे चैतन्य से दर्पण स्वच्छ हो और जो सत्य है वह झलक जाये – तो तुम्हारी जिंदगी में पहली दफा, वह यात्रा

शुरू होगी जो जिनत्व की यात्रा है। तब तुम जीतने की तरफ चलने लगे। सपने में तो हार ही हार है।

जिन यानी जीतने की कला। जिनत्व यानी स्वयं के मालिक हो जाने की कला। हमने और सबके तो मालिक होना चाहा है—धन के, पत्नी के, पति के, बेटे के, राज्य के, साम्राज्य के—हमने और का तो मालिक होना चाहा है, एक बात हम भूल गये हैं, बुनियादी, कि हम अभी अपने मालिक नहीं हुए। और जो अपना मालिक नहीं है, वह किसका मालिक हो सकेगा! वह गुलामों का गुलाम हो जायेगा।

पहला सूत्र :

'सीतंति सुवंताणं, अत्था पुरिसाण लोगसारत्था।'

'इस जगत में ज्ञान सारभूत अर्थ है।'

इस जगत में बोध सारभूत अर्थ है। अवेयरनेस !

'सीतंति सुवंताणं, अत्था पुरिसाण लोगसारत्था।

तम्हा जागरमाणा, विधुणध पोराणयं कम्मं॥'

'अतः सतत जागते रह कर पूर्वार्जित कर्मों को प्रकम्पित करो। जो पुरुष सोते है, उनका अर्थ नष्ट हो जाता है।'

जीवन में हमारे भी अर्थ है, कोई मीनिंग है। हम भी कुछ पाना चाहते हैं। हां, हमारे भी कुछ बहाने हैं। अगर आज मौत आ जाये तो तुम कहोगे, 'ठहरो! कई काम अधूरे पड़े हैं। न मालूम कितनी यात्राएं शुरू की थीं, पूरी नहीं हुई। ऐसे बीच में उठा लोगी तो अर्थ अधूरा रह जायेगा। अभी तो अर्थ भरा नहीं। अभी तो अभिप्राय पूरा हुआ नहीं। रुको।'

सिकन्दर, नेपोलियन साम्राज्य बनाने में जीवन का अर्थ देख रहे हैं। कोई कुछ और करके जीवन का अर्थ देख रहा है। लेकिन महावीर कहते हैं: इस जगत में बोध सारभूत अर्थ है। और कुछ भी नहीं—न धन, न पद, न प्रतिष्ठा।

'जो पुरुष सोते हैं उनका यह अर्थ नष्ट हो जाता है।'

अर्थ तुम्हारे भीतर है और तुम्हीं सो रहे हो तो अर्थ का जागरण कैसे होगा? तुम्हारे जागने में ही तुम्हारे जीवन का अर्थ जागेगा।

मेरे पास अनेक लोग आते हैं। वे कहते हैं, जीवन का अर्थ क्या है? जैसे कि अर्थ कोई बाहर रखी चीज है, जो कोई बता दे कि यह रहा! जैसे तुम पूछो, सूरज कहां है, कोई बता दे कि वह रहा आकाश में!

लोग पूछते हैं, जीवन का अर्थ क्या है? जैसे अर्थ कोई बनी-बनाई, रेडीमेड वस्तु है, जो कहीं रखी है और तुम्हें खोजनी है।

जीवन में अर्थ नहीं है। अर्थ तुममें है! और तुम जागोगे तो जीवन में अर्थ फैल जायेगा। और तुम सोये रहोगे तो जीवन निरर्थक हो जायेगा। फिर इस निरर्थकता के खालीपन से बड़ी घबड़ाहट होती है, तो आदमी झूठे-झूठे अर्थ कल्पित कर लेता

है। वे सहारे हैं, सांत्वनाएं हैं। तो कोई कहता है, बच्चों को बड़े करना है। लगा रहता है, व्यस्त रहता है। क्योंकि जब भी कोई अर्थ नहीं मालूम पड़े बाहर, तो भीतर की निरर्थकता मालूम होती है। बच्चों को बड़े करना है। तुम्हारे पिता भी यही करते रहे, उनके पिता भी यही करते रहे। ये बच्चे बड़े किसलिए हो रहे हैं – ये भी यही करेंगे। ये भी बच्चे बड़े करेंगे।

इसका मतलब क्या है? प्रयोजन क्या है? अगर तुम्हारे पिता तुमको बड़ा करते रहे और तुम अपने बच्चों को बड़ा करते रहोगे, तुम्हारे बच्चे उनके बच्चों को बड़ा करते रहेंगे, तो इस बड़े करने का प्रयोजन क्या है? इस सतत सक्रियता का अर्थ क्या है? इसमें कुछ अर्थ तो नहीं है। यह तो तुम्हें भी कभी-कभी झलक जाता है।

धन ही इकट्ठा कर लोगे तो क्या होगा? अन्ततः आती है मौत! सब हाथ खाली हो जाते हैं! सब छिन जाता है। जो छिन ही जायेगा, उसे पकड़-पकड़ के क्या होगा? लेकिन कम-से-कम बीच में कुछ अर्थ है, प्रयोजन हैं – इस तरह की भ्रांति तो पैदा हो जाती है।

लोग अजीब-अजीब अर्थ पैदा कर लेते हैं।

एक युवक मेरे पास आया। अपनी प्रेयसी को ले के आया और उसने कहा कि मुझे विवाह करना है। मैंने कहा कि अभी तेरी उम्र बीस साल से ज्यादा नहीं है, अभी इतनी जल्दी बोझ क्यों लेता है? अभी दो-चार-पांच साल और मुक्त रह के गुजर सकते हैं। इतने उत्तरदायित्व लेने की अभी जरूरत कहां है? अभी तू स्कूल में पढ़ता है। थोड़ा रुक! पढ़-लिख ले।

उसने कहा, 'उत्तरदायित्व लेने के लिए ही तो विवाह करना चाहता हूं; अन्यथा खाली-खाली मालूम पड़ रहा है। मेरे ऊपर कोई उत्तरदायित्व नहीं है।' धनी घर का लड़का है। सब सुविधा है। 'खाली-खाली मालूम हो रहा हूं। शादी कर लूंगा तो कुछ भरापन हो जायेगा।'

अभी अमरीका में एक आदमी पर मुकदमा चलता था, क्योंकि उसने सात आदमियों को गोली मार दी थी – अकारण, अपरिचित अजनबियों को; ऐसे लोगों को जिनका चेहरा भी उसने नहीं देखा था, पीछे से। सागर-तट पे कोई बैठा था, उसने पीछे से आ के गोली मार दी। एक ही दिन में सात आदमी मार डाले। बामुश्किल पकड़ा जा सका। पकड़े जाने पे अदालत में जब पूछा गया कि तूने किया क्यों; क्योंकि इनसे तेरी कोई दुश्मनी न थी; दुश्मनी तो दूर, पहचान भी न थी। तो उसने कहा कि मेरा जीवन बड़ा खाली-खाली है; मैं कुछ काम चाहता था; किसी चीज से अपने को भर लेना चाहता था। मैं चाहता हूं कि लोगों का ध्यान मेरी तरफ आकर्षित हो। और वह काम हो गया। अब मुझे फिक्र नहीं, तुम फांसी दे दो! लेकिन सब अखबारों में मेरा फोटो भी छप गया, सभी अखबारों में नाम

भी छप गया। आज हजारों लोगों की जबान पे मेरा नाम है, यह तो देखो !

लोग कहते हैं, बदनाम हुए तो क्या, कुछ नाम तो होगा ही ।

राजनीतिज्ञों में और अपराधियों में बहुत फर्क नहीं है । राजनीतिज्ञ समाज-सम्मत व्यवस्था के भीतर नाम को कमाने की चेष्टा करता है । अपराधी समाज-सम्मत व्यवस्था नहीं खोज पाता, समाज के विरोध में भी कुछ करके नाम पाने की आकांक्षा करता है । इसलिए अगर कोई राजनीतिज्ञ बहुत दिनों तक राजनीति को न पा सके तो उपद्रवी हो जाता है, क्रिमिनल हो जाता है, अपराधी हो जाता है । क्योंकि मूल आकांक्षा है : लोगों का ध्यान आकर्षित करना । मूल आकांक्षा है : लोगों को लगे कि मैं कुछ हूं; दुनिया कहे कि तुम कुछ हो, तुम्हारा कुछ अर्थ है । तुम ऐसे ही आये और चले नहीं गये; तुमने बड़ा शोर मचाया । तुम्हारा आना एक तूफान की तरह था । दुनिया को तुम्हारे ऊपर ध्यान देना पड़ा ।

तुमने कभी खयाल किया ? तुम वस्त्र भी इसीलिए पहनते हो ढंग-ढंग के कि ध्यान पड़े, कोई देखे । स्त्रियां देखीं, नयी साड़ियां पहन के आ जाती हैं तो बड़ी बेचैन रहती हैं, जब तक कोई पूछ न ले, कहां खरीदी; जब तक कोई साड़ी का पोत न देखे और प्रशंसा न कर दे ।

तुमने वह कहानी तो सुनी होगी । बड़ी पुरानी कहानी है कि एक औरत ने अपने घर में आग लगा ली थी और जब लोग आये तब वह हाथ ऊंचे-ऊंचे उठा के चिल्लाने लगी कि हे परमात्मा ! नष्ट हो गई, मर गई, लुट गई ! तब किसी औरत ने पूछा, 'अरे ! ये कंगन तो हमने देखे ही नहीं, कब बनवाये ? ' उसने कहा कि नासमझ, पहले ही पूछ लेती तो घर में आग क्यों लगाना पड़ती ! यह गाव भर की राह देखती रही, कंगन बनाये है, कोई पूछेगा ! किसी ने न पूछा ।

जब झोपड़े में आग लगी और आग की रोशनी उठी और कंगन चमकने लगे और वह हाथ उठाने का मौका आया कि अब चिल्ला-चिल्ला के, हाथ हिला-हिला के वह कह सकती है ... !

तुम जरा अपने पे गौर करना । हम सभी कंगन दिखाने निकले हैं, चाहे घर में आग लगा के भी दिखाना पड़े । लेकिन ऐसा न हो कि हम ऐसे ही विदा हो जायें, किसी को पता भी न चले कि कब आये, कब चले गये, कब उठे, कब बैठे, कब जन्मे । इस कंगन दिखाने को लोग कहते हैं, अरे ! कुछ नाम कर जाओ । कहते हैं, कुछ नाम छोड़ जाओ इतिहास में । तो तैमूरलंग और चंगेज और नादिरशाह इतिहास में नाम छोड़ जाते हैं, हजारों लोगों को आग लगवा के, हजारों लोगों को काट के ।

कहते हैं, एक वेश्या तैमूर के शिविर में नाचने आयी थी । जब वह रात जाने लगी तो वह डरती थी, क्योंकि रास्ता अंधेरा था । और कोई दस-बारह मील दूर उसका गांव था । तो तैमूर ने कहा, घबड़ा मत । उसने अपने सैनिकों से कहा कि

इसके रास्ते में जितने गांव पड़े, आग लगा दो! थोड़े सैनिक भी झिझके कि यह जरा अतिशय मालूम पड़ता है। एक मशाल से ही इसको पहुंचाया जा सकता है! लेकिन तैमूरलंग ने कहा, 'इतिहास याद नहीं रखेगा मशाल से पहुंचाओगे तो। पता रहना चाहिए आने वाले हजारों सालों को कि तैमूरलंग की वेश्या थी, कोई साधारण वेश्या न थी। उसके द्वार में, दरबार में नाचने आयी थी।' कोई आठ-दस छोटे-छोटे गांवों में, जो रास्ते में पड़ते थे, आग लगा दी गई। गांव में लोग सो रहे थे, उनको पता भी नहीं था, आधी रात — ताकि रास्ता रोशन हो जाये। वेश्या उन जलती हुई लाशों के बीच से अपने गांव पहुंच गई।

तुमने कभी खयाल किया है कि तुम कितने उपाय करते हो कि किसी तरह लोगों का ध्यान आकर्षित हो जाये। अर्थ नहीं है जीवन में तो तुम झूठे अर्थ पैदा करने की कोशिश करते हो — कोई कह दे कि 'तुम बड़े सार्थक हो! तुम जो कर रहे हो वह मूल्यवान है! तुम बड़ा ऊंचा काम कर रहे हो!' तुमसे कोई कुछ भी करवा ले सकता है, बस तुमसे यह कह दिया जाये कि तुम कोई बड़ा काम कर रहे हो, बड़ा ऊंचा, बड़ा महत्त्वपूर्ण!

इस जगत में बोध के अतिरिक्त और कोई अर्थ नहीं है। और जितने अर्थ तुम खोजते हो, उन सब से तुम्हारी बेहोशी घनी होती है, बढ़ती है, जागरण नहीं आता।

'जो पुरुष सोते हैं उनके अर्थ नष्ट हो जाते हैं। अतः सतत जागते रह कर पूर्वार्जित कर्मों को प्रकम्पित करो।' पुरानी आदतें पड़ी हैं बहुत, उनको हिलाओ, डुलाओ, ताकि उनसे छुटकारा हो सके, वे ढीली हो जायें! बड़ा बहुमूल्य वचन है: 'अतः सतत जागते रह कर पूर्वार्जित कर्मों को प्रकम्पित करो।' हिलाओ — जैसे वृक्ष को कोई हिलाये और उसकी जड़ें उखड़ जायें। अब पानी मत सींचो और! ऐसे ही क्या कम दुख भोगा है। ऐसे ही क्या कम भटके हो। पानी मत सींचो! लेकिन जो हमें जगाता है, वह दुश्मन मालूम पड़ता है, क्योंकि वह हिलाता है।

आस्पेमंकी ने अपनी किताब 'इन सर्च आफ द मिरेकुलस' अपने गुरु गुरजिएफ को समर्पित की है, तो उसमें लिखा है: गुरजिएफ के लिए — 'जिसने मेरी नींद को तोड़ दिया'।

लेकिन जब कोई तुम्हारी नींद तोड़ता है तो सुखद नहीं मालूम होता। जब कोई तुम्हारी नींद तोड़ता है तो तुम्हें लगता है दुश्मन। इसलिए जगत में नींद तोड़ने वाले सदा दुश्मन मालूम पड़े हैं। सुकरात को हमने ऐसे ही जहर नहीं पिला दिया था, और न जीसस को हमने ऐसे ही सूली पे लटका दिया, न हमने महावीर को ऐसे ही पत्थर मारे और कान में खीलें ठोंके। यह अकारण नहीं था। ये लोग नींद तोड़ रहे थे। ये अलार्म की तरह थे। तुम जब मजे से सो रहे थे और सुबह का आखिरी सपना देख रहे थे, तब ये बीच में आ गये और उन्होंने उपद्रव मचा दिया कि जागो! तुम्हारा भाव तो इन दो पंक्तियों में प्रगट हुआ है।

न अजां हो, न सहर हो, न गजर हो शबे-वस्ल
क्या मजा हो जो किसी को न जगाए कोई।

न अजां हो — न तो मस्जिद में कोई अजान पढ़े; न सहर हो — न सुबह हो, न सूरज उगे; न गजर हो — न कोई मंदिर में घंटियों को बजाये; मिलन की रात ! क्या मजा हो जो किसी को न जगाये कोई !

सोने में हमारी बड़ी आतुरता है। जिसको हम सुख कहते हैं, अगर तुम गौर से पाओगे तो वह एक मधुर सपना देखने से ज्यादा नहीं है। जिसको हम सुखी जिंदगी कहते हैं, वह ऐसी जिंदगी है, जिसमें मधुर सपनों का काफी जाल है। जिसको हम दुखद जिंदगी कहते हैं, वह भी सपनों की ही जिंदगी है; उसमें सपने दुख से भरे हैं, नाइटमेयर जैसे हैं। लेकिन सपना तो सपना है। तुम सुखद सपने देख कर भी एक दिन मर जाओगे तो क्या होगा ?

इसलिए महावीर कहते हैं, अर्थ बाहर नहीं है; अर्थ तो तुम्हारे भीतर की ज्योति के प्रज्ज्वलित हो जाने में है। तुम्हारी रोशनी तुम्हारे जीवन को भर दे और सपनों को तितर-बितर कर दे। और तुमने अब तक पूर्व जन्मों में जो अर्जित कर्म किये है, जिनके कारण जड़ें मजबूत हो गई हैं सपनों की, जिनके कारण सपने सत्य मालूम होते हैं, जिनके कारण जो नहीं है वह बहुत वास्तविक मालूम हो रहा है — उसको हिलाओ, प्रकम्पित करो ! उन जड़ों को तोड़ो और उखाड़ो !

'धार्मिकों का जागना श्रेयस्कर है और अधार्मिकों का सोना श्रेयस्कर है।' बड़ा बहुमूल्य वचन है ! महावीर कहते हैं, धार्मिकों का जागना श्रेयस्कर है और अधार्मिकों का सोना श्रेयस्कर है।

नादिरशाह के जीवन में भी ऐसा उल्लेख है। उसने एक सूफी फकीर को पूछा, क्योंकि वह खुद बहुत आलसी था और सुबह दस बजे के पहले नहीं उठता था। रात देर तक नाच-गान चलता, शराब चलती, तो सुबह दस-बारह बजे उठता। उसने एक सूफी फकीर को पूछा कि मेरे दरबारी मुझ से कहते हैं कि इतना आलस्य ठीक नहीं है, तुम क्या कहते हो ? उस सूफी फकीर ने महावीर का यह वचन दोहराया मालूम होता है; क्योंकि बिलकुल यही वचन उसने दोहराया। उसने कहा, आप तो अगर बिलकुल सोयें चौबीस घंटे तो अच्छा है। नादिरशाह थोड़ा चौंका। उसने कहा, 'तुम्हारा मतलब ?' उसने कहा, 'आप जैसे व्यक्ति जितनी देर सोयें, उतना ही उपद्रव कम ! आप तो सोये ही रहें।'

महावीर कहते हैं, धार्मिकों का जागना श्रेयस्कर है; अधार्मिकों का सोना श्रेयस्कर है। क्योंकि अगर अधार्मिक सक्रिय हो उठे, तो अधर्म ही करेगा। महावीर यह कह रहे हैं कि अधार्मिक का तो शक्तिहीन होना अच्छा है; धार्मिक का शक्तिशाली होना अच्छा है। महावीर यह कह रहे हैं, धार्मिक के पास बल हो तो धर्म घटेगा; अधार्मिक के पास बल होगा तो अधर्म घटेगा, वह कुछ न कुछ उपद्रव करेगा। राज-

नीतिज्ञ बीमार रहें तो अच्छा है; अस्पतालों में रहें तो अच्छा है। ठीक हुए कि वे कुछ उपद्रव करेंगे। बिना उपद्रव किये वे रह नहीं सकते हैं। उपद्रव के लिए अच्छे-अच्छे नाम देंगे। उपद्रव को सजायेंगे, शृंगारेंगे। उपद्रव को क्रांति, स्वतंत्रता, समानता, साम्यवाद, न मालूम क्या-क्या नाम देंगे ! लेकिन बहुत गहरे में उपद्रव की आकांक्षा है। खाली वे बैठ नहीं सकते।

महावीर व्यंग्य कर रहे हैं। वे यह कह रहे हैं कि अधार्मिक सोये रहें तो ठीक; धार्मिक जागें।

इसलिए महावीर की पूरी प्रक्रिया यह है कि तुम जागो भी, साथ-ही-साथ तुम धार्मिक भी होते चलो; धार्मिक होते चलो और साथ-ही-साथ जागते भी चलो। अन्यथा शक्ति भी गलत हाथों में पड़ के खतरनाक सिद्ध होती है। ऐसा ही तो हुआ है, विज्ञान ने शक्ति सोये हुए आदमियों के हाथ में दे दी। ऐसा नहीं है कि पहली दफा वैज्ञानिकों को अणु की शक्ति का पता चला है। महावीर भी अणुवादी थे। जैन-दर्शन दुनिया का सबसे प्राचीन अणुवादी दर्शन है। आइंस्टीन और रदरफोर्ड ने जो इस सदी में पाया है, वह जैन कोई पांच हजार साल से कहते रहे हैं कि पदार्थ अणुओं का समूह है, पदार्थ अणुओं से बना है।

अणु का सिद्धांत जैनियों का प्राचीनतम सिद्धांत है। और जैसे-जैसे विज्ञान साफ होता जा रहा है, वैसे-वैसे पुराने शास्त्रों के अर्थ साफ होते जा रहे हैं। ऐसा लगता है कि अणु-शक्ति को खोज लिया गया था ! संभवत: महाभारत का अंत अणुशक्ति से ही हुआ। लेकिन फिर एक बात समझ में पूरब को आ गई कि जब तक लोग सोये हुए हैं, इतनी शक्ति उनके हाथ में होना खतरनाक है; उसका दुरुपयोग होगा। शक्ति उसके हाथ में होनी चाहिए, जिसके भीतर सद्भाव पहले आ गया हो, तो फिर ठीक है। नहीं तो शक्ति का तुम करोगे क्या ? तुमने लार्ड बेकन का प्रसिद्ध वचन सुना होगा — पावर करप्ट्स एंड करप्ट्स एब्सोल्यूटली — कि शक्ति जिनके हाथ में है वह लोगों को व्यभिचारित कर देती है और परिपूर्ण रूप से व्यभिचारित कर देती है। लेकिन वह वचन सत्य होते हुए भी पूर्ण सत्य नहीं है। शक्ति किसी को व्यभिचारित नहीं करती। शक्ति केवल तुम्हारे भीतर जो व्यभिचार पड़ा था, उसे प्रगट करती है।

तुम देखते हो, एक आदमी के पास कुछ भी नहीं है तो वह शराब नहीं पीता; वह शराब के खिलाफ है। फिर कल अचानक लॉटरी हाथ लग जाती है, फिर वह शराब पीने लगता है। अब वह भूल जाता है सब शराब की खिलाफत। तो लोगों को ऐसा लगता है कि धन ने इसे भ्रष्ट किया। बात गलत है। धन न होने से यह अपने को समझाता था, अंगूर खट्टे हैं। पीना भी चाहता तो पीता कहां से ? तो नीति के, धर्म के वचन दोहराता था। अब जब धन हाथ में आ गया, सब भूल गया।

इस देश में ऐसा हुआ। स्वतंत्रता-संग्राम के दिनों में जो लोग बड़े त्यागी-तपस्वी

मालूम पड़ते, वे कोई त्यागी-तपस्वी थे नहीं। क्योंकि परीक्षा तो तब है जब शक्ति हाथ में आई। जब शक्ति हाथ में न थी तब तो कोई भी त्यागी-तपस्वी होता है। जब शक्ति हाथ में आई, राज्य रूपांतरित हुआ और तथाकथित त्यागी-तपस्वी सत्ताधारी बने, तत्क्षण त्याग-तपश्चर्या सब समाप्त हो गई। लगेगा शायद सत्ता ने उन्हें भ्रष्ट किया; नहीं, सत्ता ने केवल अवसर दिया, तो जो भ्रष्ट होने के बीज भीतर पड़े थे उन पे वर्षा हुई। बीज तो थे ही। क्योंकि तुम्हारा धन तुम्हें कैसे भ्रष्ट कर सकता है, अगर तुम्हीं भ्रष्ट होने को पूर्व से तैयार न थे? तुम सिर्फ धन की प्रतीक्षा कर रहे थे। धन आ गया, संयोग मिल गया; अब रुकने की कोई जरूरत न रही अब रुके, वह बिलकुल पागल है। अब तक रुके थे, वह तो कारण यह था कि अपनी पहुंच के बाहर थे अंगूर। इसलिए कहते थे, खट्टे हैं। अब नसेनी हाथ लग गई, अब कौन रुकेगा! अब रुकना असंभव है।

सत्ता हाथ में आते ही लोग भ्रष्ट हो जाते हैं – इसलिए नहीं कि सत्ता भ्रष्ट करती है, बल्कि इसलिए कि सत्ता अवसर देती है। तो जो तुम्हारे भीतर छिपा था वह प्रगट हो जाता है। अगर तुम्हारे भीतर काव्य छिपा था, हाथ में सत्ता आते ही काव्य प्रगट होगा। क्योंकि तुम कहोगे, अब सुविधा मिली, अब दौड़-धूप न रही, धन हाथ आ गया – अब घर बैठ के गीत गुनगुना लें! अब तक तो मजदूरी करनी पड़ती थी, गड्ढा खोदना पड़ता था, समय व्यर्थ होता था, शक्ति व्यय होती थी – गीत गाने का अवसर कहां था! अब गीत गाने का अवसर मिला है।

तो धन अगर सम्यक् हाथों में पड़े तो शुभ है; असम्यक् हाथों में पड़ जाए तो अशुभ है। इसलिए तुम मेरी बात खयाल रखना। मैं तुमसे यह नहीं कहता कि धन छोड़ो। धन में क्या रखा है? तुम्हारे हाथ बदलने चाहिए। तो जो धन को छोड़ के भाग जाते हैं – तथाकथित त्यागी – वे केवल अवसर को छोड़ के भाग रहे हैं; बीज का क्या होगा? बीज तो भीतर है। वह तो साथ ही चला जायेगा। फिर वे धन से डरने लगेंगे, क्योंकि उनको बात समझ में आ जायेगी, तर्क साफ हो जायेगा कि धन हाथ आया कि उपद्रव शुरू होता है। लेकिन धन कहीं उपद्रव ला सकता है? चांदी के ठीकरे उपद्रव ला सकते हैं? तब तो चांदी के ठीकरे आत्मा से भी ज्यादा बलवान हो गये। चांदी के ठीकरे उपद्रव नहीं ला सकते – उपद्रव तुम्हारे भीतर पड़ा है।

इसलिए मैं कहता हूं, वास्तविक त्यागी की परीक्षा संसार के भीतर है, बाहर नहीं। भगोड़े की बात और है, लेकिन वास्तविक त्यागी की परीक्षा संसार के भीतर है। वहीं पता चलेगा। जो महल में रह के फकीर की तरह रह जाये – वहीं पता चलेगा। जो स्त्री-पुरुषों के बीच रह के अकेला रह जाये – वहीं पता चलेगा। जहां सब साधन थे, लेकिन फिर भी जो अकंपित रहे – वहीं पता चलेगा।

इसलिए अगर कोई मुझसे पूछे कि त्याग की अगर परम प्रतिमा बतानी हो, तो

मैं महावीर को न बताऊंगा, मैं कृष्ण को बताऊंगा। महावीर परम त्यागी हैं, लेकिन परीक्षा की सीमा के बाहर हैं। परीक्षा कभी भी नहीं हुई। जहां उपद्रव खड़ा होता है, वहां से दूर हैं। लेकिन कृष्ण परीक्षा से भी गुजर गये हैं। मैं जनक को बताऊंगा। साम्राज्य है। सारा साम्राज्य का जाल है। और उसके बीच बाहर हैं।

तो मैं तुमसे भागने को नहीं कहता। और महावीर का भी वचन तुम ठीक से समझो, तो वे भी जागने को कह रहे हैं, भागने को नहीं कह रहे हैं। हां, यह हो सकता है कि जाग के तुम्हें यहां रहना अर्थहीन मालूम पड़े, जैसा कि महावीर को मालूम पड़ा। और तुम्हारी स्वाभाविक नियति तुम्हें दूर वनों और उपवनों में ले जाये कि पहाड़ों में ला जाये, तो ठीक है। लेकिन, तुम संसार को छोड़ के नहीं जा रहे हो। तुम्हारे छोड़ने में कोई प्रयास नहीं है। तुम सहज अपने स्वभाव के अनुकूल, जो तुम्हें ठीक पड़ रहा है, उस तरफ जा रहे हो। इसमें फर्क है।

एक आदमी जो बाजार को छोड़ के भागता है, जो बाजार से डर के भागता है, उसका अभी बाजार में अर्थ खोया नहीं है। अगर अर्थ खो जाये तो डर कैसा? और एक आदमी, जो बाजार में अर्थ पाता ही नहीं, इसलिए चला जाता है। ये दोनो जाते हुए मालूम पड़ेंगे, लेकिन दोनों के भीतर क्रांतिकारी फर्क है।

ऐसा समझो कि एक रस्सी पड़ी है। तुम गुजरे पास से, तुमने सांप समझ लिया और तुम भागे। तुम पूरब की तरफ जा रहे थे, तुम पूरब की तरफ ही भागे, लेकिन घबड़ा के भागे। क्योंकि सांप में तुम्हें भय मालूम पड़ा। फिर एक और आदमी आ रहा है। उसने भी गौर से देखा और उसे सांप नहीं दिखाई पड़ा, रस्सी ही दिखाई पड़ी। उसको भी पूरब जाना है, वह भी पूरब जा रहा है। लेकिन जो घबड़ा के भागा है उसमें और जो रस्सी को देख के जा रहा है, बुनियादी फर्क है। दोनों एक ही दिशा में जा रहे हैं। लेकिन जो भाग गया है उसके भागने के पीछे अभी अंधकार है, अंधेरा है, अज्ञान है। और जो जाग के जा रहा है, उसके जाने में प्रकाश है, ज्योति है।

'इस जगत में ज्ञान आदि सारभूत अर्थ हैं। जो पुरुष सोते हैं उनका अर्थ खो जाता है। सतत जागते रह के पूर्वार्जित कर्मों को प्रकंपित करो। धार्मिकों का जागना श्रेयस्कर, अधार्मिकों का सोना श्रेयस्कर है। ऐसा भगवान महावीर ने वत्स देश के राजा – शतानीक की बहन जयंति से कहा था।'

'प्रमाद को कर्म (आस्रव) और अप्रमाद को अकर्म (संवर) कहा है। प्रमाद होने से मनुष्य अज्ञानी होता है; प्रमाद के न होने से ज्ञानी होता है।'

प्रमाद को कर्म ... प्रमाद यानी मूर्च्छा। प्रमाद यानी सोया-सोयापन। प्रमाद, जैसे कोई भीतरी नशे में तुम पड़े हो।

'प्रमाद को कर्म कहा है।'

तुम जो भी कर रहे हो, उसका सवाल नहीं है – तुम क्यों कर रहे हो, उसका

सवाल है। यही करना और ढंग से भी किया जा सकता है, जाग के भी किया जा सकता है – तब कर्म नहीं होगा।

समझो। तुम अपने बच्चों में लिप्त हो, राग में डूबे हो। तुमने बड़ी महत्त्वाकांक्षाएं बच्चों के कंधों पे रख दी हैं। तुम जो नहीं कर पाये जिंदगी में, चाहते हो तुम्हारे बच्चे कर लेंगे। अगर मां-बाप बेपढ़े-लिखे हों तो बच्चों को बुरी तरह पढ़ाते-लिखाते हैं। क्योंकि उनकी एक कमी रह गई, वह खलती है। कम-से-कम अपने में न हो सकी, अपने बच्चों में पूरी हो जाये। जो मां-बाप जिंदगी भर तड़फते रहे, किसी बड़े पद पे न हो सके, वे अपने बच्चों को पहले से ही तैयार करते हैं कि हम तो चूक गये, तुम मत चूक जाना! अब तुम बच्चों को तैयार कर रहे हो जीवन के युद्ध के लिए। यह एक स्थिति है।

फिर एक दूसरा आदमी है। उसके भी बच्चे हैं। लेकिन जागा हुआ आदमी है। जागते ही 'मेरे हैं,' यह तो खयाल समाप्त हो जाता है; 'बच्चे हैं', यह खयाल रह जाता है। 'मेरे हैं', यह तो प्रमाद का हिस्सा है, मूर्च्छा का हिस्सा है।

मेरा क्या है? खाली हाथ हम आते हैं, खाली हाथ हम जाते हैं। और बच्चे मेरे क्या हो सकते हैं? भला मेरे द्वारा आये हों, मैं मार्ग बना होऊं; लेकिन आये तो कहीं अज्ञात से हैं! मेरे चौराहे से गुजरे होंगे, इससे मेरे नहीं हो जाते। मेरे पास हैं, इससे मेरे नहीं हो जाते। मेरे शरीर का सहारा ले के बड़े हो रहे हैं, इसलिए मेरे नहीं हो जाते। मेरे जीवाणु के माध्यम से प्रगट हुए हैं, इसलिए भी मेरे नहीं हो जाते।

चैतन्य की अपनी यात्रा है। ये जो बच्चे तुम्हारे पास हैं, ये भी अपनी-अपनी यात्रा से आये हैं। इस जीवन में संयोग ... तुमसे गुजर हैं, तुम्हारे नहीं हैं।

तुमने कभी खयाल किया! बाल तुम्हारे शरीर से जुड़े हैं, काट देते हो; फिर तो तुम्हारे नहीं रह जाते! नाखून काट देते हो, फिर तो तुम्हारे नहीं रह जाते! बच्चा जैसे ही पैदा हो गया, मां की देह के बाहर आ गया – तुम्हारा क्या रह गया? 'मेरा'-भाव गिर जाये, ममत्व गिर जाये – फिर तुम बच्चों की फिक्र कर देते हो, उनकी साज-संवार कर देते हो; लेकिन इस साज-संवार में अब कोई राग नहीं है। और इस साज-संवार के द्वारा तुम अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को, अपने अहंकार को, अपनी अतृप्त अभीप्साओं को पूरा नहीं करना चाहते। तुम बच्चों को साथ दे देते हो कि ठीक है, संयोग मिल गया, तुम असहाय हो; मुझसे बन सकता है, मैं कुछ कर देता हूं। लेकिन तुम कहते हो, तुम्हें जो होना हो तुम वही होना; मेरी मत सुनना। मैं तो असफल हुआ-ही-हुआ; अब मैं तुम्हें और खराब न कर जाऊंगा।

एक बात, अगर मां-बाप थोड़े भी जाग्रत हों, तो निश्चित करेंगे – वे बच्चों को सजग कर देंगे कि हमने तो जिंदगी गंवाई-ही-गंवाई, तुम मत गंवा देना! कृपा

करके हम जैसे तो बनना ही मत और कुछ भी बन जाना; क्योंकि यह तो हमने हो के देख लिया। इस होने से तो कुछ भी न पाया।

सोया हुआ बाप उलटी कोशिश करता है। वह कहता है, मेरे जैसे! अगर बच्चे उससे थोड़े भिन्न होने लगते हैं तो वह नाराज होता है। वे प्रतिकृति होने चाहिए। वे ठीक मेरी प्रतिमा होने चाहिए। 'मेरे' हैं, तो उनके माध्यम से किसी तरह का अमरत्व खोजा जाता है, कि मैं तो मिट जाऊंगा, लेकिन मेरी प्रतिमाएं छूट जायेंगी। कोई सिलसिला मेरा जारी रहेगा।

कर्म तो वही हैं। कबीर भी कपड़ा बुनते हैं, बाजार में बेचने जाते है। गोरा कुम्हार मटकियां बनाता है, बाजार में बेचता है। रैदास जिंदगी भर जूते बनाते रहे। लेकिन कुछ फर्क हो गया। कबीर अब भी कपड़ा बनाते हैं, लेकिन अब इसमें कोई व्यवसाय नहीं है। अब इससे कुछ धन कमा ले कर धन के ऊपर सांप बन के बैठ जाने की आकांक्षा नहीं है। जरूरी है; रोटी के लिए, कपड़े के लिए कर लेते हैं। आवश्यक है, कर लेते हैं। इसमें अब कोई वासना नहीं है।

जरूरत और वासना के भेद को समझना। जरूरतें तो सभी की पूरी होनी चाहिए। जरूरतें तो जीवन का अंग हैं। वासनाएं विक्षिप्तताएं है। वे कभी पूरी नहीं होतीं। और उनका जीवन की किसी जरूरत से कोई संबंध नही है। कोई आदमी सम्राट होना चाहता है, इसका जीवन की जरूरत से क्या संबंध है? हां, भूखा रोटी मांगता है, यह समझ में आता है। नंगा कपड़ा चाहता है, यह समझ मे आता है। लेकिन कोई आदमी सम्राट होना चाहता है। अब यह सम्राट होने से किसी भी जरूरत का कोई संबंध नही है।

तुम्हें प्यास लगी है, पानी चाहिए। तुम धूप में खड़े हो, छप्पर चाहिए – समझ में आता है। लेकिन धन का एक ढेर लगा-लगा के तुम उस धन के ढेर पर बैठे रहो, यह बात रुग्ण है, विक्षिप्त है। अरबो रुपये हो जाते हैं लोगों के पास, तब भी दौड़ नही रुकती! अब उन रुपयों का कुछ भी नही कर सकते। अब कुछ भी बचा नहीं है, जो उनसे खरीदा जा सके, जो भी खरीदा जा सकता था वह सब खरीद लिया, लेकिन फिर भी दौड़ जारी रहती है। यह कोई विक्षिप्त दौड़ है। यह कोई पागलपन है। इस पागलपन से जो मुक्त हो जाता है, उसके कर्म बांधते नहीं। उसके कर्म प्राकृतिक कर्म हो जाते है, नैसर्गिक कर्म हो जाते है।

प्रमाद को इसलिए महावीर कर्म कहते है। करने को कर्म नहीं कहते, करने में जो बेहोशी है उसको कर्म कहते हैं। यह थोड़ा सोचने जैसा है। यह सूत्र बड़ा बहुमूल्य है। तुम क्या करते हो, यह सवाल नहीं है – तुम होश में रह के करते हो कि बेहोश रह के करते हो। यह तो कर्म की बड़ी अनूठी व्याख्या हुई। प्रमाद को कर्म, अप्रमाद को अकर्म!

'पमायं कम्ममाहंसु, अप्पमायं तहाऽवरं।'

तो जाग जाओ, कर्म तो तब भी जारी रहेगा । आखिर महावीर भी जाग गये, फिर भी तो कोई चालीस साल जीवित रहे, कर्म तो किया ही; उठे भी, सोये भी, भोजन भी किया, उपवास भी किया, ध्यान भी किया, मौन भी किया, बोले भी, चुप भी रहे – सब कर्म चलता रहा। लेकिन यह कर्म अब बांधता नहीं है । अब इस कर्म में कोई तन्द्रा नहीं है, अब कोई मूर्च्छा नहीं है । अब यह सोये-सोये नहीं हो रहा है, यह जाग के हो रहा है।

जैसे ही तुम जागते हो, जीवन शुद्ध जरूरतों पर आ जाता है । जो गैर-जरूरी है, उसकी पकड़ नहीं रह जाती । ऐसा समझो कि आज अचानक तुम्हें खबर मिले कि पूना में भूकंप होने को है और तुम्हें थोड़ी-सी ही चीजें बचा के निकलने का मौका है, और तुम सारा घर का सामान इकट्ठा कर लो, और सोचो कि क्या बचायें और क्या छोड़ें । तुम चकित होओगे यह जान के और यह विचार तुम्हारे मन में जरूर आयेगा कि यह इतना व्यर्थ का सामान इकट्ठा क्यों किया ! इसमें बहुत थोड़ा ही काम का होगा जो तुम ले जा सकोगे । और जब तुम चुनने लगोगे, तुम्हें खुद ही समझ में आयेगा, दस में से नौ चीजें तुम खुद ही छोड़े दे रहे हो । लेकिन इनको इकट्ठा करने में बड़ा समय व्यतीत किया । इनको इकट्ठा करने में पागल की तरह दौड़े । इनको इकट्ठा करने में जीवन की बड़ी संपदा खोयी और कूड़ा-कर्कट इकट्ठा किया । इसको ले जाने के क्षण में, तुम खुद ही सोचोगे कि इसमें बहुत-सा तो ऐसा है जो ले जाने योग्य नहीं है ।

ऐस्कीमों की जीवन-व्यवस्था में एक प्रक्रिया है, बड़ी बहुमूल्य है ! काश, सारी दुनिया में कभी हो जाये तो बड़े काम की हो ! ऐस्कीमों, जैसे यहां वर्ष में दीवाली आती है, ऐसा उनका एक दिन आता है – उत्सव का दिन । उस दिन उनके पास जो भी हो जो व्यर्थ होता है, वह बांट देते हैं । इसका बड़ा परिणाम होता है । घर खाली, शुद्ध, साफ हो जाते हैं । और इसका दूसरा परिणाम यह होता है कि जब साल भर बाद व्यर्थ को बांट ही देना है तो वे व्यर्थ को इकट्ठा भी नहीं करते; क्योंकि वह फिजूल है, वह साल भर बाद बंट जाना है । उसके लिए दौड़-धूप कौन करे !

तो ऐस्कीमों का घर अत्यंत जरूरत, अत्यंत आवश्यक पर निर्भर है । और तुम ऐस्कीमों को जितना संतोषी पाओगे, किसी को न पाओगे । पर मौत के दिन तो सभी कुछ छूट जाना है; थोड़ा भी न ले जा सकोगे । अगर थोड़ा मौत का स्मरण बना रहे तो तुम व्यर्थ की दौड़-धूप छोड़ दोगे ।

तुम अपने सौ कर्मों को जरा गौर से देखना; उसमें से नब्बे तो चुपचाप गिराये जा सकते हैं, जिनके लिए कोई कारण नहीं है ।

दो छोटे बच्चे बात कर रहे थे । एक बच्चा कह रहा था कि मेरी मां अद्भुत है ! वह किसी भी विषय पर घंटों बोल सकती है । दूसरा बोला, यह कुछ भी नहीं

है। मेरी मां बिना विषय के घंटों क्या, दिनों बोल सकती है। विषय की कोई जरूरत ही नहीं है।

तुम जरा खयाल रखना, तुम जितना बोल रहे हो, उसमें से कितना जरूरी था, कितना तुम छोड़ सकते थे! तुम जो कर रहे हो, उसमें से कितना जरूरी था, कितना छोड़ा जा सकता था!

धीरे-धीरे अपने जीवन को व्यवस्था दो! होश लाओ! जहां चल के पहुंचा जा सकता है, वहां दौड़ के क्यों पहुंच रहे हो?

मैं विश्वविद्यालय में शिक्षक था, तो मैंने देखा कि परीक्षा में विद्यार्थी लिखते तो हाथ से हैं, लेकिन पूरा शरीर खिंचा है। तो मैं उनसे कहता कि जब तुम हाथ से लिख रहे हो तो अंगुलियों पे जोर पड़े, यह पे तो समझ में आता है; लेकिन यह पूरा शरीर अंगूठे से ले के सिर तक तुम तने हुए क्यों हो? किन्हीं-किन्हीं विद्यार्थियों को बात समझ में आई और वे शरीर को शिथिल छोड़ के लिखे। और बाद में उन्होंने मुझे कहा, यह आश्चर्य की बात है! हम नाहक शक्ति खो रहे थे और उसकी वजह से हड़बड़ाहट पैदा होती थी।

तुम साईकिल चलाते हो, लेकिन शायद ही तुम किसी साईकिल चलाने वाले को ठीक चलाते देखो, क्योंकि अगर ठीक कोई चला रहा हो तो पैर के पंजे पर जोर देना काफी है। पूरे शरीर को तनाव देने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन साईकिल क्या चला रहे हैं, पूरा शरीर तना हुआ है। फिर थक जाते हैं। फिर ऊब जाते हैं।

जिंदगी में जरा गौर करो! जो काम जितने से हो सकता हो उतना तो जरूरी है; उससे रत्ती भर भी ज्यादा डालना मूर्च्छा के कारण हो रहा होगा। वह साईकिल-सवार जानता ही नहीं कि क्या कर रहा है। उसे याद ही नहीं है कि वह क्या कर रहा है। जो काम रत्ती भर से हो सकना था, जो सुई से हो सकता था, वहां तलवार लिए बैठे हो। खुद को लहूलुहान कर लिया है, दूसरों को लहूलुहान कर रहे हो। और सुई तो सी देती कपड़े को, तलवार और फाड़ देती है। जो काम सुई से होता है वह तलवार से हो नहीं सकता।

सम्यक् जीवन चाहिए!

महावीर कहते हैं, 'प्रमाद को कर्म, अप्रमाद को अकर्म कहा है। प्रमाद के होने से मनुष्य अज्ञानी होता है। और प्रमाद के न होने से मनुष्य ज्ञानी हो जाता है।'

सम्हलो थोड़ा! जीवन की गंध को व्यर्थ गवाए दे रहे हो।

कहीं की रहेगी न आवारा हो कर
यह खुशबू जो फूलों ने कांटों पे तौली।

बड़ी मुश्किल से खुशबू आती है। बड़ी मुश्किल से! बड़ी जद्दोजहद से! जरा देखो तो बीज से फूल तक की यात्रा, कितनी कठिन है! करीब-करीब असंभव है।

कितनी अड़चनें हैं ! कितने अवरोध हैं ! पहले तो बीज टूटे-न-टूटे; टूट जाये तो ठीक भूमि मिले-न-मिले; ठीक भूमि भी मिल जाये तो कोई पानी दे न दे; कोई पानी भी दे, सूरज की रोशनी पड़े-न-पड़े; कोई बच्चा उखाड़ दे पौधे को; कोई जानवर खा जाये या कोई कुत्ता अपना पेशाब-घर बना ले ! करोगे क्या ? हजार बाधाएं हैं ! तब कहीं वृक्ष खड़ा हो पाता। तब कहीं फूल आते। कांटों पर तौल-तौल के गंध पैदा करनी पड़ती है।

कहीं की रहेगी न आवारा हो कर
यह खुशबू जो फूलों ने कांटों पै तौली।

– और फिर होता क्या है परिणाम ? सिर्फ आवारा हो के भटक जाती है।

मनुष्य होना बड़ी लंबी यात्रा है। इस देश में हम कहते रहे है, चौरासी करोड़ योनियां ! अनंत-अनंत काल, यात्रा करते-करते, निखारते-निखारते यह फूल खिला है, जो मनुष्य है, जिसको हम मनुष्य कहते है। यह मनुष्यता का फूल खिला है। और अब तुम कर क्या रहे हो ? यह गंध आवारा हुई जा रही है। यह ऐसे ही व्यर्थ भटकी जा रही है और खोई जा रही है। इतने श्रम से जिसे पाया है, उसे तुम ऐसे चुपचाप बेहोशी में गंवाए दे रहे हो।

'अज्ञानी साधक कर्म-प्रवृत्ति के द्वारा कर्म का क्षय होना मानते हैं; किंतु वे कर्म के द्वारा कर्म का क्षय नहीं कर सकते। धीर पुरुष अकर्म... (संवर या निवृत्ति) के द्वारा कर्म का क्षय करते हैं। मेधावी पुरुष लोभ और मद से अतीत तथा संतोषी हो कर पाप नहीं करते।'

'अज्ञानी साधक कर्मप्रवृत्ति के द्वारा ही कर्म का क्षय सोचते हैं।' वे सोचते है, कर्म को काटना है तो और कर्म करो। ज्ञानी साधक कर्म के द्वारा कर्म का क्षय नहीं मानते।

'अकर्म के द्वारा'... अकर्म का क्या अर्थ है ? पहला – जो व्यर्थ कर्म हैं उन्हें जाने दो। त्याग करने को नहीं कह रहा हूं – बोध से समझो कि व्यर्थ हैं, वे अपने से गिर जायेंगे, चले जायेंगे, विदा हो जायेंगे। तुम्हारा लगाव टूट जायेगा। थोड़ा जाग के अपने जीवन-चर्या को गौर से देखते रहो : सुबह से रात तक क्या कर रहे हो ? उसमें क्या-क्या व्यर्थ है ? पहले व्यर्थ को जाने दो। यह पहला कदम होगा कि धीरे-धीरे तुम व्यर्थ को हटा दो। और तुम नब्बे प्रतिशत व्यर्थ पाओगे। यह मैं अतिशयोक्ति नहीं कर रहा हूं। निन्यानवे प्रतिशत पाओगे। नब्बे प्रतिशत कह रहा हूं, ताकि तुम एकदम से घबड़ा न जाओ।

एक मित्र को मैंने कहा कि तुम दिन में इस तरह बोलो, जैसे कि हर शब्द के लिए मूल्य चुकाना है; जैसे टैलीग्राफ कर रहे हो; जैसे एक-एक शब्द के लिए मूल्य चुकाना पड़ेगा। उन्होंने कुछ दिन प्रयोग किया और मुझे आ के कहा, यह बड़ी हैरानी की बात है ! तब तो दस-बीस शब्दों से ही दिन में काम हो जाता है। जहां

'हां' और 'न' कहने से भी काम हो जाता है, वहां पहले मैं कितना बोले जा रहा था! और इसके बड़े लाभ हुए, उन्होंने कहा। क्योंकि कुछ गलत बोल के, कुछ व्यर्थ बोल के हजार झंझटें खड़ी हो जाती थीं।

तुम जरा सोचो! तुम्हारी जिंदगी की कितनी झंझटें तुम्हारे बोलने के कारण खड़ी हो गई हैं! घर आये, कुछ बोल दिए पत्नी से। तब खयाल में नहीं था कि यह बोलने का क्या परिणाम होगा। जब बोला था तो कोई भाव भी न था बुरा; लेकिन बोले, फंसे। तुम भी बेहोश हो। तुम बेहोशी में बोल गये। पत्नी ने बेहोशी में सुना। उसने कुछ का कुछ सुना। लड़ने-झगड़ने पे खड़ी हो गई। अब तुम लाख समझाते हो कि यह मेरा मतलब न था, इससे क्या होता है? अब मतलब न था, यह समझाने के लिए तुम कुछ बोल रहे हो, उसमें से भी पत्नी कुछ पकड़ेगी। अब यह सिलसिला कहां अंत होगा?

थोड़ा सोचो, तुम्हारी जिंदगी की कितनी विपदाएं कम न हो जायें, अगर तुम थोड़े चुप रहो! सोच के बोलो! अत्यंत जरूरी हो तो बोलो। जैसे एक-एक शब्द के लिए मूल्य चुकाना पड़ेगा, इस तरह बोलो। तुम न केवल यह पाओगे कि तुम्हारे बोलने में बल आ गया, तुम यह भी पाओगे कि तुम्हारे बोलने के कारण अड़चनें कम हो गईं; न तुम अपने लिए पैदा करते हो, न औरों के लिए अड़चनें पैदा करते हो। और तुम्हारे जीवन में एक प्रसाद अभिव्यक्त होना शुरू हो जायेगा। क्योंकि जो चुप रहता है, उसके पास ऊर्जा इकट्ठी होती है। बोल-बोल के तुम उसे चुकता कर लेते हो।

अकर्म की तरफ पहला कदम है: व्यर्थ कर्म के प्रति जागो। फिर, जो सार्थक बच रहे—बचेगा, कुछ तो बचेगा; क्योंकि जब तक जीवन है, कुछ कर्म रहेगा, जीवन कर्म है—फिर जो सार्थक बचे, उसके प्रति साक्षी-भाव रख के करो, कर्ता रह के मत करो। ऐसे करो जैसे तुम करने वाले नहीं हो। भूख लगी है शरीर को, तुम आयोजन कर देते हो; लेकिन तुम भूख से भी दूर हो, आयोजन से भी दूर हो। न तो भूख तुम्हें लगी है और न आयोजन तुम करते हो। तुम अकर्ता-भाव में डूबे रहते हो। तुम कहते हो, साक्षी हूं, देखता हूं। शरीर को भूख लगती है, रोटी जुटा देता हूं; प्यास लगती है, सरोवर के पास चला जाता हूं। लेकिन तुम अब कर्ता नहीं हो।

यह जो कर्ता-भाव का चला जाना है और साक्षी-भाव से, जाग के, अप्रमाद से कर्म को करना है—उसको महावीर अकर्म कहते हैं। अकर्म का मतलब तुम यह मत समझना कि कुछ न करना; जैसा कि जैन मुनियों ने समझ लिया है। अकर्म का अर्थ यह नहीं है कि तुम बस बैठ गये। क्योंकि तुम्हारे बैठने से भी क्या होगा?

एक संन्यासी मुझे मिलने आये। काश्मीर में एक शिविर मैंने लिया था। उसके पहले ही वे मुझसे मिलने आये थे, तो मैंने उनसे कहा कि अच्छा हो काश्मीर आ जायें। उन्होंने कहा, यह जरा मुश्किल है। चलो, मैंने कहा, जाने दो। बंबई में

जहां मैं था, जहां वे मिलने आये थे, मैंने कहा, कल सुबह फलां-फलां जगह कुछ मित्र ध्यान करने को इकट्ठे हो रहे हैं, वहां आ जाओ। उसने कहा, यह भी बड़ा मुश्किल है। मैंने कहा, मुश्किल क्या है? मैं समझूं। तो उन्होंने कहा, मुश्किल यह है – उनके साथ एक सज्जन और थे – कि मैं पैसा खुद नहीं रखता; पैसे को छूने का मैंने त्याग कर दिया है। तो टैक्सी में बैठना पड़े, तो पैसे की तो जरूरत पड़ेगी। ट्रेन में बैठना पड़े तो पैसे की जरूरत पड़ेगी। तो ये सज्जन को साथ रखना पड़ता है। जहां इनको सुविधा हो, वहीं मैं आ सकता हूं। और कल इनको सुविधा नहीं है। तो मैंने कहा, यह भी बड़ा मजा हुआ। पैसा तुम इनकी जेब में रखे हुए हो...। यह तो उलझाव और बढ़ गया। तुम समझ रहे हो, तुम पैसा नहीं छूते। तुम सोच रहे हो, तुम पैसे से मुक्त हो गये। तुम पैसे से मुक्त नहीं हुए, इस आदमी से और बंध गये। इससे तो पैसा ही ठीक था, अपने ही खीसे में रख लेते, अपने ही हाथ से निकाल लेते। इसके हाथ से निकलवाया। काम तो तुम्हारा ही होना है। बिना पैसे के भी नहीं होता, यह भी तुम्हें पता है। तो यह किसको धोखा दे रहे हो तुम? यह तुम्हारे हाथ में ऐसी कौन-सी खराबी है या तुम्हारे हाथ में ऐसा कौन-सा गुण है, जिसके कारण अपने हाथ को बचा रहे हो, इसका हाथ डलवा रहे हो? तुम अगर पाप कर रहे हो तो कम-से-कम अकेले ही कर रहे थे; अब तुम इससे भी करवा रहे हो। तुम पे दोहरा जुर्म होगा। तुम फंसोगे बुरी तरह। तुम यह मत सोचो कि तुम त्यागी हो।

अब जैन मुनि है। बैठ गया है दूर सिकुड़ के। वह कहता है, हम कुछ नहीं करते। लेकिन कोई उसके लिए रोटी कमायेगा। कोई उसके लिए वस्त्र कमायेगा।

जो बड़े जैन मुनि है, उनको लोग बुलाने में गांव में डरते हैं; क्योंकि उनका गाव में आने का मतलब है: सारे श्रावकों की मुसीबत। भारी खर्च का मामला है। तो बड़े मुनियों को छोटे गाव तो बुला ही नहीं सकते। कोई उपाय नही है। क्योंकि उतना खर्च कौन उठायेगा!

अब यह थोड़ा सोचना! अगर तुम खाली बैठ गये तो तुम्हारी जरूरतें कोई और पूरी करेगा। लेकिन जब तक जरूरतें हैं – और तब तक जरूरतें हैं जब तक जीवन है – तो कर्म तो जारी रहेगा। यह कर्म दूसरे के कंधे पे रख देने से, यह दूसरे के कंधे पे रख के गोली चलाने से तुम बचोगे न। इसमें तुम पे दोहरा पाप लग रहा है। तुम जो कर रहे हो वह तो कर ही रहे हो और इस आदमी के कंधे पे रख रहे हो। इस आदमी को भी तुम साधन बना रहे हो। यह भी गलत है।

जो करना है जरूरी, वह करना। फिर साक्षी-भाव रखना। शरीर की जरूरत पूरी कर देनी है। जरूरत से ज्यादा की आकांक्षा नहीं करनी है। मूल जरूरत पे रुक जाना है। और जो भी हो रहा है, उसके प्रति साक्षी-भाव रखना है।

'धीर पुरुष अकर्म के द्वारा कर्म का क्षय करते हैं। मेधावी पुरुष लोभ और मद

से अतीत तथा संतोषी हो कर पाप नहीं करते।'

मेधावी! महावीर उन्हीं को मेधावी कहते हैं, इंटेलीजेंट, जो साक्षी होने में समर्थ हैं। और मेधा मेधा नहीं। जिसको तुम मेधावी कहते हो, वह तुम जैसा ही है—मूर्च्छित। हो सकता है, किसी दिशा में कुशल है। कोई तकनीक उसने सीख लिया है। तुम कहते हो, कोई चित्रकार है बड़ा मेधावी; क्योंकि तुम जैसा चित्र बनाते हो, उससे बहुत अच्छा चित्र बनाता है। लेकिन जीवन का चित्र तो तुम जैसा बना रहे हो, वैसा ही वह भी बना रहा है। तुम कहते हो, कोई कवि है, बड़ा मेधावी। क्योंकि जो तुम नहीं कह सकते, जो तुम नहीं गा सकते, वह गा देता है। ठीक। लेकिन जीवन का अंतिम चित्र तो तुम्हारे जैसा ही वह बना रहा है। उसमें कोई फर्क नहीं है। क्रोध तुम्हें है, उसे है। लोभ तुम्हें है, उसे है। मत्सर तुम्हें घेरता है, उसे घेरता है।

महावीर कहते हैं, जिसने जीवन के चित्र को और जीवन के गीत को सम्हाल लिया, जिसने वहां बुद्धिमत्ता का उपयोग कर लिया, वही मेधावी है; बाकी सब मेधा तो कहने की मेधा है

लज्जते-दर्द के ऐवज दौलते-दो जहा न लूं
दिल का सकून और है, दौलते-दो जहां है और।

सारे संसार की संपत्ति भी मिलती हो उस आदमी को जिसने थोड़े मन की शांति जानी, तो वह लेने को राजी न होगा। दो लोकों की भी संपत्ति मिलती हो...।

लज्जते-दर्द के ऐवज दौलते-दो जहां न लूं।

यह जो सत्य की खोज में पीड़ा उठानी पड़ती है, इस पीड़ा के बदले भी अगर दुनिया की सारी संपत्ति मिलती हो, दोनों दुनिया की मिलती हो, तो भी न लूं।

दिल का सकून और है, दौलते-दो जहां है और। वह दिल की शांति कुछ बात और है। वह कुछ संपदा और है। एक बार जिसके मन में उसकी भनक पड़ गई, फिर सब फीका हो जाता है। मेधावी पुरुष लोभ के कारण धर्म नहीं करता। कोई स्वर्ग पाने के लिए धर्म नहीं करता, न भय के कारण, नर्क से बचने के लिए धर्म नहीं करता। मेधावी पुरुष तो पाता है कि जितना-जितना जागरण आता है, उतना-उतना आनंद आता है। जागरण में ही छिपा है। आनंद जागरण का फल नहीं है; आनंद जागरण का स्वभाव है। ऐसा नहीं है कि पहले जागरण मिलता है, फिर आनंद मिलता है – जागरण में ही मिल जाता है। इधर तुम जागते चले जाते हो, उधर आनंद की नई-नई पुलक, नई-नई किरण, नया-नया नृत्य भीतर होने लगता है।

इस अहद में कमयाबिए-इन्शां है कुछ ऐसी
लाखों में बामुश्किल कोई इन्शा नजर आया।

लाखों लोग हैं, आदमी कहां! लाखों आदमियों में कभी एक-आध आदमी नजर आता है। क्योंकि आदमी का जो बुनियादी लक्षण है, जागरण, वह दिखाई नहीं

पड़ता। पशु हैं, उन्हें भी भूख लगती है तो खोजते हैं; कामवासना जगती है तो कामवासना की तृप्ति करते हैं। पशुओं को भी लोभ दे दो तो राजी हो जाते हैं, भय दे दो तो राजी हो जाते हैं। कुत्ते को मारो-पीटो तो जैसा करतब करना हो, कर देगा। लोभ दो, रोटी के टुकड़े डालो, तो तुम्हारे पीछे जी-हजूरी करता फिरेगा। अगर मनुष्य भी ऐसे ही लोभ और भय के बीच ही आंदोलित हो रहा है, तो फिर मनुष्य और पशु में भेद क्या है ?

मनुष्यता उसी दिन प्रारंभ होती है जिस दिन तुम्हारी वृत्तियों से पीछे एक जागरण का स्वर, एक जागरण का स्रोत पैदा होता है। जागते ही तुम मनुष्य बनते हो, उसके पहले नहीं। और ऐसा भी नहीं है कि कभी-कभी तुम न जागते होओ। ऐसा भी नहीं है कि जागने के क्षण कभी-कभी अचानक न आ जाते हों। क्योंकि जो तुम्हारा स्वरूप है, उसकी झलक कभी-कभी मिल ही जाती है। कितने ही आकाश में बादल घिरें, आकाश कभी-न-कभी दो बादलों के बीच से दिखाई पड़ ही जाता है।

तो खयाल रखना, तुम भी कभी-कभी जागते हो; हालांकि तुम उसका कोई हिसाब नहीं रखते, क्योंकि तुम प्रत्यभिज्ञा नहीं कर पाते कि यह क्या है। तुम उसे कुछ और-और नाम दे देते हो। कभी ऐसा होता है कि अचानक खड़े हो तुम, सुबह का सूरज उगा, पक्षियों ने गीत गाया – और एक बड़ी गहरी शांति और सुकून तुम्हे मिला ! तुम सोचते हो शायद सुबह के सौंदर्य के कारण, सूरज के कारण, पक्षियों के गीत के कारण। नहीं। यद्यपि पक्षियों के गीत, सुबह के सूरज और खुले आकाश ने वातावरण दिया, उस वातावरण में क्षण भर को तुम अवाक् रह गये, क्षण भर की विचारधारा बंद हो गई, क्षण भर को बादल यहां-वहां न हिले, बीच में से थोड़ा-सा आकाश, भीतर का आकाश दिखाई पड़ गया।

कभी किसी के प्रेम में मन शांत हो गया। कभी संगीत सुनते समय। कोई कुशल वीणावादक वीणा बजाता हो और उसके तार बाहर कंपते रहे और भीतर, तुम्हारे भीतर भी कुछ कंपा; वीणा बंद हुई, तुम्हारे भीतर भी कुछ क्षण भर को बंद हो गया। एक गहन शांती तुम्हें अनुभव हुई। लेकिन तुम सोचोगे, शायद यह वीणावादक की कुशलता के कारण है। यद्यपि उसने निमित्त का काम किया, लेकिन वस्तुत: घटना तुम्हारे भीतर घटी।

ऐसे जीवन में तुम्हें कई बार क्षण मिलते हैं; लेकिन तुम उनके कारण गलत समझ लेते हो। जब भी तुम्हें शांति मिलती है तो भीतर कुछ प्रकाश पैदा होता है, उसके कारण ही मिलती है। एक बार यह समझ में आ जाये तो फिर तुम बाहर के कारणों को नहीं जुटाते; फिर तुम भीतर की ही जागृति को सम्हालने में लग जाते हो।

ऐ काश हो यह जज्बए-तामीर मुस्तकिल
चौंके तो हैं खराबिए-ख्वाबे-गरां से हम।

—काश! निर्माण का यह अवसर थोड़ा स्थायी हो जाये। गहरी नींद से चौंके तो हैं, लेकिन फिर कहीं हम नींद में न खो जायें।

ऐसा रोज होता है। तुम्हारी नींद भी टूटती है, लेकिन फिर तुम नींद में खो जाते हो।

ऐ काश हो यह जज्बए-तामीर मुस्तकिल
चौंके तो हैं खराबिए-ख्वाबे-गरां से हम।

हो सकती है। यह निर्माण की क्षण भर को आई हुई दशा स्थायी हो सकती है। लेकिन तुम्हें स्थायी करनी पड़े। इसे दोहराना पड़े। इसे बार-बार आमंत्रित करना पड़े। जब भी समय मिले, अवसर मिले, फिर-फिर इस भाव-दशा को जगाना पड़े—ताकि इससे पहचान होने लगे; ताकि इससे संबंध जुड़ने लगे; ताकि धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर यह प्रकाश का स्तंभ खड़ा हो जाये।

'मनुष्यो, सतत जागते रहो! जो जागता है उसकी बुद्धि बढ़ती है। जो सोता है वह धन्य नहीं है। धन्य वही है जो सदा जागता है।'

'जागरह नरा! णिच्चं जागरमाणस्स वड्ढते बुद्धी।
जो सुवति ण सो धन्नो, जो जग्गति सो सया धन्नो॥'

जो जागता है वह धन्य है। मनुष्यो, सतत जागते रहो! जो जागेगा उसकी मेधा बढ़ती है। जो सोता है उसकी मेधा सो जाती है। जो जागता है उसका भाग्य भी जागता है। जो सोता है उसका भाग्य भी सो जाता है। जागरण की पराकाष्ठा ही भगवत्ता है। इसलिए मैंने कहा, भगवान का अर्थ है: जिसका भाग्य पूरा जाग गया; जिसने अपने भीतर कोई कोना-किनारा सोया हुआ न छोड़ा, जिसने अंधेरे की कोई जगह न छोड़ी।

उठ कि खुर्शीद का सामाने-सफर ताजा करें
नफसे-सोख्त-ए-शाम औ सहर ताजा करें!
उठ कि खुर्शीद का सामाने-सफर ताजा करें।

उठो कि सूरज की यात्रा पर चलें! यह सूरज कोई बाहर का सूरज नहीं—यह भीतर के जागरण का सूरज है।

'जैसे एक दीप से सैकड़ों दीप जल उठते हैं, और वह स्वयं भी दीप्त रहता है, वैसे ही आचार्य दीपक के समान होते हैं। वे स्वयं प्रकाशवान रहते हैं और दूसरों को भी प्रकाशित करते हैं।'

'जह दीवा दीवसय'—जैसे दीये से दीया जल जाता है, दीप से दीप जले, ऐसे किसी जाग्रत पुरुष को खोजो, जिसके पास तुम्हारे भीतर भी जागरण की आकांक्षा जगे; जिसके पास तुम्हारे भीतर भी जागने की परम वासना जगे; जिसके पास तुम्हारे भीतर भी संक्रामक हो जाये और तुम भी सोचने लगो, विचारने लगो, प्रयास करने लगो: 'कैसे नींद को तोड़ें!' किसी जागे हुए का साथ चाहिए। शास्त्र से

यह न हो सकेगा। किसी जागे हुए का साथ चाहिए! तुम सोये हो तो कोई जागा हुआ ही तुम्हें जगा सकता है। शास्त्र को तुम रखे रहो, तुम उसका तकिया बना लोगे। शास्त्र क्या करेगा, अगर तुम तकिया बना लोगे? तुम उस पे ही सिर टेक के और आराम से सो जाओगे, शास्त्र क्या करेगा? कोई तीर्थंकर चाहिए!

महावीर कहते हैं: 'वही है आचार्य जो जागा हुआ है, जिसका आचरण जागृति से निष्पन्न है। जैसे एक दीये से और दीप जल जाते हैं, सैकड़ों दीप जल जाते हैं; फिर भी जो दीप जल रहा था, वह तो दीप्त ही रहता है, उसका कुछ खोता थोड़ी है। यही तो आध्यात्मिक संपदा की महिमा है। बांटो, बंटती नहीं। दिए चले जाओ, चुकती नहीं। जीवन की और सभी संपदाएं बांटने से कम होती चली जाती है। इसलिए जीवन की और सभी संपदाएं आदमी को कंजूस बनाती है, कृपण बनाती हैं। सिर्फ आध्यात्मिक संपदा ऐसी संपदा है कि बांटो, बंटती नहीं। एक दीये से जलाये जाओ हजार दीये, कुछ ऐसा नहीं कि पहले दीये की जिससे ज्योति जलाई थी, ज्योति कम हो गई। ज्योति का दान तुम्हें कम नहीं करता। ज्योति का दान एक ज्योतिर्मय संघ का निर्माण करता है।

ऐसे महावीर ने हजारों दीये जलाये; जिन-संघ का निर्माण हुआ। ऐसे बुद्ध ने हजारों दीये जलाये; बुद्ध-संघ का निर्माण हुआ। लेकिन फिर धीरे-धीरे जब जीवित पुरुष खो जाता है, वचन शास्त्र में संग्रहीत हो जाते हैं, लोग शास्त्रों का तकिया बना लेते हैं।

> पड़ा था सूना सितार दिल का, हुई अचानक यह जाग तुमसे
> जो जिंदगी रोग बन चुकी थी, बन गई है आज राग तुमसे।

हजारों लोगों ने महावीर के पास ऐसा अनुभव किया।

> जो जिंदगी रोग बन चुकी थी, बन गई है आज राग तुमसे।
> पड़ा था सूना सितार दिल का, हुई अचानक यह जाग तुमसे।

ध्यान रखना, एक बड़ा गहरा सिद्धांत इस सदी में कार्ल गुस्ताव जुंग ने खोजा। उसे उसने सिनक्रॉनिसिटी कहा है। कठिन है उसका अनुवाद। अर्थ यह है कि अगर एक व्यक्ति के भीतर कोई घटना घटे, एक व्यक्ति की वीणा बजे, तो उसके पास जो भी आयेगा, उसकी वीणा पर भी वैसी ही झनक शुरू हो जायेगी। उसे भी याद आ जाएगी किसी सोये हुए राग की। उसे भी अपना स्मरण आना शुरू होगा। इसमें कार्य-कारण का सिद्धांत नहीं है। ऐसा नहीं है कि महावीर की मौजूदगी के कारण तुम जागते हो। जागरण तो तुम्हारा स्वभाव है; महावीर की मौजूदगी के कारण भूला हुआ, बिसरा हुआ याद आ जाता है। जो होता है, वह तो तुम्हारे भीतर ही होता है, वह महावीर के बिना भी हो सकता था; लेकिन महावीर की मौजूदगी में सरलता से हो जायेगा। जैसे एक दीया जला हो और दूसरा दीया जले हुए दीये देख कर इस स्मरण से भर जाये कि मैं भी दीया हूं, मैं भी जल सकता

हूं। जैसे एक बीज फूटा हो और दूसरे बीज के भीतर भी अकुलाहट पैदा हो जाये कि मैं भी फूट सकता हूं।

इसलिए सत्संग का पूरब में बड़ा मूल्य रहा है। सत्संग कीमिया है, रसायन, अल्केमी। सत्संग का अर्थ है : किसी ऐसे आदमी के पास होना, किसी ऐसे आदमी की उपस्थिति में होना, जो जागा है। तो धीरे-धीरे बिना कुछ किये तुम्हारे भीतर भी कोई नया राग उठने लगेगा। तुम अचानक पाओगे, कोई नींद टूटने लगी, कोई परतें हिलने लगीं।

महरबा ऐ जज्बए-खुद ऐतबादी महरबा

वो हिला तूफा का दिल, किश्ती रवां होने लगी।

किसी ऐसे व्यक्ति के पास तुम्हारे भीतर पड़ा हुआ आत्मविश्वास जिसे तुम भूल गये हो, जग आयेगा। शाबाश! आत्मविश्वास की दृढ़ता, शाबाश!

महरबा ऐ जज्बए-खुद ऐतबादी महरबा!

— शाबाश। तुम अपने भीतर ही अनुभव करोगे, कुछ सोया जगने लगा। तुम अपनी ही पीठ थपथपाओगे।

वो हिला तूफा का दिल, किश्ती रवा होने लगी।

– और जरा-सा तुम्हारे भीतर तूफान हिल जाये कि नाव जो पड़ी है जन्मो-जन्मों से किनारे वह रवाना हो जाये, किश्ती चल पड़े।

सत्संग में गुरु कुछ करता नहीं, सिर्फ उसकी मौजूदगी ... । मौजूदगी भी कुछ करती नहीं – मौजूदगी से कुछ होता है। सूरज कुछ एक-एक फूल को पकड़ के खोलता थोड़ी है; उगा इधर, फूल खिलने लगे।

वो हिला तूफा का दिल, किश्ती रवा होने लगी।

कुछ सूरज सुबह उग के एक-एक पक्षी के द्वार पर दस्तक तो देता नहीं कि गाओ, प्रभात की बेला आ गई! गीत गुनगुनाओ! लेकिन सूरज उगा – वो हिला तूफां का दिल, किश्ती रवा होने लगी। कुछ पक्षिओं के कंठों में कोई प्यास जग उठती है, कोई गीत अपने से फूटने लगता है!

सूरज की मौजूदगी ... ऐसी तीर्थंकर की मौजूदगी; ऐसे अवतार की मौजूदगी, मसीहा की मौजूदगी, पैगम्बर की मौजूदगी; ऐसे किसी व्यक्ति की मौजूदगी जिसका दीया जल रहा है अकंपित। ऐसा क्षण अगर कहीं मिलता हो तो उसे चूक मत जाना। तुम्हारा मन हजार तरकीबें खोजेगा चूकने की। इसी मन के कारण तो तुम महावीर को भी चूके, बुद्ध को भी चूके, कृष्ण को भी, क्राइस्ट को भी। तुम चूकते ही चले गये हो। चूकने की तुम्हारी आदत बन गई है। सब दांव पे लगा देना अगर कभी तुम्हें, कहीं भी किसी के सान्निध्य में ऐसा लगे की यहां दीया जला है, तब सब दांव पे लगा देना। यह जुआरियों का काम है। यह अंधेरे में उतरना है। साहस और श्रद्धा! लेकिन दाव पे लगा देना।

क्यों ? क्योंकि अगर खोया तो क्या खोयेगा ? तुम्हारे पास कुछ है ही नहीं खोने को। अगर मिल गया तो सब मिल जायेगा। अगर खोया तो कुछ भी खोया नहीं। लेकिन तुम्हारे पास जो है, तुम उसें अभी बहुत कुछ समझते हो।

मैंने सुना है, शिवपुरी के पास एक विराट कवि सम्मेलन का आयोजन हो रहा था। कुछ कवि एक कार में बैठ के वहां जा रहे थे। रास्ते में डाकुओं ने घेर लिया। कवियों में से बोला एक, 'भैया ! तुम्हारे गांव जा रहे हैं, कवि सम्मेलन में भाग लेने। हमारे पास धरा क्या है ? कुछ कविताएं ही सुना सकते हैं। तो सुन लो।' डाकुओं ने उन्हें ग्यारह रुपये दिये और कहा, 'महाराज ! कविता आप गांव में ही सुनाना और जरा देर तक सुनाना तो ठीक रहेगा। हमें अभी दुनिया में और भी काम करने हैं।'

महावीर अगर तुम्हारे द्वार पे आ के तुम्हें गीत भी सुनाने को राजी हो जायें तो भी तुम कहोगे, 'महाराज ! किसी और को खोज लो, अभी हमें दुनिया में बहुत और काम करने हैं। ये ग्यारह रुपये दक्षिणा ले लो हमें छोड़ने की। यह कविता कहीं और सुना देना।'

महावीर के चरणो में तुमने फूल चढाये हैं – वे ग्यारह रुपये हैं कि महाराज ! आप शांत रहो। हमें बख्शो। अभी हमें दुनिया मे और बहुत काम पड़े हैं।

लेकिन उस दुनिया में जरा गौर से देखना, क्या काम तुम कर रहे हो? और जिस दुनिया में तुम इतने उलझे हो, वहां तुम क्या खोज रहे हो ? मेरे देखे तो सभी लोग परमात्मा को खोज रहे हैं। कुछ लोग गलत जगह खोज रहे हैं, कुछ लोग ठीक जगह खोज रहे हैं। कुछ लोग ऐसे दरवाजों पे खोज रहे हैं जहां दीवाले हैं, दरवाजे नहीं है, कुछ लोग ठीक दरवाजो पे दस्तक मार रहे हैं।

मै तुमसे कहता हूं, वेश्या के घर पर भी जो आदमी दस्तक देता है वह भी परमात्मा की खोज में ही वहां गया है। क्योंकि वेश्या के द्वार पर भी वह आनंद की तलाश में गया है – और आनंद परमात्मा की तलाश है। जिसने शराब घर में शराब पी के बेहोश, नालियों में गिर पड़ा है, वह भी परमात्मा की ही तलाश में गया था। क्योंकि आनंद की खोज परमात्मा की खोज है। लेकिन गलत जगह। कोई और मधुशाला खोजनी थी, जहां अदृश्य अंगूरों की सुरा ढाली जाती है ! कही और पियक्कड़ होना था, पियक्कड़ ही होना था तो ! कहीं किसी रामकृष्ण के पास डूबना था पी के !

कहीं भी तुम खोज रहे हो, तुम्हारी खोज कुछ भी हो, तुम्हारा बहाना कुछ भी हो, अगर तुम गौर से देखोगे तो तुम पाओगे, आनंद की तलाश में निकले हो। अगर इतना तुम्हें समझ में आ जाये तो बहुत कठिनाई न बचेगी। फिर तुम्हारे पास एक कसौटी हो गई कि 'जहां मैं खोज रहा हूं, वहां आनंद मिल सकता है !' कितनी बार तो वहां गया हूं, सदा खाली हाथ लौटा हूं। कुछ खो के लौटा हूं, पा के

तो कुछ भी नहीं लौटा। कुछ और दीन हो के लौटा हूं। कुछ और दरिद्र हो के लौटा हूं। भिक्षा-पात्र बड़ा भला हो गया हो, हृदय का पात्र भरा तो नहीं।

आनंद खोज रहे हो, यह स्पष्ट हो, तो कसौटी हाथ में रहेगी। तो तुम जांच लेना। जैसे सोना जांचता है सुनार, पत्थर पे कस लेता है; आनंद पे कसते जाना, कसते जाना। तुम पाओगे, जिंदगी, जिसको तुम जिंदगी कहते हो, कोई भी उस आनंद के पत्थर पर सोना साबित नहीं होती। तभी तुम सुन सकोगे किसी जाग्रत पुरुष के वचन, किसी जिन-पुरुष के वचन।

लेकिन तुम अपने को धोखा दे रहे हो। तुम मांगते कुछ हो, मांगा कुछ और चाहा था, करते कुछ हो, बताते कुछ हो। दूसरों को ही धोखा देते हो, ऐसा नहीं है; खुद को भी धोखा दे लेते हो।

मैंने सुना है, एक यहूदी रबाई दूसरे दिन के सुबह के लिए अपना प्रवचन तैयार कर रहा था और बाहर कुछ आवारा बच्चे शोरगुल मचा रहे थे। तो वह उनसे परेशान था, बाधा पड़ रही थी। तो वह खिड़की पे गया। उसने कहा कि तुम यहां क्या कर रहे हो, पागलो! नदी की खबर है, एक बड़ा राक्षस आया है। बड़ा विकराल है। बड़ा भयंकर है! ऐसा कभी देखा नहीं गया। तुम यहां क्या कर रहे हो?

उसका इतना कहना था कि वे बच्चे तो भागे सरपट नदी की तरफ। रबाई ने सोचा कि ठीक, झंझट मिटी। वह अपना आ के फिर पढ़ाई-लिखाई में लग गया। लेकिन थोड़ी ही देर में उसने देखा, सारा गांव नदी की तरफ जा रहा है। उसने खिड़की पे खड़े हो के देखा, पूछा, 'भाइयो! कहां जा रहे हो?' लोगों ने कहा कि 'अरे तुम्हें पता नहीं अभी तक? नदी के किनारे एक राक्षस आया हुआ है। बड़ा विकराल है! हरे रंग का है। बड़े-बड़े दांत हैं।' जो रबाई ने बताया भी नहीं था, वह भी सब उन्होंने बताया। रबाई ने कहा, ठहरो, मैं भी आया। रबाई ने अपने मन में कहा कि अरे बात तो मैंने ही गढ़ी है। पर उसने कहा, कौन जाने, सच ही हो!

दूसरे को धोखा देते-देते आदमी खुद को भी धोखा दे लेता है। कौन जाने, सच ही हो! कुछ हर्जा भी क्या है जाने में! देख ही लेना चाहिए!

तुम कहते कुछ और हो, चाहते कुछ और हो, सोचते कुछ और हो। तुम्हारा जीवन तुम्हारे ही हाथ से पैदा की गई उलझनों में उलझ गया है।

एक भिखारी मुल्ला नसरुद्दीन को देख के चिल्लाया, 'बड़े मियां! भूखा हूं, कुछ पैसे दे दो तो खाना खा लूं।' मुल्ला ने दयावश बगल के हलवाई की दुकान पे ले जा के उसे खाना खिलवा दिया। खाना खा के भिखारी बड़ा नाराज होता बाहर निकला और बड़बड़ाया, 'अजीब मजाक है! पिक्चर देखने के लिए तो दो रुपये चाहिए, वे तो जुटते नहीं, खाना सुबह से पांच लोग खिला चुके।'

मगर तुम मांगते खाना हो, देखना पिक्चर है!

तुम जिंदगी में जरा गौर से देखना, तुम क्या मांग रहे हो ? क्योंकि तुम जो मांग रहे हो, मिल जायेगा । तब तुम पछताओगे । न मिला तो पछताओगे । मिल गया तो पछताओगे । क्योंकि मांगा तुमने कुछ और था और चाहा कुछ और था । फिर उस भिखारी को तो पता भी था अपनी चाह का, तुम्हें अपनी चाह का भी कोई पता नहीं ।

इस बेहोशी को तोड़ो । ठीक-ठीक साफ कर लो, क्या चाहना है? ठीक-ठीक दिशा खोज लो, कहां खोजना है ? और दो ही दिशायें हैं, ज्यादा उलझन नहीं है । या तो आदमी बाहर की तरफ खोजता है या भीतर की तरफ खोजता है । बाहर की तरफ खोज के तुमने देख भी लिया है । थोड़ा भीतर को भी मौका दो !

और ध्यान रखना, सांसारिक आदमी को तो एक ही अनुभव है – बाहर की तरफ का; धार्मिक आदमी को दोनों अनुभव हैं – बाहर का भी, भीतर का भी । इसलिए धार्मिक आदमी की बात जरा गौर से सुन लेना । इसलिए महावीर की, कृष्ण की, बुद्ध की बात को जरा गौर से सुन लेना । तुम जहां खोज रहे हो वहां तो उन्होंने भी खोजा था । नहीं पाया । फिर उन्होंने वहां खोजा जहां तुमने अभी नहीं खोजा है । और वहां पाया ।

तो एक बार थोड़ा-थोड़ा समय, थोड़ी-थोड़ी शक्ति निकालो । तेईस घंटे संसार को दे दो, एक घंटा स्वयं के लिए बचा लो । जिस आदमी के पास अपने लिए एक घंटा भी नहीं है, उससे बड़ा दरिद्र कोई भी नहीं है । उसे ध्यान कहो, प्रार्थना कहो, जो कहना हो कहो; लेकिन एक घंटा अपने लिए बचा लो । तुम अखीर में मरते वक्त पाओगे कि बाकी तेईस घंटे व्यर्थ गये, वही एक घंटा असली बचाया हुआ सिद्ध हुआ । और वह एक घंटा तुम्हारे तेईस घंटों को जीत लेगा, हरा देगा । क्योंकि जब तुम्हें रस आने लगेगा, रसधार बहेगी, तो फिर तुम कैसे धोखा दोगे अपने को ? जब असली सिक्के दिखाई पड़ने लगेंगे तो नकली सिक्कों के धोखे में तुम आओगे कैसे ?

तोड़ो इस बेहोशी को । और तुम्हारे बिना तोड़े कोई और तोड़ न सकेगा ।

उठ कि खुर्शीद का सामाने-सफर ताजा करें ।

उठो ! थोड़ा आत्मविश्वास जगाओ !

महरबा ऐ जज्बए-खुद ऐतबादी महरबा
वो हिला तूफां का दिल, किश्ती रवां होने लगी ।

आज इतना ही ।

दिनांक २६ मई, १९७६; श्री रजनीश आश्रम पूना

प्रश्न-सार

जैसे महावीर के 'अहिंसा' शब्द का गलत अर्थ लिया गया, ऐसे ही क्या आपका 'प्रेम' शब्द खतरे से नहीं भरा है ?

जो दीया तूफान में बुझ गया, उसे फिर जला के क्या करूं ? जो परमात्मा घर से ही भटक गया, उसे घर वापस बुला के क्या करूं ?

तेरे गुस्से से भी प्यार, तेरी मार भी स्वीकार

.... १

उठो, जागो—सुबह करीब है

पहला प्रश्न : कल आपने बताया कि महावीर ने प्रेम शब्द का उपयोग नहीं किया, क्योंकि लोग उसका गलत अर्थ लेते हैं—और यह कि आज लोग अहिंसा का गलत अर्थ लेते हैं, इसलिए आप प्रेम शब्द का उपयोग करते हैं। पर जैसा लोग महावीर के समय में प्रेम शब्द का गलत अर्थ करते थे, क्या आज भी वही स्थिति नहीं है ? और आपके द्वारा सर्वाधिक उपयुक्त शब्द, प्रेम, क्या आज भी खतरे से भरा नहीं है ?

शब्द-मात्र खतरे से भरा है। क्योंकि जैसे ही बोला गया शब्द, बोलने वाले की मालकियत उस पे समाप्त हो जाती है; सुनने वाला मालिक हो जाता है। कुछ मैंने कहा, कहते ही मैं मालिक नहीं रहा; सुनते ही तुम मालिक हो गये। अब तुम क्या अर्थ करोगे—तुम पर निर्भर है।

तो जो शब्दों से डरते हों, उन्हें तो बोलने का ही उपाय नहीं है। क्योंकि अर्थ मैं नहीं डाल सकता; अर्थ तो तुम डालोगे। मेरा अर्थ तो मेरे हृदय में रह जायेगा; शब्द की खाली खोल तुम तक जायेगी; आत्मा फिर तुम उसमें डालोगे। तो अर्थ तो सदा तुम्हारा होगा। और चूंकि तुम उपद्रव से ग्रस्त हो, तुम जो भी अर्थ डालोगे वह भी उपद्रव-ग्रस्त होगा। क्योंकि तुम बड़े भ्रांत हो, तुम्हारे अर्थ भ्रांत ही होंगे। तुम गलत ही निकाल लोगे।

तो इसका तो यह अर्थ हुआ कि जिन्होंने जाना है, वे चुप रह जायें। लेकिन चुप रह जाने का भी तुम अर्थ करोगे कि क्यों चुप रह गये। बुद्ध ने बहुत-से प्रश्नों के उत्तर नहीं दिये—सिर्फ इस कारण कि उन प्रश्नों के उत्तर लोगों को गलत अर्थों में ले जाते हैं। तो बुद्ध के मरने के बाद जो सबसे बड़ा विवाद बुद्ध के अनुयायियों में उठा, वह यह था कि बुद्ध इन प्रश्नों के संबंध में चुप क्यों रह गये! और बुद्ध-धर्म के जो खंड-खंड टुकड़े हुए, वह उनके चुप रह जाने की वजह से हुए। क्योंकि किसी ने कहा कि वे चुप रह गये, क्योंकि जो उन्होंने जाना वह शब्द में प्रगट करने योग्य न था। किसी ने कहा, वे चुप रह गये, क्योंकि वहां जानने को ही कुछ नहीं है;

प्रगट करने का सवाल ही नही है। किसी ने कहा, वे चुप रह गये, क्योंकि उन्हें पता ही नहीं चला, तो बोलते क्या ?

चुप्पी भी तो तुम अर्थ करोगे ! तो अर्थ से तो बचा नहीं जा सकता। तो उपाय क्या है ? उपाय यही है कि जिसे जो शब्द ठीक लगे, वह उसका उपयोग करे और सब तरह से, हर दिशा से, उस शब्द को परिभाषित करे। जितने दूर तक संभव हो तुम्हें मौका न दे कि तुम अपना अर्थ प्रवेश कर पाओ। इस तरह की परिभाषा करे, सब तरफ से इस तरह का पहरा बिठाये शब्द पर, फिर भी अगर तुम गलत अर्थ करना चाहो तो करोगे ही।

लेकिन सत्य का गलत उपयोग होगा, इस डर से सत्य बोलने से नहीं रुका जा सकता। सौ में निन्यानवे लोग गलत अर्थ कर लेंगे, कोई हर्ज नहीं; वह जो एक ठीक अर्थ कर लेगा, तो भी सार्थक है बोलना। क्योंकि वे जो निन्यानबे गलत अर्थ कर रहे हैं, न सुनते तो भी गलत होते, कुछ बिगड़ा नही है। वे गलत थे, इसलिए गलत अर्थ किया; गलत अर्थ के कारण गलत नहीं हो गये हैं। इसलिए अगर उन्होंने गलत अर्थ किया तो उनकी जिंदगी में कुछ और बिगाड़ नही आ जायेगा। वे बिगड़े थे, बिगड़े रहेंगे। लेकिन वह जो सौ में एक भी अगर सुन लेगा, राजी होगा, उठेगा, चलेगा, तो पर्याप्त है। सौ सुनने वालों में अगर एक भी जग जाये, तो सार्थक हो गया श्रम। निन्यानवे की फिक्र करने की कोई जरूरत नही है।

महावीर ने अहिंसा शब्द चुना, वह उनकी पसंद थी। उनकी पसंद के बहुत कारण हैं। एक कारण है कि प्रेम और भक्ति के नाम पर चलने वाला संप्रदाय बिलकुल विकृत हो गया था। अब अगर प्रेम की ही वे बात करते तो उस सप्रदाय से पृथक, अलग खड़े होने की कोई सुविधा न थी। वे जिस क्रांति की बात करना चाहते थे, वह क्रांति पैदा न होती। उन्ही शब्दों के उन्ही पारिभाषिक शब्दों का उपयोग करने का परिणाम यह होता, वे भी पंडितो और ब्राह्मणों के उसी समुदाय में खो जाते जिसकी बड़ी भीड़ थी। उन्होंने अहिसा शब्द का उपयोग किया। इस तरह उन्होंने एक परिभाषा दी। इस तरह उन्होंने अपने को पृथक किया। इस तरह भीड़ मे खोने से अपने को बचाया। उपयोगी था उनका उपयोग कर लेना अहिंसा का।

लेकिन इन पच्चीस सौ सालों में अहिंसा शब्द को बड़ा मूल्य मिल गया है। उस मूल्य से फिर वैसी-की-वैसी स्थिति खड़ी हो गई है। अब अहिंसा शब्द का उपयोग करने का अर्थ है : अहिंसा की कतार में खड़े हुए लोगों की भीड़ में खो जाना।

तो जिस कारण से महावीर ने अहिंसा शब्द का उपयोग किया, उसी कारण से मैं अहिंसा शब्द का उपयोग नही कर सकता हूं। कारण वही है। मैं प्रेम शब्द का उपयोग करना चाहूंगा। इन पच्चीस सौ सालों में प्रेम शब्द खो गया, उपयोग में नही आया। जैसे किसी ने अपने खेत को कुछ वर्षों के लिए बंजर छोड़ दिया हो, खेती न की हो, तो जिस खेत पर बार-बार खेती की गई है, उसका उपजाऊपन

नष्ट हो जाता है। वह जो खाली पड़ा रहा खेत है वर्षों तक, उसने फिर उपजाऊ शक्ति को अर्जित कर लिया है। तो प्रेम शब्द फिर उपयोगी हो गया है। उस शब्द में फिर प्राण डाले जा सकते हैं।

पच्चीस सौ साल के अंतराल में, इस पच्चीस सौ साल में बुद्ध, महावीर और गांधी तक अहिंसा शब्द की बड़ी महिमा गायी गई है। अहिंसा शब्द पर काफी खेती हो चुकी; अब वहां कुछ भी पैदा नहीं होता। अब तो डर यह है कि जितने बीज तुम डालोगे, वे भी लौटेंगे... ! इसलिए मैं उस खेत की ओर नजर करता हूं, उस खेत की तरफ, जिस पे इन पच्चीस सौ वर्षों में खेती नहीं हुई।

प्रेम शब्द का आध्यात्मिक अर्थ उपयोग नहीं किया गया है। उसका उपयोग कर लेना जरूरी है। मैं यह नहीं कहता हूं कि सदा यह सार्थक रहेगा; जल्दी ही इस खेत में से भी उपजाऊपन नष्ट हो जायेगा। तब नये-नये शब्द खोजने होंगे। वह आने वाले लोग चिंता करें। नये शब्द सदा जरूरी रहते हैं, क्योंकि नये शब्दों के साथ मनुष्य में नयी चेतना का संचार होता है। और कभी-कभी पुराने बहुत दिन तक उपयोग न किये गये शब्दों का पुन. उपयोग उपयोगी होता है, क्योंकि वे फिर नये हो गये होते हैं; इतने दिन तक पड़े रहे खाली, बिना फसल बोये, फिर क्षमता को अर्जित कर लेते हैं। तो प्रेम शब्द ने क्षमता अर्जित कर ली है।

फिर कुछ और बातें हैं। अहिंसा शब्द नकारात्मक है। उसमें 'नहीं' पर जोर है। महावीर का जोर 'नहीं' पर था। मेरा जोर 'नहीं' पर नहीं है। मेरे लिए आस्तिकता स्वीकार में है, 'हां' के भाव में है। 'नहीं' पर जीवन के स्तंभ नहीं रखे जा सकते। और जिसने 'नहीं' के घर में रहना शुरू किया वह सिकुड़ जाता है। और जैन धर्म अगर सिकुड़ गया तो उसका कोई और कारण नहीं है; 'नहीं' के घर ने मार डाला।

बुद्ध ने भी 'नहीं' शब्दों का उपयोग शुरू किया था। पांच सौ साल में बुद्ध का धर्म नष्ट हो गया और तब बौद्ध भिक्षुओं को एक बात समझ में आ गई कि 'नहीं' शब्दों ने जान ले ली। वे जो नकारात्मक शब्द हैं — निर्वाण; नहीं हो जाना — किसकी आकांक्षा है 'नहीं' होने की? शब्द सुन के ही लोग चौंक जाते हैं। तो जब बौद्ध भिक्षु भारत के बाहर गये, बर्मा, लंका, चीन तो उन्होंने 'नहीं' शब्दों का त्याग कर दिया। एशिया में बुद्ध-धर्म फैला जब उसने 'हां' शब्दों का उपयोग किया — अकारात्मक, विधायक, जीवंत। बौद्ध धर्म विराट धर्म हो गया। बुद्ध के शब्द अगर पकड़े रहते तो जो दशा जैनों की हुई, वही दशा बुद्ध-धर्म की होती। बुद्ध की मजबूरी थी 'नहीं' शब्दों का उपयोग करने की; वही मजबूरी थी जो महावीर की थी। ब्राह्मण परंपरा 'हां' शब्दों से भरी है, आस्तिक शब्दों से भरी है। इस बड़ी परंपरा से अगर अलग खड़े न करो तो यह परंपरा लील जायेगी। इस परंपरा से से अलग खड़ा होना जरूरी है। अलग खड़े होने के लिए 'नहीं' शब्दों का उपयोग

करना पड़ा, ताकि सीमा-रेखा साफ हो जाये। और जब अल्पमत में कोई होता है तो उसे बड़ी स्पष्टता से अपनी सीमा-रेखा बनानी पड़ती है, क्योंकि बहुमत उसे लील जायेगा। हिंदुओं का विराट सागर था; जैनों, बौद्धों की नदी कहीं भी खो जाती इसमें, यह ताल-तलैया कहीं भी खो जाता, इसका कहीं पता भी न चलता। तो उस ताल-तलैया को बहुत सुरक्षित हो के अपनी व्यवस्था करनी पड़ी। उसने उन सारे शब्दों का उपयोग रोक दिया, जो हिंदू उपयोग करते थे। वे शब्द अपने-आप में बहुमूल्य थे; लेकिन मजबूरी थी, उन शब्दों के साथ संबंध हिंदुओं का था। अगर ब्रह्म शब्द का उपयोग करो – डूबे! अगर परमात्मा शब्द का उपयोग करो – डूबे! हिंदुओं के पास लंबी परंपरा थी। उस परंपरा परंपरा के कारण सारे विधायक शब्द उपयोग कर लिये गये थे। हिंदुओं का वही तो बल है। हिंदू इतने आघातों के बाद जीते रहे हैं, उसका कारण कहां है? उसका कारण है उनकी विधायकता में, स्वीकार में, अंगीकार में।

अगर तुम वैदिक उपनिषद के ऋषियों का स्मरण करो तो तुम्हें समझ में आयेगा कि अब तुम जिसे साधु और संन्यासी कहते हो, उस हिसाब से वे साधु-संन्यासी न थे। मैं जिस हिसाब से संन्यासी कहता हूं, उस हिसाब से संन्यासी थे। घर में थे, गृहस्थी में थे, उनकी पत्नियां थीं, बच्चे थे, धन-दौलत थी। बड़ा विधायक रूप था। संन्यास हिंदुओं के लिए गृहस्थी के विपरीत नहीं था, गृहस्थी का आत्यंतिक फल था। ऐसा नहीं था कि घर को छोड़ के जो चला गया, वह संन्यासी है; नहीं, जिसने घर पूरा कर लिया, वह सन्यासी है। जो घर में पूरा-पूरा जी लिया और पार हो गया; जीवन के अनुभव एक-एक सोपान की तरह चढ़ गया – वह संन्यासी है। संन्यास हिंदुओं के लिए जीवन का अंतिम शिखर था। पहले ब्रह्मचर्य, फिर गार्हस्थ्य, फिर वानप्रस्थ, फिर संन्यास – ऐसी जीवन में एक क्रमबद्धता थी, एक विकास था। बहुत वैज्ञानिक बात थी। पहले संसार को ठीक से अनुभव तो कर लो, भोग की पीड़ा तो जानो, ताकि तुम त्यागी हो सको। धन की व्यर्थता तो जानो ताकि विराग का जन्म हो सके! इस देह की नश्वरता को तो पहचानो! शास्त्रों से नहीं – जीवन, अनुभव... । सभी को अनुभव हाथ आ जाता है।

तो हिंदुओं के हिसाब से संन्यास जीवन-विरोधी न था, जीवन का नवनीत था। जिन्होंने जीवन को जिया, वे उस नवनीत को उपलब्ध हुए। दूध है, उसे जमाओ, दही बनाओ, दही का मंथन करो, मक्खन निकालो, मक्खन को गरमाओ, घी बनाओ – ऐसा संन्यास था। घी की तरह! फिर घी का तुम कुछ भी नहीं कर सकते।

तुमने कभी खयाल किया, घी के बाद कोई गति नहीं है! घी को तुम कुछ और नहीं बना सकते। दूध दही हो सकता है; दही मक्खन बन जाता है; मक्ख घी बन जाता है – लेकिन अब तुम घी को कुछ भी नहीं बना सकते। पराकाष्ठा! अब अगर तुम चाहो, कि घी को पीछे भी लौटायें तो वह भी नहीं कर सकते। तुम

चाहो कि अब घी का मक्खन बना लें, कि मक्खन का अब दही बना लें, कि दही से अब दूध में उतर जायें — वह भी नहीं हो सकता।

तो हिंदुओं के लिए तो संन्यास घी की तरह था; वह आखिरी बात थी — जिससे पीछे लौटना नहीं होता, जिसके आगे जाना नहीं है। और उस तक जिसे पहुंचना है, उसे ये सारी सीढ़ियां पार करनी होंगी।

इस सनातन धर्म के बीच महावीर का आविर्भाव हुआ। यह परंपरा सड़ गई थी, गल गई थी। सभी परंपराएं एक दिन सड़ जाती हैं, गल जाती हैं। यह जीवन का स्वाभाविक धर्म है। जैसे हर जवान बूढ़ा हो जाता है, फिर हर बूढ़ा मर जाता है, फिर एक दिन अस्थि ले के हम जा के जला आते हैं — ठीक ऐसी ही संस्कृतियां पैदा होती हैं, धर्म पैदा होते हैं, जवान होते है, बूढ़े होते हैं, मरते हैं। लेकिन जिस बात को हम सामान्यतया जीवन में कर लेते हैं... मां मर गई तो बहुत प्रेम था, फिर भी क्या करोगे? रोते हो, धोते हो, रोते जाते हो, अर्थी बांधते जाते हो — करोगे क्या? रोते जाते हो, अर्थी ले के चल पड़ते हो। रोते जाते हो, जला आते हो। इतनी हिम्मत हम धर्मों के साथ न कर पाये कि वे भी जवान होते हैं; जब जवान होते है तब उनका मजा और! जब हिंदू धर्म शिखर पर था तो उसने उपनिषद जैसे शास्त्रों को जन्म दिया, महाकाव्य पैदा हुआ! सब तरफ गीत गूंज उठा हिंदू धर्म का! प्राणों में पुलक थी, उत्साह था, जवानी थी! फिर हिंदू धर्म बूढ़ा हुआ। जब हिंदू धर्म बूढ़ा हुआ और मर गया या मरने के करीब था, मरणासन्न था, तब बुद्ध और महावीर का आविर्भाव हुआ। अब इस मरते आदमी के साथ उनको किसी भी तरह का संबंध जोड़ना खतरनाक था। यह तो मर ही रहा था। इसके साथ संबंध जुड़ने का अर्थ था, तुम पहले से ही मौत से जुड़ गये। स्वभावतः उन्होंने नये शब्द खोजे।

तुम देखो, जैनों ने संस्कृत भाषा तक का उपयोग न किया! शब्दों की तो बात अलग; उस भाषा में भी बोलने में खतरा था, क्योंकि भाषा के संबंध थे अब अगर संस्कृत का महावीर उपयोग करते तो उपनिषदों से ऊंचा गीत और क्या गा पाते? पराकाष्ठा हो गई थी। संस्कृत ने अपनी आखिरी ऊंचाई पा ली थी। संस्कृत ने शिखर छू लिया था; अब इसके पार जाने का कोई उपाय न था। इस मंदिर पे कलश चढ़ चुका था। तो महावीर ने संस्कृत का उपयोग न किया। महावीर ने प्राकृत का उपयोग किया। संस्कृत पंडित की भाषा थी, सुसंस्कृत की, अभिजात्य की। महावीर ने दीन की, गरीब की, लोकजन की भाषा का उपयोग किया।

ध्यान रखना, जब भी नया धर्म आता है तो उनके द्वारा आता है, जो पुराने धर्म के कारण दलित थे, पीड़ित थे। जो पुराने धर्म के कारण प्रतिष्ठित थे वे तो नये धर्म को क्यों चुनेंगे? उनका तो पुराने धर्म के साथ बड़ा संबंध है। उनके तो बड़े स्वार्थ हैं। तो स्वभावतः ब्राह्मण आंदोलित होगा महावीर के विचारों से, यह तो संभव

न था। क्षत्रिय आंदोलित हो सकता था, वैश्य आंदोलित हो सकता था, शूद्र आंदोलित हो सकता था। क्षत्रिय भी बहुत आंदोलित नहीं हुआ, क्योंकि उसके भी संबंध बहुत गहरे ब्राह्मण से जुड़े थे। ब्राह्मण सबके ऊपर था। लेकिन वस्तुतः तो क्षत्रिय ही ऊपर था, जिसके हाथ में तलवार है। क्षत्रिय के कारण और आज्ञा से ब्राह्मण ऊपर रह सकता था। नाममात्र को ब्राह्मण ऊपर था, वस्तुतः तो क्षत्रिय ऊपर था। तुम कितनी ही बात करो कि संतों की महिमा थी; महिमा थी, लेकिन उस महिमा को भी जब तक राजा आ के चरण न छूता, कौन महिमा थी? राजा आ के चरण छूता था तो संत की महिमा थी। तो संत दीवाने रहते थे कि कितने राजा किसके पास आते हैं। तो क्षत्रिय भी प्रतिष्ठित था। इससिए जैन धर्म अगर बनियों का धर्म हो गया, तो कुछ आश्चर्य नहीं है। वैश्य सर्वाधिक प्रभावित हुए। शूद्र बहुत कम प्रभावित हुए, क्योंकि प्रभावित होने के लिए भी थोडी समझ तो चाहिए! क्षत्रिय के स्वार्थ थे, ब्राह्मण का तो कोई उपाय न था कि वह जैन बने; इस बनने में कोई सार न था। अभी भी तुम देखते हो, हिंदुस्तान में जो लोग ईसाई बनते हैं, कोई बिरला, सिंहानियां, साहू कोई ईसाई बनते हैं? ईसाई बनता है शूद्र, गांव का गरीब, आदिवासी। जिनका निहित स्वार्थ है, वे किसलिए ईसाई बनेंगे? ईसाई तो वह बनता है जो हिंदू धर्म से पीडित है, परेशान है। जो हिंदू धर्म उसे नहीं दे सका है, उसका आश्वासन ईसाइयत देती है।

तो महावीर और बुद्ध दोनो ने कहा, कोई वर्ण नही है। लेकिन शूद्र तो इतना दलित था कि उसे ये शब्द भी समझ में न आ सकते थे; उसको तो शास्त्र पढ़ने की मनाही थी। उसको तो कोई शिक्षा भी न थी। इसलिए स्वभावत. ब्राह्मण आ नही सकता था, क्षत्रिय को आने का कोई कारण न था – उसके हाथ में तलवार और बल था। शूद्र समझ नही सकता था। और शूद्र क. भीतर लाने में खतरा भी था, क्योंकि वह वैश्य नही घुसने देता था शूद्र को। क्योंकि वह छिड़कता था। उसकी भी धारणा तो हिंदू की थी। अगर क्षत्रिय आता तो वैश्य स्वीकार कर लेता; वह ऊपर का था; ब्राह्मण आता तो भी स्वीकार कर लेता। शूद्र से उसे भी अड़चन थी, वह उससे भी नीचे था। इसलिए वैश्य शूद्र को घुसने न देगा। इसलिए जैन धर्म वैश्यो का धर्म हो गया, दुकानदारों का धर्म हो गया। स्वभावतः महावीर को इनकी भाषा का उपयोग करना पड़ा – लोक-भाषा का।

बुद्ध ने भी वही किया। उन्होंने भी लोक-भाषा का उपयोग किया। उन्होंने पाली चुनी। क्योंकि वे प्राकृत चुनते तो महावीर के साथ बंध जाते।

इसे थोड़ा सोचना चाहिए। महावीर बुद्ध से कोई तीस साल उम्र में बड़े थे। महावीर पहले आ गये थे। तीस साल वे काम कर चुके थे। ब्राह्मण संस्कृत बोलते थे, महावीर ने प्राकृत चुनी थी; बुद्ध को दोनों उपाय न रहे थे। एक ही क्षेत्र में थे दोनों, लेकिन बुद्ध ने पाली चुनी, ताकि साफ-साफ व्याख्या हो सके, भेद हो सके।

भाषा से बड़ा भेद और किसी चीज से पैदा नहीं होता।

तुम जानते हो, जब कोई आदमी तुम्हारी भाषा नहीं समझता, तो तुम अजनबी हो गये, एकदम अजनबी हो गये। पास-पास बैठे हो और हजारों मील का फासला हो गया। क्योंकि आदमी जीता है भाषा से, जुड़ता है भाषा से।

संस्कृत का त्याग करने का परिणाम यह हुआ कि जैन हिंदू धर्म से बिलकुल साफ अलग टूट गये। पाली का प्रयोग करने के कारण बौद्ध जैनों से भी टूट गये, ब्राह्मणों से भी टूट गये। दोनों ने वर्णों का विरोध किया, तो ही तो वे आकर्षित कर सके वैश्य को। यद्यपि वैश्य आकर्षित हो गया, लेकिन बड़े मजे की बातें हैं, दुनिया में संस्कार बड़ी मुश्किल से जाते हैं। अभी भी जैन मंदिर में शूद्र को प्रवेश नहीं है। और महावीर कहते हैं, न कोई शूद्र है, न कोई ब्राह्मण है, न कोई वैश्य है और न कोई क्षत्रिय है। उनकी सारी क्रांति वर्ण-विरोधी है। लेकिन फिर भी वर्ण जाता नहीं।

तुमने देखा, अगर कोई ब्राह्मण ईसाई हो जाये, तो वह ईसाई हो के भी ब्राह्मण रहता है। ईसाइयों को मैं जानता हूं। उनमें कोई अगर ब्राह्मण के वर्ग से ईसाई हुआ है और कोई अगर शूद्र के वर्ग से ईसाई हुआ है, तो वह जो ब्राह्मण ईसाई है, शूद्र ईसाई से ऊपर रहता है। ब्राह्मण ईसाई शूद्र ईसाई से विवाह नहीं करता। संस्कार बड़े गहरे बैठ जाते हैं!

तो जब महावीर ने वर्णों की व्यवस्था तोड़ दी, तो उन्होंने आश्रम की व्यवस्था भी तोड़ दी; क्योंकि वह वर्णाश्रम एक ही प्रत्यय था — चार वर्ण, चार आश्रम। जब महावीर ने वर्ण की व्यवस्था तोड़ी तो उन्होंने आश्रम की भी व्यवस्था तोड़ दी। यह तोड़ना जरूरी था, नहीं तो हिंदू ढांचा पकड़े रहता; उससे छूटना मुश्किल था। जब तुम किसी एक सागर में पैदा होते हो तो तुम्हें अपना द्वीप बनाना पड़ता है। तो उन्होंने कहा कि न कोई ब्रह्मचर्य का सवाल है न कोई गार्हस्थ्य का सवाल है, न कोई वानप्रस्थ का, न कोई संन्यस्त का; जब तुम संन्यस्त होना चाहते हो तभी हो सकते हो। इस तरह उन्होंने दोनों ही व्यवस्थाएं तोड़ दीं। फिर उन्होंने नये शब्द खोजे, नयी भाषा खोजी।

प्रेम शब्द बहुत खतरनाक है। क्यों? क्योंकि प्रेम के साथ ही तत्क्षण परमात्मा प्रवेश करता है। तुमने कभी देखा, एक साधारण स्त्री को भी तुम प्रेम करने लगो तो उसमें देवी का आविर्भाव हो जाता है। एक स्त्री एक साधारण-से पुरुष के प्रेम में पड़ जाये तो उसे परमात्मा मानने लगती है। जहां प्रेम आता है, वहां पीछे से परमात्मा आ जाता है। साधारण जीवन में, जहां कि तुम भलीभांति जानते हो कि यह आदमी परमात्मा नहीं है, लेकिन फिर भी उसकी प्रेयसी उसे परमात्मा मानने लगती है। तो अगर प्रेम शब्द का बहुत उपयोग करो तो परमात्मा को इनकार न कर सकोगे। क्योंकि प्रेम शब्द का इशारा ही और की तरफ है। प्रेम तीर है, निशाना कहीं और है : निकलेगा तुम्हारे हृदय से, लगेगा किसी और हृदय में।

तो प्रेम तो खतरनाक है – ध्यान। प्रेम तो खतरनाक है – अहिंसा। प्रेम तो खतरनाक है, क्योंकि प्रेम के साथ परमात्मा आता है और परमात्मा के साथ हिंदुओं की पूरी जीवन-चिंतना जुड़ी है। इसलिए महावीर को परमात्मा भी इनकार कर देना पड़ा, प्रेम भी इनकार कर देना पड़ा, प्रार्थना भी इनकार कर देनी पड़ी, पूजा, अर्चना, धूप-दीप सब इनकार कर देना पड़ा। सब भांति व्यक्ति अपने में भीतर चला जाये, बाहर जाये ही नहीं। परमात्मा भी बहिर्यात्रा है। इस कारण महावीर ने अहिंसा शब्द का उपयोग किया।

लेकिन अहिंसा बहुत कमजोर शब्द है; प्रेम के सामने टिकता नहीं, बहुत लंगड़ा है। उनकी जरूरत थी। उनकी मजबूरी थी। लेकिन प्रेम के पास पैर हैं। तुम जरा किसी स्त्री से कहो कि मेरा तुमसे अहिंसा का सबंध हो गया है, तब तुम्हें पता चलेगा! वह दुबारा तुम्हारी शक्ल न देखेगी। किसी स्त्री से अहिंसा का संबंध! उसका मतलब इतना हुआ कि हम तुम्हें मारेंगे भी नहीं, कष्ट भी न देंगे। खत्म, संबंध पूरा हो गया! दोगे क्या? यह तो न देने की बात हुई। दुख न दोगे, समझ में आया। मारोगे नहीं, यह भी समझ में आया। लेकिन इतने पे कोई संबंध निर्भर होते हैं?

अहिंसा संबंध तोड़ने की व्यवस्था है, जोड़ने की नहीं। इसलिए महावीर का अनुयायी टूट जाता है, सबसे टूट जाता है। अहिंसा जोड ही नहीं सकती। अहिंसा में कोई सीमेंट नहीं है। अहिंसा में योग नहीं है।

अब तुम चकित होओगे, महावीर ने योग शब्द का उपयोग नहीं किया। और भी तुम हैरान होओगे कि महावीर ने 'अयोग' शब्द का उपयोग किया है। जुड़ना नहीं है, टूटना है, अयोग। तो जब महावीर का ज्ञानी परम अवस्था को उपलब्ध होता है तो उसको वे कहते हैं, 'अयोगी, केवली'। जो सब तरह से सबसे टूट के अकेला हो गया: अयोगी, केवली। योग पाप है, क्योंकि योग में तो बात ही जुड़ने की है। जुड़ना तो है ही नहीं, क्योंकि जुड़ना ही तो संसार है। संसार से टूट जाने में उसली बात है।

तो अहिंसा से संबंध तोड़ा जा सकता है, जोड़ा तो नहीं जा सकता। अहिंसा सिकोड सकती है, फैला तो नहीं सकती। अहिंसा तुम्हें अपने में बंद कर देगी, खोलेगी तो नहीं। अहिंसा में कोई द्वार-दरवाजे नहीं हैं, दीवाल है। इसलिए जितने तुम अहिंसा जैसे शब्दों से भरोगे, उतने ही तुम पाते जाओगे कि तुम सूखने लगे, तुम्हारे पत्ते कुम्हलाने लगे, शाखाएं गिरने लगीं, तुम सिकुड़ने लगे, तुम लौटने लगे। तुम्हारा फैलाव खो गया। तुम्हारे जीवन का अभियान खो गया।

तो अगर जैन सिकुड़ गये तो कुछ आकस्मिक नहीं है। फैलने का उपाय न था।

नकार को कभी जीवन की व्यवस्था मत बनाना, क्योंकि जीवन का स्वभाव फैलाव है। यहां सब चीजें फैलती हैं। एक छोटे से बीज को डाल दो, एक बड़ा

वृक्ष हो जाता है। उस वृक्ष में फिर करोड़ों बीज लग जाते हैं। एक बीज करोड़ बीज हो जाता है। करोड़ बीजों को फैला दो, पूरी पृथ्वी वृक्षों से भर जायेगी। एक बीज से यह पूरी पृथ्वी हरी हो सकती है।

तुम जरा देखो तो जीवन का ढंग। ईसाई कहते हैं, अदम और हव्वा, एक जोड़ा भगवान ने पैदा किया था, फिर उससे ये सारे चार अरब मनुष्य पैदा हुए। बस एक जोड़ा काफी था।

यहूदियों की कथा है कि परमात्मा बहुत नाराज हो गया था एक बार। लोग भ्रष्ट हो गये थे। तो उसने सारी पृथ्वी को महाप्रलय में डुबा दिया। लेकिन एक भक्त था उसका : नोह। उसने नोह से कहा कि तुझे हम बचा लेंगे। लेकिन नोह ने प्रार्थना की कि माना कि लोग बुरे हैं, गलत हो गये हैं; लेकिन इतने नाराज न हों, कुछ तो बचा लें, बीज तो बचा लें। तो परमात्मा ने कहा, 'अच्छा! तू एक-एक पशुओं का एक-एक जोड़ा अपनी नाव में रख लेना। वह नाव भर बचेगी।' बस एक जोड़ा काफी था। लेकिन बड़ी मधुर कहानी है। नोह और उसकी पत्नी दरवाजे पे खड़े हो गये और नाव में, उन्होंने कहा, आ जाओ एक-एक जोड़ा। तो हाथी आया, ऊंट आये, घोड़े आये, गधे आये — सब आये। फिर जब प्रलय समाप्त हो गया, सात दिन के बाद सारी पृथ्वी डूब गई, सिर्फ नोह की नाव बची। फिर पृथ्वी उभरी, फिर किनारे नाव लगी। फिर वे दोनों दरवाजे पे खड़े हो गये, फिर एक-एक को निकाला। लेकिन वे बड़े हैरान हुए, चूहे कोई दस पच्चीस निकले! तो नोह ने अपनी पत्नी से पूछा, 'यह मामला क्या है? मैंने पहले कहा था कि दो-दो लेना, एक-एक लेना।' उसने कहा, 'लिये तो इतने ही थे, मगर इतने हो गए सात दिन में।'

एक जोड़ा काफी है। उतने बचाने से सारी प्रकृति, सारी पृथ्वी बच गई।

जीवन का स्वभाव फैलाव है। प्रेम में फैलाव है; अहिंसा में सिकुड़ाव है। इसलिए मैं तो प्रेम शब्द को ही पसंद करता हूं। और अहिंसा प्रेम का एक छोटा-सा अंग है। जिससे हम प्रेम करते हैं, उसे हम दुख नहीं देना चाहते — यह बात ही साफ है। जिससे हमारा प्रेम का संबंध है, उससे हमारा अहिंसा का संबंध तो हो ही गया। लेकिन जिससे हमारा अहिंसा का संबंध है, उससे प्रेम का संबंध हो गया — यह जरूरी नहीं है। प्रेम अहिंसा से बड़ी बात है। जिससे हम प्रेम करते हैं, उसे हम कैसे दुख पहुंचायेंगे? उसे दुख पहुंचा के तो अपने को ही दुख पहुंच जाता है। भूल-चूक से अगर पहुंच भी जाता हो, तो भी हम क्षमा-याची होते हैं, सुधार की कोशिश करते हैं। अहिंसा अपने से सध आती है; जहां प्रेम आया, अहिंसा पीछे से अपने-आप आ जाती है।

तो मैं तो कहता हूं, प्रेम को बढ़ाओ। वह व्यक्तियों पे सीमित न रहे; फैलता जाये, वृक्षों पशु-पक्षियों को भी घेर ले।

और अब मैं कहता हूं, परमात्मा को प्रेम करो, तो मेरा इतना ही अर्थ है कि यह जो दिखाई पड़ रहा है – दृश्य – इसको इतना प्रेम करो कि इस सभी में तुम्हें अदृश्य की प्रतीति होने लगे। पत्ते-पत्ते में वह दिखाई पड़ने लगे।

अहिंसा अपने से आ जायेगी। अहिंसा के लिए अलग से शास्त्र बनाने की कोई जरूरत नहीं है।

माना कि प्रेम शब्द के अब भी गलत अर्थ लिये जायेंगे, लेकिन फिर भी मैं मानता हूं कि प्रेम ज्यादा जीवंत शब्द है। गलत भी अर्थ लिये जायेंगे, तो भी चुनने योग्य है। गलत अर्थ तो अहिंसा के भी लिये गये। और शब्द नकारात्मक था, मुर्दा था– तो गलत अर्थ मुर्दे पे इकट्ठे हुए। बड़ी सड़ान्ध पैदा हो गई। जीवंत कोई शब्द हो तो थोड़ा-बहुत गलत अर्थ लेने में बाधा डालेगा, इनकार करेगा। एक पत्थर पड़ा हो, उसको तुम छैनी उठा के काटने लगो, तो वह कुछ बाधा न डालेगा। एक जिंदा बच्चा हो तो उछलेगा-कूदेगा, चीखेगा-चिल्लायेगा। मुहल्ले-पड़ोस के लोगों को इकट्ठा कर लेगा अगर छैनी उठाओगे उसके ऊपर।

प्रेम जीवंत है। अगर तुम उसे बदलोगे तो इतनी आसानी से न बदल पाओगे; शोरगुल मचायेगा। अहिंसा बिलकुल मुर्दा है। तुम उसे बना लेना, अपने रंग-ढंग में रंग-लेप कर लेना। अहिंसा के शब्द से आवाज भी न निकलेगी। तुम जो भी बना लोगे, वही बन जायेगी।

नकार हमेशा ही सावधान होने योग्य है। अभाव है नकार। अभाव पर इतना जोर मत देना; क्योंकि अभाव से तुम धीरे-धीरे रसहीन हो जाओगे। अभाव को देखते-देखते तुम भी धीरे-धीरे बुझ जाओगे।

महावीर की मजबूरी थी, उन्होंने चुना; लेकिन उनकी मजबूरी से मैं बंधा हुआ नहीं हूं। उन्होंने ठीक माना होगा। उनकी परिस्थिति में जो उन्हें ठीक लगा होगा, किया होगा। लेकिन उनकी परिस्थिति मेरे ऊपर कोई बंधन नहीं है। यही तो मुझे सुविधा है। मेरे ऊपर किसी का बंधन नहीं है। अगर जैन महावीर पे बोलेगा तो उसको अड़चन होगी। वह हिम्मत नहीं जुटा पाता। उसको महावीर का बंधन मान के चलना पड़ता है। जो महावीर ने कहा, वह हर हालत में ठीक होना ही चाहिए। उस दिन के लिए भी ठीक होना चाहिए, आज भी ठीक होना चाहिए। मैं कहता हूं, उस दिन जरूर ठीक रहा होगा; क्योंकि महावीर जैसा बुद्धिशाली व्यक्ति, जब इस शब्द को चुना था तो बहुत सोच के चुना होगा। लेकिन महावीर कोई सदा के लिए आदमी को बांध नहीं गये। कौन बांध जाता है? कौन बांध सकता है? मेरे लिए कोई मजबूरी नहीं है। इसलिए मैं पतंजलि पे भी बोलता हूं, तो भी मेरी कोई मजबूरी नहीं है, कोई बंधन नहीं है। कोई ऐसा नहीं है कि पतंजलि ने जो कहा है, वह ठीक ही कहा है। आज के लिए तो मैं फिक्र नहीं करता। आज के लिए तो मैं जो कहूंगा, मैं मानता हूं, ज्यादा ठीक है। उन्होंने अपने समय

के लिए कहा होगा। जैसे वे अपने समय के लिए कहने के हकदार थे, वैसे अपने समय के लिए कहने के लिए मैं हकदार हूं।

निश्चित ही, मैं यह नहीं कहता कि मैं जो कह रहा हूं, वह सदा-सदा सही रहेगा; कभी-न-कभी सड़ जायेगा, मरेगा। तब कोई-न-कोई उसे बदलेगा — बदलना ही चाहिए। इस जगत में कोई भी व्यक्ति सभी के लिए सदा के लिए निर्णायक नहीं हो सकता; नहीं तो मनुष्य की स्वतंत्रता, महिमा मर जायेगी।

गुनो, सुनो, समझो — लेकिन कभी भी अंधी लकीरें मत पीटो।

स्थिति तो करीब-करीब आज भी वही है। प्रेम शब्द गलत समझा जायेगा। लेकिन मेरे साथ भेद है। मैं कोई नया धर्म खड़ा करने में उत्सुक नहीं हूं। नयी भाषा खड़ी करने में उत्सुक नहीं हूं। नया शास्त्र निर्मित करने में उत्सुक नहीं हूं। शास्त्र तो बहुत हैं। धर्म भी बहुत हैं। भाषाएं भी बहुत हैं। अब तो हमें कुछ खोज करनी चाहिए कि सभी धर्मों के भीतर जो सार है, वह हमारी पकड़ में आ जाये। तो मैं यह नहीं ... मेरी चेष्टा वही नहीं है जो महावीर की थी। तो महावीर हिंदू से डरे थे; मैं डरा हुआ नहीं हूं। बुद्ध, महावीर से भी डरे हुए थे; मैं डरा हुआ नहीं हूं। मैं न ईसाई से डरा हुआ हूं, न मुसलमान से डरा हुआ हूं, न हिंदू से, न जैन से, न बौद्ध से—किसी से डरे होने का कोई कारण नहीं है। हां, अगर मुझे कोई नया धर्म स्थापित करना हो तो भय आ जायेगा। क्योंकि फिर मुझे खयाल रखना पड़ेगा। सारे बाजार का खयाल रखना पड़ेगा। मेरी चीज कुछ नयी होनी चाहिए, पृथक होनी चाहिए; उसमें गंध, रंग अलग होना चाहिए, ट्रेडमार्का अलग होना चाहिए, तो ही टिक पायेगी बाजार में, अन्यथा खो जायेगी।

मेरी तो चेष्टा बड़ी भिन्न है। मेरी चेष्टा यह है कि जो अब तक जाना गया है — और काफी जान लिया गया है — अब उस जानने का सार-निचोड़ लोगों को मिलना शुरू हो जाये।

धर्मों का कोई भविष्य नहीं है। धर्म गये, अतीत की बात हो गये। जैसे विज्ञान एक है, ऐसा ही भविष्य में कभी धर्म भी एक होगा। हिंदू नहीं होगा, मुसलमान नहीं होगा, ईसाई नहीं होगा। इन सबने अपनी-अपनी धाराएं धर्म के सागर में डाल दीं। अब सागर को हम गंगा थोड़ी कहते हैं, यमुना थोड़ी कहते हैं — कोई जरूरत नहीं कहने की। सागर यमुना से भी बड़ा है, गंगा से भी बड़ा है, ब्रह्मपुत्र से भी बड़ा है — हजारों नदियों को लील जाता है; इंच भर ऊपर नहीं उठता। हजारों नदियां बादलों में उड़ जाती हैं; इंच भर नीचे नहीं गिरता। अब धर्म का सागर बनना चाहिए; ताल, सरोवर बहुत हो चुके। अब उन्होंने काफी बोध की सामग्री इकट्ठी कर दी है। अब कोई जरूरत नहीं है कि हिंदू मुसलमान से लड़े, कि जैन हिंदू से लड़े। अब तो जरूरत है कि जैन हिंदू और मुसलमान और ईसाई और सिक्ख के बीच जो सारभूत है, वह प्रगट हो जाये; ताकि धर्म का विज्ञान बने।

अब विज्ञान विज्ञान है; न ईसाई है, न हिंदू है, न मुसलमान है। कोई ईसाई भी अगर वैज्ञानिक सत्य खोजता है तो उस सत्य को हम ईसाई तो नहीं कहते। आइंस्टीन ने रिलेटिविटी का सिद्धांत खोजा, सापेक्षता का सिद्धांत खोजा। इसको हम ईसाई तो नहीं कहते, यहूदी तो नही कहते, मुसलमान तो नहीं कहते। मुसलमान खोजे तो भी वह विज्ञान, हिंदू खोजे तो भी विज्ञान; यहूदी खोजे तो भी विज्ञान। तो धर्म के संबंध में भी, कोई भी खोजे, वह उस एक ही परम सत्य की तरफ इशारे हैं। अंगुलियों को छोड़ो अब, अब चांद को देखो!

मेरी चेष्टा है कि तुम्हें अंगुलियों से छुड़ाऊं और चांद को दिखाऊं, क्योंकि सभी अंगुलियां उसी चांद की तरफ बता रही हैं। हां, किसी अंगुली पर हीरे जड़ा हुआ शृंगार है; कोई अंगुली काली-कलूटी है; कोई दुर्बल है; कोई बड़ी सुंदर है, युवा है; कोई बूढ़ी है; कोई अति प्राचीन है; कोई अभी छोटे बच्चे की तरह है, नये-नये पल्लव की भांति – मगर ये सारी अंगुलियां जिस चांद की तरफ उठी हैं, वह एक है। हमने अंगुलियों पर अब तक बहुत ध्यान दिया, अब अंगुलियों को छोड़ें और चांद पर ध्यान दें। इशारा समझें।

तो मैं तो प्रेम शब्द का उपयोग जारी रखूंगा। खतरा तो है, लेकिन खतरे से क्या घबड़ाना? खतरे से घबड़ा-घबड़ा के ही तो आदमी नपुंसक हो गया है। हर जगह खतरे से बच रहे हैं। धीरे-धीरे तुम पाओगे, जिंदगी से भी बच गये; क्योंकि जिंदगी स्वयं खतरा है। जो प्रेम से बचेगा, आज नही कल जिंदगी से भी बचेगा। जिंदगी में भी खतरा है। मौत तो जिंदगी में ही घटेगी।

कभी तुमने सोचा... ?

मेरी बूढ़ी नानी थी। वह सदा डरती थी कि मैं हवाई जहाज में न जाऊं। जब भी मै घर से निकलता, तब वह कहती, 'एक बात खयाल रखना – हवाई जहाज में कभी नहीं।' मैंने उसको कहा कि तू डरती क्यों है हवाई जहाज से? उसने कहा कि अखबार में खबर आती है कि गिर गया, लोग मर गये। मैंने कहा, 'तुझे पता है, निन्यानबे प्रतिशत लोग तो खाट पे मरते हैं? तो क्या खाट पे सोना बंद कर दूं, बोल?' उसने कहा, यह बात तो ठीक है। उसको भी जंची बात। उसने कहा, यह बात तो ठीक है। मरते तो खाट पे ही हैं निन्यानबे प्रतिशत लोग। तो अगर दुर्घटना कोई बचानी है तो खाट बचानी है। कभी-कभार कोई मरता है हवाई जहाज में। उसने कहा, फिर जाओ, फिर कोई बात नहीं। खाट से, अब खाट से बचोगे तब तो फिर अब जीना ही मुश्किल हो जायेगा।

ईरान में कहावत है, जमीन पे सोने वाला खाट से कभी नहीं गिरता। बिलकुल ठीक है। जब जमीन पे ही सो रहे हैं तो खाट से गिरोगे कैसे? लेकिन ऐसे कहां तक बचते रहोगे? फिर जिओगे कैसे? फिर यह जीना तो एक पलायन हो जायेगा।

यहां तो हर चीज में खतरा है। यहां प्रेम करो, खतरा है। यहां घर से बाहर

निकलो, खतरा है। यहां सांस लो, खतरा है। इन्फैक्शन। यहां पानी पियो, खतरा है। यहां भोजन करो, खतरा है। यहां खतरा ही खतरा है। यहां तो मरे हुए ही खतरे के बाहर हैं।

देखा तुमने, मरा हुआ आदमी बिलकुल खतरे के बाहर है। पहली तो बात, अब मर नहीं सकता। कोई बीमारी नहीं लग सकती, छूत की बीमारी नहीं लग सकती। दूसरे इससे बचते हैं, यह किसी से नहीं बचता। तो जिन लोगों ने भी खतरे, खतरे, खतरे को सोचा है, हिसाब रखा है, वे धीरे-धीरे मर गये। इस देश के मुर्दा हो जाने में बड़ा हाथ है — इस धारणा का, कि इसमें खतरा है, इसमें खतरा है। तो सिकुड़ते जाओ, सिकुड़ते जाओ — जाओगे कहां ?

मैंने सुना है, पुराने गांव की एक कहानी है कि गांव का जो मालगुजार था, उससे मिलने एक ब्राह्मण आया। तो जब ब्राह्मण आये तो मालगुजार को नीचे बैठना चाहिए। मालगुजार अपने तखत पे बैठा था। ब्राह्मण आया तो मालगुजार बैठा था, ब्राह्मण नीचे बैठने लगा। मालगुजार ने कहा, 'यह ठीक नहीं है, नियम के विपरीत है। तुम ऊपर बैठो, मैं नीचे बैठता हूं।' उस ब्राह्मण ने कहा, 'लेकिन इसमें बड़ी झंझट आयेगी।' जिद्दी था मालगुजार भी। उस ब्राह्मण ने कहा, 'ऐसा कहां तक करोगे? क्योंकि अगर मैं नीचे बैठूंगा, तुम क्या करोगे फिर?' उसने कहा, 'मैं गड्ढा खोद के उसमें नीचे बैठ जाऊंगा।' उसने कहा, 'अगर मैं गड्ढे में आ गया, फिर?' उसने कहा, 'मैं और गड्ढा नीचे खोद लूंगा।' उस ब्राह्मण ने कहा, 'मैंने अगर और गड्ढा खोद लिया तो?' उस मालगुजार ने कहा, 'फिर गड्ढे को पूर के मैं घर चला जाऊंगा। फिर क्या करूंगा? तुम मेरे पीछे ही लगे रहोगे, तो तुमको गड्ढे में पूर के, मैं घर चला जाऊंगा।'

ऐसे कहां तक भागते रहोगे? कहीं तो भय को गड्ढे में दबाना पड़ेगा। कहीं तो उसको पूरना पड़ेगा।

यह मुझे पता है कि प्रेम खतरनाक शब्द है। सभी जीवंत शब्द खतरनाक होते हैं।

अहिंसा क्लीनिकल है। अहिंसा बिलकुल अस्पताल में धोया, पोंछा, साफ-सुथरा शब्द है। उसमें रोगाणु हैं ही नहीं। जीवाणु ही नहीं हैं तो रोगाणु कहां से होंगे? वह बड़ा डॉक्टरी शब्द है। उसमें काफी औषधियां छिड़की गई हैं। पर वह पीने योग्य भी नहीं रहा, जैसे बहुत पोटाशियम डाल दिया हो पानी में।

प्रेम बड़ा जीवंत शब्द है — होना ही चाहिए; क्योंकि सारा जगत प्रेम से जीता है। तुम जन्मे हो प्रेम से। तुम जिओगे प्रेम में। और काश, तुम मर भी सको प्रेम में, तो धन्यभागी हो! जन्मते सभी हैं, जीते बहुत कम हैं; मरते तो कभी-कभी कोई हैं। जन्मते सभी प्रेम में हैं। इसलिए प्रेम की प्रबल आकांक्षा जीवन में होती है — प्रेम मिले, प्रेम बंटे, प्रेम दिया जाये, प्रेम लिया जाये। जीवन का सारा आदान-प्रदान प्रेम के सिक्कों का है। प्रेम से मत भागना; क्योंकि जो प्रेम से भागा, वह जीवन से भागा;

और जो जीवन से भागा, वह परमात्मा के मंदिर को कभी भी खोज न पायेगा।

मछली की तरह तड़पायेगा अहसास तुझे पायाबी का

जीना है तो अपने दरिया में इमकाने-तलातुम रहने दे।

—घबड़ा मत तूफानों से। अगर जीना है...

जीना है तो अपने दरिया में इमकाने-तलातुम रहने दे।

—रहने दे आंधियां, तूफानों की संभावना। अगर आंधी और तूफान की सारी संभावना काट दी, तो दरिया दरिया न रह जायेगा, छिछला हो जायेगा।

मछली की तरह तड़पायेगा अहसास तुझे पायाबी का — फिर उथला पानी तुझे मछली की तरह तड़पायेगा। तूफान रहने दो; क्योंकि तूफानों से टक्कर ले के ही जीवन निखरता है। तूफानों में से गुजर के ही जीवन का निखार आता है।

प्रेम को मैं धर्म कहता हूं। लेकिन कठिन है, क्योंकि तुमने प्रेम को केवल वासना की तरह जाना है। इसलिए तुम्हारे डर को मैं समझता हूं। तुम घबड़ाये हो! प्रेम? प्रेम से तो तुमने केवल वासना जानी है। प्रेम से तो तुमने अपने बहुत निम्नतम रूप का ही संबंध जोड़ा है। यह तुम्हारी भूल है, इसमें प्रेम का कोई कुसूर नहीं। अब किसी आदमी के हाथ में हीरा हो और वह उसको किसी के सिर में मार के सिर तोड़ डाले तो इसमें हीरे का कुसूर है? कि तुम हीरे से बचोगे? हीरे का काम किसी का सिर तोड़ डालना नहीं है। यह तो छोटे-मोटे पत्थर से भी हो सकता था।

मनुष्य ने प्रेम का, प्रेम-ऊर्जा का बड़ा निम्नतम उपयोग किया है, क्षुद्रतम उपयोग किया है। वह उपयोग है — और संतति को पैदा करना। प्रेम का जो परम उपयोग है, वह स्वयं को जन्म देना है। प्रेम का जो साधारण उपयोग है, वह दूसरे को जन्म देना है। प्रेम की जो आखिरी पराकाष्ठा है, वह अपने को जन्म देना है — आत्म-जन्म। प्रेम की जो आखिरी पराकाष्ठा है, वह बाहर दिखाई पड़ने वाली देह, शरीर, रूप, रंग, इन पर ही समाप्त नहीं हो जाती। रंग में जो छिपा है, रूप में जो छिपा है, दृश्य में जो छिपा है, जब वह दिखाई पड़ने लगे, तब तुम समझना कि तुमने प्रेम का पूरा उपयोग किया।

तुम्हारे पास रोशनी है, लेकिन रोशनी से अगर तुम जिंदगी की गंदगी ही देखते फिरो तो रोशनी का कोई कुसूर नहीं है। यह रोशनी तुम्हें जिंदगी का परम रूप भी दिखा सकती थी।

है तेरा हुस्न जब से मेरा मरकजे-निगाह

हट गई है एतबारे-नजर से गिरी हुई।

और एक बार उसका रूप तुम्हें थोड़ा दिखाई पड़ने लगे, थोड़ी उसकी झलक आने लगे, उसके हुस्न की, उसके सौंदर्य की; फूलों में से कभी तुम्हें उसकी आंख

भी झांकती दिखाई पड़ने लगे; सागर की लहरों में कभी तुम्हें उसकी भी लहर का अनुभव हो जाये—

है तेरा हुस्न जब से मेरा मरकजे-निगाह !

— तुम्हारी आंख में जरा उसके सौंदर्य की छाया बनने लगे, प्रतिबिंब, परछाईं पड़ने लगे—

हूर भी है एतबारे-नजर से गिरी हुई !

— उसी दिन से सब चीजें मूल्य खो देंगी। उसी दिन से धन, पद, प्रतिष्ठा, देह, वस्तुएं, इन सब का मूल्य गिर जायेगा। महावीर कहते हैं, इन सब का मूल्य गिरा दो तो सत्य तुम्हें उपलब्ध हो जायेगा; मैं तुमसे कहता हूं कि तुम परमात्मा का थोड़ा इशारा खोजने लगो, थोड़ा उसका हुस्न तुम्हारी आंख में उतरने लगे, थोड़ा उसका नशा तुम्हें मदमस्त करने लगे तो चीजें अपने-आप छूट जायेंगी।

और ये दो ही रास्ते हैं : या तो चीजें छोड़ो, तो सत्य का दर्शन होता है; या सत्य का दर्शन शुरू करो, तो चीजें छूट जाती हैं। अब मैं तुमसे कहता हूं कि पहला मार्ग बड़ा खतरनाक है। चीजें छोड़ो, पक्का नहीं है कि चीजें छूटने से उसका दर्शन हो जायेगा; कहीं ऐसा न हो कि चीजें छूटने से तुम केवल सिकुड़ के रह जाओ और दर्शन की क्षमता भी खो जाये। ऐसा ही हुआ है। कभी कोई एक-आध महावीर अपवाद हो जाते हैं, बात अलग। नियम नहीं हैं वे। अधिक लोगों को तो मैं यही देखता हूं कि चीजें छोड़-छोड़ के उनको कुछ मिला नहीं है; कुछ छूटा जरूर, मिला कुछ भी नहीं है। मिलने से तो वे भयभीत हो गये हैं, डरते हैं। मैं तो तुमसे कहूंगा, छोड़ना मत, जब तक कि श्रेष्ठ का अनुभव न हो जाये। श्रेष्ठ को पहले उतरने दो; आने दो रोशनी को, फिर अंधेरा जायेगा।

तुम खेल रहे थे कंकड़-पत्थर से, फिर कोई हीरे दे गया तुम्हें; कंकड़-पत्थर छूट जायेंगे। हीरे जब सामने हों तो मुट्ठियां कौन कंकड़-पत्थरों से भरेगा ! लेकिन जरूरी नहीं है कि तुम कंकड़-पत्थर छोड़ दो तो कोई आ के हीरों से तुम्हारी मुट्ठियां भर दे।

अक्सर तो मैं देखा हूं, जैन मुनि जब मेरे पास कभी आते हैं, तो उनकी बात सुन के बड़ी व्यथा होती है। तो वे यही कहते हैं कि हमने छोड़ तो सब दिया, लेकिन पाया तो कुछ भी नहीं। जिंदगी हो गई छोड़ने में, अब मौत करीब आने लगी। अब तो हाथ-पैर भी कंपने लगे। अब डर भी समाने लगा। अब लौट के भी उस संसार में नहीं जा सकते जिसको छोड़ आये। अब थूक के चाटना ठीक भी नहीं मालूम होता। और समय भी न रहा, शक्ति भी न रही। लेकिन भीतर एक संदेह उठता है। न मालूम कितने जैन मुनियों ने मुझसे कहा है कि भीतर एक संदेह उठता है कि हमने छोड़ के ठीक किया ? कहीं हमसे कुछ भूल तो नहीं हो गई ?

कहीं ऐसा तो नहीं था कि यही संसार सब कुछ है और हम इसको भी छोड़ बैठे ? दूसरा तो मिला नहीं, यह छूट गया।

तुम्हें उनकी पीड़ा का अंदाज नहीं, क्योंकि तुम केवल उनका प्रवचन सुनते हो। प्रवचन में तो वे वही दोहराते हैं, जिसको सुन के वे फंस गये हैं। प्रवचन में तो वे सत्य नहीं कहते।

अभी तक आदमी इस प्रामाणिकता को उपलब्ध नहीं हुआ कि प्रवचन में सत्य कहे। प्रवचन में तो वह वही कहता है जो तुम्हें रास आता है, भाता है। अब जैनों के बीच बोलते हैं तो जो जैनों को रास आता है, जो उनके शास्त्र के अनुकूल पड़ता है, वही बोलना पड़ता है। जब मेरे पास कभी आ जाते हैं, क्योंकि अब तो उनके अनुयायी भी आने नहीं देते; पहले आ जाते थे, तो वे मुझसे कहते थे, अकेले में बात करनी है। अपने अनुयायियों को बाहर कर देते। अकेले में क्यों करनी है ? वे कहते कि आप इनको तो बाहर जाने दें, इनके सामने सच न कहा जा सकेगा। अकेले में उनके प्रश्न बुनियादी रूप से तीन मैंने पाये। एक, कि उन्होंने छोड़ दिया सब, लेकिन भीतर से रस नहीं गया है। दूसरा, जो-जो वासनाएं उन्होंने दबा ली हैं, जैसे-जैसे देह कमजोर होती जाती है, वे वासनाएं प्रबल हो के उभर रही हैं। पैंतालीस साल के बाद पता चलना शुरू होता है; जो-जो दबा लिया, वह मुश्किल में डालता है। क्योंकि दबाने की ताकत कमजोर हो जाती है। दबाने वाला दीन होने लगता है, क्षीण होने लगता है। और जो वासना दबाई है, अंगार की तरह वह ताजी रहती है। और तीसरी बात, एक संदेह कि हमने जो किया, वह ठीक किया ? यह उचित हुआ ? कहीं ऐसा तो नहीं है कि जो संसार में है वही ठीक हो ?

अब यह बड़ी दयनीय दशा है। यह तुमसे ज्यादा दयनीय दशा है। यह तुमसे ज्यादा मुश्किल और उलझन की दशा है। तुम्हारे पास कुछ तो है – संसार ही सही; ये हाथ बिलकुल ही खाली हो गये। इन खाली हाथों की दीनता देखो !

मैं तुम्हें दीन नहीं बनाना चाहता। मैं कहता हूं, तुम परमात्मा को खोजो। वह जैसे-जैसे मिलता जायेगा, वैसे-वैसे संसार तिरोहित होता जायेगा। जैसे-जैसे तुम्हारे हाथ भरने लगेंगे उससे, वैसे-वैसे तुम पाओगे संसार से हाथ हटने लगे। हटाना न पड़ेंगे। हटाना पड़ें तो दमन होता है। हट जायें, अपने से हट जायें तो उसका सौंदर्य ही अनूठा है। फिर उसकी लकीर भी नहीं रह जाती भीतर, पीड़ा भी नहीं रह जाती।

जिस दिन से इश्क अपना हुआ मीरे-कारवां
आगे बढ़े हुए हैं हर इक कारवां से हम।

--और जिस तुम अपनी बागडोर प्रेम के हाथ में दे दोगे . .

जिस दिन से इश्क अपना हुआ मीरे-कारवां

— और जिस दिन से तुम्हारा पथ-प्रदर्शक, अगुआ प्रेम हो जायेगा ...

आये बढ़े हुए हैं हर इक कारवां से हम ।
— उसी दिन तुम पाओगे, तुम सबसे ज्यादा आगे बढ़ गये हो। प्रेम के अतिरिक्त कोई आगे बढ़ा नहीं है । प्रेम पथ-प्रदर्शक है । प्रेम प्रकाश का बीमा है ।

खतरे मुझे मालूम हैं कि प्रेम के हैं, क्योंकि तुमने प्रेम का गलत रूप जाना है। लेकिन तुम्हारे गलत रूप जानने के कारण सत्य तुमसे न कहूं, तो वह और भी खतरनाक होगा । मैं वही कहूंगा जो ठीक है । तुम्हें उसमें से गलत निकालना हो, निकाल लेना । वह तुम्हारी जुम्मेवारी है। लेकिन जुम्मेवार तुम्हीं रहोगे । लेकिन इस कारण कि कहीं तुम कुछ गलती न कर लो, मैं तुम्हें मारना नहीं चाहता । तुम्हारी जिंदगी तो पूरी-पूरी ऊर्जा से भरी हुई होनी चाहिए । कोई हर्जा नहीं, आज गलत जाओगे; जिस ऊर्जा से गलत गये हो, उसी ऊर्जा से वापिस भी आ सकते हो ।

लेकिन प्रेम को जरा कसना । रोज-रोज ऊपर उठाना । रोज-रोज देखना कि उसके और नये-नये सोपान हैं । मधुर-मधुर सोपान हैं ! बड़े प्रीति-भरे !

तुम तो जिसे प्रेम कहते हो, वह बड़ी मिश्रित अवस्था है; जैसे सोने में बहुत कूड़ा-कर्कट मिला हो । इसलिए तुम्हारे प्रेम में घृणा भी मिली है । तुम जिसको प्रेम करते हो उसी को घृणा भी करते हो ।

तुमने कभी जांचा अपने मन को कि जरा पत्नी नाराज हो जाती है कि तुम सोचते हो कि मर ही जाये तो बेहतर । सोचने लगते हो कि हे भगवान, इसको उठाओ ! कहां फंस गये इस चक्कर में ! बेटा तुम्हारे अनुकूल नहीं चलता तो मां कहने लगती है कि तुम पैदा ही न हुए होते तो अच्छा था । तुम्हारे प्रेम से घृणा बहुत दूर नहीं है । तुम्हारे आशीर्वाद से तुम्हारा अभिशाप बहुत दूर नहीं है; पास-ही-पास बैठे हैं । तुम्हारी मुस्कुराहट तुम्हारे आंसुओं से बहुत ज्यादा दूर नहीं है ।

थोड़ा जागो ! इसे देखो । तुम्हारा प्रेम क्षण में क्रोध बन जाता है, क्षण भर में क्रोध बन जाता है । अभी जिसके लिए तुम जान देने को तैयार थे, क्षण भर में उसी की जान लेने को तैयार हो जाते हो । जरा सोचो, जरा जागो और देखो ।

यह प्रेम बहुत गंदगियों से मिला हुआ है । इसमें क्रोध भी है । इसमें द्वेष भी है । इसमें ईर्ष्या भी है, मत्सर है, मोह है, राग है, घृणा है, हिंसा है । तुम जिसे प्रेम करते हो उसी की गर्दन दबाने लगते हो, इतनी हिंसा है । प्रेमी अक्सर एक-दूसरे को मार डालते हैं । विवाह की तिथि अक्सर मरण की तिथि सिद्ध होती है ।

एक आदमी का विवाह हो रहा था । राह पर एक मित्र मिल गया । कल विवाह होने वाला था । उस मित्र ने कहा, 'बड़ी बधाइयां ! ' उस मित्र ने कहा, 'शायद तुम्हें पता नहीं है, अभी मेरा विवाह हुआ नहीं, कल होने वाला है ।' उसने कहा, 'इसलिए तो बधाइयां दे रहे हैं, फिर बधाइयां देने का उपाय न रहेगा । एक दिन और बचा है, जी लो ! चल लो मस्ती से, स्वतंत्रता से । '

अगर राह पे तुम स्त्री-पुरुष को चलते देखो तो तुम तत्क्षण कह सकते हो कि ये पति-पत्नी हैं या नहीं। पति डरा-डरा चल रहा है, नीचे नजर रख के चल रहा है, इधर-उधर देखता नहीं; क्योंकि फिर झंझट खड़ी हो जाये! यह प्रेम गर्दन को काट जाता है।

मैं एक ट्रेन में सफर कर रहा था। एक महिला मेरे साथ उस डब्बे में थी। उसका पति भी था, लेकिन वह किसी दूसरे डब्बे में था। पर वह हर स्टेशन पे आता। तो मैंने उससे पूछा कि मुझे शक होता है, ये पति हो नहीं सकते। उसने कहा, 'क्यों?' वह थोड़ी चौंकी।

'कितने दिन हुए शादी हुए?'

उसने कहा, 'कोई सात-आठ साल हो गये।'

'यह बात उपन्यास में हो सकती है। सात-आठ साल हो गये, और पति हर स्टेशन पे उतर के आते है इस भीड़-भड़क्का में!'

वह कहने लगी, 'आपने ठीक पहचाना। वे मेरे पति हैं नहीं, लगाव है।'

'तब बात ठीक है। लगाव एक बात है। पत्नी तुम किसी और की होओगी। नहीं तो अपना पति हर स्टेशन पे उतर के आये! एक दफे जो छूटा, तो वह आखिरी स्टेशन पे भी आ जाये तो काफी है।'

प्रेम में बड़ा और बहुत कुछ मिला हुआ है। एक-दूसरे की गर्दन दबा देते हैं। हां, बहाने हम अच्छे खोजते हैं! लेकिन जिसको प्रेम कहें, वह अभी बड़ा दूर है। लेकिन जिसे तुम प्रेम कह रहे हो, उसमें भी वह पड़ा है। इसलिए मैं यह न कहूंगा, इस सब को फेंक देना। इसको निखारना है। इस सोने में मिट्टी मिली है, माना; मिट्टी को काट डालना है, सोने को बचाना है। तो दुनिया में कुछ लोग है जो इसी को प्रेम समझ रहे हैं। वे गलत। तो दुनिया में कुछ लोग हैं जो मिट्टी के कारण इस पूरे प्रेम को फेंक देने को कहते हैं। वे भी गलत; पहले से भी ज्यादा गलत। क्योंकि मिट्टी के बहाने कहीं सोने को मत फेंक देना!

अहिंसा की धारणा मे वही हो गया है। फेंक ही दो इस प्रेम को; इसमें खतरा है, इसमें उपद्रव है, इसमें तनाव है, परेशानी है, अशांति है। फेंक ही दो। लेकिन साथ ही सोना भी चला जाता है।

मैं तुमसे कहता हूं, ये दोनों अतियां हैं, इनसे बचना। इसमें से मिट्टी तो काटनी है – घृणा काटनी है, क्रोध काटना है, मत्सर, ईर्ष्या अलग करनी है – प्रेम को निखारना है।

जीवन एक प्रयोगशाला है प्रेम को निखार लेने की। और धन्यभागी हैं वे जो अपने प्रेम को पूरा निखार लेते हैं। उस निखरे रूप में ही जगत जैसा दिखाई पड़ता है उसका नाम परमात्मा है। उस प्रेम के निखरे रूप में ही तुम जिस नियति को उपलब्ध होते हो, उसका नाम आत्मा है।

दूसरा प्रश्न : जो दीया तूफान से बुझ गया उसे फिर जला के क्या करूं? जो स्वभाव स्वप्न में खो गया, उसे वापिस जगा के क्या करूं? आप कहते हैं तो मान लेता हूं कि मैं ही परमात्मा हूं, लेकिन जो परमात्मा घर से ही भटक गया, उसे घर वापस बुला के क्या करूं?

ऐसा प्रश्न बहुतों के मन में उठता है, स्वाभाविक है। लेकिन तुम जीवन की जटिलता को नहीं समझ रहे हो। स्वभाव इसीलिए खो गया है, क्योंकि बिना खोये तुम उसे जान ही न सकोगे। वह जानने की प्रक्रिया है। जो तुम्हारे पास है, सदा से है, सदा से है, सदा से है, तुम उसके प्रति अंधे हो जाते हो। उसे खोना जरूरी है, ताकि तुम पा सको। पाने के लिए खोना अनिवार्य है। खो के भी तुम वस्तुतः थोड़ी खोते हो, क्योंकि स्वभाव तो वही है जो खोया न जा सके।

विस्मरण का नाम खोना है। तुम भूल गये हो। और यह भूलने की बात अत्यंत आवश्यक है समझ लेनी। भूलने का अर्थ यह नहीं है कि तुम कुछ और हो गये हो जो तुम नहीं हो। भूलने का इतना ही अर्थ है कि तुमने कुछ और समझ लिया है। हो तो तुम वही जो हो। जैसे आज रात तुम यहां सोओ और सपने में देखो, कलकत्ते में हो, तो कोई कलकत्ते पहुंच नहीं गये। कोई लौटने के लिए तुम्हें कोई हवाई जहाज नहीं पकड़ना पड़ेगा। कोई हिला के जगा देगा, तुम पूना में जगोगे, कलकत्ते में नहीं जगोगे। तुम यह न कहोगे कि यह क्या मुसीबत कर दी। तुम भाग के स्टेशन भी न जाओगे कि अब मैं पकड़ूं ट्रेन पूना जाने की, इस आदमी ने कलकत्ते में जगा दिया। सपने में कलकत्ते में थे। यह सिर्फ खयाल था। असलियत में तो तुम पूना में ही हो। परमात्मा को खोया जा नहीं सकता। हो तो तुम परमात्मा में ही। सपने तुम कोई भी देख लो। और सपना तुम्हारी स्वतंत्रता है। और सपने बड़े मधुर हैं। और सपने एकदम बुरे भी नहीं हैं, क्योंकि इन्हीं सपनों के माध्यम से तुम अपने से अपने को दूर कर लेते हो, फासला कर लेते हो। फिर मिलन का मजा आ जाता है। जैसे मछली सागर में ही रहती है तो सागर को भूल ही जाती है, सागर का पता ही नहीं चलता। जरा फेंक दो मछली को किनारे पे, तड़फती है; तब उसे पहली दफा याद आती है कि सागर क्या है।

तुम अपने सपनों के तट पर तड़फ रहे हो। यह तड़फ तुम्हें फिर सागर में ले जायेगी। अब तुम पूछते हो कि 'क्या फायदा जो दीया तूफान से बुझ गया...?' बुझा नहीं है। कोई तूफान तुम्हारे दीये को बुझा नहीं सकता; अन्यथा तूफान तो इतने हैं...। कोई तूफान तुम्हारे दीये को नहीं बुझा सकता। किसको पता चल रहा है यह? यह कौन कह रहा है कि क्या करूं उस दीये को फिर से जला के जिसको तूफान ने बुझा दिया? यह जो कह रहा है वही तो तुम्हारा दीया है—यह तुम्हारा जो चैतन्य-भाव है। यह कौन कह रहा है कि क्या फायदा उस परमात्मा को खोजने

से जो घर से ही दूर चला गया ? मगर यह कौन है जो कह रहा है ? यही तुम्हारा परमात्म-भाव है। यह साक्षी-भाव, यह चैतन्य, यह ज्ञान, यह बोध, यह ज्योति। दीया बुझता नहीं। यह दीया बुझने वाला दीया नहीं है। और बुझ जाता तो इसके जलाने के फिर कोई उपाय न थे। बुझ जाता तो तुम होते ही न। बुझ जाता तो सोचने वाला भी न होता कि कैसे इसे जलाऊं। तुम हो। तुम परिपूर्ण हो। सिर्फ एक सपने ने तुम्हें घेर लिया है। एक बादल आ गया है। और सूरज को ढांक लिया है।

यह धूप-छांव का खेल बड़ा मधुर है। इसलिए हिंदुओं की परिभाषा बड़ी अनूठी है। वे कहते हैं, लीला है। तुम इसको बड़ा काम समझ रहे हो कि खो दिया, अब क्या फायदा ! तुमने कभी बचपन में छिया-छी नहीं खेली ? दो बच्चे छिया-छी खेलते हैं, दोनों आंख बंद करके खड़े हो जाते हैं, छिप जाते हैं। पता है कि यहीं छिपे हैं, इसी कमरे में छिपे हैं। कई बार चक्कर लगाते हैं, खोजते हैं कहां छिपा है, बड़ा शोरगुल मचाते हैं – और उन्हें पक्का पता है, कहां छिपा है क्योंकि घर ही कौन बड़ा है; वहीं कमरे में कहीं छिपा है, बिस्तर के नीचे चला गया है कि दीवाल की ओट में खड़ा हो गया है। सब पता है। लेकिन फिर खेल का मजा चला जाता है, जब सब पता ही है तो। तो थोड़ा दौड़ते हैं, थामते हैं, खोजते हैं, इधर-उधर झांकते हैं, फिर पकड़ लेते हैं।

हिंदू कहते हैं, यह जगत छिया-छी है, यह लीला है। तुम्हीं अपने को खोज रहे हो, तुम्हीं अपने को छिपा रहे हो। तुम पूछोगे, 'क्यों ? क्यों खेलें छिपा-छी ?' मत खेलो। सारा धर्म वही तो कला सिखाता है तुम्हें कि जिनको छिया-छी नहीं खेलनी, वे ध्यान करें, वे छिया-छी के बाहर हो जाते हैं। ध्यान का मतलब कुल इतना ही है कि अगर थक गये, अब तुम्हें खेलना नहीं है, तो घोषणा कर दो कि हम खेल के बाहर होते है, अब हम जरा विश्राम करेंगे; या अब हमें भूख लगी है, अब हम घर जाते हैं। जिनको अभी खेलने में रस आ रहा है, वे खेलें। जिनको खेलने में अब थकान आने लगी है, वे घर लौट जायें।

परमात्मा की खोज का मतलब इतना ही है कि अब बहुत हो गई छिया-छी; अब थक गये। बस इतना ही स्मरण काफी है कि थक गये – विश्राम। जैसे दिन भर आदमी मेहनत करता है, रात सो जाता है। अब तुम यह तो नहीं कहते रात खड़े हो के कि अब क्यों सोयें, जब दिन भर मेहनत की ! तुम्हारी मर्जी, न सोना हो तो न सोओ, खड़े रहो। रात भर सोये रहे, अब सुबह तुम्हें कोई उठाने लगे तो तुम यह तो नहीं कहते कि नहीं उठेंगे अब; रात भर सोये रहे, अब क्यों उठें ? नहीं सोने के बाद जागना है; जागने के बाद सोना है। दिन के बाद रात है, रात के बाद दिन है।

ध्यान, संसार, परमात्मा, अरूप और उसके रूप, इन दोनों के बीच यात्रा है। यह

खेल बड़ा मधुर है। बस खेलने की कला आनी चाहिए। और खेल में 'क्यों' का तो सवाल मत उठाना। क्योंकि 'क्यों' दुकानदार का शब्द है, खिलाड़ी का नहीं। अब दो आदमी फुटबाल खेल रहे हैं, तो तुम पूछते हो, 'यह क्या फायदा? इधर से गेंद उधर मारी, उधर से इधर मारी; अरे एक जगह रखो, बैठ जाओ शांति से।' आदमी वॉलीबाल खेल रहे हैं, तुमने देखा कैसा पागलपन करते हैं! बीच में एक जाली बांध रखी है, इधर से फेंक रहे हैं उधर; उधर से फेंक रहे हैं इधर। और इनकी तो छोड़ो ही, कई भीड़ लगा के खड़े हैं देखने के लिए। इतना-सा काम हो रहा है, गेंद इधर से उधर फेंकी जा रही—यह तो दो मशीनें लगा के भी कर सकते हो। इसमें सार क्या है? अगर दुकानदार है तो पूछेगा, 'क्यों? इससे मिलेगा क्या?' लेकिन तब चूक गये बात। मिलने का सवाल नहीं है, खेल में ही रस है। यह जो खेल की उमंग है, इसमें ही रस है।

तिनके की तरह सैले-हवादिस लिये फिरा
तूफान ले के आये थे हम जिंदगी के साथ।

तूफान हमारे साथ आया है। जिंदगी तूफान है। इसमें बड़ी लहरें उठती हैं, बड़ी आंधियां आती हैं। फिर सन्नाटा भी छा जाता है। सन्नाटे के लिए आंधी जरूरी है; आंधी के लिए सन्नाटा जरूरी है—दोनों परिपूरक हैं। यहां मिलना भी है, खोना भी है; पाना भी है, बिछुड़ना भी है; याद भी है, विस्मृति भी है। ये दोनों पहलू हैं, दो पंख हैं। इनसे ही जीवन के आकाश में उड़ने का उपाय है।

यह हादसे कि जो इक-इक कदम पै हाइल हैं
खुद एक दिन तेरे कदमों का आसरा लेंगे।
जमाना चीं-ब-जबीं है तो बात क्या है 'रविश'
हम इस अताब पै कुछ और मुसकरा लेंगे।

ये हादसे, ये घटनाएं जो हर कदम पे घट रही हैं, ये पत्थर जो हर कदम पे अड़े हुए हैं, खुद एक दिन तेरे कदमों का आसरा लेंगे। घबड़ाओ मत; ये पत्थर नहीं हैं, ये सीढ़ियां बन जाने वाली हैं। यह भटकाव ही उसके पहुंचने का रास्ता बन जाने वाला है। यह दूर हो जाना ही पास आने का उपाय है

ये हादसे कि जो इक-इक कदम पै हाइल हैं

—ये जो अड़े हैं पत्थर, और घटनाएं, और जीवन के उलझाव, और बाजार और दुकान और तृष्णा और मोह और हजार-हजार बातें हैं ... खुद एक दिन तेरे कदमों का आसरा लेंगे। घबड़ाओ मत, खेले चले जाओ। अभी तुम ठीक से खेल समझे नहीं, अभी खेल का गणित नहीं आया। गणित आ जायेगा तो रस आने लगेगा। और तब इन पत्थरों पे चढ़ने में मजा आने लगेगा। तब तुम धन्यवाद दोगे इन पत्थरों को कि अच्छा किया कि तुम थे, अन्यथा कहां चढ़ते! अच्छा हुआ कि तुम थे, अन्यथा जीवन को जांचने की सुविधा कहां मिलती, अवसर कहां मिलता!

जमाना बीं-ब-जबीं है तो बात क्या है ' रविश '

– और अगर जमाना बहुत क्रोध से भरा है और चारों तरफ बड़ी अड़चन और मुसीबत है तो बात क्या है ' रविश ' –

हम इस अताब पै कुछ और मुसकरा लेंगे ।

– इस क्रोध पे थोड़ा और मुस्कुरा लेना ।

यह जो जमाना इतने उपद्रव खड़ा करता है, इस पे थोड़ा मुस्कुराना सीखो।

परमात्मा का खोजी खेल मान के चलता है । तुम बड़ी गंभीरता से चल रहे हो, यह अड़चन है । तुम्हारे तथाकथित धार्मिकों ने तुम्हें बड़े गंभीर चेहरे सिखा दिये हैं; जैसे कि प्रार्थना कोई काम है ! प्रार्थना खेल है । प्रार्थना रस है, काम नहीं है । इसमें कुछ लाभ और लोभ थोड़ी है । इसमें तो होने का मजा है । इन पक्षियों से पूछो ! ये जो झींगुर गुनगुनाये जा रहे हैं, इनसे पूछो – किसलिए ? वे तुम्हारी बात पे ही आश्चर्य करेंगे कि सवाल भी उठाने योग्य है ? मजा आ रहा है ।

तुम्हें जब तक संसार में मजा आ रहा है, दौड़े जाओ; जब तुम्हें परमात्मा में मजा आने लगे, रुक जाना । मजे-मजे की बात है ।

मैं जो संसार में हैं, उनके विरोध में नहीं हूं । मैं कहता हूं, उन्हें मजा आ रहा है तो मजा लें । तकलीफ तो कब खड़ी होती है कि तुम्हें मजा संसार में आ रहा है और तुम किसी की बात में पड़ गये और उसने कहा कि संसार में क्या रखा है ! तुम्हें मजा संसार में आ रहा है । अब तुम एक उलझन में पड़े, एक तनाव पैदा हुआ। किसी ने कह दिया, संसार में क्या रखा है, यह तो सब धूल है, यह तो सब पड़ा रह आएगा – यह ठाठ पड़ा रह जायेगा, जब बांध चलेगा बनजारा ! उनका बनजारा बांध के चल रहा हो, लेकिन तुम्हारा तो अभी बिलकुल खेल लग रहा था, तंबू लग रहा था, व्यवस्था तुम जुटा रहे थे । यह बात तुम्हारे कान में पड़ गई, अब तुम अड़चन में पड़े । अब तुम तंबू भी गाड़े जा रहे हो और सोच रहे हो, सब ठाठ पड़ा रह जायेगा । अब अड़चन आई । अब तुम इकहरे न रहे । तुम्हारा व्यक्तित्व खंडों में बंट गया । तुम्हारे तथाकथित धर्मों ने तुम्हें विक्षिप्त बना दिया है।

मैं तुमसे जो कह रहा हूं वह यह नहीं कह रहा हूं कि तुम छोड़ के चल पड़ो मैं तुमसे कह रहा हूं, ठीक से तम्बू गड़ा लो । भगवान से भटकने का मौका मिला है, ठीक से भटक जाओ । दूर जाने का क्षण आया है, दूर चले जाओ । इसमें भी क्या कंजूसी करनी ? क्योंकि मेरे देखे जो जितनी दूर जाता है, जब उसे याद पकड़ती है तो उतनी ही तीव्रता से पास आता है । पास आने और दूर आने में एक अनुपात है । खोने का तो कोई उपाय नहीं है, खेल है । रो के खेलना हो रो के खेल लो; हंस के खेलना हो हंस के खेल लो । जो हंस के खेलता है, उसको मैं धार्मिक कहता हूं । जो रो-रो के खेलने लगे, वह कोई खिलाड़ी नहीं है ।

है रात तो इसके बाद सहर, अनवार भी ले कर आएगी

है सुबह तो शब तारों के चमकते हार भी ले कर आएगी।

है रात तो इसके बाद सहर — रात है तो सुबह होने के करीब है, घबड़ाओ मत। रात का मजा ले लो, सुबह तो हो ही जायेगी। सुबह के लिए रोओ, चिल्लाओ-चीखो मत। यह रात सुबह के रास्ते पर ही है। यह रात होने वाली सुबह ही है। यह रात सुबह का ही छिपा हुआ रूप है।

है रात तो इसके बाद सहर अनवार भी ले कर आएगी।

— सुबह प्रकाश भी ले के आने वाली है। अंधेरे को ठीक से तो भोग लो! क्योंकि अगर आंखें अंधेरे को ठीक से न भोग पायें तो तुम प्रकाश को भोगने के योग्य न बन पाओगे।

तुमने कभी खयाल किया? जब अंधेरे के बाद तुम प्रकाश को देखते हो तो अंधेरा तुम्हारी आंखों को तैयार करता है; तुम प्रकाश को देखने में समर्थ हो जाते हो। आंख को विश्राम मिलता है अंधेरे में; आंख ताजी हो जाती है। फिर से तुम देखने में कुशल हो जाते हो। इसलिए तो आंख झपकती रहती है। तुमने कभी पूछा कि आंख झपकती क्यों रहती है? यह हर पल अंधेरे को पैदा करती रहती है, ताकि ताजी बनी रहे। इसलिए तुमने देखा फिल्म जाते हो देखने, तो तीन घंटे तुम आंख का झपकना भूल जाते हो। उसी लिए आंख थक जाती है। फिल्म के कारण नहीं, टेलीविजन देखने के कारण नहीं; तुम आंख का झपकना भूल जाते हो कि जो स्वाभाविक प्रक्रिया थी अंधेरे को बीच-बीच में लाने की, वह भूल जाते हो। तुम इतने ज्यादा तन जाते हो कि आंख फाड़े बैठे रहते हो। अब की बार जब सिनेमा जाओ या फिल्म देखने जाओ या टेलीविजन देखो, तो आंख को झपकाते रहना, तुम पाओगे कोई थकान न आई। आंख के झपकने में राज है। अंधेरा प्रकाश का खेल है। धूप छाया का खेल है।

है रात तो इसके बाद सहर अनवार भी ले कर आएगी।

विश्राम तो कर लो थोड़ा रात में।

संसार विश्राम है परमात्मा का। जल्दी ही सुबह होगी, परमात्मा भी आयेगा, प्रकाश भी लायेगा। भाग-दौड़ मत करो। व्यर्थ शीर्षासन इत्यादि लगा के खड़े न हो जाओ। इससे रात के जाने का कोई संबंध नहीं। रात अपने से आती है, अपने से जाती है। तुम तो सिर्फ साक्षी रहो।

है सुबह तो शब तारों के चमकते हार भी ले कर आएगी।

—और अगर सुबह है तो ध्यान रखना, रात भी आने वाली है।

यह जीवन का चक्र है जो घूमता चला जाता है। इस चक्र में जो खेलना सीख जाये — खेलना पहली शर्त — गंभीरता से नहीं, खिलाड़ी के अहोभाव से, रस से — जो खेलना सीख जाये, यह पहली शर्त। और दूसरी बात धीरे-धीरे तुम्हारे खिलाड़ीपन से उठेगी, वह है साक्षी-भाव। जब तुम देखोगे, रात भी अपने से आती है; सुबह

भी अपने से हो जाती है; फिर सांझ आ जाती है, फिर तारे जगमगा उठते हैं – यह सब अपने से हो रहा है तो मैं नाहक दौड़-धूप क्यों करूं; मैं सिर्फ साक्षी रहूं, देखूं, जो होता है उसका मजा लूं, रस लूं! परमात्मा इतने रूप धरता है इतने-इतने नाच करता है, मैं द्रष्टा बनूं। तो पहले खिलाड़ी बनो, फिर द्रष्टा बन जाओ, बस। ये दो बातें जिसके जीवन में आ गईं, उसने पा ही लिया।

शिकस्ते दिल को शिकस्ते हयात क्यों समझें ?
है मैकदा तो सलामत हजार पैमाने
बुलंद नग्मए-आदम है बज्मे-अंजुम में
कब इक सितारए-नौ हंस पड़े खुदा जाने
हयात अभी है फकत इक हयात का परतव
अभी हयात को समझा ही क्या है दुनिया ने।
शिकस्ते-दिल को शिकस्ते-हयात क्यों समझें ?

अगर तुम हार गये हो तो इसको जीवन की हार मत समझो। जीवन कभी नहीं हारता। तुम हार जाओगे तो बिदा कर लिये जाओगे, बुला लिये जाओगे। जीवन चलता जाता है। एक लहर हार जाती है तो विलीन हो जाती है सागर में।

शिकस्ते-दिल को शिकस्ते-हयात क्यों समझें ?
है मैकदा तो सलामत हजार पैमाने.।

और अगर एक मैकदा टूट गया तो घबड़ाते क्यों हो, मधुशाला साबित है, तो हजार पैमाने भरे तैयार हैं।

यहां छोटी-छोटी चीजों से लोग घबड़ा जाते हैं। किसी की पत्नी मर गई, वैराग्य का उदय हो गया। है मैकदा तो सलामत हजार पैमाने! इतनी जल्दी क्या करते हैं ? किसी की दुकान में घाटा लग गया, दिवाला निकल गया – अरे, दीवाली बहुत मनाई, अब दिवाला भी मना लो! इतना घबड़ाना क्या ?

है मैकदा तो सलामत हजार पैमाने।

हार के धर्म की तरफ, पराजय के भाव से, विफलता से, विषाद से कहीं कोई गया है! उदासी से तो रुग्णता आती है, जीवन का स्वास्थ्य नहीं। धर्म की तरफ उदासी से नहीं, प्रसन्नता से, प्रफुल्लता से गये हुए ही पहुंचते हैं।

बुलंद नग्मए-आदम है बज्मे-अंजुम में

– नक्षत्र मंडल में आदमी का गीत गूंज रहा है।

कब इक सितारए-नौ हंस पड़े खुदा जाने

– कब वर्षा हो जायेगी परम आनंद की, पता नहीं कभी भी हो सकती है!

हयात अभी है फकत इक हयात का परतव

– जिसे तुमने अभी जिंदगी समझा है, वह तो केवल जिंदगी की छाया है।

हयात अभी है फकत इक हयात का परतव

अभी हुवास को समझा ही क्या है दुनिया में।

अभी तुमने जीवन का पूरा राज कहां सीखा? जल्दी मत करो। निर्णय मत लो कि 'क्या फायदा जो दीया बुझ गया, अब इसको जलाने से क्या फायदा! और जो घर छूट गया, उसको खोजने से क्या फायदा!' ऐसे तो तुम थक के गिर जाओगे। ऐसे तो तुम जीते-जी मुर्दा हो जाओगे।

उठो! जीवन की यात्रा प्रफुल्लता से करनी है। और जब कुछ खोता हो, तब भी समझ रखना: यह भी कुछ पाने का उपाय होगा।

आखिरी प्रश्न : तेरे गुस्से से भी प्यार, तेरी मार भी स्वीकार
चाहे खुशी दो कि दो गम, दे दो खुशी-खुशी करतार
तेरी धूप हो कि छांव, मुझको दोनों हैं स्वीकार
तेरा सब कुछ मुझे पसंद, तेरा न भी नहीं इनकार।

शुभ है, ऐसी ही भाव की दशा भक्त की दशा है। और जिसको ऐसे स्वीकार का भाव आ गया; अस्वीकार को भी स्वीकार करने की क्षमता आ गई; 'नहीं' में भी दंश न रहा; हार में भी कांटे न चुभे; सुख आये कि दुख, दोनों को जिसने परमात्मा का उपहार समझ के स्वीकार कर लिया, उसका प्रसाद मान के स्वीकार कर लिया—उसकी मंजिल ज्यादा दूर नहीं है। उसके पैर मंजिल के करीब आने लगे। उसका रास्ता पूरा होने के करीब आने लगा।

इस भाव-दशा को सम्हालना। इस भाव-दशा को धीरे-धीरे गहराना। यह तुम्हारे रोएं-रोएं में समा जाये। यह तुम्हारी धड़कन-धड़कन में बस जाये।

जिनको हर हालत में खुश और शाद मां पाता हूं मैं
उनके गुलशन में बहारे-बेखिजां पाता हूं मैं।

जो हर हाल में खुश हैं, उनके जीवन में वसंत आता है और पतझड़ कभी नहीं आती।

वाये वोह आंख जिसे दीदए-मुश्ताक कहें
हाय वोह दिल जो गिरफ्तार मुहब्बत में रहे।

अगर तुम्हारे पास ऐसी प्रेम की भाव-दशा उठ रही है, ऐसी पहली झलकें आनी शुरू हुई हैं कि सुख और दुख दोनों को तुम प्रभु की अनुकंपा मान लो, तो फिर जल्दी ही, तुम्हारे पास वैसे दिल का निर्माण हो जायेगा।

हाय वोह दिल जो गिरफ्तार मुहब्बत में रहे!
वाये वोह आंख जिसे दीदए-मुश्ताक कहें!

—फिर तुम्हारी आंख परमात्मा को देख ही लेगी। यही तो अभिलाषी की आंख की परीक्षा है। सुख को तो सभी स्वीकार कर लेते हैं। उससे कुछ पता नहीं चलता। दुख को भी जो स्वीकार कर लेता है, उससे ही पता चलता है। फूल गिरें, सभी

मान लेते हैं, और प्रसन्न हो लेते हैं। लेकिन जब कांटे जीवन में आयें तब भी जो मुस्कुराता रहता है ...

वायें वोह आंख जिसे दीवए-मुश्ताक कहें।

आ गई वह आंख, वह अभिलाषी नेत्र, प्रभु के दर्शन करने की क्षमता वाले नेत्र ...।

हाय वोह दिल जो गिरफ्तार मुहब्बत में रहे।

एक पागलपन आयेगा, घबड़ाना मत। यह पागलों की ही बात है। बुद्धिमान तो ठीक-ठीक को स्वीकार करते हैं। बुद्धिमान तो सुख को स्वीकार करते हैं, दुख को इनकार करते हैं; फूल चुनते हैं, कांटे अलग करते हैं। यह तो दीवानों की बात है कि दोनों को स्वीकार कर लेते हैं।

और मैं तुमसे कहता हूं, दीवानगी से बड़ी कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। क्योंकि जो सुख को स्वीकार करते हैं, दुख को अस्वीकार, उनके जीवन में दुख-ही-दुख भर जाता है। तुम्हारे अस्वीकार करने से दुख थोड़ी जाता है, दुगना हो जाता है। कांटा तो चुभा ही है, पीड़ा तो हो ही रही है—तुम अस्वीकार करते हो, उससे पीड़ा और सघन हो जाती है। कांटा चुभा है और तुम स्वीकार कर लेते हो, तुम कहते हो, 'प्रभु की कोई मर्जी होगी! जरूर किसी कारण से चुभाया होगा।'

बायजीद निकलता था एक रास्ते से, पत्थर से चोट लग गई, वह गिर पड़ा, पैर से खून निकलने लगा! उसने हाथ उठाये आकाश की तरफ और प्रभु को धन्यवाद दिया कि 'धन्यवाद, मेरे मालिक! तू भी खूब खयाल रखता है!' उसके एक भक्त ने पूछा, 'यह जरा जरूरत से ज्यादा हो गई बात। अतिशयोक्ति हुई जा रही है। खून निकल रहा है, पत्थर की चोट लगी है — धन्यवाद का कारण कहां है?'

बायजीद ने कहा, 'पागलो, फांसी भी हो सकती थी! उसका खयाल तो देखो! अपने फकीरों का खयाल रखता है। जरा-सी चोट से बचा दिया। मैं जैसा आदमी हूं, उसको तो फांसी भी हो जाये तो कम है। मेरे पाप, मेरे गुनाह तो देखो!' तो पैर में लगी चोट और बहता लहू भी अहोभाग्य हो गया।

बायजीद तीन दिन से भूखा था। एक गांव में रुके। वह सांझ प्रार्थना जब करता था तो रोज कहता था, 'प्रभु! जो भी मेरी जरूरत होती है, तू सदा पूरी कर देता है।' उस दिन भक्त जरा नाराज थे, तीन दिन से भूखे थे। किसी गांव में ठहरने को जगह न मिली। लोगों ने रुकने न दिया। लोग विरोध में थे। फिर भी उस रात उन्होंने कहा, आज देखें, आज यह बायजीद क्या कहता है! उसने फिर वही कहा कि हे प्रभु! तू भी खूब है। जब जो मेरी जरूरत होती है, पूरी कर देता है। एक भक्त ने कहा, 'अब सुनो! तीन दिन से भूखे हैं। क्या खाक जरूरत पूरी कर देता है?'

बायजीद हंसने लगा। उसने कहा, 'तुम समझे ही नहीं; तीन दिन से भूख मेरी जरूरत थी। तीन दिन उपवास मेरी जरूरत थी। उसने पूरी की।'

देखो, ऐसा आदमी दुख नहीं पा सकता। ऐसे आदमी को कैसे दुख दोगे? परमात्मा भी बड़ी उधेड़-बुन में पड़ जाता होगा ऐसे आदमी के साथ कि अब करो क्या! वह आदमी तो जीतने लगा! यह तो छिया-छी में हाथ आगे मारने लगा। इसको दुखी करने का उपाय न रहा।

और सुख तभी उत्पन्न होता है जब दुखी होने का उपाय नहीं रह जाता। अगर तुमने सुख पकड़ा और दुख छोड़ा, तो तुम धीरे-धीरे पाओगे, तुम्हारा सुख भी दुख हो जाता है। पकड़ने वाले का सुख भी दुख हो जाता है; क्योंकि वह डरता है, कहीं छिन न जाये। छिनेगा तो ही। कौन सुख स्थायी होता है? आया है, जायेगा! पानी की लहर है। न दुख ठहरता, न सुख ठहरता। जिसने पकड़ा सुख को, वह दुखी होने लगा। पहले सुख की आकांक्षा में दुखी था; अब इस भय से दुखी होगा कि छूटता, अब गया, अब गया, अब जायेगा! और जिसने दुख को स्वीकार कर लिया, वह तो दुख को भी रूपांतरित कर लेता है। सुख तो सुख है ही, वह दुख को भी सुख बना लेता है। इस कीमिया को ही धर्म समझना।

जुनूं हर रंग में मशरूरों-शादां
खिरद! हर हाल में चींबर जबीं है।

—प्रेमोन्माद, जुनू हर रंग में मशरूरों शादां

—वह जो पागलों की मस्ती है, दीवानों की मस्ती है, वह तो हर हाल में खुश है।

खिरद! लेकिन अक्ल, बुद्धि, हर हाल में चींबर जबीं है।—वह हर हाल में त्यौरी चढ़ाये हुए है। कुछ भी हो जाये, तृप्ति नहीं होती। कुछ भी मिल जाये, असंतोष बना रहता है।

सौभाग्य है, अगर इस तरह की भाव-दशा में रमते जाओ। यह सिर्फ तुम्हारी कविता न हो, तुम्हारा जीवन बने! यह तुमने सिर्फ होशियारी न की हो प्रश्न पूछ कर, यह तुम्हारा भाव बने, सघन भाव! तो तुम पाओगे, सब तरह से परमात्मा ने नये-नये द्वार खोल लिये; हर तरफ से उसकी हवाएं तुम्हें छूने लगीं।

हर एक जल्वा है मेरे लिए कशिश तेरी
हर एक सदा मुझे तेरा पयाम होती है।

फिर हर आवाज में उसका संदेश और हर रूप में उसका रंग, हर फूल में उसकी खुशबू...। तुम तैयार हो जाओ। और यही तैयारी का ढंग है। इसे तुम चौबीस घंटे स्मरण रखो। जल्दी ही दुख भी आयेंगे, स्मरण रखना। सुख भी आयेंगे, स्मरण रखना। तुम हर हालत में सभी कुछ उसी को समर्पण किये चले जाना। तुम कहना, सब तेरे हैं, सब तेरे भेजे हैं! और जल्दी ही तुम पाओगे, तुम्हारे जीवन में सुख-दुख की उधेड़बुन खो गई और एक परम शांति विराजमान हो गई है — ऐसी शांति जो पृथ्वी की नहीं है; ऐसी शांति जो केवल स्वर्ग की है!

आज इतना ही